"गुरु प्रताप सूरज" का ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन

"GURU PRATAP SURAJ"

KA AITIHASIK EVAM SANSKRITIK ADHYAYAN

(पंजाब विश्वविद्यालय की पी. एच. डी. उपाधि के लिए
प्रस्तुत शोध प्रबन्ध)

1974

PANJAB
LIBRA

शोधकर्ता
प्रो० आशानन्द वोहरा,
एम. ए. (हिन्दी,' पंजाबी तथा संस्कृत),
प्राध्यापक–हिन्दी तथा पंजाबी,
गवर्नमैंट कालेज, गुड़गांव । (हरियाणा)

निर्देशक
डा० जय भगवान गोयल, एम. ए., पी. एच. डी.,
रीडर, हिन्दी विभाग,
कुरुक्षेत्र यूनिवर्सिटी पोस्ट ग्रेजुएट रिजनल सैण्टर,
रोहतक ।

'गुरु प्रताप सूरज' का ऐतिहासिक
एवं सांस्कृतिक अध्ययन

आमुख

कवि कुल-चक्र-चूड़ामणि महाकवि भाई सन्तोख सिंह द्वारा गुरमुखेरी लिपि में लिखे गए ब्रज भाषा हिन्दी के महाकाव्य 'गुरु प्रताप सूरज' में अगम[1] अगाध 'गुरु इतिहास' का भारतीय सांस्कृतिक सम्पदा के संदर्भ में अनुपम निरूपण हुआ है। रीति-युगीन इस विराट प्रबन्ध काव्य में उन्होंने गुरु-कथा को एक स्थान पर संकलित[2] किया है। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में इस ग्रंथ का ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

पूर्ववर्ती अध्ययन

गुरु यश के अमर गायक भाई सन्तोख सिंह पंजाब के सर्वाधिक लोकप्रिय कवि रहे हैं। उनके महिमा मंडित काव्य ग्रंथ 'गुरु प्रताप सूरज' एवं उसके प्रणेता के सम्बन्ध में आद्यावधि जो साहित्य प्रकाश में आया है उसका विवरण इस प्रकार से है।

इस महाकवि की काव्य-कृतियां के ब्रजभाषा में होने पर भी गुरमुखी लिपि में उपलब्ध होने के कारण सर्वप्रथम इन की ओर पंजाबी के गुणग्राही विद्वानों का ध्यान आकर्षित हुआ। पंजाबी साहित्य के आधुनिक युग के निर्माता भाई वीर सिंह के अद्वितीय परिश्रम से इस ग्रंथ का सर्वप्रथम प्रकाशन सितम्बर सन् 1934 में हुआ। उन्होंने कई वर्षों के आध्यवसाय के पश्चात् 'गुरु नानक प्रकाश' तथा 'गुरु प्रताप सूरज' को एक ग्रंथावली के रूप में सम्पादित किया। इस ग्रंथावली की प्रस्तावना में उन्होंने महाकवि के जीवन और कृतित्व पर प्रकाश डाला। 20 सितम्बर, 1953 को उक्त प्रस्तावना के वक्तव्य को पढ़ कर तथा भाई वीर सिंह की प्रेरणा पर कर औरण्टल कालेज के ज्ञानी खजान सिंह जी (अब स्वर्गीय) की अध्यक्षता में 'महाकवि सन्तोख सिंह यादगर कमेटी' की स्थापना हुई। इसके सत्प्रयासों से जहां कवि के जन्म स्थान 'नूर दी सराय' में स्मारक की स्थापना हुई वहां उनकी एक दुलर्भ

1- गुरु प्रताप सूरज, रितु 4, अंशु 7, अंक 24-25, पृ• 5237

2- वही, रास 1, अंशु 5, अंक 2-8, पृ• 1324

रचना 'गरब गंजनी' (मई 1961 में)का प्रकाशन भी हुआ तथा कवि के जीवन से सम्बन्धित कुछ फुटकर लेखों का संग्रह भी 'जीवन कथा' के रूप में प्रकाशित किया गया । परन्तु पंजाबी भाषा में भी इस ग्रंथ के गौरवानुकूल कोई कार्य नहीं हुआ है। पंजाबी के विद्वानों के लिए यह ग्रंथ केवल धर्म और श्रध्दा का पात्र ही बना रहा है।

हिन्दी जगत के लिए भी यह ग्रंथ गुरुमुखी लिपि में होने के कारण सर्वथा अन्धकार में ही पड़ा रहा । डा॰ हरिभजन के 'गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध काव्य ग्रंथों का आलोचनात्मक अध्ययन'[3] प्रस्तुत करने से हिन्दी के विद्वानों का ध्यान इस ओर भी गया । यह शोध ग्रंथ हिन्दी साहित्य में अपना विशेष महत्व रखता है। इस के अध्ययन से मुझे भी विशेष प्रेरणा मिली हैं ।सन् 1956 में डा॰ जय भगवान गोयल ने गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध इस महान ग्रंथ के काव्यपक्ष से सम्बन्धित विशेष कर इसके अलंकारविधान और छन्द विधान पर अपना शोध कार्य आरंभ किया ।उनका यह शोध प्रबन्ध सन् 1966 में कुरुक्षेत्र विद्यालय, कुरुक्षेत्र, द्वारा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की सहायता से प्रकाशित हुआ । इसके अतिरिक्त दिसम्बर , 1968 में इस ग्रंथ का संक्षिप्त रूपान्तर 'संक्षिप्त गुरु प्रताप सूरज' के नाम उन्होंने सम्पादित कर (भूमिका सहित) पंजाब विश्वविद्यालय , चंडीगढ़ के प्रकाशन ब्यूरो द्वारा प्रकाशित कराया । डा॰ गोयल की प्रेरणा से भाषा विभाग ने जहां 'गुरु नानक प्रकाश' को प्रकाशित किया है वहां अब इस ग्रंथ को भी उनकी भूमिका से विभूषित कर प्रकाशित कराने का प्रयास किया जा रहा है।इस ग्रंथ को पहली जिल्द का प्रकाशन अभी हाल में ही हुआ है। इसके अतिरिक्त उन्होंने अपने अन्य ग्रंथों में भी इस ग्रंथ की महानता की चर्चा की है जैसे 'गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध हिन्दी साहित्य', 'रीतिकाल का पुर्नमूल्यांकन' आदि। उनके विभिन्न निबन्ध भी पत्र पत्रिकाओं में समय समय पर प्रकाशित होते रहते हैं ।

प्रस्तुत कवि के जीवन और साहित्य के सम्बन्ध में उक्त इतना ही साहित्य प्रकाश में आ सका है ।

3- प्रकाशक : भारतीय साहित्य मन्दिर , दिल्ली 1963

प्रस्तुत अध्ययन : आवश्यकता और दृष्टिकोण

डॉ. गोयल के उक्त शोध प्रबन्ध के प्राक्कथन में डा॰ नगेंद्र ने इस ग्रंथ के अन्य पक्षों पर शोध कार्य की आवश्यकता को अनुभव करते हुए लिखा कि '' भारतीय संस्कृति का इस काव्य में भव्य चित्रण हुआ है - - - - इस वृहदाकार प्रबन्ध काव्य में विभिन्न पक्षों को लेकर अनेक शोध प्रबन्ध लिखे जाने चाहिए।[4] '' इस काव्य ग्रंथ की महती महिमा का अनुभव करते हुए प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक ने इस के ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन को प्रस्तुत करने की प्रेरणा डा॰ गोयल से प्राप्त कर सन् 1969 में अपना शोध कार्य आरंभ किया ।

हमारी इस शोध-कृति की संकेतिका से ही पाठकों को इस की व्यापक परिधि का संकेत मिल जाता है। 'गुरु प्रताप सूरज' सम्बन्धी उक्त साहित्य का परिचय एवं अध्ययन कर हम निष्कर्षतः कह सकते है कि आज तक इस ग्रंथ का जितना अध्ययन हुआ है उसमें इसके साहित्यिक पक्ष पर ही विशेष कर छन्द और अलंकारों तक का अध्ययन हो पाया है। अन्य अनेक पक्ष अभी तक अछूते ही रह रहे हैं ।हमारे विचार में 'गुरु प्रताप सूरज ' मध्ययुगीन संस्कृति का प्रतिनिधि ग्रंथ है। एतदर्थ केवल इसके काव्य पक्ष की चर्चा अध्ययन की पाक्षिकता की ही द्योतिका हो सकती है। अतः हम ने इसके ऐतिहासिक स्वरूप को स्पष्ट करते हुए सांस्कृतिक तत्वों से सम्बद्ध प्रत्येक पक्ष को अपने अध्ययन एवं विश्लेषण का विषय बनाया है। 'काव्य पक्ष' के अतिरिक्त ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक पक्षों को स्थान देना उपयुक्त समझा है। मध्ययुगीन संस्कृति की सार्वभौमता की स्थापना करते हुए प्रस्तुत योजना के अन्तर्गत 'गुरु प्रताप सूरज' को किसी सम्प्रदाय या मत विशेष की संकुचित एवं संकीर्ण सीमाओं में न बान्ध कर भावात्मक एकता के संस्थापक एक महाग्रंथ के रूप में ही सांस्कृतिक पर्वों की चिरंतनता का द्योतक माना है।

'गुरु प्रताप सूरज' के ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन को अधिक विशालता प्रदान करने के लिए जहां सिक्ख मत के सिध्दांतों का निरूपण किया गया है वहां धार्मिक, दार्शनिक, सामाजिक पक्षों पर भी विचार किया गया है। इसके ऐतिहासिक एवं पौराणिक

4- द्रष्टव्य : 'गुरु प्रताप सूरज' के काव्य पक्ष का अध्ययन , पृ॰ xii

स्वरूप का विश्लेषण करते हुए इसके समन्वयवादी दृष्टिकोण को भी स्पष्ट किया है। इस तरह से इस विराट आयोजन में 'गुरु प्रतापसूरज' के सर्वांगीण ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन को प्रस्तुत कियागया है।

प्रस्तुत शोधप्रबन्ध के प्रत्येक अध्याय पर स्वतन्त्र शोध ग्रंथ प्रस्तुत किए जा सकते हैं और सम्भवतः इसकी दार्शनिकता पर तो कार्य आरंभ भी हो गया है। परन्तु इस में अधिक विस्तार एवं आकार रुचिकर न होने के कारण संकोच से काम लेते हुए महत्वपूर्ण तथ्यों पर ही प्रकाश डाला गया है। विषय को सीमित रखने की समस्या इस संदर्भ में विशेष कठिनाई रही है।क्योंकि शोध के विचार से जैसा कि ऊपर संकेत किया गया है कि इस प्रबन्ध में विवेचित विविध सांस्कृतिक पक्षों में से एक को चुनकर शोध कार्य से अधिक न्याय किया जा सकता था।परन्तु उसमें भाई सन्तोख सिंह की आत्मा के वांछित मिलाप के दर्शन की अभिलाषा कदाचित पूरी न हो पाती। इसलिए विस्तृत विषय को ही अध्ययन का आधार बनाया गया है। ऐसी स्थिति में अनेक स्थलों पर कुछ विचारों को अत्यन्त संक्षिप्त रूप में ही रखना पड़ा है।

विषय की सीमा

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में यह अनुसंधेय है कि इस ग्रंथ की ऐतिहासिक और सांस्कृतिक सन्दर्भ में देन क्या है ? भारतीय संस्कृति के विभिन्न तत्वों का इस ग्रंथ में कहां तक संकलन मिलता है ?भाई सन्तोख सिंह का 'गुरु प्रताप सूरज' तो हमारा आधार ग्रंथ है ही पर उसके अतिरिक्त अन्य 'गुरु इतिहास' से सम्बन्धित ग्रंथ -'आदि ग्रंथ' 'दशम ग्रंथ', 'महिमा प्रकाश', 'नानक विजय', 'गुरु विलास' (सुक्खा सिंह) आदि भी आंशिक रूप से अनुसन्धान की यात्रा में आलोकदान करते रहे हैं।आनुषंगिक रूप से सिक्ख - गुरु -इतिहास और संस्कृति पर भाई वीरसिंह, भाई कान्हसिंह, मैकालिफ, श्री गोकलचन्द नारंग, बैनर्जी, कृपाल सिंह नारंग आदि अनेक विद्वानों की रचनाओं में प्रतिपादित विचार हमारी चिंतन धारा में आकर मिल गए हैं। भारतीय संस्कृति के अनेक गौरव ग्रंथ - वेद, पुराण, धर्मशास्त्र, दर्शनशास्त्र का प्रभाव भी प्रस्तुत अध्ययन में देखा जा सकता है।

विषय की मौलिकता

ऊपर संकेत किया जा चुका है कि भाई सन्तोख सिंह और उनके ग्रंथ 'गुरु प्रताप सूरज' के सम्बन्ध में उपलब्ध सामग्री बहुत ही कम है। इसी कारण गत सवा पांच वर्षों के दौरान में सामग्री के एकत्रीकरण के लिए जहां अजायबघारों, ऐतिहासिक स्थानों एवं पुस्तकालयों में भटकता रहा वहां अनेक नवीन तथ्यों की उपलब्धि से मेरा साहस भी बढ़ता रहा है। इसी कारण मैं इस शोध प्रबन्ध को चाहते हुए भी शीघ्र प्रस्तुत न कर सका। भाई वीर सिंह के उक्त सम्पादित ग्रंथ तथा डा॰ हरिभजन और डा॰ गोयल के शोध प्रबन्ध ही मेरे अनुसन्धान मार्ग के महान प्रकाश स्तंभ रहे हैं। जिन के आलोक में मैं राह ढूंढता रहा हूँ। डा॰ वासुदेव शरण अग्रवाल तथा डा॰ हजारी प्रसाद द्विवेदी जी की रचनाओं से पथ निर्देश मिलता रहा है। अनुसन्धान के क्रम में मैंने बार बार अनुभव किया कि इस में वर्णित इतिहास जहां हमें मांगलिक भावनाएं और जागृति का सन्देश देता है वहां इस में निरुपित संस्कृति भारतीय संस्कृति की प्रतिरुपता, उदात्तता, सर्वभूतहिताकांक्षा की परिचायक है। ऐसे महिमा मंडित ग्रंथ के उक्त स्वरुप को उजागर करना ही मेरा प्रधान लक्ष्य रहा है। उक्त पक्षों का तात्विक निरुपण अपने आप में ही महत्व का विषय तो है ही, परन्तु इस शोध-प्रबन्ध में उसकी व्यापकता और महत्ता की स्थापना भी की गई है। इस रुप में व्यवस्थित रीति से उक्त पक्षों से संबध्द विषयों का विचार करने पर महाकवि सन्तोख सिंह की देन के सम्बन्ध में हम जिन निष्कर्षों पर पहुंचे है, उनका यथा-स्थान निर्देश कर दिया गया है। अभी तक इस तरह की व्यापक दृष्टि से भाई सन्तोख सिंह विचरित 'गुरु प्रताप सूरज' का मूल्यांकन नहीं किया गया है। मेरी जानकारी में न केवल हिन्दी में ही अपितु अन्य भाषाओं (पंजाबी तथा अंग्रेजी) में भी इस प्रकार का प्रयास नहीं किया गया है, इस दृष्टि से यह शोध प्रबन्ध अपने ढंग का सर्वथा नूतन प्रयास है। किसी भी मान्यता का निर्धारण करने से पूर्व अनेक तात्विक विचारों का संकलन, आकलन और संतुलन आवश्यक है, उनके आधार पर प्रतिपादित निर्णयात्मक विचारों का निष्कर्ष प्रस्तुत किया जाता है। निस्सन्देह इस शोध-प्रबन्ध में भाई सन्तोख सिंह के गुरु इतिहास सम्बन्धी तथ्यों के

स्वरूप, गुरमत दर्शन के सिध्दांतों और सांस्कृतिक महत्व के मूल्यांकन के क्रम में जिन निष्कर्षों को प्रस्तुत किया गया है। वे अमूल नहीं हैं इस लिए भी वे मौलिक हैं । उन सब की पुष्टि भाई सन्तोख सिंह एवं अन्य प्राचीन तथा नवीन गुरु इतिहास के महान चिन्तकों की मूल विचारधारा से हुई है। इस प्रकार विचारतत्व को प्रस्तुत कर एवं प्रमाणिक कर उसकी मौलिकता का पूर्ण निर्वाह किया गया है ।

विषय का वस्तु विधान

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध आठ अध्यायों में विभाजित है । प्रथम अध्याय में काव्य से ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक चित्रण के सम्बन्ध एवं स्वरूप के विवेचन के साथ साथ जहां 'गुरु प्रताप सूरज' को काव्य, इतिहास और संस्कृति का पावन तीर्थराज बताया गया हैं वहां उसके रचयिता भाई सन्तोख सिंह के जीवन, व्यक्तित्व, और कृतित्व पर भी प्रकाश डाला गया है।

'गुरु प्रताप सूरज' का ऐतिहासिक अध्ययन शीर्षक से द्वितीय अध्याय लिखा गया है। इसके आरंभ में इतिहास के स्वरूप, परिभाषा, परंपरा, भारतीय और पाश्चात्य दृष्टिकोण आदि का परिचय देते हुए 'गुरु प्रताप सूरज' के इतिहास दर्शन, उसमें निरूपित इतिहास तत्व की पृष्ठभूमि , उसके तात्विक विवेचन, उसकी ऐतिहासिक सामग्री के आधार और सूत्रों के परिचय के साथ साथ तत्कालीन परिस्थितियों पर भी प्रकाश डाला गया है। तत्पश्चात् उसमें वर्णित नौ गुरु साहिबान के व्यक्तित्व, पारिवारिक एवं ऐतिहासिक घटनाओं पर प्रकाश डाला गया है। हिन्दी में 'गुरु प्रताप सूरज' का ऐसा विश्लेषणात्मक अध्ययन इस से पूर्व अभी तक प्रस्तुत नहीं किया गया है ।

तृतीय अध्याय ''गुरु प्रताप सूरज' का ऐतिहासिक, काल्पनिक एवं पौराणिक तत्व और स्वरुप' शीर्षक से लिखा गया है। इस में 'काव्य में पौराणिकता, उसका सांस्कृतिक महत्व, पुराण साहित्य : स्वरूप एवं प्रवृतियों आदि के विवेचन द्वारा 'गुरु प्रताप सूरज' को पौराणिक पृष्ठभूमि पर प्रकाश डाला गया है। तथा इसके पौराणिक महत्व को जहां दशम ग्रंथ, महिमा प्रकाश, गुरविलास (सुक्खासिंह) और नानक विजय के

संदर्भ में समीक्षा की गई है। वहां पौराणिक कथाओं के संदर्भ में गुरुओं के पौराणिक महत्व, उनके अलौकिक कृत्यों का भी उपबृंहण किया गया है। इसी अध्याय में रीतिकालीन आलंकारिक पौराणिकता पर भी प्रकाश डाला गया है जो सर्वथा मौलिक प्रयास है।

चतुर्थ अध्याय में 'गुरु प्रताप सूरज' के सांस्कृतिक अध्ययन की पूर्व पीठिका दी गई है। इसके अन्तर्गत संस्कृति के स्वरूप, क्षेत्र, भारतीय और पश्चात्य परिभाषा, संस्कृति और सभ्यता, संस्कृति के प्रकार आदि पर विचार करते हुए भारतीय संस्कृति की संक्षिप्त रूपरेखा और उसकी प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है। इस के साथ ही इसी अध्याय में 'काव्य में सांस्कृतिक अभिव्यक्ति, सांस्कृतिक अध्ययन की लोकप्रियता, सांस्कृतिक अध्ययन का दृष्टिकोण, हिन्दी में सांस्कृतिक अध्ययन और प्रस्तुत अध्ययन की आवश्यकता आदि विषयों पर भी विचार किया गया है। इस पूर्व पीठिका के पश्चात् 'गुरु प्रताप सूरज' के सांस्कृतिक अध्ययन के विविध पक्षों पर प्रकाश डाला गया है।

पंचम् अध्याय में 'गुरु प्रताप सूरज' में अभिव्यक्त धार्मिक और आध्यात्मिक जीवन पर विशद विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इस अध्याय की पूर्व पीठिका के रूप में सर्वप्रथम धर्म का स्वरूप, और परिभाषा, भारतीय प्राचीन धार्मिक परंपरा और विकास, मध्ययुगीन भारत की धार्मिक और आध्यात्मिक स्थिति, भारत में इस्लाम धर्म का प्रवेश, सांस्कृतिक पतन और तत्कालीन विकृत धार्मिक अवस्था, सांस्कृतिक पुनर्जागरण और मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन, सिक्ख मत का अभ्युदय और विकास आदि अनेक विषयों के विवेचन द्वारा 'गुरु प्रताप सूरज' की धार्मिक और आध्यात्मिक पृष्ठभूमि से परिचित कराने का प्रयास किया गया है। तत्पश्चात् 'गुरु प्रताप सूरज' में वर्णित हिन्दू धर्म, उसके विविध सम्प्रदाय और विश्वासों के निरूपण के साथ साथ विविध साधना मार्गों पर प्रकाश डाला गया है। इस के साथ ही इसी अध्याय में 'गुरु प्रताप सूरज' में वर्णित इस्लाम धर्म पर संक्षिप्त प्रकाश डाला गया है। तत्पश्चात् सिक्ख धर्म के विश्लेषक इस अनुपम ग्रंथ में प्रतिपादित सिक्ख धर्म के

नैतिक मूल्यों पर प्रकाश डाला गया है और निष्कर्षतः इस ग्रंथ को धार्मिक महिमा का उद्घाटन करने का प्रयास किया गया है ।

षष्टम अध्याय में 'गुरु प्रताप सूरज' मे वर्णित दार्शनिक विचारों का भारतीय दर्शन शास्त्र की पृष्ठभूमि एवं परंपरा के परिचय के साथ निरूपण किया गया है। ब्रह्मस्वरूप निरूपण, सृष्टिक्रम का विश्लेषण, जीवात्मा का स्वरूप, मन का स्वरुप, मनमुख गुरमुख, सन्त- स्वरूप और महिमा, मोक्ष प्राप्ति के साधन, मुक्ति के भेदों आदि विविध विषयों का भी इसी अध्याय में विवेचन किया गया है।

सप्तम अध्याय में 'गुरु प्रताप सूरज' में चित्रित सामाजिक जीवन की झांकी प्रस्तुत की क गई है। वर्ण-व्यवस्था, आश्रम व्यवस्था, समाज में नारी, मनोविनोद के साधन, पर्वोत्सिव और त्योहार, लोकाचार और लोक व्यवहार, विश्वास, और मान्यताएं आदि के स्वरूप - विश्लेषण के साथ साथ आर्थिक, राजनैतिक, पारिवारिक तथा सामान्य जीवन के चित्र भी अंकित किए गए हैं ।

अष्टम अध्याय में पूर्वोक्त विषयों का मूल्यांकन करते हुए 'गुरु प्रताप सूरज' को इतिहास और संस्कृति का दर्पण बताया गया है। उसकी ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक देन से परिचित कराते हुए उसका हिन्दी साहित्य में स्थान निश्चित किया गया है। तथा निष्कर्ष रूप में उसे सत्यं, शिवं, सुन्दरम् का पावन तीर्थराज घोषित किया गया है। सम्पूर्ण प्रबन्ध की मुख्य उपलब्धि यह है कि यह ग्रंथ न केवल काव्य पक्ष से समृध्द है अपितु इसका ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक पक्ष भी अपनी अलौकिक सम्पन्नता का परिचायक है। इस में वर्णित इतिहास यदि हमें जागृति का सन्देश देने में समर्थ है तो इसका मानवतावादी सांस्कृतिक चिन्तन विश्व- भ्रातृत्व का द्योतक है ।

विषय निरुपण की पध्दति

अपने विषय को प्रस्तुत करते हुए गुरुमुखी लिपि में प्राप्त 'गुरु प्रताप सूरज' और विषय से सम्बन्धित सामग्री की खोज ने संस्कृत, अंग्रेज़ी, हिन्दी तथा पंजाबी आदि के प्राचीन और नवीन ग्रंथों की अत्यावश्यक सामग्री का जहां भी उपयोग किया गया है। उनके मूल विचारों को पाद टिप्पणियों में संदर्भ सहित

प्रस्तुत किया गया है ।इस बात की ओर हर संभाव चेष्टा की गई है कि जो भी उध्दरण दिए जाये वे नितान्त मूल स्रोत से ही लिए गए हों। पाद-टिप्पणियों की क्रम संख्या प्रत्येक अध्याय में शुरु से आरंभ की गई है ।कुछ दुलर्भ चित्रों को भी स्थान स्थान पर देकर विषय को स्पष्टता प्रदान करने का प्रयास किया गया है। महत्वपूर्ण ग्रंथों तथा लेखकों के नाम संकेत रुप में मूल ग्रंथ में प्रस्तुत किए गए है। अतः आरंभ में ही शब्द संकेत सूची दे दी गई है तथा अन्त में प्रथम परिशिष्ट के रुप में 'गुरु प्रताप सूरज' की ऐतिहासिक काल क्रमणिका आदि प्रस्तुत की गई है । द्वितीय परिशिष्ट में अनुसन्धान मार्ग में सहायक अनेकानेक महत्वपूर्ण ग्रंथों और शोध-पत्रिकाओं की सूची , ग्रंथ, लेखक, प्रकाशक, वर्ष आदि के साथ दे दी गई है। अन्ततः विषयवस्तु को उपस्थित करते हुए यथा संभव आधुनिक शोध की वैज्ञानिक पध्दति का अनुसरण कर इस को अधिकाधिक उपयोगी बनाने का प्रयत्न किया गया है।

कृतज्ञता के दो शब्द

यह शोध प्रबन्ध पूरा हुआ, अनेक कठिनाइयों और परेशानियों के बाद। प्रायः मंगलकार्य विघ्नरहित नहीं होते ।गुरु देव-रुप गुरु साहिबान के चरणों में मेरा शतशः प्रणाम कि यह मांगलिक अनुष्ठान पूरा हुआ है। उनकी अपार कृपा से जीवन संघर्ष की हर घड़ी में उनका वरदहस्त मुझे प्राप्त हुआ ।यह शोध कार्य डा॰ जयभगवान गोयल के सुयोग्य पर्यवेक्षण में सम्पन्न हुआ ।विषय के चयन से लेकर पूर्णाहुति तक पग पग पर मुझे उन से मार्गदर्शन प्राप्त होता रहा है । यह जो कुछ बन पड़ा है उन्हीं की प्रेरणा और आशीष का प्रसाद है। गत सवा पांच वर्षों की शोध साधना में मैं निरन्तर उन से दिशा - निर्देश प्राप्त करता रहा हूँ । मैं उनके प्रति किन शब्दों में हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापन करुं ?मैं उनका ऋणि ही रहना चाहूंगा ।

इन के अतिरिक्त इस शोध साधना में मुझे अनेक विद्वानों के स्नेह और सौजन्य का प्रसाद भी प्राप्त हुआ है। मैं उन सभी का विशेष रुप से आभारी हूं ।जिन्हें मैं शोधावधि के दौरान मिलता रहा हूं। विभिन्न ऐतिहासिक स्थानों के भ्रमण के दौरान सहयोग

देने वाले उन सभी व्यक्तियों का भी मैं कृतज्ञ हूं । मैं उन सभी लेखकों का भी ऋणी हूं जिन की रचनाओं से इस शोध-प्रबन्ध के लिखने में प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से सहायता मिली है ।

अन्त में मेरा विनम्र निवेदन है कि यदि प्रस्तुत शोध प्रबन्ध भाई सन्तोखसिंह के साहित्य के अध्ययन की श्रृंखला में इस 'गुरु-प्रताप-सूरज' के ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन द्वारा एक नई कड़ी की नियोजना कर सका, तो लेखक इसी को अपने परिश्रम का सर्वश्रेष्ठ पुरस्कार समझेगा ।

(आशानन्द वोहरा)

हिन्दी - पंजाबी - विभाग,
राजकीय महाविद्यालय,
गुड़गाव (हरियाणा) ।

संकेतिका

विषय	पृष्ठ
आमुख	3 - 12
पूर्ववर्ती अध्ययन	3 - 4
प्रस्तुत अध्ययन : आवश्यकता और दृष्टिकोण	5
विषय को सीमा	6
विषय को मौलिकता	7
विषय का वस्तुविधान	8
विषय निरूपण को पध्दति	10
कृतज्ञता के दो शब्द	11
प्रथम अध्याय : प्रस्तावना	1 - 30
1- काव्य, इतिहास और संस्कृति	1
2- काव्य से ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक चित्रण का सम्बन्ध एवं स्वरूप	2
(क) काव्य और इतिहास को कार्य-पध्दति और प्रतिपाद्य	2
(ख) इतिहास और कल्पना	5
(ग) काव्य का ऐतिहासिक चित्रण से सम्बन्ध	6
(घ) काव्य का सांस्कृतिक चित्रण से सम्बन्ध	8
3- 'गुरु प्रताप सूरज'-काव्य, इतिहास और संस्कृति का पावन तीर्थ राज ।	10
4- 'गुरु प्रताप सूरज' के रचयिता भाई सन्तोख सिंह का जीवन-वृत, व्यक्तित्व एवं कृतित्व	12
(क) जीवन-वृत	12
(ख) व्यक्तित्व और ख्याकृति	15
(ग) कृतित्व	16

1- नाम कोश	17
2- गुरु नानक प्रकाश	17
3- गरब गंजनो (जपुजो भाष्य)	20
4- बाल्मीकि रामायण (भाषा)	22
5- आत्मपुराण : टीका	27
6- गुरु प्रताप सूरज	28
द्वितीय अध्याय : 'गुरु प्रताप सूरज' का ऐतिहासिक अध्ययन	**31 - 159**
प्रवेश	32
इतिहास : आत्म रक्षा का रुप	32
इतिहास का समान्य और व्यापक अर्थ	33
इतिहास : व्युत्पति लभ्य शाब्दिक अर्थ	34
इतिहास : अर्थ विवेचन और स्वरुप	34
इतिहास और उसका क्षेत्र	35
इतिहास : कला अथव विज्ञान	36
इतिहास-दर्शन : परिभाषा और स्वरुप	37
भारतीय इतिहास परंपरा	39
भारतीय कल्पना में इतिहास का स्वरुप	40
भारत में इतिहास लेखन को परंपरा	41
इतिहास के प्रति भारतीय दृष्टिकोण	43
इतिहास के प्रति पाश्चात्य दृष्टिकोण	44
'गुरु प्रताप सूरज' का इतिहास, दर्शन	47
'गुरु प्रताप सूरज' और इतिहास	48
'गुरु प्रताप सूरज' में इतिहास - तत्व	49
'गुरु प्रताप सूरज' में वर्णित इतिहास-क्रम	50
'गुरु प्रताप सूरज' में वर्णित इतिहास को पृष्ठभूमि	50

इतिहास का तात्विक विवेचन	51
(1) साहित्यिकता या काव्यात्मकता	52
(2) इतिवृत्तात्मकता या वर्णनात्मकता	52
(3) आध्यात्मिकता एवं दार्शनिकता	53
सिक्ख धर्म में इतिहास का स्वरूप एवं स्थान	56
(1) सूत्रात्मक इतिहास	56
(2) साहित्यक इतिहास	57
(3) वैज्ञानिक इतिहास	59
(4) कला चेतना मूलक मूलक इतिहास	60
वैज्ञानिक और कलाचेतनामूलक इतिहास में अन्तर	60
'गुरु प्रताप सूरज' में वर्णित इतिहास का स्वरूप	60
वैज्ञानिकता	61
साहित्यिकता एवं आध्यात्मिकता	62
अलौकिक तत्व स्वरूप और उद्देश्य	63
लोक प्रिय इतिहास	66
उपजीव्य ग्रंथ	67
'गुरु प्रताप सूरज' में वर्णित ऐतिहासिक सामग्री के आधार और सूत्र	67
'गुरु प्रताप सूरज' में युग-चित्रण : ऐतिहासिक परिस्थितियां	68
(1) राजनैतिक परिस्थितियां	68
(2) सामाजिक परिस्थितियां	70
(3) धार्मिक परिस्थितियां	71
(4) आर्थिक परिस्थितियां	72
प्रमुख ऐतिहासिक पात्र और उनका जीवनचरित	73
'गुरु प्रताप सूरज' में वर्णित गुरुओं का चरित	73
नौ गुरु और उनका व्यक्तित्व, पारिवारिक जीवनएवं ऐतिहासिक घटनाएं	75

श्रीगुरु अंगद देव जी 76-84

पूर्व - पीठिका (श्री नानक प्रकाश से संकलित) 76

गुरु अंगद देव जी का प्रारम्भिक परिचय , पारिवारिक जीवन, गुरु पद प्राप्ति, गुरु अंगद के गुरु बनने का महत्व, कार्य, हुमांयू से गुरु अंगद जी से भेंट, देहावसान, गुरु अंगद का चरित्र।

श्री गुरु अमरदास जी 84-98

आरम्भिक जीवन, गंगा स्नान तथा उपवासी जीवन, गुरु-साक्षात्कार की लालसा, गुरु-मिलाप, सेवा, परायणता, गुरु पद प्राप्ति, दातू की ईर्ष्या और शत्रुता, अकबर से सम्पर्क, गुरु अमरदास जी के ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक कार्य और उनका महत्व , गुरु पद प्रदान करना एवं देहावसान, चरित्र, ।

श्री गुरुरामदास जी 99-104

आरम्भिक परिचय, परीक्षा और गुरुत्व प्राप्त करना, गुरुत्व काल एवं निर्माण कार्य, प्रचार कार्य, श्री चन्द मिलने आए, श्री अर्जुन देव जी का लाहौर गमन , गुरु गद्दी-पैतृक उत्तराधिकार तथा पृथीचन्द का असंतोष, एवं विरोध, गुरु जी का गोइंदवाल गमन तथा देहावसान, गुरु जी का चरित्र ।

श्री गुरु अर्जुन देव जी 105-112

पृथी चन्द की कुटिलता, सार्वजनिक निर्माण कार्य, आदि ग्रंथ का सम्पादन, गुरु जी का बलिदान, क्षत्रिय चन्दू शाह की व्यक्तिगत शत्रुता, अपराधी समझना, ऐतिहासिक समीक्षा, गुरु जी का चरित्र ।

श्री गुरु हरिगोबिन्द जी 113-122

आरम्भिक परिचय, ऐतिहासिक जीवन समीक्षा ,

गुरु जो के मुग़लों के साथ युध्द, गुरु जी का
पारिवारिक जोवन, श्री गुरु हरिगोन्दि जो का
सिक्ख धर्म के प्रचार में योगदानसावजनिक निर्माण कार्य,
गुरु गद्दो के लिए चुनाव, देहावसान, श्री गुरु हरिगोबिन्द
जी का व्यक्तित्व और महत्व ।

श्री गुरु हरिराय जी 122-127

आरम्भिक जोवन, रामराय और औरंगजेब, देहावसान,
व्यक्तित्व और चरित्र ।

श्री गुरु हरिकृष्ण जो 125-127

आरभिभक जोवन परिचय, गुरु पद प्राप्ति,
रामराय को विरोधता, रामराय को औरंगजेब
के पास शिकायत, देहावसान ।

श्री गुरु तेगबहादुर जो 128-139

आरभिभक जोवन परिचय, गुरु गद्दो की प्राप्ति,
अमृतसर यात्रा, आनन्दपुर बसाना, तीर्थ यात्रा ,
पूर्व को यात्रा, गुरु जी को वापिसो, औरंगजेब के अत्याचार
कशमोरी पंडितों को पुकार, गुरु तेगबहादुर जी का बलिदान,
गुरु तेगबहादुर जी के बलिदान का महत्व, ।

श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी 139-153

आरभिभक परिचय, गुरु गोबिन्द सिंह को गुरु पद
प्राप्ति, गुरु जो को प्रतिज्ञा, बहुमूल्य भेंट, पहाड़ी राजाओं
से संघर्ष, रणजोत नगाड़ा, पारिवारिक जोवन, गुरु जी के
युध्द, खालसा पंथ की स्थापना, खण्डे की पाहुल, सिंहों का
जन्म, 'खालसा पंथ' के निर्माण की प्रतिक्रिया और पहाड़ो

राजाओं को कुमन्त्रण, बहादुर शाह से गुरुजी
का मिलाप, बन्दा वैरागी,से भेंट, देहावसान ,
गुरु गोबिन्द सिंह का ऐतिहासिक महत्व ।
बन्दा वैरागी का शेष जीवन चरित्र 154-159

समीक्षा, 155
भाई सन्तोख सिंह के दृष्टिकोण 156

तृतीय अध्याय : 'गुरु प्रताप सूरज' में ऐतिहासिक, काल्पनिक एवं
पौराणिक तत्व और उसका स्वरूप 160-234

प्रवेश 161
'गुरु प्रताप सूरज' में ऐतिहासिक ,काल्पनिक एवं
पौराणिक तत्व और उनका स्वरूप, 163
काव्य में पौराणिक तत्व 164
पुराण साहित्य का सांस्कृतिक महत्व 166
पुराण साहित्य : स्वरूप और संख्या 169
पुराण पद की व्युत्पत्ति 169
परिभाषा 171
संख्या 172
विषय, उत्पत्ति 174
पुराण साहित्यः प्रवृतियां और प्रचार 176
रामायण और महाभारत में पौराणिक प्रवृतियों
का विकास 176
मध्यकालीन काव्यों में पौराणिकता 177
'गुरु प्रताप सूरज' की पौराणिक पृष्ठभूमि -
पौराणिक एवं ऐतिहासिक प्रबन्धों की परंपरा 177

पूर्ववर्ती कवियों का प्रभाव 180
'गुरु प्रताप सूरज' में ऐतिहासिक तथ्यों का
मिथ्योकरण, 181
दशम ग्रंथ, महिमा प्रकाश, गुरु विलास एवं नानक
विजय आदि के सन्दर्भ में 'गुरु प्रताप सूरज' समीक्षा। 184
(1) दशम ग्रंथ 184
परिचय, पौराणिकता ।
(2) 'महिमा प्रकाश'-गुरु प्रताप सूरज' काउपजोव्य ग्रंथ 186
परिचय, पौराणिकता।
(3) गुरविलास (सुक्खासिंह) 10वीं पातशाही 189
परिचय, पौराणिकता ।
(4) गुरु नानक विजय (महाकवि सन्त रैण) 193
परिचय, पौराणिकता ।
'गुरु प्रताप सूरज' की पौराणिकता की विशिष्टता 195
'गुरु प्रताप सूरज' में पौराणिक प्रवृतियों का चित्रण 196
(1) पंच लक्षण 196
(2) आस्तिकता 196
(3) अवतारवाद 197
(4) साम्प्रदायिकता 197
(5) समन्वय भावना 197
(6) चरित्र चित्रणगत रूपात्मकता 198
(7) चमत्कारवाद और चरित्र-वैचित्र्य 198
(8) वर्णश्रम विधान 199
(9) कर्मकांड : पूजा विधियां 199
(10) उपदेशात्मकता : धर्म संकट मोमांसा 200
(11) मूल भावना , समोक्षा 200
3-'गुरु प्रताप सूरज' में पौराणिक आख्यान, स्वरूप एवं 201
उद्देश्य ।

(1) मंकणक मुनि का आख्यान 202
(2) मेदिनी की आदि कथा, मधु कैटभ का युद्ध 203
(3) यमुना की आदि कथा । 205
(4) मार्तण्ड (सूर्य) की कथा 207
(5) धुन्धु और उतंक ऋषि की कथा 209
(6) महर्षि गालव के छै सौ घोड़े प्राप्त करने की कथा 211
(7) छै सौ घोड़ों की भेंट तथा राजा ययाति की कथा 213
(8) देवी और गुरु गोबिन्द की पुरातन कथा 214
(9) जरासन्ध की कथा 216
पुराण-ज्ञान-समीक्षा 221
4- अलंकार के रूप में पौराणिकता 223
रीतिकाल में अलंकार योजना के अन्तर्गत पौराणिक पुनरुत्थान और 'गुरु प्रताप सूरज' में उसकी अभिव्यक्ति 223
'गुरु प्रताप सूरज' में आलंकारिक पौराणिकता 226
5- पौराणिक कथाओं के सन्दर्भ में गुरुओं का पौराणिक महत्व 228
6- आलौकिक तत्व स्वरूप और उद्देश्य 230
समीक्षा 233
चतुर्थ अध्याय : 'गुरु प्रताप सूरज' का सांस्कृति अध्ययन । 235-273
प्रवेश 236
पूर्व-पीठिका 236
1- संस्कृति का स्वरूप और क्षेत्र 237
(क) संस्कृति : शाब्दिक विवेचन 240
(ख) संस्कृति - अर्थ - विकास 241
(ग) 'कल्चर' का तात्पर्य 242

(घ) संस्कृति को परिभाषाएं 246

(ङ) प्रमुख भारतीय एवं पाश्चात्य परिभाषाएं 247

निष्कर्ष 253

(च) संस्कृति तथा सभ्यता 253

(छ) संस्कृति का क्षेत्र 254

2- संस्कृति के प्रकार 255

3- भारतीय संस्कृति 257

(क) भारतीय संस्कृति को संक्षिप्त रूपरेखा 258

(ख) भारतीय संस्कृति को विशेषताएं 266

4- काव्य में सांस्कृतिक अभिव्यक्ति 267

5- सांस्कृतिक अध्ययन को लोक प्रियता 268

6- काव्य के सांस्कृतिक अध्ययन का दृष्टिकोण 269

7- हिन्दी में सांस्कृतिक अध्ययन और प्रस्तुत अध्ययन को आवश्यकता 271

8- 'गुरु प्रताप सूरज' का सांस्कृतिक अध्ययन : विविध पक्ष 273

पंचम अध्याय : 'गुरु प्रताप सूरज' में अभिव्यक्त धार्मिक और अध्यात्मिक जीवन 274-373

प्रवेश 275

1- पूर्व पीठिका 277

धर्म का स्वरूप और परिभाषा 277

'धर्म' के विभाग और उसकी उपयोगिता 278

2- भारत की प्राचीन धार्मिक परंपरा और उसका विकास 279

(1) कर्म प्रधान वैदिक धारा 280

(2) ज्ञान प्रधान औपनिषदिक धारा 282

सूत्र ग्रंथ -ब्रह्म -सूत्र अथवा वेदान्त -सूत्र 283
बाल्मीकीय रामायण और व्यासदेव रचित महाभारत 283
गीता 284
(3) भक्ति प्रधान पौराणिक धारा 285
श्री मद्भगवद् 286
पौराणिक देवता 287
3- मध्ययुगीन भारत की धार्मिक और आध्यात्मिक स्थिति 288
4- भारत में इस्लाम धर्म का प्रवेश 290
5- सांस्कृतिक पतन और तत्कालीन विकृत धार्मिक अवस्था 292
6- सांस्कृतिक पुनर्जागरण और मध्यकालीन भक्ति आंदोलन 294
7- तत्कालीन पंजाब का धार्मिक वातावरण और भक्ति आन्दोलन 295
8- सिक्खमत का अभ्युदय और विकास 296
खालसा पंथ 297
9- 'गुरु प्रताप सूरज' में वर्णित धर्म का स्वरूप 298
10- 'गुरु प्रताप सूरज' और हिन्दू धर्म 299
(क) विविध धार्मिक सम्प्रदाय 299
(1) देवी पूजकों का सम्प्रदाय (शक्ति उपासना) 300
(2) वैष्णव मत 301
(3) शैव मत 301
(4) योगी और सिध्द सम्प्रदाय 302
(ख) हिन्दुओं के धार्मिक विश्वासों का निरूपण 304
(1) वैदिक धर्म निष्ठा 304
(2) ईश्वरवाद 305
(3) अवतार वाद 305
(4) मूर्तिपूजा 306

(5) भाग्यवाद 307
(6) कर्मवाद (संचित, प्रारब्ध और क्रियमाण) 308
(7) पुनर्जन्मवाद 311
(8) तीर्थ सेवन 313
गुरु साहिबान की तीर्थ यात्रा 314
(ग) अध्यात्म चिन्तन 318
(1) पारलौकिक भावना 318
(2) साधना मार्ग 320
(1) कर्म मार्ग, कर्मकांड, अहंकार युक्त कर्म, त्रैगुणी त्रिविधकर्म 323
2- ज्ञान मार्ग 323
3- योग मार्ग 325
4- भक्ति मार्ग, भक्ति का स्वरूप, भक्ति के प्रकार, वैधीऔर गौणी, रागात्मिकता (अहेतुकी या प्रेमा भक्ति), भक्ति के साधन, पराभक्ति , गुरु प्रताप सूरज' में भक्ति का स्वरूप, नामस्मरण और उसका प्रतिपादन, समन्वयात्मक दृष्टि कोण 327-335
11- 'गुरु प्रताप सूरज' और इस्लाम धर्म 335
12- 'गुरु प्रताप सूरज' में वर्णित बाह्याचार और आडंबर का विरोध 339
13- 'गुरु प्रताप सूरज' और सिक्ख धर्म , सिक्ख धर्म से सम्बन्धित सम्प्रदाय , उदासी सम्प्रदाय 343-345
14- 'गुरु साहिबान द्वारा धर्म भावना से उत्प्रेरित जीवन नैतिक मूल्यों की स्थापना ' 346
(1) सद्गुरु का महत्व 347
(2) नाम साधना : सत्यनाम स्मरण और कीर्तन 353
(3) सत्संगति 357
(4) प्रभु भाणे का विश्वास 362
(5) परोपकार 363

(6) गुरु वाणी पाठ 364

(7) संसार की नश्वरता 369

(8) विशिष्ट नैतिक मूल्य 371

15- निष्कर्ष 373

षष्टम अध्याय : 'गुरु प्रताप सूरज' में वर्णित दार्शनिक विचार2 374-451

प्रवेश 375

1- पारम्परिक दार्शनिक विचारधारा 376

2- प्राचीन भारतीय दर्शन का संक्षिप्त परिचय 378

(1) वैशेषिक दर्शन 379

(2) न्याय दर्शन 380

(3) सांख्य दर्शन 381

(4) योग दर्शन 383

(5) मीमांसा दर्शन 384

(6) वेदान्त दर्शन 386

3- 'गुरु प्रताप सूरज' में अभिव्यक्त दार्शनिक दृष्टिकोण 388

4- प्रमुख विषय 390

(1) ब्रह्म स्वरूप - विवेचन, ब्रह्म स्वरूप निरूपण की परंपरा उपनिषद् में ब्रह्म, श्रीमद् भागवद् गीता में ब्रह्म, भारतीय षड् दर्शन में ब्रह्म, आदि ग्रंथ में ब्रह्म-निरूपण, दशम ग्रंथ में ब्रह्म निरूपण, गुरु प्रताप सूरज' में ब्रह्म निरूपण स्वरूप लक्षण, तटस्थ लक्षण, निर्गुण सगुण रूप ब्रह्म, निर्गुण-सगुण निरूपण की विशेषता । 390-403

(2) सृष्टि क्रम का विश्लेषण 404

पारम्परिक स्वरूप, आदि ग्रंथ में सृष्टि रचना का स्वरूप, (1) ओंकार द्वार सृष्टि की रचना, हुकम द्वारा सृष्टि रचना (3) अउमै द्वारा सृष्टि रचना, दशर्म ग्रंथ में सृष्टि रचना, गुरु प्रताप सूरज' में सृष्टि रचना का स्वरुप,

(1) परिणामवाद, (2)विर्वतवाद, जगत, माया का स्वरूप गुरु प्रताप सूरज में माया का स्वरूप, अहंकार, (1)विद्या का अहंकार, (2)जाति का अहंकार, (3) वंश का अहंकार, (4)धन सम्पति का अहंकार, (5)तप का अहंकार, (6)शक्ति का अहंकारअहंकार के दुष्परिणाम । 421

3- जोवात्मा का स्वरूप 421-432

जोवात्मा निरूपण को परंपरा, आदि ग्रंथ में जोवात्मा का स्वरूप, दशम ग्रंथ में जोवात्मा का स्वरूप, गुरु प्रताप सूरज में जोवात्मा का स्वरूप, आत्मा को अणुता एवं परिच्छिन्नता, त्रिविध शरोर और पंचकोश, चतुर्विध अवस्थाएं, जोव को विभिन्न योनियां, मनुष्य और उसके जोवन के चार अवस्थाएं ।

मन का स्वरूप, पारम्परिक स्वरूप, 'गुरु प्रताप सूरज' में वर्णित मन का स्वरूप 432-34

मनुष्य के द्विविध रूप, मनमुख, गुरमुख, 435 -39

'सन्त का स्वरूप और महिमा 439

4- मोक्ष और उसको प्राप्ति के साधन 442

पारम्परिक स्वरूप ,आदि ग्रंथ में और दशम ग्रंथ में मुक्ति का स्वरूप, गुरु प्रताप सूरज' में मोक्ष, मोक्ष प्राप्ति के चार मार्ग, मुक्ति के द्विविध रूप, जीवन्मुक्ति, 450

निश्कर्ष : दार्शनिक समन्वय 451

सप्तम अध्याय : 'गुरु प्रताप सूरज' में चित्रित सामाजिक जोवन 452-576

प्रवेश 453

1- सामाजिक व्यवस्था, वर्णव्यवस्था , गुरु प्रताप सूरज में वर्णव्यवस्था सम्बन्धी उल्लेख 454-55

(क) 'गुरु प्रताप सूरज' में ब्राह्मण 456

(ख) 'गुरु प्रतापसूरज' में क्षत्रिय 457

(ग) 'गुरु प्रताप सूरज' में वैश्य वर्ग 458
(घ) 'गुरु प्रताप सूरज' में शूद्र 459
(ङ) 'गुरु प्रताप सूरज 'में इतर जातियां 460
' गुरु प्रताप सूरज ' में वर्णित सामाजिक जीवन की विकृतियां और वर्ण व्यवस्था का महत्व 461
2- आश्रम व्यवस्था 462
'गुरु प्रताप सूरज' में आश्रम व्यवस्था 462
(क) गृहस्थाश्रम का शि विशेष वर्णन 464
(ग) गृहस्थाश्रम के कर्तव्य, अतिथि सत्कार, धार्मिक क्रियाएं 465
3- समाज में नारी का स्थान : और गुरु प्रताप सूरज' में नारी चित्रण 467 -70
(क) नारी माता पिता के घर, (ख) नारी ससुराल में , (ग) नारी के अधिकार और कर्तव्य, नारी के अन्य रूप, (घ) नारी पुरुष के सम्बन्ध, -विवाह पध्दतियां
4. मनोविनोद अथवा मनोरंजन के साधन 477-82
'गुरु प्रताप सूरज' में मनोविनोद और मनोरंजन के साधन, (क) आंख मिचौनी तथा अन्य खेल, (ख) चौपड़ या चौसर, (ग) द्यूत क्रीड़ा, (घ) बाज़ उड़ाना और पकड़ना, (ङ) चौगान का खेल, (च) बाजीगर का खेल (छ) नट मदारी का खेल, मनोरंजन के अन्य साधन 482-484
(क) जल-विहार, (ग) बाग की सैर, (घ) मल्ल युध्द, (ख) शि शिकार खेलना , निष्कर्ष
5- सामाजिक पर्वोत्सव और त्योहार 484
'गुरु प्रताप सूरज' में सामाजिक पर्वोत्सव और त्योहार, 485
(1) पर्वोत्सव (क) वैसाख, (ख) चातुर्मास, (ग) संक्रान्ति, एकादशी और पूर्णमासी, अमावश । 485-86
(2) त्योहार, (क) नवरात्रे, (ख) दशहरा या विजय दशमी, (ग) दीपावली, (घ) कृष्ण जन्माष्टमी, (ङ) होली , निकर्ष 491
6- सामाजिक लोकाचार और लोक व्यवहार 491

(क) 'गुरु प्रताप सूरज' में चित्रित सामाजिक आचार 492 -95

(1) अभिवादन के विविध रूप, (2)उपहार, (3)विनम्रता, पूर्ण व्यवहार, (4)उपालम्भ तथा बोली मारना , (5) दुहाई देना।

(ख) विश्वास और मान्यताएं 495

(1) 'गुरु प्रताप सूरज' में चित्रित विश्वास और मान्यताएं, 496

1-पौराणिक विशवास, 2-लोक विश्वास, 3-कवि प्रसिध्दियां

1- पौराणिक विश्वास 496

2- लोक विश्वास और मान्यताएं (क)परंपरागत मान्यताएं, (ख) उपचार सम्बन्धी विश्वास, (ग) शुभ और अशुभ शकुन(घ) अन्य विशवास ।

(क) परंपरा गत विश्वास :- (1) ज्योतिष के प्रति आस्था, [redacted] 497

भूत प्रेत आदि अतिमानोवीय शक्तियों पर विश्वास, 498

(ख) उपचार सम्बन्धी विश्वासः- (1)नजर या कुदृष्टि पर विश्वास, (2)जन्त्र-मन्त्र, तन्त्र और टोना टोटका आदि पर विश्वास 500

(ग)शकुन (शुभ और अशुभ):- , गुरु प्रताप सूरज' में शकुन विचार 503

अशुकन, 504

1- स्वप्न सम्बन्धी विश्वास, 2- शपथ पर विश्वास, 3- शाप या कोसने मे विश्वास, 4- आशीर्वाद में विश्वास । 504-508

कवि प्रसिध्दियां का वर्णन :-(1) पशुओं से सम्बन्धित कवि प्रसिध्दियां, (2)पक्षियों से सम्बन्धित कवि प्रसिध्दियां, (3) कीट पतंग सम्बन्धी प्रसिध्दियां, (4)पुरुष सम्बन्धी कवि प्रसिध्दियां

निष्कर्ष । 508-11

7- आर्थिक जीवन चित्रण 512

'गुरु प्रताप सूरज' में आर्थिक जीवन चित्रण 512

उपजीविका के विविध साधन, विभिन्न वर्ग, विभिन्न रूप 513

2- व्यापारिक स्थान, रीति और वस्तुएं 514
3- विविध व्यवसाय और व्यवसायी, (1) बुद्धि जीवी वर्ग, (2) श्रमजीवीवर्ग (3) मनोरंजन कारी वर्ग (4) प्रशस्ति गायक वर्ग, (5) शिल्पी कलाकार । 515-517
4- बाह्य व्यापार, [illegible] व्यावसायिक कर्म, व्यापार के मार्ग और आयात निर्यात की वस्तुएं 518
5- नापतौल और मुद्रा 518
6- विविध उद्योग-शिल्प और शिल्पी 519
(1) कपड़ा, (2) जड़ियों और सुनारों का काम, (3) बर्तन और धातु शिल्प, (4) नक्काशी और पच्चीकारी
निष्कर्ष 520
8- राजनैतिक जीवन चित्रण 520
1- राजनैतिक संस्थान का संगठन और स्वरुप 522
2- शासन व्यवस्था 523
3- राजस्व 524
4- सेना और युद्ध चित्रण 526
5- राजनीति सम्बन्धी अन्य बाते 529
निष्कर्ष 530
9- पारिवारिक जीवन चित्रण 531
'गुरु प्रताप सूरज में पारिवारिक जीवन चित्रण 531 -38
(1) परिवार का स्वरूप, संगठन और विभिन्न संबंधी और संदस्य, (क) दादा और दादी, (ख) नाना और नानी, (ग) माता पिता, (घ) पिता पुत्र, (ङ) माता-पुत्र, (च) भाई भाई, (छ) जेठानी और देवरानी, (ज) पति-पत्नी, (झ) पुत्री जमाता, (ट) सपत्नी, (ठ) अन्य सम्बन्धी ।
(2) पारिवारिक जीवन-चर्या 538

(क) पुरुषों के कार्य, (ख) स्त्रियों के कार्य, (ग) परिवार के मुखिआ और अन्स सदस्यों का परस्पर सम्बन्ध 539 - 541

4- अनुष्ठान और संस्कार 541 -548

(1) जन्मोत्सव, (2) मुंडन, (3) यज्ञोपवीत संस्कार, (4) विवाह संस्कार (5) मृत्यु संस्कार ।

5- विभिन्न परिवारों का सामाजिक संरचना में महत्व 548

निष्कर्ष 549

10- 'गुरु प्रताप सूरज' में सामान्य जीवन चित्रण 549

(1) मानव जीवनकी प्रमुख आवश्यकताएं 550 -560

(क) निवास स्थान एवं अन्य विचरणके स्थान, (ख) भोजन तथा खान पान, (ग) वेश-विन्यास (परिधान)

(2) श्रृंगार प्रसाधन तथा आभूषण 560

(3) धातु और खनिज पदार्थ 563

(4) वाहन (थल के वाहन, जल के वाहन तथा अकाश के वाहन । 564

(5) व्यवहार की सामान्य वस्तुएं 565 -566

(1) दैनिक उपयोग में आने वाली वस्तुएं (2) पात्र (3) बैठने और सोने के उपकरण (4) लिखने केउपकरण (5) (रंग)

(6) कला, शिल्प और विज्ञान 566-573

(1) वस्तु कला, (2) मूर्तिकला, (3) चित्रकला, (4) संगीत कला (5) नृत्य कला, नाट्य कला, (6) काव्यकला, कला के प्रति दृष्टिकोण, शिल्प, विज्ञान

(7) शिक्षा 574

निष्कर्ष 575

प्रस्तुत अध्ययन के दृष्टिकोण से गुरु प्रताप सूरज' 576

अष्टम अध्याय : उपसंहार

'गुरु प्रताप सूरज' - इतिहास और भारतीय संस्कृति का दर्पण-मूल्यांकन 577-595

	प्रवेश	578
1-	प्राचीन भारतीय वाङ्मय का 'गुरु प्रताप सूरज' में उल्लेख-प्रतिबिम्ब और उसका प्रभाव	579
2-	'गुरु प्रताप सूरज' की भारतीय काव्य परंपरा को देन	581
3-	ऐतिहासिक देन – तत्कालीन इतिहास का विश्वकोश	583
4-	सांस्कृतिक देन	584
(1)	भावात्मक एकता में योगदान	585
(2)	भारतीय भाषाए एकता में योगदान	586
(3)	राष्ट्र-निर्माण और सांस्कृतिक उत्थान में योग	587
	(क) हिन्दू सिक्ख एकता	587
	(ख) भाईचारे और एकता के सिध्दांतों का समर्थन	588
	(ग) आदर्श यथार्थ का चित्रण	589
(4)	गुरु प्रताप सूरज का सांस्कृतिक सन्देश	589
	(क) अमरता	590
	(ख) उदारता	590
	(ग) आस्तिकता	591
	(घ) धार्मिक सहिष्णुता	591
	(ङ) समन्वय भावना	591
	(च) सर्वभूतहिताकांक्षा	592
5-	निष्कर्ष	592
(1)	सांस्कृतिक पर्वों की चिरंतनता	593
(2)	सत्यं, शिवं, सुन्दरम् का पावन तीर्थराज	593
6-	हिन्दी साहित्य में इसका स्थान	594-95

परिशिष्ट

1-	'गुरु प्रताप सूरज' की ऐतिहासिक काल क्रमणिका	596-599
1-	प्रमुख सहायक ग्रन्थ	600-610
	(हिन्दी, संस्कृत, पंजाबी, अंग्रेजी तथा उर्दू)	

चित्र-सूची

1-	'गुरु प्रताप सूरज' के रचयिता भाई सन्तोख सिंह	12
2-	कवि का कैथल स्थित निवास भवन	14
3-	कवि के आश्रय दाता कैथल नरेश भाई उदयसिंह	20
4-	दश गुरु साहिबान	73
5-	गुरु अर्जुनदेव को दिए गए कष्ट	108
6-	'गुरु लाधो रे'- भाई मखनसिंह	128
7-	मतिदास का बलिदान	136
8-	मानवतावादी भाई कन्हैया	149
9-	गुरुद्वारा हजूरसाहिब	152
10-	पंजाब के प्रमुख गुरुधामों का मानचित्र	317
11-	हरिमन्दिर अमृतसर	567
12-	भाई सन्तोख सिंह युगीन चित्रकला का नमूना	571
संकेत अक्षर		(32-33)

कुल पृष्ठ संख्या : आमुख , संकेतिका, संकेत अक्षर : (1-33)

: शोध प्रबन्ध और उसके परिशिष्ट : 1-610

कुलजोड़ 643

संकेताक्षर

अ • या अध्य •	अध्याय
अथर्व	अथर्व वेद संहिता
आ • रा •	आध्यात्म रामायण
ऋ •	ऋग्वेद संहिता
ऐ • उ •	ऐतरेयोपनिषद
क • उ •	कठोपनिषद्
क • उ • पर • शा • भा •	कठोपनिषद् पर शांकर भाष्य
गु • प्र • सू • ग्र • प्र •	गुरु प्रताप सूरज ग्रंथावली प्रस्तावना
छा • उ • छा	छान्दोग्योपनिषद्
त • वै •	तत्व वैशारदी
तै • उ •	तैतिरीयोपनिषद्
ना • प्र •	नानक प्रकाश
ना • पु •	नारद पुराण
ना • भ • सू •	नारद भक्ति सूत्र
पु • पू • या पूर्व •	पूर्वार्द्ध
पृ •	पृष्ठ
वृ • उ •	वृध्दारण्यकोपनिषद
ब्र • वै • पु •	ब्रह्म वैवर्त पुराण
ब्र • सू •	ब्रह्म सूत्र
भवि • पु •	भविष्य पुराण
भा • पु •	भागवत पुराण
मन •	मनुस्मृति
मा • उ •	माण्डुक्योपनिषद्
यो • वा •	योग वासिष्ठ
रा •	रास
रि •	रितु

यो • सू •	योग सूत्र
लि • पु •	लिंग पुराण
वा • रा •	बाल्मीकि रामायण
वि • चू •	विवेक चूड़ामणि
वि • पु •	विष्णु पुराण
वे • प •	वेदान्त परिभाषा
वे • सा •	वेदान्त सार
सां • का •	सांख्य कारिका
सां • का • पर गौड़	सांख्य कारिका पर गौडपाद भाष्य
सि • बि •	सिध्दान्त बिन्दु

प्रथम अध्याय

प्रस्तावना

प्रथम अध्याय - प्रस्तावना

प्रवेश

गुरु भक्त-कुल-चक्र-चूड़ामणि महाकवि सन्तोख सिंह विरचित 'श्री गुरु-प्रताप-सूरज' ग्रंथ गुरु-इतिहास, संस्कृति एवं काव्य का पावन तीर्थराज है। इस में प्राचीन भारतीय संस्कृति के संरक्षक गुरुओं की कीर्ति का अनुपम गान हुआ है। जिन्होंने अपनी जीवन-गरिमा, तेजस्विता और प्रतिभा से न केवल अपने युग को ही प्रभावित किया अपितु अपनी जीवन-ज्योति के आलोक से आज भी इस देश को प्रेरणा एवं गति प्रदान कर रहे हैं। भारतीय चिन्तन धारा की ज्ञान-ज्योति इस महाग्रंथ में नवीन रूप से ज्योतित हुई है। इस काव्य-कृति में उनके कवि, इतिहासकार एवं भारतीय संस्कृति के आख्याता रूप का ही प्रमुख रूप से उद्घाटन हुआ है। उन्होंने अपनी काव्य साधना की वस्तु का एक वृहदांश या प्रमुख उपादान गुरु-इतिहास को ही बनाया है। उन्होंने अपना सन्देश काव्य-मय इतिहास-पुराण के माध्यम से ही दिया है।

1 - काव्य, इतिहास और संस्कृति

मानव ज्ञान की विविध शाखाओं में यद्यपि काव्य का स्थान अत्यन्त उच्च है तथापि इतिहास-पुराण एवं संस्कृति का स्थान भी कम गौरव पूर्ण नहीं है। इस महिमा-शाली काव्य का सृजन ही इतिहास-पुराण को उपादान रूप में ग्रहण करने से ही संभव हुआ है। इतिहास के अन्तर्गत निहित सामग्री काव्य के विषय अथवा वस्तु का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थायी स्रोत है। प्राचीन काव्यशास्त्रियों[1] ने भी इतिहास को काव्य की सामग्री के रूप में ग्रहण करने पर विशेष बल दिया है। काव्य का सम्बन्ध कथानक आदि के लिए घटनावलि और पात्रों को लेने तक ही सीमित नहीं रहता प्रत्युत उसमें इस के निमित अतीतकालीन सम्पत्ति रूप संस्कृति का अन्तर्भाव भी हो जाता है। वास्तव

1- (क) इतिहासकथोद्भूतमितरद्वा सदाश्रयम् ।- दण्डी : काव्यादर्श 1·15

(ख) ध्वन्यालोक 3·66-67

में काव्य, इतिहास और संस्कृति तीनों परस्पर घनिष्टतम रूप में एक दूसरे के साथ संबन्धित हैं। इतिहास अपने एकाकी रूप में केवल घटनाओं का एक स्थूल ढांचा मात्र है। उस की वास्तविक अन्तश्चेतना तो संस्कृति है। इतिहास बाह्य स्थूल घटनाओं का एक प्रवाहमात्र है जिस में संस्कृति अमृतरस-प्रवाहिनी भगीरथी ही प्रवाहित होती है। सांस्कृतिक उत्कर्षों की द्योतक काव्य-कृतियां इतिहास के उपादान से ही निर्मित होती हैं अथवा हम यों कह सकते हैं कि इतिहास इनका उपादान है। इतिहास की भूमि पर ही काव्य का प्रासाद निर्मित होता है। संस्कृति से शून्य इतिहास अथवा काव्य का हमारे जातीय जीवन से कोई घनिष्ट सम्बन्ध नहीं। यदि इतिहास अथवा काव्य हमारे जातीय जीवन की मार्मिक कहानी को प्रस्तुत करता है तो वह हमारी जाति का सांस्कृतिक उद्योग है। ऐसा सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक काव्य हमारा योगक्षेम करते हुए हमारे जीवन का मार्ग-दर्शन करता है। इस प्रकार से इतिहास, संस्कृति और काव्य तीनों परस्पर एक दूसरे से गुंथे हुए हैं। तीनों का सुन्दरतम संगम 'गुरु प्रताप सूरज' ग्रंथ की एक महनीय विशेषता है। गुरु इतिहास के माध्यम से महाकवि सन्तोख सिंह जी ने जिन सांस्कृतिक तथ्यों का काव्यात्मक अवदान प्रस्तुत किया है, उन्हीं के मर्मान्वेषण को प्रस्तुत करना प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का प्रयोजन है।

2- काव्य से ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक चित्रण का सम्बन्ध एवं स्वरूप

कवि इतिहास के सहारे ही रसात्मक-काव्य-कर्म करना श्रेयस्कर समझता है। हमारा वर्तमान अतीत की नींव पर ही तो खड़ा है। कवि मानव जीवन का सशक्त व्याख्याता होने के कारण जीवन को समग्रता में लेकर जीवन-तत्व की व्याख्या करे। इस कार्य के लिए इतिहास का ग्रहण उसके लिए अनिवार्य हो जाता है। जीवन को विकास-पथ पर ले जाने का कार्य संस्कृति करती है। जीवन की समस्त मार्मिक बातें उस में सहज ही प्रतिध्वनित हो उठती है ।

(क) काव्य और इतिहास की कार्य-पध्दति और प्रतिपाद्य

काव्य और इतिहास दोनों सत्य की शोध में निरत है। सत्य केवल प्रकृति का यथातथ्य चित्र ही नहीं है, दार्शनिक, वैज्ञानिक और इतिहास का सत्य मुख्यतः वस्तुनिष्ठ तथ्य(Factual truth) तक ही सीमित रहता है, जबकि कवि का सत्यं, शिवं, सुन्दरं

को समष्टि है[2] । सत्य के प्रति यही दृष्टि भेद काव्य और इतिहास की कार्य-पध्दति के अन्तर को शासित व रूपायित करता है । इतिहास की कार्य-पध्दति है— वैज्ञानिक प्रक्रिया के अनुसार अधिकाधिक प्रमाण संग्रह द्वारा अतीत घटनाओं का अध्ययन करके निष्पक्ष भाव से एक तथ्य स्थिर करना । इतिहासकार और कवि दोनों ही यदि इतिहास के किसी एक युग को लें तो भी प्रक्रिया भेद व लक्ष्य भेद से सामग्री के उपयोग के स्वरूप में अन्तर पड़ जाता है। इतिहासकार घटित स्थूल घटना पर अधिक बल देता है जबकि कवि घटना की संभवनीयता पर[3] । इतिहास व्यक्ति या घटना को लेता है, जबकि कवि उसमें से प्रकट होने वाली सार्वभौम चेतना को[4] । इतिहासकार वैज्ञानिक निमर्मता के साथ अपने तथ्योद्घाटन में प्रवृत रहता है, जब कि कवि मानवीय सहानुभूति को साथ लेकर ही अपना कार्य करता है[5]। अभिप्राय यह कि इतिहास का सत्य वस्तुपरक होता है जबकि कवि का

2- "But the truth which is required in literature is 'essential' truth... the truth which we expect from the philosopher, the historian, or the biographer, is the actual fact, the "whole truth and nothing but the truth" of a witness giving evidence in a court of law ...... perfect, accuracy in dates, figures, and in the sequence of events or the marshalling of facts, absolute impartiality of opinion where there is a conflict of evidence."

---W.B.Worsfold, Judgment in Literature P.65

3- "..... is to tell not what has happended but what could happen, and what is possible either from its probability or from its necessary connection with what has gone before."

---Basil Worsfold: Principles of Criticism P.38

4- (i)" But poetry relates what may happen according to the law of probability or necessity."

---L.Abercrombie: Principles of Criticism, p.111

(ii)"..... for poetry deals rather with the universal, History with the particular."

---Basil Worsfold: Principles of Criticism, p.39

5- "..... a note of personal sympathy is tolerated or even welcomed in the (literary) biographer which could be out of place in the historian."

---Basil Worsfold: Judgment in Literature, p.90

सत्य भावपरक ।कवि अविश्वसनीय संभावना की अपेक्षा विश्वसनीय असंभावना को तरजीह देकर चलता है।[6] इन मूल दृष्टि-बिन्दुओं के अन्तर के आधार पर कवि और इतिहासकार इन दोनों के द्वारा इतिहास ग्रहण के ढंग या पध्दति के अन्तर को स्पष्टतया समझा जा सकता है ।

इतिहासकार स्थूलतः केवल अतीत से सम्बन्ध रखता दिखाई देता है किन्तु यह केवल निमित्त मात्र है। वास्तव में तो वह सत्य का पुजारी बनकर, सत्य के अन्वेषण व परिपोषण की भावना से यथार्थ की कठोर भूमि पर खड़ा होकर वर्तमान के दृष्टि-कोण से अतीत घटनाओं, समस्याओं व संस्थाओं, विधियों घटना-क्रमों व प्रगतियों का निष्पक्ष शुध्द वस्तुनिष्ठ अध्ययन कर के वर्तमान को संवारता है और अप्रत्यक्ष रुप से भविष्य-निर्माण में योगदान करता है । यही इतिहासकार की त्रिकालज्ञता है ।

कवि इतिहास की वही सामग्री लेकर अपने विशिष्ट मनोविधान, साहित्य की पध्दति और लक्ष्य(रस)के कारण जो सृष्टि करता है वह भिन्न प्रकार की होती है वह स्थूल ऐतिहासिक रेखा जाल में व्यक्तिगत भावना, मानवीय सहानुभूति व रमणीय कल्पना –इन सब के रस-रंग भर कर उसे स्वानुभूत सत्य- सा सजीव व चटकीला कर देता है । अतीत की उपादान-सामग्री, वर्तमान की व्याख्या व भविष्य का सन्देश – इन तीनों को वह एक सूत्र में गूंथ देता है[7] और इस कार्य के द्वारा वह मानो अपनी त्रिकालज्ञता ही प्रमाणित करता है। उसकी इस त्रिकालज्ञता का एक गहरा आधार और भी है ।वह अपनी सामग्री को मानव-भाव के माध्यम से प्रस्तुत करता है।प्रस्तुतीकरण के इस रुप से वह सामग्री एक, अखंड व सरस सत्य का रुप ग्रहण कर लेती है।इतिहासकार शिव और सुन्दर को प्रस्थान-बिन्दु मान कर नहीं चलते ।उनका प्रयत्न कल्याणकारी और सुन्दर भी प्रमाणित हो जाय तो दुहरी सफलता है। इतिहासकार व कवि – दोनों मनुष्य जाति को सत्य मार्ग पर लगाते हैं । दोनों सत्य के पुजारी होते हैं ।और तीनों कालों तक उनका

6- "....according to the method of poetry an impossibility which is credible is preferable to a possibility which is incredible."
—— Basil Worsfold: Judgment in Literature p.39

7- डा॰ विश्वेश्वरप्रसाद : अनुसन्धान का स्वरुप, नामक पुस्तक में संकलित लेख 'ऐतिहासिक खोज की रुपरेखा' ।

सत्य व्याप्त हो जाता है।[8] दोनों अपनी सीमा में व अपने अपने ढंग से विश्वकर्म के सिध्दांत का संकेत करते हैं।[9] दोनों की सृष्टि में तर्क और बुध्दि का प्रत्यक्ष विनियोग होता है ।

विद्वानों ने काव्य और इतिहास के बीच उनकी प्रकृति, कार्य-प्रणाली और प्रभाव क्षमता को ध्यान में रख कर 'चरम मूल्यों' की दृष्टि से उनकी उच्चावचता को स्पष्ट करने की भी ~~प्रयत्न~~ प्रयत्न किया है। अरस्तू ने काव्य को इतिहास की अपेक्षा अधिक दार्शनिक और उदात्त बताया है।[10] इसी प्रकार वर्सफोल्ड ने भी काव्य के सत्य को और लक्ष्य को इतिहास के सत्य व लक्ष्य से क्रमशः अधिक व्यापक और उच्च बताया है क्योंकि काव्य समष्टिगत है जबकि इतिहास व्यष्टिगत या विशेषों से सम्बन्धित[11] ।

(ख) इतिहास और कल्पना

इतिहास अतीत में घटित घटनाओं का एक यथातथ्य लेखा है। किन्तु जहां सामग्री का अभाव होता है वहां उस लेखे को पूरा करने में कल्पना का प्रयोग भी होता है। यह कल्पना दो प्रकार की हो सकती है –(1)तथ्य प्रेरित, अनुमानाश्रित, तर्कानुमोदित स्मृत्याभास कल्पना और(2) मुक्त अथवा शुध्द कल्पना ।प्रथम प्रकार की कल्पना का प्रयोग शुध्द वैज्ञानिक प्रक्रिया का अनुसरण करने वाले इतिहास के क्षेत्र में भी होता है । न्याय शास्त्र में अनुमान प्रमाण भी सत्य प्राप्ति का एक महत्वपूर्ण आधार माना गया है । इतिहास के क्षेत्र में प्रयुक्त कल्पना वहीं तक कार्य कर सकती है जहां तक तथ्यनिष्ठ रह कर तर्क बल से घटनाओं के कालक्रम व स्वरूप के सम्बन्ध में अनुमान कर सके ।स्पष्ट है कि यह कल्पना स्वतन्त्र होकर भी स्वतन्त्र नहीं । किन्तु इतिहास एक ऐसी अन्य कल्पना के लिए भी विस्तृत आकाश

8- डा॰ विश्वेश्वरप्रसाद : अनुसन्धान का स्वरूप नामक पुस्तक में संकलित लेख। 'ऐतिहासिक खोज की रूपरेखा' ।

9- वही ।

10- (i)"Poetry is more philosopical and a nobler thing than History." —— quoted from L.Abercromblie's <u>Principles of Literary Criticism</u> p.110

(ii)डा॰ नगेन्द्र : अरस्तु का काव्य शास्त्र, भूमिका, पृ॰ 7, 30, 45

11- "And, therefore poetry has a wider truth and a higher aim than History; for poetry deals rather with the universal History...." W.B.Worsfold, <u>Principles of Lit.Criticism</u> p.38

खोलता है जिसे हम अपेक्षाकृत मुक्त और स्वच्छन्द कह सकते हैं ।इस कल्पना को हम उस कल्पना से भी सहज ही पृथक कर सकते हैं ।जो नितान्त मुक्त होती है, जो आत्मा की अपनी निजी क्रिया होती है, और जो अपनी सत्ता के लिए प्रत्यक्ष रूप से भौतिक जगत के किसी विशेष वस्तु-व्यापार पर आश्रित नहीं होती ।क्रोचे ने ऐसी कल्पना को ही काव्य का मुख्य क्षेत्र माना है ।

इस प्रकार हम देखते है कि इतिहास और कल्पना दोनों परस्पर न्यूनाधिक रूप से सम्बन्धित हैं । इतिहास कवि को कल्पना के लिए पर्याप्त सामग्री प्रदान करता है। महाकवि सन्तोख सिंह ने इतिहास को आधार या निमित्त बना कर ऐसे काव्य की सृष्टि की है जिस में कल्पना का महत्वपूर्ण स्थान है ।

(ग) काव्य का ऐतिहासिक चित्रण से सम्बन्ध

काव्य और इतिहास का परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध है । सम्पूर्ण मानव ज्ञान के क्षेत्र में इतिहास का महत्व पूर्व और पश्चिम[12] – दोनों में ही प्राचीनकाल से अत्यन्त ऊँचा समझा जाता रहा है। वृहदारण्यक उपनिषद् में कहा गया है कि इतिहास महद्भूत का निश्वास[13] है। महाकाव्यों के निर्माण में 'कथावस्तु' के विविध स्रोतों में से इतिहास-पुराण को बहुत ऊँचा स्थान प्राप्त है। राजशेखर इतिहास को पुराण का ही एक भेद बताते[14] है । काव्य शास्त्र के आचार्यों ने महाकाव्य की रचना में ऐतिहासिक वृत के ग्रहण का बारम्बार उल्लेख किया है। किन्तु उन की दृष्टि में इतिहास की यथातथ्य उदहरणी देना ही काव्य नहीं है, यह भी स्पष्ट कहा गया[15] है। इतिहास का ग्रहण रसाभिव्यक्ति की दृष्टि से ही होना चाहिए ।इसी लिए विश्वनाथ कविराज का मत है कि अनुचित या रस विरुध्द वस्तु (ऐतिहासिक) छोड़ देनी अथवा बदल देनी चाहिए[16]। महाकाव्य में वे ऐतिहासिक या लोक प्रसिध्द कथा को रखने का विधान करते[17] हैं । दंडी ने भी महाकाव्य में इतिहास को आधार

12- डा॰ नगेन्द्र : अरस्तू का काव्य शास्त्र, भूमिका ।

13- वृहादारण्यक उपनिषद् , 2-4·10

14- काव्य मीमांसा (पं॰ गोपालदत्त सारस्वत का हिन्दी अनुवाद), पृ॰ 8

15- 'न हि इतिवृत्त मात्र निर्वाहिण आत्मपदलाभः' ।

16- यत्स्यादनुचितं वस्तु नायकस्य रसस्य वा ।
विरुध्दं तत्परित्याज्यमन्यथा वा प्रकल्पयेत् ।। – साहित्य दर्पण 6·50

17- साहित्य दर्पण, 6·318

बनाने का उल्लेख किया है[18]। कुन्तक ने प्रकरण 'वक्रता' के प्रसंग में काव्य रस की उत्पत्ति की दृष्टि से "इतिहास प्रसिध्द किसी घटना में अपनी प्रतिभा से हल्का सा परिवर्तन कर आख्यात वस्तु को सजीव और उदात्त बनाकर काव्य में चमत्कार उत्पन्न करने का विधान किया है[19]।" उनका स्पष्ट कथन है कि 'निरन्तर रस को प्रवाहित करने वाले सन्दर्भों से परिपूर्ण महाकवियों की वाणी केवल (इतिहास में प्रसिध्द) कथा मात्र के आश्रय से ही नहीं जीवित रहती।' आनन्दवर्धन ऐतिहासिक क्रम से प्राप्त कथा को कल्पना के संयोग से रसानुरूप बनाकर ग्रहण करने के ही पक्षपाती है[20]।

यहां यह भी विचार कर लेना प्रसंग-प्राप्त है कि काव्य में इतिहास का ग्रहण कितना और किस रूप में स्वीकृत होना चाहिए। कहीं कहीं यह विचार भी प्रकट किया गया है कि इतिहास काव्य का निजी क्षेत्र नहीं है। काव्य और इतिहास का यह सम्बन्ध उन युगों का स्मारक है जब काव्य सब क्षेत्रों में अपना दखल रखता था[21]। किन्तु आज जबकि प्रत्येक विषय की अपनी अपनी सीमा निर्धारित हो रही है तो काव्य को अन्य क्षेत्र में पांव नहीं रखना चाहिए, इतना तो कहा ही जा सकता है कि कवि को कवि रहते हुए इतिहास का उपयोग करना है। दोनों अनेक रूपों में परस्पर संबन्धित अवश्य हैं। दोनों सत्य के अन्वेषी हैं—इतिहासकार घटना-व्यापारों का वस्तुगत तथ्य (factual truth)निकालता है, जबकि कवि काव्यगतन्याय को लक्ष्य में रखकर जीवन के शिव व सुन्दर से संयुक्त व्यापक सत्य को प्रस्तुत करता है। कवि इतिहास की टूटी हुई कड़ियों को तर्क बल से जोड़ कर उसके छूटे हुए रिक्तांशों को भाव, विचार व कल्पना से जीवन्त व मांसल बनाता है। पर यद्यपि कवि इस प्रकार से अपनी वस्तु-सामग्री इतिहास से लेता अवश्य है, किन्तु यह समझना भी भूल है कि इस सामग्री के अभाव में कवि नितान्त पंगु होकर ही बैठ जायेगा। वस्तुतः कवि भाव संचार व रस

18-काव्यादर्श, 1·15

19-(क) आचार्य विश्वेश्वर : हिन्दी वक्रोक्ति जीवित, पृ· 483

(ख) गिरः कवीनां जीवन्ति न कथामात्राश्रिताः ।
— हिन्दी वक्रोक्ति जीवित, पृ· 495

20- C. Dey Lewis: 'A Hope for poetry'(Postscript).

21- इतिवृत्त वशायातां त्यक्त्वाऽननुगुणां स्थितिम् ।
उत्प्रेक्ष्याप्यन्तराभीष्ट - रसोचित कथोन्नयः ।।
— ध्वन्यालोक, 3· 11

निष्पति के लिए उपयुक्त सामग्री की टोह में रहता है। इतिहास से प्राप्त हुई सामग्री से उसे अवश्य थोड़ी-बहुत सुविधा हो जाती है, ऐतिहासिक घटना व्यापारों के स्थूल ढांचे को लेकर चलने से पाठकों के संस्कारों को उद्‌बुध्द करने की समस्या – इतिहास की सामान्य सम्पति होने के नाते – शीघ्र ही हल हो जाती है। यदि ई कवि इतिहास की सामग्री के अभाव में भाव संचार करने में समर्थ ही न हो तो यह उसकी दुर्बलता ही समझी जायेगी, क्योंकि उसमें जीवन की किसी भी स्थिति या घटना के माध्यम से रस उत्पन्न करने की क्षमता होनी चाहिए। अतः इतिहास की सामग्री के बिना रस की निष्पति होती है। वह अपने जातीय संस्कारों को उन्मीलित करने की गहरी क्षमता से सम्पन्न होने के कारण विशेष मनोवैज्ञानिक तुष्टि प्रदान करने वाला सिध्द होता है। किन्तु रस की सत्ता किसी देश और जाति तक ही सीमित नहीं कही जा सकती, उसकी व्याप्ति सार्वकालिक एवं सार्वलौकिक है। अतः इतिहास का काव्य से सम्बन्ध एक सीमा तक ही स्वीकृत हो सकता है, उसके आगे नहीं ।

यह ठीक है कि विस्तृत काल प्रवाह से अवतरित अतीत इतिहास के पात्र व घटनाएं काव्य में, जीवन, सुलभ उत्थान-पतन की बड़ी गहरी छाप हृदय पर छोड़ते हैं, पर केवल इसी कारण इतिहास को इसका पूरा श्रेय नहीं दिया जा सकता । श्रेय तो वस्तुतः उस काव्य-कौशल को दिया जाना चाहिए जो कवि प्रतिभा की स्फूर्ति का परिणाम है –जानना चाहिए। इतिहास तो काव्य में निमित्त रूप बनकर आता है और यही रूप काव्य में गृहीत इतिहास की मर्यादा है। इतिहास मात्र की पुनरावृति वा अवतारणा से काव्य-रस की निष्पति नहीं होती, मूलरूप में वह कवि प्रतिभा का ही चमत्कार है ।

इतिहास का अनुशीलन किसी जाति को अपना आदर्श संगठित करने के लिए अत्यन्त लाभदायक होता है क्योंकि हमारी गिरी दशा को उठाने के लिए हमारी जलवायु के अनुकूल जो हमारी जातीय संस्कृति है, उसमें बढ़ कर उपयुक्त और कोई भी आदर्श हमारे अनुकूल होगा कि नहीं, इस में हमें पूर्ण सन्देह है ।

(घ) काव्य का सांस्कृतिक चित्रण से सम्बन्ध

काव्य और संस्कृति का घनिष्ट सम्बन्ध है। वस्तुतः संस्कृति मानव के श्रेष्ठतम संस्कारों और उसकी समस्त अभिव्यक्तियों का पुंजीभूत रूप है । शब्द, स्वर, रेखा, रंग,

प्रस्तर आदि की सहायता से मानव ने जो कुछ व्यक्त किया वह सब संस्कृति है। इस दृष्टि से देखने पर काव्य संस्कृति का वह अंग विशेष है जो लिखित या मुद्रित शब्द के माध्यम से हमारे सामने उपस्थित है। इसी लिए डेविड डाइचेज़[22] जैसे लेखक साहित्य (काव्य) को संस्कृति का एक खंड या अंश मात्र मानते है। आचार्य वाजपेयी जी भी काव्य को एक सांस्कृतिक प्रक्रिया ही मानते[23] हैं ।

संस्कृति व्यक्ति की भी होती है और किसी देश अथवा जाति की भी । जातीय संस्कृति ही जब व्यक्ति में (घट में सूर्य की तरह) प्रतिबिम्बित होती है तब व्यक्ति संस्कृत या सुसंस्कृत कहलाता है। जिस प्रकार संस्कृति का अध्ययन इतिहास को गौरव प्रदान करता है (इतिहास-पुराण की घटना-व्यापारों के सहारे ही संस्कृति का प्रवाह प्रवाहित है) उसी प्रकार काव्य को भी क्योंकि संस्कृति का अध्ययन मानव के उत्कृष्टतम रूप या उत्तमांश का अध्ययन है। सांस्कृतिक 'वस्तु' से शून्य साहित्य वास्तव में स्थूल मनोरंजन या शैली के प्रयोगों का साहित्य मात्र रह जाता है, अतः काव्य को सार्थकता प्रदान करने के लिए उसमें संस्कृति के प्राण डालने पड़ते हैं। यों 'रस' काव्य का अपना निजी मूल्य है पर विचार करने पर अन्ततः यह 'रस' भी हमारी संस्कृति के चरम मूल्य मुक्ति, आनंद, या सुख का काव्यात्मक पर्याय है। 'रस' शब्द से वस्तुतः मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया और आभोग व्यापार ही अधिक सूचित होता है। जिस 'वस्तु' का काव्य में आभोग होता है, वह मुख्यतः सांस्कृतिक उपकरणों के द्वारा ही निर्मित होती है । इन सांस्कृतिक उपकरणों के अभाव में रस की सत्ता ही संदिग्ध होती जान पड़ती है । इस से साहित्यिक सन्दर्भ में संस्कृति का महत्व स्पष्ट हो जाता है। अतः संस्कृति काव्य को मूल्यवान बनाने वाला एक उत्कृष्टतम तत्व है ।

संस्कृति की विविध बाह्य अभिव्यक्तियों में से काव्य भी एक विशिष्ट अभिव्यक्ति है।

21- "which concerns itself with the whole complex of cultural activities of which the production of literature is only one fragment."
---David Daiches: Critical Approaches to Literature, p.376

22- काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध, प्राक्कथन, पृ॰ 2

संस्कृति का स्वरूप अत्यन्त विशाल है। उसमें धर्म, कला, दर्शन, काव्य, विज्ञान, साधना, भक्ति सभी समाविष्ट हैं। वह जाति, देश या विश्व की सर्वोच्च उपलब्धियों का सार है। इस दृष्टि से संस्कृति की परिधि अत्यन्त विशाल है, काव्य उस विस्तृत क्षेत्र का एक अंग मात्र है । दूसरे शब्दों में हम यों कह सकते है कि शब्द के माध्यम से और कल्पना की सहायता से जहां सौंदर्य की सृष्टि के लिए मानव भावों और विचारों का रमणीयता से प्रकाशन होता है, वही काव्य है ।

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि जहां ऐतिहासिक चित्रण काव्य का निमित्त रूप बन कर आता है, वहां सांस्कृतिक चित्रण में काव्य स्वयं संस्कृति का अंग बन जाता है। अतः काव्य में ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक चित्रण का होना अनिवार्य हो जाता है।

3- 'गुरु-प्रताप-सूरज' - काव्य, इतिहास और संस्कृति का पावन तीर्थराज ।

महाकवि सन्तोखसिंह विरचित 'गुरु प्रताप सूरज' सुन्दरम् से समन्वित एवं सत्यं और शिवं का उद्घोषक ऐतिहासिक काव्य है। भारतवर्ष का सांस्कृतिक इतिहास जिन गौरवशाली ग्रंथों से समुज्ज्वल है, उन में 'गुरु-प्रताप-सूरज' महत्वपूर्ण स्थान पर आसीन है। इसमें सिक्ख गुरुकालीन इतिहास, संस्कृति और काव्य की अनुपम मन्दाकिनी प्रवाहित हुई है। इन्हीं तीनों ज्ञान-सरिताओं का इसमें संगम होने के कारण यह पावन तीर्थराज की संज्ञा से अभिहित किया जा सकता है। जैसे प्रयागराज को तीर्थराज कहा जाता है और इस तीर्थ की पवित्रता मनुष्य को इहलौकिक तथा पारलौकिक सुख प्रदान करने वाली है वैसे ही इस ग्रंथ का माहात्म्य सर्वविदित हो है।

यह उत्तरभारत के ज्ञानमना महामनीषियों द्वारा युग-युगों से सुचिन्तित जीवनकी सर्वांगीण व्याख्या करने वाला प्रतिनिधि काव्य ग्रंथ है। भारतीय चिन्तन धारा की ज्ञान-ज्योति इस में नवीन रूप से ज्योतित है। यह सिक्ख मत का ज्ञान-सर्वस्व होने के कारण आर्ष-ग्रंथ भी है और महाकाव्य भी है, इतिहास-पुराण भी है, धर्म ग्रंथ भी है और भारतीय संस्कृति का व्याख्यता भी है। यह भारतीय धर्मसाधना और ज्ञान-परंपरा का द्युतिमान अमर स्मारक है। इस महाग्रंथ में भारतीय उच्चादर्शों की व्याख्या मिलती है। यह ग्रंथ हमारे पथ प्रदर्शक गुरु साहिबान के ऐतिहासिक जीवन चरित्र एवं उनकी

जीवन साधना को ही प्रस्तुत नहीं करता अपितु मनुष्य जाति को भौतिक जीवन की तुच्छता एवं निस्सारता को दिखाकर मोक्ष प्राप्ति की ओर प्रेरित करता है। यह उनके महान ऐतिहासिक आख्यान को ही प्रस्तुत नहीं करता अपितु भारतीय धर्मशास्त्र को व्याख्याता संस्कृति एवं काव्यशास्त्रीय कला कौशल को भी व्यक्त करता है। यह एक ऐसा ग्रंथ-राट् है जिससे पंजाब के अनेक ग्रंथकारों की कृतियां प्रभावित ही नहीं हुई प्रत्युत इसे उनका उपजीव्य ग्रंथ होने का श्रेय भी प्राप्त है।

इस ग्रंथ में ऐतिहासिक, आध्यात्मिक, साहित्यिक, सामाजिक, धार्मिक, और राजनैतिक अनेक विषयों के बीज बिखरे पड़े हैं। इसमें भारतीय जीवन के महिमामय अतीत को वाणी मिली है। इस रचना के अन्तस्तल से एक सारा देश, एक सारा युग, अपने हृदय को और अपनी अभिज्ञता को प्रकट करके इसे सदा के लिए समादरणीय बना देता है। महाकवि सन्तोख सिंह ने भारतीय काव्याकाश को एक ऐसे 'गुरु प्रताप' रूपी सूर्य को भेंट किया जिसका चिरन्तन प्रकाश सदैव मानवता का मार्गदर्शन करता रहेगा। इस में युग कवि ने साधना पुंज एवं शौर्य वीर्य सम्पन्न गुरुओं की पुनीत जीवन कथा को ही भारतीय धर्म, दर्शन, राजनीति, आचार, इतिहास, पुराण एवं काव्य के सन्दर्भ में प्रस्तुत किया है। इस लोकनायक राष्ट्रकवि ने अपनी इस रचना द्वारा भारतीय इतिहास, संस्कृति और काव्य को एक नवीन दिशा एवं नवीन संजीवनी शक्ति प्रदान की है। इस में चित्रित सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक भावनाओं ने तत्कालीन प्रताड़ित भारतीय हृदय को नवीन संबल प्रदान किया है। भारतीय सांस्कृतिक एकता को अक्षय तत्व बना दिया है। तत्कालीन विभिन्न विचारधाराओं एवं संस्कृतियों को एक स्थान पर लाकर गुंफित किया है। इस महिमामंडित ग्रंथ में अनेक लोक कथाएं, ऐतिहासिक आख्यान मिलकर एक प्राण हो गए है। इतिहास की पृष्ठभूमि पर इस काव्य-प्रासाद का निर्माण हुआ है और संस्कृति के आख्यान स्वरूप सूर्य-प्रकाश से आलोकित होकर जन जन के हृदय तिमिर को यह दूर करता चला आ रहा है। इस में सत्यं, शिवं, सुन्दरम् साकार हो उठे।

'जो ख्याति उत्तर भारत में सनातन धर्म हिन्दू जगत में गोस्वामी तुलसीदास तथा उनकी रचना 'रामचरित मानस' को है, वही ख्याति व सम्मान पंजाब में सिक्ख जगत में कवि कुल-चक्र-चूड़ामणि महाकवि भाई सन्तोख सिंह को तथा उनकी प्रसिध्द कृति

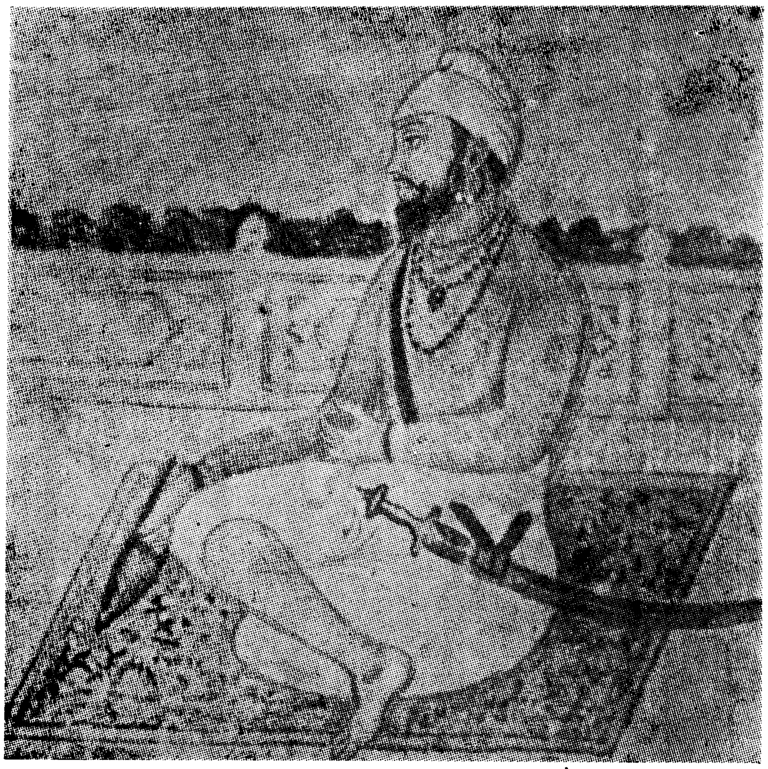

'गुरु प्रताप सूरज' के रचयिता महाकवि भाई सन्तोख सिंह

'गुरु प्रताप सूरज' को प्राप्त है।— पंजाब के वरिष्ठ गुरुद्वारों तथा गुरु धामों में नित्यप्रति 'गुरु प्रताप सूरज' की कथा होती है। बाल्मीकि और व्यास की तरह इन का काव्य भी धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष नामक चारों पदार्थों से सम्बन्ध रखने वाले ज्ञान का संचित भंडार है। पंजाब में हमारे गुरुओं ने जिस तरह निरन्तर दो ढाई सौ वर्षों तक अपना युगान्तरकारी सन्देश देकर समाज को संजीवनी शक्ति प्रदान की उसी तरह इस महाकवि ने उनके क्रान्तिकारी जीवन संग्राम के इतिहास को अपने उक्त महाकाव्य में मूर्तिमान कर राष्ट्र को जागृति का सन्देश सुनाया ।

4- 'गुरु प्रताप सूरज' के रचयिता भाई सन्तोख सिंह का जीवन-वृत, व्यक्तित्व एवं कृतित्व

कवि के काव्य-मुकर में उसका जीवन प्रतिबिम्बित होता है। वह जिस संसार से अनुप्राणित होता है उसका चित्र अपने आदर्श के अनुरूप अनुभूति एवं कल्पना के विविध रंगों के सहयोग से अंकित करता है। अतः कवि की कृति उसके व्यक्तित्व के माध्यम से ही सम्यक् रूप से आस्वादनीय बनती है। काव्य में वर्णित एवं व्याप्त गहन अनुभूति से परिचय प्राप्त करने के लिए उसके जीवन, व्यक्तित्व आदि का अध्ययन किया जाता है। उसकी मनोदशाओं एवं परिस्थितियों की पृष्ठभूमि का ज्ञान हो जाने पर उसके काव्य की आत्मा तक सहज ही पहुंचा जा सकता है। कवि के व्यक्तित्व से केवल उसकी बाह्य आकृति एवं वेषभूषा का ही नहीं, उसकी विवेक शक्ति, व्यक्तिगत और सामाजिक अनुभूतियों तथा उसकी सांस्कृतिक चेतना आदि उपकरणों का भी बोध होता है।

(क) जीवन - वृत

इस महाकवि के जीवन चरित्र से सम्बन्धित घटनाओं का उल्लेख अन्य भक्त कवियों की भान्ति बहुत कम मिलता है। भारतीय कवियों की परंपरा आत्म-चरित के प्रति उदासीन रही है। बाल्मीकि, व्यास, तुलसी आदि की तरह इन की भी कोई प्रामाणिक

---

2 4- पंडित चन्द्रकान्त बाली : पंजाब-प्रान्तीय हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ॰335, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली (1962)।

जीवनी नहीं मिलती है। भक्तहृदय कवि को आत्मश्लाघा अपनी भक्ति भावना के विपरीत प्रतीत हुई होगी। प्रसंग वश गुरु, माता पिता तथा आश्रय दाताओं आदि के कुछ संकेत उनकी रचनाओं में मिलते हैं। ये संकेत उनकी आत्मकथा सम्बन्धी झलक ही उपस्थित नहीं करते वरन् उनके व्यक्तित्व पर भी प्रकाश डालते हैं।

महाकवि जी का जन्म 7 आश्विन् सम्वत् 1844 तदानुसार 22 सितम्बर 1788ई॰ को प्रातः काल अनुराधा नक्षत्र में करीर गौत्र के पिता सरदार देवासिंह[25] जी के घर माता रजादी[26] (राजदेवी) के गर्भ से 'नूर दी सरां'[27] ग्राम में हुआ। यह स्थान श्री तरनतारन साहिब से झबाल की ओर जाने वाली (लाहौर की ओर) शाही सड़क पर साढ़े तीन मील की दूरी पर स्थित है। परन्तु कवि जी इस ग्राम में केवल दस ग्यारह वर्ष की अवस्था तक रहे। जहां उन्होंने अपने विद्वान पिता और उनके गुरमत प्रेमी साथियों की सत्संगति में प्रारंभिक विद्या प्राप्त की। फिर उच्च विद्या प्राप्ति हेतु ज्ञानी सन्तसिंह[28] के पास अमृतसर जाकर रहने लगे। भारतीय दर्शन शास्त्र के ज्ञाता, संस्कृत तथा ब्रज भाषा आदि भाषाओं के पंडित एवं लेखक, काव्यशास्त्री, कथावाचक, ज्ञानी जी के व्यक्तित्व का प्रभाव स्वाभाविक रूप से भाई सन्तोख सिंह पर पड़ा। उनके हृदय में भी कथा-कीर्तन आदि करने का शौक उत्पन्न हुआ।

25- देवासिंह पिता मम नामू। तिन के पद अरविन्द प्रणामू।

— गु॰ प्र॰ सू॰ रि॰ 1 अंशु 34 अंक, पृ॰ 4499

(ख) देवा सिंह पिता ते जन्म कवि सन्तोख सिंह नाम।

— नानक प्रकाश (उतरार्द्ध), अध्याय, 57, अं 111 पृ॰ 1253

26- गु॰ प्र॰ सू॰ ग्रं॰ प्र॰ पृ॰ 89

27- वही, पृ॰ 86

28- (क) सन्त सिंह गुरु अक्खर दाता, नमो करौं तिन पद जल जाता।

— गु॰ प्र॰ सू॰ रि॰ 1, अंशु 1 अंक 34, पृ 4499

(ख)-श्री मति, सिमरन रति गुरु सन्तसिंह शुभ नाम।
विदिया जिन ते मैं पठी तिन पद करों प्रणाम॥

— ना॰ प्र॰ अध्य॰ 57 अं॰ 101, पृ॰ 1256

(ग)-द्रष्टव्य : नानक प्रकाश, पू॰ अध्य॰ 1 अंक 33, पृ॰ 63

(घ)-श्री मति सुर गुरु भजन में दइआ धाम अभिराम।
तिन के पगनि प्रणाम ह्वै, सन्त सिंह शुभ नाम॥ 7 ॥ — गरब गंजनी पृ॰ 2

कैथल स्थित कवि का निवास स्थान ,
शेरों वाली हवेली-मुहल्ला ब्राह्मणा ।

वे अपने गुरु को ही अपना आदर्श मानते थे ।उनके व्यक्तित्व और कृतित्व की अमिट छाप भाई सन्तोखसिंह जी के व्यक्तित्व और कृतित्व पर देखी जा सकती है।तत्पश्चात् काशी,[29] बूड़िए,[30] पटियाला[31] और अन्त में कैथलपति[32] भाई उदयसिंह के पास जा कर रहे और आजीवन वहीं अपना समय गुरुयश वर्णन में व्यतीत किया ।फिर कभी भी अपने जन्म स्थान पर रहने का सौभाग्य इन्हीं प्राप्त नहीं हुआ ।

कवि जी का विवाह वि॰ सं॰ 1878 में बूड़िए रहते हुए जगाधरी में रहने वाले 'रुहोले गौत्र' की एक लड़की 'रामकौर' से हुआ। जैसा कि ऊपर बता आये है कि कवि जी का गौत्र 'करीर' था और उस समय 'करीर' गौत्र से वाले 'रुहोले' गौत्र से संबंध स्थापित नहीं करते थे ।अपितु व्यवहार करने से भी संकोच करते थे ।परन्तु कवि जी ने इस बंधन को तोड़ कर विवाह सम्बन्ध स्थापित किया।[33] कवि जी के घर पांच पुत्र और तीन लड़कियां हुई।पुत्रों के नाम इस प्रकार हैं(1)अजैसिंह, (2)विजैसिंह, (3)मकसूदनसिंह, (4)बलदेवसिंह और(5)अनुरुध्दसिंह ।आप के छोटे सपुत्र श्री अनुरुध्दसिंह का बाल्यकाल में ही देहान्त हो गया था ।कवि जी की लड़कियों के नाम इस प्रकार से हैं ।(1) खेमकौर, (2)ममेनकौर(मेमो), (3)मानकौर।सब से बड़ी खेमकौर की शादी अकाल तख्त के पुजारी भाई शोभासिंह के सपुत्र नरैणसिंह से हुई।मेमनकौर(मेमी) की शादी झबाल हुई तथा मानकौर (मानी) की शादी माधुर हुई परन्तु कुछ समय पश्चात् वह पटियाला आकर रहने लगी।कवि जी ने तीनों लड़कियों की शादियां गुरमत के अनुसार की।[34]

---

29 - जीवन कथा : चूड़ामणि कवि भाई सन्तोखसिंह, पृ॰ 18-19

30- गु॰ प्र॰ सू॰ प्र॰ पृ॰ 94-96

31- वही, पृ॰ 100

32- उदय सिंह बड़ भूप बहादुर,
कवि बुलाई राख्यो ढिग सादर ।
— गरब गंजनी पृ॰ 3

33- गु. प्र. सू. ग्र प्र. , पृ॰ 96

34- वही, पृ॰ 168-70

कार्तिक वदी एकादशी सम्वत् 1900 वि॰ (तदानुसार 21 अक्तूबर सन् 1844 ई॰) को कैथल रहते ही कवि जी ने इस संसार से महाप्रयाण किया।[35]

(ख) व्यक्तित्व और रूपाकृति

महाकवि भाई सन्तोखसिंह जी का व्यक्तित्व बहुमुखी है। वे प्रतिभासंपन्न महाकवि, इतिहासकार और भारतीय संस्कृति के आख्याता ही नहीं थे अपितु काव्यशास्त्री, रसवादी आचार्य, बहु भाषाविद्, बहु शास्त्रविद्, महान वैयाकरण, महान दार्शनिक, ब्रह्मज्ञानी, गुरु-भक्त, काव्यानुवादक, भाष्यकार, समन्वयवादी, लोकनायक थे। उन्हें कवि-कुल-चक्र-चूड़ामणि आदि उपाधियों से विभूषित किया गया था। ऐसे उच्चकोटि के कवि एवं राज-दरबार में इतना अधिक सम्मान प्राप्त कर लेने पर भी वे विनम्रता की मूर्ति थे। वे विनयशील, निराभिमानी, अध्यवसायी, उदार, दृढ़ संकल्प, न्यायशील, अध्ययनशील, त्यागी एवं सहृदय व्यक्ति और उदार हृदय थे। ऐसी अनेक विशेषताओं से वे विभूषित थे।

उन्होंने अपने वर्ण और आकृति का निरूपण नहीं किया। उनके विषय में उनके समकालीन किसी अज्ञात कवि के एक कवित्त के आधार पर कहा जा सकता है कि उनका शरीर गठीला और कद मझला था। उनके रूप में अद्भुत आकर्षण था। आप शाही कवि होने के कारण कानों में कुंडल और गले में मोतियों की माला धारण करते थे। सिर पर छोटी सी दस्तार(पगड़ी)आप के पूर्ण सिक्ख होने को व्यक्त करती थी। आपके व्यक्तित्व की प्रशंसा में समकालीन किसी अज्ञात कवि का निम्न कवित मिलता है :-

कुडंल कपोल पर लोल करें लहि लहि,
मानो तिगमंस सोम रही छबि छाइकै।
कटि कर वार करि वार दरै करी सिर,
धर पर गिराधर धीर नहीं काइकै।
दामन दमन दमै दिग दगै दिल बीच,
मत सम शेर शमशेर मारै आइकै।

35- गुरु प्रताप सूरज के काव्यपक्ष का अध्ययन, पृ॰ 14

ऐसी है कुबेयस सन्तोख सिंह इर बाई,
उपमा न बनै, उपमेय कवि राइकै ।। 5 ।।[36]

(ग) **कृतित्व :**

'गुरु प्रताप सूरज' में उन्होंने एक स्थान पर अपनी रचनाओं की ओर संकेत किया है।[37] इसके आधार पर उनकी पांच रचनाओं 'नानक प्रकाश', 'जपुजी टीका-गरब गंजनी (भाष्य)', 'बाल्मीकि रामायण (काव्यानुवाद)', 'आत्मपुराण' (अनुवाद) तथा 'गुरु-प्रताप सूरज'। इनके अतिरिक्त एक अन्य रचना 'नामकोश' अमरकोश का काव्यानुवाद भी मिलता है। जिसे भाई कान्हसिंह,[38] भाई वीरसिंह[39] तथा मैकालिफ[40] आदि ने प्रामाणिक रचना स्वीकार किया है। भाई वीरसिंह ने भाई सन्तोख सिंह की उक्त प्रामाणिक रचनाओं के अतिरिक्त दो अन्य ग्रंथों का भी उल्लेख किया है जो उन्हें उनके पिता डा॰ चरणसिंह के पुस्तक संचय से प्राप्त हुई हैं। 'श्री गुरु गोबिन्दसिंह प्रसंग', और दूसरी श्री गुरु उत्तुति'[41] यह दोनों लघु पुस्तिकाएं ही हैं ।

इन दो पुस्तिकाओं के अतिरिक्त भाई वीरसिंह जी ने उनकी तीन अन्य लघु पुस्तिकाओं का भी निर्देश किया है। जो उन्हें कवि जी के हस्तलिखित संग्रह में से प्राप्त हुई हैं । जिन से कवि जी के ज्योतिष शास्त्र के विद्वान होने का परिचय मिलता है। 1-प्रश्न विधि, 2-घर बनाने की विधि, 3-तृतीय का नाम नहीं दिया (इस में ग्रह, नक्षत्र, राशि आदि देख कर कुंडली भरने की विधि बताई गई है।) अतः कुल मिलाकर कवि जी की रचनाओं की संख्या भाई वीर सिंह के विचारानुसार ग्यारह हो जाती है। परन्तु कवि कीर्ति के आधार-स्तंभ के रूप में उनकी पूर्वोक्त छः ही प्रामाणिक रचनाएं विद्वानों द्वारा स्वीकृत है। अतः इन्हीं का परिचय यहां अपेक्षित है।

36- गु. प्र. सू. ग्रं. प्र., पृ॰ 99

37- गु. प्र. सू. रा. 1, अंशु 5, अंक 9-15, पृ॰ 1325

38- महान कोश : पृ॰ 182-183

39- गु. प्र. सू. ग्रं॰ प्र॰, पृ॰ 96, 124

40- Macauliffe: <u>The Sikh Religion</u>, Introduction: Ixxvi-vii

41- गु. प्र. सू. ग्रं. प्र., पृ॰ 124

1-नाम कोश :

यह रचना देव भाषा संस्कृत के गौरव ग्रंथ 'अमरकोश' का काव्यानुवाद है। इसके रचयिता श्री अमर सिंह ने अपने इस शब्द-प्रासाद में अनेक शब्द रत्नों को अद्भुत शैली में मंडित किया था। इस ग्रंथ के विश्व की अनेक भाषाओं में अनुवाद हो चुके हैं। इस रचना ने साहित्यिक वर्ग की आवश्यकताओं को ही पूरा नहीं किया अपितु विद्यार्थी वर्ग का भी महत् उपकार किया है जिन्होंने इसे अपना कंठहार बना कर अपने परिश्रम को सफल बनाया ।

ऐसी संभावना हो सकती है कि हमारे विवेच्य कवि सन्तोख सिंह ने अपने अध्ययन काल में इस कोश ग्रंथ का अध्ययन किया हो और इसके अध्ययन से जहां उन्होंने अपनी प्रतिभा की द्युति को चमकाया हो वहां भावी विद्यार्थियों के हित के लिए इसका काव्यानुवाद प्रस्तुत करने की अपनी बलवती आकांक्षा को अध्ययन की समाप्ति पर, बूढ़िया निवास के दिनों में पूरा किया हो तथा अपनी काव्यकला को और अधिक चमकाया हो । इस काव्यानुवाद की रचना उन्होंने कब की? इसका कोई संकेत उनकी रचनाओं से नहीं मिलता । हाँ, इसकी समाप्ति उन्होंने अमृतसर में सम्वत् 1878 वि॰ में की।[42] अपनी अन्य रचनाओं की तरह इस ग्रंथ के आरंभ में भी उन्होंने अपने इष्ट देव एवं अन्य गुरु साहिबान की बन्दना की है। इस में प्रयुक्त छन्द एवं अलंकृत शैली उनके पांडित्य की परिचायक है। इस अनूदित ग्रंथ का भी अमरकोश की तरह तीन कांडों में विभाजन किया गया है। इस कोश ग्रंथ में संकलित शब्द भंडार का प्रयोग एवं प्रभाव उनकी परवर्ती रचनाओं में स्पष्ट देखा जा सकता है।

2- गुरु नानक प्रकाश :

यह काव्य ग्रंथ महाकवि सन्तोख सिंह के कवित्व की दृष्टि से उनका प्रथम मौलिक गौरव ग्रंथ है। इस की महिमा एवं प्रशंसा विशेषता इस काव्य के प्रतिपाद्य विषय की महत्ता और प्रतिपादन शैली की रमणीयता के अद्वितीय समन्वय में है। यह उनका एक ऐसा अनूठा महाकाव्य है जिस में भक्ति की भूमि पर इतिहास-पुराण, धर्म-शास्त्र, कथा काव्य, चरित काव्य और लोक काव्य का अनुपम समन्वय किया गया है। प्राचीन संस्कृत के प्रबन्ध

42- नाम कोश : 459 तथा 465

काव्य की परंपरा में लिखा गया यहएक धर्म-ग्रंथ है। यह सिक्ख धर्म के अनुयायियों के लिए जहां उनका धर्म एवं इतिहास का ग्रंथ माना गया है वहां इस में उनके गुरमत-दर्शन के दार्शनिक सिध्दांतों का भी सुन्दर विश्लेषण मिलता है। इसमें गुरु नानक देव जी को जीवन-कथा को पौराणिक शैलो में प्रस्तुत किया गया है। इस ऐतिहासिक महा-काव्य को पूर्वार्ध्द और उत्तरार्ध्द नामक दो भागों में विभक्त किया गया है। इन दोनों भागों में (57+73)कुल 130 अध्याय हैं। इस के कथा के वर्णन में इतिवृतात्मकता एवं उपदेशात्मकता के साथ साथ रसात्मकता, रमणोयता एवं मंगलमयता का समन्वय दिखाई देता है। जन-मानस को भाव-विभोर कर देने वाला इस में अनूठा कथा-रस मिलता है। इस में परंपरागत विचार, भारतोय संस्कृति के जोवन्त विचारों का विश्लेषण, व्यवस्थित कथानक मार्मिक स्थलों की भावुकता पूर्ण-निबन्धना, अलौकिक तत्वों का संनिवेश, रोमांचक एवं साहसिक घटनाओं का अतिरेक तथा अज्ञान-तिमिर को नाश करने वाले सूर्य-प्रकाश से समन्वित यह काव्य भाई सन्तोख सिंह की कोर्ति का आधार-संतभ है।

कवि गुरु यश वर्णन द्वारा अपनी वाणी को सफल करना चाहता है।[43] इस काव्य में कवि गुरु देव जो की भक्ति से अभिभूत होकर उनके जीवन-चरित का काव्यात्मक आख्यान प्रस्तुत करता है। इस काव्य में के काव्यत्व की प्रशंसा में किसो अज्ञात कवि ने क्या ही सुन्दर पंक्तियां कही है :–

कवित :-

कविता अपार है कि गुन को पहार है,
कि माधुरी अगार है कि भाव काव कोश है।
भूखन है कवि के, कि दूखन हा कवि के,
विदूखनके बीच बी प्रसिध्द हरि दोष है।

43- बानी सफल करन के कारन ।
करहौं सतिगुर सुजस उच्चारन।
– गु. प्र. सू. रा. 1, अंशु 5; अंक 6, पृ॰ 1324

वानी ही उतंग है, सु अंक होउ रंग है,

अनंग अंग भंग के विसूत्रन निसोस है ।

नानक अरथ जाउ कीनो कली कल सोऊ

नाम तो सन्तोख सिंह धीयवर कोश है ।। 4 ।।[44]

ऐसे उत्तम काव्य का सृजन कवि ने अपने 'बूड़ियो निवास' के दिनों किया । कवि जी ने सम्वत् 1878 वि० में नामकोश समाप्त किया और तत्पश्चात् डेढ दो वर्ष के अरसे में ही यह ग्रंथ कार्तिक पूर्णिमा 1880 वि० को समाप्त किया । इस तथ्य की ओर उन्होंने संकेत भी किया है :-

एक आंक अर अषट करि बहुर अषट पर सून ।

कार्तिक पूरनमा विखे भयो ग्रंथ बिन ऊन ।। 110 ।।[45]

इस काव्य ग्रंथ की कथा का आधार सरूपदास भल्ला रचित 'महिमा प्रकाश'[46] तथा गुरु जी की जीवनी से सम्बन्धित साखी साहित्य है। वक्ता श्रोता शैली में लिखे गए इस काव्य में ऐतिहासिकता के साथ पौराणिकता का अद्भुत समन्वय मिलता है। अलौकिक घटनाओं के समावेश से गुरु नानक को हरि अवतार के रूप में चित्रित किया गया है। नानक-वाणी के संकलन द्वारा गुरुदेव के आध्यात्मिक एवं दार्शनिक सिध्दांतों का निरूपण हुआ है। इसमें शान्त रस के साथ साथ काव्य के अन्य रसों का भी सुन्दर परिपाक हुआ है। मंगलाचरणों में जहां अलंकृत शैली की छटा दिखाई देती है वहां कथा-वर्णन में स्वाभाविकता की छाप दिखाई देती है। यह ग्रंथ विविध-भावों एवं मनोवेगों का सुन्दर मुजूषा है। भाषा शैली की दृष्टि से अनेक अलंकारों से यह अलंकृत है। छन्दों की विविधता से सरसता को स्थिर रखा गया है। ब्रजभाषा के इस गौरव ग्रंथ में उदात-भावनाएं, सांस्कृतिक तत्वों का समावेश तथा लोक मंगल विधायिनी जीवन्तता, काव्योचित गरिमा से मंडित यह महाकाव्य गुरु यश का[47] ही नहीं अपितु कवि-यश का भी अद्भुत स्मारक है।

44- गु. प्र. सू. ग्रं. प्र. पृ० 98

45- ना० प्र० उत्त० अध्य० 57, अंक 110, पृ० 1258

46- बाला बरनन करन लगा बर । ससि मुखा ते इतिहास सुधासर ।। 3 ।।

— ना० प्र० तृ० अध्य० पृ० 142

47- गुर कीरति सरिता जिव बरनी मंगल करनि अमंगल हरनी ।। 82 ।।

— ना० प्र० पू० अध्य० 1, अंक 82, पृ० 125

कवि के आश्रयदाता कैथलनरेश भाई उदय सिंह

3-गरब गंजनी : (जपुजी भाष्य)

महाकवि जी ने अपने कैथल – निवास के आरम्भिक दिनों में कैथलपति भाई उदय सिंह के विशेष अनुरोध पर श्री आदि ग्रंथ की सर्व प्रथम लोक प्रिय वाणी वाणी 'जपुजी' या 'जपु नीसाण' की अलंकारयुत टीका लिखी । श्री आदि ग्रंथ में संकलित समस्त वाणी इसी गंभीर रचना की व्याख्या मानी जाती है। संस्कृत भाषा में अनेक प्रकार के टीका ग्रंथों के लिखने की परंपरा चली आती है जैसे भाष्य, वृत्ति, वार्तिक विवरण, निवृति, कारिका, तथा व्याख्यान आदि।[48] रहस्यात्मक दार्शनिक एवं सूत्रात्मक शैली में लिखी गई अनेक रचनाओं की टीकाएं मिलती हैं। टीका-ग्रंथों से अर्थों के समझने में सुविधा होती है। टीका को गुरुओं का भी गुरु कहा गया है –'टीका गुरु णाम् गुरु'।

'जपुजी' गुरमत दर्शन का अद्भुत सूत्र ग्रंथ माना जाता है। इस ग्रंथ पर आज तक अनेक टीका ग्रंथ लिखे गए हैं। जिन में से कुछेक में साम्प्रदायिक अर्थों का प्रतिपादन किया गया है तो कुछेक में साहित्यिक सौंदर्य का उद्घाटन हुआ है। कुछेक के अमृतोपम माधुर्य पर विद्वान आज भी मुग्ध है। भाई सन्तोख सिंह जी ऐसी मधुर, सरस एवं उपयोगी टीका का प्रणयन कर पूर्ववर्ती टीकाकार साधु आनन्दघन[49] का ही गर्व नष्ट नहीं किया अपितु समस्त भान्तियों एवं शंकाओं का समाधान प्रस्तुत कर 'काव्य रीति' का भी सुन्दर निरुपण किया है। ब्रजभाषा हिन्दी में लिखी गई यह टीका गुरुमुखी लिपि में ही मिलती है। यह ग्रंथ जहां रीतिकालीन रीतिप्रियता का परिचायक है वहां तत्कालीन राजा एवं भाई सन्तोख सिंह के आश्रयदाता कैथल अधिपति की अलंकार प्रियता का भी परिचायक है। यह ग्रंथ उनकी प्रेरणा का ही फल है और महाकवि सन्तोख सिंह जी परोपकारपरायणता एवं विद्वत्ता का प्रकाश-स्तंभ है। उन्होंने लिखा भी है:–

'उदे सिंघ वड भूप बहादुर ।
कवि बुलाई राख्यो ढिग सादर ।।
श्री ग्रंथ साहिब गुर बानी ।
सरब शिरोमनि जपु जी जानी ।। ।4 ।।

48- द्रष्टव्य : 'भाषा' पत्रिका अंक सितम्बर, 1970, पृ॰ 75
49- द्रष्टव्य : डा॰ रत्नसिंह जग्गी : आनन्दघन दी टीका। (प्रकाशक भाषा विभाग, पटियाला)

अर्थ गंभीर महान महाने ।
　　अस लखि कवि सो वचन बखाने ।।
अलंकारयुत टीका रचीए ।
　　निरनै अरथ करहु मति खचीए ।। 15 ।।
होत अशंका या महि जेती ।
　　बुधि बल करहु हरहु अब तेती ।।
सुनि कर वचन नृपति की नीका ।
　　कवि न रुचिर रच्यो जपु टीका ।। 16 ।।[50]

कवि सन्तोख सिंह जी ने अर्थ-गांभीर्य से परिपूर्ण 'जपुजी' टीका में आनन्दघन के प्रतिपादित मतों का खंडन भी किया है।[51] इस टीका के नामकरण के विषय में भी टीकाकार ने ग्रंथ के अन्त में संकेत कर दिया है ।

इस टीका ग्रंथ के आरंभ में अकालपुरुष एवं दस गुरु साहिबान के मंगलाचरण भी 'नानक प्रकाश' आदि की तरह दिए हैं।[52] तत्पश्चात् कैथल के राजवंश का संक्षिप्त विवरण दिया है।[53] इस के पश्चात् जपुजी के शब्द सुसिन्धु में अर्थ सुधा की अभिव्यक्ति के लिए काव्य-दोष, अलंकार, व्यंग्य, लक्षण, ध्वनि आदि विभिन्न काव्यशास्त्रीय विषयों के विवेचन एवं विश्लेषण द्वारा 'काव्यरीति' का उद्घाटन किया है। इसके पश्चात् 'जपुजी' की महिमा एवं महात्म्य का वर्णन किया गया है।[54] 'नाम जप मार्ग' की परिचायक इस वाणी के इस पांडित्यपूर्ण भाष्य पर वैदिक साहित्य के अतिरिक्त शंकराचार्य विरचित ब्रह्मसूत्र के शारीरिक भाष्य' एवं वेदान्त दर्शन के अन्य ग्रंथों का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। उपनिषद् साहित्य से विभिन्न उद्धरण स्थान स्थान पर उद्धृत किए गए मिलते हैं।

50- गरब गंजनी : पृ. 3

51- वही, पृ. 184

52- वही, पृ. 1

53- वही, पृ. 2-3

54- वही पृ. 4

वेदान्त के अतिरिक्त सांख्य, न्याय, मीमांसा, योग आदि के दर्शनशास्त्रीय ग्रंथों का उल्लेख भी कई स्थानों पर मिलता है। इनके अतिरिक्त भारतीय ज्ञाननिधि का मन्थन करते हुए गुरमत के प्रतिपादक ग्रंथों – 'आदि ग्रंथ," दशम ग्रंथ', 'वारा भाई गुरदास' आदि से भी सहायता ली गई है। 'काव्यरीति' के निरुपण में समस्त भारतीय काव्य-शास्त्रीय ग्रंथों की सहायता से 'जपुजी' की प्रत्येक पंक्ति के अलंकारों का सुन्दर निरुपण एवं विश्लेषण प्रस्तुत किया है। जो उनके पांडित्य का प्रकाशक है। इस गद्य टीका ग्रंथ को भी काव्यत्व, दर्शन एवं संस्कृति का अनुपम संगम कहा जा सकता है। डा॰ गोयल के विचारानुसार 'यह हिन्दी की ऐसी पहली आलोचनात्मक पुस्तक है जिसमें किसी रचना की दार्शनिक व्याख्या करते हुए भाषा, शब्द शक्ति, गुण, दोष, अलंकार आदि की दृष्टि से उसके काव्यत्व की परीक्षा की गई हो।[55]' 'हिन्दी साहित्य के इतिहास में यह रचना कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण स्थान की अधिकारिणी है।[56]'

4- बाल्मीकि रामायण : (भाषा)

भारतीय संस्कृति के समुज्ज्वल दीपस्तंभ आदि काव्य बाल्मीकि रामायण को समग्र कवि समाज का उपजीव्य ग्रंथ माना जाता है। इस में वर्णित रामकथा की लोकप्रियता सर्वविदित है। इसमें हमारा जातीय इतिहास वर्णित है। बाल्मीकि का यह महाकाव्य पृथ्वीतल को विदीर्ण कर उगने वाले उस विराट् वट-वृक्ष के समान है जो अपनी शीतल छाया से भारत के समस्त मानवों को आश्रय देता हुआ प्राकृति की विशिष्ट विभूति के के समान अपना मस्तक ऊपर उठाए हुए खड़ा है। ऐसे अद्भुत काव्य को आधार बना ~~लेके~~ कर अनेक मध्ययुगीन कवियों ने अपनी प्रतिभा का चमत्कार दिखाने के लिए गद्य एवं पद्य में अनेक ग्रंथों का सृजन किया है। पंजाब में भी इसके आधार पर लिखे गए

55- डा॰ जय भगवान गोयल : 'गुरु प्रताप सूरज' के काव्यपक्ष का अध्ययन, पृ॰35 (1966)

56- डा॰ जयभगवान गोयल ~~संक्षिप्त~~ संक्षिप्त 'गुरु प्रताप सूरज' भूमिका, पृ॰16 (1968)

ग्रंथों को संख्या से[57] इसकी लोकप्रियता का अनुमान लगाया जा सकता है। इसी परंपरा में महाकवि सन्तोख हिंह ने कैथल नरेश भाई उदय सिंह की प्रेरणा से बाल्मीकि रामायण का काव्यानुवाद ब्रजभाषा में प्रस्तुत किया ।कवि जो ने 'जपुजो' भाष्य'गरब गंजनी' को समाप्ति के पश्चात् उक्त अनुवाद की ओर ध्यान दिया ।

यथा :-

'पुनि संजोग होइ अस गयो ।रामचरित को मन हुलसयो ।
बालमोक क्रित कथा सुनी जबि ।छंदन विखै रचो तब हम सबि।। ।। ।।
रामकथा पावन बिसतारी ।सुनि सभी नीकी रीति उतारी ।
सुंदर बन्यो रमाइन महां।ततछिन लिखि लीनसि जहिं कहां ।। ।2 ।।[58]

कवि जो के कथनानुसार इस रचना पर उन्होंने पौने दो वर्ष का समय लगया और इस साहित्यिक रचना की सुन्दरता पर प्रसन्न होकर कैथल नरेश ने उन्हें मोरथली ग्राम नामक पुरस्कार के रुप में दिया ।कवि जो ने स्वयं इसका उल्लेख इस प्रकार किया है :-

इक इक दिन महि सरग इक कर्‌यो सु छंदन मांहि ।
यौंते बन्यो शिताब बहु बिते बरख दइ नांहि ।। ।4 ।।[59]

सुंदर सादर ग्रंथ बन्यो पद गुंथति नौ रस रीति भलो ।।
राम कथा गुन ग्राम भिराम महां मतिधाम अंनद फलो ।।
रंजन है भ्रम भंजन है गम गंजन है प्रद ग्यान बलो ।।
कैथल नाथ प्रसंन भयो पठि ग्राम दयो तबि मोरथली।। ।5 ।।[60] [61]

57- द्रष्टव्यः हृदयराम रचित'हनुमान नाटक'(।680 वि॰),कपूरचन्द रचित'अनूप रामायण'(।703),सोढी मिहरबान रचित'आदि रमायण' इत्यादि ।

58- गु. प्र. सू. रा. ।,अंशु 5,अंक ।।-।2,पृ॰ ।325

59- गु. प्र. सू. ग्रं. प्र.,पृ. ।26 पर उद्‌धृत ।

60- वही, पृ॰ ।27 पर मुद्रित सनद की फोटो ।

6।- बाल्मीकि रामायण लंकाकांड सर्ग ।3।

इस पद्यांश से इस ग्रंथ के आरंभ करने की तिथि के विषय में कोई संकेत नहीं मिलता है। परन्तु इसकी समाप्ति के विषय में उन्होंने उल्लेख किया है :-

संवत् विक्रम जात अशट दस सहस भणिज्जै ।
तीस त्रिगुणा करय भ्यो पूरन लखि लिज्जै ।
पुन इकानवा चढ्यों संधि दोहन को मानहु ।
रूत बंसत अति शुभति चैत्र मास पछानहु ।
तभि भई समापति ग्रंथ को रामायण सुन्दर सरस।
कवि हाथ जोरि बिनतो करति चाहति चित रघुपति दरस[62] ।। ।4 ।।

इस काव्यानुवाद में सात कांड (बालकांड, अयोध्याकांड, अरण्यकांड, किष्किंधाकांड, सुन्दर कांड, युध्द कांड, उत्तरकांड) है। परन्तु इसके सर्गों की संख्या विभिन्न पाई जाती है।[63] इस ग्रंथ में अन्य ग्रंथों की तरह ही कवि ने अकालपुरुष पारब्रह्म के स्वरूप-निरूपण के साथ साथ अपने इष्टदेव गुरु साहिबान को वन्दना के छन्द दिए हैं। तथा गुरु नानक आदि गुरु साहिबान को उसी पारब्रह्म का रूप बताया है। इसमें सरस्वती आदि की वन्दना के छन्द भी मिलते हैं। गुरुओं की वन्दना के पश्चात् श्री राम के स्तुतिपरक मंगलचरण दिये गए हैं। बाल्मीकि ने अपने काव्य में बिना किसी प्रस्तावना के काव्य का आरंभ अपने नायक के कुल (इक्ष्वाकुवंश) से परिचय किया है तथा साथ ही अयोध्या का वर्णन भी किया है।[64] जिस में उनकी महिमा का भी संकेत है। बाल्मीकि रामायण के आरंभ में श्री नारद जी से बाल्मीकि जी पूछते है कि इस समय इस संसार में गुणवान्, वीर्यवान, धर्मज्ञ, कृतज्ञ, (किए हुए उपकार को न भूलने वाले) सत्यवादी, दृढ़व्रत, अनेक प्रकार के चरित्र वाले प्राणीमात्र के हितैषी, विद्वान, समर्थ, अति दर्शनीय, धैर्यवान, क्रोध को जीतने

62- बाल्मीकि रामायण लंकाकांड सर्ग ।30

63- द्रष्टव्य : गु. प्र. सू. ग्रं. प्र., पृ. ।28 (फुटनोट)

64- बुल्के, कामिल : रामकथा : उत्पत्ति और विकास, पृ ।40
तथा मैकडानल : हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर, पृ. 304

तेजस्वी, ईर्ष्याशून्य और युध्द में क्रुध्द होने पर देवताओं को भी भयभीत करने वाले कौन है?नारद जी इस प्रश्न के उत्तर में कहते है कि यह सभी गुण महाराज इक्ष्वाकु वंश के उत्पन्न श्री रामचन्द्र जी में मिलते हैं ।

"नारदं परिपप्रच्छ बाल्मीकिर्मुनिपुंगवम् ।। । ।।
को न्वस्मिन्सांप्रतं लोके गुणवान्कश्च वीर्यवान ।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढव्रतः ।। 2 ।।
चारित्रेण च को युक्तः सर्वभूतेषु को हितः ।
विद्वान्कः कः समर्थश्च कश्चैकप्रिय दर्शनः ।। 3 ।।
आत्मवान्को जितक्रोधो द्युतिमान्को नसूयकः ।
कस्य बिभ्यति देवाश्च जातरोषस्य संयुगे "।। 4 ।। [65]

इन्हीं पंक्तियों के कवि द्वारा किए गये काव्यानुवाद की सुन्दरता देखनी हो तो निम्न पंक्तियों में देखिए :-

"भयो किस काल में बिसाल गुणवान कौण ?
सभ पै क्रिपाल बलवान शान्ति आतमां ।
दृढ व्रत, सत्य वाक, क्रोध जितु, बुधीवान,
एक प्रिय दासन महान हुइ धर्मातमां ।
सदा अनुसूयक समर्थ विदवान सरब,
मन वसीकार जो क्रितग्य हुइ महातमां ।
रोस हूं को जोश करे सुरासुर भाजैं रण,
ऐसो क्रित होइ सो बताओं रिखी सातमा ।। 20 ।। [66]

रामकथा के रूपक की योजना द्वारा प्रतिपाद्य विषय की महता का भी प्रतिपादन किया है :-

---

65 - बाल्मीकि रामायण : बालकांड , प्रथम सर्ग, पृ॰ 1-2

66- बाल्मीकि रामायण : बालकांड, सर्ग पहला, कवि कृत काव्यानुवाद ।
गु. प्र. सू. ग्रं. प्र. , पृ. 131 पर उद्धृत ।

मुनि बालमीक गिरवर रमणीक हूं ते,
निकसो है नोक कथा धार गंग की ।
मोह आदिक पंच की प्रपंच पाप, वंचत है,
नवौ रस छवि है उतंग नित रंग की ।
तीन लोक पावन करति, उज्जल बरन अपार,
अस रमाइनि गंग की बंदन बारं बार ।। 8 ।।[67]

इस मक्ष तरह के रुपक की योजना 'गुरु प्रताप सूरज' में भी कुछ अन्तर के साथ हुई है।[68]

उक्त रामकथा के स्वरूप में कवि जी ने किसी प्रकार का संशोधन या परिवर्तन करने का प्रयास नहीं किया है। इस सम्बन्ध में उन्होंने संकेत भी किया है :-

बाल्मीक मुनि की क्रित, सरब जथारथा जानि ।
ज्यों बीती बरनी तथा बाध न घाट पछान ।। ।4 ।।
मन की उकति बनाइ कै, नहिं कीनो इतिहास ।
बोलनादि ते जिम क्रिया, जथायोग परकाश ।। ।5 ।।[69]

तथा - मुनि की कह्यो न छोरियो और नहीं बधि पाइ ।
सरब जथारथ जनीए साच भइ जिस भाइ ।। ।8 ।।[70]

उक्त पंक्तियों से विदित होता है कि कवि केवल मात्र अनुवादक है। उन्होंने अपनी ओर से कहीं भी कुछ घटाना या बढ़ाना नहीं पसंद किया। हां कहीं कहीं पर छन्द-योजना

67- बाल्मीकि रामायण : बालकांड, सर्ग पहला, (काव्यानुवाद)। गु. प्र. सू. ग्रं. प्र. पृ. ।3।

68- गु. प्र. सू. रैन 2, अंशु 36, अंक 23, पृ. 6407

69- बाल्मीकि रामायण (भाषा) अरण्यकांड, सर्ग 72

70- वही , बालकांड , सर्ग 77

के लिए अवश्य स्वतन्त्रता से कार्य किया है। उनको योग्यता इस बात से भी विदित है कि वे इस ग्रंथ के प्रक्षिप्तांशों से भलो भान्ति परिचित थे । उत्तराकांड के 12 सर्गों का उन्होंने यद्यपि अनुवाद किया है परन्तु वह इन्हें प्रक्षिप्त मानते थे उन्होंने लिखा भो है :-

दस पूरबले सरग हैं इह द्वै कोन बखानि ।
द्वादश कोने आन के पंडित लेहु पछान ।। [71] ।।

इस तरह से निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि यद्यपि इन अनूदित रचनाओं में कवि के पास अपने कला कौशल के प्रदर्शन का अवकाश कम था तथापि उनकी अनुवाद कला, काव्य पतिभा, अनुभूतिपरकता, आलंकारिकता को रुचि, छंद, योजना की विविधता, हिंदू सिक्ख एकता को भावना, ब्रजभाषा को मधुरता आदि का निरुपण उद्वितोय बन पड़ा है।

<u>5- आतम पुराण : टोका</u>

'गुरु प्रताप सूरज' को राशि 1, अंशु 5 में महाकवि[72] जो ने बताया है कि रामायण के अनुवाद के पश्चात् उन्होंने आतमपुराण' को टोका लिखो है। इस वेदांत दर्शन के ग्रंथ में उपनिषद् साहित्य का संचय हुआ है। यह रचना लगभग सं. 1891 वि. को[73] है। कवि रचित इस ग्रंथ को कोई भी प्रति अभो तक प्राप्त नहीं हुई है। भाई वोरसिंह जो को काफो खोज के पश्चात् एक पृष्ठ उदाहरण मात्र मिला है जो श्वेताश्वेतर

71- बाल्मीकि रामायण : (भाषा) उत्तराकांड, सर्ग 73

72- पुन विदान्त को ग्रंथ महान । उपनिषधनि को जहिं बख्यान ।
आतम को पुराण जिस नामु । सकल बनायो सो अभिराम ।। 13 ।।
— गु. प्र. सू. राशि 1, अंशु 5, अंक 13, पृ. 1325

73- गु. प्र. सू. ग्रं. प्र., पृ. 133

उपनिषद् के कुछ भाग का टीका है। यह टीका भी गद्य में किया गया है।[74]

6-गुरु प्रताप सूरज' :

'आत्म-पुराण' टीका के लिखने के पश्चात् संवत् 1892 वि॰ के लगभग कवि जी ने अपनी कीर्ति के प्रकाशक ग्रंथ 'गुरु प्रताप सूरज' में सिक्ख गुरुओं के प्रताप का वर्णन किया। उन्होंने स्वयं लिखा है :-

बहुत बरख बीते जब लहे। गुर जस रचन चाहते रहे।
उर अभिलाख निति को मेरो। सतिगुर कृपा द्रिशटि करि हेरे।। ।4 ।।
भयो अचानक संचै आई सरब गुरनि को जसु समुदाई।
चाहति भए आप गुर जबहूं। भा संचै दस गुर जसु सभि हूं।। ।5 ।।
हेरि उमंग मोहि मन आई। करन लग्यो इह ग्रंथ सहाई।
राम कुइर के मुख ते कथा। बरनो सभि मैं होई जथा।। ।6 ।।[75]

इन पंक्तियों में बहुत वर्ष पूर्व की ओर संकेत किया गया है। जिनका भाव 'नानक प्रकाश' के लेखनकाल की स्मृति दिलाता है। अब जब गुरु-इतिहास की सामग्री संचित हो गई तब उन्होंने सं॰ 1892 वि॰ के लगभग गुरु प्रताप सूरज का सृजन नियमित रूप से करना आरंभ किया। आदि ग्रंथ, दशम ग्रंथ, वारां भाई गुरदस, सिक्खां भक्तमाल, पांच सौ साखी, सौ साखी, महिमा प्रकाश, गुर विलास, (सुक्खा सिंह), गुरु शोभा (सेनापति), आदि अनेक ग्रंथों की सामग्री के आधार पर तथा स्वयं देखे अनेक स्थानों,[76] लोगों से सुने समाचारों,[77] यात्राओं[78] द्वारा विभिन्न प्रकार के की सामग्री के आधार पर

74- गु. प्र. सू. ग्रं. प्र., पृ. 133

75- गु. प्र. सू. रा. 1, अंशु 5, पृ. 1325

76- गु.प्र. सू. ग्रं. प्र. पृ. 178-192 तथा 151

77- वही, पृ॰ 153

78- वही, पृ॰ 153-155

इस विराट् प्रबन्ध काव्य का सृजन किया गया ।कहा जाता है कि जीवनसिंह आदि चार लेखक इस ग्रंथ को लिखा करते थे और कवि जी बोल बोल कर उन्हें लिखवाया[79] करते थे। इस प्रकार उक्त बिखरी हुई सामग्री को इसमें एक स्थान पर सुन्दर रीति से सुनियोजित कर प्रस्तुत करने का उनका प्रयास प्रशंसनीय है। इसमें गुरु नानकदेव जी के अतिरिक्त अन्य नौ गुरु साहिबान का जीवन इतिहास बड़े विस्तार के साथ अंकित है। रामचरित की मार्मिक कथा की तरह गुरु कथा का इसमें सुन्दर वर्णन मिलता है। गुरु साहिबान के उपदेशों, आदर्शों आदि के माध्यम से जहां गुरमत-दर्शन का निरूपण किया गया है वहां भारतीय संस्कृति के विभिन्न तत्वों का भी सुन्दर प्रतिपादन मिलता है।

दसों गुरुओं के प्रताप को सूर्य के समान प्रकाशमान बताते हुए इस ग्रंथ में नौ गुरुओं के व्यक्तित्व पर सूर्य की राशियों, छः ऋतुओं, दो ऐनो (उत्तरायण और दक्षिणायण) तथा अनेक अंशुओं (किरणों) के रूपक[80] के माध्यम से प्रकाश डाला गया है। इस ऐतिहासिक कथात्मक चरित काव्य में काव्यत्व, प्रबन्धात्मकता, पौराणिकता, इतिवृत्तात्मकता, रसात्मकता, भावों को उदात्तता एवं मार्मिकता, नवरसों का निरूपण प्रकृति चित्रण, ऋतु-वर्णन, वस्तु-वर्णन, आध्यात्मिकता एवं दार्शनिकता, छन्दों की विविधता तथा अलंकार-योजना को उत्कृष्टता अवलोकनीय है।

भाई सन्तोख सिंह ने समाज के व्यापक परिसर का चित्रण अपने काव्य ग्रंथों में किया है। उनमें तत्कालीन समाज की राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक, दार्शनिक एवं साहित्यिक परिस्थितियों का संकलित प्रभाव प्रसंगानुसार संश्लिष्ट अथवा विश्लिष्ट रूप में प्रतिफलित हुआ है। उन्होंने जीवन के विभिन्न पक्षों को बड़ी सूक्ष्मता से देखा परखा था। उनकी वाणी में तत्कालीन युग का स्वर प्रस्फुटित हुआ है। वे युगीन परिस्थितियों से प्रभावित थे परन्तु उन्होंने युगीन जन समुदाय के मंगल विधान के लिए परंपरानुमोदित समाधानों को गुरमत के नवीन प्रकाश के रूप में प्रस्तुत करते

79- गु. प्र. सू. ग्रं. प्र., पृ. 14।

80- गु. प्र. सू. रा. 12, अंशु 68, अंक 22-23, पृ. 4483

हुए अपनी प्रगतिशीलता का भी परिचय दिया । वे सर्वात्मभाव की पराकाष्ठा पर पहुंचे हुए कवि थे । उनके ऐसे दृष्टिकोण के निर्माण में 'गुरु-वाणी का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। गुरुओं की आराधना में तल्लीन हृदय से जो कुछ भी निसृत हुआ उसमें मानव कल्याण की भावना निहित थी । इसी परिप्रक्ष्य में उनके काव्य में प्रतिफलित परिस्थितियों का अवलोकन करना चाहिए। रीतिकालीन कवि होते हुए भी उनकी वाणी में भक्तिकालीन भावनाओं की छाप देखी जा सकती है।

महाकवि सन्तोख सिंह का प्रादुर्भावकाल सम्वत् 1844 वि॰(तदानुसारसन् 1788-1844 ई॰) माना जाता है। 18वीं शताब्दी के अन्त और 19 वीं शताब्दी के मध्य में अवतरित इस युग को भारतीय इतिहास के मुग़लकाल के ह्रासकाल एवं अंग्रेजो के सत्ता एवं राज्य विस्तारकाल के अन्तर्गत माना जाता है। 'गुरु प्रताप सूरज' के अन्तिम पृष्ठों में कैथल की लूट का वर्णन मिलता है जो अंग्रेजों के राज्यविस्तार संबंधी नीति के फलस्वरूप हुई। 'गुरु प्रताप सूरज' में केवल सिक्ख इतिहास ही अंकित नहीं है प्रत्युत इसमें तत्कालीन मुग़ल-इतिहास की सामग्री भी संकलित है। जिस का ऐतिहासिक मूल्य भी कुछ कम नहीं है। मुग़ल सत्ता के उत्थान एवं ह्रासकाल की कहानी भी इस में अंकित है। हमारे इस कवि ने जहां मुग़ल शासन काल के लगभग 300 वर्षों की कहानी एवं परिस्थितियों का यथार्थ एवं विशद चित्र प्रस्तुत किया वहां रीतिकालीन प्रचलित साहित्यिक मान्यताओं का भी अनुसरण किया । उनके काव्य में ब्रजभाषा के लालित्य, छन्दविधान की सुन्दर योजना, अलंकार प्रियता, शृंगार रस का मर्यादित चित्रण, वीररस का भव्य प्रदर्शन, बिम्ब-विधायिनी कल्पना शक्ति का अनुपम नृत्य, प्रकृति चित्रण की स्वाभाविकता आदि प्रतिबिम्बित है। इन के प्रातिभ संस्पर्शों को पाकर युगीन काव्य-कला भी सजीव बन गई है ।

द्‌वितीय अध्याय

'गुरु प्रताप सूरज' का ऐतिहासिक अध्ययन

द्वितीय अध्याय

'गुरु प्रताप सूरज' का ऐतिहासिक अध्ययन

प्रवेश

'गुरु प्रताप सूरज' सिक्ख गुरु तथा मुग़लकालीन इतिहास से सम्बन्धित महाकाव्य है। इसमें वर्णित जीवन-चरित, एवं घटनाएं आदि इसे शुध्द इतिहास के भी निकट ले जाती है। इसमें वेद, एवं दर्शन-शास्त्र की मर्यादाओं का उल्लेख भी है और धर्म तथा नीति का निरूपण भी। इसमें पौराणिक कथाओंका आख्यान भी है और ऐतिहासिक इतिवृत्त भी । उसकी शैली महाभारत की शैली की स्मृति दिलाती है। यहां हमें यह जान लेना चाहिए कि 'इतिहास क्या है?' तथा इतिहास के प्रति भारतीय और पाश्चात्य दृष्टिकोण क्या रहा है। तभी हम इसकी ऐतिहासिकता की सही परीक्षा कर सकेंगे ।

इतिहास : आत्मरक्षा का रूप

मनुष्यों की नैसर्गिक वृत्तियों में आत्मरक्षा सब से प्राचीन और प्रबल प्रकृति है। सारी एषणाएं – पुत्र एषणा, दार-एषणा, लोक-एषणा, वित्त-एषणा, प्रभुत्व-कामना आदि इसी एक वृत्ति के अन्तर्गत समाहित हैं। मनुष्य का सारा क्रिया-व्यवसाय इसी एक भाव से प्रेरित होता है। वह अपने यशः शरीर की रक्षा के लिए अपने सांसारिक जीवन का अन्त कर देता है। देश की स्वतन्त्रता के लिए जलती आग में कूद पड़ने वाले वीरव्रती अपनी विस्तृत आत्मा की रक्षा के लिए ही ऐसा कार्य करते हैं। बाबू गुलाब राय का कथन है कि "हमारा सारा साहित्य और विज्ञान भी आत्म-रक्षा का स्वरुप है। हमारा धर्म, हमारे वर्तमान और भविष्य की रक्षा करता है। काव्य भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों की ही रक्षा के उद्देश्य से प्रवृत्त होता है। विज्ञान धर्म की रक्षा की भान्ति वर्तमान औरभविष्य से सम्बन्ध रखता है। वह प्रकृतिक शक्तियों पर मनुष्य का अधिकार स्थापित कर उसकी रक्षा करता है। दर्शन आत्मा और संसार के तत्व का विवेचन कर आत्मा ही नहीं परमात्मा की भी रक्षा

करता है। इतिहास हमारे भूत को रक्षा कर भविष्य की आत्मरक्षा और आत्मोन्नति का मार्ग निर्धारित करने में सहायक होता है।[1]"

इतिहास का सामान्य और व्यापक अर्थ

सामान्य रूप में इतिहास का अर्थ भूतकाल में घटित घटनाओं और उनसे सम्बन्धित किसी वस्तु, व्यक्ति या जाति के वृतान्त के प्रमाणिक लेखे से लिया जाता है।[2] उसमें भूतकाल को घटनाओं एवं उनसे संबन्धित महापुरुषों के चरित्रों का आख्यान रहता है। इसीलिए उसका सम्बन्ध नाम, घटना और तिथियों से जोड़ा जाता है। प्राचीन काल में 'इतिहास' शब्द अपने इसी अर्थ में प्रयुक्त होता था। उसका सम्बन्ध 'जैसा था वैसा ही' प्रस्तुत करने के प्रयत्न से था। उसके लिए भले बुरे, उपयोगी-अनुपयोगी आदि का विवेचन उतने महत्व का नहीं जितना कि यथार्थ रूप प्रस्तुत करना। व्यापक अर्थ में विधाता की इस अनेकरूपात्मक सृष्टि में जो कुछ घटित होता है, उसके समस्त क्रिया-कलाप की कहानी को 'इतिहास' कहा जाता है। इस सृष्टि में मनुष्य और मनुष्येतर प्रकृति के प्रत्येक पल का लेखा उसमें अंकित रहता है। इस व्यापक अर्थ में इतिहास मानवीय क्रियाओं का एक रिकार्ड ही है। इस दृष्टि से प्रत्येक व्यक्ति, वस्तु, संस्था, जाति, स्थान आदि सभी का इतिहास हो सकता है। परन्तु सामान्यतः 'इतिहास' शब्द से किसी देश के प्राचीनतम युग से लेकर वर्तमान युग तक की राष्ट्रीय, सामाजिक या संस्कृतिक घटनाओं के क्रमबध्द प्रवाह का लेखा ही समझा जाता है। उसमें मनुष्य के अतीत के व्यवहार और जीवन से सम्बन्धित घटनाएं ही आती हैं। उसकी विषय-वस्तु मनुष्य का व्यवहारिक जीवन ही है।

1- डा० गुलाब राय : प्रबन्ध प्रभाकर, पृ० 308 (1952)

2- "History means record of happenings as well as the sequence of happenings."
—Dharmendra Goel: Philosophy of History Introduction. Ch. I, p. 1

इतिहास : व्युत्पत्ति लभ्य शाब्दिक अर्थ

निरुक्त के अनुसार इसका व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ इस प्रकार है। इति+ ह+आस= इतिहास। इति (इस प्रकार से अथवा प्रत्यक्ष निर्देश का द्योतक), ह (निश्चयेन अथवा आगम एवं परंपरोपदेश का द्योतक), आस (था, वर्तमान था अथवा प्रतिष्ठा या असन) अर्थात् प्राचीनकाल में निश्चय रूप से होने वाली घटना 'इतिहास' के द्वारा निर्दिष्ट की जाती थी।[3] 'इतिहास' का व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ प्राचीन काल में वास्तव रूप में घटित होने वाली घटना का द्योतक है। अन्य शब्दों में इसका अर्थ 'अतीत का प्रयक्ष निर्देशक परंपरोपदेश को प्रतिष्ठित करते हुए वर्तमान को सुखकर बनाता है।' अर्थात् यह अतीतकालीन घटनाओं एवं वृतान्तों के विषय में निश्चय पूर्वक तथ्यों को प्रस्तुत करता है और इस कथ्य को प्रमाणों द्वारा सिध्द करता है कि उनसे सम्बन्धित सत्य ऐसे ही थे। इस तरह से इतिहास भूत को रक्षा कर भविष्य की आत्मोन्नति के मार्ग को प्रशस्त करता है। जहां प्रत्यक्ष दृष्टान्तों के द्वारा अतीती की घटनाओं से कुछ उपदेश मिलता है वहां इतिहास तत्व का अस्तित्व माना जाता है।[4]

इतिहास : अर्थ विवेचन और स्वरूप

इतिहास के उपर्युक्त अर्थों से दो बाते स्पष्ट होती है – एक तो यह कि इतिहास का सम्बन्ध अतीत से है; दूसरे यह कि उसके अन्तर्गत केवल वास्तविक या यथार्थ घटनाओं का समावेश किया जाता है। उसमें उन सभी लिखित या मौखिक वृत्तों को सम्मिलित किया जाता है जिनका सम्बन्ध अतीत की यथार्थ परिस्थितियों व घटनाओं से है और साथ ही उसका सम्बन्ध केवल 'प्रसिध्द घटनाओं' से ही नहीं अपितु उन घटनाओं से भी है जो प्रसिध्द न होते हुए भी यथार्थ में घटित हुई हों। वस्तुतः आज 'इतिहास' शब्द को

3- निदानभूतः 'इति ह एवमसीत्' इति य उच्यते स 'इतिहासः'
(निरुक्त 2·3·1 पर दुर्गाचार्य की वृत्ति)

4- अभिनवगुप्त पादाचार्य का मत ।

इतने व्यापक अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है कि उसके अन्तर्गत अतीत की प्रत्येक स्थिति, परिस्थिति, घटना प्रक्रिया एवं प्रवृत्ति की व्याख्या का समावेश हो जाता है। अतः संक्षेप में अतीत के किसी भी तथ्य, तत्व एवं प्रवृत्ति के वर्णन, विवरण विवेचन व विश्लेषण को- जो कि काल विशेष या काल-क्रम की दृष्टि से किया गया हो - 'इतिहास' कहा जा सकता है। वह तो जीवन अनुभवों की खान भी है और आज का युवक उसका अध्ययन इस लिए करता है कि वह जाति के अनुभवों से लाभ उठा सके ।

इतिहास और उसका क्षेत्र

इतिहास के उक्त स्वरूप से विदित होता है कि इतिहास किसी प्राचीन बात को कहता है। एक प्रकार से इसका क्षेत्र इतना विस्तृत है कि सारा विश्व इसके घेरे में आ जाता है। पृथ्वी का इतिहास, सूर्य का इतिहास, वनस्पतियों का इतिहास, विकास क्रम में मनुष्य का इतिहास, विज्ञान का इतिहास, भाषा का इतिहास, साहित्य का इतिहास, धर्म का इतिहास, समाज का इतिहास, राजनीतिक सत्ता का इतिहास आदि इतिहास की शाखाएँ-प्रशाखाएँ हैं ।इस प्रकार विश्व का ज्ञान भंडार इतिहास के विभिन्न रूपों का समुदाय माना जा सकता है। किन्तु आज कल श्रमविभाजन(Division of Labour) और विशेषीकरण(Specialisation)के कारण इतिहास के इन विभिन्न रूपों को ~~को~~ अलग अलग नाम दे दिये गये हैं और अपने अपने विषय का स्वराज्य दे दिया गया है। जैसे-सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी आदि ग्रहों उपग्रहों का इतिहास ज्योतिष अथवा खगोल विद्या के सुपुर्द कर दिया गया है। पृथ्वी का इतिहास भूगर्भ-विद्या का विषय बन गया है। वह पृथ्वी की तहों और पर्तों का अध्ययन कर उसकी आयु निश्चित करता है। मनुष्य नाम की जानवरों की उपजाति का इतिहास प्राणि-शास्त्र के अन्तर्गत विकासवाद का विषय बन गया है। भाषा के इतिहास को हम भाषा-विज्ञान कहने लगे हैं। समाज का इतिहास समाज-शास्त्रियों की चिन्ता का विषय है। फिर इतिहास का उचित क्षेत्र क्या है? किसी जाति के राजनीतिक विकास या ह्रास के क्रमिक लेखन को 'इतिहास' कहते हैं।[5] इस अर्थ में

5- डा॰ गुलाब राय : प्रबन्ध प्रभाकर , पृ॰ 309

'गुरु प्रताप सूरज' सिक्ख जाति के विकास का हो तो 'इतिहास' है।

इतिहास : कला अथवा विज्ञान

प्राचीन काल से ही इतिहास को अध्ययन के एक स्वतन्त्र विषय के रूप में मान्यता प्राप्त है किन्तु अध्येताओं के दृष्टिकोण एवं पध्दति के अनुसार उसका स्वरूप बदलता रहा है ; इस लिए कभी उसे कला के क्षेत्र में और कभी विज्ञान के क्षेत्र में स्थान दिया जाता रहा ।वस्तुतः इतिहास कला है या विज्ञान, यह प्रश्न आज भी विवाद का विषय बना हुआ है।[6] इस विवाद के मूल में यह भ्रान्ति विद्यमान है कि कोई भी वस्तु या विषय अपने-आप में कला या विज्ञान को कोटि में आ सकती है जबकि वास्तविकता यह है कि कला या विज्ञान का निर्णय विषय वस्तु के आधार पर नहीं, अपितु उसकी अध्ययनपध्दति या रचना-पध्दति पर निर्भर है। इतिहास हमें अतीत का इतिवृत्त प्रदान करता है, किन्तु यह हम पर निर्भर है कि उस इतिवृत्त का उपयोग किस प्रकार करते हैं । यदि अतीत के इतिवृत्त को हम आत्मपरक दृष्टिकोण, वैयक्तिक अनुभूति एवं ललित शैली में प्रस्तुत करते है तो वह कला को संज्ञा से विभूषित हो सकता है जबकि वस्तुपरक दृष्टिकोण, तर्कपूर्ण शैली एवं गवेषणात्मक पध्दति से प्रस्तुत किया गया अतीत का विवरण 'विज्ञान' की विशेषताओं से मुक्त माना जा सकता है। वस्तुतः इतिहास से कव, साहित्यकार, उपदेशक, शोधकर्ता आदि विभिन्न वर्गों के लोग प्रेरणा ग्रहण करते रहे हैं तथा उनकी दृष्टि व पध्दति के अनुसार उसका स्वरुप भी बदलता रहा है - ऐसी स्थिति में इतिहास के भी विभिन्न रूप उपलब्ध हों तो कोई आश्चर्य नहीं ।

फिर भी आधुनिक युग में इतिहास को कला की अपेक्षा विज्ञान के ही अधिक निकट माना जाता है। अतः प्रत्येक इतिहासकार से दृष्टिकोण की तटस्थता या वस्तुपरकता, तथ्यों की यथार्थता और निष्कर्षों को प्रामाणिकता की अपेक्षा की जाती है, यह दूसरी बात है कि विषयवस्तु की अविद्यमानता व अप्रत्यक्षता के कारण भौतिक-

---

6- द्रष्टव्य : श्री नलिन विलोचन शर्मा : साहित्य का इतिहास दर्शन , पृ॰ 5
प्रकाशक (बिहार राष्ट्र भाषा-परिषद् पटना), (1960) ।

विज्ञान'की सी वैज्ञानिकता का आविर्भाव उसमें शायद हो संभव हो । वास्तव में विषय-भेद से स्वयं विज्ञान भी अनेक श्रेणियों एवं कोटियों में विभक्त हो जाता है, उदाहरण के लिए मनोविज्ञान, समाज-विज्ञान व भाषा विज्ञान को हम विज्ञान की उसी श्रेणी में स्थान नहीं दे सकते जिस श्रेणी में भौतिक विज्ञान, रसायनशास्त्र और जीवविज्ञान को देते है। अतः 'इतिहास' को भी हम उसी श्रेणी के विज्ञान में स्थान दे सकते हैं, जिस श्रेणी में भाषा विज्ञान व समाज विज्ञान को देते हैं । परन्तु इतिहासकार यदि उक्त दोनों ~~दृष्टि~~ दृष्टिकोणों — कलाकार का दृष्टिकोण और वैज्ञानिक का दृष्टिकोण (निष्पक्ष विवेचन)-- दोनों को अपना कर इतिहास लेखन में प्रवृत होता है तो वह कलाकार और वैज्ञानिक दोनों माना जायेगा। उसके व्यक्तित्व में दोनों का समाहार हो जायेगा।[7]

इतिहास-दर्शन : परिभाषा और स्वरूप

जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है, इतिहास के अध्ययन में विभिन्न विद्वान विभिन्न प्रकार के दृष्टिकोणों का प्रयोग करते रहे हैं तथा ये दृष्टिकोण भी समय समय पर बदलते रहे हैं — इसी तथ्य के आधार पर 'इतिहास-दर्शन' विषय की स्थापना हुई है जिसमें इतिहास के सम्बन्ध में प्रयुक्त व प्रचलित विभिन्न दृष्टिकोणों, धारणाओं व विचारों का अध्ययन किया जाता है। अस्तु, इतिहास सम्बन्धी इन्हीं विचारों या धारणाओं को समूह-रुप में 'इतिहास-दर्शन' को संज्ञा दी जाती है ।

वैसे पश्चिम के कुछ विद्वानों ने 'इतिहास-दर्शन' (Philosophy of History)[8]

7- "Historians are thus both scientists and artists."
--Dr. Dharmendra Goel: Philosophy of History, p.25

8- Philosopyn of history ...stands for that sort ofspeculation that is grounded on the framework of 'actual-events' first known by authentic History--which are investigated with a view to know if there is rational plan or scheme involved in them or if they have some intelligible end. Further it investigates the force, and factors that precipitate historical transformations and retardations. In short it studies the nature of culture."
---Dr. Dnarmendra Goel: Philosopny of History. p.1-2

का प्रयोग संकीर्ण व सीमित अर्थ में करते हुए अपने अपने दृष्टिकोणों को ही उस पर आरोपित करने का प्रयास किया है।[9] सर्वप्रथम वोल्तेर ने इस संज्ञा का प्रयोग किया और उसके अर्थ को केवल 'आलोचनात्मक या वैज्ञानिक इतिहास' तक सीमित रखने का प्रयास किया। हीगल[10] ने इसका प्रयोग विश्व इतिहास के अर्थ में तथा परवर्ती युग के कुछ विद्वानों ने केवल परीक्षणात्मक यथार्थवादी दृष्टिकोण के लिए किया। "बीसवीं शताब्दी के कुछ विचारकों ने इस परीक्षणात्मक दृष्टिकोण का विरोध किया और प्रकृतिक विज्ञानों की चिन्तन-पध्दति से इतिहास के अध्ययन को भ्रान्तिमूलक समझा। इतिहास-दर्शन के विषय में हम कोई भी दृष्टिकोण ग्रहण करें यह तो मानना ही पड़ेगा कि मानवता के अतीत के अनुसंधान के अपरिमित विस्तार को किसी नियमित आधार पर सज्जित करके मानव कार्य-कलाप के विशाल क्षितिज को एक समन्वयात्मक दृष्टि से देखना अवश्यक है।[11]" किन्तु आज -- 'इतिहास-दर्शन' के नाम से उपलब्ध पुस्तकों में पूर्व से लेकर पश्चिम तक तथा प्राचीन से लेकर आधुनिक काल तक के उन सभी दृष्टिकोणों व विचारों का प्रतिपादन किया जाता है जो इतिहास के अध्ययन

9- (i) डा॰ बुध्दप्रकाश : इतिहास-दर्शन , पृ 9

(ii) "The name 'philosophy of history' was invented in eighteenth century by Voltaire, who meant by it no more than critical or scientific history, a type of historical thinking in which the historian made up his mind for himself instead of repeating whatever stories he found in old books."

—R.G.Collingwood: The idea of History. p.1 (Ed.1966)

10- The idea of History p.1

11- इतिहास दर्शन : पृ॰ 9

में प्रयुक्त हुए हैं। ऐसी स्थिति में यदि हम ~~सं~~ एकांगी और एक पक्षीय धारणाओं से बचते हुए'इतिहास-दर्शन' का सर्वांगीण व सर्वपक्षीय बोध प्राप्त करना चाहते हैं तो हमें उसे उसी व्यापक एवं समन्वित अर्थ में ग्रहण करना होगा जिसके अनुसार 'इतिहास-दर्शन' उन दृष्टिकोणों, विचारों व अध्ययन-पध्दतियों के समूह का सूचक हैं, जिनका प्रयोग इतिहास के अध्ययन में संभव है।

भारतीय इतिहास परंपरा

पुरातनता और परंपरा के बीच बिंदु और रेखा का सम्बन्ध है। पुरातन देश होने के नाते भारत सहज ही परंपरा प्रिय रहा है। भारतीय तत्व चिन्तक मनीषियों और साधक ऋषियों ने अपनी युग-युगीन धर्म और संस्कृति की धाराओं को अजर अमर बनाने के लिये जो प्रयास किए हैं वे आज'आर्ष ग्रंथों' के रुप में हमारे समक्ष हैं। वेद, उपनिषद्, पुराण, स्मृतिग्रंथ, रामायण, महाभारत आदि ज्ञान राशि के अक्षय कोष हैं। ये ही उनके धर्म ग्रंथ हैं, ये ही दार्शनिक आलेख, ये ही उनके इतिहास, ये ही काव्य-कृतियाँ और ये ही उनके समस्त ज्ञान-विज्ञान और कला के भंडार। भारतीय मस्तिष्क की इस 'समन्वयात्मक-बुध्दि' ने उन्हें कभी छांड दृश्यों में नहीं उतरने दिया, अपितु जीवन को एक इकाई के रुप में ग्रहण कर उससे संबंध्द तमाम तथ्यों को एक ही स्थान पर संग्रहीत करने के लिये प्रेरित किया है। यही कारण है कि आज का वैज्ञानिक और विश्लेषणवादी मस्तिष्क जब किसी एक दृष्टिकोण से इन भारतीय ज्ञानकोशों (संहिताओं) का अवगाहन करता है तो खिन्न हो उठता है। इतिहास-कार जब इन वीथियों में प्रविष्ट होता है तो उसे इतिहासपादप पर कला और साहित्य की शाखाएँ, गणित-ज्योतिष आदि के किसलय, दर्शन के पुष्प एवं धर्म पुरुषार्थचतुष्टयादि के फल चित्र'विचित्रताओंके सहित दृष्टिगोचर होते है, जिन्हें देखकर वह तुरंत निर्णय दे देता है कि 'भारतीयों में इतिहास विवेक' था ही नहीं।[12]

12- (i) "History is the one weak point in Indian Literature. It is in fact non-existent....."
---Macdonell: Sanskrit Literature, p-10

(ii) "Ancient India has bequeathed to us no historical works"
---Pargiter: Ancient Indian Historical Traditions p.2

(iii) ---E.C. Sachav: Alberuni's India p-10

भारतीय कल्पना में इतिहास का स्वरूप

'वस्तुतः इस देश में इतिहास को ठीक आधुनिक अर्थ में कभी नहीं लिखा गया।'[13]

भारतीय आचार्यों ने इतिहास' शब्द को जिस अर्थ में प्रयुक्त किया है वह आज के 'इतिहास-दर्शन' से सर्वथा भिन्न है।भारतीय दृष्टि में –

(क) जो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के उपदेशों से समन्वित एवं पूर्व वृत्तांतों को कथा से युक्त है, उसे 'इतिहास ' कहेंगे[14]। "इतिहास' शब्द का सर्वप्रथम उल्लेख अथर्ववेद में प्राप्त होता है।शतपथ ब्राह्मण, जैमिनीय वृहदारण्यक तथा छान्दोग्योपनिषद् में भी प्रयुक्त हुआ है। वैदिक साहित्य में अन्वाख्यान और इतिहास का भिन्न प्रकार की कृतियों के रूप में स्फुट निर्देश है।आगे चलकर इतिहास, पुराण और आख्यान – ये स्पष्ट भेद कथित[15] है।"

(ख) पुराण, इतिवृत्त, आख्यायिका, उदाहरण, धर्मशास्त्र और अर्थ शास्त्र सब इतिहास हैं।[16]

इस प्रकार भारतीय विचारधारा में इतिहास का विषयांचल बड़ा विस्तीर्ण है जिस में नाना विषय-विधाओं का समाहार है – वह किसी एक सीमा-रेखा में आबध्द नहीं ।

13- डा॰ हजारी प्रसाद द्विवेदी : हिंदी साहित्य का आदिकाल, (तृतीय संस्करण)पृ॰ 77

14- धर्मार्थकाममोक्षाणामुपदेशसमन्वितं ।पूर्ववृत्तं कथायुक्तमितिहासं प्रचक्षते ।।

— महाभारत

तथा वी॰ एस॰ आप्टे – दि प्रेक्टिकल संस्कृत – इंगलिश - डिक्शनरी, पृ॰ 276

15- डा॰ श्री नलिन विलोचन शर्मा: साहित्य का इतिहास दर्शन, पृ॰ 2

(I)अथर्व वेद, 15॰ 6॰ 4॰

(II) शतपथ ब्राह्मण, 13, 4, 3, 12, 13

(III) वृहदारण्यक, 2, 4, 16, 4, 12, 5, 11

(I) छान्दोग्योपनिषद्, 3, 4, 1, 2

16- पुराणमितिवृत्तमाख्यायिकोदाहरणं धर्मशास्त्रमर्थशास्त्रं चेतिहासः ।

— कौटिल्य, अर्थशास्त्र, 1/15/14॰

इसमें तिथियों और घटनाक्रम की ओर ध्यान नहीं है, किन्तु जनजीवन के चित्रण को विशेष महत्व दिया गया है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि हमारे यहां इतिहास, आज की परिभाषा में आने वाले 'विशुध्द इतिहास' की भान्ति अतीत वंशावलियों और पूर्वघटित तथ्यावलियों के आधार पर विगत युग का लेखा जोखा मात्र नहीं रहा है। इससे आगे बढ़ कर वह और भी बहुत कुछ है ।

भारत में इतिहास लेखन की परंपरा

'महाभारत' को इतिहास-पुराण कहते हुए[17] जो यह कहा गया है कि इस ग्रंथ में इतिहास और पुराण का मंथन करके उसका प्रशस्त रूप प्रकट किया गया[18] है। इससे यह स्पष्ट ही समझा जाता है कि प्राचीन भारतीय वाङ्मय में स्वतन्त्र इतिहास लेखन की परंपरा नहीं रही ।इसी तथ्य को लक्ष्य करते हुए विंटरनित्ज ने कहा है कि 'भारत में पुराण तत्व (मिथ्स) निजंधरी कथाओं तथा इतिहास में भेद करने का कभी प्रयास नहीं किया गया ।भारत में इतिहास लेखन का अर्थ महाकाव्य लिखने से भिन्न नहीं माना गया[19] । इतिहास को काव्य से समन्वित करने की इसी प्रवृत्ति ने ऐतिहासिक काव्य परंपरा को जन्म दिया है जिसका प्रशस्त रूप संस्कृत के वाणकृत हर्षचरित (7वीं शती)[20] कल्हण,[21] रचित राजतरंगिणी आदि (1127-1145 ई॰) में दृष्टिगोचर होता है।

17- द्वैपायनेन यत्प्रोक्तं पुराणं परमर्षिणा ।
इतिहासमिमं विप्राः पुराणं परिचक्षते ।। — महाभारत 1/12

18- इतिहासपुराणानामुन्मेषं निर्मितं च यत् ।। — महाभारत 1/63

19- विंटरनित्ज : ए हिस्टरी आव् संस्कृत लिटरेचर, भा॰ 2, पृ॰ 208 तथा आगे ।

20- डा॰ बुध्दप्रकाश : इतिहास दर्शन, पृ॰ 18

21- वही , पृ॰ 20

इसी परंपरा के अन्य महत्वपूर्ण ग्रंथ 'पृथ्वीराज-विजय', 'जयंत विजय', 'हम्मीर-मदमर्दन','बसंत बिलास', 'कीर्तिकौमुदी'आदि हैं।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के मतानुसार "समसामयिक राजाओं के नाम से संबध्द रचना सातवीं शताब्दी के पहले की नहीं मिली। बाद की शताब्दियों में यह बहुत लोकप्रिय हो जाती है और नवीं-दसवीं शताब्दी में तो संस्कृत प्राकृत में ऐसी रचनाएँ काफी बड़ी संख्या में मिलने लगती हैं।[22]" पालि का वंश साहित्य , अपभ्रंश के चरित्र काव्य और डिंगल पिंगल में रचित रासो ग्रंथ इसी परंपरा के विकसित रूप है[23] ।

परन्तु इतना होते हुए भी प्राचीन काल में इतिहास लेखन की परंपरा का हम अभाव ही पाते हैं । इस अभाव का कारण भारतवर्ष में निवृतिमार्ग की प्रधानता को कह सकते हैं जिसके फल स्वरूप प्रवृतिपरक इहलौकिक इतिहास-लेखन की प्रवृति यहां नहीं रही ।श्स्यश्यामल देश की समृध्दि के कारण जीवन के लिए संघर्ष का यहां अपेक्षाकृत अभाव रहा ।अतः भौतिक शास्त्रों के बजाय अध्यत्म विद्या की ओर मनीषियों की रुचि अधिक रही ।समय निर्देश के लिए किसी सर्वमान्य संवत् का अभाव भी इतिहास लेखन की प्रवृति में बाधक रहा,क्योंकि विक्रम संवत् और शालि वाहन शक के आरंभ से पूर्व भारत में नास्तिक महावीर और बुध्द के अनुसार प्रचलित संवत् थे वे आस्तिकों को ग्राह्य नहीं हो सके ।इस लिए प्राचीन ऐतिहासिक ग्रंथों में समय-निर्देश का न होना स्वाभाविक है। प्राचीन काल में इसके अतिरिक्त इतिहास - लेखन की सामग्री का भी अपेक्षाकृत अभाव था ।यातायात के साध्न, छापाखाना, सिक्के, ताम्रपत्र प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों आदि के संग्रहालय का प्रबन्ध आज जैसा नहीं था तब फिर – इतिहास लिखने की प्रवृति कैसे पनप सकती थी[23] ।

22- डा· हजारी प्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृ· 74

23- डा· भरत सिंह उपाध्याय : पालि साहित्य का इतिहास , पृ· 547

24- डा· शिव नन्दन प्रसाद : हिन्दी साहित्य :एक परिवृत ,पृ· 16-17

इतिहास के प्रति भारतीय दृष्टिकोण

इतिहास के प्रति भारतीय दृष्टिकोण प्रायः आदर्शमूलक एवं अध्यात्मवादी रहा है, इसीलिए उसमें भौतिक जगत्[25] को स्थूल घटनाओं में भी आध्यात्मिक तत्वों व प्रवृत्तियों के अनुसन्धान को प्रवृत्ति रही है। भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति में प्रायः सामयिक तत्वों की अपेक्षा चिरन्तन मूल्यों को अधिक महत्व दिया जाता रहा है, अतः यहां के प्राचीन इतिहासकारों ने अतीत को व्याख्या भी इसी दृष्टिकोण से की ; अर्थात् वे परिवर्तन-शील अतीत में से भी उन प्रवृत्तियों का अनुसन्धान करते रहे जो मनुष्य को स्थायी एवं अमर बनाती हैं। उन्होंने घटनाओं एवं क्रिया-कलापों की व्यवस्था भौतिक उपलब्धियों एवं वैयक्तिक सफलताओं की दृष्टि से कम करके समष्टि-हित की दृष्टि से अधिक की । यहां तो पौराणिकों[26] ने ऋषियों एवं महापुरुषों के चरित-गान को 'इतिहास' के रूप में स्वीकार करते हुए घटना की अपेक्षा चरित्र को अधिक महत्व प्रदान किया । इसी लिए यहां प्राचीन युग में भारतीय इतिहासकारों की रचनाएं चारित्रिक मूल्यों, नैतिक उपदेशों व आध्यात्मिक रूपकों से युक्त होकर पौराणिक रूप में परिणत हो गयी, वहां परवर्ती इतिहासकारों की रचनाएँ शुध्द इतिहास की अपेक्षा 'काव्यात्मक इतिहास' या 'ऐतिहासिक काव्य' के रूप में विकसित हुई । वस्तुतः भारत का प्राचीन इतिहासकार सत्य-शोधन तक ही सीमित नहीं रहा, वह 'शिवं' और 'सुन्दरम्' के समन्वय के लिए भी बराबर सचेष्ट रहा । इसे व्यावहारिक दृष्टि से जहां उसका 'गुण' कहा जा सकता है, वहां सैध्दान्तिक दृष्टि से यह उसका सब से बड़ा 'दोष' भी माना जा सकता है, क्योंकि उसने इति-हास के कलेवर में कला और नीति को स्थान देकर उसे शुध्द ऐतिहासिकता से वंचित रखा ।[27]

25- Hegal : <u>Philosophy of History</u>, p-139-159

26- आर्ष्यादिबहुव्याख्यान देवर्षिचरिताश्रयम् ।
इतिहासमिति प्रोक्तं भविष्याद्भुतधर्मयुक् ।।
- श्रीधर स्वामी : विष्णुपुराण टीका, श्लोक, 3. 4·10

27- " We find the department of History altogether neglected or rather non-existent."
---Hegal: <u>Philosophy of History</u>, p. 162

फिर भी, यदि इतिहास के कलात्मक या काव्यात्मक रूप का किसी भी दृष्टि से कोई महत्व है तो उस दृष्टि से भारतीय इतिहासकार को सर्वोच्च स्थान प्रदान किया जा सकता है। वास्तव में भारतीय इतिहासकार ने अपनी संस्कृति एवं जीवन के अदर्शों के अनुरूप ही इतिहास के क्षेत्र में भी संश्लेषणात्मक व समन्वयात्मक दृष्टिकोण का परिचय देते हुए उसमें सत्यं, शिवं व सुन्दरम् के समन्वय का प्रयास किया, जो उसकी परंपराओं को देखते हुए उचित व स्वाभाविक कहा जा सकता है।[28]

इतिहास के प्रति पाश्चात्य दृष्टिकोण

जहां भारतीय इतिहासकारों के दृष्टिकोण में आदर्शवादिता की प्रमुखता रही, वहां पाश्चात्य इतिहासकार प्रायः यथार्थवादी दृष्टिकोण से अनुप्राणित रहे हैं। इतिहास (**History**)के प्रथम व्याख्याता यूनानी विद्वान हिरोदोतस[29](456-545 ई. पू.)ने इसे 'खोज', गवेषणा' या 'अनुसन्धान' के अर्थ में ग्रहण करते हुए इसके चार लक्षण निर्धारित किये थे – एक तो यह कि इतिहास वैज्ञानिक विद्या है, अतः इसकी पध्दति आलोचनात्मक होती है। दूसरे, यह मानव जाति से सम्बन्धित होने के कारण मानवीय विद्या((मानविकी) है। तीसरे, यह तर्क संगत विद्या है, अतः इसमें तथ्य और निष्कर्ष प्रमाण पर आधारित होते हैं। चौथे यह अतीत के आलोक में भविष्य पर प्रकाश डालता है, अतः यह शिक्षाप्रद विद्या है।[30] इसके अतिरिक्त हिरोदातस ने यह भी स्पष्ट किया कि इतिहास का लक्ष्य प्राकृतिक या भौतिक परिवर्तन की प्रक्रिया की व्याख्या करना है।

प्राचीन युग में सामान्यतः हिरोदोतस का ही दृष्टिकोण मान्य रहा, किन्तु आधुनिक युग के विभिन्न विद्वानों ने इसके सम्बन्ध में नये दृष्टिकोण से विचार किया। इटैलियन विद्वान[31] विको (1668-1744) ने इतिहास का संबंध

28- डा॰ नगेन्द्र : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ॰ 5

29- डा॰ बुध्द प्रकाश : इतिहास दर्शन, पृ॰ 67

30- वही, पृ॰ 68

31- वही, पृ॰ 148

न केवल अतीत से, अपितु वर्तमान से भी स्थापित करते हुए प्रतिपादित किया कि इतिहास का निर्माता स्वयं मनुष्य है और मनुष्य की मूलभूत प्रवृतियां सदा समान रहती हैं, अतः विभिन्न युगों के इतिहास में भी समान प्रवृत्तियों का मिलना स्वाभाविक है। इतिहास-लेखन की पध्दति के सम्बन्ध में भी विको ने अनेक सुझाव देते हुए इतिहासकारों को अतिरंजना व अतिश्योक्ति से बचने और अतीत को अधिक महत्व न देने की बात कही ।

जर्मन दार्शनिक कान्त[32] (Kant) (1724-1804) ने इतिहास की नयी व्याख्या करते हुए प्रतिपादित किया कि सृष्टि का बाह्य विकास प्रकृति की आन्तरिक विकास-प्रक्रिया का प्रतिबिम्ब-मात्र हैं, अतः इतिहास को भी इसी रूप में ग्रहण किया जाना चाहिए, अर्थात् ऐतिहासिक घटनाओं के पीछे प्राकृतिक नियमों की प्रवृति को समझने का प्रयास किया जाना चाहिए। हीगल[33] (1770-1831) ने कान्त की विचारधारा को आगे बढ़ाते हुए स्पष्ट किया कि इतिहास केवल घटनाओं का अन्वेषण एवं संकलन-मात्र नहीं है, अपितु उसके भीतर कारण-कार्य की श्रृंखला विद्यमान है। हीगल के मतानुसार विश्व-इतिहास की प्रक्रिया का मूल लक्ष्य मानव चेतना का विकास है जो द्वन्दवात्मक पध्दति पर आधारित है। इस द्वन्द्वात्मक पध्दति या प्रक्रिया के अनुसार वाद (thesis) एवं प्रतिवाद (antithesis)के द्वन्द्व से समवाद (synthesis) का विकास होता है। इतिहास की व्याख्या भी इसी द्वन्द्वात्मक पध्दति के आधार पर होनी चाहिए ।

उन्नीसवीं शती में डारविन ने अपने विकासवादी सिध्दांत की स्थापना के द्वारा इतिहास को एक नूतन दृष्टि, शक्ति व गति प्रदान की । डारविन आदि परवर्ती युग में विभिन्न चिन्तकों ने आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, आदि क्षेत्रों में विभिन्न विकासवादी सिध्दांतों की स्थापना करते हुए प्रमाणित किया कि सृष्टि का कोई अंग या तत्व एकाएक घटित या रचित न होकर क्रमशः विकसित होता है। अतः वैज्ञानिक दृष्टि

32- डा॰ बुध्द प्रकाश : इतिहास दर्शन , पृ॰ 155

33- वही , पृ॰ 169

से 'इतिहास' का अर्थ 'घटना-समूह' का संकलन न होकर 'विकास-क्रम' का विवेचन है। कार्ल मार्क्स[34](1818-83), एंजिल्स[35], मारगन, हक्सले प्रभृति आदि विद्वानों ने विकासवाद के विभिन्न पक्षों की व्याख्या अपनी अपनी दृष्टि से करते हुए उसे विभिन्न रूपों में प्रस्तुत किया है। बीसवीं शती के अनेक इतिहासकारों -स्पेंगल[36](1880-1936), ट्वायनबी[37] (1889), टर्नर[38] आदि – ने विश्व-संस्कृति और सभ्यता के इतिहास की व्याख्या विकासवादी नियमों व प्रवृत्तियों के आधार पर करने की चेष्टा की है।

अस्तु, आज पाश्चात्य इतिहास-दर्शन के सर्वप्रमुख एवं सर्वाधिक विकसित दृष्टिकोण के रूप में विकासवादी दृष्टिकोण को स्वीकार किया जा सकता है, किन्तु अनेक दृष्टियों से यह दृष्टिकोण भी अभी तक पूर्ण विकसित नहीं कहा जा सकता। एक तो अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, संस्कृति आदि विभिन्न क्षेत्रों में कार्य करने वाले विकासवादी चिन्तकों के सिध्दांतों में भी परस्पर अन्विति एवं एकरूपता का अभाव है – जहां डारविन का विकासवाद प्राणिशास्त्र में लागू होता है, वहां मार्क्स का अर्थशास्त्र में, स्पेन्सरका भौतिक विज्ञान में, या बर्गसाँ का मनोविज्ञान में लागू होता है। दूसरे विकासवादी सिध्दांतों के विरोध में भी प्रतिक्रिया हो रही है, विद्वानों का एक वर्ग इन्हें 'विधेयवादी' कहकर ठुकराने का प्रयास कर रहा है। सार्त्र आदि के वे अनुयायी जो कि नियमबध्दता, पूर्व-निश्चितता एवं पूर्व निर्धारण के विरोधी हैं, इतिहास को भी किसी नियम से आबध्द करना कैसे स्वीकार कर सकते हैं। अस्तित्ववादियों के अनुसार जब प्रकृति एवं मनुष्य ही नियमों से मुक्त है तो उनके इतिहास को नियमबध्द कैसे किया जा सकता है। किन्तु हमारे विचार में नियम और अनुशासन का यह विरोध अवैज्ञानिकता एवं अराजकता का ही पोषक है। कदाचित् हीगल के शब्दों में यह भी वाद का प्रतिवाद-मात्र है, जो संभवतः हमें किसी

34- डा॰ बुध्द प्रकाश : इतिहास दर्शन, पृ॰ 265

35- वही , पृ॰ 266

36- वही , पृ॰ 283

37- वही , पृ॰ 301

38- वही , पृ॰ 334

नये ' समवाद' को ओर अग्रसर करने में सहायक सिध्द हो सके[39] ।

'गुरु प्रताप सूरज' का इतिहास-दर्शन

'गुरु प्रताप सूरज' में भारतीय दृष्टिकोण को अभिव्यक्ति हुई है। यद्यपि उसमें पाश्चात्य दृष्टिकोण से सम्बन्धित खोज आदि की प्रवृत्तियों को झलक मिलती है तथापि वह पूर्णतया भारतीयता का प्रतीक है। गुरु प्रताप सूरज पर यदि ऐतिहासिक -सांस्कृतिक दृष्टि से विचार किया जाये तो एक ओर उसमें सिक्ख जाति के अभ्युदय एवं विकास का ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक इतिहास अंकित है। उस में इस जाति के सामाजिक एवं राजनीतिक वातावरण का प्रतिबिंब अंकित है। उसके रचयिता भाई सन्तोखसिं की भक्ति भावना ने जहां साहित्यिक एवं सांस्कृतिक परंपराओं से अपना सम्बन्ध व्यक्तकिया है वहां अपने वर्तमान से अतीत को भी देखा है। अतीत के शान्तिपूर्ण एवं संघर्ष के क्षणों से वर्तमान को प्रेरणा एवं वर्तमान से भविष्य के सुधार को योजनाओं का संकेत किया है। उन्होंने अपने ऐतिहासिक कथानक के माध्यम से सांस्कृतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा की है। वे एक ओर तो राष्ट्रीयता और देश प्रेम के छोर का स्पर्श करते है और दूसरी ओर त्याग, तितिक्षा, करुणा, क्षमा, न्याय, सहिष्णुता और व्यापक मानवता के आदर्श को समेटे हुए चलते हैं। उनका ऐतिहासिक विश्लेषण भारतीय ज्ञान को गरिमा से युक्त हृदय को उदात वृत्तियों से पोषित और समग्र मानवता को कल्याण कामना से युक्त है । वे इतिहास के प्रति भारतीय दृष्टिकोण को अपनाते हैं। उन्होंने गुरु कालीन इतिहास का जितना व्यापक और गहन अध्ययन किया उतना शायद हो किसी अन्य पूर्ववर्ती या परवर्ती कवि ने किया हो, वस्तुतः उन्होंने अपने ढंग से गुरु इतिहास की व्याख्या की है, उस के सांस्कृतिक पक्ष को गरिमा को पहिचाना, काव्य में उसे प्रतिष्ठित किया और अपने युग के समग्र परिप्रेक्ष्य मेंउन समस्त संदर्भो को रुपायित किया जिन में सन्निहित मूल्यों पर उनको आस्था थी । 'गुरु प्रताप सूरज' में हमे इतिहास को आध्यात्मिक समीक्षा दृष्टि-गोचर होती है। उसके इतिहास में भारतीय संस्कृति का उत्कृष्टतम रुप दिखाई देता है।

39- डा॰ नगेन्द्र : हिन्दो साहित्य का इतिहास , पृ॰ 7

अतः 'गुरु प्रताप सूरज' कोरा इतिहास नहीं दिखाई देता वरन् उसमें इतिहास की सुन्दरतम सांस्कृतिक व्याख्या दृष्टिगोचर होती है। इससे सिध्द होता है कि इस ग्रंथ में भाई सन्तोख सिंह के कवि, इतिहासकार और संस्कृति के व्याख्याता तीनों रूपों का समन्वित रूप स्पष्ट होता है।

'गुरु प्रताप सूरज' काव्यात्मक इतिहास है। इसके माध्यम से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का उपदेश दिया गया है। पौराणिकों की भान्ति उसे कथा रस से अनुप्राणित किया गया है। उसमें पात्रों की ऐतिहासिकता की संरक्षा पौराणिक रीति से की गई है। उसमें अंकित पात्र अपने युग का प्रतिनिधित्व भी करते है और अवतारत्व को भी प्रस्तुत करते हैं। उसका कवि कोरे इतिहास की नीरसता और शुष्कता को अपनी कल्पना शक्ति से दूर करता है। ऐतिहासिकता को सुरक्षा के कारण ही कवि ने अनावश्यक घटनाओं को विस्तार नहीं दिया और लक्ष्य की प्राप्ति होते ही वह विषय समाप्त कर देता है। उसमें सर्वत्र सत्विकता के दर्शन होते हैं। असत् के ऊपर सत् की विजय दिखाना भी इस महाकाव्य में वर्णित ऐतिहासिकता का ध्येय है। इस ऐतिहासिकता की उन्होंने वैज्ञानिक 'खोज' भी की है। सामग्री के एकत्रीकरण में उन्होंने अनुपम अध्यवसाय का परिचय दिया है। तथ्यों को छानबीन में उनकी रुचि सराहनीय है। परन्तु आधुनिक सुविधाएं उन्हें प्राप्त न थी। इस लिए उसका मूल्यांकन तत्कालीन सुविधाओं के अनुकूल होना चाहिए न कि आज की वैज्ञानिकता की ऐनक से उसे देखकर कोई फतवा देना चाहिए। उनके दृष्टिकोण में धार्मिकता की प्रबलता का सन्निवेश है। वे स्वयं आस्थावान गुरु भक्त हैं। अतः उनके दृष्टिकोण में भारतीयता का आलोक है। वे सांस्कृतिक चेतना से समन्वित कवि-इतिहासकार है। उनके इतिहास लेखन की शैली परंपरागत 'पुराणेतिहास शैली' है। वे तथ्यों के ~~संकलन~~ संकलन में इतिहासकार है, वर्णनों में कवि हैं।

'गुरु प्रताप सूरज' और इतिहास

'गुरु प्रताप सूरज' केवल काव्य ही नहीं है अपितु पौराणिक काल की आख्यानात्मक प्रणाली तथा तत्कालीन जीवन को सांगोपांग अभिव्यक्ति के कारण इतिहास ग्रंथ भी है।

इसके कथा-सूत्रों में क्रम स्थापित करने के लिए उन्होंने जहां कल्पना का आश्रय लिया है। और इसके पात्रों में पौराणिक अवतारवाद का आरोप किया है वहां इस काव्य की महानता के लिए उन्होंने सुन्दर कथा की योजना भी की है।[40] प्राचीन काल में इतिहास की आधुनिक प्रणाली नहीं थी। उस युग में पुराणाख्यानों में ही इतिहास के तत्व विद्यमान थे। गुरु प्रताप सूरज में आख्यान, उपख्यान, इतिहास आदि सभी शब्दों का प्रयोग समान अर्थों में किया गया है और सभी में किसी प्राचीन घटना-निजन्धरी आख्यान का वर्णन है। इस प्रकार की कथाएं प्राचीन काल से पौराणिक विश्वासों में घुली मिली थी। इन में ऐतिहासिक तत्व भी विद्यमान थे। इस तरह से उन्होंने इतिहास प्रसिध्द कथा को अपने सन्देश का वाहक भी बनाया और अपनी भक्ति भावना भी व्यक्त[41] की।

गुरु प्रताप सूरज को इतिहास कहने का मुख्य कारण यह है कि इस ग्रंथ में गुरुओं की वंशावली का काव्यमय वर्णन है। वंश वर्णन की प्रधानता के कारण यह ग्रंथ इतिहास की कोटि में भी आता है परन्तु अपने अन्य महत्वपूर्ण तत्वों के कारण सामान्य इतिहास की कोटि से उठ कर सम्पूर्ण जीवन का महाकाव्य और धर्मग्रंथ बन जाता है। इस कीवर्णन शैली इसे पुराण परंपरा का इतिहास भी सिध्द करती है।

'गुरु प्रताप सूरज' में इतिहास - तत्व

इतिहास और काव्य के स्वरुप विश्लेषण के संदर्भ में यदि 'गुरु प्रताप सूरज' का अध्ययन किया जाये तो हमें विदित होग कि 'गुरु प्रताप सूरज' विशुध्द काव्य कृति अथवा ऐतिहासिक काव्य न होकर एक काव्यमय इतिहास (Poetic History) है और भाई सन्तोख सिंह इतिहासज्ञ कवि (Poet Historian)। गुरु प्रताप सूरज

40- " A Epic must be a good story."
---Abercrombie: The Epic, p-49

41- " He takes some great story, which has been absorbed into the prevailing conciousness of his people".
---The Epic, p-39

में कवि का उद्देश्य केवल काव्य रचना नहीं रहा अपितु गुरु साहिबान के इतिहास का निरुपण करना भी रहा है। इसी लिए इसे इतिहास ज्ञान के विश्वकोश के रुप में प्रस्तुत किया गया है। इस में इतिहास तत्व और काव्यत्व दोनों एक रुप हुए प्रतीत होते है। कवि ने स्वयं इसे काव्य और इतिहास दोनों माना है। कवि ने अपने आश्रयदाता के अनुरोध पर गुरु साहिबान के जीवन चरित सम्बन्धी सामग्री को अपनी कल्पना के साँचे में ढाल कर अपने भावानुरुप एक ऐसी अभिनव काव्यमूर्ति का निर्माण किया है जिसके समक्ष मानवता के हित चिन्तक आज भी नतमस्तक हो जाते हैं। इस इतिहास को काव्य-बध्द करके भाई सन्तोख सिंह ने एकसच्चे इतिहासकार के धर्म का निर्वाह किया है।

'गुरु प्रताप सूरज' में वर्णित इतिहास-क्रम

'गुरु प्रताप सूरज' में वर्णित इतिहास का पाट बड़ा लम्बा चौड़ा है। इस में सन्देह नहीं कि गुरुओं के जीवन का ही इतिहास लिखना भाई सन्तोखसिंह का लक्ष्य है परन्तु इस के ऐतिहासिक कलेवर में गुरु कालीन पंजाब का मध्ययुगीन समस्त इतिहास आ समाया है ।

गुरु ननक की वंश परंपरा और उनके परिवार का संक्षिप्त परिचय देने के पश्चात् गुंरु अंगद आदि अन्य नौ गुरुओं के वंश की विभिन्न शाखाओं और प्रशाखाओं के साथ साथ पंथ के अभ्युदय और विकास का परिचय देते हुए बन्दा वैरागी तक का ऐतिहासिक विवरण इस में संकलित है। ग्रंथकार को ऐसे ही इतिवृत को प्रस्तुत करना इष्ट था । इस के साथ साथ अन्य महत्वपूर्ण समसामयिक जो राजा बादशाह हुए हैं उनका इतिहास भी इस में साथ साथ वर्णित होता हुआ चला गया है। लाहौर के अधि-पतियों, शासको एवं हुमांयू , अकबर, जहांगीर तथा औरंगजेब आदि के पंजाब के इतिहास निर्माण में उनकी सहानुभूति एवं अत्याचारों की कहानी भी अंकित है।

'गुरु प्रताप सूरज' में वर्णित इतिहास की पृष्ठभूमि

'गुरु प्रताप सूरज' में वर्णित इतिहास हमारी संस्कृति का सरंक्षक है। इसके सांस्कृतिक अध्ययन के लिए हमें इस को ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का आश्रय देना होगा ।

भारतीय इतिहास के मुग़ल काल में भारतीय संस्कृति पर कैसे आघात हरिए गए, उसकी जातीयता को नष्ट करने के कैसे कैसे प्रयास हुए और इस महाकाव्य के नायक गुरु साहिबान ने कैसे संस्कृति की रक्षा को। उन्होंने मानवता की भावनाओं को जगाया और अपने सार्वभौम गुणों से जनता को अपनी ओर आकर्षित कर सिक्ख धर्म का प्रसार किया। कवि ने उनके ऐतिहासिक व्यक्तित्व को इस महाकाव्य द्वारा प्रतिष्ठित किया[42]। उन्हें कैसे कैसे कष्ट सहन करने पड़े, अपना सर्वस्व बलिवेदी पर चढ़ाना पड़ा। इन सब ऐतिहासिक घटनाओं की कहानी 'गुरु प्रताप सूरज' में अंकित है। इस के विशाल गर्भ में अनेक ऐतिहासिक तथ्य, नवीन विचारधाराओं के पनपने की परिस्थितियां, गुरुओं की वंशावली का काव्यमय वर्णन, प्राचीन निज-धरी आख्यान, पौराणिक कथाएं आदि समाई हुई हैं। जिन्हें इस के कवि ने बड़ी कुशलता से संजोकर रखा है। तत्कालीन जीवन का सांगोपांग चित्र इस ऐतिहासिक काव्य में प्रतिबिम्बित है। पौराणिक शैली में लिखा गया यह ग्रंथ सिक्ख-इतिहास मन्दिर कासुवर्ण-कलश है।

इतिहास का तात्विक विवेचन

डा॰ भाई वीर सिंह के विचारानुसार इतिहास प्राचीन भारतीय परंपरा में तीन भावों या तत्वों का अवश्य समावेश रहता है[43]। वे चाहे प्रत्यक्षतः प्रस्फुटित न हो परन्तु परोक्ष रूप में उनकी उसमें प्रवाहिनी प्रवाहित होती ही रहती थी।

1- साहित्यिकता या काव्यात्मकता।

2- इतिवृतात्मकता या वर्णनात्मकता।

42- "Hero would be the spirit of man, the human who is drawn up and exalted from the clouded levels of conscious existence into the clearer region of the universal hisetory."
—---Hegal: Philosophy of Fine Art, Vol(iv)p-137

43-(i) --- Hegal : Philosophy of History, p-1

(ii) गुरु प्र. सू. ग्रं. प्र., पृ. 29

3- आध्यात्मिकता एवं दार्शनिकता।[44]

(1) साहित्यिकता या काव्यात्मकता

साधारणतः साहित्य में दो प्रकार की शैलियों के ग्रंथों का सृजन होता है । पहली शैली में आलंकारिकता (शब्दाडंबर की प्रवृति) पाई जाती है और दूसरी में सूत्रात्मकता के (मोताक्षर के वेश में प्रसतुतीकरण होता है। आलंकारिकता से भाव सुन्दर और स्वतन्त्र वाक्य रचना है और सूत्रात्मक शैली में गिने चुने शब्दों में बात कही जाती है। जब इतिहास को आलंकारिक शैली में लिखा जाता है तो इतिहास एक अलंकृत रूप में चमक उठता है। इतिहास की कई न्यूनताएं इस ऊपरी चमक दमक में छिप जाती हैं। इस प्रकार के इतिहास के पाठकों को सहज ही श्रृंगार, वीर, करुण, भक्ति आदि ललित रसों का आस्वाद प्राप्त हो जाता है। इन विभिन्न रसों में लीन होकर पाठक के हृदय पर स्वाभाविक रूप से विभिन्न प्रकार के प्रभाव पड़ते हैं। सूत्रात्मक शैली में लिखित ग्रंथों में साहित्यिक सौंदर्य के प्रदर्शन के लिए स्थान नहीं होता । उदाहरण के रूप में हिन्दू धर्म शास्त्र के ग्रंथ याज्ञवल्यक स्मृति के भाष्य को के देखा जा सकता है। इस शैली में भी इतिहास के लिखने के प्रयास हुए हैं परन्तु उन में वह रस कहां ?जो आलंकारिक शैली में है ।

(2) इतिवृतात्मकता या वर्णनात्मकता

इतिवृतात्मकता का भाव घटनाओं के क्रमानुसार वर्णन से है। वर्णनात्मकता महाकाव्य में एक विशेषता मानी जाती[45] है। इस तत्व के अनुसार इतिहास में लौकिक और अलौकिक घटनाओं का वर्णन किया जाता है। प्रायः इतिहास में लौकिक घटनाओं का ही इतिवृत संकलित होता है। किन्तु भारतीय इतिहास काव्यों में अलौकिक व्यक्तियों, देवताओं

44- Hegal: Philosophy of History, p-1

45- "Epic is a " poetic narrative of memorable things"
---Rajna:La Origini dell',Epopea Francese,p-3

आदि से सम्बन्धित अलौकिक घटनाओं का भी निरूपण होता है। इसी कारण इस इतिहास को धर्म को प्रामाणिक एवं सम्माननीय पुस्तक होने का गौरव प्राप्त होता है। हिन्दूधर्म में इतिहास-पुराण का गौरवशाली स्थान है। पुरातन ऋषियों ने इसे पंचम वेद माना है।[46] हिन्दूधर्म में वेद के पश्चात् इतिहास-पुराण का स्थान दिया है और धर्म शास्त्र आदि को तृतीय स्थान। परन्तु कई विद्वानों ने धर्मशास्त्र को द्वितीय स्थान और इतिहास-पुराण को तृतीय स्थान दिया है ।

(3) आध्यात्मिकता एवं दार्शनिकता

इतिहास में तृतीय स्थान दार्शनिकता को मिलता है।[47] उसमें आध्यात्मिक और दार्शनिक सिध्दांतों को झलक मिलती है।[48] ऐतिहासिक ग्रंथों में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में 'संसार की नश्वरता, दुःखरूपता आदि अनेक अटल सत्यों का निरूपण होता है। इसी कारण शायद कुछ विद्वानों ने उसे 'ज्ञान स्वरूप' मान लिया है। हम यहां उन विद्वानों से सहमत

46- इतिहास पुराणं पंचमं वेदानां वेद इति ।

— न्याय-दर्शन, अध्याय 4, आह्नक 1, सूत्र 62, ~~वात्स्यायन~~ वात्स्यायन भाष्य।-गु॰ प्र॰ सू॰ ग्रं॰ प्र॰ पृ॰ 31 पर उद्धृत।

47- " History, as it lies at the root of all science, is also the first distinct product of man's spiritual nature, his earliest expression of what can be called thought." ---Carlyle, Essays: On History

48- "Philosophy is definitely concerned with the nature of Human knowledge and as Historiography deals with knowledge of Man about his own past, it is but natural that philosophy of history admits a place for it." ---D. Goel: Philosophy of History p-2

नहीं हैं, जो इतिहास को केवल 'ज्ञान स्वरूप' मानते हैं। हमारे विचार में इतिहास ज्ञान का अंग हो सकता है, ज्ञानमय हो सकता है परन्तु इतिहास शुध्द ज्ञान स्वरूप नहीं है इतिहास में ज्ञान चिन्तन के अतिरिक्त इतिहास के निर्माताओं को जीवन घटनाओं का लेखा भी होताहै।[49] एक विद्वान का कथन है कि "इतिहास क्या है? सत्य अपनी खोज में दौड़ता फिरता है और इसको अपनी तलाश को ही भागदौड़ इस दुनिया का इतिहास है।"[50] परन्तु हमारा विचार है कि ऐतिहासिक भाग दौड़ में 'सत्य' अपने आप को नहीं खोज सकेगा। समय के विस्तार में इस के खो जाने का अधिक डर है। सत्य को ग्रहण करने के लिए इन ऐतिहासिक परिवर्तनों के नीचे जो अपरिवर्तित वस्तु है उसकी ओर दृष्टिपात करना होगा ।

हीगल(1770-1831) के विचारानुसार 'दर्शन केवल इतिहास है।'[51] इन के पश्चात् इटली के दार्शनिक क्रोचे(Croce जन्म-सन् 1866) के विचारानुसार इतिहास

49- " The task of a perfect philosophy, it has been said, would be to re-think the great thought of creation. The task of a perfect history would be to re-think the thoughts as well as to record the actions of those who have made history: and they are not merely soldiers and statesman, but all mankind."
---Hugh Walker: The Literature of the Victorian era, p-583(1964)

50- गु॰ प्र॰ सू॰ ग्रं॰ प्र॰ पृ॰ 33 पर उद्धृत

51-(i)----Hegal: Philosophy is History
(ii) Also see: Hegal: The Philosophy of History p-1
(iii)-- डा॰ बुध्द प्रकाश : इतिहास दर्शन , पृ॰ 169

हो दर्शन[52] है। परन्तु यह दोनों सिध्दांत इस नियम पर आश्रित है[53] कि 'सत्य पदार्थ जो कि एक सूक्ष्म मानसिक वस्तु है अपने आप को घड़ रहा है, पूर्ण कर रहा है और उसका यह कर्तव्य मनुष्य मात्र का इतिहास है[54]'। यही बात न्यूमैन ने अपने धर्म के विषय में कही[55] है।

उक्त विभिन्न तत्वों के विवेचन के आधार पर कहा जासकता है कि सिक्ख धर्म के सिध्दांत भारतीय दर्शन शास्त्र रूप महासागर के मंथन से निकले हैं।

52- (i) Croce: History is Philosophy
(ii) B.Croce: <u>History and Theory of Historigraphy</u>
(iii) इतिहास दर्शन , पृ • 227

53- "History is Philosophy learned from examples"
---Dioysius of Hali carnassus Ars Rhetorica XI 2.
A paraphrase from Thucydides, History BK.1.Sec.22

54- द्रष्टव्य : गु • प • सू • ग्रं • प्र • पृ • 33 पर उद्धृत ।

55- "It is indeed sometimes said that the stream is clearest near the spring. Whatever use may fairly be made of this image, it does not apply to the history of a philosophy or a sect, while on the contrary it is most equable and purer and stronger when its bed has become deep and broad and full."
--- Newman.

सिक्ख धर्म में इतिहास का स्वरूप एवं स्थान

डा॰ भाई वीरसिंह के विचारानुसार सिक्ख धर्म केवल इतिहास आश्रित नहीं है । इतिहास उसका मूल नहीं है। उसका मूल स्रोत गुरु साहिबान की वाणी और हुकम हैं[56] । तथापि यह धर्म इतिहास शून्य भी नहीं है और न ही इसने कभी इतिहास का तिरस्कार किया है। इस धर्म के जन्मदाता गुरु साहिबान इस संसार में अवतरित हुए, विचरण किया भटक रही मानवता को नाम दान और स्नान(इशनान) का उपदेश दिया। अतः इन बातों का घटित होना, इन की जो स्मृति मौखिक अथवा लिखित अवस्था में रही– वह इतिहास बन गया । उन्होंने अनेक लोगों को संमार्ग दिखाया, कठिनाइयां आई, कष्ट सहन किए, बलिदान दिए, लोगों को अज्ञान तिमिर से निकाल कर प्रकाश दिखाया इत्यादि यह सब इतिहास का इतिवृतात्मक भाग बन गया है[57]। इस इतिवृत ने साहित्यिक रूप भी धारण किया जैसे पुरातन जन्म साखी, 'महिमा प्रकाश(सरूप दास भल्ला)' गुरु विलास(सुक्खासिंह)' गुरु नानक विजय(सन्त रेण) आदि। गुरु प्रताप सूरज इस परंपरा का सर्वाधिक महत्वपूर्ण ग्रंथ है ।

भाई वीर सिंह ने इतिहास के पांच रूप दिये हैं[58] जो निम्न प्रकार हैं। इन के विवेचन से यह स्पष्ट हो सकेगा कि सिक्ख धर्म में इतिहास किस रूप का है।

1- सूत्रात्मक इतिहास ।

2- साहित्यिक इतिहास ।

3- वैज्ञानिक इतिहास ।

4- कला चेतना मूलक इतिहास ।

5- लोक प्रिय इतिहास ।

(1) सूत्रात्मक इतिहास

सूत्रात्मक का भाव संक्षेप में निष्कर्ष रूप में तथ्यों का विवेचन । ऐसे इतिहास में हमें यह विदित होगा कि वाणी और हुकमों में जिन गुणों एवं भावों का विवेचन है,

56- गु. प्र. सू. ग्रं. प्र. पृ. 34

57- वही , पृ॰ 34

58- वही , पृ॰ 36-80

वह हमें गुरु साहिबान के व्यक्तित्व आदि से परिचित कराते हैं ।इन मूल बातों का परिचय साक्षी देने वालों के कथनों से अथवा उनको रचनाओं के अन्तः साक्ष्यों से मिल जाता है।इस कार्य के लिए हमारे पास प्रामाणिक ग्रंथ श्री गुरु ग्रंथ साहिब है। इस का ध्यान से अध्ययन करने पर हमें अनेक साक्ष्यों का पता चलता है। "भट्टा दे सवैयों " से तत्कालोन व्यक्तियों द्वारा गुरु साहिबान के जीवन से सम्बन्धित प्रामाणिक साक्ष्य मिलते हैं।

(2) साहित्यिक इतिहास

इस तरह के इतिहास में जैसे जैसे घटनाएं घटित होती गईं वैसे वैसे उनका क्रमानुसार विस्तार से साहित्यिक संकलन होता गया अतः इसे साहित्यिक इतिहास कहा जा सकता है।जिस में तिथियों ,जीवन घटनाओं आदि के विषय में कुछ विस्तृत चर्चा हो। यहां ऐसे ग्रंथों को खोज करनो है जो सतिगुरुओं के जीवन प्रसंग से सम्बन्धित हों।ऐसे ऐतिहासिक ग्रंथ हमें बहुत कम मिलते हैं ।जिन में सतिगुरुओं के जीवन की आरंभ से अंत तक की सम्पूर्ण घटनाओं का लेखा जोखा संकलित हो । खोज करने पर कुछ सामग्री मिलतो है परन्तु वह भी ऐतिहासिक छानबीन पर निर्भर है। गुरु नानक देव जो के अन्तर्ध्यान होने पर गुरु अंगद देव जो ने गुरु पदवी को सुशोभित किया ।उन्होंने उनके जोवन से सम्बन्धित विभिन्न समाचारों कोएकत्रित किया जो 'साखो'[59] लिखवाई । शैशव कालोन घटनाओं से सम्बन्धित तथ्यों के संकलन के लिए भाई बाला को सेवाएं प्राप्त की। इस तरह से गुरु अंगद जो ने गुरु नानक देव जो को'जन्मसाखो' लिखवाई। यदि यह 'जन्मसाखो' मिल जाती तो यह हमारे पास गुरु देव का साहित्यिक इतिहास होता परन्तु कवि सन्तोख सिंह से लेकर भाई कर्म सिंह और मैकालिफ तक सभी यह बताते है कि यह पुस्तक नष्ट हो गई है। और इसके स्थान पर 'भाई बाले वाली साखो' जो दशम पातशाह के समय या कुछ पश्चात् किसी ने बढ़ा चढ़ा कर प्रचलित कर दो है वही मिलती है ।

59- 'साखो'-आंखों से देखना, या आंखों से देखो हुई बात ।
द्रष्टव्य : गु. प्र. सू. ग्रं. प्र.,पृ. 54

इसके अतिरिक्त एक अन्य इसी नाम की पुस्तक मिलती है जिसे 'पुरातन जन्मसाखी' कहते हैं। यह छटे सतिगुरु के समय में लिखी गई । सन्देह किया जा सकता है कि शायद यही साखी हो जो गुरु अंगददेव जी ने लिखवाई थी , परन्तु शोध के आधार पर इसके अन्दर से ही ऐसे तथ्य मिलते है जिन के आधार पर यह सिध्द होता है कि यह छटे गुरु साहिबान के समय में लिखी गई[60] ।

अतः इस प्रकार के साहित्यिक इतिहास की वास्तविक सामग्री उपलब्ध नहीं हैं। 'जन्मसाखी' के पश्चात् भाई गुरदास जी की रचना में आदि पातशाही का कुछ साखियां मिलती हैं और अन्य गुरु साहिबान के जीवन से सम्बन्धित अनेक संकेत मिलते हैं । पांचवे और छटे गुरु साहिबान के सम्बन्ध में भी कई तथ्य मिलते हैं । इसी तरह सातवें आठवे सतिगुरुओं के सम्बन्ध में नंदलाल जी से काफी जानकारी मिलती है । परन्तु साहित्यिक रीति अनुसार दूसरे गुरु साहिबान से लेकर दसवें गुरु साहिबान तक कोई अन्य जन्मसाखी अभी तक उपलब्ध नहीं हुई । सुनने में आता है कि भाई बुड्ढे के वंशजों की लिखी हुई 'पांच सो साखी' थी । परन्तु वह अभी तक उपलब्ध नहीं हुई है ।

बन्दा बहादुर जी की शहीदी के पश्चात् जो कतले आम हुए उन में पता नहीं कितना साहित्य नष्ट हो गया है। लखपत वाली[61] कतलेआम में तो सिखों की धार्मिक पुस्तकों को जलाने का विशेष प्रयत्न हुआ है। इसी कारण शायद साहित्यिक इतिहास उपलब्ध नहीं होता। "पांच सौ साखी" के अवशेष के रुप में हमें 'सौ साखी' ग्रंथ मिलता है। जिस में प्रक्षिप्त अंश काफी मात्रा में मिलता है। पर्चिया सेवा दास (वार्तिक महिमा प्रकाश) और सरूपदास रचित महिमा प्रकाश से भी यह तथ्य मिलते हैं कि गुरु साहिबान के जीवन से सम्बन्धित जन्म साखियां थी जो नष्ट हो गई हैं। इसी के साथ हमें सेनापति रचित 'गुरु शोभा'[62] ग्रंथ भी मिलता है। जो दशम पातशाह के ज्योति ज्योत समाने के कुछ वर्ष

60- गु. प्र. सू. ग्रं. प्र. , पृ. 54

61- वही , पृ. 55

62- (I) डा. हरिभजन सिंह : गुरुमुखी लिपि में हिन्दी काव्य , पृ. 261

(II) डा. जयभगवान गोयल : गुरुमुखी लिपि में हिन्दी साहित्य, पृ. 148-171

बाद का लिखा मिलता है। उसमें उनके जीवन से सम्बन्धित कुछ तथ्य उपलब्ध होते है। इसके अतिरिक्त 'गुरविलास' 'पातशाही सेवीं', 'गुरु विलास'(भाई मनी सिंह जी),[63] 'गुर विलास(भाई सुक्खासिंह) पातशाही दसवीं, गु॰ वि॰ कुइर सिंह गुरु नानक वियज (सन्त रेण)तथा कुछ अन्य ग्रंथ मिलते हैं। 'गुरु प्रताप सूरज एक ऐसा बृहदा रूप इतिहास ग्रंथ है जिस में सभी गुरुओं के इतिहास चरित्र से सम्बन्धित वृत विस्तार से वर्णित है। इसके पश्चात् भाई रत्नसिंह भंगू का 'पंथ प्रकाश' आदि ग्रंथ मिलते है। कुछ अन्य लेखको के ग्रंथों का भी पता चलता है जिन में सिक्ख इतिहास के कुछ तथ्य मिलते हैं। जैस सेरुलमुता खरोन और 'खुलासात्तु-तवारीख' से पांचवे सतिगुरु का अकबर से प्रजा का मामला माफ करवाने काप्रसंग मिल जाता है। 'तुज़क जहांगीरी' से पांचवे सतिगुरु जी को शहादत, मुहसनफनो से छटें और सातवें सतिगुरुओं के कुछ प्रसंग 'खुलासात्तु-तवारीख' से कुछ अन्य सतिगुरुओं के प्रसंग मिलते हैं। 'उमदात्तु-तवारीख' आदि से भी कुछ हालात दसों गुरुओं के सम्बन्ध में मिल जाते हैं। दशम पातशाह और बन्दा बहादुर के अनेक जीवन प्रसंग बाद के फारसी लेखकों के ग्रंथों से मिलते हैं परन्तु उन पर धार्मिक कट्टरता का रंग चढ़ा हुआ है।[64]

(3) वैज्ञानिक इतिहास

ऐस इतिहास में सन्, सम्वत्, तिथियों का सत्याश्रित वर्णन होता है। भारत में वैज्ञानिक इतिहास के लिखे जाने के प्रमाण बहुत कम मिलते है तथापि वाणभट्ट रचित हर्ष चरित और कल्हण रचित 'राजतरंगिणी[65] को इस श्रेणी में रखा जा सकता है। यद्यपि इन ग्रंथों में विभिन्न घटनाओं की तिथियों आदि का क्रमानुसार उल्लेख नहीं हुआ है तथापि घटनाओं, पात्रों एवं युगीन परिस्थितियों का ऐसा काव्यमय एवं अलंकृत वर्णन हुआ है कि उस युग का ऐतिहासिक यथार्थ उभर कर सामने आ जाता है।

63- डा॰ सुरेन्द्र सिंह कोहली : भाई मनी सिंह (प्रकाशक भाषा विभाग, पटियाला)

64- द्रष्टव्य : गु. प्र. सू. ग्रं. प्र. पृ॰ 56

65- डा॰ बुध्द प्रकाश : इतिहास दर्शन, पृ॰ 19

(4) कला चेतना मूलक इतिहास

ऐसे इतिहास के सृजन में इतिहासकार के पास कवि-कल्पना का होना परमावश्यक कहा गया है। उसे साहित्यिक सहायता ग्रहण करनी होती है। ऐसे कलात्मक इतिहास में अनेक आध्यात्मिक एवं आलौकिक बातों को प्रतीकात्मक भाषा में प्रस्तुत किया जाता है। यहां उसे अपनी कला-कौशलता का प्रदर्शन करना होता है। इस प्रकार के इतिहासाश्रित काव्य ग्रंथों में कवि कल्पना के लिए पर्याप्त अवकाश रहता है और ऐतिहासिक इतिवृत में संशोधन अथवा परिवर्तन की छूट रहती है जिसे आचाय कुन्तक ने प्रबन्ध वक्रता के अर्न्तगत स्वीकृति दी है।

वैज्ञानिक और कलाचेतनामूलक इतिहास में अन्तर

आरंभ में हम इतिहास के तीन प्रमुख तत्वों – साहित्यिकता, इतिवृतात्मकता और आध्यात्मिकता का उल्लेख कर आये हैं। यहां हमें देखना है कि वैज्ञानिक और कलाचेतना मूलक इतिहास में इन तत्वों का कैसे संकलन किया जाता है। वैज्ञानिक इतिहास में इतिवृतात्मकता अधिक होती है । साहित्यिकता कम होती है। कला चेतना मूलक इतिहास में साहित्यिकता एवं काव्यात्मकता अनुपम होती है। इतिवृतात्मक कथा तत्व भी काफी मात्रा में रहता है जो साहित्यिक भाग को सौंदर्य प्रदान करता है । इन दोनों तत्वों से तृतीय आध्यात्मिक तत्व को उजागर किया जाता है। कला चेतना मूलक इतिहास में मनुष्य को सुशिक्षित करने के लिए उसे आध्यात्मिक सत्यता-परक तथ्यों से अलंकृत करना होता है। रसात्मकता लाने के लिए विभिन्न प्रकार के भावों का सूक्ष्म निरुपण किया जाता है जिस के द्वारा उच्चादर्शों के लिए मानवता को प्रेरित कियाजाता है।[66]

'गुरु प्रताप सूरज' में वर्णित इतिहास का स्वरुप

उक्त विवेचन के आधार पर अब हमें यह जानता सुविधाजनक प्रतीत होगा कि 'गुरु प्रताप सूरज' किस कोटि का ऐतिहासिक ग्रंथ है। इसे देखते ही विदित

66- गु. प्र. सू. ग्रं. प्र. , पृ. 60

होता है कि यह कला चेतना मूलक ललित इतिहास है। जिसे इतिहासकार के कव रुप ने काव्य के माध्यम से लिखा है। उसमें ऐसी अनुपम मधुरता भर दी है कि वह सहज ही हमें बाल्मीकि, व्यासदेव और तुलसी की स्मृति दिलाता है। वास्तव में कवि सन्तोख सिंह पर इन उक्त महाकवियों का अमिट प्रभाव पड़ा था। बाल्मीकि रामायण का तो उन्होंने स्वयं हिन्दी कविता ब्रजभाषा में रुपान्तर भी कर डाला था। महाभारत की रसमयी कथा शैली की तरह ही गुरु-इतिहास लिखने की उन्हें प्रेरणा मिली थी। तुलसी के 'रामचरित' मानस की लोक प्रियता से प्रेरित होकर उसी काव्यात्मक शैली में उन्होंने गुरुओं के प्रताप की यशोगाथा को लिखकर अपने पुण्य को प्रकट किया। इस काव्यात्मक शैली में उन्होंने ऐसी कलात्मकता का प्रदर्शन किया कि समस्त चित्र आंखों के सामने हो जाते हैं। आचरण और आदर्शों की उच्चता, मानवीय शिष्टाचार एवं सदाचार से मानवता को परिचित कराने की अनुपम शैली, आत्मिक अनुभवों को प्राप्त गुरु साहिबान के आलौकिक वर्णन एवं उपदेश आदि को पढ़ कर मानव को ऐसी शिक्षाएं प्राप्त होती है कि वह पापत्व क से दूर भागने लगता है।

वैज्ञानिकता

पाश्चात्य रीति के वैज्ञानिक इतिहासकारों की तरह इसमें एक निश्चित युग और समय लिया गया है, घटनाओं की क्रम-बध्दता के सम्बन्ध में उपयुक्त अनुसन्धान किया गया है उनके सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार के विचारों की स्थापना की गई है। चाहे इस कार्य में कई त्रुटियां भी रह गई है तो भी जो सम्वत् आदि दिए गए हैं वे प्रायः ठीक हैं और उसी तरह से दिए गए हैं जैसे कि वैज्ञानिक इतिहास में दिए गए होते हैं। इसके लिखने में जोभी अधिकाधिक पुस्तकें लेखक को मिल सकी है, उन्हें प्राप्त कर उन्होंने उनका अध्ययन किया, दूर दूर से लोग उनके पास हस्त-लिखित ग्रंथ लाते थे। जो लोग ग्रंथ नहीं देना चाहते थे उनके ग्रंथों को पढ़कर वापिस कर दिया जाता था। कई स्थानों पर कवि जी लिखते हैं कि यह बात मैंने

PANJAB UNIVERSITY LIBRARY

बृध्द महानुभावों से सुनी हैं,[67] कई स्थानों पर कवि जो लिखते हैं कि यह मैंने देखी है[68] और कई स्थानों पर कहते हैं कि मैंने देखी नहीं प्रत्युत लोगो से सुनी है। इससे स्पष्ट होता है कि कवि ने अनेकों ही किम्वदन्तियों, जन-श्रुतियों, ऐतिहासिक ग्रंथों एवं हस्तलिखित ग्रंथों से वैसे ही सहायता ग्रहण की जैसे कि वैज्ञानिक इतिहासकार करता है। सारांश यह है कि कवि जो वैज्ञानिक इतिहासकार की तरह ही अनुसन्धान करते हैं। उनकी शोध पुस्तकें एवं निजी प्रयासों पर आधारित है। इस तरह जो भी घटनाएं उन्हें मिलती हैं, उन्हें क्रमबध्द रूप में लिखते चले जाते है तथा तत्कालीन परिस्थितियों को भी अंकित करते जाते हैं। उन में प्रायः गलती की सम्भावना कम ही है। त्रुटियों के होते हुए भी वह ठीक प्रतीत होती हैं। इस तरह से यह वैज्ञानिक इतिहास प्रतीत होता है। परन्तु इसे हम पूर्णरूपेण खोजा हुआ तथा परखा हुआ वैज्ञानिक इतिहास भी नहीं कह सकते क्योंकि इसका धरातल कला चेतना मूलक है और यह अनुपम काव्यात्मकता से अलंकृत है और यह धार्मिक भावना से अनुप्राणित है।

साहित्यिकता एवं आध्यात्मिकता

इस महान ऐतिहासिक ग्रंथ में साहित्यिकता एवं आध्यात्मिकता का सर्वत्र साम्राज्य है। जिस से यह कला चेतना मूलक इतिहास कहा जा सकता है क्योंकि इस में कलात्मक इतिहास के समस्त गुण पाये जाते है। इसे हम केवल पूर्णरूपेण वैज्ञानिक इतिहास नहीं कह सकते। इस का कारण यह है कि कवि की तथ्यों की छानबीन केवल गुरमुखी लिपि में उपलब्ध ग्रंथों तक ही सीमित रही है। यद्यपि कवि जी को उस समय काफी मात्रा में गुरुमुखी लिपि में ग्रंथ उपलब्ध होंगे तथापित वे सभी ग्रंथों का अवलोकन न कर सके होंगे क्योंकि अधिकतर ग्रंथ दीवान लखपत के समय जला दिए गए थे। वह उन्हें देखने में इस कारण असमर्थ रहे। फारसी का कवि जी को कम ज्ञान था तथा अंग्रेजी ग्रंथों का तब प्रचलन नहीं हुआ था।

67- गु. प्र. सू. ग्रं. प्र. पृ. 153

68- वही, पृ. 15 ।

254025

PANJAB UNIVERSITY LIBRARY

इस लिए कवि जो फारसी में लिखें गए ग्रंथों का न तो अध्ययन हो कर सके और न ही पाश्चात्य दृष्टिकोणानुसार उनके आधार पर तिथियों आदि को निश्चित क्रम दे सके। कई बार कवि प्रक्षिप्त ग्रंथों के भ्रमजाल में हो फंस जाते हैं जैसे कि सौ साखो में दिए गए तथ्यों का अनुसन्धान न करते हुए उन्हें हो सत्य मान कर उनका अनुसरण कर जाते हैं। कहीं कहीं तो उसका भावानुवाद ही अपनी कविता में कर देते हैं। इस तरह से सौ साखो की त्रुटियां 'गुरु प्रताप सूरज' में भी संकलित हो गई हैं।

इस विवेचन के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं[69] कि कवि जो ने कलात्मक इतिहास के धरातल पर अपनी समर्थता, परिश्रम आदि के सहारे वैज्ञानिक इतिहास लिखने का प्रयास किया है। इस प्रकार से 'गुरु प्रताप सूरज' वैज्ञानिकता एवं कलात्मकता के संयुक्त के दो रंगों वाला फूल है जिस में इन दोनों रंगों का बड़ी खूबी से चित्रण किया गयाहै। यह एक ऐसा इतिहास है जिस में वैज्ञानिकता एवं कलात्मकता दोनों का समन्वित रुप प्रस्तुत होताहै। जिस में इतनी वैज्ञानिक सामग्री संकलित है जो अनुसन्धान-कर्ताओं का मार्ग दर्शन कर सकती है। अन्य ऐतिहासिक ग्रंथों की छानबीन में भी इसका योगदान अपूर्व सिध्द होगा।

अलौकिक तत्व स्वरुप और उद्देश्य

यहां वैज्ञानिक इतिहास और ललित कलात्मक इतिहास में एक विशेष अन्तर को स्पष्ट करने वाला इतिहास में चमत्कारिक अंग है। वैज्ञानिक इतिहासकार चमत्कारिक अंशों का तिरस्कार करते हैं और उन को गणना घटनाओं के अन्तर्गत करने से संकोच करते हैं। परन्तु कला चेतना मूलक इतिहासकार ऐसे अंशों का हार्दिक स्वागत करते हैं। पाश्चात्य दृष्टिकोण वाले इतिहासकार जहां कभी भी किसी प्रकार के चमत्कारिक अंश को देखते हैं तो सन्देह करने लगते हैं। परन्तु जिन लेखकों का इन चमत्कारों में विश्वास होता है वे कैसे इन चमत्कारिक घटनाओं की अवहेलना कर सकते हैं। एक

69- गु.प्र. सू. ग्रं. प्र. पृ. 63

ओर इन्हें सन्दिग्ध एवं असंभव समझा जाता है तो दूसरी ओर इन अनहोनी घटनाओं को आत्मिक अनुभवों के आधार पर तार्किक ढंग से सत्य सिध्द करने का प्रयास किया जाता है। परन्तु वर्तमान युग में टैलीपेथी तथा अन्य साधनों द्वारा कई असंभव बातों को संभव बताया जा रहा है। ऐसी स्थिति में इतिहासकार को ऐसा अधिकार नहीं कि वह 'असंभव' की तुला पर ही वास्तविक आत्मिक अनुभूतियों को तोल कर उनका तिरस्कार करते हुए उनका आलेख करने का प्रयास न करे । उसे उनका संकेत करते हुए संकलन अवश्य करना चाहिए ।

इस दृष्टि से यदि देखा जाये तो 'गुरु प्रताप सूरज' में अनेक चमत्कारिक अंशों का संकलन होने से यह एक मान्य ग्रंथ सिध्द नहीं होता । परन्तु यदि भाई सन्तोख सिंह उक्त 'असंभव' की तुला पर ही सभी बातों को तोलते है और उन घटनाओं का संकलन न करते तो साहित्यिक एवं आध्यात्मिक जगत के साथ एक भारी अन्याय कर जाते । संभवतः उन्होंने इसी लिए ऐसा करना उचित न समझा। वे स्वयं अकाल पुरुख के ध्यान में लीन रहने वाले योगी पुरुष थे । उन्हें स्वयं कई ऐसी अनुभूतियां प्राप्त थी । जिनके कारण उन्होंने इन चमत्कारिक अंशों का संकलन कर ऐतिहासिक ईमानदारी का परिचय दिया है। यदि किसी पाठक को वे अंश सन्दिग्ध या असंभव अनुभव हों तो वे बेशक उन्हें न माने परन्तु कवि को अपयश का भाजन बनाना उचित नहीं ।क्योंकि वैज्ञानिक इतिहासों में भी ऐसे तथ्य मिल जाते हैं जिन में चमत्कारिक वर्णन होता है। जैसे हुमायू की बीमारी बाबर ने ली । यदि ऐसे तथ्यों को इतिहास से निकाल दिया जाये तो पिता-पुत्र प्रेम की तीव्रता संसार से लुप्त हो जायेगी।[70] ईसाई मत के इतिहास के संदर्भ में ईसा से सम्बन्धित अनेक अलौकिक घटनाओं को पाश्चात्य इतिहासकारों द्वारा सत्य माना जाता रहा है।

'गुरु प्रताप सूरज' अलौकिक एवं लौकिक व्यक्तियों का इतिहास है। इसमें किसी राजा के इतिहास को न लिख कर भाई सन्तोख सिंह ने आत्मिक अनुभव प्राप्त अलौकिक व्यक्तित्व वाले गुरु साहिबान के इतिहास को लेखनी बध्द किया है। संसार में अनेक राजाओं ने स्वार्थ सिध्दि के युध्द किए । परन्तु आत्मिक मंडल में विचरण

70- द्रष्टव्य : गु. प्र. सू. ग्रं प्र. पृ. 68

करने वाले महात्माओं का दृष्टिकोण भिन्न प्रकार का होता है। उन में स्वार्थ सिध्दि की भावना नहीं होती । ऐसे महापुरुषों के व्यक्तित्व को समझने में प्रायः लोग भूल कर बैठते हैं। सुकरात, ईसा, मंसूर, गुरु नानक देव, गुरु अर्जन देव, श्री गुरु तेगबहादुर और दशमेश पिता ने परमार्थ अपने जीवन का दान दिया । ऐसी आत्मिक मंडल में विचरण करने वाले महानात्माओं का व्यक्तित्व आत्मिक ओज से प्रकाशित रहता है। वैज्ञानिक इतिहासकार भी इस जगत का प्राणी होने के कारण पूर्व के इतिहासों से अपनी सामग्री का संकलन करता है। उसका हृदयप्रायः आत्मिक ज्योति को प्रकाशित करने वाली ज्योति स्वरुप महान् पुरुषों के व्यक्तित्व को समझ सकने में असमर्थ रहता है। वह चमत्कारिक अंशों को सन्दिग्ध जान कर जाने या अनजाने रुप में अन्याय कर जाता है। जैसा कि सैरुलमुताखरीन के कर्ता और खफी खां आदि इतिहासकारों ने धार्मिक कट्टरता के रंग में रंगे होने के कारण आत्मिक ज्योति वाले महापुरुषों के साथ अन्याय किया[71] ।

इस लिए इन आत्मिक ज्योति वाले महापुरुषों के जीवन की घटनाओं का विवरण कला चेतना मूलक इतिहासों में देखने को मिलता है। क्योंकि उनक जीवनादर्शों एवं उपदेशों का ऐसे इतिहासों मेंउल्लेख रहता है। इन मेंउपेदशात्मकता की प्रधानता सर्व साधारण को सुशिक्षित करने के लिए संकलित रहती है। उनके आध्यात्मिक एवं आलौकिक अनुभवों का संकलन नवीन रंगों से रंगा होता है। चाहे ऐसे इतिहासकार के साधन भौतिक ही होते हैं परन्तु इन के द्वारा भी आध्यात्मिक अनुभवों को ऐसे ढंग से मूर्तिमान किया जाता है कि वे सार्वकालिकता को प्राप्त हो जाते हैं। जैसे गुरु नानक देव जी को वेई नदी में प्रवेश के पश्चात् आत्मिक अनुभव प्राप्त हुआ। उसका वर्णन कोई वैज्ञानिक इतिहासकार कर भी कैसे सकता है। कलाचेतना मूलक इतिहासकार ऐसी प्रतीकात्मक रीति से ऐसे अनुभवों को मूर्तिमान करता है जो अन्य इतिहासकार नहीं कर सकते । कवि ने आत्मिक गौरवशाली व्यक्तित्व वाले महान् पुरुषों का इतिहास लिखने के लिए उनकी आन्तरिक शक्ति का भी परिचय दिया है। उनकी प्रेरक शक्ति 'अहम्' और स्वार्थपरता

71- गु. प्र. सू. ग्रं. प्र. पृ. 7।

से रहित थी ।कवि जी स्वयं आत्मिक अनुभव रखते थे ।इस लिए उन्होंने उक्त व्यक्तित्व वाले व्यक्तियों की महिमा को भली भान्ति जानते हुए उन सभी अलौकिक तथ्य का संकलन करने क से संकोच नहीं किया। इस विवेचन से स्पष्ट है कि इन दोनों पध्दतियों के अनुसार लिखा गया यह ऐतिहासिक ग्रंथ 'लोक प्रिय इतिहास' बनने के गौरव से भी सुशोभित हुआ ।

लोक प्रिय इतिहास[72]

कवि जी ने जहां इस में वैज्ञानिक इतिहास बनने की सामग्री संकलित की है वहां यह कलात्मक इतिहास का उपवन भी बन गया है।जिसके सौंदर्य ने जन साधारण को आकर्षित ही नहीं किया अपितु उन्हें ऐसी रसमयी अवस्था प्रदान की कि अनेक गुरु-भक्त भंवरों के लिए यह रस का स्रोत ही बन गया।इसी लिए इसे लोकप्रिय इतिहास बनने का गौरवशाली स्थान प्राप्त हुआ ।इसने सर्वसाधारण को आत्मिक शान्ति प्रदान की ।माधुर्य ओज और प्रसाद की ऐसी त्रिवेणी प्रवाहित की कि कोई इस के अर्थ चाहे न भी समझ पाये परन्तु इसकी कविता और काव्यकौशलता के रसास्वाद में डूबे बिना नहीं रह सकता ।वह भौतिकताा से भागकर आध्यात्मिकता की शरण ग्रहण करता है। इसका उपदेश भी रसमय है। इसी लिए यह लोकप्रिय इतिहास है। इसके छन्दों की गति ,लय और ताल का ऐसाम प्रभाव पड़ता है कि पाठक एवं श्रोता दोनों झूम उठते हैं।इसकी लोक प्रियमा इस बात से भी सिध्द है कि लोगों को कथाओं की अनुपम निधि प्राप्त हो गई।प्रतिदिन धर्मशालाओं, गुरु द्वारों, दीवानों और घरों में सायः को इसकी कथा का प्रचलन – है।पंजाब में पिछले 100 वर्षों से इस ग्रंथ का इतना प्रचार रहा है कि जहां कथावाचक ज्ञानी पुरुषों को इससे लाभ हुआ वहां अनेक इतिहासकारों एवं कवियों के लिए भी यह एक उपजीव्य ग्रंथ बन गया है।

72_ " History is a Universal epic"--Hints for Self-culture

उपजीव्य ग्रंथ

इस ग्रंथ में संकलित अमूल्य सामग्री के आधार पर अनेक कवियों और इतिहासकारों ने अनेक ग्रंथों की रचना की है। जैसे बाबा गणेशा सिंह जी बेदी ने 'गुरु नानक सूर्योदय', ज्ञानी ज्ञानसिंह रचित तवारीख गुरु खालसा जिसे वार्तिक सूरज प्रकाश ' भी कहा जाता है, भाई हजारा सिंह रचित 'सूरज प्रकाश चूरणिक', बाबा प्रेमसिंह रचित 'गुर पुर प्रकाश' भाई वीरसिंह रचित 'गुरु नानक चमत्कार', 'कलगीधर चमत्कार', 'श्री अष्टगुरु चमत्कार', मैकालिफ रचित 'सिक्ख रिलिजन, खुरशेद खालसा आदि अनेक लेखकों की रचनाएं इसी ग्रंथ की सामग्री पर आधारित हैं ।

इस विवेचन से स्पष्ट है कि यह ग्रंथ सिक्ख इतिहास और संस्कृति का कोश है और इस ऐतिहासिक आधार की सी पकड़ के कारण भाई सन्तोख सिंह एक समर्थ कवि बन पाये है ।

'गुरु प्रताप सूरज' में वर्णित ऐतिहासिक सामग्री के आधार और सूत्र

पंजाब में भाई सन्तोख सिंह की ख्याति केवल एक कवि के रूप में ही नहीं है अपितु इतिहासकार के रूप में भी है । इस मान्यता का आधार उपरिलिखित 'गुरु प्रताप सूरज' की वह व्यापक ऐतिहासिक सम्पत्ति है जिस की कड़ियां भारत के इतिहास से जुड़ी हैं । 'गुरु प्रताप सूरज' की इस व्यापक ऐतिहासिक सामग्री के संकलनार्थ कवि ने अपने समय में उपलब्ध जिन ऐतिहासिक साधनों का उपयोग किया उनका क्षेत्र वेद, पुराण, रामायण, महाभारत आदि आर्य ग्रंथों से लेकर गुरु ग्रंथ साहिब , वारां भाई गुरदास, महिमाप्रकाश, दशम ग्रंथ , (विचित्र नाटक आदि) रचनाएं गुरु शोभा (सेनापति) गुरविलास (सुक्खा सिंह) और सौ साखी तक परिव्याप्त है । सौ साखी को तो इस ग्रंथ का विशेष रूप से आधार ग्रंथ कहा जा सकता है। क्योंकि

73- "Every great writer is a writer of history, let him treat on almost any subject he may."
--W. S. Landor, Imaginary Conversations: Diogenes and Plato.

इसके वक्ता श्रोता इस ग्रंथ के वक्ता श्रोता ही नहीं बने अपितु उसकी अनेक साखियों का तो कवि ने एक तरह से अनुवाद ही कर दिया है।[74] इन साहित्यिक सूत्रों के अतिरिक्त कवि ने पुरातत्वीय सूत्र(स्मारक, पुरालेख आदि)[75] तथा मौखिक परंपराओं को भी इस ग्रंथ का आधार बनाया है।[76]

'गुरु प्रताप सूरज' में युग-चित्रण : ऐतिहासिक परिस्थितियां

'गुरु प्रताप सूरज' में गुरुकालीन एवं मुग़लकालीन भारत का चित्र प्रतिबिम्बित है। गुरुओं का समय सन् 1469 से 1708 तक था और मुग़ल बादशाहों का समय भी 1526 से सन् 1707 तक था। ये दोनों काल लगभग एक ही समय में शुरु होकर एक ही समय समाप्त हुए। इस युग की परिस्थितियों के चित्रण के साथ साथ इसमें पूर्ववर्ती युग का भी चित्र अंकित है। गुरु नानक से पूर्व पंजाब की स्थिति का भी चित्र इस में देखने को मिलता है। उन्होंने स्वयं तत्कालीन परिस्थितियों का उल्लेख अपनी वाणी में किया है। जिस के आधार पर भाई सन्तोख सिंह ने तत्कालीन कलिकाल[77] का चित्र प्रस्तुत किया है। देश की संस्कृति के निर्माण में इन ऐतिहासिक परिस्थितियों एवं प्रवृतियों का योगदान रहता है। अतः तत्कालीन ऐतिहासिक परिस्थितियों के राजनीतिक, समाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक आदि सभी पक्षों पर विचार करना आवश्यक होगा। तभी हम यह जान सकेंगे कि शान्त स्वभाव वाले निर्गुणोपासक गुरु साहिबान की परंपरा को कैसी परिस्थितियों ने नया मोड़ दिया कि वे सन्त सिपाहियों के रूप में परिवर्तित हो गए।

(1) राजनैतिक परिस्थितियां

गुरु नानक के युग में लोधी शासन था। इसी लोधी वंश को त्याग कर राजलक्ष्मी ने मुग़ल वंश की अधीनता स्वीकार की थी। बाबर ने निरीह जनता पर कतले आम

74- प्रताप सिंह महिमा : सौ साखी सटीक, भाग पहला और दूसरा।

75- गुरु प्र. सू. ग्रं. प्र. पृ. 15।

76- वही, पृ. 153

77- गु.प्र.सू. राशि 1, अंक 4, पृ. 1328 (अंशु 6)

किया था और उससे पूर्व भी अनेक मुस्लिम शासकों ने (गौरीवंश, गुलाम वंश, खिलजी-वंश, तुग़लक वंश तथा सैयद वंश) भारत की जनता पर अत्याचार किए थे । भरत को राजनैतिक बागडोर विदेशी शासकों के हाथ में लगातार चल रही थी । जो एक से एक बढ़कर भारतीय जनता के प्रति असहिष्णु अनुदान और संकीर्ण थे । उनकी धर्मान्धता एवं राजनैतिक अस्थिरता के कारण भारत की शासन प्रणाली भी बिगड़ती गई। गुरु नानक देव ने अपनी वाणी में उन कलियुगीय शासकों की तीव्र भर्त्सना और तीखी आलोचना की। आक्रोश के ऐसे स्वर गुरु नानक जी की वाणी में यत्र तत्र मिलते है।[78]

लोधी शासकों के अधीन भारत की राजनीति धर्म अधीन हो चुकी थी और मुसलमानों की धार्मिक असहिष्णुता के कारण हिन्दुओं के लिए जीना दुष्कर हो चुका था। चारों ओर इस्लाम धर्म ग्रहण करने अथवा जजिया देने या मृत्यु स्वीकार करने का भयावह वातावरण छाया हुआ था । इस वातावरण का प्रतिबिम्ब 'गुरु प्रताप सूरज' में अंकित है। इस के अतिरिक्त शेरशाह से हार कर आये हुमायूं के पुनः राज्य प्राप्त करने , अकबर की उदार नीति, मुग़ल शासन की स्थिरता आदि के चित्र इस में प्रतिबिम्बित हैं। अकबर से पूर्वकालीन प्रायः सभी मुसलमान शासकों ने धार्मिक कट्टरता से प्रेरित होकर देशस्थ हिन्दू जनता पर अनेक आर्थिक और धार्मिक अत्याचार किए। उनके शासन का उद्देश्य इस्लाम का था जो कि प्रत्येक मुसलमान का मुख्य कर्तव्य है। इसका दूसरा नाम है जिहाद। राजव्यवस्था के अन्तर्गत धार्मिक नेताओं — उलमाओं — को विशेष मान्यता प्राप्त थी जो कुरान और हदीस के आधार पर देश की समस्याओं का समाधान करते थे । उनकी दृष्टि में सब से बड़ा कुफ्र मूर्ति-पूजा को मानना था । इसलिए मूर्तिपूजक हिन्दू जनता के लिए दो मार्ग थे — इस्लाम का ग्रहण या मृत्यु । इस्लाम धर्म न ग्रहण करने वाले काफिरों के लिए यह मार्ग भी निश्चित किया गयाकि वे कुछ मूल्य— जजिआ देकर जीवित रहने का अधिकार खरीद सकते थे[79] । अकबर के पूर्वकालीन शासकों ने धर्म प्रचार के लिए जजिया (कर)

78- राजे सीह मुकदम कुते । जाइ जगाइन बैठे सुते ।
चाकर नहदा पाइन्हि घाउ। रतु पित कुतिहो चटि जाहु । । (आदिग्रंथ-शब्दार्थ) : पृ • 1288

79- आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव : मध्यकालीन भारतीय संस्कृति , पृ • 37

लगाया हुआ था ।अकबर के काल में इस में कुछ ढील भी हुई।परन्तु आगे चलकर जहांगीर के युग में अकबर और गुरु साहिबान के स्थापित सम्बन्धों में कुछ परिवर्तन हुआ ।गुरु हरिगोविन्द ने अपने पिता के बलिदान के अनन्तर सैनिक जीवन की आज्ञा दी।स्वयं भी दो तलवारें ग्रहण की । एक मीरी की दूसरी पीरी की ।आगे चलकर जब औरंगजेब के युग में धर्मान्धता और नृशंसता का बोलबाला हुआ[80] और गुरु तेगबहादुर को हिन्दू धर्म की संरक्षा के लिए बलिदान देना पड़ा तो गुरु गोबिन्दसिंह ने मुग़ल सता से लोहा लेन के लिए 'खालसा पंथ' का निर्माण किया । ऐसी मुग़ल शासन की नीति ने जनता को दीन हीन एवं पंगु बना दिया था ।इसी कारण सन्तों को सिपाहियों का वेश धारण करना पड़ा ।

(2) सामाजिक परिस्थितियां

राजनैतिक विशृंखलता ने समाज की दशा को भी चिन्तनीय बनाया हुआ था । एक ओर भारत पर हो रहे विदेशी आक्रमणों ने उसे जर्जित किया हुआ था तो दूसरी ओर तत्कालीन पंजाब की हिन्दू जनता में सामाजिक ऐक्य की भावना का अभाव था । समाज परंपरागत वर्ण व्यवस्था में विभक्त था परन्तु इस में भी राजनैतिक कोप केकारण विशृंखलता फैली हुई थी । देश में वर्गगत भेदभाव,जाति-पाति और उच्च-नीच की भावनाओं ने समाज को मृत प्रायः बना दिया था । राजनैतिक क्षेत्र में यदि उलमाओं काज़ियों ने निरीह जनता पर आत्याचार किए तो ~~सम~~ सामाजिक क्षेत्र में ब्राह्मणों के पांखड पूर्ण प्रभुत्व ने भी शुद्र तथा निम्न वर्गो के लोगों का जीवन दुभर कियाहुआ था[81] । स्त्री केवल विलासता की कठपुतली समझी जाती थी। पर्दा प्रथा को धारण किए वह घुट घुट कर सिसक रही थी । सम्पूर्ण समाज निराधार

81- सरम धरम दुइ छप खलोए कूड़ फिरै परधान वे लालो ।
काजीआं ब्राहमणा की गल थकी अगद पड़ैशैतान वे लालो ।
मुसलमानीआ पड़हि कतेबा कसट महि करहि खुदाइ वे लालो।। — आदि ग्रंथ

80- सरकार : शार्ट हिस्ट्री आफ औरंगजेब , पृ॰ 147-148

अन्ध विश्वासों और रुढ़ियों के पाश में बन्ध कर सिसक रहा था ।हिन्दू समाज की गिरावट के साथ मुस्लिम समाज को भी अधोगति के चित्र देखने को मिलते हैं।सदाचार हीनता का नृत्य हो रहा था । परिणामतः कहाजा सकता है कि तत्कालीन निष्प्राण समाज में सुधार लाने के लिए लंगर प्रथा, सरल विवाह प्रथा, नारी के सम्मान की वकालत तथा कायरों को शेर बनाने के लिए गुरु साहिबन ने कई सरल जीवन पध्दतियों का प्रचलन कर अपने लोक-नायकत्व का परिचय दिया ।

(3) धार्मिक परिस्थितियां

धर्म की दशा और भी अधिक चिन्तीय थी । धर्म न केवल बाह्याचार ,कर्मकांड और निष्प्राण संस्कारों से गर्हित रुप धारण करता जा रहा था । अनेक मत मतान्तारों ने भी उसे निष्प्राण बना दिया था । ब्राह्मण, योगी, वैरागी, और संन्यासी ही हिन्दू धर्म के कर्णधार थे तो उधर दूसरी ओर काज़ी कुरान का मार्ग दिखा कर न्याय कर रहे थे । हिन्दूओं को धर्म परिवर्तन के लिए विवश किया जा रहा था ।ये सभी धर्म के वास्तविक स्वरुप से अपरिचित थे ।मूर्तिपूजा का बोलबाला था ।रिश्वत का बाजार गर्म था ।ब्रह्मणों ने ज्ञान प्राप्ति छोड़ कर आडंबर पूर्ण उपासना पध्दतियों का प्रचलन किया हुआ था । हिन्दू धर्म के मूल सिध्दान्त संस्कृत के ग्रंथों मे ही बन्द पड़े थे ।सामान्य जनता संस्कृत भाषा से अपरिचित होने के कारण इन ग्रंथों का उपयोग न कर सकती थी ।अतः वह धर्म से दूर हो चुकी थी ।ऐसे संत्रस्त युग में गुरु साहिबान ने जनता को सिक्ख धर्म का सरल और भक्ति भावना से परिपूर्ण मार्ग दिखाया । स्वत्व की रक्षा के लिए युध्द में वीर गति प्राप्त करने से भी मोक्ष की प्राप्ति का मार्ग दिखाया ।उन्होंने एकेश्वर-वाद की स्थापना कर हिन्दुओं और मुसलमानों के भेद भाव को दूर करने का भी प्रयास किया । बाह्याडम्बरों तथा रुढ़िग्रस्तता के त्याग का सन्देश दिया ।उसमें

82- कलि काती राजे कासाई धरमु पंखु करि उडरिआ ।

कूड़ु अमावस सचु चंन्द्रमा दीसै नाही कह चड़िआ ।।

— माझ की वार, महला ।, सलोकु 35, शब्दार्थ, पृ ।45

आत्मा और आत्म विश्वास की भावना को जगाया ।

(4) आर्थिक परिस्थितियां

सारा समाज उस समय दो वर्गों में विभक्त था एक अमीर और दूसरे गरीब। मुसलमान शासक थे अतः वे सामान्य जनता पर नाना अत्याचारों द्वारा कर वसूल करते थे । जो हिन्दू अमीर थे वे भी सामान्य जनता का खून चूस रहे थे । समाज में एक ओर अनेक भागो के वे लोग थे जो सामान्य जनता का शोषण कर रहे थे तो दूसरी ओर लालो जैसे गरीब लोग थे जो किरत कर के निर्वाह कर रहे थे ।अधिक लोक कृषक थे जिन का निर्वाह कृषि के द्वार हो रहा था।कई हिन्दु व्यापार भी करते थे पर अधिकतर छोटे छोटे ग्रामों में दुकाने बनाई हुई थी। कुछ लोग शाहूकारा भी करते थे । व्याज पर रुपये भी देते थे ।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि उस समय लोभ का राज्य था,काम चौकीदार था,झूठ को सरदारी हो रही थ।जनता अज्ञान तिमिर में फंसी हुई थी,धर्म के ठेके दार धर्म का बेच बेच कर खा रहे थे,स्त्री रुप का श्रृंगार बन कर वैश्वा बनी हुई थी ।अमीरो के घर अनेक स्त्रियां उनके हर्मो का श्रृंगार थी ।भाव यह है कि उस समय सर्वत झूठ का नृत्य हो रहा था । ऐसे युग में गुरु साहिबान ने सामान्य जनता का नेतृत्व किया और उन्हों प्रकाश की नवीन ज्योति दिखाई। वे ज्योति ही दसों गुरु साहिबान में प्रकट हुई जिन्होंने संत्रस्त जनता का युगानुकूल मार्ग दर्शन किया।विषम परिस्थितियों से जूझने का मार्ग दिखाया ।

यहां इस युग-परिवेश का एक विहंगम चित्र ही प्रस्तुत किया गया है ताकि 'गुरु प्रताप सूरज' में वर्णित ऐतिहासिक पात्रों ,घटनाओं,आदि का सही परिप्रक्ष्य में मूल्यांकन हो सके।आगे चलकर 'गुरु प्रताप सूरज' के संदर्भ में इस युग की परिस्थितियों पर विस्तार से विचार किया गया है।

दस गुरु साहिबान

प्रमुख ऐतिहासिक पात्र और उनका जीवन चरित

'गुरु प्रताप सूरज' जैसे विराट ऐतिहासिक महाकाव्य में पात्रों का ऐसा बृहत् संकुलसमाज है कि उन सभी का विशद चित्रांकन कर पाना कवि के लिये असंभव सा था। अतः इसके मुख्य या प्रधान पात्रों के व्यक्तित्व-विस्तार की ओर ही कवि का अधिक ध्यान रहा है। दूसरे चारित्रिक एवं नैतिक दृष्टि से समादृत पात्रों का विश्लेषण ही उसका लक्ष्य रहा है। इस महाकाव्य में आत्मचिन्तक एवं परब्रह्म रूप सिक्ख गुरुओं के प्रताप का आख्यान होने के कारण उनकी महानता का ही निरूपण किया गया है। वे एक साथ ही महामानव (ऐतिहासिक), सर्वशक्तिमान परब्रह्म के अवतार (पौराणिक) और अनिर्वचनीय, अवाङ्मनस गोचर, आत्मरूप गुरु (दार्शनिक) के रूप में ऐतिहासिक, पौराणिक एवं दार्शनिक क्षेत्रों का महत् कल्याण के प्रतीक बन कर इस काव्य में निरूपित हैं। इनके अतिरिक्त अनेक स्फुट पात्रों का भी इस में वर्णन किया गया है जैसे कथानिष्ठ, उल्लिखित और पौराणिक आदि। कथानिष्ठ पात्र कथाक्रम में एक निश्चित स्थल पर ही दिखाई देते हैं, उल्लिखित पात्रों का काव्य में वर्णित अनेक अन्तर्कथाओं में ही उल्लेख मिलता है। ब्रह्मा, शिव, गणेश, सरस्वती, नारद, वरुण आदि अनेक पौराणिक देव-पात्रों का भी इस में वर्णन हुआ है। इस धर्मग्रंथ में ऐसे पौराणिक पात्रों का मोह कई स्थानों पर दिखाई देता है।

इस काव्य में वर्णित विशाल पात्र-समुदाय का परिचय देना सहज नहीं है। अतः प्रमुख पात्रों के चरित्र विश्लेषण तक ही प्रस्तुत अध्ययन को सीमित रखा गया है। (गुरु साहिबान के जीवन चरित के अतिरिक्त प्रमुख प्रमुख मुगल शासकों, पहाड़ी राजाओं एवं अन्य ऐतिहासिक पात्रों के चरित से भी परिचित कराने का प्रयास किया गया है)

'गुरु प्रताप सूरज' में वर्णित गुरुओं का चरित

भाई सन्तोखसिंह ने इस ऐतिहासिक काव्य में अपना सन्देश गुरु इतिहास के माध्यम से दिया है। उन्होंने इतिहास के माध्यम से रसात्मक कवि-कर्म का निर्वाह किया है। गुरु-इतिहास का आधार भित्ति भित्ति पर ही इस काव्य-प्रासाद का निर्माण किया है।

गुरु साहिबान के जीवन-चरित्र को समग्रता में लेकर उन्होंने जीवन-तत्व का आख्यान किया है। इतिहास के महर्षियों में गुरु साहिबान को असंदिग्ध स्थान प्राप्त है। उन्होंने अपने अनुयायियों को मात्र कथनी का ही उपदेश नहीं दिया वरन् उन्हें निर्भीक, स्वाभिमानी तथा धर्मनिष्ठ होकर जीवन में अग्रसर होने की शिक्षा तथा 'करनी' का भी उपदेश दिया है। भारतीय संस्कृति के संरक्षक दसों गुरु एक ही आध्यात्मिक ज्योति के वाहक रहे हैं। 'गुरु प्रताप सूरज' में आदि ग्रंथ[83] तथा भाई गुरदास[84] द्वारा प्रतिपादित इसी विचार का अनुसरण किया ~~है~~ गया है[85] प्रत्येक का अभिषेक हुआ था। ~~प्रत्येक~~

83- जोति रूप हरि आपि गुरु नानकु कहायउ ।
ता ते अंगदु भयउ तत सिउ ततु मिलायउ ।
अंगद किरपा धारि अमरु सति थिरु कीयउ ।
अमरदासि अमरतु छत्रु गुर ~~[illegible]~~ रामहि दीअउ।– आदि ग्रंथ, पृ• 1408

84- जोती जोति मिलाइ कै सतिगुरु नानक रूप वटाइआ ।।
लख न कोई सकई आचरजे आचरज दिखाइआ ।।
काइआ पलटि सरूप वणाइआ ।।
– भाई गुरदास, वार 1, पउड़ी 45

85-(क) इक जोति उदोतक रूप दशो गुर,
होति अन्धेर गुबार उदारा ।
जग में सुप्रकाश चह्यो करिबे ,
उपदेश दियो सिक्ख जो नर दारा ।।
– गु. प्र• सू• रा• 1, अंशु 1, अंक 19, पृ• 1290

(ख) एको रूप जु दशम गुर पारब्रह्म आनन्द ।
– वही, रा• 1, अंशु 9, अंक 1, पृ• 1340

(ग) जोति ते जोति प्रकाश रही जिम लागे मसाल ते दूज मसाला।
घाट न बाढ बनै कबहूं जुग होहि समान प्रकाश बिसाला ।
– वही, रा• 1, अंशु 9, अंक 27, पृ• 1344

''नानक ने अंगद का शरीर धारण किया .... फिर नानक अमरदास कहलोये, जैसे दीप से दीप जलता है .... पुण्य पावन नानक का अंगद के रूप में अभिनन्दन हुआ। अंगद का परिचय अमरदास का परिचय बना। अमरदास रामदास बन गए। जब रामदास प्रभु में लीन हुए उन्होंने गुरु गद्दी अर्जुन को दी। अर्जुन ने हर गोविन्द को अपना उत्तराधिकार दिया। हरगोविन्द ने हरराय को, फिर उनके सपुत्र हरकृष्ण गुरु बने। फिर तेगबहादुर अवतरित हुए। तत्पश्चात् हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए अपना सर्वस्व बलिवेद पर चढ़ाने वाले गुरु गोविन्द सिंह जी ने अवतार धारण किया।

गोबिन्द रूप दसों गुरु साहिबान की ब्रह्मसाधना के फलस्वरूप अभिव्यक्त वाणी पर ही सिख धर्म की नींव टिकी हुई है। सिक्खों का निश्चय है कि दसों गुरु साहिबान में एक ही ज्योति थी। उनकी जीवन-घटनाओं ने सिख धर्म को प्रकाशित किया। उनकी वाणी ही उनके धर्म-विस्तार का संबल रही है। इस तरह से गुरु की गद्दी पर आसीन होने वाले नव गुरुओं का जीवन इतिहास इस महाकाव्य का विषय बना।[86] यद्यपि गुरु नानक देव जी का चरित्र वर्णन इस ग्रंथ का विषय नहीं है क्योंकि कवि उनके चरित्र का गान 'गुरु नानक प्रकाश' नाम के महाकाव्य में पहले कर चुका था तथापि गुरु नानक का संक्षिप्त परिचय इस ग्रंथारंभ में दिया गया है। इस के अतिरिक्त सम्पूर्ण ग्रंथ में 'गुरु नानक देव जी की गद्दी की महिमा का वर्णन है। ग्रंथारंभ में मंगला चरणों के पश्चात् 'गुरु प्रताप सूरज' में संकलित सामग्री, गुरु कथा के वक्ता भाई रामकुंवर जी की कथा भी दी गई है।[87] इस के पश्चात् प्रथम पातशाही से लेकर दशम पातशाही तक संक्षिप्त परिचय दिया गया है।[88]

नौ गुरु और उनका व्यक्तित्व, पारिवारिक जीवन एवं ऐतिहासिक घटनाएं

जैसा कि ऊपर संकेत किया गया है कि इस काव्य का प्रतिपाद्य गुरु नानक के अतिरिक्त शेष नौ गुरुओं के जीवन इतिहास को प्रस्तुत करना है। इस गुरु कथा

86- गु॰ प्र॰ सू॰ रा॰ 1, अंशु 5-8, पृ॰ 1324-40

87- वही, रा॰ 1, अंशु 2-3, पृ॰ 1312-1324

88- वही, रा॰ 1, अंशु 7-8, पृ॰ 1332-1340

के अन्तर्गत गुरु परिवारों के उत्कर्षापकर्ष के रहस्य भी निहित हैं। उन के नैतिक आदर्शों के निरूपण द्वारा उनके व्यक्तित्व का उद्घाटन हुआ है। मानवीय जीवन की वास्तविकता एवं यथार्थता पर भी प्रकाश डाला गया है।

'गुरु प्रताप सूरज' में वैज्ञानिक इतिहास की तरह ग्रंथारंभ में अंशु 7 तथा आठ में शेष नौ गुरुओं के जीवन से सम्बन्धित विभिन्न तिथियां दी गई हैं तथा संक्षिप्त परिचय प्रस्तावना रूप में भी दिया गया है। वास्तविक कथा अथवा इतिहास नवम् अंशु से आरंभ होता है। श्री गुरु नानक देव जी से गुरुता प्राप्त कर तथा उनकी आज्ञा को शिरोधार्य मान कर श्री अंगद देव जी खडूर आ कर गुप्त जीवन व्यतीत करते हैं। परन्तु उनके प्रारम्भिक जीवन का परिचय प्राप्त करने के लिए हमें 'श्री गुरु नानक प्रकाश' का अवलोकन करना पड़ेगा क्योंकि कवि ने उनके जीवन पर उसमें विस्तार से कहा है। अतः पूर्व-पीठिका के रूप में यहां पर उक्त ग्रंथ से उनकी जीवन-घटनाओं का संकलन किया जा रहा है ताकि उनका अविकल चरित्र ज्ञात हो सके। उनके पारिवारिक जीवन, श्री गुरु नानक देव जी से उनका मिलन, उनकी अद्वितीय गुरुभक्ति, परीक्षाएं श्रीगुरु अंगद रूप में परिवर्तित होना आदि के विषय में जानकारी प्राप्त कर हम उनके व्यक्तित्व के वास्तविक रहस्य को जानने में समर्थ हो सकेंगे।

पूर्व - पीठिका('श्री नानक प्रकाश' से संकलित)

गुरु अंगद देव जी का प्रारम्भिक परिचय(संवत् 1561-1606, सन् 1504-1552)

पारिवारिक जीवन : आप का जन्म तेहण कुल के क्षत्री श्री फेरु जी के घर साध्वी दया[89] कौर के गर्भ से हुआ था। आपके पिता 'मत्ते की सराय'[90] (यह स्थान मुक्तसर जिला

89- (क) श्री गुरु नानक प्रकाश, उत्तरार्द्ध, अध्या॰ 47, अंक 2, पृ॰ 1152

(ख) गु॰ प्र॰ सू॰ रा॰ 1, अंशु 7, अंक 6, पृ॰ 1537

(ग) महान कोश, पृ॰ 84 (घ)

90- (क) वही

फिरोजपुर से तीन मील की दूरी पर स्थित है तथा अब नागे की सराय कहलाता है) नामक स्थान पर रहते थे। गुरु प्रताप सूरज' के अनुसार आप का जन्म हरिके ग्राम में 1567 में हुआ।[91] परन्तु सिक्ख इतिहासकारों ने आप का जन्म सम्वत् 1561 (तदानुसार सन् 1504) में माना[92] आप के पिता ने आप का नाम लहणा रखा। जब आप की आयु 14 वर्ष की हुई तो संघूर निवासी श्री देवीचन्द की पुत्री खीवी से आप का विवाह हुआ।[93] तत्पश्चात् आप अपने पूर्वजों के मत्ते की सराय में आकर रहने लगे परन्तु बाबर का आक्रमण हुआ और मुगलों तथा बलोचों ने मत्ते की सराय को लूटा तो आप हरिके ग्राम में आ बसे। तत्पश्चात् खडूर में आ कर रहने लगे।[94] वहां पर अपना घर बना लिया। वहां रहते हुए ही आप के घर दो पुत्र 'दासू' और दातू'[95] और दो पुत्रियां बीबी अमरो और बीबी अणोखो हुई।[96]

91- पंद्रहि सत सताहठा संमत। फेरगुत जनम्यो गुरु संमत ।। 8 ।।

— गु॰ प्र॰ सू॰ रा 1, अंशु 7, पृ॰ 1332

92- (क) श्री गुरु नानक प्रकाश, उत्तरार्द्ध अध्या॰ 47, अंक 3 का फुटनोट, पृ॰ 1152

(ख) गु॰ प्र॰ सू॰ रा॰ 1, अंशु 7 अंक 8, पृ॰ 1332 पर फुटनोट जिस में भाई वीरसिंह ने गुरु जी के अवतार धारण का सं॰ 1561 दिया है।

(ग) महान कोश, पृ 84 (जन्म रविवार वैसाख वदी। (5 वैसाख) सं॰ 1561 (31 मार्च 1504)

(घ) Macauliffee <u>The Sikh Religion</u> Vol.II page.1(Sambat 1561)

(ङ) Indubhushan Banerjee, <u>Evolution of the Khalsa</u> Vol.I p.148

(च) Dr.G.S.Chhabra: <u>The Advanced Study in History of the</u>
(<u>Punjab</u>, p-115

(छ) Khushwant Singh: <u>A History of the Sikhs</u> p.49

93- गु॰ प्र॰ सू॰ रा॰ 1, अंशु 7, अंक 11, पृ॰ 1333

94- ना॰ प्र॰ उत्तरार्द्ध अध्या॰ 47, अंक 10-11, पृ॰ 1152

95- गु॰ प्र॰ सू॰ रा॰ 1, अंशु 7 अंक 12, पृ॰ 1333

96- महान कोश, पृ॰ 84

अधिकतर खडूर निवासी दुर्गा के उपासक थे और प्रतिवर्ष एक बार कांगड़े में श्री ज्वाला जी के दर्शनार्थ जाया करते थे। लहणा जी भी प्रति वर्ष वहां के लोगों के प्रतिनिधि बन कर देवी के दर्शनार्थ जाया करते थे।[97] खडूर में रहते हुए ही जब एक उनकी भेंट श्री गुरु नानक के शिष्य (सिक्ख) भाई जोधा[98] से हुई तो इस महत्वपूर्ण घटना ने उनके जीवन की दिशा को ही बदल दिया। भाई जोधा से जब उन्होंने 'आसा की वार'[99] की कुछ पंक्तियां सुनी तो वह इतने अधिक प्रभावित हुए कि वे उनके दर्शनों के लिए लालायित हो उठे। उन्होंने भाई जोधा से उस वाणी के रचयिता गुरु नानक देव जी का परिचय प्राप्त किया और निश्चय किया कि ज्वालामुखी जाते हुए करतारपुर जाकर गुरु जी के दर्शन करूंगा। जब वह अवसर आया तो उन्होंने अपनी यात्रा करतार पुर पहुंच कर स्थगित कर दी और गुरु के दर्शनों से अपने आप को कृतार्थ अनुभव करने लगे।[100] श्री लहना जी गुरु नानक देव जी के गम्भीर व्यक्तित्व और उनके उपदेशों एवं सिद्धांतों से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने देवी पूजा को त्याग कर उनका शिष्य बनने का निश्चय किया। थोड़े ही समय में वह उनके बड़े शिष्यों में गिने जाने लगे।

उनकी अद्वितीय गुरु भक्ति से सम्बन्धित अनेक कहानियों का उल्लेख जन्मसाखी में परंपरा के अनुकूल ही भाई सन्तोख सिंह ने किया है।[101] 'नानक प्रकाश' में सभा मन नमक

97-(क) ना. प्र. उत्त. अध्या. 47, अंक 12 पृ. 1153

(ख) **Macauliffe, <u>The Si-kh Religion</u> Vol.II P.1**

98- वही, अंक 13-19, पृ. 1153

99- (क) आसा की वार, पउड़ी 21 (देखिए : आसा की वार : एक सांस्कृतिक अध्ययन पृ. 161) (ख) **Macauliffe: The Sikh Religion, Vol.II.p.2**

100- ना. प्र. उत्त. अध्या. 47, अंक 20-50, पृ. 1153-56

101- **"All authorities agree that Lahina was of the very essence of obedience and of his career as a disciple of Nanak prior to his nomination to his Guruship we know little else. The various incidents narrated in the Janamsakhis are all calculated to show the depth of Lahina's devotion and the implicit character of his surrender to Nanak"**

-- Evolution of the Khalsa. p.149

को गठरी अपने सिर पर उठाकर लाने,[102] कीचड़ एवं पानी से भरी धान के बोझ को उठाने[103], जूठे बर्तन साफ करना, पंखा चलाना, वस्त्र धोना आदि से लेकर सब प्रकार की सेवा करना[104], हिमऋतु में गुरु जी के साथ सवा पहर रात्रि रहते हुए नदी पर स्नान करने के लि लिए जाना म और वहां जाकर शीत के कारण अचेतावस्था को प्राप्त होने[105] धानक रूप में जंगल में जाने और अपने साथियों की परीक्षा के लिए भयानक वेश धारण करने पर भी गुरु जी का भाई लहना जी ने साथ न छोड़ा,[106] मुरदे को खाने,[107] बिल्ली द्वारा आधे खाये हुए चूहे को बाहर फेंकने,[108] रात्रि के समय तालाब से चादर धोकर लाने[109], जूठे पानी के कीचड़ से बर्तन को निकालने,[110] स्नान का समय बताने,[111] आदि अनेक ही परीक्षाओं द्वारा जब गुरु जी ने उनकी सेवा और भक्ति को देखा तब गुरु नानक देव जी ने अपने दोनों बेटों और पुराने शिष्यों, जन में प्राथमिकता देते हुए भाई लहिणा जी को गुरु-पद पर नियुक्त कर दिया ।

102- ना · प्र · उत्त · अध्य · 47, अंक 66, पृ · 1157 तथा अंक 75, पृ · 1158

103- वही , अंक 85-93, पृ 1159-1160 तथा **Macauliffe: Vol.II p.4**

104- वही , अध्य · 48, अंक 9-10, पृ · 1162

105- वही , अध्य · 49, अंक 41-49, पृ · 1172-73 तथा **Macauliffe, Vol.II.p.5**

106- वही , अध्य · 50, अंक 29-70, पृ · 1178-83

107- वही , अध्य · 50, अंक 74-80, पृ · 1183-84

108- वही , अध्य · 52, अंक 16-25, पृ · 1197-98

109- वही , अध्य · 52, अंक 31-36, पृ · 1198-99

110- वही , अध्य · 52, अंक 38-46, पृ · 1199-1200 तथा **Macauliffe, Vol.II.P.11**

111- वही , अध्य · 52, अंक 53-64 पृ · 1201-3

सिक्ख गुरु इतिहास में यह एक महत्वशाली घटना हुई जिससे आगामी सारा इतिहास आलोकित हुआ और आगामी गुरु साहिबान ने भी सेवा को गुरु गद्दी की कसौटी माना। गुरु नानक देव जी ने भाई लहना को कर्तव्यपरायणता एवं सेवा के कारण ही उन्हें अपनी गद्दी पर आसीन किया। उनके पुत्रों (श्री चन्द और श्री लक्ष्मी चन्द)ने इस सम्बन्धमें अपना रोष भी व्यक्त किया परन्तु उनमें उक्त परीक्षाओं के आलोक में देखा जाये तो वह सेवा-परायणता कहां जो कि गुरु जी ने भाई लहिणा जी में देखी। इस से इस गद्दी को पैतृक उत्तराधिकार मानना गुरु इतिहास में अनुपयुक्त बताया गया है। अन्य गुरु साहिबान ने भी 'सेवा' को 'गुरु-गद्दी' की कसौटी बताया है।

गुरु पद-प्राप्ति : गुरु जी ने अपनी मृत्यु के कुछ पूर्व (सन् 1539 में) भाई लहणा को जब ~~अपना~~ अपना उत्तराधिकारी बनाया तब उन्होंने साध संगत और अपने दोनों पुत्रों के समक्ष भाई लहिणा को पांच पैसे और एक नारियल गुरु गद्दी की प्राप्ति के उपलक्ष्य में भेंट किया[112] तथा उनकी तीन परिक्रमा कर उन्हें नमस्कार किया तथा अंगद नाम दिया। तत्पश्चात् गुरु आज्ञा से भाई बुड्ढा आदि अन्य सिक्खों ने भी नमस्कार किया। परन्तु गुरु जी के दोनों पुत्रों ने अपने स्थान को उच्च जान कर नमस्कार न कर गुरु आज्ञा का उल्लंघन करते हुए अपने सेवक के समक्ष नमस्कार करना अनुचित बताते हुए घर चले आये[113]। तब गुरु जी ने पुत्रों के विरोधी रूप को देखकर अंगद देव जी को

112- (क) ना॰ प्र॰ अध्य॰ 52, अंक 78-87, पृ॰ 1204-1205

(ख) भाई गुरदास : वारां, 1, 38, 45

(ग) Macauliffe: The Sikh Religion Vol.II p-11

113- (क) ना॰ प्र॰ अध्य॰ 52, अंक 90-91, पृ॰ 1205

(ख) Tikke di War, II

(ग) Macauliffe, The Sikh Religion Vol.II.p.26

(घ) Dr.G.S.Chhabra: The Advanced study in the History ofthe Punjab, Vol.I, p.117

बकूर जाकर रहने का आदेश दिया। परन्तु उनका हृदय गुरु-वियोग को सहन न कर सकते हुए भी उन्होंने आज्ञा को शिरोधार्य माना। वहां से जाकर बकूर में लगभग गुप्त रहे। (इसी तरह गुरु अमरदास के गुप्तवास की कहानी भी प्रचलित है।) इस गुप्तवास का समय उन्होंने भिराई के घर व्यतीत किया[114]। परन्तु कुछ समय पश्चात् भाई बुड्ढा उन्हें वहां से लाकर गुरु गद्दी पर आसीन कर गुरु घर के कार्यों में लीन कर दिया[115]। वे गुरु पदेशानुसार कार्य व्यवहार करते रहे।

<u>गुरु अंगद के गुरु बनने का महत्व</u> : डा० गोकुल चन्द नारंग[116], डा० ट्रम्प[117], तथा डा० इन्दुभूषण[118] बैनर्जी आदि के अनुसार गुरु अंगद देव जी का गुरु पद पर नियुक्त होना सिक्खों के इतिहास में एक विशेष महत्व की घटना है। इस नियुक्ति के द्वारा गुरु नानक देव जी ने न केवल अपने धार्मिक आन्दोलन को नेतृत्व प्रदान किया अपितु अपने अनुयायियों के संगठन एवं नये धर्म के अभ्युदय में भी योगदान दिया।

<u>कार्य</u> : उन्होंने जहां अपने सिक्ख धर्म को उदासियों से पृथक कर नये धर्म के रूप में संगठित करने का प्रयास किया वहां गुरु नानक देव जी की जीवन घटनाओं और उनके भजनों का संग्रह करने में बाला जट से सहयोग प्राप्त किया[119]। साध संगत को उपदेश के साथ साथ वे स्वयं भी वाणी का उच्चारण किया करते थे[120]। सिक्ख धर्म की उन्नति में

114- (क) गु० प्र० सू० रा० 1, अंसु 9 पृ० 1342

115 (   ) **Evolution of the Khalsa p.150-151**

115- (क) गु० प्र० सू० रा० 1 अंसु 9 अंक 5, पृ० 1340

(ख) **Macauliffe: <u>The sikh Religion Vol.II</u>, P-13-14**

(ग) महिमा प्रकाश, पृ० 3-8, साखी 1-2, (प्रकाशक भाषा विभाग, पटियाला)।

116 **"Had Nanak died without a successor there would have been no Sikhism to-day or at best simply another Kabirism." --<u>Transformation of Sikhism</u>, p.43-44**

117- See his <u>Adi-Granth</u>

118- <u>Evolution ofthe Khalsa</u> p-162-163

119- <u>Cunningham</u>: <u>A History of the Sikhs</u>, p-44

120- आदि ग्रंथ में महला 2 के श्लोक।

उनका महत्वपूर्ण [illegible] योगदान 'लंगर' को नियमित रूप में चलाने से जाना जा सकता है।[121] उन्होंने सिक्ख धर्म को पूर्णतः गृहस्थ धर्म घोषित कर इस के प्रचार में भी अद्भुत योगदान दिया। उन्होंने अपने सेवक अमरदास को ~~[illegible]~~ गोइंदवाल में एक बावली के बनाने का कार्य भार भी सौंपा।

<u>हुमांयू का गुरु अंगद देव जी से भेंट</u> : सिक्ख इतिहास परंपरा के अनुसार कहा जाता है कि कनौज में हुमांयू शेरशाह सूरी से हार खाकर जब ईरान की ओर जा रहा था तब मार्ग में पंजाब से गुजरते समय खडूर में गुरु जी की शरण में राज्य प्राप्ति के लिए आशीर्वाद की प्राप्ति हेतु जब दर्शनार्थ पहुंचा। यद्यपि गुरु अंगद देवजी को गुरु नानक देव जी की भविष्य वाणी की स्मृति थी तथापि[122] वे उसके गर्व को दूर करने के लिए उस समय बच्चों के साथ खेल में व्यस्त रहे। जब हुमांयू वहां पहुंचा तो उन्होंने उसकी ओर कोई विशेष ध्यान न दिया। इस पर उसने तलवार निकाली गुरु जी ने देख हंस कर कहा कि शेरशाह से पराजित होकर हम पर खड्ग प्रहार करने चले आये हो और हमें शूरवीरता दिखाने लगे हो। इस पर वह अत्यन्त लज्जित हुआ और नम्र स्वर में क्षमा मांगने लगा। तब गुरु जी ने कहा कि गुरु नानक देव जी की वाणी अटल है। यदि अब तलवार न उठाई होती तो अभी तुम्हें पातशाही मिल गई होती परन्तु अब कुछ वर्ष पश्चात अर्थात् अफगानिस्तान, ईरान आदि का भ्रमण कर लेने पश्चात् तुम्हें देहली का राजसिंहासन मिलेगा।

इस घटना से यद्यपि गुरु अंगद देव जी की क्षमाशीलता का परिचय मिलता है तथापि इस घटना के सम्बन्ध में सिक्ख इतिहास परंपरा के अतिरिक्त अन्य समकालीन इतिहासों में इस से सम्बन्धित उल्लेख नहीं मिलते हैं। गुरु प्रताप सूरज के रचयिता ने इस घटना का उल्लेख जन्मसाखी परंपरा के ग्रंथों में महत्वपूर्ण ग्रंथ 'महिमा प्रकाश'[123] के आधार पर इस का उल्लेख किया है।[124] इस आधार पर ही अन्य सिक्ख

121-(i) Latif: <u>History of the Panjab</u>, P.250
(ii) <u>Evolution of the Khalsa</u> p.158

122- Macauliffe: <u>TheSikh Religion, Vol.II</u> p.19-20

123- महिमा प्रकाश, साखी 5, पृ· 2[illegible]-25

124- गु· प्र· सू· रा· 1, अंसु 16, अंक 29-63, पृ· 135।

इतिहास ने इसका उल्लेख किया है।[125] परन्तु कई इतिहासकार इसे सन्देहास्पद घटना ही मानते हैं।[126] हो सकता है कि जन्मसाखिकारों ने गुरु साहिबान के धार्मिक महत्व को अभिव्यक्त करने के लिए इसे घड़ लिया हो। केवल इतनी बात इतिहास अनुमोदित कही जा सकती है कि शेरशाह सूरी और हुमांयू का युद्ध हुआ और उसमें हुमांयू पराजित हुआ।[127] जैसे डा॰ हरिराम गुप्ता तथा प्र॰ कृपाल सिंह नारंग के विचारानुसार "इस घटना का विरोध करने वाला कोई प्रमाण नहीं मिलता। अतः इस विशेष कथानक पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है।"[128]

<u>देहावसान</u> : गुरु अंगद देव जी ने 12 वर्ष 6 मास नौ दिन तक गुरु गद्दी को सुशोभित किया, संवत् 1609 को चेत सुदि चतुर्थी (29 मार्च, 1552) को पंच भौतिक शरीर को त्याग दिया।[129] उन्होंने अपने सेवक श्री अमरदास जी को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया था। उनकी देह का संस्कार खडूर में ही किया गया था।[130]

125- (क) कृपाल सिंह नारंग तथा हरिराम गुप्ता : पंजाब का इतिहास, पृ॰ 69-70

(ख) प्रो॰ करतार सिंह एम॰ ए॰ : सिक्ख इतिहास, पृ॰ 130

(ग) Macauliffe: <u>The Sikh Religion</u>, Vol.II, Ch.IV, p.19

(घ) Kanhiya Lal, <u>Tarikh-e-Panjab</u> (Urdu), 15 ;

(ङ) Sodhi Hazara Singh, <u>A History and Guide to the Golden Temple, Amritsar</u> p.10

126- "There is again the very doubtful story of Humayun's visit to the Guru after his defeat at Kanauj and there are others of a more or less apocryphal character." --<u>Evolution of the Khalsa</u>, p.151

127- Syad Muhammed Latif: <u>History of the Punjab</u> p.126(1964)

128- पंजाब का इतिहास, पृ॰ 70

129- (क) गु॰ प्र॰ सू॰ रा॰ 1, अंशु 7, अंक 12-13, पृ॰ 1333

(ख) वही, रा॰ 1, अंशु 28, अंक 50-53, पृ॰ 1434

130- वही, रा॰ 1, अंशु 28, अंक 13, पृ॰ 1431

गुरु अंगद का चरित्र : 'गुरु प्रताप सूरज' में गुरु अंगद देव जी के व्यक्तित्व पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। विनम्रता और प्रेम की मूर्ति भाई लहिणा जी ने अपनी सेवा से गुरु नानक देव जी से अलौकिक शक्ति प्राप्त की थी परन्तु उन्होंने उस शक्ति का कहीं भी प्रदर्शन नहीं किया । वे तो गुणों की खान थे । उनके विषय में भाई सन्तोख सिंह के श्रद्धा समन्वित कुछ शब्द अवलोकनीय हैः—

> श्री अंगद गंभीर गुन के धाम ।
> सदा सुशील परम निहकाम ।
> शांति रूप धरि जगत दिखायो ।
> हरख न सोक न कबि उर आयो ।। 26 ।।
> ×   ×   ×
> करमात की सागर भारो ।
> बूंद समान जान नहिं पसारो ।। 43 ।।[131]

इन्होंने भी गुरु नानक देव जी की तरह अपने पुत्रों को गुरु गद्दी प्रदान न कर उसके सुयोग्य अधिकारी एवं परम सेवक श्री अमरदास को प्रदान कर सिक्ख धर्म के प्रसार में अपना अद्भुत योगदान दिया ।

श्री गुरु अमरदास (संवत् 1536-1631, सन् 1479-1574)

श्री गुरु अंगद देव जी ने अपने देहावसान से पूर्व अपने परम सेवक श्री अमर दास जी को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया था । उस समय उनकी आयु 73 वर्ष[132] की हो चुकी थी । यह गुरु नानक देव जी की गद्दी पर आसीन होने वाले तृतीय गुरु थे ।

131- गु· प्र· सू· रा· 1, अंशु 21, पृ· 140 तथा 14?2

132- वही , रा· 1, अंशु 7, अंक 17-18, पृ· 1333

आरम्भिक जीवन : इनका जन्म संवत् 1536 में 'बासरके'[133] नामक ग्राम (जिला अमृतसर) हुआ। इन के पिता का नाम 'तेजोमल्ल' (तेजभान)[134] था तथा माता का नाम रूपकौर[135] था। कृषि और दुकानदारी की आय से जीवन यापन करते थे। ये जाति के भल्ले थे। श्री अमरदास जी अपने चारों भाइयों से बड़े थे[136]। जब श्री अमरदास यौवन को प्राप्त हुए तो इन के पिता ने इनका विवाह श्री देवी चन्द खत्तरी (क्षत्रिय) की सपुत्री मनसादेवी[137] (रामकौर) से कर दिया। समय के व्यतीत होने के साथ साथ इनका परिवार भी प्रफुल्लित होने लगा। इन के घर दो पुत्र बाबा मोहन जी तथा बाबा मोहरी जी और दो कन्याएं बीबी दानी जी तथा बीबी भानी जी हुईं[138]। जब व्यापार आदि द्वारा अपनी गृहस्थी का भार वहन करते काफी समय व्यतीत हो गया तो एक दिन इनके हृदय में परलोक सुधारने एवं शुभ कर्म करने के लिए इच्छा उत्पन्न हुई। इस के फलस्वरूप तीर्थ स्थान पर जाकर तपस्या करने के लिए गंगा-स्नान आदि की तीव्र इच्छा हुई[139]।

गंगा स्नान तथा उपवासी जीवन : 'गुरु प्रताप सूरज' के अनुसार ये प्रति वर्ष गंगा स्नान के लिए जाया करते थे। यद्यपि इनका जीवन बड़ा पवित्र था तथापि इन्हें मानसिक शान्ति प्राप्त न थी। ये उपवास एवं शुभ कर्मों[140] – दान पुण्य आदि के

133- गु॰ प्र॰ सू॰ रा॰ 1, अंशु 7, अंक 15, पृ॰ 1333 तथा 1॰ 14॰ 2, 1367

134- वही, पृ॰ 1333, तथा वही 1367

(ख) Macauliffe: The Sikh Religion Vol.II p.30

135- वही रा 1 अंशु, 7, अंक 15, पृ॰ 1333

135- वही, रा॰ 1, अंशु 14, अंक 3, पृ॰ 1367

137- वही, रा॰ 1, अंशु 7, अंक 21, पृ॰ 1334

(ख) Macauliffe: The Sikh Religion Vol.II p.30

(ग) Khushwant Singh: A History of the Sikhs p.51

138- वही, पृ॰ 1334,

139- वही, रा॰ 1, अंशु 14, अंक 6-8, पृ॰ 1367

140- (क) वही, रा॰ 1, अंशु 14, अंक 9-10, पृ॰ 1368

(ख) Macauliffe: The Sikh Religion Vol.II.p.30

द्वारा अपने जीवन को सफल बनाते हुए भी इस मानसिक चिन्ता से व्याकुल रहते थे। उनकी इतनी आयु व्यतीत हो गई है परन्तु उन्होंने अभी तक गुरु-धारण नहीं किया है।

गुरु - साक्षात्कार की लालसा : 'गुरु प्रताप सूरज ' के अनुसार जब आप बीसवीं बार गंगा स्नान की यात्रा से लौट रहे थे तो मार्ग में 'मिहड़ा' नामक में सारस्वत ब्रह्मण पं दुर्गा दास जी से इन की भेंट हुई[141]। दोपहर को जब ये विश्राम कर रहे थे तो उस पंडित ने इन के चरणों में पद्म चक्र के चिन्ह देख कर विचार किया कि ये या तो श्री विष्णु के अवतार हैं या कोई चक्रवर्ती राजा[142]। श्री अमरदास को पंडित जी इस विचार से अवगत कराया तथा उनके ऐश्वर्यवान होने पर ही दक्षिणा-स्वीकार करने की कामना[143] व्यक्त की। तत्पश्चात् मार्ग में उनकी एक ब्रह्मचारी से भी भेंट[144] हुई जो उनके साथ ही उनके ग्राम पहुंचा और उनके पास ही ठहरा। जब किसी प्रसंग वश उसने श्री अमरदास से उनके गुरु के विषय में पूछा तो उन्होंने कहा कि मेरी गुरु धारण करने की मनोकामना अभी तक पूर्ण नहीं हुई[145] है। ब्रह्मचारी ने उनके अभी तक गुरु धारण न कर सकने को खोटा कर्म बताया और अपनी राह ली। इस घटना से श्री अमरदास जी का हृदय और अधिक व्याकुल हो उठा और माता गंगा की आरधना में लीन हो गए[146]।

गुरु - मिलाप : कुछ समय पश्चात् उन्होंने अपने भतीजे की पत्नी एवं गुरु अंगद देव जी की सपुत्री बीबी अमरों[147] से गुरु वाणी की[148] अमृत-ध्वनि सुनी जिससे उनकी मृत-प्राय देह में अमृत का संचार[149] हुआ। उनके अनुरोध पर बीबी अमरो उन्हें गुरु नानकदेव

141- गुरु प्र॰ सू॰ रा॰ 13, पृ॰ 1368

142- वही, अंक 16-17, पृ॰ 1368-69

143- वही, अंक 24, पृ॰ 1369

144- वही, अंक 25, पृ॰ 1370

145- वही, अंक 28-32, पृ॰ 1370,

146- वही, अंक 34-36, पृ॰ 1371,

147- वही, रा 1, अंशु 15, अंक 1-2, पृ 1372, Macauliffe p.31

148- वही, पृ॰ 1373 पर उद्धृत गुरु वाणी तथा आदि ग्रंथ, मारु महला पहला घरु।

149- वही, रा॰ 1, अंशु 15, अंक 8, पृ॰ 1373

जी की गद्दी पर आसीन श्री गुरु अंगद देव जी के दर्शनार्थ लेकर अपने पिता के घर खडूर पहुंचो[150]। वहा पहुंचकर श्री अमरदास जी का गुरु अंगद देव जी से साक्षात्कार हुआ। वहां उन्होंने उनके लंगर से अपनी मनोकामना के अनुकूल निरमिष भोजन को प्राप्त कर उन्हें अपना गुरु स्वीकार कर लिया और उनके अनन्य सिक्ख बन गए[151]।

<u>सेवा-परायणता</u> : सिक्खी - प्राप्ति के पश्चात् श्री अमरदास गुरु अंगद देव जी के पास खडूर में ही रहने लगे तथा गुरु संगत की तनमन से सेवा करने लगे। वे जल ढोने जंगल से लकड़िया लाने, संगत को पंखा करने आदि विभिन्न कार्यों में ही अपनी दिनचर्या व्यतीत करते[152]। वे नियमित रूप से गुरु जी के स्नानार्थ व्यास नदी से हर प्रकार के ऋतु में जल की गागर सिर पर उठा कर[153] लाते थे। उनकी ऐसी सेवा -परायणता को तथा उनकी वृध्दावस्था को देखकर लोग उनका उपहास[154] भी करते परन्तु वे सेवा निमग्न ही रहते। वर्षावधि होने पर उन्हें डेढ़ गज़ का एक रुमाल (वस्त) गुरुप्रसाद के रूप में मिलता था जिसे वे शिरोधार्य कर लेते और पुनः उसे उतारने की चेष्टा न करते। सेवा के सातवें वर्ष में उन्होंने अपनी अल्प-शक्ति से गुरु अंगद देव जी के अंगूठे को जब ठीक कर दिया तो गुरु जी ने उन्हें अपनी अलौकिक शक्ति को जरने का उपदेश दिया[155]। इसी तरह सेवा-परायण रहते हुए जब 12 वां वर्ष व्यतीत हुआ तो भी गुरु जी ने उनके अपने पास बैठाकर उनके हृदय की जानने का कष्ट न किया।

150-गु॰ प्र॰ सू॰ अंक 15-16, पृ॰ 1374

151-(क) वही अंक 31-33, पृ॰ 1376।

(ख) Macauliffe p.32

152-(क) गु॰ प्र॰ सू॰ रा 1, अंशु 16, अंक 3-6, पृ॰ 1377-78

(ख) Macauliffe p.35

153- गु॰ प्र॰ सू॰ अंक 6, पृ॰ 1378 तथा अंक 9, पृ॰ 1379

154- वही, अंशु 16, अंक 34, पृ॰ 1384

155- वही, अंक 21, पृ॰ 138 ।

लोगों के उपहास जनक शब्दों को भी परवाह न करते हुए वे हर्षशोक से रहित होकर सेवा परायण रहते ।[156]

<u>गुरु पद प्राप्ति</u> : एक दिन जब वे गुरु जी के स्नानार्थ अमृत वेला में नियमानुसार नदी से पानी की गागर ला रहे थे तो वर्षा के कारण मार्ग मे कीचड़ होने के कारण धीरे धीरे चल रहे थे । धर्मशाला के मार्ग में एक जुलाहे का घर था । उसने कपड़ा बुनने हेतु कुछ कीले गाड़ रखी थी । अन्धकार के कारण जब श्री अमरदास वहां से गुजरे तो एक कील की ठोकर लगने से कुछ गिरते गिरते बचे ।परन्तु उनके गिरने की ध्वनि से जुलाहा और जुलाही की निद्रा भंग हो गई ।जुलाहे ने बाहर आकर पूछा कि कौन कि गिरा है ? क्या कोई तसकर है ?[157] तब श्री अमरदास अपने को गुरु का सेवक बताते हुए अपना परिचय दिया । तब उसने जुलाहिन से पूछा कि यह कौन अमरदास नामक गुरु सेवक है ? तब वह कहने लगी कि यह 'निथावां'[158] (निराश्रित) अमरदास है जिसने अपना कुल, घरबार आदि सभी कुछ त्याग कर यही गुरु के आश्रय में रहना स्वीकार किया हुआ है।यही पेट भरता है और लोगों केउपहास के कारण बना हुआ है। इन शब्दों को सुनकर अमरदास ने कहा कि में'निथावा' नहीं हूँ अपितु[159] तू ही कमली है जिस ने जगदाता गुरु के माहात्म्य को अभी तक नहीं जाना ।इतना कह कर जब वे अपना कलश उठाकर अपनी धर्मशाला में पहुंचे तो गुरु जी स्नानार्थ उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे । उधर वह जुलाहिन कमली हो गई । प्रातः जुलाहे ने गुरु जी को रात्रि की घटना बताई तो जब गुरु जी ने अमरदास से रात्रि की घटना के विषय में पूछा । तो उन्होंने अपने प्रेम भावना से सिक्त अटपटे शब्दों में सारी घटना कह सुनाई।तब गुरु अंगद देव जी ने

156- गु॰ प्र॰ सू॰ रा १,अंशु १७,अंक १,पृ॰ १३८४

157- (क) वही , अंक 8,पृ॰ १385

(ख) Macauliffe: Vol.II p.42

(ग) Latif: <u>History of the Panjab</u> p.251

158- गु॰ प्र॰ सू॰ अंक 9-10 ,पृ॰ 1385

159- वही,अंक 11,पृ॰ 1386

उसे जुलाहे को बताया कि ये तो 'निथावा की थांव'[160] (अर्थात् निराश्रितों के आश्रित) हैं। गुरु जी ने उन्हें अपने गले से लगाते हुए अपने रूप को उन में अभेद कर दिया। इस तरह से उनकी 12 वर्ष की कठोर साधना एवं तपस्या से प्रसन्न होकर गुरु जी ने उनके सिर पर धारण किए रुमालों को उतरवा कर उन्हें स्नान आदि करा कर तत्पश्चात् गुरु घर की मर्यादा के अनुसार बाबा बुड्ढा ने उन्हें तिलक लगाया तथा गुरु जी ने पांच पैसे और नारियल भेंट किया। संवत् 1609 में अपनी गुरु गद्दी प्रदान की और संगत को कहा कि मेरे रूप हैं। इन में और मुझ में कोई भेद नहीं है।[161] इस तरह से उन्होंने उन्हें गुरु गद्दी पर आसीन किया। उन्होंने अपने पुत्रों को गद्दी के अयोग्य समझा और उन्हें उत्तराधिकारी न बनाया। तत्पश्चात् उन्होंने गुरु अमरदास जी को खडूर त्याग कर गोइंदवाल में जाकर रहने का आदेश दिया।[162] क्योंकि उन्हें इस बात का भय था कि यदि वे खडूर रहे तो उनके पुत्र दसू और दातू ईर्ष्या और द्वेष से उन्हें कहीं अपमानित न करें।[163]

उक्त विवरण से जहां श्री अमरदास की निष्ठा पूर्वक सेवा-परायणता का परिचय मिलता है वहां उनकी विनम्रता पर भी प्रकाश पड़ता है। 'गुरु प्रताप सूरज' के रचयिता ने सिक्ख-इतिहास परंपरा के अनुकूल उनके चरित्र के उक्त गुणों पर सुविस्तृत प्रकाश डाला है। मैकालिफ[164] आदि ने इसी परंपरा का अनुसरण किया है। इस ऐतिहासिक तथ्य को सभी इतिहासकारों ने स्वीकार किया है कि गुरु घर में गुरु-

---

160- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 1, अंशु 17, अंक 23-24, पृ॰ 1387

161- वही, अंक 27-28, पृ॰ 1387 तथा अंक 32, पृ॰ 1388

162- (क) वही, अंक 36-37, पृ॰ 1388 तथा 18-19 पृ॰ 1889-97

(ख) Macauliffe p.43

163- (क) गु॰ प्र॰ सू॰ अंक 40, पृ 1388

(ख) Macauliffe Vol.II. p.44

164- Macauliffe: <u>The Sikh Relegion</u> Vol.II p.44

गद्दी सेवा से ही मिलती थी वंश परंपरा से नहीं। गुरु नानक जी ने अपने पुत्रों को गुरु-गद्दी न देकर अपने सेवक भाई लहिणा को उनकी सेवा के उपलक्ष्य में प्रदान की थी[165]। यह ऐतिहासिक तथ्य अन्य धर्म-सम्प्रदायों एवं मतों के इतिहास-ग्रंथों के अध्ययन के लिए भी एक उपयोगी सदंर्भ है।

<u>दातू की ईर्ष्या और शत्रुता</u> : इधर श्री अमरदास ने गुरु अंगद देव जी के देहावसान के पश्चात् गोइंदवाल में आकर समस्त कार्यभार को सम्भाला और उधर उनके पुत्र दातू ने स्वयं ही गुरुत्व की दस्तार (पगड़ी) बांध कर अपने को गुरु गद्दी का अधिकारी घोषित किया[166] परन्तु न तो कोई श्रध्दालु उसे भेंट समर्पित करता और न ही मस्तक झुकाता। इसे देख कर वह ईर्ष्या और द्वेष की अग्नि में जलने लगा। यहां तक कि वह गोइंदवाल में पहुंच कर गुरु अमरदास को गुरु गद्दी पर बैठा देख कर क्रोध में इतना पागल हो गया कि उसने गुरु अमरदास जी के मर्मस्थान पर लात का प्रहार[167] करते हुए अनेक अपशब्द कहे और उन्हें अपना अपराधी कहा। विनम्रता की मूर्ति गुरु जी ने सिंहासन से गिरते हुए भी उसके चरणों को सहलाते हुए कहा कि कही चोट तो नहीं लगी[168]। इस अपमानित करने वाली घटना के पश्चात् गुरु जी उसी रात को गोइदवाल त्याग कर अपने जन्म स्थान बासरके ग्राम को चल दिए[170]। वहां पहुंच कर उन्होंने ग्राम के बाहर धेनुपाल के एक कोठे[170] में गुप्तवास करना आरंभ कर दिया और द्वार पर यह आदेश लिख दिया कि कोई

165- (i) Latif: <u>History of the Panjab</u> p.250
(ii) Macauliffe: Vol.II., p.44-45

166- (क) गु· प्र· सू· रा 1, अंशु 34, अंक 18-18, पृ· 1461
(ख) Macauliffe: Vol.II. p.63

167- गु· प्र· सू·, अंक 32, पृ· 1462

168- वही, अंक 34-35, पृ· 1462

169- वही, अंशु 35, अंक 2, पृ· 1463

170-(क) वही, अंक 3-4, पृ· 1463-64
(ख) Macauliffe: Vol.II. p.64

भी व्यक्ति जो इस द्वार को खोलेगा वह गुरु का सिक्ख नहीं होगा ।

उधर दातू ने दूसरे दिन प्रातः काल होते ही गुरु घर की समस्त मूल्यवान वस्तुओं को खच्चरों पर लदवा लिया और खडूर की ओर चल पड़ा परन्तु मार्ग में ही चोरों ने उस समस्त सामग्री को लूट लिया [171] और वह अपने घर में लात के प्रहार के दुःख को गुप्त रूप में सहन करते हुए अपना समय व्यतीत करने लगा [172] ।इधर गुरु जी के त्याग से संगत में हाहाकार मच गई। अत्यन्त व्याकुल अवस्था में संगत को देख कर बाबा बुड्ढा आदि ने गुरु जी की घोड़ी को खुला छोड़ दिया और स्वयं सभी उसके पीछे पीछे गुरु जी की खोज में निकल पड़े [173] । अन्ततः वे सभी उसी कोठे के समीप पहुंचे जहां गुरु जी गुप्त वास कर रहे थे । गुरु जी के आदेश को पढ़कर बाबा बुड्ढा जी ने उस कोठे की दूसरी दिवार को तोड़ कर गुरु जी के समाधिस्थ रूप के दर्शन किए तथा उन्हें अपने अनुनय-विनय से मना कर वापिस गोइंदवाल ले आये ।

चाहे सिक्ख, इतिहासकारों ने इस घटना को धार्मि क रंग देकर प्रस्तुत किया है तो भी दातू की गुरु अमरदास जी के प्रति द्वेष भावना रखने के तथ्य से सभी इतिहासकार सहमत हैं [174] ।

<u>अकबर से सम्पर्क</u> : 'गुरु प्रताप सूरज' के रचयिता ने भी अन्य इतिहासकारों की [175] तरह ही अकबर की महानता एवं धर्म-सहिष्णुता पर प्रकाश डाला है । इस के साथ

171- (क) गुरु प्र॰ सू॰, अंक 11-12, पृ 1464
(ख) Macauliffe: Vol.II p.65

172- गु॰ प्र॰ सू॰ अंक 13, पृ॰ 14 64

173- वही, रा 1, अंशु 36-36, पृ॰ 1463-71

174- (क) Macauliffe: Vol.II, p.65
(ख) G.S.Chhabra: <u>The Advanced Study in the History of the Panjab</u>, Vol.I, p.128
(ग) कृपाल सिंह नारंग तथा गुप्ता : पंजाब का इतिहास, पृ॰ 72
(घ) <u>Evolution of the Khalsa</u> p.165

175- (i) Latif: <u>History of the Panjab</u>, p.144-145
(ii) Macauliffe: Vol.II p.105-108

ही उन्होंने श्री गुरु अमरदास के गौरव को बढ़ाने वाली परंपरा से प्रचलित साखियों[176] का भी उल्लेख किया है। एक बार जब गोइंदवाल के कुछ जाति अभिमानी क्षत्रियों एवं ब्राह्मणों ने अकबर के दरबार में जाकर गुरु जी के विरुध्द यह शिकायत की कि गुरु जी ने उनके श्रुति-स्मृति प्रतिपादित धर्म की मर्यादा को विकृत कर दिया और राम नाम तथा गायत्री मन्त्र के जाप के स्थान पर वाहिगुरु नाम के जाप की रीति प्रचलित कर दी है तब अकबर ने गुरु जी को इस संदर्भ में लाहौर बुलाया परन्तु गुरु जी ने स्वयं न जाकर अपने जामाता श्री रामदास जी उनके दरबार में भेजा और उन्होंने वहां गायत्री मन्त्र के अर्थ को स्पष्ट कर उन जाति अभिमानी वर्ग के अहंकार को दूर किया । इस पर धर्म-सहिष्णु अकबर महान ने गुरु जी को हिन्दु वर्ग की धार्मिक भावनाओं को ध्यान में रख कर अपने धर्म प्रचार के कार्य को सफल बनाने का आदेश दिया और यह भी सन्देश दिया कि वे हिन्दू -तीर्थों की भी यात्रा कर अपने धर्म का प्रसार करें[177] ।

इस साखी से जहां अकबर की धर्म-सहिष्णुता की नीति का परिचय मिलता है । वहां उसके शासन काल में हिन्दू -सिक्ख जनता को समान अधिकारों एवं अपने अपने धर्मानुसार धार्मिक आचरणों की भी स्वतन्त्रता थी । उक्त साखी का उल्लेख लगभग सभी सिक्ख इतिहासकारों ने किया है। 'महिमा प्रकाश' में वर्णित यह साखी ही 'गुरु प्रताप सूरज ' का आधार बनी और मैकालिफ आदि इतिहासकारों ने तदानुसार ही इसका अपने इतिहासों में उल्लेख किया है ।

अकबर की इस धर्म-सहिष्णुता की नीति का इस बात से भी स्पष्टीकरण होता है कि जब उनके आदेशानुसार श्री अमरदास जी ने पेहोवा, कुरुक्षेत्र, कनखल, हरिद्वार आदि

176- (क) महिमा प्रकाश, साखी 7, 137(पंजाबी)

(ख) गु० प्र० सू० रा० 1, अंशु 43, अंक 28-37, पृ० 1504-5

177- (क) वही , अंशु 44, अंक 29-31, पृ० 1508

(ख) Macauliffe Vol.II p.105-108

(ग) Evolution of the Khalsa p.175

विभिन्न हिन्दू तीर्थों की यात्रा की तो सम्राट ने न तो उनसे यात्रा कर लिया और नही उनके साथ जाने वाले अन्य यात्रियों से ही यात्रा कर की वसूली की ।[178] इससे अकबर की सिक्ख-धर्म के प्रति श्रध्दा और श्री अमरदास द्वारा सिक्ख धर्म को विकसित करने के प्रयासों पर भी प्रकाश पड़ता है।

इसके अतिरिक्त अकबर की चितौड़-विजय के प्रसंग भी महिमा प्रकाश[179] की तरह ही 'गुरु प्रताप सूरज' में अंकित है। इस में इस साखी का भी उल्लेख है कि श्री गुरु अमरदास द्वारा बनवाई जा रही बावली के कड़ टूटने पर ही अकबर को चितौड़ विजय की प्राप्ति हुई[180]। इस विजय के कुछ समय पश्चात् अकबर के गोइंदवाल गुरु जी के दर्शनार्थ आने और अपनी कृतज्ञता व्यक्त करने की घटना पर 'गुरु प्रताप सूरज' में पर्याप्त प्रकाश[181] डाला गया है। जब अकबर ने अपनी मानसिक शान्ति हेतु कुछ पृथ्वी भेंट करने के लिए अनुरोध किया तो 'महिमाप्रकाश'[182] के अनुसार तो गुरु जी ने उस भेंट को यह कहकर स्वीकार नहीं किया कि गुरुघर

178- (क) गु· प्र· सू· रा 1, अंशु 45, अंक 12, पृ· 1513

(ख) G.C.Narang: Glorious History of Sikhism p.42

179- (क) महिमा प्रकाश, साखी 12, पृ 174

(ख) गु· प्र· सू· रा· 1, अंशु 63, अंक 41, पृ· 1603

180- (क) डा· नारंग ने ज्ञानी ज्ञानसिंह के मत का उल्लेख किया है कि संभवतः गुरु जी को चितौड़ के इतिहास का विशेष ज्ञान न था ।

(ख) गु· प्र· सू· रा· 2, अंशु 7, अंक 33, पृ· 1673

(ग) वही, रा·1, अंशु 54, अंक 3, पृ· 1556

181- वही, रा 1, अंशु 63, अंक पृ· 1603-5

182- महिमा प्रकाश साखी 25, अंक 14, पृ· 242

में किसी वस्तु कीकमी नहीं है। परन्तु अकबर के पुनः पुनः अनुरोध पर गुरु जी के सेवक (बलू) ने सिक्खों के रहने के लिए कुछ स्थान मांग लिया और अकबर को विदा कर दिया। परन्तु 'गुरु प्रताप सूरज' में यह कथन कुछ परिवर्तन के साथ आता है। इस में भी गुरु जी यद्यपि भेंट स्वीकार करने से इन्कार करते है तथापि बाद में परोपकारार्थ अमृतसर तीर्थ को प्रकट करने के लिए अकबर केविशेष अनुरोध पर उसे अपनी इच्छानुसार पृथ्वी भेंट करने की स्वीकृति दे देते हैं[183]। इस पर अकबर सहर्ष परगने का पट्टा लिख देते हैं।

"पटा परगने को लिखि दीन। रहैं ग्राम सभि गुरु अधीन।
आदि झबाल बीड़ जहिं कर्‍यो। बहुते ग्राम अरपि मुद भरयो"[184]। 26-27।।

कई इतिहासकारों का विचार है कि गुरु साहिब के इन्कार करने पर भी सम्राट अकबर ने गुरु साहिब की सपुत्री बीबी भानी[185] के नाम वह जमीन लगा दी थी। इसमें कई गाव शामिल थे। यही पर आजकल अमृतसर बसा हुआ है। इस बात का 'गुरु प्रताप सूरज' में कहीं उल्लेख नहीं है। और न ही इस ग्रंथ में कहीं यह ही उल्लेख मिलता हैकि गुरु रामदास जी ने (चतुर्थ गुरु ने) 700 अकबरी रुपये देकर तुंग जम्मीदारों से इस पृथ्वी को हस्तगत किया था[186]। अतः भाई सन्तोख सिंह के अनुसार अमृतसर स्थित

183- गु॰ प्र॰ सू॰ रा॰ 1, अंशु 64, अंक 61-65, पृ॰ 1605
184- वही, रा॰ 2, अंशु 10, अंक 26-27, पृ॰ 1682
185- कृपाल सिंह नारंग तथा डा॰ हरिराम गुप्ता : पंजाब का इतिहास, पृ 77, (फुटनोट)
186- (i) Gokul Chand Narang: Glorious History of Sikhism p.38
(ii) Amritsar Gazetteer (1883-84), p.61
(iii) Mohsin Fani: Dabistan, Vol.II p.275
(iv) Evolution of the Khalsa, p.186
(v) Forster: Travels, Vol I. p.258
(vi) Ibbetson: GLossary of Panjab Tribe and Castes, Vol.I p.662
(vii) Gunningham: History of the Sikhs p.50
(viii) Archer: The Sikhs p.141-142
(ix) M'Gregor: History of the Sikhs p.52-54

पृथ्वी अकबर सम्राट द्वारा उन्हें भेंट स्वरूप हो मिली थो । जब गुरु अमरदास जो ने श्री रामदास जो को अपने रहने के लिए गोइंदवाल से कुछ दूरी पर इस नगर के निर्माण का आदेश दिया तो वहां के सभो ग्रामों के जिम्मेदारों को बुला कर कहा था कि ये हो भविष्य में तुम से मामला बटोरा करेंगे ।इसी स्थान पर अमृतसर का आगे चल कर निर्माण किया गया[187] था ।

इस घटना का ऐतिहासिक महत्व भी उसके सांस्कृतिक महत्व से कुछ कम नहीं है । सांस्कृतिक दृष्टि से जहां अमृतसर-निर्माण का योजना का महत्व है वहां सम्राट अकबर के गुरु जी के दरबार में उपस्थित होने से गुरु जी का भी गौरव बहुत ही बढ़ गया था । उन के धर्म के प्रसार-कार्यों में इस से विशेष सहयोग मिला । असंख्य लोगों ने सिक्ख धर्म प्रवेश पा कर तथा गुरु जो के चले लंगर से भोजन ग्रहण कर इस के प्रसार में अपना योगदान दिया । 'पंथ प्रकाश' के कर्ता ज्ञानी ज्ञानसिंह एवं गोकुलचन्द नारंग आदि ने इस घटना को महत्वपूर्ण[188] माना है।

गुरु अमरदास जी के ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक कार्य और उनका महत्व :

गुरु अमरदास जो ने अपने सिक्खों को संगठित करने के लिए जहां उन्हें हिन्दू धर्म के मान्य तीर्थों पर जाने से रोक कर उनके लिए नये तीर्थों का निर्माण किया वहां लंगर संस्थान को सुदृढ़ता प्रदान कर अपने धर्म के प्रसार को भी अभूतपूर्व योगदान दिया।क्योंकि इसमें ऊंच नीच, जाति पांति आदि किसी भेद भाव को नहीं माना जाता था ।अपने सिक्खों के लिए उन्होंने गोइंदवाल में एक बावली (वापिका)का निर्माण कराया जिस की 84 सीढ़ियां थी । 'गुरु प्रताप सूरज' के अनुसार जो इस बावली की प्रत्येक सीढ़ी पर 'जपुजी' का पाठ करेगा उस की चौरासी (चौरासीलाख योनियों में भटकने) कटजायेगी अर्थात् उसे मुक्ति मिल[189] जायेगी ।इस धार्मिक प्रचार से मुक्ति के इच्छुक अनेक व्यक्ति उन

187- गु॰प्र॰सू॰रा 2,अंशु 10,अंक 37-40,पृ॰ 1683

188- G.C.Narang: Glorious History of Sikhism p.41

189- गु॰प्र॰सू॰रा 1,अंशु 58,अंक 1-8,पृ॰ 1572

सिक्ख बन गए । इसके अतिरिक्त गुरु जी के दर्शनार्थ आने वाले प्रत्येक व्यक्ति को पहले 'पंगत' में बैठकर भोजन ग्रहण करना पड़ता था और बाद में उसे गुरु जी के दर्शनों की आज्ञा मिलती थी । 'पहले पंगत पीछे संगत'[190] के उनके नारे से जातीय भेद भावना का भी काफी दूरीकरण हुआ ।

गुरु अमरदास जी ने अपने आध्यात्मिक राज्य को सुविस्तृत करने के लिए अनेक उच्चात्मा सिक्खों को विभिन्न प्रदेशों में अपने धर्म प्रचार केलिए नियुक्त किया ।और उन्हें उस प्रदेश की 'मंजी' प्रदान की ।[191] कई इतिहासकारों ने 22 मंजियों का उल्लेख किया है परन्तु उनका 'गुरु प्रताप सूरज 'में उल्लेख नहीं है।[192] इन महत्वपूर्ण कार्यों के अतिरिक्त उन्होंने अनेक सामाजिक सुधार भी किए जैसे -पर्वोत्सव मनाने की नवीन विधि अर्थात् प्रथम वैसाख, प्रथम माघ और दीवाली आदि के दिन गुरु के दरबार वाले स्थान पर सब सिक्खों का एकत्र होकर पर्वोत्सव मनाना ।[193] हिन्दुओं से पृथक जन्म, मृत्यु और विवाह संस्कारों को मनाना, खुशी के अवसरों पर उनकी रचित वाणी 'अनंदु' का

190- (क) गु॰ प्र॰ सू॰ रा 1, अंशु 63, अंक 50, पृ 1604

(ख) वही , रा 1, अंशु 30, अंक 13-14, पृ॰ 1440

191- प्रोफेसर साहिब सिंह : श्री गुरु अमरदास जी (जीवन-वृतांत) पृ॰ 35

192- " Suraj Prakash has devoted about 3000 large pages of small type to thehistory of the Gurus, but has absolutely made no mentione of any of these Manjas. Panth Prakash merely quotes the analogy of Akbars twenty-two provinces.

---G.C.Narang: Glorious History of Sikhism p.35 (Sixth Edition, 1972)

193- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 1, अंशु 43, अंक 27, पृ॰ 1504

विशेष रूप से पाठ करना[194]।सामाजिक विकास के लिए सती प्रथा का विरोध भी व्यक्त किया।

गुरु-पद प्रदान करना एवं देहावसान : गुरु अमरदास जी ने अपना उत्तराधिकारी निश्चित करने से पूर्व परंपरा का पालन न करते हुए उसे पैतृक[195] बना दिया।उन सेपूर्व इसे पैतृक रूप नहीं दिया गया था। गुरु नानक ने अपने सेवक अंगद देव को और गुरु अंगद देव जी अपने सेवक अमरदास जी को गुरु गद्दी पर नियुक्त किया था।यद्यपि उनके पुत्रों ने गुरु गद्दी पर अपने अधिकार को व्यक्त किया था तथापि इसे पूर्व गुरुओं ने सेवा की कसौटी पर ही परखा था। इस सेवा की कसौटी पर उन्होंने भी अपने परिवार के दोनों जमाताओं (श्री रामा और श्री रामदास) को परखा और उनमें से संवत् 1631 में भाद्र मास की पूर्णिमा वाले दिन उनके समक्ष पांच पैसे और नारियल रखकर गुरु घर की मर्यादानुसार प्रणाम कर[196] दिया। तत्पश्चात् नम्रता की मूर्ति श्री रामदास जी को बाबा बुड्ढा जी ने गुरु गद्दी का तिलक लगाया और समस्त संगत ने उनके समक्ष नमस्कार की।

श्री अमरदास जी के इस कृत्य पर उनके सपुत्र बाबा मोहन जी ने रोष व्यक्त किया और गुरु गद्दी पर अपना अधिकार व्यक्त[197] किया।परन्तु मोहरी और अन्य परिवार के सदस्यों ने नमस्कार करते हुए उन्हें (श्री रामदास जी) गुरु[198] मान लिया।

194- (क) गु॰ प्र॰ सू॰ रा॰ 1, अंशु 59, अंक 13-14, पृ॰ 1577

(ख) Payne: Short <u>History ofthe Sikhs</u> p.31

195- (i) G.C.Narang: <u>Glorious History of Sikhism</u> p.43

(ii) Macauliffe: Vol.II p.146

196- (क) गु॰ प्र॰ सू॰ रा॰ 1, अंशु 68, पृ॰ 1624-27

(ख) Macauliffe: Vol.II p.146

197- (क) <u>Evolution of the Khalsa</u> p.184

(ख) गु॰ प्र॰ सू॰ रा 1 अंशु, 67, अंक 30-33, पृ॰ 1621

198- वही अंक 39, पृ॰ 1622

गुरु अमरदास जी के इस कार्य से इस ऐतिहासिक तथ्य का स्पष्टीकरण होता है कि यद्यपि उन्होंने इस गुरु गद्दी के अधिकार को सोढी परिवार तक सीमित कर दिया तथापि उन्होंने अपने पुत्रों को इस अधिकार से वंचित कर पूर्व प्रचलित परंपरा के अनुसार ही सेवा को मुख्य कसौटी मानते हुए ही श्री रामदास जी को अपना उत्तराधिकारी निश्चित किया था ।

'गुरु प्रताप सूरज' के अनुसार श्री गुरु अमरदास जी ने 22वर्ष पांच मास ग्यारह दिन तक गुरु[199] गद्दी को सुशोभित किया ।अतः संवत् 1631 में नश्वर शरीर को त्याग दिया था[100] ।

<u>चरित्र</u> : मानवता के पुजारी श्री गुरु अमरदास सिक्खधर्म की उन्नति के इतिहास में अभूतपूर्व योगदान दिया । जिस से सिक्ख धर्म हिन्दू धर्म से पृथक अस्तित्व को ही प्राप्त हुआ अपितु अपने को नये सम्प्रदाय के रूप में[201] सुगंठित करने में सफल हो सका गुरु जी की सेवा-परायणता ,अद्भुत शक्ति सम्पन्नता एवं स्वाभाविक नम्रता आदि गुणों का आख्यान करते हुए भाई सन्तोख सिंह जी ने बहुत ही सुन्दर कवित कहा है :-

''खोले हैं खजाने करामात के महाने,
निति देखि सिक्ख दाने, बरसाने अनगन हैं ।
काटते कलेश उपदेश दे, महेश सम,
पाइकै विशेष भए सेवे तन मन हैं ।
गुन को न अन्त, भगवंत बेख संत धरि,
आदि न, अनंत जाहि भजै मुनिजन हैं ।
श्री गुरु अमरपति अमर सन्तोख सिंह,
अमर करति दास सदा धनंधनं हैं ।। 60 ।।[202]

199- गु॰ प्र॰ सू॰ रा॰ 1, अंशु 7, अंक 28-29, पृ॰ 1334
200- वही , रा 1, अंशु 68, पृ॰ 1624-27
201 (क) <u>Evolution of the Khalsa</u> p.182-183

(ख) Latif: <u>History of the Panjab</u>, p.250

202- गु॰ प्र॰ सू॰ रा॰ 1, अंशु 60, अंक 60, पृ॰ 1628

श्री गुरु रामदास जी (संवत् 1591-1638, सन् 1534-1581)

नम्रता की मूर्ति श्री गुरु रामदास जी गुरु नानक देव जी की गद्दी पर असीन होने वाले चतुर्थ गुरु थे[203]। इन्होंने अपनी सेवा परायणता से उक्त गद्दी को श्री अमरदास जी से प्राप्त किया।

आरम्भिक परिचय : 'गुरु प्रताप सूरज' के अनुसार आप का जन्म संवत् 1581[204] में लाहौर में श्री ठाकुर हरिदास जी के घर माता दया कौर जी के गर्भ से हुआ। आप के पिता ने इनका नाम श्री रामदास रखा परन्तु ज्येष्ठ होने के कारण आप आप 'जेठा' नाम से विख्यात हुए। किशोरावस्था को प्राप्त होते ही इनकी माता ने इन्हें चने बेचने का कार्य भार सौंपा परन्तु ये सभी चने साधुओं में बांट आये। घर आने पर पिता ने कुछ लाल पीले होते हुए उन्हें ऐसा न करने पर समझाया। वे जब रोते हुए घर से बाहर आये तो उन्हें विदित हुआ कि कुछ संगत लाहौर से गुरु जी के दर्शनार्थ गोइंदवाल जा रही है। तभी श्री रामदास जी भी संगत के साथ हो लिए और गोइंदवाल पहुंचकर गुरु जी की सेवा में तल्लीन[205] हो गए। इनकी चारित्रिक विशेषताओं और सेवा से प्रभावित होकर गुरु जी ने अपनी कन्या बीबी[206] भानी जी का विवाह इनके साथ कर दिया। समय की गति के अनुसार श्री रामदास जी के बीबी भानी से तीन पुत्र उत्पन्न हुए[207]। पृथी चन्द (संवत् 1605) महादेव (संवत् 1608) और श्री अर्जुन (संवत् 1610)। ये निरभिमानी एवं विनयशील व्यक्ति थे। अपनी प्रतिष्ठा की चिन्ता किए बिना, दामाद होते हुए भी भक्तों की तरह गुरु जी की सेवा में तल्लीन रहते थे। जब गुरु अमरदास जी ने इन्हें बावली निर्माण कार्य का भार सौंपा तो इन्होंने स्वयं टोकरी ढोहकर अपनी अभूतपूर्व सेवा का परिचय दिया[208]। जब इन के

203- 'चौथे सूरज जनु नभचरे।'- गु. प्र. सू. रा. 2 अं. 1 अंक 20 पृ. 1643

204- वही, रा 1, अंशु 41, अंक 2, पृ. 1491 परन्तु अन्य परवर्ती इतिहासकारों ने संवत् 1591 माना है। द्रष्टव्य: महान कोश, पृ. 775 तथा Macauliffe Vol.II.p-88

205- गु. प्र. सू. रा. 1, अंशु 41, अंक 5-9, पृ. 1491

206 - वही, अंक 18, पृ. 1493

207- वही, अंक 20-24, पृ. 1493

208- वही, रा 1, अंशु 51, अंक 40-61, पृ 1545-46

परिवार के मान्य व्यक्तियों ने आकर श्री रामदास को ऐसी सेवा में तल्लीनदेखा तो उन्होंने गुरु अमरदास जी के समक्ष अपना क्षोभ व्यक्त किया[209]। इस पर गुरु अमरदास जी ने उनसे कह कि यह इन्होंने टोकरी नहीं उठाई हुई यह तो दीन दुनी का छत्र है।[210] श्रीरामदास ने भी तब अपने मुक्तिदाता गुरु जी की सेवा में तल्लीन रहते हुए अपनी प्रेमा-भक्ति से वचनों का उच्चारण किया और अपने सम्बन्धियों को व्यर्थ के लोकाचार और व्यवहार की बातें करने से रोकने का प्रयास किया ।

<u>परीक्षा और गुरुत्व प्राप्त करना</u> : उक्त बावली -निर्माण के दिनों में ही गुरु अमरदास जी ने अपने दोनों जमाताओं – श्री रामा और श्री रामदास जी की सेवापरायणता एवं विनम्रता कीपरीक्षा[211] एक थड़े के निर्माण कार्य द्वारा ली थी जिसमे उन्होंने श्री रामदास जी को ही अपनी गुरु -गद्दी के योग्य पाकर संवत् 1631 में उन्हें गुरु गद्दी प्रदान की थी । इस सम्बन्ध में हम पीछे गुरु अमरदास जी के विवरण में भी संकेत कर आये हैं । इसके साथ यहां यह संकेत कर देना भी प्रासंगिक होगा कि गुरु अमरदास जी ने अपनी पुत्री बीबी भानी के सेवापरायण्ता[212] से प्रसन्न होकर उसे गुरु गद्दी के उसी परिवार में रहने का वरदान[213] दिया था ।

<u>गुरुत्व काल एवं निर्माण कार्य</u> : श्री अमरदास जी ने अपने देहावसान से चार वर्ष पूर्व संवत् 1627 में श्री रामदास जी को अपने निवास के लिए नगर-निर्माण का आदेश दिया था कि कहीं उन के पुत्र बाबा मोहन और आआ मोहरी जी उनके गुरु गद्दी पर बैठन पर अपना अधिकार न जताये अथावा विरोध नह करें । अतः श्री रामदास जी ने उन निर्दिष्ट स्थान पर वर्तमान अमृतसर के निर्माण की नींव[214] रखी । यहां पर उन्होंने नगर

209- गु प्र॰ सू॰ रा 1, अंक 51, अंक 40-61, पृ॰ 1545-46

210- वही , अंक 65-66, पृ॰ 1546

211- वही , रा 1, अंशु 56-57, पृ॰ 1564-70

212- वही , अंशु 64, अंक 3, पृ 1605

213- वही , अंशु 65, अंक 39-44, पृ॰ 1613

214- " In fact, on the authority of the Suraj Prakas, Macauliffe says that Guru Amar Das had anticipated this difficulty and had accordingly advised Ram Das to build a house in the lands assigned by the Emperor and then excavate a tank to the east of its as a place of Sikh pilgrimage" --<u>Evolution of the Khalsa</u> p. 184-185 also see Macauliffe Vol. II p. 141

बसाने के कार्य के साथ साथ सरोवर की खुदाई का कार्य भी आरंभ कर दिया जिसे 'सन्तोख सर' के नाम से प्रसिध्दि प्राप्त हुई । इस से कुछ दूरी परही 'गुरु का चक्क'[215] (अथवा चक्र रामदास या रामदासपुरा)नामक नगर बसाया गया । अपने गुरु गद्दी पर बैठते ही संवत् 1631 (सन 1574) में गुरु जी परिवार सहित यहां आकर रहनेलगे । संवत् 1634 (सन 1577) गुरु जी ने बाबा बुड्ढा के नेतृत्व में दुख भंजोनी बेरी वाले स्थान पर एक सरोवर की खुदाई ~~आरंभकर~~ आरंभ कराई जिसे पंचम् गुरु श्री अर्जुन देव जी ने सम्पूर्ण कराया और उस सरोवर का नाम 'अमृतसर'[216] रखा । इस के समीप ही अनेक मजदूरों एवं सामान्य व्यापारियों ने अपने रहने के स्थान के अतिरिक्त दुकाने आदि भी बनाई। यह व्यापारिक केन्द्र 'गुरु का बाजार' नाम से प्रसिध्द हुआ।

प्रचार कार्य : सार्वजनिक निर्माण कार्यों के अतिरिक्त सिक्ख धर्म के प्रचार एवं प्रसार में भी गुरु जी ने पर्याप्त योगदान दिया । उन्होंने भाई ~~सन्तोख सिंह~~ गुरदास और हिन्दाल आदि को अस कार्य के लिए नियुक्त किया ।[217]

श्री चन्द मिलने आए : श्री गुरु नानक देव जी के सपुत्र एवं उदासी मत के प्रवर्तक श्री चन्द जी जब गोइंदवाल गुरु जी से मिलने के लिए तो गुरु जी ने स्वयं उठकर उन का स्वागत सत्कार किया । जब उन्होंने गुरु जी की विनम्रता की परीक्षा लेने के विचार से उन से पूछा कि आपने इतनी लम्बी दाढ़ी क्यों बढ़ाई हुई है तो उन्होंने उत्तर में कहा कि आप जैसे महापुरुषों के चरणों को झाड़ने लिए । जब उन्होंने ऐसा कर दिखाया

215- (क) गु・प्र・सू・रा・ 2, अंशु 12, पृ・ 1688

(ख) Sodhi Hazara Singh, A History and Guide to the Golden Temple, Amritsar, op. cit. 18 (Guru Ka Chak was founded in 1573 A.D.)

216- (क) गु・प्र・सू・रा 2, अंशु 13, अंक 4, पृ・ 1691

(ख) महिमा प्रकाश , साखी 5, पृ・ 287-94

217- (क) गु・प्र・सू・रा・ 2, अंशु 14, पृ・ 1695-99

(ख) Khushwant Singh: <u>A History of the Sikhs</u> p.55

तो श्री चन्द जी उनकी विनम्रता से अत्यन्त प्रभावित हुए । और उन्होंने गुरु जी को आशीर्वाद दिया । ऐसा होने पर भी गुरु जी ने अपने सिक्खों को उदासी मत को ग्रहण न करने दिया । यद्यपि उदासी सम्प्रदाय वाले अपने को सिक्ख धर्म का ही अंग मानते रहे हैं [218] ।

<u>श्री अर्जुन देव जी का लाहौर -गमन</u> : गुरु जी ने जब अपने बड़े पुत्रों (श्र पृथी चन्द और महादेव) से अपने एक सम्बन्धी सोढी संहारीमल के सपुत्र की शादी में सम्मिलित होने के लिए अनुरोध किया तो वे आनाकानी करने लगे तब उन्होंने अपने छोटे बेटे श्री अर्जुन को लाहौर जाने की आज्ञा दी । जिसे उन्होंने शिरोधार्य करते हुए पिता की आज्ञा का पालन किया । उन्हें भेजते समय पिता गुरु जी ने यह भी आदेश दिया कि वे विवाह के पश्चात् वहीं रह कर संगत को सत्यनाम का उपदेश दे और जब तक वे न बुलाये वही रहे । आज्ञानुसार जब विवाह के पश्चात् उपदेश देते हुए काफी समय व्यतीत हुआ तो उन्होंने अपने हृदय की व्याकुलता से भरे हुए दो पत्र कविता में लिख कर गुरु जी को भेजे । परन्तु पृथी चन्द ने अपनी द्वेष-भावना के वशीभूत हो कर उन दोनों ही पत्रों को गुरु जी तक न पहुंचने दिया । तब उन्होंने काफी प्रतीक्षा के पश्चात् तृतीय पत्र भेजा जिसे किसी तरह प्राप्त कर गुरु जी ने उनकी व्याकुलता को अनुभव करते हुए बाबा बुड्ढा जी को उन्हें अमृतसर लाने के लिए कहा । अमृतसर पहुंच कर श्री अर्जुन ने गुरु जी के दर्शन कर अपनी प्रसंनता को व्यक्त करने वाला चौथा पद कहा जिसे सुनकर गुरु जी अत्यन्त प्रसन्न हुए [219] ।

श्री अर्जुन देव जी को गुरुत्व प्रदान करना : श्री अर्जुनदेव जी के आज्ञापालन, आस्था स्नेह एवं निश्छलता , पवित्रता एवं कवित्व शक्ति आदि से प्रभावित होकर तथा बाबा बुड्ढा जी और भाई गुरदास के परामर्श से श्री अर्जुन देव को अपने आसन पर आसीन करने का संकल्प [220] किया । श्री अर्जुन देव जी उनके नाना गुरु अमरदास जी

218- गु॰ प्र॰ सू॰ अंशु 14, अंक 74-81, पृ॰ 170।

219- वही , रा॰ 2, अंशु 15-16, पृ॰ 170 1-9 तथा वही, अंशु 19-22 , पृ॰ 1717-31।

220- (क) वही रा॰ 1, अंशु 66, अंक 53, पृ॰ 1614

(ख) कन्हैयालाल : तारीखे पंजाब (उर्दू), 24

ने भी 'दोहता, वाणी का बोहिता' आदि वचनों से आशीर्वाद दिया था [221] । यह उन्होंने अपनी कवित्व शक्ति से स्पष्ट कर दिया था ।

गुरु गद्दी - पैतृक उतराधिकार तथा पृथी चन्द का असंतोष एवं विरोध : अब तक सिक्ख मत में यह परंपरा थी कि गुरु गद्दी सेवकों को प्राप्त होती थी । गुरु अमरदास जी ने सेवापरायणता के फलस्वरूप यद्यपि गुरु गद्दी अपने जामाता को प्रदान कर इसे अपने परिवार तक सीमित कर दिया था तथापि उन्होंने अपने पुत्रों को इस योग्य नहीं समझा था और अपने सेवक को ही गुरु गद्दी प्रदान की थी परन्तु उनके आशीर्वाद से यह बीबी भानी के परिवार तक सीमित ही हुई थी [222] । पर सेवापरायणता की कसौटी को यहां पर भी स्थिर रखा गया । यहां आकर गुरु गद्दी पुत्र को प्राप्त तो हुई किन्तु वे गुरु जी के सबसे छोटे पुत्र थे ।

उतराधिकार की प्रचलित पध्दति के अनुसार बड़े पुत्र को ही गुरु गद्दी मिलनी चाहिए थी लेकिन गुरु जी ने अपने बड़े पुत्रों को इस के योग्य न समझ कर - सेवा और गुणों के आधार पर छोटे पुत्र को गुरुत्व प्रदान करते हुए पूर्ववर्ती पध्दति का ही निर्वाह किया । इस पर पृथी चन्द ने बड़ा होने के कारण अपना असंतोष व्यक्त किया । वह अपने पिता के उक्त कृत्य से इतना क्रोधित और आग बबूला हुआ कि उसने बाबा बुड्ढा से अपने पिता के अनुचित कार्य की भर्त्सना की [223] । और अपने अधिकार को को स्पष्ट शब्दों मे व्यक्त किया ।

यहां से गुरु घर में एक नये तरह के संघर्ष का अभ्युदय होने लगता है। असंतोष ता श्री चन्द (पुत्र गुरु नानक देव) दातू (पुत्र श्री अंगद देव) 'मोहन और मोहरी

221- (i) G.C.Narang: <u>Glorious History of Sikhism</u> p.44
(ii) Mohd.Latif: <u>History of the Panjab</u> p.253

222- G.C.Narang: <u>Glorious History of Sikhism</u> p.43

223-(क) गु॰ प्र॰ सू॰ रा॰ 2, अंशु 22, अंक 23-60, पृ॰ 1732-36
(ख) वही , अंशु 23, पृ॰ 1736-40
(ग) <u>Evolution of the Khalsa</u> p.189
(घ) Macauliffe: Vol.II p.276-284

(पुत्र श्री अमरदास) ने भी व्यक्त किया था किन्तु वह बहुत ही सीमित स्तर पर था । परन्तु रामदास जी के बड़े पुत्र पृथी चन्द ने इस असंतोष को दूसरे स्तर पर व्यक्त किया । जिसने आगे चल कर एक राजनैतिक संघर्ष का रूप धारण किया ।

गुरु जी का गोइंदवाल गमन तथा देह त्याग : गुरु जी के समझाने पर भी जब पृथी चन्द्र ने अपने अधिकार के लिए संघर्ष जारी रखा तब गुर जी की आत्मा इस पारिवारिक क्लेश से अत्यन्त पीड़ित हो उठी । उन्होंने अपना अन्तिम समय निकट जान कर अपने निकटवर्ती सम्बन्धियों एवं संगत के सदस्यों को साथ लेकर गोइंदवाल की ओर प्रस्थान किया ।[224] वहीं उन्होंने सब को उचित उपदेश देने के पश्चात् भाद्रशुध्दि तीसरी को संवत्[225] 1638 को अपना पंच भौतिक शरीर त्याग दिया ।

'गुरु प्रताप सूरज' में दी गई गुरु जी की जन्म तिथि यद्यपि बाद के सिक्ख इतिहासकारों द्वारा मान्य नहीं है तथापि देह त्याग की तिथि के सम्बन्ध में सभी सिक्ख इतिहासकारों को 'गुरु प्रताप सूरज' में दी गई तिथि मान्य है ।[226]

गुरु जी का चरित्र : 'गुरु प्रताप सूरज' के रचयिता के अनुसार आप विनम्रता की मूर्ति थे । 'अमृतसर के निर्माण में आप का अद्भुत योगदान था । मसन्दों की नियुक्ति कर आप ने सिक्ख धर्म का प्रसार किया । अपनी विनम्रता एवं सात्विकता से आप ने उदासियों के नेता श्री चन्द को बहुत प्रभावित किया और उदासियों और सिक्खों के पारस्परिक संघर्ष को समाप्त किया ।

224- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 2, अंशु 23, पृ॰ 1736

225- (क) वही , रा 1, अंशु 7, अंक 36, पृ॰ 1335

(ख) महिमा प्रकाश : साखी 8 अंक 7, पृ॰ 303

226- (क) Macauliffe: The Sikh Religion, Vol. II p.285

(ख) महान कोश , पृ॰ 775

(ग) कृ॰ सिंह नरंग तथा गुप्ता : पंजाब का इतिहास , पृ॰ 78

गुरु अर्जुन देव : (संवत् 1620-1663, सन् 1563-1606)

आपके बड़े भाई पृथी चन्द का आप के साथ जो पूर्व वैरा था वह आप के गुरु गद्दी पर आसीन(सं 1638वि) और अधिक पढ़ गया। गुरु रामदास जी के बैकुंठगमन पर 'दसतार बन्द' के अवसर पर पृथी चन्द ने अपने अधिकारों से उन्हें परिचित कराया। तब भी आप ने बड़े भाई का आदर करते हुए स्वयं ही 'दसतार' पृथी चन्द को दे दी[227]। परन्तु सिक्ख संगत गुरु अर्जुन उ देव जी को ही अपना गुरु मानकर उन्हें ही भेंट आदि समर्पित करती थी जिसे देखकर पृथी चन्द की क्रोधाग्नि और अधिक भड़कने लगी और गोइंदवाल से वह अमृतसर आ गया।

पृथी चन्द की कुटिलता : उसकी विरोधाग्नि अपने परिवार तक ही सीमित न रह कर राजनैतिक क्षेत्र में भी जा पहुंची। उसने तत्कालीन अमृतसर के राजस्वाधिकारी सूलही खां से भीमित्रता[228] इस हेतु स्थापित की कि वह उसे गुरुत्व प्राप्ति के अधिकार दिलाने में सिध्द हो सकेंगे। पृथवी चन्द की कुटिलनीति कोउसके घर मेहरबान के जन्म ने और आगे बढ़ाया। श्री गुरु अर्जुन अस समय तक निस्सान्तान थे। उनके मेहरबान के प्रति अपार स्नेह को देखकर, पृथी चन्द सोचता कि गुरु अर्जुन देव के पश्चात् उनके पुत्र को ही गुरु गद्दी मिलेगी[229]। परन्तु फिर भी वह कलेशपूर्ण व्यवहार से गुरु अर्जुन देव जी को दुःखी करता रहता था। उसके ऐसे व्यवहार को देखकर गुरु जी अमृतसर त्याग कर वडाली आकर रहेने लगे। यहां पर रहते हुए जब 21 आषाढ़ संवत् 1652 वि[230]• को उनके घर माता गंगा जी के गर्भ से हरिगोबिन्द का जन्म हुआ। ता पृथी चन्द का समस्त आशाओं पर पानी फिर गया। उसकी पत्नी करमदेवी को उससे भी अधिक दुःख हुआ और वह भी द्वेषाग्नि मे जलती हुई कई कुकृत्य[231] करने पर उतर

227- गु• प्र• सू• रा• 2, अंश 25, अंक 29-33, पृ• 1747

228- वही, अंक 47-56, पृ• 1748-49

229- वही, रा 2, अंशु 29, अंक 35-42, पृ• 1763-64

230- वही, रा 3•, अंश 4, अंक 24, पृ• 1906

231- वही, रा 3, अंशु 6, 7, 9, 15-17, पृ• 1915

आई उन्होंने विष मिले दही, सर्प तथा एक धाय द्वारा उस शिशु को मरवाने की को कई निष्फल चेष्टाएं की। इतिहास ग्रंथों में ऐसे पारिवारिक घटनाओं का उल्लेख बहुत कम है। उसके झगड़ों और जहांगीर के दरबार में जाकर न्याय मांगने की धमकियों का भी 'गुरु प्रताप सूरज' में विशेष उल्लेख हुआ है। जिसे इस पापात्मा का चरित्र व्यक्त होता है।

उधर जब सुलही खां उनपर पृथी चन्द की प्रेरणा से आक्रमण के लिए आने लगा तो एक दिन पृथी चन्द के भठे को देखते हुए घोड़ो के विचलित होने पर जलते हुए भठे में गिर कर मृत्यु को[232] प्राप्त हुआ तो पृथी चन्द के यहां से भी निराशा ही हाथ लगी। गुरु अर्जुन देव को जब यह घटना विदित हुई तो उन्होंने प्रभु के धन्यवाद में वाणी का उच्चारण[233] किया। इसके पश्चात् सुलही खा के भतीजे सुलभी खां ने भी गुरु जी के विरुध योजनाएं बनाई। सुह सुलही खां आदि के विषय में 'महिमा प्रकाश' में कोई उल्लेख नहीं है। देवयोग से सुलभी खां भी एक सय्यद के हाथों से मृत्यु को प्राप्त हुआ।

<u>सार्वजनिक निर्माण कार्यः</u> गुरु गद्दी पर आसीन होते ही जब गुरु अर्जुन देव जी ने श्री गुरु रामदास जी द्वारा आरंभ किए कार्यों को पुनः पूरा करना चाहा तो भी पृथी चन्द का दुर्व्यवहार अनेक बाधाएं उपस्थित करता रहा। अमृतसर के निर्माण की पूर्ति[234] के अतिरिक्त आप ने संवत् 1645 में हर मन्दिर साहिब[235] को बनवाया।

232- (क) गु॰ प्र॰ सू॰ रा॰ 3, अंशु 4, अंक 7, पृ॰ 1902

(ख) वही, रा 3, अंशु 18, अंक 26, पृ॰ 1976

(ग) वही, रा॰ 3, अंशु 26, पृ॰ 2011

(घ) वही, रा 3, अंशु 26 अंक 35, पृ॰ 2014

(ङ) Evolution of the Khalsa, p.211

233- Macauliffe Vol.III p.86

गु॰ प्र॰ सू॰ रा 4, अंशु 18, श्री मुखवाक, पृ॰ 2300

234- (क) वही, रा 2, अंशु 39, 54, पृ॰ 1801-1859

(ख) महिमा प्रकाश, साखी 4, पृ॰ 320

235- गु॰ प्र॰ सू॰ अंशु 53, पृ॰ 1855

जिसका सांस्कृतिक महत्व सर्वविदित ही है। इन स्थानों के अतिरिक्त आप ने तरन तारन,[236] करतार पुर, छिहरटा आदिअनेक नगरों का निर्माण का कार्य भी किया। गुरु जी के इन कार्यों को देखकर तथा उनकी बढ़ती हुई लोकप्रियता को देखकर पृथी चन्द की ईर्ष्या और अधिक बढ़ी। उसने इसी के वशीभूत होकर लाहौर के समीप हेहर ग्राम में एक तालाब बनवाया[237] और हरिमन्दिरसाहिब जैसे मन्दिर बनाने का प्रयास किया। तरन तारन के समीप 'दुख निवारण' बनवाया। परन्तु किसी तरह से भी वह संगत से सम्मान प्राप्त न कर सका और अन्त संवत् 1663 में स्वर्ग सिधार गया।

<u>आदि ग्रंथ का सम्पादन</u> : गुरु जी के उक्त कार्यों के अतिरिक्त उनकी विशेष महत्वपूर्ण उपलब्धि थी – आदि ग्रंथ का सम्पादन। जिसमें उनकी अपनी वाणी के अतिरिक्त उनके पूर्ववर्ती चार अन्य गुरु साहिबान की वाणी भी सम्पादित है। पूर्ववर्ती गुरु साहिबान की वाणी के कुछ संकलन उन्होंने बाबा मोहन से प्राप्त किए।[238] इसमें गुरु साहिबान की वाणी के अतिरिक्त उन्होंने अनेक सन्तों, भट्टों एवं भक्तों की वाणी[239] को सम्मान सहित भाई गुरदास द्वारा संकलित कराया।[240] इस धर्मग्रंथ के सम्पादन से सिक्खों में नई जातीय चेतना विकसित हुई। इसकी उदात भावनाओं ने इसे मानवता की ज्ञान निधि होने का पद प्रदान किया जिसमें साम्प्रदायिक[241] भावनाओं का/संकलन न होकर मानीवय एकता के विचार है।

236- (क) गु॰प्र॰सू॰रा॰ 3, अंशु 68, पृ॰ 2217

(ख) महिमा प्रकाश, साखी 8, पृ॰ 345

237- वही, रा॰ 3, अंशु 23, पृ॰ 1998

238 - वही, रा॰ 3, अंशु 34-35, पृ॰ 2051-58

239- वही, रा 3, अंशु 42, पृ॰ 2088

240 Gobind Singh Mansukhani: <u>The Quintessence of Sikhism</u> p.248

241- डा॰ पीतम्बरदत बड़थ्वाल : हिन्दी काव्य में निगुर्ण सम्प्रदाय (हिन्दी अनुवाद), पृ॰ 397

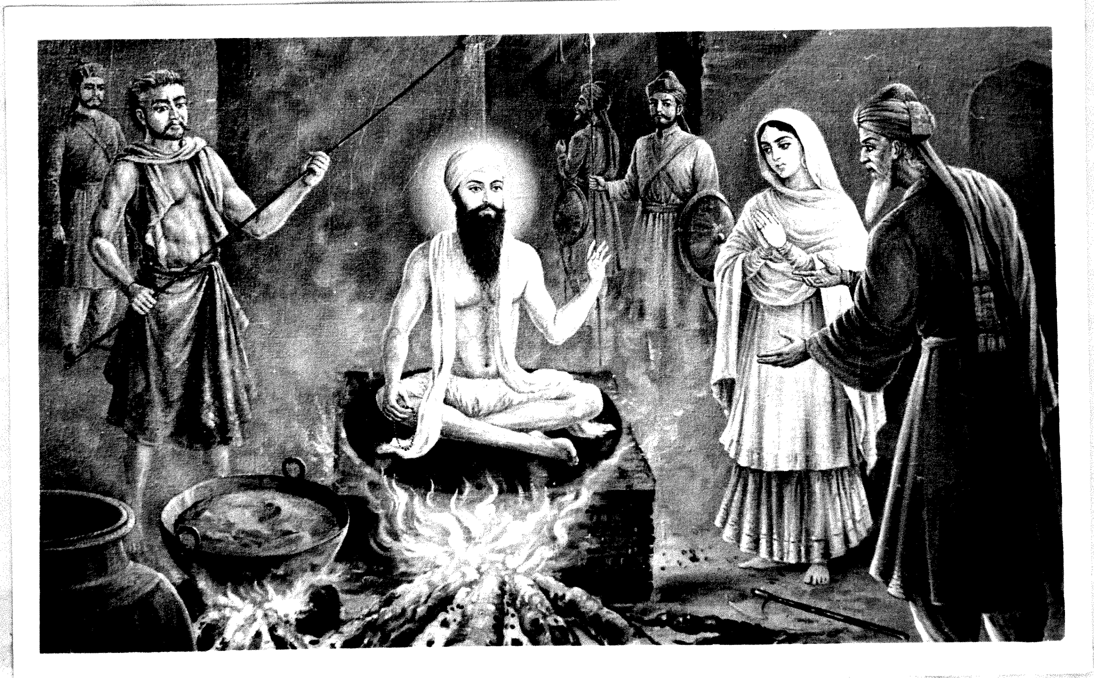

गुरु अर्जुन देव जी को दिए गए कष्ट

गुरु जी का बलिदान : यद्यपि अकबर की उदारता ने गुरु जी के उक्त सांस्कृतिक कार्यों का सम्मान किया था परन्तु उसके स्वर्ग सिधारने के पश्चात् जहांगीर के सिंहासनासीन होते ही परिस्थितियों ने करवट ली । इसका सिक्खों के प्रति व्यवहार द्वेषपूर्ण और असहनशील था ।

क्षत्रिय चन्दू शाह की व्यक्तिगत शत्रुता : लाहौर का एक क्षत्रिय चन्दूशाह था जिसे देहली की सलतनत के वित्त विभाग में उच्चपद प्राप्त था । जब उसके गृह पुरोहित ने उस की लड़की के लिए योग्य वर के रूप में गुरु जी के साहिबजादे श्री हरिगोबिन्द को चुना तो वह अपने अहंकार के मद में आकर कहने लगा कि आप ने तो 'चुबारे की ईंट' की मोरी में लगाने का प्रयास किया है।[242] परन्तु उसकी पत्नी के कहने पर उसने विवाह की स्वीकृति दे दी । इधर जब यह बात गुरु जी को उनकी देहली की संगत ने सूचित की तो उन्होंने चन्दूशाह के उक्त अनुरोध को अस्वीकार कर दिया ।[243] इससे चन्दू उनका शत्रु बनगया ।[244] यह पृथी चन्द से भी अपनी मित्रता स्थापित करता है।[245] उसन स्वयं भी गुरु जी से कई बार पूर्वोक्त प्रार्थना की परन्तु गुरु जी अपने वचनों पर अटल रहे ।[246] तभी से वह गुरु जी से बदला लेने की खोज में रहने लगे ।[247] उसे यह अवसर तब मिला जब जहांगीर खुसरों का पीछा करते हुए लाहौर पहुंचा । तबउस ने गुरु जी के विरुध जहांगीर के कान भरे[248] और वह गुरु जी को अपना अपराधी समझने लगा । उसने यह भी कहा कि गुरु जी ने विद्रोही खुसरों को शरण

242- (क) गु॰ प्र॰ सू॰ रा॰ 4, अंशु 4, अंक 9-10, पृ॰ 2238-39

(ख) Macauliffe Vol.III p.73-76

243- गु॰ प्र॰ सू॰ रा॰ 4, अंशु 5, पृ॰ 2246

244- वही , रा , अंशु 8, पृ॰ 2257

245- वही , रा 4, अंशु 20, अंक 18-19, पृ॰ 2304

246- Latif: History of the Panjab p.254

247- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 4, अंशु 20 , अंक 20-26, पृ॰ 2306

248- Mohsin Fani: The Dabistan p.234

दी थी तथा धन से सहायता की है। इस बात को सुन कर उसके क्रोध की कोई सीमा न रही और उसने जल्दबाजी में आकर गुरु जी को शाही अपराधी घोषित कर दिया और दो लाख रुपये जुर्माना करने का शाही फुरमान जारी कर दिया।[249]

परन्तु 'गुरु प्रताप सूरज' में जहांगीर को इतना दोषी नहीं ठहराया गया जितना कि चन्दू को, क्योंकि उसने ही अपने षड्यन्त्र से उक्त शाही फुरमान जारी करवाया था और उसने ही गुरु जी को लाहौर बुलवा कर[250] इस दो लाख की राशि देने के लिए विवश किया था। जहांगीर तो गुरु जी को ससम्मान अपने दरबार में बुलाते[251] एवं वार्तालाप करते हुए चित्रित किए हैं।[252] इससे विदित होता है कि कवि ने जहांगीर पर गुरु जी का प्रभाव दिखाने के लिए घटना का रूप बदला प्रतीत होता है।[253] परन्तु चन्दू की कुटिलता की अभिव्यक्ति तब होती है जब वह उक्त राशि को शाही कोश में जमा कराने हेतु गुरु जी को विवश करने के लिए उन्हें अपने घर ले आता है[254] और वहां अपने पूर्वोक्त अनुरोध को दोहराता है। जब गुरु जी अपने वचन पर अटल रहते हैं तब उन्हें नाना प्रकार के कष्ट देकर उन्हें उक्त वचन मानने के लिए विवश[255] किया जाता है अन्ततः उनके शरीर पर गर्म रेत डाली जाती है, उन्हें आग से दहकती हुई चौकी पर बैठाया जाता है और इसी तरह के अनेक नृशंसता भरे कष्टों से पीड़ित किया जाता है।[256] गुरु जी वही प्रभु के भाणे को मीठा मानते[257]

249- गु॰ प्र॰ सू॰ रा॰ 4, अंशु 20, अंक 33-35, पृ॰ 2345

250- वही, रा 4 अंशु 31, पृ॰ 2350

251- वही, रा 4, अंशु 33, अंक 16-26, पृ॰ 2360

252- वही, रा 4, अंशु 33, श्रीमुखवाक, पृ॰ 2359 तथा

253- डा॰ जयभगवान गोयल : गुरु प्रताप सूरज के काव्यपक्ष का अध्ययन, पृ 67

254- (क) गु॰ प्र॰ सू॰ रा॰ 4, अंक 28-29, पृ॰ 2360

(ख) महिमा प्रकाश, साखी 22, अंक 25-26, पृ॰ 414

255- गु॰ प्र॰ सू॰ अंशु 34, अंक 21, पृ॰ 2363

256- वही, रा 4, अंशु 34-35, पृ॰ 2361

257- ''तेरा किया मीठा लागे, नाम पदार्थ नानक मांगे।''

हुए देह त्याग देते हैं । यही घटना गुरु जी के अमर बलिदान के रूप में विख्यात है।[258]
<u>ऐतिहासिक समीक्षा</u> : सिक्ख इतिहासकारों ने उक्त घटना का अनुमोदन तो किया है परन्तु तुज़के जहांगीरी के आधार पर जहांगीर की असहनशीलता को ही गुरु जी के बलिदान का कारण[259] बताया है। वैसे खुसरों को[260] गुरु जी ने कितनी राशि की सहायता दी थी ? इस सम्बन्ध मे भी इतिहासकारों में मतभेद[261] है।कई इतिहासकारों का विचार है कि खुसरों को चनाव नदी के किनारे पर 26 अप्रैल, 1606 को बन्दी बनाया गया और उसे लाहौर दिनांक प्रथम मई को जहांगीर के दरबार में प्रस्तुत किया गया । तभी जहांगीर ने गुरु जी को भी बुलाया और उक्त आर्थिक सहायता सम्बन्धी पूछताछ की ।गुरु जी ने कहा कि उन्होंने यात्रा हेतु कुछ राशि से उनकी सहायता की है परन्तु उसे विद्रोही के रूप में खड़ा करने के विचार से किसी तरह की कोई सहायता नहीं की। गुरु जी के इस वक्तव्य पर असन्तुष्ट हो कर उसने मृत्यु दण्ड की सजा की घोषणा करनी चाही परन्तु मीयां मीर की सिफारिश पर केवल दो लाख का जुर्माना करने का ही शाही किया गया[262] । परन्तु गुरु जी ने कहा कि मेरे पास न तो इतनी रकम ही है और न मैं निर्धनों की राशि को जुर्माने के रूप में दे ही सकता हूँ । अन्ततः उन्हें जहांगीर के उक्त ग्रंथ में लिखे अनुसार लाहौर बुलाकर गुरु जी को लाहौर के गर्वनर मुर्तजाखां के

258- वारां - वार 24 तथा गु प्र सू · फुटनोट पृ · 2384

259- तुजके जहांगीरी (फारसी) 35

260- (क) गु प्र · सू · रा · 4, अंशु 29, अंक 13, पृ · 2343

(ख) वही , रा 4, अंशु 32, अंक 27, पृ · 2355

261- (क) Beni Prasad : <u>History of Jahangir</u> p. 130

(ख) महिमा प्रकाश , साखी 22, अंक 3, पृ · 410

(ग) तुजके जहांगीरी , 35

(घ) गु · प्र सू · रा 4, अंशु 37, अंक 48, का फुटनोट पृ · 2377-84

262- तुजके जहांगीरी , 35

के हवाले कर दिया गया ।जिसने गुरु जी के घर और सम्पति को सम्भाल लेने के आदेश भी दिए गए । जहांगीर लिखता है मैं ने ही गुरु जी को मृत्यु के घाट उतारने के आदेश दिए थे[263] ।मुर्तज़ा खां ने चन्दू को गुरु जी को सम्पति सम्भाल लेने का आदेश दिया और उसने गुरु जी के घर की सभी मूल्यवान वस्तुओं को सम्भाल लिया । जहांगीर के उक्त आदेशोंका मीआं मीर की सिफारिश पर पालन नहीं किया ।मोहसन फानी का विचार है कि सम्पति से जब दो लाख की रकम की वसूली न हुई तो बाकी रकम के न प्राप्त होने के दण्ड स्वरूप गुरु जी के पुत्र हरिगोबिन्द को ग्वालियर में 12 वर्ष की कैद की सज़ा दी[264] गई। 'गुरु प्रताप सूरज' के रचयिता ने फानी की इस विचारधारा को स्वीकार नहीं किया है।इस संबंध में आगे विचार किया जायेगा ।

<u>बलिदान का स्वरूप</u> : गुरु जी को लाहौर के किल्ले में कैद किया गया था[265] कि 'गुरु प्रताप सूरज' में लिखा है कि गुरु जी को चन्दू के घर में ही कैद में रखा गया था[266] । उक्त किल्ले में ही पूर्वोक्त नाना कष्ट दिए गए थे ।जब खुसरों के सहायकों (हुसैन बेग और अब्दुर रहीम) की तरह गुरु जी को भी दण्ड देने का प्रस्ताव किया गया ।तब गुरु जी ने रावी में स्नान कीआज्ञा मांगी ताकि स्नान द्वारा स्वच्छ हो कर उक्त दण्ड ग्रहण किया जा सके । जब इन्हें रावी में स्नान हेतु ले जाया गया और स्नान के लिए गुरु जी ने गोता लगाया तो वहीं लोप हो[267] गए।परन्तु 'गुरु प्रताप सूरज' में लिखा है कि चन्दू के घर ही गुरु जी ने शरीर त्याग दिया था[268] । 'महिमा प्रकाश' में विष देकर मारने का उल्लेख[269] है।

263- (क) तुजके जहांगीरी (फारसी) 35

(ख) Major Henry Court, <u>Sikhan De Raj Di Vithya</u> p.32 and Latif, Panjab, 254 f.n.

264- Mohsin Fani$ <u>Dabistan</u> p.234

265- Rose, <u>Glossary of Panjab Tribe and Castes</u> Vol.I p.683

266- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 4, अंशु 34-35, पृ॰ 2361-2377

267- (i) Khuswant Singh: <u>A History of the Sikhs</u> Vol.I p.63
(ii) Trilochan Singh: <u>Guru Tegh Bahadur</u> p.37

268- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 4, अंशु 38, अंक 12, पृ॰ 2386

269- महिमा प्रकाश , साखी 2, अंक 7, पृ॰ 423

उक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि सिक्ख इतिहास परंपरा में तथा परवर्ती सभी इतिहासकार इस बात पर तो सहमत हैं कि जहांगीर ने दो लाख का जुर्माना[270] किया था। परन्तु गुरु जी का बलिदान कैसे हुआ था इस संबंध में विभिन्न मत हैं। सिक्ख इतिहास परंपरा में गुरु जी का यह बलिदान धार्मिक बलिदान के रुप में स्वीकृत किया गया है। परन्तु बेनी प्रसाद[271] और यदुनाथ सरकार[272] आदि इतिहासकारों ने इसे राजनैतिक बलिदन स्वीकार किया है। उक्त इतिहास कारों में मतैक्य न होने पर भी यह तथ्य तो निश्चित है कि गुरु जी ने अपने बलिदान द्वारा अपने साहस का अद्भुत उदाहरण प्रस्तुत किया है। इससे सिक्ख जाति के विकास को नवीन दिशा मिली और वह धार्मिक एवं सुधारक संगठन से सैनिक संगठन की ओर अग्रसर हुए।[273]

<u>गुरु जी का चरित्र</u> : भक्ति और शक्ति के प्रतीक गुरु अर्जुन देवजी का सिक्ख इतिहास में स्थान और महत्व अनुपम है। वह विनयशील, धैर्यवान व्यक्ति ही न थे अपितु प्रभु के भाणे को मीठा करके माननेवाले आदर्श थे। जहां गुरु जी के निर्माण कार्य और आदि ग्रंथ का सम्पादन महान कार्य थे वहां उनके बलिदान को महानतम कार्य कहा जायेगा। भाई सन्तोख सिंह के शब्दों में :-

सतिगुर चरित सु अचरज अहैं।
जिन समानता करि है कोइ न।
भूत न भयो भविख्यति होइ न।।[274]

आप ने संवत् 1663 में अपने शरीर[275] त्याग से पूर्व लाहौर जाते हुए अपने पुत्र हरिगोबिन्द को गुरु गद्दी प्रदान की।

270- (क) महिमा प्रकाश, साखी 22, अंक 9, पृ॰ 41।
(ख) गु॰ प्र॰ सू॰ रा॰ 4, अंशु 29, अंक 33-34, पृ॰ 2345
(ग) वही, पृ॰ 2378 का नोट।

271- <u>History of Jahangir</u> p.130

272- <u>A short History of Aurangzeb</u> (1954 edition) p.156

273- Trumpp, <u>Adi Granth</u>, LXXXII

274- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 4, अं 37, अं 48, पृ॰ 2377, वही[275], रा 1॰ अंशु 7 अं 42, पृ 1336

श्री गुरु हरि गोबिन्द (संवत् 1652-1701 वि॰)

सिक्ख गुरु इतिहास में छटें गुरु हरिगोबिन्द सिंह जी का व्यक्तित्व विशेष महत्व रखता है। गुरु अर्जुन देव जी के पूर्वोक्त बलिदान का इस बालगुरु (11 वर्ष को अवस्था में गुरु बनने के कारण) के हृदय पर बहुत गहरा आघात पहुंचा। उन्होंने आततायियों के विरुध्द शस्त्रोकरण को[276] नीति अपना कर अपने भक्तों को योध्दाओं के रूप में परिणत कर दिया।

आरम्भिक परिचय : बाल्यकाल में आप को शिक्षा आदि का समस्त भार बाबा बुड्ढा पर था। उनको शिक्षाओं, तत्कालीन परिस्थितियों और उनकी शूरवोरता ने उन्हें दो तलवारें धारण करा कर पीरी और मीरी[277] का 'सच्चा पातशाह'[278] बना दिया। उन्होंने अपनो योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिए लोहगढ़ और अकाल तख्त[279] का निर्माण कराया। उन्होंने चन्दू से बदला लेने की प्रतिज्ञा[280] की। अपने सेवकों को भी यह आदेश जारी किया कि भविष्य में हमें नकद राशि भेजने के स्थान पर घोड़े और अस्त्र शस्त्र भेजें[281]। उन्होंने अपने पास अनेक शस्त्रधारो सैनिकों को हो भर्ती नहीं[282] किया अपितु अपने सिक्खों को भी शस्त्र धारण करने का आदेश दिया।

'गुरु प्रताप सूरज' के अनुसार गुरु जी को उक्त सैनिक गतिविधियों की सूचना जब उन के शत्रुओं-पृथोचन्द और उनके पुत्र मेहरबान, चन्दू शाह आदि ने जहांगोर को

276- गु॰ प्र॰ सू॰ रा॰ 4, अंशु 40, अंक 20, पृ॰ 2395

277- वही, अंशु 61, अंक 15, पृ॰ 3304

278 वही, रा॰ 4, अंशु 56, अंक 21, पृ॰ 2456 तथा अंशु 57, पृ॰ 2465-68

279- वही, अंशु 42-43, पृ॰ 2402-2407

280- वही, अंक 31-32, पृ॰ 2396 तथा अंशु 41, अंक 30, पृ॰ 2400

281- वही, अंशु 43, अंक 33, पृ॰ 2409 तथा
अंशु 44, अंक 6, पृ॰ 2411

282- वही, रा 5, अंशु 32, पृ॰ 2633

दी तो वह उनके बादशाहों वाले ठाठबाठ की कहानियों को सुन अत्यन्त क्रोधित हुआ और जब उसे यह पता चला कि वह तो अपने पिता के बलिदान का बदला लेने के लिए कटिबध्द हो रहा है तो उसके इन कृत्यों को उसने हकूमत के लिए खतरा समझा। अतः उसने संवत् 1669 में बज़ीर खा को भेज कर उसे दिल्ली[283] बुलाया ।

मोहसिन फानी ने लिखा है कि जहांगीर ने गुरु जी की उक्त गतिविधियों को सुन कर उन्होंने अपने पिता के जुर्माने की शेष राशि देने के लिए देहली बुलाया[284] । देहली पहुंच कर गुरु जी 'मंजनू के टिल्ले' के पास ठहरे ।'गुरु प्रताप सूरज' के अनुसार चन्दू ने पुनः श्री हरिगोबिन्द से शादी के लिए निमन्त्रण भेजा जिसे उन्होंने अस्वीकार[285] कर दिया । इसी दौरान जहांगीर के बीमार होने पर चन्दू ने पुनः बदला लेने के लिए नया षडयन्त्र रचा और गुरु जी के विरुध्द चुगली की[286] तथा बादशाह से कहा कि नजूमी ने बताया[287] है कि यदि आप के स्वास्थ्य के लिए कोई धर्मात्मा व्यक्ति ग्वालियर के किल्ले में चालीस दिन तक माला फेरे तो आप पर आई साइसती टल सकती है।यहा मित्रता के आधार पर कष्ट निवारणार्थ 40 दिन माला जपने का आग्रह है ।
इस षड्यन्त्र[289] की सफलता हेतु चन्दू ने अपने अन्य उमरावों को यह बता दिया कि वे इस कार्य के लिए श्री हरिगोबिन्द का नाम लेकर उस पर उपकार करें क्योंकि वह गुरु जी के व्यक्तित्व और जहांगीर के साथ उनके सम्बन्धों की घनिष्ठता को सहन नहीं कर

283- गु॰प्र॰सू॰रा 1, अंशु 49, अंक पृ॰ 2432

284- **Mohsin Fani: Dabistan** p.234

285- गुरु प्र॰सू॰रा 4, अंशु 46, पृ॰ 2419

286- वही , रा 4, अंशु 48 पृ॰ 2428

287- वही , रा 4 अंशु 56, पृ॰ 2469

288- वही , अंशु 58, अंक 48-50, पृ॰ 2472

289- कृ॰ सिंह नारंग तथा गुप्ता : पंजाब का इतिहास, फुट नोट पृ॰ 109

सकता था । अतः उन्हें ग्वालियर भेज कर ही उसने सांस ली ।[290]

ऐतिहासिक जीवन समीक्षा : इतिहास के संदर्भ में चन्दू का यह षड्यन्त्र विशेष महत्व नहीं रखता है क्योंकि जहांगीर ने तो गुरु जी से जुर्माने की शेष राशि की वसूली के लिए देहली बुलाया था[291] और इस राशि के न दे सकने के कारण मोहसिन फानी के विचारानुसार उन्हें 12 वर्ष की कैद की सज़ा देने के लिए ग्वालियर भेजा जाना था । भाई सन्तोख सिंह ने अपने गुरु के धार्मिक एवं पौराणिक महत्व को बढ़ाने के लिए हो सकता है उक्त चालीस दिन वाली बात की कल्पना की हो ।और जब जहांगीर ने 40 दिन के पश्चात् भी गुरु जी की कोई सुधि न ली तो उनके सेवकों ने उसे विभिन्न रूप धारण कर रात को डराना शुरु कर दिया ।इससे भयभीत होकर उसने धन के लोभ में होकर उस ने वजीरखां को भेज कर गुरु जी को देहली लाने की व्यवस्था की ।[292] 'महिमा प्रकाश' में इस मुलाकात की बात को और ही रूप में प्रस्तुत किया गया है। सरूपदास भल्ला का विचार है कि गुरु जी को जब अपने पिता के बलिदान देने और उन्हें विष देकर मारने की घटना का उन्हें पता चला तो वह स्वयं न्याय के जहांगीर के दरबार में उपस्थित हुए और कहा कि आपने चुगलखोर का कहना मान कर न्याय को त्याग दिया । तब जहांगीर ने अपनी बिअदली को सोच कर चन्दू को गुरु जी के हवाले कर दिया ताकि उससे उचित बदला लेकर हमारे दामन को पवित्र कर[293] सकी ।

उक्त इतिहास ग्रंथों में विभिन्न प्रकार के विचार मिलते हैं और फानी का विचार तो और भी अधिक अनुपयुक्त प्रतीत होता है । जिससे परवर्ती इतिहासकार भी सहमत नहीं हैं।सुप्रसिध्द सिक्ख इतिहासकार डॉ॰ गंडा सिंह और तेजा सिंह का विचार है कि गुरु जी ग्वालियर के किल्ले में थोड़े समय के लिए ही गए होगें क्योंकि उनके बारह वर्ष वहां रहना और फिर उन वर्षों के दौरान उनकी सन्तानें कैसे हो सकती थी ।

290- गु॰प्र॰सू॰रा 4,अंशु 59, पृ॰ 2473

291- **The Dabistan** , 234

292- गु॰प्र॰सू॰रा 4,अंशु 60 अंक 7-11 ,पृ॰ 2477-2494

293- महिमा प्रकाश : साखी 2, पृ॰ 423-24

गुरु जी ने किसी भी स्थिति में दो वर्ष से अधिक समय ग्वालियर में व्यतीत नहीं किया[294]। डा॰ हरिराम गुप्ता का विचार मोहसिन फानी के विचार को पुष्टि करता है और उक्त विचार का खंडन इस तर्क से करता है कि संभवतः गुरु जी वहां पर अपनी पत्नियों सहित ही कारावास भोगते रहे हों। गुरु जी को 1609 में अनिर्धारित समय के लिए कैदी बनाया गया और 1620 को समाप्ति पर रिहा किया गया[295]मिआं मीर की सिफारिश पर।

परन्तु 'गुरु प्रताप सूरज' के रचयिता का विचार चाहे गुरु जी के धार्मिक महत्व को स्थापित करने के लिए ही कल्पित किया गया हो तथापि उनकी जहांगीर साथ मित्रता और चन्दू का उनके हवाले[296] करना आदि तथ्य सिक्ख परंपरा के अनुसार मान्य है। यहां पर मीआ मीर[297] के विषय में भी उल्लेख मिलता है जिसने गुरु जी पर हुए अत्याचारों के विषयमें जहांगीर को बताया। यहां पर यह भी संकेत मिलता है कि वहां पर कैद किए गए अन्य 52 राजाओं को भी उन्होंने मुक्त कराया था[298]। महिमा प्रकाश में इस तथ्य का उल्लेख नहीं है।

चन्दू को गुरु जी के हवाले के पूर्व एक और 108 मनको वाली माला(तसबी) की खोजचन्दू के घर से और उसके बहानों का भी 'गुरु प्रताप सूरज' में उल्लेख मिलता है[299]। जब भाई जेठे को माला के खोजने के लिए भेजा जाता है तब माला के मिलने पर बादशाह को चन्दू के वास्तविक दोषी होने का प्रमाण मिलने पर वह चन्दू को गुरु जी के हवाले कर[300] देता है। जिसे लेकर गुरु जी वापिस अमृतसर आ जाते

294- A short History of the Sikhs p.40 f.n.1

295- History of Sikh Gurus p.113

296- महिमा प्रकाश, साखी 2अंक 13, पृ॰ 424

297- (क) गु॰ प्र॰ सू॰ रा॰ 4, अंशु 64 अंक 16 पृ॰ 2495

(ख) महिमा प्रकाश साखी 7, पृ॰ 453

298- गु॰ प्र॰ सू रा॰ 4, अंशु 66, अंक 4, पृ॰ 2501

299- वही, रा 5, अंशु 2, पृ 2517

300- वही रा॰ 5, अंशु 3, पृ॰ 2524

है[301] और तत्पश्चात् चन्दू को लाहौर के बाज़ारों में संगलों से बान्ध कर तथा मुंहकाला करके घुमाया जाता है। इस तरह जब कुछ दिन उसे लाहौर के बाजारों में घुमाया जा जा रहा था तो एक दिन उसी भड़भूजे के (जिससे वह गर्म रेत गुरु जी के शरीर पर डलवाया करता था) उधर से गुजरने पर उसने उसके सिर में ऐसा कड़छा मारा कि वहीं उसके प्राण पखेरु[302] उड़ गए। तत्पश्चात् उसके पुत्र ने पृथीचन्द के पुत्र मेहरबान से मित्रता स्थापित कर गुरु जी के विरुध्द अनेक योजनाएं बनाईं[303]।

सन् 1626 में जहांगीर जब अधिक बीमार हुआ तो वह जलवायु परिवर्तन हेतु काश्मीर[304] गया। वहां पर उसकी स्थिति और अधिक बिगड़ गई। वहां से वापिस आते हुए 29 अकतूबर 1627 को वह राजौरी में मृत्यु को प्राप्त हुआ। 'गुरु प्रताप सूरज' में उसकी मृत्यु से सम्बन्धित केवल इतना ही संकेत मिलता है कि 'कुपा रुड़ गया'[305] अर्थात् जहांगीर मृत्यु को प्राप्त हुआ और शाहजहां ने सिंहासन संभाल लिया।[306] शाहजहां उस समय दक्षिण में था, वह आगरा पहुंचा और 4 फरवरी सन् 1628 सिंहासनारूढ़ हुआ। यह रूढ़िवादी विचारधारा का था। संवत् 1632 में जब यह काश्मीर से वापिस आ रहा था तो उसे यह विदित हुआ कि कई हिन्दुओं ने मुसलमान स्त्रियों को अपनी पत्नियों के रूप में स्वीकार कर उन्हें अपने धर्म में मिला लिया है। वह इस्लाम धर्म की इस हानि को सहन न कर सका और उसने ऐसे विवाहों पर प्रतिबन्ध लगा दिए। उसके कट्टर शरई सलाहकारों ने सिक्ख धर्म की उन्नति के विषय

301- गु॰ प्र॰ सू॰ अंशु 8, रा॰ 5, अंक 36-37, पृ॰ 2542

302- वही रा 5, अंशु 11, पृ॰ 2553-56

303- वही, रा 5: अंशु 12, पृ॰ 2556

304- वही पृ॰ 2556

305- वही रा 5; अंशु 15 अंक 10, पृ॰ 2567-68

306- R.C.Majumdar & others. An Advanced History of India p.462-463

में भी सूचित किया ।

लाहौर के काजी रुस्तम खां की 17 वर्षीय लड़की कौलां के विषय में भी 'गुरु प्रताप सूरज' में विस्तृत चर्चा मिलती है।[307] वह मोआं मीर की शिष्या थी । वह गृह त्याग कर गुरु जी के सिक्ख धर्म को ग्रहण कर लेती है और गुरु जी उसके नाम पर 'कौल सर[308] नामक तालाब बनवा कर उसे सदैव के लिए अमर कर देते हैं । उसके पिता काजी से गुरु जी काबल से भेजे गए घोड़े[309] को भी खरीदते हैं ।

कौला के विषय में महिमा प्रकाश में कोई उल्लेख नहीं है । न ही 'वारतक महिमा प्रकाश' में ही कोई संकेत हुआ है । अन्य इतिहास-कारों के उल्लेखों के लिए भाई वीर सिंह जी की शोध अवलोकनीय है ।[310]

ऐसी घटनाओं को बादशाह को सूचना मिलती है तो उसे इस्लाम धर्म खतरे में पड़ा दिखाई देने लगता है ।

<u>गुरु जी के मुग़लों के साथ युध्द</u> : 'गुरु प्रताप सूरज ' में गुरु जी के मुग़लों के सैनिकों से हुए अनेक युध्दों का भी सविस्तार से वर्णन मिलता है। अमृतसर का युध्द, हरिगोबिन्द पुर का युध्द, महिराज का युध्द, महिराझ (मराझ) का युध्द, करतारपुर का युध्द आदि विभिन्न युध्दों में गुरु जी के प्राप्त हुए विजय का उल्लेख मिलता है । गुरु जी ने ये युध्द अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए किए थे । उनके लिए ये राजनैतिक युध्द न होकर धर्म युध्द थे । इन से मुगलों के सैनिकों की निर्बलता व्यक्त होती है ।

<u>गुरु जी का पारिवारिक जीवन</u> : गुरु जी के पारिवारिक जीवन पर 'गुरु प्रताप सूरज' में विशदता से प्रकाश डाला गया है । गुरु जी के तीनों विवाहों और उन से हुई सन्तानों के जीवन इतिहास भी इस ग्रंथ में संकलित है ।पहले विवाह से (जो डल्ले निवासी श्री नारायणदास जी की सपुत्री दमोदरी के साथ संवत् 1661

307- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 5, अंशु 18, पृ॰ 2597

308- वही, रा 5 अंशु 58, पृ॰ 2739

309- वही , रा 5 , अंशु 15 , पृ॰ 2567

310- वही रा॰ 6, अंशु 24, पृ॰ 2885

में हुआ)गुरु जी के दो पुत्र – बाबा गुरदिता (1670) और श्री अणिराय (1675) तथा एक पुत्री बीबी वीरो (सं 1672) हुई ।द्वितीय विवाह बकाला निवासी श्री हरि चन्द की सपुत्री नानकी से हुआ जिस से गुरु जी के दो पुत्र बाबा अटल राय (संवत् 1676) और श्री तेगबहादुर हुए ।तृतीय विवाह मंडिआली निवासी दयाराम मरवाहे क्षत्रिय की कन्या महादेवी (मरवाही) से हुआ जिस से एक पुत्र सूरज मल (संवत् 1674) हुए । इन विवाहों के विवरण से गुरु जी के सम्बन्ध में प्रचलित सात आठ विवाहों सम्बन्धी भ्रमों का निराकरण भी होता है[311] ।

श्री गुरु हरिगोबिन्द जी का सिक्ख धर्म के प्रचार में योगदान :

गुरु जी ने अपनी नई नीति से जहां सन्तों को सिपाहियों का वेश प्रदान किया वहां सिक्ख धर्म के प्रचार में भी कुछ कम योगदान नहीं दिया है। इन के कार्यकाल के समय अनेक मुसलमानों ने भी सिक्ख धर्म को अपनाया । इन्होंने ही गुरु नानक के पश्चात् सिक्ख धर्म के प्रचार के लिए अनेक स्थानों की यात्राएं की और सिक्ख धर्म का प्रचार किया। इन की प्रचार हेतु की गई धार्मिक यात्राओं में उत्तर प्रदेश (नानक मता-पीलीभीत)[312],श्रीनगर[313] आदि भी सम्मिलित हैं । विशेष कर नानक मते पहुंच कर आपने अपने धर्म स्थान से योगियों को हटाकर पुनः सिक्ख धर्म का केन्द्र स्थापित किया । वहां पर साधु अलमस्त को नियुक्त किया । इसके पश्चात् गुरु जी नालागढ़, दून, और पहाड़ी इलाकों की यात्रा करते हुए मालवे का दौरा करने भी गए ।यहां आप अपने सांढू भाई साईदास के पास काफी समय ठहर कर प्रचार करते रहे । यहीं पर भाई रूपा और साधु को दर्शन देकर

311- गु॰ प्र॰ सू॰ रा॰ 5, अंशु 27, अंक 46 का भाई वीरसिंह का फुटनोट, पृ॰ 2616-18

312- वही , रा 5, अंशु 33, पृ॰ 2637

313- वही , रा 5 , अंशु 48 , पृ॰ 2700

शीतल जल का पान किया था ।कई मुसलमान आपके सिक्ख बन गए थे[314] ।जीवन के अन्तिम भाग के दस वर्षों में आपने धर्म प्रचार सम्बन्धी कार्य किए ।

सार्वजनिक निर्माण कार्य : आप अपने कार्यकाल में अनेक स्थानों के निर्माण कार्य के साथ साथ अनेक नगरों को भी बसाया । आप ने लोहगढ़ (अमृतसर), श्री अकाल तख्त साहिब (अमृतसर) , देहरा साहिब (गुरु अर्जुन देव जी के शहीदी स्थान पर उनकी स्मृति में)संवत् 1669 में स्थापित किया, कीरतपुर (जिला होशियारपुर, तहसील ऊना) सतलुज के तट पर इस नगर को संवत् 1683 में बसाया, महिराज (मराझ) संवत् 1684 (सन 1627) में बसाया ,कौलसर[315] (कौला की स्मृति में) संवत् 1684 में तैयार कराया, श्री विवेकसर[316] (अमृतसर में श्री रामसर के समीप) संवत् 1685 में तैयार कराया, श्री हरिगोविन्दपुर[317] (इसे श्री गुरु अर्जुन देव ने संवत् 1654 के लगभग बसाया था) गुरु जी ने संवत् 1687 में इसे नई शान प्रदान की ।यही स्थान आगे चल कर स्मारक तीर्थ बन गए । इन कार्यों के द्वारा भी गुरु जी ने सिक्ख धर्म के प्रसार में अद्भुत योगदान दिया ।

314- " He (Guru Hargobind) made many converts to Sikhism from the Hindus and the Muslims. In Kashmir particularly he converted thousand who had gone over to Islam "
--Teja Singh and Ganda Singh: <u>A Short History of of Sikhs.</u> p.41

315- गु·प्र·सू·रा 5 अंशु 58, पृ· 2739

316- वही , रा 5 , अंशु 66, पृ· 2772

317- वही , रा 6, अंशु 47 पृ· 2983

गुरु गद्दी के लिए चुनाव : जब गुरु जी ने अपना अन्तिम समय निकट जाना तो उन्होंने गुरु गद्दी के उतरदायित्व को संभालने के लिए काफी विचार किया। उनके पंच पुत्र थे – जिनके बारे मेंऊपर संकेत किया जा चुका है। इन पांचों में से तीन – श्री गुरदिता, बाबा अटल राय और अणीराय – गुरु जी के जीवन काल में ही स्वर्ग सिधार गए थे । श्री सूरज मल का झुकाव अधिकतर सांसारिक पदार्थों की ओर था तो श्री तेगबहादुर जी अधिक त्यागी वृति वाले थे ।अतः गुरु जी ने बाबा गुरदिता जी के दो पुत्रों (धीरमल और हरिराय जी) में से श्री हरिराय जी को गुर गद्दी के लिए उपयुक्त जाना । क्योंकि धीरमल गुरु घर का विरोधी था । और मुगल शासकों से मिलकर षडयन्त्र रचता रहता था । इसी लिए हरिराय को ही चुना ।

देहावसान : गुरु जी श्री हरिराय को गुरु गद्दी पर आसीन कर स्वयं चेत शुध्दि पंचमी (चैत 6) संवत् 1701 को (सन्न् 3 मार्च 1644) रविवार के दिन ज्योति जोत समाये । गुरु का अन्तिम संस्कार कीरतपुर में सतलुज के तट पर किया गया।[318]

श्री गुरु हरि गोबिन्द सिंह जी का व्यक्तित्व और महत्व : गुरु जी का व्यक्तित्व जितना अधिक आकर्षक था उनके कार्य उससे भी अधिक महत्व शाली थे । पीरी और मीरी का अद्भुत संयोग जहां उनके व्यक्तित्व में देखा जा सकता है वहां उनके सिक्ख धर्म को सैनिक ढंग से व्यवस्थित करने और – पूर्ववर्ती गुरु साहिबान का भान्ति शान्तिपूर्ण ढंगो से सिक्खा धर्म के प्रचार आदि के कार्यो से युध्दों में सफलताओं से, विश्वास और बलिदान आदि के उदाहरणों से सिक्ख धर्म का प्रसार भी महान कहा जा सकता है ।उन्होंने अनेक मुसलमानों को अपनामुरीद बनाया । यदि गुरु जी सिक्खा जाति को शस्त्र सज्जित न करते तो यह धर्म भी मिट जाता । यह जाति भी मुग़लों के अत्याचारों से अपने अस्तित्व की रक्षा न कर सकती ।अतः गुरु जी का सिक्ख इतिहास में गौरवशाली स्थान है । गुरु जी

318- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 8, अंशु 58-59, पृ॰ 3522-29

के विषय में भाई सन्तोख सिंह लिखते हैं :-

बोध महि बिदेह, जुध्द क्रुध्द मध्द रामचंद
सिक्ख तारिबे को भव सिंधु ते जहाज हैं ।
करुणा निधान ते बिशनु परमान मन,
कीरति प्रकाशबे को साँई दिजराज हैं ।
प्रगट प्रताप में प्रचंड मारतंड बड़े,
शोभा सभि लैबे कउ सुहाई सुरराज हैं ।
धीरज धरन को धरनि रुप बीर बर,
श्री हरिगुबिंद सुखकंद ह्वै बिराज हैं ।[319]

गुरु हरिराय जी (आरंभिक परिचय) (संवत् 1686-1718, सन् 1630-1661)

आप का जन्म मार्गशीष शुध्दि 13 संवत् 1686 को माता निहालकौर (अनन्ती या नती) के गर्भ से हुआ था ।[320] आप बड़े कोमल हृदय के व्यक्ति थे । आप शिकार पर भी जाते थे परन्तु जीवों की हत्या न करके केवल उन्हें पकड़ा ही करते थे । बाबा बुड्ढा जी के सपुत्र भाई भाना जी ने इन्हें 14 वर्ष की आयु में गुरुत्व का तिलक लगाया था ।[321] इस पर इनके बड़े भाई धीरमल ने दस्तार बन्दी के अवसर पर विरोध व्यक्त किया और वह गुरु जी के शत्रु बन गए।[322] गुरु जी ने अपने पितामह की तरह युध्द सम्बन्धी नीति को त्याग कर केवल सिक्खधर्म के प्रचार के लिए ही विशेष प्रयत्न किए । 'गुरु प्रताप सूरज' के अनुसार जब शहाजहां को अपने पुत्र दारा शिकोह को बीमारी के समय किसी विशेष औषधि

319- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 6, अंशु 1, अंक 8, पृ॰ 2782
320- वही, रा॰ 8, अंशु 45, पृ॰ 3477
321- वही, रा॰ 8, अंशु 53, अंक 16-17 पृ॰ 3506
322- (क) वही, रा 8, अंशु 41, अंक 11, पृ॰ 3465
(ख) वही, रा 8, अंशु 51, अंक 11, पृ॰ 3499

को आवश्यकता पड़ी तो गुरु जो ने वह औषधि दे कर उसकी सहायता की[323] । इसके अतिरिक्त इस ग्रंथ में शहाजहां की मृत्यु पर राजसिंहासन को प्राप्ति के लिए उस के पुत्रों में हुए संघर्ष की कहानी भी वर्णित है। जिससे तत्कालीन राजनैतिक स्थिति का परिचय मिलता है[324] । इसमें दारा शिकोह और औरंगजेब को परस्पर ईर्ष्या पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला गया है[325]। दारा शिकोह मीआं मीर का शिष्य था उसी से प्रेरित हो कर गुरु जी की शरण में आया था । गुरु जी उसे आशीर्वाद देते है और कहते है कि तेरे जैसे व्यक्ति को बड़ी बादशाही मिलेगी[326]। औरंगजेब को जब उसके उमरावों ने दारा शिकोह की गुरु जी की सहायता की सूचना दी[327] तो वह गुरु जी का शत्रु बन बैठा और राजसिंहासन के प्राप्त होते ही उसने गुरु जी को देहली अपने दरबार में बुलाया[328] तब गुरु जी ने उसे अपनी नीति से परिचित कराते हुए अपने पुत्र रामराय को सर्वशक्ति सम्पन्न बना कर देहली भेजा।

<u>रामराय और औरंगजेब</u> : औरंगजेब करामात में विशेष यकीन रखता था । जब रामराय उसके दरबार में उपस्थित हुए तो उसने रामराय की शक्ति परीक्षा हेतु अनेक करामाते देखी[329] । 'महिम्मा प्रकाश' में गुरु जी का रामराय के लिए

323- (क) गु॰ प्र॰ सू॰ रा 9, अंशु 2, अंक 6, पृ॰ 3547

(ख) वही , अंक 22-23, पृ॰ 3549

(ग) **Macauliffe: <u>The Sikh Religion V</u>ol.IV p.294**

324- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 9, अंशु 9 पृ॰ 3577

325- वही , रा 9, अंशु 12, पृ॰ 3586

326- वही , रा 9, अंशु 14 अंक 25, पृ॰ 3596

327- गुरु जी ने कैसी सहायता की थी ? इस संबंध में देखिए: वही, अंशु 14.

328- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 9, अंशु 34, अंक 2, पृ॰ 3670

329- 'महिमा प्रकाश' , साखी 183, अंक 4-5

यह उपदेश संकलित है कि वहां जाकर औरंगज़ेब जो कुछ पूछे निभर्य होकर उत्तर दे और करामात न दिखाये परन्तु 'गुरु प्रताप सूरज' में तो उसको अनेक करमातों का उल्लेख हुआ[330] है । करामातों को देखने के दौरान औरंगजेब और रामराय में विशेष मित्रता स्थापित होगई । एक दिन जब औरंगज़ेब ने नानक वाणी के पद की व्याख्या उन से पूछी तो वे उसके भय से भयभीत होकर तथा अपनी मित्रता की दृढ़ता के लिए उन्होंने 'मुसलमान' शब्द के स्थान पर 'बेईमान' शब्द का प्रयोग कर इस्लाम धर्म के अनुकूल अर्थ किया ।:-

'मिटी मुसलमान की पेड़ै पई कुम्हिआर ।
घड़ि भांडे इटा कीआ जलदी करे पुकार ।।
जलि जलि रोवै बपुड़ी झड़ि झड़ि पवहि अंगिआर।
नानक जिनि करतै कारणु कीआ सो जाणै करतारु ।।[331]

इस पद के अर्थ के स्थान पर अनर्थ करते हुए उसने बड़ी चतुराई से अपने अस्तित्व की रक्षा की । परन्तु जब गुरु हरिराय जी को विदित हुआ तो उन्होंने उसे गुरु गद्दी के अधिकार से वंचित कर अपने छोटे पुत्र श्री हरिकृष्ण को गुरु गद्दी देने का निश्चय किया । उन्होंने इस पुत्र को नालायक समझ कर त्यागने का भी निश्चय किया ।[332]

जब रामराय वापिस लाहौर पहुंचा[333] और उसे गुरु जी के उक्त निर्णय से धीरमल ने अवगत कराया गया तो उसके क्रोध की कोई सीमा न रही । उसने अपने अधिकार के लिए गुरु जी के निर्णय का विरोध ही नहीं किया अपितु अपने छोटे भाई का कट्टर शत्रु बन गया । गुरु जी ने उसे समझाने का प्रयत्न भी किया

330- (क) गु॰ प्र॰ सू॰ रा 9, अंशु 38-56, पृ॰ 3686-3751, (ख) पृ॰ 155

331- वही , पृ॰ 3752 तथा आसा की वार : एक सांस्कृतिक अध्ययन , पृ॰ 58

332- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 9, अंशु 58 पृ॰ 3755

333- वही रा 9, अंशु 60, पृ॰ 3763

और कहाकि गुरु गद्दो तो सेवक की वस्तु होती है।[334]

देहावसान : आप ने अपने देहावसान से पूर्व श्री हरिकृष्ण को गुरु गद्दो[335] पर गुरु घर की मयार्दानुसार आसोन किया और संगत को उपदेश दिया कि वह रामराय के चक्कर में न पडें आप कार्तिक वदो 9 (5कार्तिक) सवत् 1718 कोरतपुर में ज्योति जोत समाये।

व्यक्तित्व और चरित्र : 'गुरु प्रताप सूरज ' के अनुसार आप बड़े विनम्र शान्ति प्रिय और अहिंसाप्रिय व्यक्ति थे । आप के विषय में भाई सन्तोख सिंह एक स्थान पर लिखते :-

हरी राइ सभि सुरनि को सो सरूप हरोराइ ।
जग गुरता इहु अधिकता बंदौं पंकज पाइ ।। 9 ।।[336]

श्री गुरु हरिकृष्ण जो (आरंभिक परिचय) संवत् 1713-1721, सन् 1656-1664)

आप का जन्म सावन वदो 20 संवत् 1713 (7 जुलाई सन 1656) को कोरतपुर हुआ था ।आप गुरु हरिराय जो के छोटे साहिबज़ादे थे । आप की माता का नाम श्रीमती कृष्ण कौर था ।

गुरु पद प्राप्ति : गुरु हरिराय जो ने पूर्वोक्त कारणों के कारण रामराय को गुरु गद्दी से वंचित कर छोटे सपुत्र श्री हरिकृष्ण जो को उस पर आसीन किया । कार्तिक वदो 10 (6कार्तिक) संवत् 1718 (7 अक्तूबर सन 1661) को श्री हरिकृष्ण जी को गुरु गद्दो पर बैठाया गया । उस समय आप को आयु केवल सवा पांच वर्ष[337] की थी।

रामराय की विरोधता : जब गुरु हरिकृष्ण जो को गुरु गद्दो पर बैठा कर 13 वें दिन दस्तार बन्धो को रस्म हुई तो रामराय ने अपने अधिकार को व्यक्त किया।उसने

334- गु · प्र · सू अंशु 20, रा · 9, अंक 10, पृ · 3841

335- वही रा · 10 अंशु 27, पृ · 3866

336- वही , रा · 9, अंशु 1अअंक 9, पृ · 3540

337-वहो रा 10, अंशु 28, अंक 1-2, पृ · 3870-71

क्रोध में भर यह भी कहा कि मुझे पातशाह सलामत के पास जा लेने दो फिर मैं इसे (अपने छोटे भाई) को बताऊंगा। कैसे किसी के अधिकार को छीन कर गुरु गद्दी पर बैठा जाता है। इसके साथ ही उसने अपने मसन्दों द्वारा सब संगत को पत्र लिख दिए कि वे मुझे ही सारी भेंट आदि भेजें और मुझे ही गुरु माने। संगत भी उसके औरंगजेब के साथ संबन्धों को जानती थी। अतः उसे भी भेंट भेजने लगी। और गुरु हरि कृष्ण जी को भी[338]।

<u>रामराय को औरंगजेब के पास शिकायत</u>[339]: रामराय अपेने पैतृक अधिकार के मुकद्दमे के लिए औरंगजेब के पास पहुंचा। उसने रामराय से सहानुभूति व्यक्त की और उसे देहरादून की घाटी में जागीर भी प्रदान की। रामरायके कहने में आकर जब औरंगजेब ने श्री हरिकृष्ण जी को दिल्ली बुलाया तो उन्होंने किसी भी बादशाह से मिलने के लिए इन्कार कर दिया क्योंकि उन्हें भी श्री गुरु हरिराय जी ने ऐसा आदेश दिया हुआ था। परन्तु राजा जयसिंह ने अपनी ओर - से बड़ी नम्रता के साथ गुरु जी को अपने प्रधान के हाथ पत्र भेजा[340]। उस अनुरोध को मानकर गुरु जी दिल्ली पहुंचे और राजा[341] जयसिंह के पास ठहरे। पातशाह ने भी गुरु जी को भेंट भेजी। पातशाह के उमरावाओं ने वापिस आकर गुरु जी की महिमा का वर्णन किया। उसे सुनकर और अधिक रामराय क्रोध से जल उठा। उसने गुरु जी को शाप दिया कि वे कुछ ही दिनों में शीतला के निकलने पर मृत्यु को प्राप्त[342] हों।

338- (क) गु॰ प्र॰ सू॰ रा 10, अंशु 29, अंक 18-19 पृ॰ 3878

(ख) वही अंशु 30, अंक 1, पृ॰ 3829

339- वही, अंशु 32, अंक 1-2, पृ॰ 3886

340- (क) वही, रा 10, अंशु 32, अंक 25, पृ॰ 3888

(ख) वही अंशु 33, पृ॰ 3890

341- वही, अंशु 39-40, पृ॰ 3911-17

342- वही, अंशु 41, अंक 25-27, पृ॰ 3919

जब राजा जयसिंह जी ने गुरु जी को उक्त शाप बताया तो गुरु जी ने भी रामराय को शाप दिया कि वह निस्सन्तान रहते हुए अन्त में जीवित ही जलकर मृत्यु[343] को प्राप्त करें । दूसरे दिन रामराय को भी उक्त शाप का पता चला तो उसके क्रोध की कोई सीमा न रही ।

राजा जयसिंह की रानी ने गुरु जी की परीक्षा[344] भी ली । गुरु हरिकृष्ण ने जब रानी को अनेक स्त्रियों में से बिना किसी संकोच के पहचान लिया तो राजा भी उनके बाल व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित हुए ।

गुरु जी को देहली रहते ही ज्वर चढ़ा और दूसरे दिन ही शीतला निकल आई । तब गुरु जी ने यमुना के तट पर तम्बू लगकर अपना डेरा[345] डाल दिया ।

<u>देहावसान</u> : यहां रहते गुरु जी ने दो दिन बहुत कष्ट सहन किया। गुरु जी ने अपने सेवक गुरबख्श सिंह को बताया कि अब हमारा अन्तिम समय समीप आ गया है। अतः आप 5 पैसे और नरेल ले कर आये । वह थाल[346] में रख कर जब इन्हें ले आया तब गुरु जी ने उसे नमस्कार कर इतना ही कहा कि ''गुरु बाबा बकाले[347]''। जब गुरबख्श सिंह ने उनका नाम पूछा तो उन्होंने कहा कि वे स्वयं ही प्रकट हो जायेगे ।संगत स्वयं उन्हें खोज लेगी ।

इस तरह कह कर गुरु जी कुशासन पर लेट गए और देह त्याग दी। 'गुरु प्रताप सूरज' के अनुसार गुरु जी दो वर्ष पांच महीने और 19 दिनगुरु गद्दी पर आसीन रहे।चेतशुध्दि चौदस[348] को सं 1721 को रात्रि ज्योति जोत समाये।राजा जय सिंह ने गुरु जी की माता को धैर्य दिया और अपने पास रहने का अनुरोध किया पर माता जी शीघ्र वापिस कीरतपुर आ गई।

343- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 10, अंशु 42, अंक 27, पृ॰ 3923
344- वही , अंशु 44, पृ॰ 3928
345- वही , अंशु 48, पृ॰ 3941
346- वही , रा 10, अंशु 52, अंक 28-29 , पृ॰ 3959
347-(क) वही, अंशु 52 अंक 36, पृ 3960

(ख) **<u>Evolution of the Khalsa</u>** **p.54**

348(क) गु॰ प्र॰ सू॰ अंशु 51, अंक 1-2, पृ॰ 3953

(ख) **<u>Evolution of the Khalsa</u>** **p.52**

'गुरु लाधो रे'- भाई मखन सिंह

श्री गुरु तेगबहादुर जी (आरम्भिक जीवन परिचय) (सवत् 1678-1732, सन् 1621-1675)

गुरु तेगबहादुर जी का जन्म वैशाख वदी 5 (5 वैसाख) संवत् 1678 (अप्रैल सन् 1621) को श्री गुरु हरिगोबिन्द जी के घर माता नानकी जी के गर्भ से अमृतसर 'गुरु के महिल' में हुआ था। आप गुरु जी के सब से छोटे सपुत्र थे। आप आरंभ से ही त्याग की मूर्ति विरक्त, समाधिलीन सन्त-स्वभाव और शूरवीर थे। आपने शास्त्र विद्या भी सीखी थी। गुरु जी के साथ युध्दों में भी सम्मिलित हुए थे। करतारपुर के युध्द में आप ने विशेष शूरवीरता दिखाई थी।

आप का विवाह करतारपुर (जालन्धर) के निवासी श्री लालचन्द क्षत्रिय की सपुत्री गुजरी से 15 आश्विन संवत् 1689 को हुआ। इन के गर्भ से संवत् 1723 में श्री गोबिन्द सिंह जी पैदा हुए थे। आप संवत् 1701 में गुरु हरिगोबिन्द जी के देहावसान के पश्चात् अपनी माता और पत्नी सहित अपने ननिहाल के ग्राम बकाले (जिला अमृतसर) में आकर रहने लगे।

गुरु गद्दी की प्राप्ति : गुरु हरिकृष्ण के पूर्वोक्त अन्तिम वाक्य से यद्यपि संकेत आप की ओर किया गया था तथापि स्वार्थी व्यक्तियों ने इस वाक्य के रुचि अनुसार अर्थ निकालने आरंभ कर दिए और प्रत्येक ने अपने को सोढ़ी बाबा कहलाना शुरु कर दिया और बकाले आकर अपना डेरा लगा दिया। उस समय बकाले में सोढ़ियों की ''22 मंजीआं''[349] थी। बात यही तक न रही अपितु उन्होंने सिक्खों से भेंट और उपहार भी लेने आरंभ कर दिए। कुछ ने तो मसन्दों को भी इस हेतु नियुक्त कर दिया। ऐसी परिस्थितियों में वास्तविक गुरु की खोज निकालना साधारण श्रध्दालुओं के लिए कठिन हो गया। इस कठिनाई को गुरु जी के एक परम श्रध्दालु मखनशाह[350] ने सुलझाया। वह एक व्यापारी था। उसने एक बार अपने जहाज को नष्ट होने से बचाने के लिए गुरु जी का स्मरण किया था और गुरु जी ने उसकी सहायता कर उसका जहाज़ तट पर लगा दिया था। उस के माल के विकने से भी उसे लाभ हुआ और

349- गु॰ प्र॰ सू॰ रा॰ 11, अंशु 4, अंक 2, पृ॰ 3989

350- वही रा 11, अंशु 3, पृ॰ 3986

उसने गुरु जी के निमित सहायता के उललक्ष्य दसवन्ध निकालने का प्रण किया था । जब वह प्रण[351] के अनुसार 500 सोने की मोहरे लेकर बकाले पहुंचा तो इतनी अधिक संख्या मेंगुरुओं को देख कर आश्चर्य में डूब गया ।उस अरदास की कि हे 'सच्चे पातशाह । आप स्वयं ही अपनी धरोहर मांग कर मेरा उध्दार करें। उसने एक चाल सोची कि सभी गुरु गद्दी के इन उत्तराधिकारियों के सामने दो दो मोहरे रख कर इन की परीक्षा की जाये । जो वास्तविक गुरु होगा वह स्वयं शेष मोहरे भी मांग लेगा । अतः उसने धीरमल आदि सभी के आगे दो दो मोहरें रख कर परीक्षा ली परन्तु जब कोई भी उसे वास्तविक गुरु न मिला तो उसने ग्राम के लोगों से और पूछताछ की कि यहां कोई सोढी पातशाह और तो नहीं रहते । तब उसे पता चला कि एक और सोढी पातशाह भी यहां रहते हैं । जिनका नाम तेगबहादुर है।वे एकान्तमें अपनी भजन बन्दगी में लीन रहते हैं।मक्खन शाह अपने कुछ साथियों के साथ उनके घर पहुंचे और अपनी चाल के अनुसार उसने उनके आगे भी दो मोहरें रखी । तब गुरु जी ने उससे शेष 498 मोहरे मांगी और उसे अपने कन्धे पर अंकित जहाज के निकालने के चिन्ह भी दिखाये । इस पर मक्खन शाह को विश्वास हो गया कि वास्तविक गुरु यही है। उसने उनके चरणों में प्रणाम कर अपनी भेंट रख दी । उनके दर्शन से वह कृतार्थ होगया । तब उसने कोठे पर चढ़ कर ढिंढोरा पीटना आरंभ कर दिया कि '' गुरु लाधो रे '। उसके इन शब्दों को सुनकर संगत उनके दर्शनार्थ आई। दिल्ली से भी गुरु हरिकृष्ण जी द्वारा भेजे गए 'पांच पैसे और नरेल' को थाल में रख कर एक सिक्ख ले आया और उन्हें भेंट कर बाबा बुड्ढा जी के प्रपुत्र बाबा गुरदिता जी ने उन्हें गुरु पद का तिलक लगाया ।इस तरह से गुरु तेगबहादुर जी चैत शुध्दि 14(23 चैत) संवत् 1722(20 मार्च सन् 1665) को श्री गुरु नानक देव जी के पवित्र सिंहसान पर विराजमान हुए[352] ।इस तरह से वास्तविक गुरु के प्रकट होने पर झूठे गुरु अपनी अपनी मंजिया उठाकर अपने अपने घर चले

351- गु. प्र॰ सू॰ रा 11, अंशु 5, पृ॰ 3993

352- वही , रा॰ 11, अंशु 9, पृ॰ 4006

गए। गुरु गद्दी पर जब गुरु तेगबहादुर जी बैठे तब उनकी आयु 44 वर्ष की थी ।

धीरमल का विरोध : गुरु जी के गुरुगद्दी पर आसीन होते ही जब धीरमल को संगत से आने वाली भेंट से वंचित होने लगा तो उसने अपने मसन्दों की सहायता से मक्खन शाह द्वारा समर्पित भेंट को हड़पने के लिए कई योजनाएं बनाईं उसने गुरु जी उसने गुरु जी पर आक्रमण कर (गोली चलवाकर) उनकी सारी मूल्यवान सम्पति को[353] छीने का प्रयास किया परन्तु गुरु जी के उक्त श्रध्दालु ने उसकी समस्त योजनाओं पर पानी फेर दिया और लूटे हुए माल को ही वापिस न ले लिया[354] अपितु उसके आदिग्रंथ की बीड़ भी छीन ली । जिसे गुरु जी ने बाद में वापिस कर दिया था[355] ।

अमृतसर यात्रा[356] : जब गुरु जी मखनशाह सहित अमृतसर पहुंचे तो वहां के हरिमन्दिर के पुजारियों ने यह सोचकर द्वार बन्द कर दिए कि कहीं गुरु जी यहां पर भी अपना कब्जा न करले । ऐसी स्थिति देखकर गुरु जी बाहर से परिक्रमा कर वापिस बकाले आ गए ।

आनन्द पुर बसाना[357] : जब गुरु जी ने ऐसा ईर्ष्या और द्वेष का वातावरण देखा तो उन्होंने कीरतपुर के पास एकान्त स्थान पर नया नगर बसाना चाहा । इस हेतु उन्होंने कहिलूर के राजा से कुछ भूमि खरीद कर इस नगर को बसाया । यहां पर भी करतपुर के कुछ सोढ़ियों के विरोध को देखकर गुरु जी ने तीर्थ यात्रा[358] पर जाने का विचार किया । उधर धीरमल और रामराय केगुरु गद्दी को प्राप्ति के लिए

353- (क) गु० प्र० सू० रा० 11, अंशु 11-13, पृ० 4015 -4025

(ख) Trilochan Singh: <u>Guru Tegh Bahadur</u> p. 152

354- (क) गु० प्र० सू० रा० 11, अंशु 15-17, पृ० 4029-36

(ख) वही अंशु 19 पृ० 4044

355- वही, अंशु 26, पृ० 4069

356- वही, रा 11, अंशु 21-22, पृ० 4051-4058

357 (क) वही, रा 11, अंशु 27-28, पृ० 4074-80

(ख) Cunnningham$ A History of the Sikhs p. 57

358- गु० प्र० सू० अंशु 31-32, पृ० 4090-96

देहली में प्रयास जारी थे ।

तीर्थ यात्रा[359] : इस तीर्थयात्रा का मनोरथ यह था कि एक तो ईर्ष्यालु शान्त हो जायेंगे दूसरा धर्म का प्रचार हो सकेगा । अतः आप 15 मार्गशीष संवत् 1723 को परिवार के सदस्यों और कुछ सिक्ख सेवकों सहित तीर्थ यात्रा पर रवाना हुए । इस तीर्थ यात्रा में आप ने हिन्दुओं के अनेक तीर्थों की यात्रा की जैसे कुरूक्षेत्र , बनारस , पटना आदि ।

आनन्दपुर से चलकर मार्ग में आप अनेक स्थानों से होते हुए कुरूक्षेत्र पहुंचे। मार्ग में आने वाले ग्रामों के लोगों को आप उपदेश देते थे । कुरूक्षेत्र में सूर्य ग्रहण का मेला देख कर आप 'बनीबदर पुर'[360] गए। इसके पश्चात् आप यमुना पार कर पूर्व की ओर चल पड़े ।

पूर्व की यात्रा[361] : यमुना पार कर आप 'कड़ा मानकपुर', मथुरा, आगरा, प्रयागराज, काशी, ससराम, गया होते हुए आप पटना पहुंचे[362] । यहां आप ने अपने परिवार के रहने की व्यवस्था की और स्वयं बंगाल तथा आसाम की ओर चल पड़े । मंघेर, भागलपुर, राजमहिल, मालदा और बिहार देश के कई नगरों की यात्रा की और धर्म प्रचार किया । बिहार के पश्चात् आप बंगाल में गए और भ्रमण करते हुए ढाके जा पहुंचे । यहां रहते हुए गुरु जी को श्री गोबिन्द राय के जन्म समाचार मिला । वहां से आप ने पटने की संगत के नाम हुकमनामा जारी किया और उस की सेवा की प्रशंसा की । ढाके से चलकर आप सिलहट, चटगाऊ, सोन दीप, लशकर आदि का चक्कर लगाते हुए आसाम की ओर जा निकले ।

'गुरु प्रताप सूरज' में गुरु जी को पटने के स्थान पर राजा बिशन सिंह का मिलना लिखा गया है।[363] कि जिसे औरंगजेब ने आसाम आदि प्रदेश की विजय के लिए भेजा था ।

359- गु प्र० सू० रा०, 11, अंशु 33, पृ० 4097

360- वही , अंशु 45, पृ० 4143

361- वही , अंशु 46, पृ० 4148

362- वही , अंशु 58, पृ० 4203

363- वही , रा 12, अंशु 2-3, पृ० 4227, 4232

वह इस बात से भयभीत था कि वहां कामरुप प्रदेश में कामख्या देवी का मन्दिर है और वहां के लोग जन्त्र मन्त्र से लोगों को अपने वश में कर लेते हैं । अतः जब उसे पता चला कि गुरु तेगबहादुर यहां ठहरे हुए है तो उसने उन को शरण में जाकर सहायता मांगी । अधिकतर इतिहासकारों का मत है कि यहां 'गुरु प्रताप सूरज के रचयिता को गलती लगी है । उक्त राजा विशन सिंह नहीं था वह तो राजा रामसिंह था ।इस ऐतिहासिक त्रुटि पर भाई वीरसिंह ने पर्याप्त प्रकाश डाला है।[364]

गुरु जी ने उसकी जंत्र मंत्र से ही रक्षा न की प्रत्युत उन्होंने दोनों राजाओं में समझौता भी करा दिया । आसाम का राजा गुरु जी का श्रध्दालु बन गया और उस ने गुरु जी से पुत्र प्राप्ति के लिए आशीर्वाद की याचना की ।[365] गुरु जी ने कहा हम आप के लिए अरदास करेंगे । आशा है वह पूरी होगी । कुछ समय पश्चात् राजे के घर पुत्र का जन्म हुआ और उसका नाम रत्न राय रखा गया ।जब वह बारह वर्ष का हुआ तो वह माता सहित गुरु गोबिन्दसिंह जी के दर्शनार्थ आनन्दपुर पहुंचा था और अनुपम उपकार भेंट कर गुरु जी के प्रति अभी अपनी श्रध्दा एवं भक्ति व्यक्त की थी ।

गुरु <u>जी की वापिसी</u> : असम प्रदेश में लगभग दो वर्ष के रहने के पश्चात् गुरु जी पटना लौटे ।[366] तीन मास के लगभग रहने के पश्चात् वे परिवार को वहीं पटना छोड़ कर स्वयं पंजाब की ओर चल पड़े ।[367] रास्ते में लखनउ, फर्रुखाबाद, मुरादाबाद, गड्गंगा, हरिद्वार आदि अनेक स्थानों को झांकी देखते हुए 22 वैसाख संवत् 1725 वि० को गुरु जी आनन्दपुर आ पहुंचे ।[368] यहां पहुंच कर आप ने अपने परिवार को बुलाने के लिए हुकम-

---

364- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 12, अंशु 2-3 ,पृ॰ 4227, 4232 पर भाई वीर सिंहका फुटनोट।

365- वही रा 12, अंशु 10-11 पृ॰ 4258-62

366- वही , रा 12, अंशु 22-23, पृ॰ 4313-20

367- वही , अंशु 26, पृ॰ 4342

368- वही , रा 12, अंशु 27, अंक 59, पृ॰ 4332

नामा भेजा । यहीं पर गुरु जी पुनः धर्म प्रचार का कार्य आरंभ किया ।

औरंगजेब के अत्याचार : औरंगजेब ने राजसिंहासन पर बैठते ही अनेक प्रकार के हिन्दू जनता पर अत्याचार करने आरंभ कर दिए । उधर धीरमल और रामराय के षडयन्त्रों ने भी उसे गुरु जी विरुध्द किया हुआ । अतः वह अवसर की खोज रहता कि कब गुरु जी के विरुध्द कार्यवाही की जाये । उसने इस्लाम धर्म के प्रचार हेतु हिन्दू जन्ता पर अनेक अत्याचार[369] किए । जिससे हिन्दू जनता का जीवित रहना कठिन होगया । अनेक हिन्दुओं ने जीवन रक्षा के लिए इस्लाम धर्म को स्वीकार किया । इन अत्याचारों से पंजाब और कश्मीर में विशेष हाहाकर मची । औरंगजेब के मुसलमान हाकमों ने भी हिन्दुओं के लिए कलमा या कतल का रास्ता दिखाना आरंभ कर दिया था । उससमय यह प्रचलित हो चुका था कि औरंगजेब सवामन जनेऊ नित्य उतरवा कर खाना खाया[370] करता था । कश्मीर ने वहां के नाजम शेर अफगान ने तो लगभग आधा कश्मीर ही हिन्दुओं से तुर्क बना दिया था । ऐसी अवस्था में वहां के ब्राह्मणों का सहायतार्थ गुरु जी की शरण में आये ।

कश्मीरी पंडितों की पुकार : उक्त कश्मीरी पंडितों ने आनन्दपुर पहुंच कर जब गुरु को अपना दुख भरी कहानी सुनाई[371] तब गुरु जी सोचने लगे कि इनकी रक्षाके लिए क्या उपाय किया जाये । तभी बालक गोबिन्द राय ने गुरु जी से कहा कि ''आप से अधिक इस कार्य के लिए उपयुक्त महापुरुष और कौन हो सकता है, जो उदार, दानी साहसी, वीर और पवित्रात्मा सभी कुछ हो ।'' यह सुन कर गुरु जी ने निर्णय कर लिया कि वे स्वयं हिन्दू धर्म के संरक्षक बन कर अपना बलिदान देंगे । तब गुरुजी ने पंडितों से कहा कि आप औरंगजेब के पास ऐसा प्रार्थना पत्र भिजवाये जिसमें यह लिखा

369- श्री राम शर्मा : मुगल शासकों की धार्मिक नीति , पृ 190-196

370- गु · प्र · सू · रा 12, अंशु 27, अंक 19, पृ · 4333

371- वही , रा 12, अंशु 28, पृ · 4335

हो कि हमारे गुरु श्री तेगबहादुर यदि इस्लाम धर्म ग्रहण कर लेंगे तो हम भी इस्लाम ग्रहण कर लेंगे[372]। ऐसा सुन कर उन ब्राह्मणों ने शीघ्र ही पंजाब के हाकम जालमखा को उक्त अरजी दे दो। जिसने इसे शीघ्र हो औरंगजेब के पास[373] भिजवा दिया। इस अरजी के पहुंचने पर औरंगजेब ने अपने काजो से विचार विमर्श करने के पश्चात् दो अहिदोए(दूत) गुरु जी को दिल्ली लाने के लिए[374] भेजे। जब उन्होंने आनन्द पुर पहुंच कर औरंगजेब का सन्देश सुनाया तो गुरु जी ने कहा कि कुछ समय पश्चात् हम स्वयं हो देहली पहुंच जायेगे और दूतों को[375] विदा किया।

कुछ समय पश्चात् गुरु जी ने स्वयं ही दिल्ली की ओर प्रस्थान किया। वे सभी परिवार से अन्तिम विदायगी लेकर और अपने साथ कुछ प्रमुख सेवकों को लेकर देहली की ओर चल पड़े। रास्ते में उन्होंने कई स्थानों पर विश्राम किया और धर्म के प्रचार द्वारा जनता को जागृति का सन्देश भी सुनाया। मार्ग में वे कुछ समय के लिए सैफादीन के बसाये नगर सैफाबद में ठहरे[376]। उधर औरंगजेब ने उन्हें खोजने एवं पकड़ कर लाने के आदेश जारी कर दिए।

372- He encouraged the resistance of Hindus of Kashmir to forcible conversion to Islam and openly defied the Emperor. Taken to Delhi, he was cast in prison and called upon to embrace Islam and on his refusal was tortured for fine days and then beheaded on Warrant from the Emperor.

--J.N.Sarkar: <u>History of Aurangzeb</u> p.313

373- सूखा सिंह : गुरविलास, 8।

374- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 12, अंशु 29, पृ॰ 4339

375- वही, अंशु 30, पृ॰ 4343

376- वही, अंशु 30, अंक 28, पृ॰ 4346

इधर गुरु जी ने सैफदीन से विदायगी लेकर तथा अपने साथ दीवान मतिदास, भाई गुरदिता आदि पांच सेवकों को लेकर चल पड़े । गुरु जी वहां से समाणे गढ़ी कर हाली, चिहके, गिलोरा, करारा और जांद होते हुए आगरा पहुंचे[377] । वहां एक बाग में ठहरे । यहीं पर गुरु जी ने एक अयाली बाबा हसनअली के द्वारा अपने को[378] गिरफ्तार कराया[379] । यहां के कोतवाल की सूचना पर गुरु को औरंगजेब ने अपने एक सदरदीन उमराव को भेज कर देहली बुलवाया और बन्दी बना कर कारावास में डाल दिया[380] ।

गुरु तेगबहादुर जी का बलिदान : औरंगजेब ने गुरु जी को इस्लाम धर्म ग्रहण करने हेतु कलमा पढ़ने और करामात दिखाने के लिए विवश किया तो वे अपने धर्म में स्थिर रह कर मृत्यु को श्रेष्ठ समझते हुए इन दोनों बातों के लिए तैयार न हुए । वह कैद में रहते हुए भी अपने सिक्ख सेवकों के घर भोजन[381] करते तथा स्नान के लिए यमुना पर जाते थे[381] । परन्तु शाह के कथनानुसार किसी भी वस्तु का सेवन न करते थे । तब बादशाह की ओर से अधिक सख्ती की जाने लगी । उन्होंने सोचा कि पहले इनके साथियों को कठोर दण्ड दिया जाये पुनः इन्हें कष्ट दिए जाये । शायद इसी से डर कर यह कलमा पढ़ना स्वीकार कर ले । परन्तु औरंग जेब की ये सब योजनाएं निष्फल रही । उसने कई काजियों को गुरु के पास

377- गु० प्र० सू० रा 12, अंशु 32, 36, पृ० 4351-65

378-(क) वही, द्रष्टव्य : भाई वीर सिंह का फुटनोट, पृ० 4365

(ख) वही, रा० 12, अंशु 36, पृ० 4365

(ग) Macauliffe: <u>The Sikh Religion</u> Vol.Iv.p.371-72

379- गु० प्र० सू० अंशु 37, पृ० 4369

380- वही, अंशु 38, पृ० 4373

381- वही, रा 12, अंशु 49-50, पृ० 4411-18

382- वही, अंशु 53, पृ० 4425

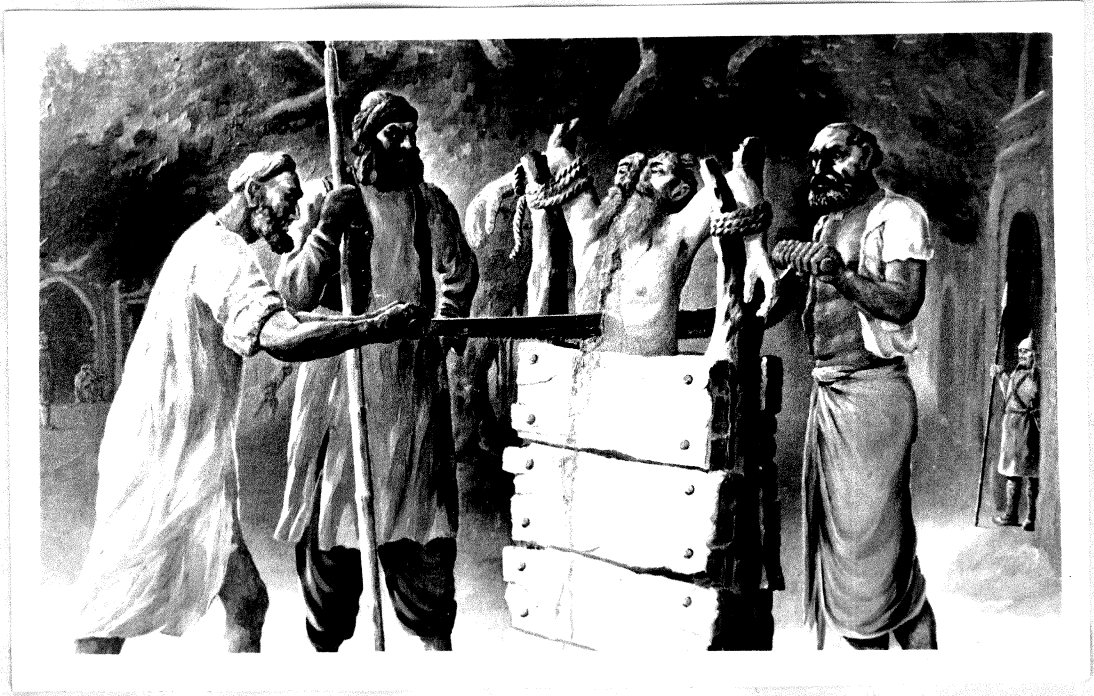

मति दास का बलिदान

समझाने के लिए भेजा कि करामात दिखाओं और शरा को स्वीकार कर लो । परन्तु वे गुरु जी की महिमा को न जान सके । गुरु जी तो करामात को कहिर समझते थे ।[383] वह तो स्वयं मुगल राज्य की जड़े उखाड़ने के लिए अवतरित हुए थे । गुरु जी ने मतिदास को ब्रह्म ज्ञान दिया ।[384] जिसकी सूचना पाकर वह जलबल उठा और मतिदास को बुला कर उसे आरे से चीरने का आदेश दिया ।[385] जब उसे चीर कर उसके दो भाग कर दिए गए तो वह तब भी 'जपुजी' का पाठ करता रहा जिसे देखकर वे बहुत हैरान हुए ।

जब रात हुई तो अन्य सिक्ख सेवकों ने गुरु जी से कहा कि गुरु जी अब यह औरंगजेब हमें जीवित नहीं रहने देगा । अतः हमें यहां से जाने की आज्ञा दें तब गुरु जी उन्हें अनुमति प्रदान की[386] और उनके द्वारा आनन्दपुर साहिब जादे के पास अपना सन्देश भेजा । वे उतर लेकर शीघ्र ही वापिस आये । उधर सिक्ख सेवकों के जेल से निकल जाने की सूचना प्राप्त कर औरंगज़ेब ने और अधिक कठोरता की और गुरु जी को लोह के पिंजरे में डाल दिया ।[387] गुरु जी ने वहां से वैराग्य भावना से भरे हुए अपने कुछ शब्दों के द्वारा श्री गोबिन्द राय, माता जी नानकी और पत्नी गुजरी को जगत की नश्वरता का सन्देश भेजा ।

राम गइओ रावन गइओ जाकउ बहु परवार ।।
कहु नानक थिरु कछु नहीं सुपने जिउ संसारि ।। 50 ।।
चिंता ताकी कीजीए जो अनहोनी होइ । इह मारगु संसार को
नानक थिरु नहीं कोइ ।। 5 ।। जो उपजिओ सो बिनिसि है
परे आजु के काल ।। नानक हरिगुन गाइ ले छाडि सगल जंजाल ।।[388] 52 ।।

383- गु॰ प्र॰ सू॰ रा॰ 12, अंशु 54, अंक 25 , पृ॰ 4429

384- वही , अंक 26-31, पृ॰ 4430-31

385- वही , अंक 45, पृ॰ 4432

386- वही अंशु 55, पृ॰ 4432

387- वही अंशु 61- पृ॰ 4455

388-वही , रा 12, अंशु 62 , श्रीमुखवाक , पृ॰ 4459

इसके अतिरिक्त गुरु जी ने अपने साहिबज़ादे को गुरु गद्दी पर नियुक्त करने का सन्देश भी भेजा । इधर औरंगजेब सोचने लगा कि गुरु जी को इतने अधिक कष्ट देने पर भी मेरा मनोरथ अभी तक पूरा नहीं हुआ है। न ही गुरु जी ने कोई करामात दिखाई है और न ही इस्लाम को स्वीकार किया है। अतः इन्हें अब कतल करने की ही तैयारी की जाये । क्योंकि उक्त तीन बातों में से उन्हें एक को चुनना ही पड़ेगा । उधर गुरु जी इस नश्वर शरीर को त्यागने का संकल्प किया । अंततः गुरु जी के कतल की तैयारी हो जाने पर अर्थात् सारे शहर में मुनादी आदि करा कर निश्चित समय पर गुरु जी को लोहे के पिंजरे से बाहर निकाला गया और उन्हें चान्दनी चौक में लाया गया । आप की अन्तिम इच्छा के अनुसार समीप के कुएं से स्नान कराया गया । फिर आप ने वट वृक्ष के नीचे बैठ कर 'जपुजी साहिब' का पाठ किया और अपनी वृति प्रभु चरणों में लगा ली । पाठ का जब आप ने भोग डाल कर शीश नीचे झुकाया तभी समाने के सय्यद जलालदीन नामक जल्लाद ने तलवार का वार किया और शीश धड़ से पृथक होकर दूर जा पड़ा।उस समय ऐसी अन्धेरी चली और धूल उड़ी के सब देखने वालों की आंखें मूंद गई । शीश उड़ गया और किसी को कुछ दिखाई न दिया ।चारों ओर हाहाकार मचगई । जिस सिक्ख की गोदी में शीश गिरा था उसने डरते हुए उसे छिपा लिया ।उसे किसी ने न देखा ? वह शीघ्र ही शहर से बाहर निकल गया ।[389] जब अन्धेरी कुछ शान्त हुई तो लोगों ने देखा कि धड़ पड़ा है परन्तु शीश नहीं दिखाई देता । उसे तो वह सिक्ख भाई जैता कीरतपुर ले आया और दशमेश जी ने उसे 'रंघरेटा , गुरु का बेटा' कह कर हृदय से लगा लिया और शीश का संस्कार किया ।

यह घटना मार्गशीर्ष शुध्दि 5(11 मार्गशीष) संवत् 1732(11 नवम्बर ,सन् 16 75) को हुई।जहां गुरु जी को शहीद किया गया था उस स्थान पर आजकल 'शीश गंज' नामक गुरुद्वारा है।

उधर धड़ को वहीं वृक्ष के नीचे पड़ा रहने दिया गया और उसके चारों ओर पहरा लगा दिया गया । दूसरे दिन एक श्रध्दालु सिक्ख लखीशाह लुबाणे ने बड़ी चतुराई से

389- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 12, अंशु 65, अंक 34-43 पृ॰ 4472-72

उस धड़ को गाड़ी में लाद कर अपने घर ले गया। वहो घर के अन्दर हो उसने चिता बनाई और बाहर से सारे घर को हो आग लगाकर धड़ का अन्तिम संस्कार किया।[390]

इस तरह से गुरु तेगबहादुर जो ने अपना बलिदान दिया और हिन्दू धर्म को रक्षा को। गुरु जो को इस शहोदो को भाई सन्तोख सिंह के अतिरिक्त अन्य परवर्ती इतिहास-कारों ने भो धर्मान्धता का शिकार माना है[391]। गुरु जो के इस बलिदान के विषय में गुरु गोबिन्द सिंह जो ने अपने 'बचित्र नाटक' में निम्न प्रकार से लिखा है :-

ठोकरि फोरि दिलोसि सिरि प्रभ पुर कोया पयान ।।
तेग बहादुर सो क्रिया करो न किनहूं आन ।।

तेग बहादर के चलत भयो जगत को सोक ।।
है है है सभ जग भ्यो जै जै जै सुर लोक ।।[392]

जब सारे जगत में इस तरह से हाहाकार मच गई तब उधर औरंगजेब को गुरु जोके शोश और धड़ के न मिलने सेबड़ा भय लगने लगा। रात को भयानक स्वप्नों से वह काम्पने लगा। तब से वह दिल्लो से बाहर रहने लगा। वहां उसे एक दिन भो नोंद न आई[393]

<u>गुरु तेगबहादुर जो के बलिदान का महत्व</u> : गुरु तेगबहादुर जो के बलिदान से सारे पंजाब में मुग़ल राज्य के विरुध्द घृणा और प्रतिकार को भावना भड़क उठी। निस्सन्देह गुरु जो को मृत्यु से औरंगजेब को धार्मिक नोति को हो ठेस न लगो प्रत्युत आगे चलकर नई तोसरो जाति के रूप में खालसा पंथ के विकास से मुग़लराज्य का

390- गु· प्र· सू· रा· 12, अंशु 67, पृ· 4477

391- (i) Evolution of Khalsa Vol.II p.63
(ii) Macauliffe: The Sikh Religion Vol.IV p.332
(iii) Latif: History ofthe Panjab p.260

392- द्रष्टव्य : विचित्र नाटक तथा गु· प्र· सू· (फुटनोट) पृ· 4468

393- गु· प्र· सू· रा 12, अंशु 68, अंक 22, पृ· 4483

भी पतन हुआ ।

गुरु जी का चरित्र : गुरु जी कवि हृदय और शान्ति प्रिय ही न थे अपितु सहन शीलता की मूर्ति भी थे । आप ने अपने बलिदान से ~~सिख~~ सिक्ख जाति को नवीन सन्देश दिया । वह निजत्व की रक्षा के लिए आगे चलकर खालसा पंथ में परिवर्तित हो गई ।भाई सन्तोख सिंह ने एक स्थान पर आप के विषय में लिखा है :-

हिंदू धरम तरु मूल को राख्यो धरनि मझार ।
तेगबहादुर सतिगुरु त्रिण समान तन डारि ।। [394]

श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी (आरम्भिक परिचय) (संवत् 1723-1765, सन् 1666-1708)

खालसा पंथ के संस्थापक गुरु गोबिन्द सिंह जी का जन्म संवत् 1723 वि॰[395] की पौष सुदी सप्तमी[396] को दिन पटना में हुआ था । उस समय इन के पिता गुरु तेग़बहादुर जी ढाका में थे ।जन्म के पश्चात् इन का नाम गोबन्द राय रखा गया ।[397] आप का बाल्यकाल वहीं पटना में व्यतीत हुआ । वहीं पर आप को आरम्भिक शिक्षा भी दी गई । गुरु तेगबहादुर जी ने गोबिन्द राय जी की देख रेख का सारा कार्यभार उनके मामा कृपाल चन्द को सौंपा।स्वयं आनन्दपुर वापिस आ गए यहीं आप को विद्या के साथ साथ शस्त्र चलाने की शिक्षा भी दी गई ।

बाल्यकाल : इन के अवतार धारण करने की सूचना जब कुहड़ाम के भीखण शाह को मिली तो वह ढसका (जिला करनाल) ग्राम से चल कर पटना पहुंचा और बालक गोबिन्द राय के दर्शन कर अपने को कृतार्थ अनुभव करने लगा ।[398] जब कुछ बड़े हुए तो अपनी बाल लीलाओं से सब के हृदयों को मोहित करने लगे। ~~अपना सर्वस्व~~ क्या हिन्दू और क्या मुसलमान सभी श्रध्दालुओं ने इन पर अपना सर्वस्व निछावर करना चाहा ।

394- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 11, अंशु 1, अंक 11, पृ॰ 3979
395 - वही , रा 12, अंशु 13, अंक 30, पृ॰ 4273 तथा वही पृ॰ 4271
396- वही अंशु 13, अंक 17, पृ॰ 4272
397- वही , रा 12, अंशु 13, अंक 41-43, पृ॰ 4274, 75
398- वही , रा 12, अंशु 15, अंक 2-3 पृ॰ 4279

जब गुरु तेगबहादुर जी असम से ~~आ~~ वापिस पटना आये तो उन्होंने आपने होनहार सपुत्र के कृतिम युध्द सम्बन्धी खेलो को देख कर[399] प्रसन्नता व्यक्त की । जब इन्होंने पंजाब पहुंच कर आनन्द पुर से हुकम नामा भेजा तो गोबिन्द राय जी ने भी वहा के लिए प्रस्थान किया । गुरु जी मार्ग मे काशी, अयोध्या आदि तीर्थस्थानों से होकर लखनौर[400] पहुंचे । यहां पर सारे परिवार को छोड़ कर गुरु जी मामा श्री कृपाल के साथ आगामी यात्रा की व्यवस्था के लिए आनन्द पुर गए । लखनौर में कुछ दिनों में रहने के बाद आप कीरतपुर होते हुए आनन्द पुर पहुंचे[401] । यहा पर गुरु तेगबहादुर ने बालक की शिक्षा दीक्षा की उचित व्यवस्था की ।

गुरु गोबिन्द सिंह को गुरु पद प्राप्ति : गुरु तेगबहादुर जी की शहीदी के पूर्व किए आदेश अनुसार बालक गोबिन्द राय को संवत् 1732 में गुरु गद्दी पर आसीन किया गया । बाबा बुड्ढा जी के वंशज बाबा रामकुंवर जी ने गुरु घर की मर्यादा के अनुसार आप को कलगी सज्जाकर तलवार आदि पहिना कर गुरु गद्दी का तिलका लगाया । उस समय गुरु जी की आयु अभी नौ वर्ष की ही थी ।

गुरु जी की प्रतिज्ञा : जब उन्होंने अपने पिता की शहीदी का समाचार सुना तो उन्होंने मुगल राज्य को जड़े उखाडने का प्रण किया । और आप ने नये पंथ[402] की स्थापना की । ऐसी योजना सोचने लगे कि उनके सिक्ख अपने आप किसी तरह पहचाने जा सके । अपने शस्त्र अभ्यास और सेना संगठन के कार्यों से आप ने मृत प्रायः जातियों में दुर्दम्य साहस भरने का अद्वितीय प्रयास[403] किया ।

बहुमूल्य भेंट : काबल[404] के सेवक ने अनुपम तम्बू और असम के राजा रत्नराय ने एक हाथी , एक शस्त्र जिसे दबाने से बर्छी, बल्लभ , पिस्तौल और बन्दूक आदि

399- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 12, अंशु 16, अंक 41, पृ॰ 4289

400- वही , रा 12, अंशु 41, से 45 तक पृ 4384-~~35~~ 4399

401- वही अंशु 58 -60, पृ॰ 4443- 4451

402-वही रि 1, अशु 7 अंक 8-10 पृ॰ 4521

403- वही रि॰ 1 अंशु 19, अंक 16 पृ॰ 4569 तथा अंक 43, पृ॰ 4572

404- वही , रि 1 , अंशु 20, पृ॰ 4573

पांच अलग अलग शस्त्र बन जाते थे, भेंट किए। उस हाथी का नाम 'प्रसादी' रखा गया। साथ में एक ऐसी चौकी दी जिस में चार पुतलियां थीं जो कल दबाने से पासा खेलती थी। इन बहुमूल्य वस्तुओं के अतिरिक्त गुरु को अनेक घोड़े भी भेंट किए गए।[405]

रणजीत नगाड़ा : अपनी सैनिक शक्ति की सम्पन्नता के लिए आप ने एक नगाड़ा भी बनवाया। जिस का नाम रणजीत नगाड़ा रखा गया।[406] सेना के ठाठ बाठ के लिए गुरु जी ने यह अनुभव किया कि सेना के पास एक नगाड़ा भी होना चाहिए।

पहाड़ी राजाओं से संघर्ष : एक बार जब गुरु जी ने इस नगाड़े को बजवाया तो उसकी आवाज सुनकर कहिलूर का राजा भीमचन्द घबरा उठा। इस सम्बन्ध में जब उसने अपने मन्त्री से पूछ ताछ की तो उसने इस के अतिरिक्त गुरु की वैभव सम्पन्नता के विषय में भी बताया। उस ने गुरु जी से मिलने की योजना बनाई। पहले उसने अपने मन्त्री[407] को उनके पास भेजकर सभी रहस्य की बातों को जानना चाहा। जब मन्त्री ने आकर सब बातें बताई तो उसके हृदय में गुरु जी से मिलने तथा उनको से भेंट हुई अनुपम वस्तुओं को देखने की लालसा जागी। और वहां पहुंच कर जब उसने उन्हें देखा तो वह उन्हें किसी न किसी तरह से हथियाने की योजना बनाने लगा। और अन्ततः युध्द के लिए कटिबध्द हो[408] उठा। जब ये दोनों वापिस पहुंचे तो भीमचन्द के कहने पर अन्य पहाड़ी राजाओं ने मिलकर गुरु जी के विरुद्ध युध्द की तैयारियां करनी आरंभ कर दी। सभी राजाओं को यह विदित हो गया कि भीमचन्द और गुरु जी में शत्रुता हो चुकी है। ऐसी सूचना नाहन नरेश मेदनी प्रकाश के पास भी पहुंची तो वह गुरु जी का श्रध्दालु होने के कारण गुरु जी को अपने पास बुलाने का

405- गु॰ प्र॰ सू॰ रि 1, अंशु 21-23 पृ॰ 4576-87

406- वही, रि 1 अंशु 25, अंक 36-38 पृ॰ 4593-94

407- वही, रि 1 अंशु 27, पृ॰ 4598-4608

408- वही, रि 1 अंशु 31 पृ॰ 4614

का अनुरोध करने लगा[409]। उसने सोचा कि गुरु जो के यहां आ जाने से शायद युध्द की संभावना टल जाये। वे वहां एकान्त में रह कर अपने सैनिक अभ्यास को हो न बढ़ा सकेंगे अपितु शिकार आदि के भो उन्हें यहा अच्छे अवसर मिल जायेंगे। अतः उसने अपना दूत गुरु जो के पास वहां आने के लिए भेजा। उसके अनुरोध पर विचार विमर्श कर गुरु जो ने आनन्दपुर को सारो सुरक्षा व्यवस्था कर नाहन को ओर प्रस्थान किया। गुरु जो कोरतपुर और रोपड़ होकर नाहन पहुंचे[410] और वहां पहुंच कर यमुना नदो के समोप एक एकान्त स्थान पसन्द कर डेरा लगाया[411]। मेदनी प्रकाश ने बड़े आदर से आप का स्वागत किया और अपने महलों में निवास प्रदान किया। एक दिन जब गुरु जो राजा मेदनो प्रकाश के साथ शिकार को निकले तो गुरु जी ने यमुना नदी के तट के समीप सुन्दर और रमणोक स्थान चुनकर एक किला बनाने को इच्छा व्यक्त की जिस नाम पांवटा रखा गया[412]। इस किले के निर्माण के पश्चात् गुरु जो यहां पर सैनिक गतिविधियां को प्रोत्साहित करने लगे। उधर जब पांवटा के निकट डेहरादून में रहने वाले रामराय जो को गुरु जो के आगमन को सूचना मिलो तो उसने गुरु जा को मिलने को बात सोची। परन्तु वह तो स्वयं गुरु बना बैठा था वे फिर कैसे मिलता।

गुरु जो के पांवटा निवास के दिनों में हो एक दिन सय्यद बुध्दूशाह (सढौरे वाले) मिलने के लिए आया जिस के साथ 500 शस्त्रों से सुसज्जित पाठन सैनिक भोथे। जिन्हें गुरु जो ने अपने पास भरतो कर लिया। परन्तु युध्द का समय आने आने पर इन्होंने छुट्टी मांग ली और फतेहशाह से जा मिले। इन के विश्वासघात पर बुध्दूशाह ने दुख व्यक्त किया और उसके पुत्र युध्द में सम्मिलित हुए[413]।

409- गु॰ प्र॰ सू॰ रि॰ 1, अंशु 43, पृ॰ 4660

410- वहो रि॰ 1 अंशु 45, पृ॰ 4667

411- वहो, रि॰ 1 अंशु 46, पृ॰ 4672

412- वही, रि 1 अशु 47, पृ॰ 4678

423- वहो, रि 2, अंशु 22, पृ॰ 4780

यहां रहते हुए जब श्री नगर के राजा फतेहशाह ने गुरु जी की कीर्ति सुनी तो वह दर्शनार्थ गुरु जी के पास आया । इस राजा की नाहन के राजा मेदनी प्रकाश से शत्रुता थी । गुरु जी ने इसे समझाया और वैर विरोध को दूर करने का उपदेश दिया । अन्ततः गुरु जी ने दोनों राजाओं का मिलाप कराया । और वर्षों से चली आ रही शत्रुता का अन्त किया । इस घटना से दोनों राजा गुरु जी के अनुयायी बन गए।

इन्हीं दिनों गुरु जी ने कई साहित्यिक रचनाओं का भी सृजन किया । कृष्णावतार जैसी महान रचना का सृजन पांवटा निवास के ही दिनों में हुआ । यमुना के तट पर बैठ कर गुरु जी के कवि रुप ने अनेक कवित सवैयों आदि छन्दों में इस काव्य रचना का सृजन किया[414] ।

इस तरह से गुरु जी ने यहां रह कर वीर रस पूर्ण रचनाओं के सृजन के साथ साथ सैनिक और राजनैतिक कार्यों को भी सुचारु रुप में सम्पन्न किया तथा रामराय के मसन्दों को उचित दण्ड[415] देकर धर्म प्रचार के कार्यों को भी सफलता पूर्वक किया।

पारिवारिक जीवन : शौर्य वीर्य सिन्धु गुरु जी का व्यक्तित्व भी बहुत आकर्षक था जिस के कारण कई संभ्रान्त व्यक्ति उनसे सम्बन्ध स्थापित करने के इच्छुक थे । आप का प्रथम विवाह संवत् 1734 में[416] श्री हरिजस की सपुत्री जीती के साथ हुआ जिसके गुरु जी के घर तीन पुत्रों जोरावर सिंह (संवत् 1747)[417] जुझार सिंह (संवत् 1753)[418], तथा फतेह सिंह (संवत् 1755)[419] का जन्म हुआ । द्वितीय विवाह संवत् 1741 में

414- गु· प्र· सू· रि· 2, अंशु 9,4 पृ· 4711 तथा रि 10, अंक 3, पृ·4733

415- वही रि 2, अंशु 9, पृ· 4729

416- वही , रि 1, अंशु 9, अंक 27, पृ· 4530

417- वही , रि 2, अंशु 44, अंक 33, 38 , पृ· 48 88

418 - वही रि ,2, अंशु 49, अंक 27 पृ 4909

419- वही , रि· 2, अंशु 50, अंक 37, पृ 4913

श्री रामशरण क्षत्रिय की सपुत्री सुन्दरी से हुआ जिससे अजीत सिंह का संवत् 1743[420] में जन्म हुआ। इस तरह गुरु जी के चार पुत्र हुए।

गुरु जी के पुत्रों के की जन्म तिथियां और क्रम भाई सन्तोख सिंह ने 'गुरु-विलास' सूक्खा सिंह के अनुसार ही दिया गया है। सौसाखी में गुरु पुत्रों का क्रम इस प्रकार से है – जुझार सिंह, जोरावर सिंह, फतेहसिंह और अजीत सिंह। सेना पति रचित गुरु शोभा में इस नाम क्रम के कुछ अन्तर है। इसी महिमा प्रकाश में भी अन्तर दिखाई देता है। परन्तु मैकालिफ और खजानसिंह ने 'गुरु प्रतापसूरज' के क्रम का ही अनुसरण किया है।[421]

गुरु जी का तृतीय विवाह रावा गोत्र के क्षत्रिय श्री रामू की सपुत्री साहिब देवां से हुआ। परन्तु यह विवाह उक्त प्रकार का विवाह न था। क्योंकि जब यह विवाह हुआ उस समय गुरु जी ने ब्रह्मचर्य धारण किया हुआ था। अतः शारीरिक सम्बन्ध न होने के कारण इस विवाह से कोई सन्तान न हुई। गुरु जी ने साहिब देवां को 'खालसा-' की माता बना सम्मानित किया।[422]

गुरु जी के चारों पुत्र बड़े होने पर युध्द विद्या में पारंगत होकर अपने पिता जी के साथ अनेक युध्दों में सम्मिलित हुए। और अपनी रण कुशलता तथा युध्द विद्या के कला कौशल को दिखाया। चमकौर के प्रसिध्द युध्द मे अजीत सिंह और जोरावर सिंह ने अद्वितीय शूरवीरता दिखाई और वीर गति को प्राप्त हुए। अन्य दो पुत्रों को सरहिन्द के वजीर ने दीवारों में चिनवा दिया था।

420- गु प्र॰ सू॰ रि 2, अंशु 38, अंक 23-24 पृ॰ 4855

421- (क) वही रि 2, अंशु 44, अंक 38, का फुटनोट पृ॰ 4888

(ख) Macauliffe: <u>The Sikh Religion</u> Vol V.p.51,55,59,60

(ग) प्रो॰ करतार सिंह : जीवन कथा गुरु गोबिन्द सिंह, पृ॰ 267

422- गुर॰ प्र॰ सू॰ रि 5, अंशु 1, अंक 14-44, पृ॰ 5420-22

गुरु जी के युध्द : अत्याचारी और क्रूर शासकों के साथ तो उन्होंने युध्द करने ही थे परन्तु उनकी सम्पत्ति को हथियाने के लिए भी अनेक ईर्ष्यालु पहाड़ी शासकों से अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए भी उन्हें युध्द करने पड़े । खालसा पंथ की स्थापना से पूर्व उन्हें भंगानी[423] और नादौन[424] आदि के युध्द करने पड़े और खालसा पंथ की स्थापना के पश्चात् आनन्दपुर, चमकौर, मुक्तसर आदि के युध्द करने पड़े । 'गुरु प्रताप सूरज' में इन युध्दों का वर्णन विस्तार से हुआ है। इस तरह से उनका समस्त जीवन ही युध्दों में व्यतीत हो गया । आरम्भिक जीवन में सेना का संगठन और दुर्ग निर्माण का कार्य करते रहे और बाद के जीवन में युध्द करते हुए ही अपने शौर्य वीर्य के चमत्कार दिखाते रहे ।।

उन्होंने हुसैनी युध्द के पश्चात् जहां जहां राष्ट्रीय संगठन में बाधाएं देखी उन्हें दूर करने का प्रयास किया । राष्ट्रीय जागृति लाने के लिए संस्कृत साहित्य के अनुपम युध्द काव्य महाभारत के सरल भाषा में अनुवाद के साथ साथ पुराण साहित्य की भी वीर रसात्मक रचनाओं का अनुवाद कराया । अनेक कवियों को अपने दरबार में सम्मानित किया । स्वयं भी गुरु जी ने 'चंडी चरित्र' और 'चंडी दी वार' (इन दोनों रचनाओं में देवी के युध्दों का वर्णन है) आदि की रचना की । इन रचनाओं से निम्न जातियों के व्यक्तियों में भी वीर रस का संचार करना ही उनका उद्देश्य था ।[425] इसी साहित्य सृजन के लिए उन्होंने नवीन पंथ चलाने के लिए देवी की अराधना की।[426]

उधर मुगल शासन की जड़ें उखाड़ने के लिए गुरु जी ने नवीन पंथ को प्रकट करने का विचार किया । इस कार्य के लिए उन्होंने पहले देवी की आरधना कर वर प्राप्त करने के लिए सोचा । शक्ति और वीरता की देवी दुर्गा के वरदान से दुष्टों के संहार के लिए हवन यज्ञ आदि करने की योजना बनाई । बनारस से पंडित केशव दास को इस हेतु बुलाया ।[427] उसके कथनानुसार सारी सामग्री जब एकत्र होगई तब

423- गु॰ प्र॰ सू॰ रि 2, अंशु 25, -31, पृ॰ 4792-4819

424- वही , रि 2 , अंशु 40, पृ॰ 4864

425- (क) 'भेड़ो को मैं शेर बनाउ, राठन के संग रंक लडाउं।
भूप गरीबन को कह वाउ, चिड़ियों से मैं बाज तुड़ाउ ।
सवा लाख से एक लड़ाऊ, तबै गोबिन्दसिंह नाम कहाऊ' ।।
(ख) गु॰ प्र॰ सू॰ रि 3, अंशु 12, अंक 47 पृ॰ 4968

426- द्रष्टव्य भाई वीर सिंह का नोट – पृ॰ 4969

427- वही , रि 3, अंशु 4, पृ॰ 4929

गुरु जी ने पंडित केशवदास को नैना देवी के स्थान पर ले जाकर सभी[428] वेदोक्त तथा तन्त्र शास्त्रोक्त विधियों से यज्ञ कराने के लिए कहा। जब हवन आरंभ हुआ तो चतुर्दिक 'जय जगदम्बे'[429] के स्वर गूंजने लगे। देवी की प्रसन्नता पर गुरु जी ने नवीन पंथ चलाने का आशीर्वाद एवं एक कटार प्राप्त[430] की। तत्पश्चात् खालसा पंथ की स्थापना के लिए महान आयोजन किया।

खालसा पंथ की स्थापना : (1756) : गुरु जी ने अपने सिक्खों की परीक्षा हेतु एक महान सभा का आयोजन करने के लिए जब चारों ओर के आपने सिक्खों को सन्देश भेजे, तो हजारों श्रध्दालु सिक्ख गुरु जी के दर्शनार्थ सागर की तरह उमड़ पड़े। तब गुरु जी ने दमादमे के पास खुले मैदान में तम्बू आदि लगवाये और अपने एक विशेष सेवक को पांच बकरे लाकर मंच के समीप के तम्बू में छिपा कर रखने के लिए कहा। दूसरे दिन जब सभा लगी तो तुर्क तरु की जड़े उखाड़ने वाले नागर गज रूप गुरु जी ने चमकती तलवार हाथ में लेकर गर्जते हुए अपनी प्यारी संगत को कहा।

'अति प्रिय सिक्ख अहै को मेरा ?
अपनो सीस देहि इस बेरा।
कारज पड़यो आन इसकाला।
पुरवहि सिर दे अबहि बिसाला।।'[431]

गुरु जी के इन शब्दों को सुन कर चारों ओर सन्नाटा छा गया जब कोई भी सिक्ख न उठा तो गुरु जी ने उक्त वाक्यों को पुनः दूसरी और तीसरी बार दोहराया।

428- गु॰ प्र॰ सू॰ रि॰ 3, अंशु 5, अंक 36-39, पृ॰ 4937

429- वही, रि 3, अंशु 10 अंक 19-25 पृ॰ 4956

430- (क) वही, रि 3, अंशु 11, अंक 15-17, पृ॰ 4960-61

(ख) Teja Singh Ganda Singh: A Short History of the Sikhs Vol.I p.68

431- गु॰ प्र॰ सू॰ रि 3, अंशु 17, अंक 33, पृ॰ प्र॰ 49

और पांच परम प्रिय सेवकों ने – दयाराम, धर्मदास, मोहकम चन्द, साहिब चन्द, और हिम्मत राय ने अपने आप को गुरु जी के चरणों में समर्पित कर दिया ।[432]

खण्डे की पाहुल : तत्पश्चात् गुरु जी ने उनको सबको उत्तम वस्त्रों से सुसज्जित कर सभा के समक्ष प्रस्तुत किया और उन्हें 'पांच प्यारे' नाम दिया । इसी तरह परीक्षा के उपरान्त सेवकों के लिए[433] अमृत तैयार करवाया । जबइस अमृत को तैयारी का सूचना बाल रामकुंवर ने जा कर माता जीती को दी तो वह कुछ पतासे लेकर वहां पहुंची जहां अमृत तैयार करवाया जा रहा[434] था । एक लोहे के वर्तन में जल डालकर उसमें अपनी देवी प्रदत खड्ग को हिला कर तथा उक्त पतासों को डालकर जब वह अमृत तैयार हुआ तो उसे अपने 'पांच प्यारों' को पीने के लिए कहा । कि जो इस अमृत का पान करेगा वह शेर की तरह बलवान बन जायेगा , और इसके पीने के पश्चात् उसका एक तरह से नया जन्म होगा और उन में भ्रातृत्व भावना उत्पन्न होगी ।[435]

सिंहो का जन्म : उक्त खण्डे को पाहुल का पान करने के पश्चात् गुरु जी ने उनके नामों के साथ 'सिंह' शब्द जोड़ कर सब को 'सिंह' बना दिया । अब वे सभी सिंह नाम से सुसज्जित हो गए । इस तरह से चारो वर्णो के व्यक्तियों को एक 'सिंह' रुप में परिवर्तित कर गुरु जी ने उन के नामों का नवीकरण कर दिया और अपने सेवक बना कर आनन्दपुर वासी बना दिया । गुरु जी अपने सिक्खों के पांच निशान निश्चित किए थे – 1 केश(लम्बे बाल) 2 कंघा, 3 कच्छा, , 4 कड़ा(लोहे की चूड़ी) 5 कृपाल(खंजर) इन चिन्हों से युक्त रहने पर सिक्खों को पहचानने में कोई कठिनाई नहीं होगी । उनके लिए क्षत्रिय धर्म निश्चित किया गया और कहा गया कि कभी भी 'सिंह' शब्द के बिना अर्द्ध नाम न लें । युध्द करके विजय प्राप्त करें या वीरगति पाकर स्वर्ग के सुखों को

432- गु・प्र・सू・रि 3, अंशु 18, पृ・5050 तथा गुर विलास , पृ・235

433- वही , अंशु 19 , पृ・5053

434- गुरमत संस्कार विधि (प्रकाशक: चीफ खालसा दीवान, अमृतसर)

435- J.N.Sarkar: <u>Short History of Aurangzeb</u> p.166

भोगे । एक ईश्वर (अकाल पुरुष) का स्मरण करें , 'वाहिगुरु' नाम का जप करें तथा किसी अन्य देवी देवता, मूर्ति, समाधि आदि को न पूजे, । इस तरह से गुरु जी ने अ अपने पांच 'सिंहों' को अपने पंथ की 'रहित' समझाई ।

तत्पश्चात् गुरु जी ने उन अपने पांचो प्यारो से 'सिंह' की उपाधि को धारण किया और कहा कि इस पंथ का सृजन का हुकम स्वयं मुझे जगतेश्वर प्रभु ने दिया था । इस तरह से गुरु जी गोबिन्द राय से 'गोबिन्दसिंह' बन कर नवीन वस्त्रों को धारण कर पंच ककारों से विभूषित हो कर , स्वयं को पंथ का पिता और साहिब कौर को पंथ की माता बना कर खालसा पंथ की ~~स्थाना~~ क स्थापना की। इस तरह उन्होंने जाति ~~व~~ पांति को समाप्त कर, सम्मिलित भोजन आदि की प्रथा का प्रचलन कर ~~सिख~~ सिक्खों में वीरता की भावनाएं जागृत की ।[436] इस प्रकार धार्मिक सम्प्रदाय ~~धार्मिक~~ राजनैतिक सम्प्रदाय में परिवर्तित हो गया ।[437]

ऐसी वीरता की भावनाओं ने ही भविष्य में सिक्खों ने सशस्त्र होकर मुगल राज्य से टक्कर लेने के लिए समर्थता प्रदान की । यह खालसा गुरु जी के देखते देखते ही विक-सित होने लगा । तथा असंख्य लोगों ने अपने आप को 'सिंह' बनाकर गौरवान्वित करना आरंभ कर दिया । गुरु जी के पास बलिवेदी के असंख्य सेनानी एकत्र हो गए ।[438] अब तो उनका एक ही जयघोष था ;-

वाहि गुरु जी का खालसा ।
वाहि गुरु जी की फतेह ।।

इस जयनाद ने असंख्य लोगों को 'खालसा' पंथ में दीक्षित होने की प्रेरणा ही न दी अपितु उन में अद्वितीय साहस और शूरवीरता भी भर दी । वे धर्म और अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए मर मिटने को तैयार हो उठे । गुरु जी ने खालसों

436- Cunningham : History of the Sikhs p.84

437- G.C.Narang: The Transformation of Sikhism p.25 (Lahore.1912)

438- Dr.Latiff: History of the Panjab p.263(Calcutta 1891)

मानवतावादी भाई कन्हैया

में वीर रस की भावना जगा कर 'धर्म युध्द ' उन्हें प्रेरित करते थे ।[439]

'खालसा पंथ' के निर्माण की प्रतिक्रिया और पहाड़ी राजाओं की कुमन्त्रणः जब गुरु जी के इस पंथ की उन्नति देखी तो वे ईर्ष्या की अग्नि में जलने लगे । उक्त 'खण्डे की पाहुल' ग्रहण कर जब असंख्य वीरों ने आनन्दपुर को अपना निवास स्थान बना लिया और जाति पांति के भेद भाव को समाप्त कर आपस में मिलकर सम्मिलित भोअजन ग्रहण करने लगे तथा पुत्र और सुता के विवाहों द्वारा सम्बन्ध स्थापित करने लगे । तब कई व्यक्तियों ने मिलकर कहिलूर के राजा भीम चन्द को गुरु के विरुध्द शिकायत की[440] इसे सुनकर वह गुरु जी के विरुध्द सभी पहाड़ी राजाओं को अपने साथ मिलाकर कुमन्त्रण करने लगा । तथा युध्दों के लिए स्वयं ही तैयार न हुआ प्रत्युत औरंगज़ेब से भी सहायता के लिए अनुरोध करने लगा । फलस्वरुप गुरु जी को कई युध्द करने पड़े । आनन्दपुर रणस्थली बन गया । कभी पहाड़ी राजाओं के विरुध्द लड़ते तो कभी मुगल सेनाओं से लोहा लेते ।

आनन्दपुर की पहली लड़ाई में गुरु जी ने बिलासपुर के राजा और अन्य पहाड़ी राजाओं के दान्त खट्टे किए तो दूसरी लड़ाई में सरहिन्द के गर्वन्र के नेतृत्व में हुए युध्द में जब आनन्दपुर घिर गया तोकई दिनों तक युध्द होता रहा। इस युध्द के दौरान गुरु जी के एक श्रध्दालु सिक्ख सेवक भाई कन्हैया जी की मित्र शत्रु को एक समान पानी पिलाने की सेवाएं विशेष रुप से वर्णिनीय हैं। वह तो शत्रु और मित्र दोनों में प्रभु के रुप को देखता था ।[441] (चित्र संलग्न है)

439- ' देह शिवा वर मोहि इहैं, शुभ कर्मन ते कबहूँ न डरौं।
न डरों अरि सों जब जाइ लरौं। निश्चय कर अपनो जीत करौं।।
अरु सिख हों अपने मन को, इह लालाच हौं गुण तौ उचरो ।
जब आवकी अउध निदान बनै। अति ही रण में तब जूझ मरौं ।।
— चंडी चरित, छंद सं 231

440- गु॰ प्र॰ सू॰ रि 4, अंशु 2, अंक 8-9, पृ॰ 5215

441- वही , रि 6, अंशु 18, अंक 33-34, पृ॰ 5809

अन्ततः जब खाने को कुछ भी न मिला तो अपने अनुयायियों के अनुरोध पर आनन्दपुर[442] त्याग कर गुरु जी निकले तो मुगल सेना ने उनका पीछा किया । इसी दौरान गुरु जी के दो पुत्र सरहिन्द के गवर्नर के हाथ लगे । उन्हें उसने धर्म परिवर्तन के लिए विवश किया और उनके इन्कार करने पर दीवार में चिनवा दिया । सिरसा पार कर गुरु ने चमकौर की गढ़ी[443] में आश्रय लिया और उसके भी मुगल सेना द्वारा घिर जाने पर गुरु जी के अन्य दो पुत्रों ने युध्द में जौहर दिखाये । गुरु जी वहां से वेश बदल कर माछीवाड़ा[444] के जंगलों में भटकते हुए कभी उच्च के पीर[445] बनते है तो कभी जफरनामा[446] खिल लिखते है। इसी तरह जब फिरोजपुर की और जा निकलते है तो खिदराना (मुक्तसर) के समीप मुगलों के साथ इन का पुनः युध्द होता है। इस समय उनके पास केवल चालीस सेवक थे । इस युध्द में मुगलों को हराकर गुरु जी दमदमा में जाकर रहने[447] लगे । दक्षिण[448] जाते हुए मार्ग में गुरु जी ने राजपूताने में सिक्ख धर्म का प्रचार किया। दादू द्वारे (नारायण ग्राम) जब गुरु जी पहुंचे तो वहां के जैत साहब नामक महन्त उनके दर्शनार्थ अपने साधुओं सहित पहुंचा । और उन्हें डेरे में निवास दिया और उनके

442-गुरु प्र॰ सू॰ रि 6, अंशु 31, पृ॰ 5857

443- वही , रि 6, अंशु 34, पृ॰ 5871-5903 40

444- वही , रि 6, अंशु 42, पृ॰ 5908

445- वही रि 6, अंशु 46, पृ॰ 5924

446- वही, रि 6, अंशु 47, पृ॰ 5926

447- वही , ऐन 1, अंशु 10, पृ॰ 6033

448- (क) वही , ऐन , 1, अंशु 31, अंक 1-2, पृ॰ 6122

(ख) <u>A Short History of Sikhs</u> p.76

(ग) <u>Banda Singh Bahadur</u> p.14-29

(घ) गुरु शोभा , पृ॰ 8 ।

(ङ) प्रो॰ करतार सिंह : जीवनकथा गुरु गोबिन्द सिंह , पृ॰ 38।

सम्मकान में भण्डारा दिया । वहां से गुरु जी लालो नगर, मधरौदा, कुलाय-त होते हुए जब वधौर जा रहे थे तो मार्ग में दया सिंह आकर मिला और उसने गुरु जी को अपनो हजरत से हुई सारी मुलाकात की बात बताई । गुरु जी वधौर पहुंचे तो उन्हें औरंगजेब की मृत्यु का समाचार मिला । गुरु जी जब यहां एक बाग में ठहरे हुए थे तो वहां भी उन्हें उसके मालिकों से युध्द करना पड़ा।

बहादुर शाह से गुरु जी का मिलाप[449] : औरंगजेब की मृत्यु होने पर तारा आजम और बहादुरशाह (मुअज्ज़म) में सिंहासन प्राप्ति के लिए परंपरागत संघर्ष आरंभ हो गया । गुरु जी ने तारा आजम के विरुध्द लड़ने के लिए तथा बहादुर शाह की सहायता हेतु धर्म सिंह आदि अपने कुछ सैनिकों को भेजा । घमासन युध्द हुआ और बहादुर शाह ने गुरु जी की सहायता से विजय प्राप्त की । उसने गुरु जी को अपने दरबार में बुलाया । वे उसके इस अनुरोध पर दिल्ली, (यहां उनकी दोनों पत्नियां माता सुन्दरी और साहिब देवां रहती थी) तथा मथुरा, वृन्दावन होते हुए आगरा पहुंचे । आगरा में बहादुर शाह ने गुरु जी का भव्य स्वागत किया और कुछ[450] दिन वह ठहरे । जब बहादुरशाह ने काज़ियों के भय से गुरु जी से विश्वासघात[451] किया और सरहिन्द के सूबेदार से बदला लेने के लिए उसे गुरु जी के हवाले न कर सका तो गुरु जी ने उक्त बदले के लिए एक नया सिक्ख बनाने की प्रतिज्ञा की । इस बात का संकेत बन्दा वैरागी की ओर था ।

आगरा में कुछ समय रहने के पश्चात् गुरु जी ने अविचल नगर की ओर प्रस्थान किया । इसी दौरान वे बहादुरशाह के साथ भी कुछ समय दक्षिण की यात्रा करते रहें और अन्त में नदेड़ नगर में जा कर कुछ धरती खरीद कर रहने लगे[452] ।

बन्दा वैरागी से भेंट : यहीं रहते हुए गुरु जी जब एक दिन आखेट के लिए निकले तो उन्हें एक वैरागी का आश्रम दिखाई दिया । गुरु जी ने उस आश्रम में जाकर विश्राम करने के कुछ समय पश्चात् माधोदास से भेंट की और उसे अमृत

449- यह भेंट 2 अगस्त सन् 1707 को हुई। देखिए डा गंडासिंह : सिक्ख इतिहास बोर, पृ. 45 तथा गु. प्र. सू. ऐन 1, अंशु 40, पृ. 6167

450- (क) गुरु शोभा, 33. 725, पृ. 94 (ख) गु. प्र. सू., ऐन 1, अंशु 41, 43, 45 अंक 42 पर भाई वीर सिंह का फुटनोट 6195-6202

451- गु प्र. सू, ऐन 1 अंशु 51, पृ. 6220, 452 वही पृ 6235-43

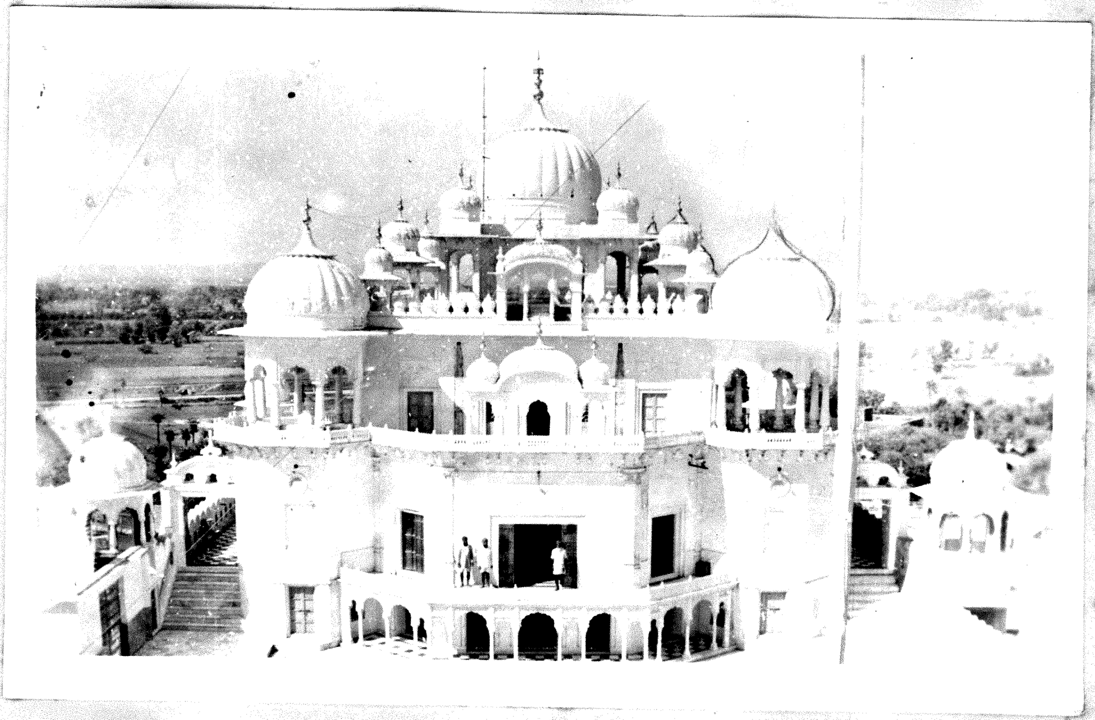

गुरु द्वारा हजूरसाहिब

छक्का कर अपना सिक्ख बना लिया[453] । इसके पश्चात् गुरु जी ने उसे पंजाब जाने को आज्ञा दी । और यह आदेश दिया कि[454] वहां तुर्कों का कतल आदि करने के पश्चात् सरहिन्द जाकर वजोरखां से साहिबजादों की हत्या का बदला लेना । तत्पश्चात् पहाड़ियों के प्रदेश में जाकर वहां के राजाओं से बदला लेना । इसके साथ ही उसे यह भी कहा कि अपना नया पंथ न चलाना । खालसा पंथ का ही आज्ञाकारी रह कर सत्यता से अपने सभी कार्यों को करना । प्रभुता पा कर अहंकार न करना । बाबा विनोद सिंह, कान्हसिंह और बाजसिंह को साथ ले कर जाओ और जाकर पूर्वोक्त अनुसार बदला लो । इस उपदेश को सुन कर बन्दा प्रसन्न होकर पंजाब की ओर रवाना हुआ और यमुना पार पहुंच कर तुर्कों से बदला लेने लगा । तत्पश्चात् गुरु जी के आदेशानुसार उसने उक्त कार्य किए ।

<u>देहावसान</u> : नदेड़ रहते हुए गुरु जी ब्रह्मज्ञान का उपदेश देते हुए वेद व्यास की तरह कविता रचते हुए और धनु विद्या का अभ्यास करते और मानवीय लीला करते हुए अपना समय व्यतीत करते रहते । एक दिन उनके पास एक पठान गुलखां आया। 'गुरु प्रताप सूरज' के अनुसार गुरु जी ने पैदेखां के पोते गुलखान[455] को मुग्धर चलाने और अपने पितामह का बदला लेने के लिए प्रोत्साहित किया[456] और उसके ऐसा करने पर यद्यपि वह मृत्यु को प्राप्त हुआ तथापि गुरु जी को भी काफी घाव आया । परन्तु जब कुछदिनों में घाव ठीक हो गया तो एककमान का चिल्ला चढ़ाते हुए उन के घाव के टांके टूट गए और गुरु जी ने शरीर त्यागने की तैयारी की । इस से पूर्व उन्होंने आदि ग्रंथ को नमस्कार कर उसे गुरुत्व प्रदान किया तथा खालसा को आपना रूप भी कहा ।

453- गु॰ प्र॰ सू॰ ऐन 2, अंशु 6, अंक 36 का फुटनोट पृ॰ 6248 -52

454- वही , ऐन 2, अंशु 5, अंक 37-38, पृ॰ 6242

455- वही , ऐन 2, अंशु 18 , अंक 9-10, पृ 6302

456- इस तथ्य की प्रामाणिकता सन्दिग्ध है। अन्य इतिहासकारों के मतों के लिए देखिए:- गु॰ प्र॰ सू॰ ऐन 2, अंशु 19, अंक 10 पर भाईवीर सिंह का फुटनोट , पृ॰ 6306-6316

देहावसान से पूर्व गुरु जी ने यज्ञ किया जिस में सभी वर्णो के व्यक्तियों को प्रसाद दिया गया। उस समय वे सुन्दर वस्त्रों से सुसज्जित थे। उन्होंने चिता की तैयारी का आदेश दे दिया। संगत को अन्तिम उपदेश प्रदान कर - 'वाहिगुरु जी का खालसा वाहि गुरु जी की फ्ते' का उच्चारण करते हुए 'कनात में प्रवेश करने लिए तैयार होकर कहा कि परिक्रमा करनेके पश्चात् शीघ्र ही आंच लगा कर तुरन्त सभी कनात से बाहर चले जाये। इस तरह से संवत् 1765 कार्तिक सुध्दी पंचमी (7 अक्तूबर 1798) को[457] गुरु जी देवलोक को सिधारे।

<u>गुरु गोबिन्दसिंह का ऐतिहासिक महत्व</u> : गुरु गोबिन्द सिंह के इस ऐतिहासिक जीवन में हम उन्हें अधिकतर युध्दों में व्यस्त पाते हैं। परन्तु जब भी उन्हें समय मिलता वे साहित्य सृजन भी करते थे। उनके दरबार में 52 कवियों के होने और उनके द्वारा भारतीय संस्कृति के द्युतिमान ग्रंथों के अनुवाद आदि के कार्यों से जहां उनकी राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने की बलवती इच्छा की झलक मिलती है वहां व उनकी अद्वितीय विद्वता और गुणग्राहकता का भी पता चलता है। खालसा पंथ के निर्माण के द्वारा उन्होंने देश की कैसे रक्षा की और अपने समस्त जीवन, परिवार और खालसा को बलिवेदी का पुतला बन कर अपनी अद्वितीय निर्भीकता, साहस, कर्मनिष्ठता का परिचय देकर भारत के जातीय और राष्ट्रीय गौरव की रक्षा की है। इसे भारतीय इतिहास कभी नहीं भूल सकता। ऐसे वीरों के कारण तो आज भारतीयता का मस्तक विश्व में ऊंचा है। भाई सन्तोख सिंह गुरु जी के विषय में एक स्थान पर लिखते हैं :-

> जो जग में तन हिंदु अहै सभि पै उपकार बिसाल कर्यो।
> मानहिं जो न, अघी नहिं को सम, जाइ स्मि निरैपद बीच पर्यो।
> बीर बली गुर गोबिंद सिंह महां तुरकान को तेज हर्यो।
> हिंद थिर्यो बहु जंग जुर्यो, भट ब्रिंद मर्यो रसबीर भर्यो।। 458

457- गु॰ प्र॰ सू॰ रा॰, अंश 8, अंक 35, पृ॰ 1339

458- वही, रा 4, अंशु 1, अंक 12 पृ॰ 2230

बन्दा वैरागी का शेष जीवन चरित

'गुरु प्रताप सूरज' में बन्दा वैरागी का समस्त चरित्र अन्य गुरु साहिबान की तरह न तो सविस्तार दिया गया है और नहीं उस में तारतम्य ही दिखाई देता है। इस कठिनाई का सामना डा॰ भाई वीर सिंह को भी उक्त ग्रंथ के सम्पादन के समय करना पड़ा है। उन्होंने बन्दा के सरहिन्द के पश्चात् के युध्दों का संक्षेप में वर्णन किया है।

उधर जब बन्दा प्रभुता पाकर अहंकारी हो गया और विवाह कराने लगा। स्वयं अपने को पंथ का गुरु कहने लगा। अपना पंथ और अपनी नई 'रहित' चलाने लगा। इन कार्यों के कारण बन्दे का तेज क्षीण होने लगता है। गुरु जी ने जो साथी बन्दे के साथ भेजे थे अर्थात् बाबा विनोद सिंह और कान्ह सिंह ने उसे कई बार अमर्यादित कार्यों से रोकने का प्रयत्न किया परन्तु उसने उनकी एक न मानी। एक बार तो कान्ह सिंह उसे मारने के लिए भी उद्यत हुआ परन्तु उसके पुत्र ने बीच में पड़ कर विरोध को शान्त किया।

शाही सेना ने बन्दे को साथियों सहित गुरदासपुर की एक गढ़ी में घेर लिया। दोनों ओर से घमसान युध्द हुआ। खाद्य पदार्थों के अभाव में सिक्खों का घेरे का रहना कठिन हो गया। इधर बन्दा का अपने साथियों से भी विरोध हो चुका था। और बाबा विनोद सिंह ने आपसी मतभेदों के कारण उसका साथ छोड़ने का निश्चय कर लिया था। वह दुर्ग त्याग कर गोइंदवाल आकर रहने लगा। तुर्क सेना ने गढ़ी तोड़ दी और बन्दे को साथियों सहित बन्दी बना कर, लोह के पिंजरे में डाल कर देहली ले गए। सभी सिक्खों के सिर काट दिए गए। उधर बादशाह बहादुर शाह के पश्चात् जब फर्रुखसियर देहली के सिंहासन पर बैठा तो उसने बन्दा और उसके साथियों पर अनेक अत्याचार किए। दो तीन सिक्खों को बचाने का प्रयत्न भी किया गया जैसे माता सुन्दरी के तथा देहली की संगत ने बाबा कान्ह सिंह को कैद से चालाकी छल से छुड़ा लिया। इसी तरह ही बाज़ सिंह भी अपनी शूरवीरता के कारण छूट गया। शेष के सिर वहीं काट दिए गए।

'गुरु प्रताप सूरज' के कर्ता ने बन्दा के जीवन चरित के सम्बन्ध में विशेष ऐतिहासिक जानकारी नहीं दी है। और स्वयं भी भ्रान्ति में पड़े हुए दिखाई देते हैं। यहां तक कि कवि जी ने तत्कालीन शासक फर्रुखसियर को भी बहादुरशाह जान कर चित्रित किया है। अतः कहा जा सकता है कि कवि जी को बन्दा के विषय में विशेष प्रामाणिक ऐतिहासिक जानकारी नहीं थी[459]।

समीक्षा :

इस तरह से 'गुरु प्रताप सूरज' में गुरु इतिहास के साथ साथ मुगल इतिहास के विकास और पतन की श्रृंखलाबध्द घटनाओं का उल्लेख मिलता है । इस में अधिकतर तथ्य प्रामाणिक ही है परन्तु कहीं कहीं पर कवि जी को उपयुक्त सामग्री के न मिलने के कारण त्रुटियां भी रह गई है। यदि कवि जी कुछ समय और जीवित रहते और इसे पुनः संशोधित कर सकते तो शायद इस ग्रंथ का यह रूप न रहता । फिर भी इस में संकलित इतिहास-तत्व परवर्ती इतिहासकारों के लिए काफी, सहायक रहा है। यद्यपि मैकालिफ आदि इतिहासकारों ने भाई सन्तोख सिंह के सम्बन्ध में अच्छे विचार व्यक्त नहीं किए है और उन्हें हिन्दुत्व का अनुयायी बताया है। तथापि उन्होंने स्वयं उक्त stricture देने के बावजूद भी इसे ही अपने 'Sikh Religion' नामक ग्रंथ का आधार बनाया है। इन्दू भूषण बैनर्जी ने उनके इस ग्रंथ में वर्णित इतिहास तत्व के उपयोग के विषय में निम्न विचार व्यक्त किए हैं । जो इस ग्रंथ की ऐतिहासिकता की महता को प्रदर्शित करते है — " It is an extremely interesting fact that in spite of these strictures Macauliffe has been compelled to make the 'Suraj Prakash' the primary basis of his "Lives" of Gurus, particularly of the earlier Gurus. In fact, he had no other alternative and so long as more reliable records are not for the coming this work will remain, more or less in dispensable, though, no doubt it should be used with great caution and restrant".

— Indubhusan Banerjee: <u>Evolution of the Khalsa</u>, Vol.I page. 284-85

459- द्रष्टव्य : गु॰ प्र॰ सू॰ रैन 2, अंशु 27, अंक 12, 15 के फुटनोट, पृ॰ 6354-56

इन शब्दों के द्वारा इस ग्रंथ की ऐतिहासिक महानता व्यक्त होती है। इस में सांस्कृतिक तत्व इतने अधिक निहित है कि यह ग्रंथ केवल इतिहास न हो रह पाता । वास्तव में इतिहास की कथावस्तु को अधार बना कर उसके माध्यम से संस्कृति के उत्कर्ष और ह्रास की कहानी ही कवि कहना चाहता है और इस में उसकी राष्ट्रीयता व्यक्त है। इस में गुरु इतिहास की समस्त बिखरी हुइ सामग्री को संकलित करने का प्रयास कर भाई सन्तोख सिंह ने पंजाब वासियों को अपना ऋणि बना लिया है।

भाई सन्तोख सिंह के दृष्टिकोण : भाई सन्तोख सिंह की ऐतिहासिक चेतना अपने युग , समाज और इतिहास से प्रभावित है।उन के जागरूक कलाकार ने एक व्यापक रंगमंच पर कार्य किया है और बिखरी हुई सामग्री को एक सूत्र में बान्धने का अद्भुत प्रयास किया है। उनके इतिहासकार के अतिरिक्त उनके 'गुरु प्रताप सूरज' में समाज , देश, मानव, दर्शन, आदि अनेक विषयों पर असंख्य विचार मिलते हैं ।जिन से उनकी महान चिन्तन प्रतिभा काआभास ह्य प्राप्त होताहै।

एक इतिहासकार के रुप में उन्होंने इतिहास के भगनावशेषों से कथा वस्तु ग्रहण की और उसी के माध्यम से जातीय गौरव स्थापित किया । वे राष्ट्रीय कलाकार हैं और जो इतिहास के अन्वेषणमि प्रयत्नशील हुए । उन्होंने बिखरी हुई सामग्री का उपयोग कर उसे सूत्रात्मकता एवं साहित्यिकता प्रदान की । तभी तो लोग कहते हैं कि भाई सन्तोख सिंह जैसा इतिहास वेता पंजाब में आज तक नहीं हुआ । जो इतिहास वेता के अतिरिक्त कवि और सांस्कृतिक परंपरा की पुनः सजीवता प्रदान करनेवाला कथाकार भी है। जहां तक तथ्य कथन और सत्य प्रतिपादन का प्रश्न है हम भाई सन्तोख सिंह पर अंगुली नहीं उठा सकते । वे तो 'पंजाब' के 'तुलसी' तथा भूषण थे जिन्होंने अपने इष्ट गुरु कलगीधर तथा अन्य गुरु साहिबान की स्तुति की ।

इतिहासकार के अतिरिक्त उनके कवि ने भी सत्यनिष्ठा और तथ्य संरक्षा में अपना अभूतपूर्व योगदान दिया । जहां उनका इतिहासकार विश्लेषणवादी प्रतिभा , शोध-समर्थ बुध्दि एवं इतिहास-रचना प्रक्रिया -अपेक्षित सूझ बूझ, सूत्र रुप में 'इतिहास विवेक' से युक्त है वहां उनका कवि उसे सरसता एवं स्पष्टता प्रदान

करता है। यद्यपि आधुनिक वैज्ञानिक शब्दावली वाला 'इतिहास-विवेक' उन में खोजा जाये तो हमें निराश ही होना पड़ता है। विभिन्न साधन स्रोतों से उपलब्ध इतिहास की कच्ची सामग्री को जिस प्रकार इतिहासकार अपनी शोध-यात्रा में निर्मित कारण- कार्य की कसौटी पर कस कर विभिन्न प्रमाणों के आधार पर अपने इतिहास में उसका समाहार प्रत्याहार करता हुआ शुध्द ऐतिहासिक सत्य को प्रसतुत करता है — वैसा भाई सन्तोख सिंह ने नहीं किया है। यदि ऐसा करते तो उनका 'गुरु प्रताप सूरज' 'सौ साखी' का काव्य अनुवाद मात्र बन कर न रह जाता। उन्होंने जन -श्रुति का भी उपयोग बिना प्रामाणिक साक्ष्य के किया है। उन्हें तो जहां से जो सामग्री मिली उसको बिना ऐतिहासिक परख किए हुए उसे प्रायः ज्यों का त्यों ग्रहण कर लिया है। यद्यपि कुछ खोज और ऐतिहासिक परख के प्रयास किए है तथापि इस महद्ग्रंथ की विशाल सामग्री को देखते हुए वे नगण्य ही हैं। अतः कहा जा सकता है कि उनके कवि का लक्ष्य कविता की ओर ही अधिक रहा गुरु इतिहास की शुध्दि की ओर नहीं।

इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि 'गुरु प्रताप सूरज' का लक्ष्य कविता करना भी रहा है परन्तु यह भी नहीं माना जा सकता है कि इतिहासकार के दायित्व की उन्होंने अवहेलना की हो। जहां तक 'इतिहास की शुध्दि का प्रश्न है, उन्होंने जो ऐतिहासिक सामग्री दी है उससे अधिक की आशा हम उस से कर भी नहीं सकते क्योंकि उस युग में इतिहास के साधन आज की तरह प्रचुर नहीं थे और न ही उस दिशा में कोई विशेष खोज ही हो पाई थी। और न ही कोई ऐसी परंपरा ही मिलती है। न ही उस युग में आधुनिक सुविधाएं ही थी। तथापि उन्होंने उपलब्ध सामग्री के आध्ययन के आधार पर ही अपने मत निर्धारित करने का प्रयास किया था[460]।

इस प्रकार जहां तक ' इतिहास विवेक ' की कमी का प्रश्न है वहां तो यह कहा जा सकता है कि यह कमी भाई सन्तोख सिंह की कमी न होकर उस युग की 'इतिहास लेखन प्रकिया' की कमी है। निष्कर्षतः हम कह सकते है कि

460- गु प्र॰ सू॰ रा 1, अंशु 5, अुक 3-8, पृ॰ 1324

भाई सन्तोख सिंह में आधुनिक वैज्ञानिकता का बेशक अभाव हो परन्तु उन्होंने अपने जानते हुए भी इस बात के प्रति बराबर सर्तकता दिखाई है।कि उन की रचना रच में असत्य अतथ्य का मेल न होने पाये और इसी आधार पर यदि हम उन्हें पुराने खेवे का इतिहासकार कहते हुए 'गुरु प्रताप सूरज' को ऐतिहासिक वृतान्त सम्पन्न एक विशाल भारतीय संहिता ग्रंथ कहें तो कोई अत्युक्ति न होगी ।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण के अनुकूल इस में स्थान स्थान पर तिथियां (संवत्) आदि भी मिलते है जो वस्तु-क्रम को वैज्ञानिक से अलंकृत करते है । वैज्ञानिक के अतिरिक्त उनका दार्शनिक एवं आध्यात्मिक दृष्टिकोण भी इस ग्रंथ कोशुध्द इतिहास ग्रंथ नहीं रहने देता । इस में सांस्कृतिक समन्वय के लिए वैदिक वाङ्मय षड्दर्शन विभिन्न उपासना पध्दतियों आदि का भी उल्लेख हुआ है। भाई सन्तोख सिंह भारतीय उपनिषद् दर्शन से विशेष प्रभावित है और वेदान्त के प्रति इतना मोह है कि वे स्थान स्थान पर तदानुकूल विचारधारा का प्रतिपादन भी इतिहासके माध्यम से करते है । विभिन्न भारतीय दर्शनों से अपने चिन्तन पक्ष को प्रौढ करते हुए वे क्रमशः आगे बढ़े है । उनका अध्यात्मवादी दृष्टिकोण भी स्वच्छ और सजग है ।उसमें किसी प्रकार की पलायनवादिता के दर्शन नहीं हाते है । वे तो सिक्ख को युध्दवीर बनने का सन्देश देते हैं जिस से राष्ट्रीयता की भावनाएं विकसित होती है ।

धार्मिक दृष्टिकोण भी उन्हें पूर्ण तटस्थ और वैज्ञानिकता से युक्त नहीं रहने देता । विश्व की सभी संस्कृतियो एवं सभ्यताओं के इतिहास राष्ट्रीय ,सांस्कृतिक या धार्मिक झुकाव से कहीं न कहीं दबे अवश्य दिखाई देते हैं । प्रत्येक देश का राष्ट्रीय इतिहास अपनी राष्ट्री चेतना , आस्था और आकाक्षा के प्रति सजग और सर्तक रहता है । इसी प्रकार काव्य और विशेष कर पुनर्जागरण का काव्य राष्ट्रीय —— ऐतिहाकसिक सांस्कृतिक विरासत के उदात मूल्यों को प्रतिष्ठा के प्रति सजग रहता है। 'गुरु प्रतापसूरज ' मेंयद्यपि सिक्ख सिक्ख जाति के साम्प्रदायगत विचारों का प्रतिपादन है और इसमें उनके निष्ठावान गुरु भक्त रुप को अभिव्यक्ति मिली है तथापि वह अपनी परंपरा के प्रति भी आस्थावान है । यही नहीं वे अपने सम-सामयिक युग से भी प्रेरणा पाते हैं और जिसका प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष प्रभाव उन की रचनाएं ग्रहण करती हैं ।

प्रत्यक्ष में तो वे वर्तमान को अतीत में प्रक्षेपित करते हैं और परोक्ष में वह अतीत से कार्य'व्यापरों के ऐसे आयाम चुनते हैं जो वर्तमान सन्दर्भो को ओर भी इंगित कर सकने में समर्थ हों ।भाई सन्तोख सिंह जैसा गुरु भक्त इतिहासकार भी इस सहज रुझान का संवरण नहीं कर सका है ।इसी लिए उन्होंने सिक्ख जाति पर हुए अत्याचारों की मार्मिक एवं रोमांचित कर देने वाली ऐतिहासिक कहानी को अपनी गुरु भक्ति के अनुकूल बड़ी निष्ठा से अंकित किया है ।

निष्कर्ष : निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि भाई सन्तोख सिंह इतिहासकार रूप ,कवि, वैज्ञानिक, निष्ठावानभक्त, आध्यात्मिक साधना में रत साधक, राष्ट्रनायक, सांस्कृतिक चेतना को जागृत करने वाले जागरूक कलाकार आदि विभिन्न रूपों से युक्त है जो उन के बहुमुखी प्रतिभाशाली होने का प्रमाण है इस लिए 'गुरु प्रताप सूरज' इतिहास के अतिरिक्त धर्म ग्रंथ भी , नीति ग्रंथ भी, महाकाव्य भी, भारतीय संस्कृति का व्याख्याता भी है और पुराणेतिहास शैली में कथारस का प्रदाता भी है ।इस लिए कहा जा सकता है कि वह भारत का अद्वितीय गौरव ग्रंथ है ।

तृतीय अध्याय

'गुरु प्रताप सूरज' में ऐतिहासिक, काल्पनिक एवं पौराणिक तत्व और उसका स्वरुप ।

तृतीय अध्याय

'गुरु प्रताप सूरज' में ऐतिहासिक, काल्पनिक एवं पौराणिक तत्व और उनका स्वरुप

प्रवेश

जीवन की अवस्था और गति का लेखा होने के कारण इतिहास काव्य का उपयोगी उपादान है किन्तु काव्य इतिहास नहीं है। इतिहास यथार्थ की परंपरा का वृत है । 'काव्य' यथार्थ के आधार पर कल्पना की सृष्टि है। काव्य की सर्वप्रथम मर्यादा यह है कि कोई वृत्त इतिहास पर आधारित है तो जहां तक उसमें ऐतिहासिक तथ्यों का ग्रहण कियागया है, वहां तक उनका अंकन यथार्थ रुप में ही किया जाना उचित है। व्यावहारिक चेतना के समान ही यह यथार्थ की अनुकृति कला के सौंदर्य में बाधक नहीं वरन् चेतना के प्रसाद द्वारा सौंदर्य की साधक है। काव्य की दूसरी मर्यादा का सम्बन्ध ऐतिहासिक तथ्यों के मिथीकरण एवं परिवर्तन से है। कवि इतिहास-लेखक नहीं, इस लिए उसे इस परिवर्तन का उतना ही अधिकार है, जितना नवीन तथ्यों और कल्पनाओं के सृजन का। किन्तु परिवर्तन के द्वारा वास्तविक तथ्यों को विकृत बनाने का अधिकार कवि को भी नहीं है। विकृति का सम्बन्ध तथ्य के समग्र रुप से है, यदि इस समग्र रुप में कोई ऐसा अन्तर नहीं आता जो सामाजिक औचित्य को चुनौती देता है अथवा यथार्थ के आधार को खण्डित कर देता है, तो वह कलात्मक सामंजस्य में बाधक नहीं होता । ऐतिहासिक तथ्यों के सम्बन्ध में कल्पना की स्वच्छन्दता सीमित है। इतिहास अतीत का इतिवृत है, अतीत अपरिवर्तनीय है। परन्तु यही अतीत इतिहास बन कर स्मृति में कल्पना का रुप ग्रहण करता है। स्मृति अप्रस्तुत का उपस्थापन है। कल्पना अप्रस्तुत का विधान है। स्मृति पूर्वानुभव का स्मरण है। अतः भावी पीढ़ियों के लिए इतिहास भी एक कल्पना ही है। यही इतिहास प्रत्येक व्यक्ति का एक समृध्द उत्तराधिकार बनता है जो उसके व्यक्तित्व को समृध्द करता है। यही हमारे जीवन का एक दृढ़ संबल और है काव्य का उपकरण । इतिहास में कुछ असाधारण पात्र, वृत, चरित्र सम्बन्ध और भाव चमकते है। अपनी असाधारणता के कारण ही वे इतिहास में अमर

रहते हैं। ऐसी असाधारणता जीवन में दुर्लभ है। वह कुछ असाधारण व्यक्तियों के जीवन की अद्भुत प्रतिभा से चरितार्थ होती है।कवियों के लिए भी ऐसी असाधारणता की कल्पना करना कठिन है। इस लिए वे इतिहास का अवलम्ब ग्रहण करते हैं।[1] भारतीय साहित्य की परंपरा में इतिहास और पुराण दोनों का नाम साथ साथ लिया जाता है। ये दोनों वेदांग माने जाते हैं। इतिहास और पुराण के द्वारा वैदिक ज्ञान का उपबृंहण का विधान शास्त्रों में मिलता है।[2] महाभारत के समान ये जन सामान्य के लिए पंचम वेद के तुल्य हैं।[3] इतिहास और पुराण का यह युग्म दोनों की समानता के कारण प्रसिध्द हुआ है। दोनों में अतीत का वृतांत रहता है। इतिहास में जहां केवल अतीत (भूत) का विवरण होता है वहां पुराणों में भूत भविष्य और वर्तमान तीनों का परिगणन होता है, यही इनका वैशिष्ट्य है। परन्तु पुराणों में अलौकिक और अतिरंजित कल्पनाएं अधिक है पर इतिहास भी इन से पूर्णतः मुक्त नहीं है। महाभारत और रामायण की कथाओं में अधिक अलौकिक वृत हैं। भारतीय इतिहास में आधुनिक वैज्ञानिक इतिहास की भान्ति केवल लौकिक तथ्यों का यथार्थ अंकन ही नहीं हुआ है प्रत्युत अलौकिकता का भी उस में पर्याप्त मिश्रण हुआ है। यह अलौकिकता अद्भुत प्रतीकों के रूपों को धारण कर काव्य के सौंदर्य में सहज अन्वित होकर सांस्कृतिक परंपराओं का संवहन करती है। अतः काव्य में ऐतिहासिक, काल्पनिक एवं पौराणिक वृत्तों की अलौकिकता का सामंजस्य बन पड़ा है। इस सामंजस्य की दृष्टि से 'गुरु प्रताप सूरज' का भारतीय काव्य परंपरा में एक विशेष स्थान है ।

1- इतिहास-पुराणाभ्यां चक्षुर्भ्यामिव सत्कविः
विवेकांजनशुध्दाभ्यां सूक्ष्ममप्यर्थमीक्षते ।।— काव्य मीमांसा, अ. 8

2- इतिहास- पुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत् ।
बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति ।। - महाभारत आदि पर्व, 1 · 204

3- (क) ऋग्यजुः सामाथर्वाख्या वेदाश्चत्वार उद्धृताः
इतिहासपुराणं च पंचमो वेद उच्यते ।। - कल्याण : हिन्दु संस्कृति अंक, पृ· 55।
(ख) अथर्व वेद : 11· 7 · 24
(ग) छान्दोग्य 7 · 1 · 2

'गुरु प्रताप सूरज' में ऐतिहासिक, काल्पनिक एवं पौराणिक तत्व और उनका स्वरूप

'गुरु प्रताप सूरज' के कथानक का प्रमुख स्रोत इतिहास-पुराण है। इस महाकाव्य का गाम्भीर्य ऐतिहासिक एवं पौराणिक संकेतों के बाहुल्य के कारण और भी अधिक बढ़ गया है। महाकाव्यकार ने अपने कर्तव्य एवं कौशल को इस बात में निहित किया है कि वह इतिहास पुराण, पुराण के आख्यानों एवं जीर्ण-शीर्ण कथा-स्रोतों को अपनी कल्पना शक्ति से प्रयोग द्वारा दीप्तिमान कर युग, जीवन और समाज के तत्कालिक परिसंदर्भों में प्रस्तुत करे। कथानक के अतिरिक्त चरित्र-योजना, शिल्प-विधान और उद्देश्य सिध्दि में उसकी प्रौढ़-कवि -कल्पना का योगदान कम महत्वपूर्ण नहीं है। भाई सन्तोखसिंह ने आद्यान्त कल्पना शक्ति के सशक्त प्रयोग द्वारा कथाचयन में मौलिकता का प्रदर्शनकिया है। उन्हें इतिहास-पुराण का विस्तृत ज्ञान था। अत्यन्त प्रसिध्द पौराणिक आख्यानों के अतिरिक्त उन्होंने अत्यन्त अपरिचित कथाओं का भी स्थान स्थान पर उल्लेख किया है। एक ही कथानक कई बार विभिन्न रूप धारण कर लेता है जो उद्वेजक प्रतीत नहीं होता प्रत्युत प्रत्येक बार कवि उसे नई कल्पना के परिधान में नितान्त विभिन्न भावों की पुष्टि द्वारा रुचिकर बना देता है। गुरु-कथा शताब्दियों से उतरोभारत के जन जीवन का कंठहार बनी हुई है। गुरुमुखी लिपि में रचित हिन्दी साहित्य में गुरुओं के जीवन चरित पर आधारित पर्याप्त महाकाव्यों की सृर्जना हुई है। इस परंपरा में महिमा प्रकाश, गुर विलास (सुक्खा सिंह), नानक विजय, वचित्र नाटक, गुरु शोभा आदि अनेक पौराणिक एवं ऐतिहासिक प्रबन्ध काव्य उल्लेखनीय हैं। इसी परंपरा में गुरु प्रताप सूरज की रचना हुई है। गुरुओं का चरित्र कवियों की काव्य सृजन प्रेरणा के लिए अजस्र-स्रोत रहा है। गुरुकथा के माध्यम से उन्होंने अपने काव्यों में भारतीय संस्कृति के विभिन्न आदर्शों का पुनराख्यान किया है। ये कथानक प्रायः उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक श्लेष, अतिशयोक्ति, भ्रान्तिमान, समासोक्ति आदि अलंकारों के साथ आते हैं। इस तरह से भाई सन्तोख सिंह की अलंकारप्रियता के साथ साथ उनकी इतिहास-पुराणज्ञता का सुन्दर समन्वय हुआ है। अपने काव्य मे चमत्कार बढ़ाने के लिए उन्होंने जो पुराणों का सहारा लिया यह ठीक ही किया है क्योंकि पौराणिक

कथाओं के समाज में अत्यन्त प्रिय होने के कारण उनके द्वारा भाव-बोध कराने में बड़ी सुगमता हो जाती है। कवि ने जहां अप्रचलित कथाओं का उल्लेख किया है वहां उसकी केवल वैदुष्य-प्रदर्शन की भावना मानी जायेगी ।यहां 'गुरु प्रताप सूरज' के अन्तर्गत केवल प्रसिध्द कथानकों को ही पुराणोक्त ढंग से अति संक्षिप रूप में रखने का प्रयत्न किया जायेगा । जो कथा कई पुराणों में मिलती है।उसे वहीं से उद्धृत किया गया है। जहां की कथा 'गुरु प्रताप सूरज' में कथित कथा से अधिक संगति रखती है।

काव्य में पौराणिक तत्व

भारतीय संस्कृति और साहित्य में पुराणग्रंथ चिरन्तन निधि हैं। भारतीय मनीषा के विविधोन्मुखी चिन्तन और चेतना की जितनी सुन्दर सुव्यवस्थित, सम्पूर्ण और सर्वग्राह्य अभिव्यक्ति पुराण साहित्य में प्राप्त है, उतनी अन्यत्र दुर्लभ है। इस देश के जन जीवन के सांस्कृतिक अभ्युदय का जितना भव्य, विराट् और विशद् चित्र अंकित करने में पुराण लेखक सफल हुए हैं उतना भारतीय वाङ्मय के किसी रूप का कोई लेखक नहीं हुआ । पुराण ग्रंथ ज्ञान राशि के अनन्त स्रोत है। इनकी विद्वानों ने विश्वकोश से तुलना की है। पुराणकार ने मानव जीवन के प्रत्येक पक्ष को विवेच्य विषय बनाया है। पुराणों में ईश्वरीस गुणगान, राजकुल यशोगानऔर अलौकिक आख्यानों के होते हुए भी उनका मूलस्वर मानवतावादी है क्योंकि सभी का लक्ष्य मानव को मंगल कामना है। मानव जीवनके ही व्यापक विकास की मूलगाथा समस्त पुराणों में अन्तर्व्याप्त है।मानव जीवन को हर पहलू से संवारने में पुराणों ने बहुत बड़ा योगदान दिया है। राष्ट्रीय, सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना के प्रतीक पुराण मुमूर्ष समाज को प्रेरणा शक्ति ,शिथिल एवं असंयत राष्ट्र को जागृति प्रदान करने वाले सतत प्रीति शिखावाही स्रोत हैं ।इन में हमारे जातीय जीवन का उदन्त निहित है।[4]

भारतीय महाकवियों ने इस अमूल्य ज्ञान सामग्री काअपने विराट काव्य ग्रंथों में समुचित प्रयोग किया है। हिन्दी के काव्य ग्रंथों में पुराणों के कथानकों, विचार-परंपराओं और शैलियों का प्रयोग हुआ है।काव्य के विभिन्न रूपों में महाकाव्य का प्रमुख स्थान है।

4- श्रीराम प्रसाद त्रिपाठी : वायु पुराण, आमुख ,पृ॰ 5, हि॰ स॰ स॰ प्रयाग ।

गुरुत्व और गाम्भीर्य की दृष्टि से तो शीर्ष महाकाव्य में युगजीवन की चेतना का विराट चित्र होता है और उच्च उद्घोष होता है। महाकाव्य कार महती काव्य प्रतिभा से सम्पन्न कलाकर होता है। उसके शब्दनाद में समाजों के सांस्कृतिक सृजन और समुन्नयन के गति की स्वर लहरी होती है। प्रस्तुत प्रसंग में इस काव्य रूप (महाकाव्य) के सृजन में पौराणिक इतिवृत के अनुदान पर विचार अभीप्सित है।

हम इस तथ्य को लक्ष्योभूत करके चल रहे हैं कि महाकाव्य का विधायक अपने काव्य की सामग्री का संकलन ज्ञानराशि के अथाह सागर की जीवन्त और चेतना-स्पंदित उर्मियों से करता है। महाकाव्य प्रबन्धकाव्य का वह भेद है जिसमें अनिवार्यतः कथाक्रम होता है। कथानक महाकाव्य का अपरिहार्य अंग या प्रमुख उपकरण है। हमारे महाकाव्यों के कथानकों की प्राप्ति के अक्षय भंडार पुराण ग्रंथ रहे हैं। हिन्दी ही नहीं अपितु भारतीय और विश्व महाकाव्य इस दृष्टि से अध्ययन करने पर यह मानने को बाध्य होना पड़ता है कि उन का बृहद्-अंश पौराणिक कथानक और निजंधरी आख्यानों ( ) पर अवलम्बित है। सभी साहित्यों के आदि और प्राचीन महाकाव्यों पर तो यह बात और भी अधिक लागू होती है। यदि हम अपने अध्ययन-क्रम की परिधि सीमित करके भी विचार करें अर्थात् संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाओं के महाकाव्यों का ही कथानक की दृष्टि से पर्यालोचन करें तो भी हमें उन पर पौराणिक प्रभाव स्वीकार करना पड़ेगा। इसका एक कारण यह भी है कि पुराणों की कथाएं महाकाव्य की वस्तु के लिए निर्दिष्ट सभी गुणों से सम्पन्न हैं। संस्कृत काव्याचार्यों द्वारा दिये गये महाकाव्य के वस्तु विषयक सभी निर्देशों का इन पर सफल निर्वाह भी हो जाता है।

भारतीय महाकाव्यकारों ने पुराणों के अखंड कथा भंडार से सामग्री का संकलन किया है और महाकाव्यों में पौराणिक वस्तु को कहीं तो मूल रूप में, कहीं स्रोत रूप में और कहीं तन्तु रूप में ग्रहण किया है। पौराणिक कथाओं की कुछ काव्यात्मक विशेषताएं भी हैं। उदाहरण के लिए अर्थ-वैभिन्न्य, अर्थ-वैचित्र्य आदि। पौराणिक कथाओं के साहित्यिक परीक्षण करने पर हमें इन कथाओं के आध्यात्मिक, भौतिक और ऐतिहासिक अर्थों के अतिरिक्त सांकेतिक, प्रतीक, परंपरित और लोक-विश्रुत अर्थ भी मिलते हैं। पौराणिक कथाओं को प्रायः कपोल-कल्पित, असंगत और अतिरंजित कह कर तिरस्कृत किया जाता

किन्तु यह अल्पज्ञता का प्रमाण है। पौराणिक कथाओं के गंभीर अध्ययन से उनके तात्विक अर्थ प्राप्त हुए है जो ज्ञानार्जन और साहित्य-सृजन दोनों दृष्टियों से महत्वपूर्ण हैं। इस के अतिरिक्त पौराणिक कथाओं के सूक्ष्म अध्ययन पर इन कथाओं में हम सत्य और कल्पना यथार्थ और आदर्श आदि साहित्यिक कथातत्व भी पाते हैं। कथाओं में प्राकृत, अतिप्राकृत और अप्राकृत घटना-चक्र तथा कार्य-व्यापार सभी सप्रयोजन हैं ।

भारतीय महाकाव्यकारों ने पुराणों से वस्तु ग्रहण कर के उसमें युगीन परिस्थितियों, समसामयिक वातावरण और तत्कालीन जीवनादर्शों के अनुरूप परिवर्तन तथा परिवर्धित किया है। वस्तु सत्य तो यह है कि अनेक महाकवियों ने पौराणिक कथानकों के जीर्ण-शीर्ण ढाँचों में अपनी काव्यशक्ति से प्राणदान दिया है। उन कथानकों के अलौकिक और अतिरंजित उपकरणों का परिष्कार युग की आवश्यकताओं और परिस्थितियों के परिपार्श्व में किया है। डा॰ देवराज के शब्दों में – "काव्य सृजन एक सांस्कृतिक प्रश्न है । इस कथन की सत्यता का स्वरुप महाकाव्यों में ही देखा जा सकता है। महाकाव्य के रचयिता से सांस्कृतिक अभ्युत्थान की मांग की जा सकती है। मेरी समझ में पुराण भारतीय सांस्कृतिक वाङ्मय के अंग हैं। उनके कथात्मक वैचारिक और शिल्प विकास से हम हिन्दी महाकाव्य को सांस्कृतिक साहित्य श्रृंखला में जोड़ने का प्रयास मानेंगे' ।

पुराण साहित्य का सांस्कृतिक महत्व

वेद, स्मृति और सदाचार ये तीन भारतीय साहित्य में आप्त प्रमाण माने जाते हैं। पुराणों का समावेश सदाचार में होता है। जो नियम या विध वेदों या स्मृति में आदेश के रुप में बतलायी गयी हैं उन्हीं नियमों और विधियों को जीवन में उपयोग करने वाले महापुरुषों का उदाहरण देकर उनके आचरण के द्वारा ही पुराणों में प्रतिपादित किया गया है। पुराण सामान्य जनता के लिए थे । अतः कहानी के रुप में गूढ़तम विषयों का भी प्रतिपादन पुराणों में मिलता है। पुराण में हमारे धर्म कार्य के लिए देवी, देवता, तीर्थ, व्रत, उनका फल, उनकी प्रतिमा , उनकी प्रतिष्ठा आदि सभी का वर्णन मिलता है। जो धर्म और संस्कृति आज हमारे देश में वर्तमान

है उसे हम वैदिक संस्कृति कहते हैं, किन्तु वास्तव में वह वैदिक धर्म और सांस्कृतिक न होकर पौराणिक धर्म और संस्कृति है। केवल इसी अर्थ में उसे वैदिक कहा जा सकता है कि उसका मूल रुप वेदों में विद्यमान है। उदाहरणार्थ हम यदि शिव और विष्णु को, जो प्रसिध्द पूज्य देव हैं, ले तो इनका जो रुप हमारे समक्ष या हमारे मन्दिरों में दिखलाई पड़ता है वह वास्तव में वैदिक नहीं पौराणिक है। पुराणों ने केवल धर्म या आचार को ही नहीं अपनाया किन्तु जन-जीवन की उपयोगी सभी वस्तुओं का तथा सभी विषयों का प्रतिपादन किया है। हम देखते हैं कि पुराणों में भूगोल, खगोल, ज्योतिष, नक्षत्र, नदी, पहाड़, आयुर्वेद, निदान, राजनीति, धर्मनीति, अर्थशास्त्र, इतिहास, समाज-शास्त्र, वर्ण-श्रम-व्यवस्था, सामुद्रिक विद्या तथा तत्कालीन प्रचलित सभी प्रकार के दार्शनिक सिध्दांतों का भी प्रतिपादन किया गया है। यदि कहा जाये कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के विषय जो पुराणों में हैं, वही सर्वत्र हैं और जो पुराणों में नहीं है वह कहीं नहीं है तो अत्युचित नहीं होगी। यह पुराण की ही देन है कि भारतीय अशिक्षित जनता ईश्वर, कर्म-नियम, पुर्नजन्म आदि में विश्वास रखते हुए कष्ट में भी सन्तोष और धैर्य का जीवन यापन कर रही है। हमारे पुराण जीवन के सभी पहलुओं को लेकर सभी दृष्टियों से विचार करने का प्रयास करते हैं। मानव जीवन को नैतिक और धार्मिक बनाने के लिए देश की उन्नति, समाज का विकास तथा व्यक्ति के उत्थान में पुराणों का विशेष हाथ रहा है। अनन्त काल से पुराण अपनी अपूर्व कथाओं द्वारा हमें धैर्य, सन्तोष, त्याग तपश्चर्या, ब्रह्मचर्य, परोपकार, देशसेवा, मानव प्रेम और विश्वबन्धुत्व की शिक्षा देते आ रहे हैं। भारतीय संस्कृति का ऐसा कोई भी अंश नहीं है जो पुराणों की देन न हो।

भारतीय संस्कृति के विकास-क्रम को भली भान्ति समझने के लिए पुराण-साहित्य का बड़ा महत्व है। संस्कृति के उल्वल स्वरुप को झलकाने वाली अनेक परंपराए व प्रथाएँ, आख्यान व कल्पित गाथाएं, विभिन्न सिध्दांत व धार्मिक विधियां, नैतिक नियम धार्मिक व दार्शनिक विचार पुराण साहित्य में गुम्फित हो गए हैं। आधुनिक काल के आर्य (हिंदू) धर्म का सुस्पष्ट रुप प्रस्तुत करने के कारण पुराण-ग्रंथ विद्वानों के लिए विशेष अनुसन्धान का विषय बन गए हैं। देशी-विदेशी ऐतिहासिक व आलोचक इस

साहित्य का अनुशीलन बड़ी तत्परता से करते हैं। प्रायः सभी विद्वान इन पुराणों को भारतीय सामाजिक जीवन का प्रतीक स्वीकार करते हैं। यह साहित्य पूर्ववर्ती युगों में भारतीय जीवन पर पड़ने वाले अन्यान्य प्रभावों, तत्जन्य परिवर्तनों का सुस्पष्ट रूप प्रस्तुत करता है। समय समय पर होने वाली धार्मिक, सांस्कृतिक व राजनीतिक क्रान्तियों के कारण भारतीय जीवन में जो नवीन अंश समाविष्ट होता रहा है उसी को अपने में छिपा कर ये ग्रंथ नाम से 'पुराण' अर्थात् पुराने कहलाते हैं। समकालीन जनता की आस्थाओं का प्रतिनिधि होकर भी उत्तरकालीन जनता के हृदयों पर अपनी स्थिर छाप अंकित करने के कारण 'पुराण' नामक यह साहित्य चिरनवीन कहलाता है। आज इस साहित्य का अनुशीलन कोई भारतीय जीवन के प्रागैतिहासिक काल के इतिवृत को लिपि-बध्द करने के प्रयोजन से कर रहा है, कोई भारतीय संस्कृति की रूपरेखा को उज्ज्वल करने के लिए ओर प्रवृत हो रहा है, कोई इस के द्वारा आर्य (हिन्दू) जनता की नैतिक धारणाओं को मूर्त रूप देने का प्रयत्न कर रहा है कोई मानव की ज्ञान-पिपासा को शान्त करने की लालसा से इस से आध्यात्मिक रस का पान कर रहा है, कोई अपनी कोमल मनोवृत्तियों को तृप्त करने के लिए इसकी गाथाओं के द्वारा साहित्यिक रस का आस्वादन कर रहा है। विभिन्न सम्प्रदाय अपने अपने साम्प्रदायिक रूप की प्रतिष्ठा के लिए तथा साम्प्रदायिक व्यक्तियों की भावना को संतुष्ट करने वाला यह पुराण साहित्य भारतीय जन के गौरव का विषय है ।

पुराणों का सांस्कृतिक महत्व निर्विवाद है। भारतीय जन जीवन का स्पष्ट चित्र पौराणिक गाथाओं में चित्रित हो गया है। विष्णुपुराण में भारत के भौगोलिक रूप का यथार्थ उल्लेख मिलता है। भारत के पर्वतो, पर्वत-शृंखलाओं, नदियों का यथार्थ वर्णन प्रस्तुत करके पुराणों ने शक, यवन, पल्लव तथा हूण आदि विदेशी जातियों का भी उल्लेख किया है। इनविदेशी जातियों के आक्रमण के कारण भारत में कई क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए थे । प्राचीन वैदिक धर्म के विकृत हो जाने पर कई महापुरुषों ने अपने अपने विचारों के अनुसार नवीन धर्म व नवीन समाज-व्यवस्था स्थापित करने का यत्न किया था । इस प्रकार विभिन्न सामाजिक एवं धार्मिक क्रान्तियों के प्रभाव में भारतीय

वैदिक धर्म का नवीन रूप उद्भावित हो रहा था । उसी नवीन रूप को लेकर पुराणों की कथाएं प्रचलित हुई। इस दृष्टि से भारतीय संस्कृति के विकास-क्रम को सूचित करने वाले पुराण महत्वपूर्ण सिध्द होते हैं ।

पुराण साहित्य : स्वरूप और संख्या

प्राचीनकाल में ही भारतवर्ष में पुराणों का बड़े आदर के साथ पठन, श्रवण और अनुशीलन होता आया है। भारतीय जनता के हृदय में भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, सदाचार तथा धर्मपरायणता को दृढ़तापूर्वक प्रतिष्ठित करने का श्रेय पुराणों को ही है। वेद, शास्त्र, ईश्वर, वर्णश्रम, धर्मपुनर्जन्म, आत्मा की अमरता और परलोक की सत्ता पर जो हमारा अटूट विश्वास है, यह समग्र आस्तिकता पुराणों की ही देन है। हमारी जीवनचर्या, सामाजिक व्यवस्था, संस्कृति, सभ्यता, संस्कार, व्यावहारिक नीति-रीति, आचार-संहिता एवं मर्यादा पर वेदों और स्मृतियों के साथ इतिहास पुराणों का ही अधिक प्रभाव है। पुराण-वर्णित पावन चरित्र हमारे मन-प्राणों में तो रमें ही हैं, लोकगीतों तथा स्त्रियों के गानों आदि में भी अनादिकाल से मुखरित होते आ रहे हैं। सतीत्व के ऊँचे आदर्श, शौर्य, रण-क्षेत्र में हंसते हंसते प्राण निछावर कर देने की उदात्त भावना तथा त्याग-बलिदान के लिये सतत समुद्यत रहने की प्रबल प्रेरणा हमें पुराणों से सदा प्राप्त होती आयी है।

'पुराण' पद की व्युत्पति

'पुराण' पद की व्युत्पति पाणिनि,[5] यास्क और स्वयं पुराणों ने भी बतलाई है। 'पुराण' पद स्वयं सब से पुरानेपन का द्योतक है। पाणिनी की व्युत्पति के अनुसार इसका 'पुराभवम्' (पुरानी घटनाएं) अर्थ स्फुट होता है। 'पुरा' यह अव्यय पद है। इसका अर्थ है – अत्यन्त प्राचीन होना। उससे 'भव' इस अर्थ में 'ट्यु' प्रत्यय करने से 'पुराण' शब्द सिध्द होता है। इससे यह स्पष्ट है कि अत्यन्त प्राचीन काल

5- 'सायं चिरं प्राह्णे - प्रगे व्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च।

– पाणिनी सूत्र 4 · 3 · 23

में जो कुछ हुआ, उसे 'पुराण' कहते हैं। निरुक्तकार यास्काचार्य ने 'पुरा' इस अव्यय को पूर्व में रख कर 'नू' धातु से 'पुराण' शब्द सिध्द किया है। उनकी व्युत्पत्ति है 'पुराणं पुरा नवं भवति'[6] अर्थात् 'जो अत्यन्त काल मे नया था ।' कुछ पुराणों में शब्दार्थक 'अण' धातु से 'पुराण' शब्द सिध्द किया गया है। 'वायु पुराण' के अनुसार इस शब्द की यह व्युत्पत्ति है – 'पुरा अनति' अर्थात् 'प्राचीनकाल में जो जीवित था'[7]। 'पद्म पुराण' के अनुसार यह निरुक्ति इस से किंचित भिन्न है – 'पुरा परंपरा वष्टि कामयते' अर्थात् 'जो प्राचीनता की एवं परंपरा की कामना करता[8] है। वह पुराण है। ब्रह्मांडपुराण के अनुसार इस से भिन्न एक तृतीय व्युत्पत्ति मिलती है। 'पुरा एतत् अभूत' अर्थात् 'प्राचीनकाल में ऐसा[9] हुआ' 'मत्स्यपुराण' के अनुसार कहा जा सकता है कि 'पुरातन कल की घटनाओं को पंडितजन 'पुराण' कहते[10] हैं।

इस प्रकार एक विशिष्ट प्रकार के साहित्य के अर्थ में 'पुराण' शब्द का प्रयोग जब तक नहीं होता था, तब तक इस शब्द का अर्थ 'प्राचीन कथा' (आख्यान) अथवा

6- यास्क : निरुक्त, 3 · 19 · 24

7- यस्मात् पुरा ह्यनितीदं पुराणं तेन हि स्मृतम् ।
निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते ।। – वायु पुराण : 1 · 203

8- पुरा परंपरा वष्टि पुराणं तेन तत् स्मृतम् ।। - पदम् पुराणः 5 · 2 · 53

9- यस्मात् पुरा ह्यभूच्चेतत् पुराणं तेन तत स्मृतम् ।
निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते ।। – ब्रह्मांडपुराण : 1 · i · 173

10-(क) पुरातनस्य कल्पस्य पुराणानि विदुर्बुधाः ।– मत्स्यपुराण : 53 · 63

(ख) Dr. Winternitz: History of Indian Literature p.518

(ग) Dr. Pusalkar: Studies in Epics and Puranas of India Intruduction p.44

'प्राचीन विवरण' था और अज्ञात आदिकाल से, वेदों के प्रकट होने के भी पहले से, इस रूप में पुराण विद्यमान थे। अथर्व वेद में पुराणों का नाम[1] आता है। उससे यह स्पष्ट नहीं होता कि उस समय ये पुराण ग्रंथों के रूप में भी रहे हों। पर छान्दोग्य उपनिषद् और सूत्र ग्रंथों से यह स्पष्ट होता है कि असली पुराण उपनिषदों और सूत्रों के समय में आये[2]।

परिभाषा :

'पुराण' की साहित्यिक परिभाषा अमरकोश तथा कुछ पुराणों में की गयी है और उसके पांच लक्षण बतलाये गये हैं :-

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरितं चैत्र पुराणं पंचलक्षणम् ।।

सर्ग (सृष्टि), प्रतिसर्ग (लय और पुनः सृष्टि), वंश (देवताओं की वंशावली), मन्वन्तर (मनु के का विभाग) और वंशानुचरित (राजाओं के वंशवृत्त) - पुराण के ये पांच लक्षण[3] हैं।

उपस्थित पुराणों में कोई भी पूर्णरूप से इस परिभाषा के अनुरूप नहीं है। कुछ पुराणों में तो इन से कई विषय अधिक है और कुछ में इनकी प्रायः कोई चर्चा तक नहीं है, अन्य विषय बहुत हैं। फिर यह पंचलक्षण उपस्थित पुराणों का बहुत ही छोटा अंश है। इससे यह मालूम होता है कि धर्मानुशासन पुराणों के मूल उद्देश्यों में नहीं था, न इनकी प्रारंभिक रचना का कोई साम्प्रदायिक हेतु ही था। पीछे की रचनाओं को पुराण की परिभाषा में लाने के लिये स्वयं पुराणों ने ही कहा है कि पंच-

---

1- ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ।। - अथर्व वेद : 11 · 7 · 24

2- स होवाच ऋग्वेदं भगवो ध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणम् ।
चतुर्थ मितिहासपुराणं पंचमं वेदानां वेदमिति ।। — छान्दोग्य : 7 · 1 · 2

3- पं· बलदेव उपाध्याय : पुराण विमर्श, पृ· 125 (चौखम्बा, 1965) काशी ।

लक्षण केवल उपपुराण के लिये हैं, महापुराण होने के लियो तो उस में दस लक्षण होने चाहिए। इन दस में पंच लक्षण के अतिरिक्त अन्य लक्षण ये हैं – वृत्ति, रक्षा (ईश्वरावतार), मुक्ति, हेतु (जोव) और अपाश्रय (ब्रह्म)।

पुराणवित् पुराण को इन दस लक्षणों से युक्त मानते हैं –सर्ग, विसर्ग, वृत्ति, रक्षा, मन्वन्तर, वंश, वंशानुचरित, संस्था, हेतु और अपाश्रय[14]। कोई पांच ही लक्षण मानते हैं – महदल्पव्यवस्था से ऐसा होता है (अर्थात् महापुराणों के दस और उपपुराणों के पांच लक्षण होते है)।

मत्स्यपुराण ने इस में ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य और रुद्र की स्तुति, सृष्टि का लय और स्थिति, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष - इन विषयों को और जोड़ा है। ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य और रुद्र का माहात्म्य, सृष्टि के लय और स्थिति का माहात्म्य, पांच विषयों का वर्णन करने वाले पुराण में वर्णित हैं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का कोर्तन हैं। यह सब पुराणों में है और इसके विरुध्द जो कुछ है, उनका भो फल वर्णित है।[15]

<u>संख्या</u>

पुराणों में 18 महापुराण और 18 उपपुराण गिने जाते हैं। महापुराणों की नामावलि का क्रम सभो पुराणों में प्रायः एक सा हो है। इसमें केवल दो एक परिवर्तनों को छोड़ कर एकरूपता हो है। नामावलि यह है – पद्म, विष्णु, वायु, भागवत, नारद, मार्कण्डेय, अग्नि, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त्त, वराह, लिंग, स्कन्द, वामन, कूर्म, मत्स्य, गरुड और ब्रह्मांड। निम्नलिखित अनुष्टुप् में पुराणों को पूरो नामावलि संक्षेप में आ गई है –

मद्वयं भद्वयं चैव ब्रत्रयं वचतुष्टयम्।
नालिंपाग्निपुराणानि कूस्कं गारुडमेव च[16]।।

14- श्रो मद्भागवत : 11 · 7 · 9-10

15- मत्स्य पुराण : 53 · 66 · 7

16- देवीभागवत : 1 · 3

" आदि अक्षर 'म' वाले 2, 'भ' वाले 2, 'ब्र' वाले 3, 'व' वाले 4, 'ना' वाला 1, 'लिं' वाला 1, 'प' वाला 1, फिर अग्निपुराण 1, 'कू' वाला 1, 'स्कं' वाला 1 और गरुड़पुराण 1।"[17]

उपपुराणों की गणना में एकरुपता नहीं है। दुर्भाग्य से इन उपपुराणों की अब तक अपेक्षाकृत उपेक्षा रही है। उपपुराण महापुराणों से पीछे की रचनाएँ हैं। इनका स्वरुप भी अधिक साम्प्रदायिक है और इन में कई विषयों का मिश्रण है। कई स्थानों में मिली हुई इन की नामावलियों को मिलाकर देखने से 18 उपपुराण ये निश्चित होते हैं – सनत्कुमार, नरसिंह, नन्द, शिवधर्म, दुर्वासस, नारदीय, कपिल, वामन, उशनस्, मानव, वरुण कलि, महेश्वर, साम्ब, सौर, पराशर, मारीच, और भार्गव। कौन पुराण ठीक ठीक पंच लक्षणयुक्त हैं और कौन नहीं हैं, यह देखकर इनके प्राचीन और प्राचीनोत्तर – दो वर्ग किये जा सकते हैं। इस कसौटी के अनुसार वायु, ब्रह्मांड, मत्स्य और विष्णु प्राचीन पुराण मालूम होते है। महापुराणों का फिर और एक वर्गीकरण उनमें विशेष रुप से वर्णित विष्णु, शिव और अन्य देवताओं के विचार से किया गया है। और वैष्णव दृष्टि से उन्हें सात्विक, राजस और तामस कहा गया है।[18]

मत्स्य, कूर्म, लिंग, शिव, स्कन्द, अग्नि – ये छः पुराण तामस हैं। विष्णु, नारद भागवत, गरुड़, पद्म, वराह – ये सात्विक पुराण हैं। ब्रह्मांड, ब्रह्मवैवर्त्त, मार्कण्डेय, भविष्य, वामन, ब्रह्म – ये राजस हैं।[19]

मत्स्य पुराण में अग्नि का माहात्म्य वर्णन करने वाले पुराणों को राजस और सरस्वती तथा पितरों का माहात्म्य वर्णन करने वाले पुराणों को संकीर्ण कहा है। 'सात्विक पुराणों में श्री हरि का माहात्म्य विशेष है, राजस पुराणों में ब्रह्मा का, उसी प्रकार तामस पुराणों में अग्नि और शिव का। संकीर्ण पुराणों में सरस्वती और

17- कल्याण : हिन्दू संस्कृति अंक, पृ• 552

18- वही, पृ• 552

19- पद्म पुराण : उत्तरखंड, 263• 81-84

पितरों का माहात्म्य वर्णित है।[20]

एक और तरफ का क्र वर्गीकरण स्कन्दपुराण में इस प्रकार है – 'अठारह पुराणों में दस में शिव-स्तुति है, चार में ब्रह्मा की, और दो में देवी तथा हरि की है।[21]

विषय :

पुराणों में वर्णित विषयों का पूर्ण और आलोचनात्मक परीक्षण करने के पश्चात् विषय विभाग के अनुसार पुराणों के छः वर्ग किये गये है। प्रथम वर्ग में साहित्य का विश्व-कोश है । इस में गरुड़, अग्नि और नारद पुराण आते है। द्वितीय वर्ग में मुख्यतः तीर्थों और व्रतों का वर्णन है। इसमें पद्म, स्कन्द और भविष्य पुराण आते हैं। तृतीय वर्ग ब्रह्मा, भागवत और ब्रह्मवैवर्त्तपुराणों का है । इन के दो दो संस्करण हो चुके हैं। इनका मूल भाग वही है, जो इनका केन्द्रस्थ सार भाग है। इनकेदो बार के संस्करणों में आगे पिछे बहुत कुछ जोड़ा गया है। चतुर्थ वर्ग में जो ऐतिहासिक कहलाता है, ब्रह्मांड और वायु पुराण आते हैं। साम्प्रदायिक साहित्य का पंचम वर्ग है। इसमें लिंग, वामन और मार्कण्डेय पुराण आते हैं। अन्त में षष्ठवर्ग उन वाराह, कूर्म और मत्स्य पुराणों का है, जिनके पाठों का संशोधन होते होत मूल पाठ रह ही नहीं गया है। तमिल ग्रंथों में पुराणों के ये पांच वर्ग किये गये हैं –(1) ब्रह्मा – ब्रह्म और पद्म, (2) सूर्य – ब्रह्मवैवर्त्त, (3) अग्नि – अग्नि, (4) शिव – शिव, स्कन्द, लिंग, क कूर्म, वामन, वराह, भविष्य, मत्स्य, मार्कण्डेय और ब्रह्मांड, और (5) विष्णु – नारद, भागवत, गरुड़ और विष्णु ।

उत्पति :

पुराण भिन्न भिन्न प्रकार से अपनी उत्पति बतलते हैं । विष्णुपुराण में यह वर्णन है कि वेदव्यास ने वेदों का विभाग करने के बाद प्राचीन कथाओं, आख्यानों, गीतों और जनश्रुतियों तथा तथ्यों को एकत्र कर एक पुराण-संहिता[22] निर्माण की और अपने शिष्य

20- मत्स्यपुराण : 53 · 68-69

21- स्कन्दपुराण केदार खंड ।

22- आख्यानैश्चाप्युपाख्यानैर्गाथाभिः कल्पशुध्दिभिः ।
पुराणसंहितां चक्रे पुराणार्थविशारदः ।। – विष्णु पुराण : 3 · 6 · 15

सूत रोमहर्षण को उसकी शिक्षा दी । इसकी छः प्रकार की व्याख्याएं लोमहर्षण ने अपने शिष्यों को पढ़ायी ।रोमहर्षण की यह संहिता और तीन संहिताएं उन के शिष्यों को मिलाकर पुराणों की चार मूल संहिताएं कही जाती हैं । इनमें से इस समय कोई संहिता विद्मान नहीं है। एक दूसरा ही विवरण वायुपुराण में इस प्रकार है कि ब्रह्मा ने पहले सब शास्त्रों के पुराण का स्मरण किया, पीछे उनके मुख से वेद निकले[23] ।पुराणों का संरक्षण करने का कार्य सूतों को सौंपा गया था । मूल सूत प्रथम यज्ञ से योशक्ति के द्वारा उत्पन्न हुए और पुराण परंपरा की रक्षा उन्हें सौंपी गयी ।

अथर्ववेद में 'पुराण' शब्द काएक वचन में प्रयोग, पुराणों में दी हुई वंशावलियों की भाषा कासर्वत्र एक सा होना और यह परंपरागत जनश्रुति कि आरंभ में केवल एक ही पुराण था । इन बातों से जैक्सन तथा अन्य विद्वानों को यह विश्वास है कि आरंभ में केवल एक ही पुराण था[24] । परन्तु एक वचन का प्रयोग पुराणों की समष्टि पुराण संहिता का वाचक है। वंशावलियों की यह बात है कि विभिन्न पुराण विभिन्न वंशावलियों के साथ आरंभ होते और विभिन्न समयों में समाप्त होते हैं ।तथा विभिन्न स्थानों में उनका निर्माण हुआ है ।अतः एक ही पुराण नहीं था – जैसे एक ही वेद नहीं है, न एक ही ब्राह्मण है ।

पुराणों की जो परिभाषा पहले दी जा चुकी है, उसके अनुसार पुराणों में सर्ग, प्रतिसर्ग, देवताओं और ऋषियों के वंशवृत, मन्वन्तर और राजवंश वर्णित होते हैं। इन में से पूर्वोक्त तीन विषयों में प्राचीन धर्म, आख्यान और तत्वज्ञान तथा सृष्टि वर्णन – ये विषय आ जाते हैं। पिछले दो विषयों में राजाओं के वंशवृत और इतिहास की सामग्री मिलती है।इन के अतिरिक्त धार्मिक शिक्षा, कर्मकांड, दान, व्रत, भक्ति, योग, विष्णु और शिव के अवतार, श्रध्द, आयुर्वेद, संगीत, व्याकरण,

---

23- पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम् ।
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः ।। – वायु पुराण

24- पुराणमेकमेवासीत्तदा कल्पान्तरे नघ ।। - (यह वचन अनेक पुराणों में है।)

साहित्य, छन्द शास्त्र, नाट्य , ज्योतिष, शिल्प शास्त्र, अर्थ शास्त्र, राजधर्म इत्यादि उन सभी बातों का इन में समावेश होता है, जिन काजोवन के धर्म, अर्थ , काम, मोक्ष -- इन चतुर्विध पुरुषार्थों के साथ सम्बन्ध है।

उक्त विषयों की विविधता से विदित होता है कि इस पुराण साहित्य में समस्त मानवीय ज्ञान विज्ञान का अद्भुत संचय हो गया है। जिस के कारण इन के पूर्वोक्त लक्षणों में वृध्दि के साथ साथ नवीन प्रवृतियां भी उत्पन्न हुईं ।

पुराण साहित्य : प्रवृतियां और प्रचार

उक्त पुराण साहित्य के उपजीव्य साहित्य बनने में उसकी प्रवृतियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। जिसके जिनके कारण उनका प्रचार इतना अधिक हुआ कि कोई भी इतिहासकार कवि या संस्कृति का व्याख्याता उन के अध्ययन के बिना अपने सृजन कार्य में सफल नहीं हो सकता था । यही प्रवृति आगे चल कर मध्ययुगीन साहित्य में विकसित हुई। अनेक साहित्यकारों ने इन का ऐतिहासिक तथ्यों के साथ मिथीकरण किया । वे प्रवृति निम्न कही जा सकती हैं :-

1 - पंच लक्षण, 2- आस्तिकता, 3- अवतारवाद, 4- सम्प्रदायिकता, 5- समन्वय भावना, 6- चरित्र चित्रणगत रूपात्मकता, 7- चमत्कारवाद और चरित्र वैचित्र्य, 8- वर्णाश्रम-विधान 9- कर्मकांड - पूजा विधियां, 10- उपदेशात्मकता : धर्म-संकट मीमांसा और मूल भावना।[25]

उक्त प्रवृतियों का दिग्दर्शन हमें आगामी साहित्य में भी देखने को मिलता है ।

रामायण और महाभारत में पौराणिक प्रवृतियों का विकास

बाल्मीकि रचित रामायण और वेद व्यास रचित महाभारत में पूर्वोक्त अनेक प्रवृतियों के दर्शन होते हैं ।रामायण यदि पुराणकाल से प्राचीन मानी जाये तो भी उसमें अनेक पौराणिक प्रसंगों, कथाओं के विवरण तथा संकेत मिलते हैं ।जहां रामायण

25- डा॰ रत्न सिंह जग्गी : दशम ग्रंथ की पौराणिक पृष्ठभूमि , पृ॰ 214

में पौराणिक आख्यानों के दर्शन किए जा सकते है वहां पुराण साहित्य में भी रामकथा का अनुपम विकास हुआ है। पुराण साहित्य के अतिरिक्त महाभारत में भी रामकथा मिलती है जिस में राम के पराक्रम की कथाए अंकित है।[26] उधर दूसरी ओर महाभारत को तो पुराणों के समान 'पंचम् वेद' माना जाता है। इस में इतिहास और पुराण का अद्भुत मिश्रण हुआ है। इसके अतिरिक्त महाभारत की महिमा उसके महाकाव्योचित सौंदर्य, ऐतिहासिकता एवं उपदेशात्मकता के कारण भी कुछ कम नहीं है। अतः उक्त दोनों ग्रंथ भी पौराणिक प्रवृतियों के विकास में अपूर्व योगदान देते हैं और मध्यकालीन काव्य के उपजीव्य ग्रंथ तथा भारतीय संस्कृति के गौरव ग्रंथ के रूप में आज तक समाहत होते आये हैं।

मध्यकालीन काव्यो में पौराणिकता

मध्यकालीन हिन्दी साहित्य के रामभक्त कवि तुलसी के रामचरित मानस में राम के अवतारत्व और भक्ति का विकास हुआ तो उधर कृष्ण कृष्ण की लीलाओं का सूर ने गायन किया। उक्त दोनों ग्रंथों के अतिरिक्त भागवत पुराण का भी विशेष प्रचार हुआ।

हिन्दी के रीतिकाल में जहां हमारे विवेच्य कवि भाई सन्तोख सिंह ने बाल्मीकि रामायण का काव्यानुवाद किया तो उधर महाभारत का सबल सिंह और गोकुलनाथ[27] आदि ने अनुवाद कर तत्कालीन पुराण-प्रियता का परिचय दिया। हमारे महाकवि ने 'गुरु प्रताप सूरज' में पूर्वोक्त समस्त प्रवृतियों को अभिव्यक्ति प्रदान की।

'गुरु प्रताप सूरज' की पौराणिक पृष्ठभूमि – पौराणिक एवं ऐतिहासिक प्रबन्धों की परंपरा

'गुरु प्रताप सूरज' रीतिकालीन पौराणिकता का प्रकाशक अनुपम इतिहास-पुराण है। जिस में पंजाब में रचित पौराणिक एवं ऐतिहासिक प्रबन्ध परंपरा का विकास भी मिलता है। जहां यह ग्रंथ अपनी पूर्ववर्ती परंपरा को अपने में सजीव किए हुए है वहां तुलसी के रामचरित मानस की सर्वाधिक लोक प्रियता की तरह-एक लोक प्रिय इतिहास

26- डा॰ जयकिशन प्रसाद खण्डेवाल : हिन्दी साहित्य की प्रवृतियां, पृ॰ 259

27- द्रष्टव्य : महाभारत तृतीय पर्व।

पुराण ग्रंथ के रुप में भी सम्मानित है तथा परवर्ती काव्यों का उपजीव्य ग्रंथ भी है ।

'गुरु प्रताप सूरज ' सेपूर्व पंजाबी तथा हिन्दी में अनेक पौराणिक एवं ऐतिहासिक प्रबन्धों का सृजन हो चुका है। गुरु नानक के अवतरण के पश्चात् पुराण साहित्य की लोकप्रियता को देखते हुए इस साहित्य से अनेक संकेतो को ग्रहण कर गुरु नानक देव जी ने अपने उपदेश दिये ।उनके पश्चात् अन्य गुरु साहिबान ने भी सामाजिक विकास के उद्देश्यों से पौराणिकता का प्रयोग किसी सीमा तक अपनी वाणी में किया ।जिसके दर्शन आदि ग्रंथ की वाणियों में किए जा सकते हैं । गुरु साहिबान की वाणी में यद्यपि पौराणिक अवतारवाद को मान्यता प्राप्त नहीं है तथापि उनके समकालीन भट्टो तथा उनके आदि ग्रंथ को लिपिबध्द करने वाले भाई गुरदास की वारों में सर्वप्रथम गुरु नानक तथा अन्य साहिबान के अवतारत्व का कल्पना की गई है[28] । इसके पश्चात् सभी आने वाले कवियों ने गुरु साहिबान को पौराणिक अवतार की तरह चित्रित किया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने अनेक पौराणिक कथाओं का वर्णन कर पौराणिकता के प्रति अपनी निष्ठा व्यक्त की । "उनका ऐसा करना सामयिक था ।वे एकऐसे आंदोलन के प्रचारक एवं प्रवक्ता थे, जिस का सामना समय की प्रबल शक्तियों से था । तत्कालीन मुस्लिम शासन, जातिभेद वाला कट्टर समाज तन्त्र, धर्म के नाम पर हलवा मांडा उड़ाने वाला ,गुरु वर्ग तथा सिक्ख गुरुओ का विरोधी गुट – इन सब की शक्तियों से उन्हें लोहा लेना था । इस लिए उनको आवश्यकता पड़ी कि वे अपने चरित नायक गुरु नानक(तथा अन्य गुरुओं) को अन्य धर्म प्रवर्तकों , देवी देवताओं अथवा पैगम्बरों से ऊंचा अथवा कम से कम बराबर सिध्द करें। इस दृष्टिकोण का अधिक विकास 'दशम ग्रंथ' के पश्चात् हुआ, जब कि गुर, विलास लिखने की परंपरा सी चल पड़ी।''[29] हमारा विवेच्य ग्रंथ 'गुरु प्रताप सूरज' भी

28- सतिगुर नानक प्रगटिआ मिटी धुंध जग चानण होआ ।
जिउं कर सूरज निकलिआ तारे छपे अंधेर पलोआ ।।
— वार १ , पउड़ी 27

29- डा॰ रत्न सिंह जग्गी : दशम ग्रंथ की पौराणिक पृष्ठभूमि , पृ॰ 206

नौ गुरुओं के विलासों(लीलाओं) को उक्त शैली में प्रस्तुत करता है। इस से पूर्व दशम ग्रंथ में जहां केवल पौराणिकता की छाप मिलती है वहां उसमें संकलित वचित्र नाटक गुरु शोभा(सेनापति,) जंगनामा(अणिराय), गुर विलास(सुक्खासिंह), महिमा प्रकाश(सरूप चन्द भल्ला), जन्म साखी नानक शाह की(सन्तदास छिब्बर) नानक विजय (संत रेण), अमरसिंह कोवार(केशवदास), परचियां भाई सेवा राम जी(सहजराम)आदि ऐतिहासिक प्रबन्धों में भीपौराणिकता की छाप दृष्टिगोचर होती है।" जहां पौराणिक प्रबन्धों में पौराणिक पात्रों की यश कथाएं कही गई हैं वहां इन ऐतिहासिक प्रबन्धों में ऐतिहासिक पात्रों को भी पौराणिक व्यक्तित्व प्रदान करने का यत्न किया गया है । ये प्रबन्ध सिक्ख गुरुओं को अवतार रूप में चित्रित करते हैं ।पौराणिक प्रवृति की परा-कोटि के दर्शन'नानक विजय' में होते हैं, इसी प्रवृति के अतिरेक के कारण ऐति-हासिक व्यक्ति काचरित्र कहलाने वाला यह प्रबन्ध ऐतिहासिक से अधिक पौराणिक प्रबन्धों में स्थान पाने का अधिकारी है। संक्षेप में ये ऐतिहासिक प्रबन्ध अपने सम-सामयिक पौराणिक प्रबन्धों के पूरक से प्रतीत होते हैं।दोनों में एक ही मनोवृति की अभिव्यक्ति है।[30]" 'गुरु प्रताप सूरज' में भी उक्त ऐतिहासिकता एवं पौराणिकता का अद्भुत समिश्रण हुआ है। भाई सन्तोख सिंह ने इस ग्रंथ से पूर्व 'गुरु नानक प्रकाश' में 'नानक विजय' की तरह की ही पौराणिकता का पालन किया है परन्तु इस के पालन का दृष्टिकोण दोनों का पृथक रहा है ।

उक्त परंपरा में ऐतिहासिकता एवं पौराणिकता का विलक्षण समन्वय हुआ है। महिमा प्रकाश आदि की साखियों से उक्त प्रबन्धात्मक काव्यों में पौराणिकता अधिक मुखरित हुई है। ''इस परंपरा की प्रमुख पौराणिक प्रवृतियां ये हैं :—

(1) सिक्ख गुरुओं में अवतारत्व की कल्पना ।

(2) गुरुओं के चरित्रों में पुराण-पुरुषों की लीलाओं का समावेश ।

(3) गौण कथाओं में पौराणिक कथाओं की पृष्ठभूमि ।

(4) प्रतिपाद्य की पुष्टि के लिए पौराणिक प्रसंगो का वर्णन ।

30- डा॰ हरिभजन सिंह : गुरुमुखी लिपि में हिन्दी काव्य , पृ॰ 246-47(1963)

(5) पौराणिक सरणि पर नवीन कथाओं की रचना ।

(6) गुरुओं के व्यक्तित्व में अति मानवीय शक्तियों की प्रतिष्ठा ।

(7) ब्रह्मणवाद की समस्त परंपराओं के प्रति निष्ठा ।

(8) देवी के प्रति इष्ट भावना ।

(9) पौराणिक शैली को अपनाने का आग्रह[31] ।''

'गुरु प्रताप सूरज' में उक्त पौराणिक प्रवृतियां विशेष रुप से मुखरित दिखाई देती है। यह रचना महिमा प्रकाश, दशम ग्रंथ, तथा गुरविलास (सुखासिंह) की ऐतिहासिकता एवं पौराणिकता से सर्वाधिक प्रभावित है। अतः इन्हीं के संदर्भ में इस की समीक्षा की जानी समीचीन होगी। यही ऐसे ग्रंथ हैं जिन से 'गुरु प्रताप सूरज' का कवि प्रभावित ही नहीं हुआ है अपितु इन से भाव सामग्री का चयन भी करता है। कहीं कहीं तो दोनों कवियों की पंक्तियां भी एक जैसी मिल जाती है ।

पूर्ववर्ती कवियों का प्रभाव

भाई सन्तोख सिंह रचित 'गुरु प्रताप सूरज' यद्यपि पूर्ववर्ती कवियों की रचनाओं से प्रभावित है तथापि उस की विषय प्रतिपादन की मौलिकता भी कुछ कम प्रशंसनीय नहीं है। उनकी कविता में जो जादू है, जो काव्यशास्त्रीय परिपक्कता है वह पूर्ववर्ती महिमा प्रकाश आदि में कहा ? यदि उन्होंने दशर्म ग्रंथ और गुर विलास आदि से कुछ लिया है तो उस से कहीं अधिक उन्होंने देकर अपने को ऋणमुक्त भी किया है। वैसे भी इसे काव्य-शास्त्र में उपजीव्य -उपजीवक सम्बन्ध कहा जाता है जिसे हम बुरा नहीं कह सकते क्योंकि कई बार एक ही वस्तु का वर्णन अनेक कवियों द्वारा किया हुआ होता है। कुछ तो केवल अनुकरण के ढंग पर पहले जैसा ही वर्णन करते हैं, किन्तु कुछ के मर्म को वह वस्तु किसी नितान्त नूतन रुप में स्पर्श करती है, अतः उन के द्वारा उसका वर्णन अभिनव ही होता है। अपने काव्य में केवल किसी पुरातन कवि द्वार वर्णित विषय-शैली को अपनाने के कारण हम किसी कवि को उत्कृष्ट कवि की कोटि से नहीं हटा सकते ।

31- डा॰ रत्न सिंह जग्गी : दशम ग्रंथ की पौराणिक पृष्ठभूमि , पृ 268

काव्य की उत्तमता की परीक्षा करते समय हमें उसके मार्मिक पक्ष को प्राथमिकता देनी चाहिए। यदि कवि के भावुक हृदय ने वस्तु विशेष के मार्मिक पक्ष को वस्तुतः ग्रहण किया है तथा उसके काव्य में उसकी सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है तो हमें निश्चय कर लेना चाहिए किकवि को कृति नितांत अभिनव एवं उच्च कोटि की है । अस्तु । पौराणिकता एवं ऐतिहासिकता की छाप तो पूर्वोक्त अनेक कृतियों पर लगी हुई है परन्तु जिस सुन्दर शैली में 'गुरु प्रताप सूरज' में उसका दिग्दर्शन होता है वह अनुपम ही है। उस जैसी आलंकारिकता पूर्ववर्ती महिमा प्रकाश और गुरविलास आदि में कहां ? इसकी नवीनता ही तो पूर्ववर्ती सभी रचनाओं पर छाई हुई है। जिसके कारण यह इतनी लोक प्रिय रही है ।

'गुरु प्रताप सूरज' में ऐतिहासिक तथ्यों का मिथीकरण

पिछले अध्याय में हम 'गुरु प्रताप सूरज' को ऐतिहासिकता एवं ~~पौ~~ ऐतिहासिक पात्रों के सम्बन्ध में उल्लेख कर आये हैं। इस में वर्णित नौ गुरु साहिबान के जीवन चरित से सम्बन्धित अनेक ऐतिहासिक तथ्यों का उल्लेख हुआ है। इसके साथ साथ तत्कालीन मुग़ल इतिहास के चित्र भी इस में अंकित हैं परन्तु भाई सन्तोख सिंह ने इसे केवल शुष्क इतिहास मात्र ही नहीं रहने दिया है।इस में सरसता एवं मधुरता भरने के लिए जहां पौराणिक आख्यानों का वर्णन कथामयी इतिवृत्तात्मक शैली में वर्णन हुआ है वहां इसके ऐतिहासिक पात्रों का पौराणिकता के अनुकूल मिथीकरण भी हुआ है जिसे श्रोता सुनकर और पाठक सुन कर समस्त भारतीय पुराण साहित्य के अनुशीलन के लिए तत्पर हो उठते है। उसका कारण यह है कि इस में पौराणिक संकेत ,बीजरुप में पौराणिक कथाएं,शब्दावली,तथा विष्णु को पौराणिक अवतार परंपरा में जहां गुरु साहिबान को उनके अवतार रुप में चित्रित किया है वहां दूसरी ओर ~~अ~~ प्रत्येक गुरु,गुरु नानक का भी उत्तरोतर अवतार है। उन सभी में एक ही ज्योति विद्यमान है।[32] यही भावना 'गुरु प्रताप सूरज' में भी चित्रित है।[33] गुरु साहिबान में अवतारत्व कल्पना के अतिरिक्त इस ग्रंथ में ~~पूर्वोक्त~~ पूर्वोक्त प्रवृतियों को उत्तर मध्यकाल में उतारने का सफल प्रयास हुआ

32- जोति रुपि हरि आपि गुरु नानकु कहायउ ।
ता ते अंगदं भयउ तत उि ततु मिलायउ।- - -। - आदि ग्रंथ,पृ・ 1408

33- गु. प्र. सू. रा. 1,अंशु 1,अंक 19,पृ・ 1290

है। महाकवि सन्तोख सिंह की कल्पना शक्ति ने जहां पौराणिकता को वर्तमान में उतार कर उसका ऐतिहासिक तथ्यों से मिथीकरण किया है वहां उन्होंने अपने युग का 'गुरु प्रताप सूरज' के द्वारा (15 वीं, 16वीं, शक शताब्दी से लेकर बन्दा बहादुर के युग के साथ) मध्यकालीनीकरण करते हुए उक्त पौराणिकता का चित्रण किया है। उसमें गुरु नानक कालीन परिस्थितियों से लेकर बन्दाबहादुर के युग तक की परिस्थितियों का ही चित्रण नहीं है अपितु भाई सन्तोख सिंह के अपने युग की पौराणिकता की भी छाप अंकित है क्योंकि उन्होंने वर्तमान में रहते हुए जहां अतीत का निर्माण किया है वहां के संकेत देकर अपने त्रिकाल द्रष्टत्व को भी व्यक्त किया है। इस से स्पष्ट होता है कि उन्होंने मध्यकाल का मिथीकरण किया और मिथिक युग का मध्यकालीनीकरण ।

भक्ति आन्दोलन के रूप में पुनः विकसित भक्ति और अवतारवाद[34] की भावना जो भारतीय संस्कृति के मध्यकालीनीकरण की धुरियां हैं उनका 'गुरु प्रताप सूरज' में अवतरण और उसके साथ तत्कालीन ऐतिहासिक तथ्यों का मिथीकरण उसकी गौरवपूर्ण विशिष्टताएं कही जा सकती हैं। गुरु साहिबान के जीवन वृत में लौकिक एवं पारलौकिक नैतिकता की प्रधानता होने के कारण कवि के अपने इष्ट की भक्ति उनके जीवन को मधुरता प्रदान करती है। पौराणिक अवतारवाद[35] की भावना में उन्हें जीवन और समाज को बदलने के विश्वास मिलते हैं ।भक्ति ने जहां साधारण मनुष्य को सन्त बना दिया वहां अवतारवाद ने ब्रह्म को मानत्व बना कर युग युग में अति मनुष्यता के नये आदर्श उपस्थित किए । व्यक्ति का महत्व आदर्श सिक्ख(गुरमुख) हुआ और भक्ति का परम मूल्य प्रेम स्वीकार किया गया। ये दोनों व्यक्ति के साथ साथ समाज के लिए भी मंगलकारी सिध्द हुए ।अवतार वाद सामाजिक सम्बन्धों तथा आदर्श जीवन का उदात्तीकृत समष्टिमूलक सक्रिय रूप है। वह लोक नायकत्व ही नहीं करता अपितु लोक संरक्षक भी है। उनके सन्देश में जीवन के प्रति आस्था का स्वर भी है

34- डा• कपिल देव : मध्यकालीन साहित्य में अवतारवाद (चौखम्बा, काशी , 1961)

35- पं• बलदेव उपाध्याय : पुराण-विमर्श , पृ• 163-212

और आध्यात्मिक मानवतावाद का स्वर भी । इन दोनों के समन्वय से जीवन को नवीन और सरल रास्ता गुरु साहिबान के अवतारी रूप ने दिखाया । इसके दो फल हुए :-

(1) अलौकिक पक्ष पूर्ण विकसित हो गया ।

(2) पौराणिक भावनाओं के पुनरुत्थानवाद में उदारतावादी और समन्वयवादी दानों स्वरों के मेल से आदर्श का मध्यकालीनीकरण हुआ ।

पौराणिक आदर्शवाद की पहली विशेषता नैतिकता थी ।भाई सन्तोख सिंह ने अपने पूर्ववर्ती कवियों – भाई गुरदास , सरूप चन्द भल्ला तथा सुक्खासिंह की तरह अपने इष्ट गुरु साहिबान के ऐतिहासिक चरित्रों पर पौराणिक नैतिकता, आचरण , शिष्टता और नाम स्मरण की उपासना को आरोपित किया ।

महाकवि सन्तोख सिंह ने जहां गुरु साहिबान के धार्मिक समन्वयवाद का सन्देश दिया वहां इतिहास और पुराण के समन्वय से अपने समन्वयकारी विचारों का भी उदातीकरण किया ।यद्यपि तत्कालीन सभी धर्मों को एक ईश्वर तक जाने के लिए विभिन्न मार्गों के रूप में उन्होंने स्वीकार किया तथापि अपने नव विकसित खालसा धर्म की श्रेष्टता प्रतिपादित कर युगीन समस्याओं का समाधान उसके धारण करने में देखा क्योंकि एक ओर औरंगजेब जैसे शासकों की कट्टरता से जनता संत्रस्त थी और दूसरी ओर हिन्दूत्व खतरे में था । हिन्दू धर्म की समन्वयात्मकता ने उसे भी अपना अंग माना और उसके द्वारा भारतीय संस्कृति की रक्षा हुई । गुरु साहिबान का व्यक्तित्व वास्तव में अवतार से कम न था ।उनकी लीलाएं , उनका प्रताप, उनका लोक संग्राहक एवं लोक संरक्षक रूप हिन्दूत्व के विरोधी शत्रुओं के लिए संहारक भी सिध्द हुआ । उनके ऐसे समस्त रूपों को निधीकृत रूप में देखना हो तो 'गुरु प्रताप सूरज' का अवलोकन करें ।'गुरु प्रताप सूरज' के मंगलाचरणों में उन्होंने ऐसे ही रूप में प्रस्तुत किया गया है।क्योंकि आध्यात्मिक उन्नति के साथ अस्तित्व रक्षा की भी आवश्यकता का उन्होंने अनुभव कर सिक्ख धर्म को नवीन रूप भी

36- गु. प्र. सू रा. 1, अंशु 1, अंक 1-19, पृ. 1261-1290

समय को मांग के अनुसार दिया ।दसों गुरु साहिबान यद्यपि एक हो ज्योति के विभिन्न अवतार रुप में चित्रित हैं तथापि गुरु नानक ने जहां आध्यात्मिकता का रास्ता दिखाया वहां गुरु गोबिन्द सिंह ने अस्तित्व रक्षा के लिए 'चिड़ियों को बाज़ से लड़ाने' को शक्ति प्रदान को । अतः यहांभी भक्ति और शक्ति का उनके चरित्र में अद्भुत समन्वय देखा जा सकता है ।

दशम ग्रंथ, महिमा प्रकाश, गुरु विलास एवं नानक विजय आदि के सन्दर्भ में 'गुरु प्रताप सूरज' समोक्षा ।

(1) दशम ग्रंथ

परिचय :

भारतीय संस्कृति के संरक्षक धर्म मूर्ति अनन्त शौर्य-वीर्य-सिन्धु एवं खालसा पंथ के संस्थापक श्री गुरु गोबिन्द सिंह रचित 'श्री दशम गुरु ग्रंथ साहिब' अपने युग को ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक प्रवृतियों का दर्पण है ।उसमें जापु, अकाल स्तति, विचित्र नाटक , चंडी चरित्र, चौबीस अवतार आदि अनेक रचनाएं संकलित हैं।जिन के अध्ययन से गुरु गोबिन्द सिंह के महापराक्रमी नेता का व्यक्तित्व एक अवतार के रुप में चित्रित है। वचित्र नाटक इस भावना का ज्वलन्त प्रमाण है ।

पौराणिकता :

दशम ग्रंथ में गुरु गोबिन्द सिंह ने पूर्व प्रचारित (भाई गुरदास आदि द्वारा) अवतारवाद को भावना को स्वीकृत करते हुए अधर्म के नाश के लिए कालपुरुष के द्वारा इस धरतो पर अपनो विचित्र लोला दिखाई। 'वचित्र नाटक' दशम ग्रंथ को सर्वप्रमुख रचना है।जिस में उन्होंने स्पष्ट शब्दों में उक्त अवतारवाद[37] को भावना को

37- (क) जब जब होत अरिसटि अपारा ।
तब तब देह धरत अवतारा ।। — दशम ग्रंथ(मत्स्य अवतार)पृ॰ 155
(ख) दशम ग्रंथ (परसराम अवतार) पृ॰ 169

स्वोकार किया है जैसे :-

हम इह काज जगत मो आए ।
धरम हेत गुरदेव पठाए ।
जहां तहां तुम धरम बिथारो ।
दुसट दोखीयनि पकरि पछारो ।। 4 2 ।।[38]

दुष्टों का संहार करना तत्कालोन युग की सामयिक आवश्यकता थी । जिस समय हिन्दू, मुस्लिम दंद उपस्थित हुआ और आसुरो शक्तियों की प्रबलता होने लगी तब इस दंद में हस्ताक्षेप करने के लिए कालपुरुष ने अवतार धारण किया । इस तरह से यहां ऐतिहासिक महापुरुष गुरु गोबिन्द सिंह का पौराणिक अवतार के रूप में वर्णन किया गया है। इस के अतिरिक्त दशम ग्रंथ में पूर्वोक्त सभी पौराणिक प्रवृतियों का भी पालन किया गया है। जैसे पंच लक्षण, आस्तिकता, साम्प्रदायिकता, समन्वय भावना, चमत्कारवाद और चरित्र वैचित्र, वर्णाश्रम विधान, उपदेशात्मकता आदि।[39] परन्तु इसकी सब से बड़ी विशेषता यह है कि इस में मानवत्व और अवतारत्व में अद्भुत समन्वय स्थापित किया। जिस से क्षत्रियत्व धर्म युगानुकूल आवश्यकताओं के अनुसार मुस्लमानों के 'राक्षसत्व' को समाप्त करने के लिए कटिबध्द हो न हुआ अपितु शासनबध्द भी हो चुका ।[40] कृपाण को उन्होंनें चिरसंगिनी बना लिया और दशम गुरु के निधनोपरान्त (अनेक यातनाएं सहन करने की समर्थता से युक्त होए) सम्पूर्ण पंजाब में से मुस्लिम राज्य को समाप्त करके स्वराज्य स्थापित किया ।इन कृतियों (दशम ग्रंथ में संगृहीत चौबीस अवतार चंडी दी वार, खालसा महिमा शब्द हजारे आदि)[41] का इतना अमिट प्रभाव था कि सिक्ख जाति का स्वभाव हो युध्दमय हो गया । सिक्ख लोग युध्द के प्रतीक समझे जाने लगे ।[42] इन कृतियों का परवर्ती साहित्य पर भी प्रभाव पड़ा ।गुरु विलास और

डा॰ रत्न सिंह जग्गी : दशम ग्रंथ का पौराणिक पृष्ठभूमि , पृ॰ 215-263

40 - वही

41- **Dr. Ashta Dharam Pal: <u>Poetry of Dasham Granth</u> p.** 218-19

42- 'देहि शिवा । वर मोहि इहै, शुभ कर्मन ते कबहु न टरो ।
न डरो अरि सो जब जाइ लरों, निसचे कर अपनो जोत करों।
× × ×
जब आव की अउध निदान बने, अति हो रण में तब जूझि मरों।- चंडो चरित्र छ, 231

'गुरु प्रताप सूरज' पर दशम ग्रंथ की उक्त कृतियों की अमिट छाप अंकित है। 'गुरु प्रताप सूरज' पर न केवल उक्त अवतार वादी भावना की छाया देखी जा सकती है अपितु उसकी साहित्यिकता की भी छाप उसके वस्तु-विन्यास, इतिवृतात्मकता स्तोत्र, मामात्म्य, अलंकार विधान, छन्द योजना, तथा भाषा पर भी उसके प्रभाव को देखा जा सकता है। यह ग्रंथ 'गुरु प्रताप सूरज' का उपजीव्य ग्रंथ है। दशम ग्रंथ के 'वचित्र नाटक' की युध्द वर्णन की वीररसात्मकता जहां गुरु प्रताप सूरज' में देखी जा सकती है वहां 'चंडी दी वार' की पंजाबी भाषा की सबलता एवं प्रभावोत्पादकता की छाप भी देखी जा सकती है ।

(2)' महिमा प्रकाश'- 'गुरु प्रताप सूरज' का उपजीव्य ग्रंथ

परिचय :

सरुप दास भल्ला रचित 'महिमा प्रकाश'का गुरु कालीन इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है। इसकी रचना सम्वत् 1833[43] में हुई थी अर्थात् बन्दा बहादुर की शहीदी के 60 वर्ष पश्चात् । इस लिए इसकी कुछ घटनाएं लेखक ने स्वयं देखी होगी अथवा अपने पूर्वजो से सुनी होगी । सिक्ख इतिहास कोसब से पुरानी पुस्तक कही जा सकती है । यद्यपि इस से पूर्व 'पुरातन जन्मसाखी' 'भाई बाले वाली जन्म साखी, सोढी मिहरबानकी जन्म साखी, 'गुरविलास पातशाही छेवी, गुरशोभा, (सेनापति रचित) आदि अनेक ग्रंथ मिलते हैं परन्तु उन में से किसी में भी समस्त गुरु साहिबानका जीवन-इतिहास नहीं मिलता । सभी गुरु के जीवन चरितों का एक ही पुस्तक में प्रस्तुत करने का श्रेय 'महिमा प्रकाश' के रचयिता को ही दिया जाता है। 'गुरु शोभ'

43- दस अस्ट सहस संमत बिक्रम ,
अवर अधिक तेतीस ।
सरुप दास सतिगुरु करी,
महिमा प्रकाश बखसीस ।

— गु. श. र. महान कोश , पृ॰ 2803

जिस में केवल गुरु गोबिन्द सिंह का जीवन चरित मिलता है। ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण रचना है। परन्तु विषय वस्तु का विस्तृत क्षेत्र उस में नहीं है। 'महिमा प्रकाश' की एक अन्य विशेषता उसका गद्य पद्यमय होना भी कही जाती है। इसका काफी भाग पद्य है और थोड़ा सा भाग गद्य में भी है। जो साखी के आरंभ और अन्त में आता है। यद्यपि इस में सभी गुरु साहिबान का जीवन चरित अंकित है तथापि गुरु नानक देव जी का जीवन चरित अपेक्षाकृत विस्तृत रूप में वर्णित है। इस में गुरु नानक वाणी भी स्थान स्थान पर संकलित है जिस को सरल गद्य में व्याख्या भी की गई है।

पौराणिकता

इस रचना में भी पूर्वोक्त पौराणिकता के दर्शन होते है। यह पौराणिकता जन्म साखियों पर आधारित होने के कारण सामान्य स्तर की है। तथा इस में प्रतिपादित गुरु साहिबान के अवतारण पर विशेष बल दिया गया है। इसकी कथा का आरंभ पौराणिक शैली में नारद और ब्रह्म के सम्वाद से आरंभ होता है जिस में ब्रह्मा जी श्री नारद जी को बताते है कि अब स्वयं हरि 'सन्त' रूप में अवतरित होंगे।[44] और कलिकाल की कलुषता को दूर करेंगे। जब गुरु नानक देव जी का अवतार होता है तो पौराणिकता के अनुकूल वातावरण का कवि उल्लेख करता है। इसी तरह गुरु गोबिन्द सिंह के अवतरित होने पर पौराणिकता से अनुप्राणित विवरण दिया गया है।

44- एक समै श्री नारद ब्रह्मा पै गए।
सन्त सभा सुभ निरख चित रिख थिर थए।
प्रभा भरत खंड कलघोर जीव कैसे तरें।
× × × ×
अब था मै संसा नहीं हरि धरे सन्त वपु जोई।।
— महिमा प्रकाश - पृ० 202-12

इस रचना का आधार जन्म साखी साहित्य, गुरु कुल के व्यक्तियों से सुनी बाते और गुरमुख सिक्खों से सुनी बाते हैं। फ्स फलतः इस में मौलिकता के विशेष दर्शन न होने पर भी इसका ऐतिहासिक महत्व है। भाई सन्तोख कवि सिंह ने इस ग्रंथ से विशेष सहायता ली प्रतीत होती है क्योंकि 'गुरु प्रताप सूरज' में इस की कई पंक्तियां वैसे की वैसी आई है।[45]

गुरु प्रताप सूरज की शैली पर इसका पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। यद्यपि इस ग्रंथ की पौराणिकता सामान्य सी है तथापि इस का ऐतिहासिक महत्व काफी है। इस को आधार बन कर भाई सन्तोख सिंह ने भी बन्दा बहादुर तक अपने ग्रंथ 'गुरु प्रताप सूरज' की रचना की। गुरु काव्य परंपरा के विकास में इस का

45- (क) बहुत संगत तहां भाई इकत्र
गुर भाई प्रेमी बड मित्र।
सिक्ख सिख को गुर रुप कर सेवैं
चरन धोइ चरनामृत लेवै।
— महिमा प्रकाश

(ख) बहुत संगत भइ इकत्र
गुर भाई प्रेमी भए मित्र।
गुर सम सिख को सिख मिल सेवहि।
चरन धोइ चरनामृत लेवह।
— गु. प्र. सूरज

(क) सगल नगर कीरतन धुन होइ
वाहिगुरु जप जपै सभ कोइ
— महिमा प्रकाश

(ख) सगल नगर कीरतन धुनि होइ
वाहिगुरु सिमरहि सभ कोइ।
— गुरु प्रताप सूरज

महिमा प्रकाश (भाग दूजा) पृ॰ 31-32 पर उध्दृत

योगदान अद्वितीय है तथा गुरु प्रताप सूरज का उपजीव्य ग्रंथ है ।

(3) गुरविलास (सुखासिंह) 10वीं पातशाही

परिचय :

गुर विलास के अन्तसाक्ष्य के आधार पर कहा जाता है कि गुरु गोबिन्द सिंह के लीला स्थान केशगढ़ (पंजाब) के ग्रंथी भाई सुक्खा[46] सिंह द्वारा सन् 1797 ई॰ (सं॰ 1854) रचना हुई।[47] यह ग्रंथ सिक्ख श्रध्दालुओं में अत्यन्त प्रिय रहा है। इस में तीस अध्याय और 4951 छन्द हैं।[48] डा॰ गोयल के अनुसार इस की विभिन्न प्रति में छन्द संख्या भिन्न भिन्न है। (मुद्रित प्रति 5451, कलकत्ता की प्रति 5403, पटियाल की प्रति (आरकाइवज़) 5453 छन्द हैं।[49] परन्तु इस की मूल प्रति अभी नहीं मिली है ।[50]

इस ग्रंथ की कथा वस्तु दशमेश जी के जीवन चरित पर आधारित है। इस से पूर्व महिमा प्रकाश, गुरु शोभा तथा स्वयं गुरु जी रचित 'बचित्र नाटक' से कथा का चयन किया गया है। परन्तु इस ग्रंथ की केवल वस्तु उक्त ग्रंथों पर ही आधारित न होकर इतिहास पुराण और जन-श्रुति पर भी आधारित है इसमें गुरु जी का सर्वांग पूर्ण जीवन संकलित है। अतः इस का कथा क्षेत्र उक्त ग्रंथों से विस्तृत है। इस में काव्य इतिहास और पुराण तीनों का संगम है तथापि इतिवृत्तात्मकता अधिक और सरसता कम है। इस में ऐतिहासिकता के निर्वाह के साथ साथ पौराणिकता और चमत्कारिक घटनाओं का भी पौराणिक शैली अनुसार निरुपण हुआ है। इतिहास की नवीन व्याख्या युगीन भावना के अनुरुप हुई है। मुस्लिम विरोधी स्वरों का भी सजग है। मुस्लिम

46- गुर विलास : 99 - 100, 30, 605

47- वही , 47·1·6

48- डा॰ हरिभजन सिंह : गुरुमुखी लिपि में हिन्दी काव्य , पृ॰ 262

49- डा॰ गोयल : गुर विलास , पृ॰ 5

50- वही , पृ॰ 6

शासकों की धर्मान्धता और नृशंसता इस में विशेष रूप से अंकित है।

यह ग्रंथ भी गुरु प्रताप सूरज का उपजीव्य ग्रंथ है। इसकी ऐतिहासिकता की छाप के साथ साथ इस की पुराण-प्रियता का भी वह आभारी है। जिससे भाई सन्तोख सिंह के समन्वयवादी दृष्टिकोण का निर्माण हुआ ~~क~~ है। इस में भी अवतारवादी स्वर पौराणिक परंपरा के अनुकूल ही है। 'गुरु प्रताप सूरज' के ऐतिहासिक तथ्यों के मिथीकरण से पूर्व इस ग्रंथ में कई महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाओं का पौराणिक रूप देने का प्रचलन हो चुका[51] था। कवि स्वयं उन्हें अवतार मानता है और अन्य पात्रों से इस की स्वीकृति काउल्लेख करता है। स्थान स्थान पर उन की महता भी प्रतिपादित करता चला जाता है। इसके अतिरिक्त कई अलौकिक, अतिमानवीय एवं चमत्कारपूर्ण घटनाओं[52] का भी पौराणिक शैली में वर्णन है जो आगे चल कर 'गुरु प्रताप सूरज' में पुनः नवीन रूप में अंकित होती है। कवि का लक्ष्य केवल शुष्क इतिहास को चित्रित करना नहीं था अपितु उन की महिमा के प्रतिपादन के लिए उसे धर्म प्रचार का साधन बनाना भी है। इस उद्देश्य की सिध्दि के लिए वे ऐतिहासिक वृत का मिथीकरण करने के लिए संशोधन, परिवर्तन और परिवर्धन करने की स्वतन्त्रता को भी अपने हाथ से नहीं छोड़ते। भाई सन्तोख सिंह भाई सुक्खा सिंह के प्रसंगों को ही नवीन शैली में ~~प्रस्तु~~त प्रस्तुत करते है। उन में सुक्खा सिंह से कहीं अधिक मार्मिकता एवं व्यापकता है। गुरु विलास जहां 'गुरु शोभा' से अपनी प्रबन्धात्मकता, काव्यात्मकता एवं ऐतिहासिक मिथीकरण में आगे है वहां वह 'गुरु प्रताप सूरज' के ऐतिहासिक तथ्यों के मिथीकरण की भी भूमिका निभाता है। 'गुरु प्रताप सूरज' में इन दोनों ग्रंथों की विशेषताओं का समन्वय हुआ है। उसमें कथा सौष्ठव भी है, यथार्थता भी है और सिध्दांत निरूपण भी है। सांस्कृतिक और ऐतिहासिक दृष्टि से भी उसका विशेष महत्व है। उसका युग चित्र इन दोनों से अधिक विशद और व्यापक है तथा दृष्टिकोण अधिक सन्तुलित एवं पुष्ट है। काव्यत्व भी उस में इन सब से अधिक है[53]।"

51- द्रष्टव्य : डा॰ गोयल : गुर विलास, अंक 8, पृ॰ 19

52- वही, पृ 22

53- वही, अंक 11, पृ॰ 25

पौराणिकता :

'' जिस प्रकार दशम ग्रंथ में पौराणिक आख्यानों, पुरुषों, प्रसंगों एवं उदाहरण के माध्यम से एक विशिष्ट सांस्कृतिक चेतना जागृत करने का प्रयत्न किया गया है, उसी प्रकार 'गुरु विलास में भी अनेक पौराणिक प्रसंगों के माध्यम से इस जीवित सांस्कृतिक परंपरा का महत्व स्थापित किया गया है।''[54] इस लिए उन्होंने भारतीय पुराण साहित्य से अनेक आख्यानों को चुना। कुछ आख्यान तो उस में गौण कथा के रूप में समाविष्ट है और कुछ का प्रयोग संकेतात्मक है जैसे हरिश्चन्द्र की[55] कथा, हीरा घाट की कथा, तीर्थों की महिमा आदि। ये सब वर्णन उन के विशिष्ट दृष्टिकोण को व्यक्त करते हैं। गीता की तरह ही यहां भी धर्म की ग्लानी होने पर भगवान साधुओं के परित्राणार्थ अवतार धारण करते हैं वैसे ही यहा पर भी पृथ्वी की पुकार सुन कर सन्त रूप में अवतार धारण करते हैं।[56]

54- डा• जय भगवान गोयल : गुर विलास पृ• 67

55- वही, 2•40, 2•76, 2•57

56- नीत अनीत निहार मलेच्छन दुखत भई धरनी सब सारो।
लोप भये सभ छत्रन के गुण जग्ग सुपुन्न जुदान अपारो।
ईद चली बकरीद निवाज सुगोवध होत सभै घरभारी।
कोट कटे इह दूख सबै घ दीन दयाल बिना असिधारी।

— गुरु विलास, पृ• 41

दुखत भई धरनी जब ही जगनायक पै इह भान्ति पुकारी।
आकुल व्याकुल ह्वै निज भीतर रोवत भी बहु पाप निहारी।
काल सुदेव प्रसन्न भयो निज या विधि सौ वचु सुध्द उचारी।
होहु न आतुर धीर धरो निज धारत संत अनंतावतारी।।

— गुरु विलास, पृ•42

डा• हरिभजन सिंह : गुरुमुखी लिपि में हिन्दी काव्य, पृ• 266 पर उद्धृत यह उध्दरण।

इस तरह सन्त अवतार धारण करने की बात पर पौराणिकता का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। इस के अतिरिक्त " गुरु विलास में सिक्ख गुरुओं से संबन्धित घटनाओं को हिन्दू अवतारों की भी पौराणिक घटनाओं की समता प्रदर्शित की गई है। उदाहरणार्थ जिस प्रकार पूर्व अवतारों ने धरा को दैत्यों से छीन कर अपने भक्तों को दिया था, उसी प्रकार गुरु जी ने भी इसे मलेच्छों से छीन कर 'खालसा' को प्रदान किया।[57] गुरु गोबिन्द सिंह जी की माता जी को कौशल्या[58] के समान, गुरु जी को राम, कृष्ण शिव के समान[59] तथा सोढी वंश को सूर्यवंश[60] के एवं गुरु के पटने प्रस्थान को राम बनगमन के समान बताया गया है।[61]"

इस तरह समस्त गुरु विलास में पौराणिक तथ्यों के साथ ऐतिहासिक घटनाओं का मिश्रीकरण करते हुए पौराणिक वातावरण का निर्माण किया गया है। उस में पुराणों केअतिरिक्त रामायण और महाभारत के भी अनेक चरित्रों, अवतारों, तीर्थ स्थानों, ऋषियों मुनियों का उल्लेख श्रध्दा भाव से किया गया है। मलेच्छों के राक्षसत्व पर विजय दिखाने के लिए पौराणिक अवतारों का गुरु जी के साथ ऐक्य दिखाना गुरु विलास की विशिष्टता है। इस के अतिरिक्त इस में देवी पूजन प्रसंग जिस विस्तार से वर्णित है वैसा पहले किसी ग्रंथ में देखने को नहीं मिलता। महाकाल की आराधना कर वर प्राप्त करना इसी आधार पर 'गुरु प्रताप सूरज' में भी विस्तार सहित अंकित हुआ है।" सुक्खासिंह के चंडी वर्णन को पढ़ कर एक प्रभाव तो निर्भ्रान्त रूप से पड़ता है कि उनके समय तक हिन्दू धर्म की सुविशाल सांस्कृतिक परंपरा को निरसंकोच भाव से अपनाने की प्रवृति सिक्ख विद्वानों में विद्यमान थी। सुक्खासिंह ने वैष्णव, शैव एवं शाक्त परंपराओं की सांस्कृतिक संपन्नता से अपने काव्य

57- डा॰ जय भगवान गोयल : गुर विलास (भूमिका) पृ॰ 69-70

78- गुर विलास, 3॰ 75-85

59- वही, 4॰ 4, 6॰ 114-22, 6॰214

60- वही, 4॰ 5

61- वही 3॰ 166-75

ग्रंथ को यथा स्थान समृध्द किया है।[62]" जिसका भाई सन्तोख सिंह ने अनुसरण करते हुए 'गुरुप्रताप सूरज' में अनुपालन किया ।अतः कहा जा सकता है कि 'गुरु प्रताप सूरज' के सृजन में 'गुरु विलास' का अद्वितीय योगदान है और 'गुरु प्रताप सूरज' के ऐतिहासिक तथ्य के मिथोकरण में 'गुरविलास' अनुपम भूमि का का कार्य करता है।

गुरु नानक विजय

परिचय :

उदासी सन्त रेण द्वारा रचित गुरु नानक विजय' 2438 छन्दों का एक विशाल काय धार्मिक प्रबन्धात्मक काव्य ग्रंथ है। इस में गुरु नानक के जीवन को पौराणिक शैली में वर्णित किया गया है। पंजाब में रचित पौराणिक प्रबन्ध काव्यों की परंपरा में इस का विशिष्ट स्थान है। इस ग्रंथ में गुरु नानक देव जी को पुराण पुरुषों, राम, कृष्ण, दुर्गा, शिव की पंक्ति में स्थान दिया गया है।और उन्हें ऐतिहासिक पात्र न मानकर पौराणिक व्यक्ति माना गया है। उनका यह काव्य ग्रंथ सिक्ख धर्म के लिए एक पुराण ग्रंथ की तरह मान्य है जिस में विष्णु के अवतार रूप में गुरु नानक देव जी को चित्रित किया गया है।[63]

पौराणिकता :

पूर्व विवेचित ग्रंथों में (गुरु शोभा तथा गुरु विलास) गुरु की प्रशंसा अवतार पुरुष के रूप में हुई है। स्वयं गुरु गोबिन्दसिंह ने अपने आत्म कथानक परिचय (अपनी कथा) में अपने जग प्रवेश का अलौकिक कारण भी दिया है।परन्तु उन में केवल उन्हें अवतार पुरुषों के रूप में ग्रहण करने का आग्रह तो है पुराण पुरुष के रूप में चित्रित करने को

62- डा· हरिभजन सिंह : गुरुमुखी लिपि में हिन्दी काव्य, पृ· 287

63- द्रष्टव्य : (1) गुरु नानक विजय : 1·10·17·52

(2) वही , 2·2·15·109

(3) वही ; 2·4·37·723

(4) वही , 2·4·38·123

रुचि कदापि नहीं ।" इन प्रबन्धों में गुरुओं को न तो भगवान विष्णु का अवतार सिध्द करने की रुचि लक्षित होती है, न ही किसी गुरु की जीवन-कथा में पौराणिक देवताओं के जमघट की प्रवृति के दर्शन होते हैं। नानक विजय एक मात्र ऐसी कृति है जिस में गुरु व्यक्ति को अवतार पुरुष के रूप में ही नहीं पुराण पुरुष के रूप में भी स्वीकार करने की प्रवृति स्पष्ट रूप में दृष्टिगत होती है।"[64] इस से स्पष्ट प्रतीत होता है कि नानक विजय का समस्त वातावरण पौराणिक भावना के चित्रण से ओतप्रोत है। इस में नायक के अतिरिक्त अन्य पारिवारिक पात्रों को भी पौराणिक पात्रों की तरह चित्रित किया गया है।[65] इसके अतिरिक्त इस में अतिमानवीय कृत्यों और चमत्कार बाहुल घटनाओं, ऋषियों, देवी देवताओं की बन्दना के मंगलाचरण, भगवान विष्णु के नानक रूप में अवतरित होने के कारणों पौराणिक आख्यानों की बाहुलता आदि के उल्लेख से इसके पुराण ग्रंथ होने की सभी विद्वानों ने प्रशंसा की है। परन्तु भाई सन्तोख सिंह ने इस की कथा के ऐसे रूप का अपने रचे काव्य ग्रंथ 'श्री गुरु नानक प्रकाश' तथा 'गुरु प्रताप सूरज' में कही उल्लेख नहीं किया है। तथापि इन दोनों ग्रंथों में पौराणिक वातावरण को प्रस्तुत करने में किसी प्रकार कीकमी नहीं रही है । फिर भी दोनों कवियों के दृष्टिकोण की विभिन्नता इन के अध्ययन से भलि भान्ति विदित हो जाती है। जहां 'गुरु नानक विजय' में चमत्कार ही प्रतीत होते हैं वहां 'नानक प्रकाश में चमत्कार यथार्थ की धरती पर चित्रित दिखाई देते हैं उन में अतिमानवीयता ने यथार्थता को भी धरण किया हुआ है। 'नानक प्रकाश में जहां आध्यात्मिक सन्देश है और 'गुरु प्रताप सूरज' में आध्यात्मिकता के साथ साथ मलेच्छों के 'राक्षसत्व' को समाप्त करने की भावना व्यक्त है वहां 'गुरु नानक विजय' में केवल धर्म प्रचार के द्वारा ही विजय प्राप्ति दिखाई गई है ।इस के अतिरिक्त 'गुरु बिलास विलास' में भी गुरु गोबिन्द सिंह को ऐसे पौराणिक पुरुष के रूप चित्रित किया गया जो खंडे की पाहुल का अमृत पान करु खालसा पंथ की साजना ही

64- डा॰ हरिभजन सिंह : गुरमुखी लिपि में हिन्दी काव्य, पृ 320

65- (1) गुरु नानक विजय : 2·12·11·18, 2·4·53·125

(2) वही , 2·6·38·249

असुर संहार के लिए करते हैं। परन्तु उक्त रचनाओं में उन्हें विष्णु के ही अवतार के रूप में प्रतिष्ठापित नहीं किया गया है जैसा कि 'गुरु नानक विजय'[66] में हुआ है। इस से इस का अपना ही पृथक स्थान निश्चित हो जाता है। इसकी आलौकिकता ने समस्त काव्य को आत्मसात किया हुआ है परन्तु 'गुरु प्रताप सूरज' में ऐतिहासिक तथ्यों का मिथीकरण होते हुए भी इस जैसा अलौकिक वातावरण वहां नहीं है। वहां तो यथार्थता ने पौराणिकता को आत्मसात किया हुआ है। तभी तो डा॰ गोयल ने भी लिखा है कि " गुरु प्रताप सूरज' में युग समाज का जैसा वृहद और यथार्थ चित्र उपलब्ध है, उसका यहां अभाव है। पात्रों की मनोदशा का वैसा सजीव चित्रण भी यहां नहीं हुआ है और नहीं भावों की वैसी विशद और अनुभूतिपूर्ण अभिव्यंजना हुई है । सभी पात्र गुरु नानक की दिव्यता के बोझ से इतने दबे हुए हैं कि उनकी मानवीय मनोवृति एवं संवेदना पूरी तरह उभर कर सामने नहीं आ पाती।"[67] अतः इस कथन से सिध्द है कि 'गुरु प्रताप सूरज' का मिथीकरण यथार्थपरक है। 'गुरु नानक विजय' इस परंपरा का काव्य ग्रंथ अवश्य है परन्तु इसके दृष्टिकोण से 'गुरु प्रताप सूरज' का दृष्टिकोण पृथक है ।

'गुरु प्रताप सूरज' की पौराणिकता की विशिष्टता

'गुरु प्रतापसूरज' की पौराणिकता मेंउक्त विवेचित ग्रंथों से कई विशिष्टताएं दृष्टि-गोचर होती है। यद्यपि ऊपर उनका स्थान स्थान पर संकेत किया जा चुका है तथापि उनकी महता का यहां पृथक विवेचन करने से विषय और अधिक स्पष्ट हो सकेगा कि उक्त ग्रंथों से इस ग्रंथ में हुए ऐतिहासिक तथ्यों के मिथीकरण का स्वरुप कैसा विशिष्ट था ।उक्त ग्रंथों के परिप्रेक्ष्य में इसकी पौराणिकता का सही मूल्यांकन भी हो जायेगा ।

इस ग्रंथ के सांस्कृतिक महत्व का एक कारण यद्यपि इसकी पौराणिकता भी है तथापि इस में वर्णित धर्म भावना के समन्वयात्मक रूप का पूर्वोक्त कृतियों में वैसा प्रतिपादन नहीं हुआ जैसा कि इस ग्रंथ में भाई सन्तोख सिंह ने निरूपित किया है ।

66- विस्तृत अध्ययन के लिए द्रष्टव्य : डा॰ सच्चिदानंद शर्मा, उदासी सम्प्रदाय और कवि सन्त रेण , पृ 72-102

67- गुरमुखी लिपि में हिन्दी साहित्य , पृ॰ 310

यही समन्वयात्मकता इस की महान विशेषता कही जा सकती है। इसी के आधार पर कहा जा सकता है कि उन्होंने मिथिक युग का मध्यकालीनीकरण भी किया है तथा ऐतिहासिक पात्रों — गुरु साहिबान के यथार्थ स्वरूप के साथ साथ उनके व्यक्तित्व में पौराणिक पुरुषों का आरोप उनकी भक्ति भावना से भी अनुप्राणित है।

इस में यद्यपि पौराणिक चमत्कारवाद[68] के दर्शन भी होते हैं परन्तु गुरु साहिबान ने उन्हें दिखाने में संकोच से काम लिया है। 'नानक विजय' की तरह इस में अति - मानवीय घटनाओं की बाहुलता नहीं है। इस में उनकी लीलाएं यथार्थ की धरती पर अधिक दिखाई गई है ।

अवतारवाद के प्रति आस्था और भक्ति भावना का इस में निदर्शन होते हुए भी उसे सिक्ख धर्म के अनुकूल ढाला गया है। इस में वैष्णववाद और ब्राह्मणवाद का भी समन्वय देखने को मिलता है। इसमें हिन्दुओं के दिलों में जहां गुरु साहिबान के प्रति श्रध्दा की भावना उत्पन्न करने का प्रयास किया गया है वहां सिक्खों के दिलों में हिन्दुओं के देवी-देवताओं के प्रति भी आदर की भावना उत्पन्न कर कवि ने दोनों के हृदयों को एकता के सूत्र में बांधने का अद्वितीय प्रयास किया है ।

'गुरु प्रताप सूरज' में पौराणिक प्रवृतियों का चित्रण

'गुरु प्रताप सूरज' की उक्त विशिष्टताओं के अतिरिक्त इस में पूर्वोक्त पौराणिक प्रवृतियों का निरुपण भी हुआ है ।

1 - पंच लक्षण :

'गुरु प्रताप सूरज' में गुरु साहिबान की परंपरा के वर्णन में सृष्टि की उत्पति (सर्ग), लय और पुनः सृष्टि (प्रतिसर्ग), उनकी वंशवली (वंश) सत्य युग, द्वापर, त्रेता और कलियुग आदि का विवेचन (मनु के काल विभाग), राजाओं के वंश वृत (वंशानु - चरित) आदि सभी लक्षणोंका पालन हुआ है। इस में गुरु साहिबान ही गुरु नानक

---

68 - गु. प्र सू. रा 10, अंशु 17, पृ · 3829
वही , रा · 12, अंशु 49, पृ 4411

देव जो को अमर ज्योति को प्रकाशित करने वालों के रूप में चित्रित हैं। असुर शक्तियों के संहार के लिए पुनः पुनः अवतार धारण करने की भावना का इस में सुन्दर ढंग से समावेश हुआ है।

2- आस्तिकता :

इस में पौराणिकता को भावना उत्पन्न करने के लिए पौराणिक अवतारों के प्रति आस्तिक भावना का निरूपण भी इस ग्रंथ के मंगलाचरणों में देखा जा सकता है।

3- अवतारवाद :

अवतार वाद को भावना तो इस ग्रंथ के ऐतिहासिक पात्रों में विशेष रूप से आरोपित है। इस में ब्रह्मा, विष्णु और शिव को रचयिता, पालक और संहारक रूप में चित्रित करते हुए गुरु साहिबान को उन जैसा बताया गया है। अप्रस्तुत योजनाओं द्वारा उनके व्यक्तित्व को समानता एवं एकरूपता का इसमें प्रतिपादन हुआ है। इस में निरूपित अवतारवादो भावना सामयिक समस्याओं के समाधान को प्रेरणा से सिंचित है। दशमेश जो हिन्दू-मुस्लिम द्वंद के नाश के लिए ही अवतरित होते दिखाये गए हैं।

4- साम्प्रदायिकता :

'गुरु प्रताप सूरज' में यद्यपि सिक्ख गुरु साहिबान के जीवन चरित अंकित है तथा प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में किसी अन्य पंथ या साम्प्रदाय के प्रति तिरस्कार को भावना उस में अंकित नहीं है। हां इस में 'खालसा पंथ' के रूप में विकसित नवीन सम्प्रदाय को श्रेष्ठता एवं उत्कृष्टता प्रतिपादन अवश्य हुआ है।

5- समन्वय भावना :

उक्त साम्प्रदायिकता को भावना के साथ साथ समन्वय भावना भी पुराणों के अनुसार यहां भी निरूपित है। जैसा कि जहां उनमें सम्प्रदाय विशेष के पूज्य देव को सर्वोत्कृष्ट सिध्द करने का आग्रह होता है वहां अन्य देवी देवताओं का उन से बहिष्कार नहीं कर दिया जाता। प्रत्येक पुराण में जैसे पूज्य देव के साथ अन्य देवी देवताओं और पात्रों का सम्बन्ध किसी न किसी तरह स्थापित करने की चेष्टा

रहती है वैसे ही इस 'गुरु प्रताप सूरज' में महाकवि ने अपने इष्टदेव गुरु साहिबान के महत्व और सिक्ख धर्म की भावनाओं की श्रेष्ठताओं का प्रतिपादन किया है वहां अन्य मतों और सम्प्रदायों की भावनाओं के चित्रण से अपनी समन्वयात्मक प्रतिभा का चमत्कार भी दिखाया है। उनके काल्पनिक , ऐतिहासिक एवं पौराणिक सभी आख्यानों में इसी भावना का साम्राज्य है। यह प्रवृति अपनी उदारता का 'गुरु प्रताप सूरज' में चमत्कार दिखाती है ।

6- चरित्र चित्रणगत रूपात्मकताः

इस में देव और दानव, गुरमुख और मनमुख, सन्त और असन्त आदि दो श्रेणियों के पात्रों का चरित्र मिलता है। गुरु साहिबान देव वर्ग के अन्तर्गत और मलेच्छ, तुर्क आदि दानव वर्ग के अन्तर्गत चित्रित हैं । इस में कई स्थानो पर ऋषियों और मुनियों का भी उल्लेख मिलता हैं। नारद जी खंभ लेकर भेंट देने आते हैं। सत्य और असत्य का पौराणिक द्वंद इस में भी देखने को मिलता है। सत्य की रक्षा के लिए और असत्य के नाश हेतु ही तो गुरु गोबिन्द सिंह को अवतार धारण करते दिखाये गए हैं । 'गुरु प्रताप सूरज' में चरित्र चित्रण सम्बन्धी पौराणिक रूपात्मक सर्वस्वीकृत है। आकाश वाणी द्वारा, देवताओं की पुष्प वर्षा द्वारा तथा अनेक पौराणिक आख्यानको के संकेतों द्वारा गुरु साहिबान के अवतारत्व की पुष्टि की गई हैं । पांचवी पतशाही तक गुरु साहिबान का व्यक्ति शान्ति का सन्देश देता है तथा उनका आध्यात्मिक रूप ही सर्वत्र चित्रित है । श्री गुरु हरि गोबन्द सिंह और गुरु गोबिन्दसिंह को वीर योध्दा के रूप में चित्रित किया गया है। जो सामयिक परिस्थितियों के अनुसार शत्रुओं का संहार भी करते हैं । इस तरह से 'गुरु प्रताप सूरज' में उनके अवतारत्व का चित्रण करते हुए भी उन्हें   चित्रित करने का प्रयास किया गया है।

7- चमत्कारवाद और चरित्र-वैचित्र्य

इस में गुरु अमरदास के चमत्कार प्रदर्शन के कुछ दृश्यों – मृतकों को जीवित करने, रामराय के औरंगजेब को चमत्कार, गुरु तेगबहादुर के बन्दीखाने

से सिक्ख के घर भोजन ग्रहण करने जाने, आदि अनेक विचित्र लीलाओं का 'गुरु प्रताप सूरज' में उल्लेख मिलता है। यह सब चरित्रगत वैचित्र्य पौराणिक भावना के अनुकूल ही दिखाई देता है ।

8 - वर्णाश्रम विधान :

पुराणकारों ने समाज में उश्रृंखलता हटाने के लिए तथा मर्यादावाद की पुष्टि हेतु वर्णाश्रम का जो विधान निरूपित किया था उसकी 'गुरु प्रताप सूरज' में भी स्वीकृति अंकित है। यद्यपि ब्राह्मणत्व की वास्तविकता एवं श्रेष्टता का इस में निरूपण हुआ तथापि उसका सामाजिक भेद भाव की भावना को दूर करने के लिए कहीं भी विशेष कटुता से उसकी आलोचना करने का कवि ने प्रयास नहीं है । वैसे गुरु साहिबान ने सर्व जातियों की एकता की भावना को उद्दीप्त करने के लिए 'लंगर, जैसी पध्दतियां चलाई हुई थी । सामाजिक वर्णशंकर हमारे कवि को भी पुराणकारों की तरह असह्य है।[69] गुरु तेग बहादुर तो ब्राह्मणत्व की रक्षा हेतु ही अपना बलिदान देते हैं ।सामाजिक व्यवस्था के लिए वर्णाश्रम धर्म के विषय में भाई सन्तोख सिंह के विचार परंपरानुकूल ही हैं ।

9- कर्मकांड : पूजा विधियां

'गुरु प्रताप सूरज' का सृजन कैथल में हुआ था जहां अनेक मन्दिर और पुजारी रहा करते थे । उसी प्रभाव के अधीन तथा पौराणिक भक्तिभावना के विकास का, विभिन्न धार्मिक उपासना पध्दतियों का, 'गुरु प्रताप सूरज' में युगानुकूल निरुपण हुआ है ।कर्मकांड का वह युग था नहीं और न आज की इनका यज्ञ आदि के द्वारा अनुपालन सहज है। मूर्तिपूजा में उपचार-पालन की भावना तथा पुजारियों की पाखंडपूर्णता ने इनके खंडन के लिए विरोधी स्वर को जगाया । तांत्रिक मन्त्र जन्त्र के प्रति भी कवि ने अविश्वास व्यक्त किया है। समाधियों की पूजा का भी खंडन कियागया है। यहां पर 'गुरुप्रताप सूरज' में पुराणवाद का अनुपालन न होकर युगानुकूल विपरीतता के दर्शन होते है जिस पर

69- तिलक जंजू राखा प्रभ ताका ।
कीनो बडो कलू महि साका ।। ।3 ।। - दशम ग्रंथ पृ. 54

गुरु साहिबान की वाणी की छाप अंकित है अपने नवीन 'खालसा' पंथ के सिध्दांतों एवं उसकी पाहुल आदि की विधियों का विशेष उल्लेख मिलता है।

10- उपदेशात्मकता : धर्म संकट मीमांसा

'गुरु प्रताप सूरज' में गुरु साहिबान के उपदेशों का सुन्दर संग्रह हुआ है। अनेक आख्यानों द्वारा, दृष्टान्तों द्वारा, मानव को सत्य का संमार्ग दिखाया गया है। इसकी उपदेशात्मकता कथा जनित होते हुए भी अनुभव परक है। गुरु साहिबान ने सामयिक परिस्थितियों के उनुकूल जनता के जीवन में परिवर्तन लाने के लिए पाखंड के वितंडावाद का खंडन करने के लिए धर्म संकट की स्थिति में नवीन आशा का संचार करने के लिए, नैतिक उत्थान के लिए, अहंकार आदि की भावनाओं के नाश एवं परिष्कार के लिए, चरित्र निर्माण के लिए साधु संगति के द्वारा उध्दार के लिए अपने दरबार में आये साधकों कोउपदेश देने के कर्तव्य का भी पालन किया है। मोक्ष धर्म का सहज मार्ग – नाम स्मरण का सन्देश दिया है ।

11- मूल भावना :

पौराणिक साहित्य संस्कृत भाषा में था जिस तक उस युग में जन साधारण की पहुंच नहीं थी ।अतः जन साधारण की ज्ञान-वृध्दि के लिए उन में संचित ज्ञान को भाषा में लिखकर, उनकी सरस कथाओं का चयन कर, लौकिक एवं पारलौकिक अभ्युदय और निःश्रेयस का मार्ग दिखाने के लिए जहां 'गुरु प्रताप सूरज' में उनका उपयोग हुआ है वहां प्रभुनाम स्मरण द्वारा या युध्द में शौर्य दिखाने या वीर गति प्राप्त करने को सिक्ख का वास्तविक धर्म बताया गया है। यही भावना उस समय युग की मूल भावना थी जिस की 'गुरु प्रताप सूरज' में व्यापक व्याप्ति हुई है ।

समीक्षा

इन प्रवृतियों के विश्लेषण से यह सिध्द होता है 'गुरु प्रताप सूरज में ऐतिहासिक तथ्यों का मिथीकरण युगानुकूल भावना के अनुरूप ही हुआ है । पूर्ववर्ती परंपरा से दृष्टि कोण निर्माण में जहां इस ग्रंथ ने सहायता ली है

वहां इसकी अपनी मौलिकता, नवीनता, यथार्थता भी कुछ कम सराहनीय नहीं है । इस के विशाल कथानक में अनेक पौराणिक आख्यान संकलित हैं । अनेक आलंकारिक संकेत मिलते हैं। पौराणिक शैली के अपनाने का आग्रह भी इस की साहित्यिकता में परिलक्षित होता है। प्रतिपाद्य की पुष्टि में इस की पौराणिकता का अनुपम योग-दान रहा है । पौराणिक भावनाओं के पुनरुत्थानवाद के पालन से अपने समन्वयवादी दृष्टिकोण द्वारा जहां मध्यकालीनकरण किया है वहां ऐतिहासिक पात्रों का मिथकीकरण इस की गौरवशाली विशिष्टता कही जा सकती है। जिस सस्कृतिक चेतना को ही जागृत नहीं किया प्रत्युत धार्मिक सहिष्णुता एवं भावात्मक एकता की भावना को भी जगाया है।

3- 'गुरु प्रताप सूरज' में पौराणिक आख्यान, स्वरूप एवं उद्देश्य

'गुरु प्रताप सूरज' पौराणिक शैली में लिखा गया महाकाव्य होने के कारण उपदेशात्मकता एवं धार्मिक तत्वों का व्याख्याता भी है। यद्यपि धार्मिक तत्व सभी प्रकार के महाकाव्यों में पाया जाता है, और—वह तो भारतीय साहित्य की एक मूल-भूत विशेषता ही है[70] परन्तु ऐसे महाकाव्यों में धार्मिक प्रवृति कुछ अधिक दिखाई देती है। धार्मिक तत्वों की उपस्थिति के कारण ही यह महाकाव्य पौराणिक माना जाता है। जैसा कि पहले संकेत किया जा चुका है कि पौराणिक महाकाव्यों की मुख्य प्रवृति है तत्व-कथन अर्थात् धर्म नीति, ज्ञान आदि का उपदेश। विषय के विचार से उनका मुख्य आधार होती है धार्मिक लोक कथाएं, , ऋषि मुनियों की कथाएं तथा ऐतिहासिक पौराणिक महापुरुषों के चरित्र। उपदेश को गौरवशाली बनाने के लिए इन में पांडित्य का पुट भी पर्याप्त रहाता है और धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र, रानीति आदि अनेक विषयों का भी समावेश किया जाता है। 'गुरु प्रताप सूरज' में पौराणिक महाकाव्यों की शैली

70- द्रष्टव्य : डा॰ श्याम सुन्दरदास का निबन्ध : 'भारतीय साहित्य की विशेषताएं' (साहित्यिक लेख , आगरा, 1949 , पृ॰ 179, तथा हिन्दी भाषा और साहित्य, प्रथम संस्करण , पृ॰ 179

का अनुसरण होने के कारण इसमें अनेक अन्तर्कथाएं सम्मिलित की गई हैं। इस काव्य ने अन्य भारतीय काव्यों की तरह ही पुराणों की उपदेशात्मकता, आलौकिकता, अत्युक्ति चमत्कारवाद आदि के कारण पुराणों का बाना धारण कियाहुआ है। जब इस काव्य की उपदेश - प्रवृति की ओर दृष्टि जाती है तो इसे साहित्यिक शैली का महापुराण कहने को मन करता है। इस में अनेक पौराणिक संकेतों के अतिरिक्त महाभारत की शैली के अनुसार अनेक पौराणिक आख्यानों का भी पर्णन है। यह आख्यान अधिकतर धार्मिक उपदेशों के रुप में संकलित किए गए हैं । यहां प्रमुख आख्यानों को प्रस्तुत किया जा रहा है जिन के द्वारा यह सिध्द हो सकेगा कि इस भारतीय महाकाव्य का हृदय पुराणों से निर्मित हुआ और इसका कलेवर समस्त साहित्य शास्त्रीय उपादानों से अलंकृत है। इस की मूल प्रवृति धार्मिक ही है ।

1- मंकणक मुनि का आख्यान

जब श्री गुरु अमरदास तीर्थ यात्रा करते हुए 'पहोआ' (पुष्कर क्षेत्र) पंहुचते है तब सरस्वती के तट पर विश्वामित्र आदि अनेक मुनियों के पूर्वकाल में की तप साधना का वर्णन करते हुए एक मुनिमंकन की वार्ता सुनाते हैं कि इस मुनि ने परम पद प्राप्ति के लिए विषम तप-साधना की –

एक बार कुशलाते समय कुश की नोक से उनकी अंगुली चिर गई।तब उस से रुधिर न निकल कर हरे पत्र के समान रस सा निकला।सोचने लगे कि मैंने ऐसी कठोर तपस्या की है कि शरीर में रुधिर न चल कर हरे पते से निकलने वाले

71- 'महा बिखम तपु घाल्यो ताहू ।
तीर सरस्वती केर प्रवाहू ।
छुधा त्रिखा सहि कठन कराला।बरखा सीत उशन तन झाला ।। 29 ।।
बहुत बरख ऐसो तप साध्यो ।सरबोतम पद लैन अराध्यो ।
एक दिवस किमि आंगुर चीरा।रुधिर नहीं निकस्यो तिस धीरा।। 30 ।।
गु. प्र.सू. रा. 1, अंशु 45, अंक 29-44, पृ . 15 15

के समान जल चल रहा है। उसे दखेकर वे इतने प्रसन्न हुए कि आप भावावेश में नाचने लगे। उनको तपस्या के प्रभाव से स्थावर, जंगम सम्पूर्ण जगत उनके नृत्य की गति में गति मिलाकर नृत्य करने लगा। दैनिक व्यवहार आदि तक भूल गए। ऐसो अनोति को देखकर देवगण बहुत दुखी हुए और भागवान शंकर को शरण में पहुंचे। देवताओं को प्रार्थना सुन कर भगवान शंकर ने मुनि के मन के उत्साह को देखकर उसके निवार्णार्थ अन्यवेश (वि विप्र के वेश में) में उनके पास गए और नृत्य का कारण पूछा। मुनि ने अपने हर्षोन्मत होने का कारण बताया। तब शिव जो ने अपनो अंगुलो चोरकर दिखाई तो उस से भस्म निकलने लगा। तब उन्होंने उसे कहा कि देखों तप ऐसा होता है कि शरोर में अन्य अंश कुछ रहता हो नहीं। ऐसे वचन सुनकर तथा उन्हें पहचान कर वह उनके चरणों पर गिर पड़ा और क्षमायाचना करने लगा। नृत्य बन्द कर दिया और जगत में शान्ति हो गई[72]।

इस तरह गुरु जी कहने लगे कि इस स्थान पर बड़े बड़े तपस्वी तप किए करते थे। यहां पर स्नाना करने से मन पवित्र हो जाता है।

2- मेदिनो को आदि कथा, मधु कैटभ का युध्द।

सृष्टि के आरंभ में भगवान् नारायण जल में रत्न जड़ित शैय पर योग निद्रा में लोन थे। चारों ओर जल हो जल था। प्रभु को इच्छा से उनको नाभि से एक कमल उत्पन्न हुआ। उससे ब्रह्मा को उत्पति हुई। उसो पर बैठ कर ब्रह्मा जो तप करने लगे। पुनः अकाल पुरुष को इच्छा हुई। उन्होंने हाथ को अंगुलो से कान की कुछ मैल खरोच कर निकालो और उसे अपनो अनामिका से फेंक दिया। वह कुछ योजन दूर जा कर गिरो और उसो से दो दैत्यों ने शरोर धारण किया जो महाबलशालो हुए। वे जल में चारों ओर घूमते थे। बल को अधिकता के कारण युध्द के लिए लालयित रहते थे। घूमते घूमते वे उस स्थान पर पहुंचे जहां पर ब्रह्मा जो तप

72-(क) गगु. प्र. सू. रा. 1, अंशु 45, अंक 35-44, पृ. 1515-1516
(ख) द्रष्टव्य : महाभारत, वनपर्व, 83-122 तथा 123

साधना कर रहे थे । काले पर्वतों जैसे शरीर वाले भुजंगमराज जैसे भुजाओं वाले उन दैत्यों को देख कर ब्रह्मा जी भयभीत हो उठे[73] । तब उन्होंने भगवती लक्ष्मी की आराधना की कि नारायण भगवान् को जगाये । भक्त वत्सल प्रभु ने भक्त के कष्ट दूर करने के लिए उठे और ब्रह्मा का धैर्य बन्धाया[74]। तथा उन्हें अपना स्वरुप दिखाया । उन्हें देख कर दैत्य बहुत हैरान हुए कि यह कौन महान् धैर्यशाली वीर है जो हमें देख कर डर नहीं मानता । हम दो हैं और यह अकेला है। इसे पकड़ कर भक्षण कर लेना चाहिए और अपनी क्षुधा मिटानी चाहिए । ऐसा कह कर दोनों ने अपने ओजस्वी रुप को व्यक्त किया और कहा ठहर । ठहर । उनके इन वचनों को सुनकर प्रभु ने उत्साहित होकर उन्हें द्वन्द्व युध्द के लिए ललकारा[75] । जब युध्द करते हुए पांच सहस्त्र संवत् बीत गए और कोई भी पराजित नहीं हुआ तब प्रभु ने सरस्वती (माया) को भेज कर उन दैत्यों को बुध्दि भ्रमित कर दी । उन्होंने कहा कि हम आप को सिर का दान देने के लिए तैयार हैं परन्तु जलहीन स्थान पर सिर टिका कर उतारा जाये । तब प्रभु ने उन के मस्तक को अपने पट पर रख कर उतार दिया । उनके भाल से निकलने वाली मेदा से मेदिनी (पृथ्वी) बनी । (वह मेदा जब सूर्य के तेज से सूख गया तब मेदिनी बनी[76]।

इस तरह श्री अमर दास जी ने कुरुक्षेत्र की पावन धरती का पुरातन इतिहास बताया । इस आख्यान का उल्लेख हरिवंश पुराण, भागवत पुराण[76] तथा ब्रह्मांड पुराण[77] आदि में सविस्तार से हुआ है। भाई सन्तोख सिंह जी ने उक्त पुराण-साहित्य के आख्यान के अनुसार ही इस कथा का वर्णन किया है।

73- गु. प्र. सू. रा. 1, अंशु 47, अंक 1-12 पृ· 1522-1523

74- वही , रा· 1, अंशु 47, अंक 18 पृ· 1524

75- वही , रा 1, अंश 47, अंक 19-36, पृ· 1524-26

76- भगवत पुराण : 7· 9· 37; 10· 40· 17

77- ब्रह्मांड पुराण : 2· 37· 2 ; 3· 63· 38 ; 4· 29· 75

3- यमुना की आदि कथा [78] ।

कुरुक्षेत्र के तीर्थ का भ्रमण कर जब श्री अमरदास आगे कालिन्दी के तट पर पहुंचे । वहां पहुंच कर सब संगत ने निर्मल और पावन जल में स्नान किया और तत्पश्चात् गुरु जी से यमुना के पुरातन इतिहास को पूछा ।

तब गुरु जी संगत की अभिलाषा पूर्ण करने हेतु यमुना जी का सकल पुरातन इतिहास कहने लगे ।प्राचीन काल की बात है कि देव शिल्पी विश्वकर्मा की सुवर्चला संज्ञा प्रभा नाम से प्रसिध्द हुई । जो अत्यन्त रूपवती थी । उसका सूर्य से विवाह हुआ । सूर्य के दुसह तेज से अत्यन्त पीड़ित होते हुए भी कुल मर्यादा के कारण वह अपने गृह में ही रही।उसके दो पुत्र और एक कन्या हुई।[79] दो पुत्रों में से एक का नाम (वैवस्वत)मनु था और दूसरे पुत्र का नाम यम था । वह यम और कन्या यमुना जुड़वां सन्तान थी । पति सूर्य के तेज को सहन न कर सकने के कारण संज्ञा अपनी जुड़वा सन्तान यम और यमुना को अपनी छाया से निर्मित सपत्नी छाया के पास छोड़ कर स्वयं चुपचाप चोरी से पिता के घर चली गई। जब विश्वकर्मा ने उसे बिना बुलाये अपने घर आये हुए देखा तो उन्होंने उसे बुरा भला कहा कि तू बिना पति आज्ञा से और बिना बुलावे के यहां क्यों चली आई है। अतः यहां तेरे रहने के लिए स्थान नहीं है। जहां तुम्हारी इच्छा हो वहां चली जायो । पिता के ऐसे कटु वाक्य सुन कर वह और अधिक पीड़ित हुई । तत्काल उसने अपना रूप बदल कर घोड़ी का रूप धारण किया और बन में जकर तप करने लगी ।

इधर छाया संज्ञा के रूप को धारण कर सूर्य देव के साथ रहने लगी । सूर्य उसे संज्ञा ही समझा करते थे । उसे अपनी पत्नी जान कर जब उससे उन्होंने रति - आदि की इच्छा ठानी तो उस से दो पुत्र और एक पुत्री उत्पन्न हुए। (दो पुत्रों के नाम थे श्रुताश्रवा और श्रुतकर्मा तथा कन्या का नाम तपती था)श्रुतश्रवा सावर्णि मनु हुआ और श्रुतकर्मा शनैश्चर बना।[80] तथा तपती ताप्ती नदी हुई ।जो दक्षिण की ओर बहती है।

78- गु॰ प्र॰ सू॰रा॰ 1, अंशु 48, अंक 1-43

79- द्रष्टव्य : भविष्यपुराण अध्याय 75

80- वायु॰ पुराण : 84॰25

इस तरह से सूर्य के चार पुत्र और दो कन्याएं हुई । छाया संज्ञा की सन्तानों से प्रेम नहीं करती थी । एक दिन संज्ञा के छोटे पुत्र यम से उसका कलह हो गया । यम ने क्रोधित होकर लात मारने के लिए उठाई। जब वह लात मारने के लिए उद्यत हुआ तो छाया ने उसे शाप दिया कि जो लात मुझे मारने के लिए तूने उठाई है वह गल जाये गी। इस शाप से यम के चरण तभी गल गए। इस घटना की सूचना जब सूर्य को मिली तो वह सोचने लगा कि यह माता और पुत्र कैसे हो सकते है जिन्होंने ऐसा घोर कर्म किया है। ऐसी शंका करते हुए जब सूर्य छाया के पास पहुंचा और पूछा कि सत्य सत्य बताओं कि तू कौन है ? जो पुत्र के साथ ऐसा व्यवहार करती है। तब सूर्यदेव अत्यन्त क्रोधित हुए तब उसने सारी कथा सत्य बताई कि आप की पत्नी संज्ञा आप के अति-दीप्तिमान रूप को असह्य जान कर अपने पिता के घर चली गई और मुझे अपने स्थान पर यहां छोड़ गई है। शनैश्चर आदि मेरी सन्तान हैं और मनु, यम और यमुना उसकी सन्ताने हैं।मैं चारों भाइयों का पालन करती रही हूँ । छाया के वास्तविक रूप को जान कर वह तुरन्त विश्वकर्मा के घर पहुंचे और पुछा कि आप पुत्री यहां आई है। तब उन्होंने कहा कि बहुत समय हुआ तब वह आई थी । तुम्हें क्या उसकी अब सुधि आई है ?विश्वकर्मा ने तब उन्हें समस्त वृतान्त सुनाया कि जब वह यहां रहने के लिए आई थी तो मैंने उसे यहां अपने घर नहीं रहने दिया। निराश होकर वह कहीं बाहर चली गई।हे सूर्यदेव वास्तविक बात यह है कि आप का तेज वह सहन न कर सकी । भयभीत हो कर वह चली गई। यदि आप मेरी एक बात मानों तो कहूं । उसके मानने से सब कार्य ठीक हो जाये गा । आप की कुछ वर्ण धुएं जैसा है जो तपने पर देखा नहीं जा सकता ।आप मेरे शाण(शराद) पर चढ़े तो आप का प्रचण्डतेज क्षीण कर डाला जाये और आप का रूप उत्तम बन जाये ।इस बात को मान कर सूर्य देव शाण पर चढ़ गए और देव शिल्पी विश्वकर्मा ने उनका सुन्दर रूप बना दिया ।अपने रूप को देखकर सूर्यदेव बहुत प्रसन्न हुए और विश्वकर्मा से बन का पता लेकर स्वयं घोडे के रूप को धारण कर उतरकुरु की ओर चल पड़े ।वहां सूर्य के संयोग से घोड़ी-रूपी संज्ञा की नासिका से दो अश्विनि कुमारों की उत्पति हुई ।पुत्रों सहित पत्नी को लेकर सूर्यदेव अपने घर वापिस आ गए ।

ाब मिल कर प्रसन्न हुए । तब स यमुना बन में जा कर तप करने लगी[81] ।द्वापर के अन्त में जब श्री कृष्ण हुए तो उन्होंने इसे अपनी पत्नी बनाया । और अनेक प्रकार के सुख भोगते हुए इस के दस पुत्र हुए[82] । वह यमुना नदी बन कर बही[83] । इसका पावन जल पापों को नष्ट करने वाला है।

4-मार्तण्ड(सूर्य)[84] की कथा

श्री गुरु अमरदास जी से उक्त कथा सुन कर संगत ने पूछा कि सूर्य का वर्ण धूएं जैसा क्यों हो गया था । तब गुरु जी ने सूर्य का इतिहास सुनाया – कि प्राचीन काल में कश्यप[85] नाम के एक ऋषि थे । उन्होंने बड़ा कठोर तप किया । उनकी अनेक पत्नियां[86] हुईं । दिति से[87] भयंकर दैत्यों का जन्म हुआ । दनु[88] से दानव उत्पन्न

81- ब्रह्मांड पुराण : 3 · 13 · 72

82- भागवत पुराण : 10 · 58

83- द्रष्टव्य : मार्कण्डेय पुराण ।

84- ब्रह्मांड पुराण : 3· 7· 275-288 तथा मत्स्य पुराण, 2 · 35

85- ब्रह्मा के मानस पुत्र मरीचि के पुत्र का नाम ।

86-(क)दक्ष का तरह कन्याओं से उनका विवाह हुआ।उनके नाम इस प्रकार :-अदिति, दिति, दनु, काला, दनायु, क्रोधा, प्राधा, विश्वा, मुनि, कपिला, मनु, कद्रु, सिंहिका, विनता ।

(ख) भागवत पुराण : 3 · 14 · 7; 4 · 1 · 13

(ग) ब्रह्मांड पुराण : 2·37·44; 3·2·31; 3·55; 4-1·20, 2·33· 47

(घ)मत्स्य पु· 146-1625; 171·30; 19·1; 14· 19(ङ)वायु पु· 63 · 41

87-(क)भाग· पु· 3·14·7, (ख)वायु पु· 66·54(ग) विष्णु पु·1·15· 124· 140

88- (क) मत्स्य पु· 6·1, 16, 146·18, 171·29. 58

(ख)वायु पु· 68· 4·12; 68. 1-16

(ग)विष्णु पु· 1 · 21 · 4-6

हुए। विनता से गरुड़ हुए।[89] कद्रु से सर्प नाग इत्यादि हुए। अदिति से सब देवता हुए जो अमृत पीकर अमर हो गए। जब सूर्य देव अदिति के गर्भ में थे तब एक दिन चन्द्र सुत बुध ब्रह्मचारी के वेश में भिक्षा हेतु उसके द्वार पर आये । अदिति गर्भावस्था के कारण तथा कुछ क्ष आलस्य के कारण शीघ्र न उठी। बुध को काफी देर तक वहां ठहरना पड़ा। तब उस ने क्रोध में भर कर अदिति को शाप दिया कि जिस गर्भ के कारण तूं इतना आलस्य किया है और मुझे तुरन्त भिक्षा नहीं दी है वह तेरा गर्भ गल जाये, बचे नहीं । इतना कह कर वह अन्य द्वार पर भिक्षा हेतु चला गया। अदिति बहुत भयभीत हुई। शीघ्र ही पति के समीप जा कर उसने बुध के शाप की बात सुनाई और रक्षा हेतु प्रार्थना की यह सुन कश्यप ने वर दिया कि तुम्हारा गर्भ बच जायेगा-नष्ट नहीं होगा । उसका ऊपर का शरीर मृत्यु को प्राप्त होगा और उसके अन्दर अन्य शरीर को वह प्राप्त करेगा, मृतक अंड से उत्पन्न होने के कारण सूर्य देव का नाम मार्तण्ड[90] पड़ा । यह वरदान प्राप्त करने केकारण वह गर्भ बच गया । जब सूर्य उत्पन्नहुए तो उनके दो शरीर थे । बीच के सुन्दर शरीर को प्रकट करने के लिए देव शिल्पी विश्वकर्मा ने सूर्य को शाण पर चढ़ाया । धूम्र वर्ण वाले मृतक शरीर को क्ष हटा कर सुन्दर रुप प्रकट किया । जितना ऊपर से सूर्य को खरोंचा उस से उसने सुदर्शन चक्र बनाया जो श्री कृष्ण के हाथ में सुसज्जित है। पुनः उससे त्रिशूल बनाया[91] जो भगवान शंकर के हाथ में शोभायमान है । शेष सामग्री से कुछ

89- (क)भाग॰ पु॰ 6 • 6 • 22 ; 3 • 19 • 11 ;

(ख)ब्रह्मां॰ पु. 3 • 7 • 29 ; 8 • 11

(ग)मत्स्य पु॰ 6 • 2 34 • 146 ;

(घ)वायु पु • 49 • 19 ; 69 • 66 ;

(ङ)विष्णु पु॰ 1 • 21 • 18

90- (क)ब्रह्मां॰ पु • 3 • 7 • 275-288

ख)मत्स्य पु • 2 • 35

91- (क)मत्स्य पु • 5 • 31 ; 11 • 29 ; 217 • 31

(ख)विष्णु पु • 3 • 2 • 11

अन्य वस्तुएं बनाई। इस तरह से इस प्रसंग को सुन कर संगत प्रसन्न हुई।[92]

5-धुन्धु और उतंक ऋषि की कथा[93]

यह पौराणिक कथा श्री सतिगुर हरिराय जी अपने सिक्खों को सुनाते है कि मधु और कैटभ नामक दैत्यों के शरीर से उनका धुन्धु नामक दैत्य पुत्र उत्पन्न हुआ जिस ने घोर तप किया। खाना पीना छोड़ कर मौन धारण किए हुए एक पैर से खड़ा होकर उसने कठोर तप किया । इस तरह से तप करने पर उसे अनेक देवताओ ने वरदान दिए। ब्रह्मा ने भी प्रसन्न होकर उसको वरदान दिया कि देवता, दैत्य, यक्ष, नाग, गंधर्व और राक्षसादि किसी के हाथ से उसकी मृत्यु नहीं होगी । इस तरह अनेक वरदानों को प्राप्त कर उसका मन अहंकार से भर गया और वह इधर उधर जो भी देवताओं का स्थान देखता उसे जीत लेता । अपने पिता मधुकैटभ की मृत्यु भगवान विष्णु के हाथ से होने के कारण वह भागवान विष्णु को इधर उधर खोजता रहता और देवताओं पर क्रुध्द होकर अत्याचार करता रहता। उसके गर्व को देखकर भगवान विष्णु भी चिन्ता मग्न से रहने लगे ।अन्य कोई देवता उसके समक्ष युध्द न कर सकता था । इस तरह वह महागर्व में भर समस्त दिशाओं को विजित कर दिग्विजय हो कर थक कर सो गया। ऐसा सोया कि उठ ने का नाम भी नहीं लेता था मानो दूसरा कुम्भकर्ण हो । उस पर मिट्टी पड़ने लगी, वृक्ष उत्पन्न हो गए। एक सम्वत् में एक श्वास लेता जिस से चारो ओर धूल उड़ने लगती। अन्धेरी चलने लगती। इस तरह से समस्त प्राणियों को पीड़ित करता। जब नासिका से श्वास निकलता तो मानों भूचाल आने लगता। उसके विशाल शरीर पर धूल और अन्धेरी आदि के कारण मिट्टी जम गई ।उसके शरीर के चिन्ह लुप्त हो गए। उसके समीप ही उतंक मुनि का आश्रम था जो भगवान विष्णु की भक्ति में लीन रहता था । जो महाजिनेन्द्रिय और धैर्यवान था । धर्मात्मा और वेदपाठी था । उसकी भक्ति को

92- गु॰ प्र॰ सू॰ रा॰ 1, अंशु 49, अंक 1-15, पृ॰ 1532-34

93- वही , रा॰ 10, अंशु 22-24 पृ॰ 3848 -58

देख कर भगवान विष्णु उसके आश्रम में आये । वह दर्शन पा कर धन्य हो उठा। उसके हृदय की भावना को अन्तर्यामी प्रभु ने जान कर कहा कि तुम्हारे तप में जो विघ्न करता है उसको मैं स्वयं मारुंगा। आप एक कार्य कीजिए कि इक्ष्वाकु वंश के राजा कुवलयाश्व(कुवलाश्व) को इसे मारने के लिए प्रेरित करें। इस दैत्य का शरीर और आकार महान है। यह पराक्रमी और तेजवान है। अतः इसे मारने के लिए मैं उस राजा के शरीर में प्रवेश करुगां क्योंकि इस शरीर से इसे मारना ठीक नहीं । इस ने अनेक देवताओं से वरदान ग्रहण किए हुए हैं। इतना कह कर भगवान विष्णु अन्तर्धान हो गए । तदुपरान्त ऋषि उतंक ने जाकर अयोध्या के राजा को उसे मारने के लिए प्रेरित किया । उसे क्षत्रिय धर्म के पालन के लिए कहा । उसने अपने को भाग्यशाली माना कि भगवान के साथ उसकी एकता हो जायेगी । राजा युध्द के लिए तैयार हुए तो स सभी देवता भी उसके सहायक बन उनके साथ चल पड़े ।ऐसी सेना के साथ उतंक ऋषि निश्शंक हो कर चल पड़े । राजा अपने साथ अपने 21 हजार पुत्रों को भी साथ ले चले । वहां पहुंच कर उन्होंने सोये हुए दैत्य को जगाया । कुदालों से उसके शरीर की मिट्टी दूर की । कोलाहल सुन कर जब दैत्य धुन्धु जागा तो उस राजा को कहने लगा कि तू कौन है जो मेरे पराक्रम को नहीं जानता। तू तो मेरा एक ग्रास भी नहीं है। तूने व्यर्थ मुझ शेर को आ जगाया है। तब राजा कहने लगा यद्यपि मुझ में बल कम है तथापि क्षत्रिय धर्म के पालन हेतु युध्द करना ही मेरा धर्म है। युध्द में राजा के 21 हजार पुत्र दैत्य की क्रोधाग्नि में भस्म हो गए।जब तीन ही पुत्र शेष रह गए तब राजा क्रुध्द हो कर स्वयं युध्द के लिए तैयार हो उठा । राजा ने चन्द्रहास से उसके पहलेएक हाथ को काटा और फिर दूसरे को काट डाला । उसके और अधिक क्रुध्द होने पर राजा ने उसके मुख में तीर मारे और पुनः खंडग से उसका सिर काट डाला । सभी देवताओं ने राजा की प्रशंसा की और उसे 'धुन्धुमार'[94] नामसे पुकारने लगे ।

इस तरह से प्रभु ने दूसरे शरीर में प्रवेश कर अपने भक्त उतंक मुनि की रक्षा की। इस तरह प्रभु की महिमा व्यक्त करते हुए गुरु हरिराय जी संगत को नाम-जपने

94- वायु पु॰ 88॰ 28॰-59 तथा महाभारत वनपर्व 153-155

का सन्देश देते हैं। जिससे मनुष्य को अविचल पदवो प्राप्त होती है।

इस कथा उल्लेख अनेक पुराणों[95] में मिलता है। परन्तु भाई सन्तोह सन्तोखसिंह ने इस कथा को हरिवंश पुराण से लिया प्रतीत होता[96] है। परन्तु हरिवंश पुराण में कुवलयाश्व के सौ पुत्रों का उल्लेख मिलता है जिन में से 97 युध्द में कक्क मर जाते हैं। गुरु प्रताप सूरज में कुवलयाश्व राजा के 21000 पुत्रों का उल्लेख किया गया[97] है। राजा के 21000 पुत्रों का उल्लेख अन्य पुराणों में होने के कारण भाई सन्तोखसिंह ने इसकथा के कुछ अंश अन्य पुराणों से भी लिए प्रतीत होते[98] है।

महर्षि गालव के छे सौ घोड़े प्राप्त करने की[99] कथा

एक बार महामुनि विश्वामित्र ने घोर तप कर ब्रह्म पदको प्राप्त किया । (एक बार धर्मराज ने विश्वामित्र के तपोबल को परीक्षा लेने के लिए उन के शत्रु वशिष्ठ का रुप धारण कर उनके आश्रम में पहुंचे और भोजन करना चाहा । विश्वामित्र अतिथि रुप में आये अपने शत्रु का सम्मान करना जानते थे । वे भोजन तैयार कर कर ले आये तब धर्मराज ने कहा तुम यही ठहरो मैं अभी लौट कर आताहूँ । तब वे वैसे ही थाली को सिर पर रखे वृक्ष को तरह खड़े रहे और वायु भक्षण करते रहे ।तब गालव ने उनकी ब बड़ी सेवा की।सौ वर्ष के पश्चात् धर्मराज आये और

95- (क) भाग · पु · 9 · 6 · 22 ;
(ख) ब्रह्मां· पु · 3 · 6 · 31
(ग) मत्स्य पु · 12 · 31
(घ) वायु पु · 68 · 31

96- गु · प्र · सू · रा · 10, अंशु 24, अंक 23, पृ · 3856

97- वही अंशु 22 अंक 8 , पर भाई वीर सिंह का फुटनोट, पृ · 3849

98 -द्रष्टव्य : फुटनोट 95

99- गु · प्र · सू · रा · 10, अंशु 25 पृ · 3858

भोजन किया तथा प्रकट होकर उन्हें आशीर्वाद दिया। उन्हें क्षत्रिय से ब्राह्मण बना दिया । ब्रह्मर्षि बन जाने के बाद विश्वा मित्र ने गालव की सेवा से प्रसन्न होकर कहा कि 'हे गालव । मैं तुम्हारी सेवा से प्रसन्न हुआ अत तुम जहां चाहो जा सकते हो ।' तब गालव ने गुरु दक्षिणा देनी चाही । विश्वामित्र ने कहा मुझे दक्षिणा लेने की इच्छा नहीं हैं । तु म ने श्रध्दा से दक्षिणा देने की बात कही है अतः हम ने इस सी प्राप्त कर ली है। गालव ने पुनः अनुरोध किया कि बिना दान दिए विद्या व्यर्थ है। इस लिए आप अवश्य दक्षिणा लें । विश्वा मित्र उसके आग्रह को देख कर कहने लगे कि तुम ने बहुत हठ किया है अतः श्वेत वर्ण के आठ सौ श्यामकर्ण घोड़े ला दो ।

यह सुन कर गालव अत्यन्त चिन्तित होकर सोचने लगे कि ये घोड़े कहा से लाकर दूँ । उसके हृदय की व्याकुलता को जान कर उसका मित्र गरुड़ उसके पास पहुंचा। उसे अपने चारों दिशाओं और आकाश पाताल आदि में जाने की समर्थता के विषय में कहा तब गालव ने अपनी व्यथा उसे सुनाई। तब वह अपने मित्र ययाति के पास उसे लेकर पहुंचा। राजा ने कहा कि मैं बहुत यज्ञ आदि करता रहा हूँ । अतः मेरे पास इस समय घोड़े आदि नहीं है और न ही धन आदि ही है।मैंने सर्व पदार्थ दान रूप में दे दिए हैं। हां मेरी एक कन्या अभी घर में है। उसे ले जाओ और जिस राजा को इसे तुम देना चाहो उससे शुल्क रूप में 8 सौ घोड़े मांग लेना ।उस कन्या का नाम माधवी था । तब गालव पहले उसे अयोध्या के राजा हर्यश्व के पास लेकर पहुंचा और उससे अपनी इच्छा व्यक्त की।तब राजा कहने लगा मेरे पास केवल दो सौ ही घोड़े हैं।तब गालव ने उनके बदले में माधवी कन्या उसे एक पुत्र प्राप्ति हेतु दी और स्वयं तप करने के लिए चले गए ।तत्पश्चात् पुत्र (वसुमान्) हो जाने पर माधवी को वापस ले गालव काशी के राजा दिवोदास के पास गया उन से भी इसी तरह दो सौ घोड़े प्राप्त किए।इसके पुत्र का नाम 'दनु' था(वास्तविक नाम प्रतर्दन था।अन्य नाम द्युमान था)जो बहुत विख्यात हुआ ।इसी तरह भोजराज उशीनर से भी दो सौ घोड़े प्राप्त किए। इस तरह गालव बड़ी कठिनाई से 600 घोड़े एकत्र करने में सफल हुए ।अन्ततः निराश हो 600 घोड़े और कन्या माधवी को लेकर विश्वामित्र के निकट पहुंचा और बोला कि आप ये छे सौ घोड़े और शेष दो सौ घोड़ों के बदले यह कन्या ग्रहण कीजिए ।विश्वामित्र ने गुरु दक्षिणा में छः सौ

घोड़े और उस कन्या को ग्रहण कर अपने शिष्य गालव को प्रसन्न किया ।माधवी से (अष्टक) नामक पुत्र होने के गाद विश्वामित्र ने माधवी को लौटा दिया। तब गालव ने माधवी को उसके पिता के ययाति के पास पहुंचा दिया और स्वयं जंगल में जाकर तप करने लगे ।

7-छे सौ घोड़ों की भेट तथा राजा ययाति की कथा[100]

जब गालव भेंट हेतु 8 सौ श्यामकर्ण घोड़ों की प्राप्ति के लिए निकले तब जगत में कुल छे सौ घोड़े हो थे । इनकी कथा इस तरह है गाधि(महाराजा ययाति के वंशज कुशाम्बु के पुत्र) नामक एक राजा थे जिस के विश्वामित्र[101] पुत्र हुए।उसको एक कन्या (कुमारी सत्यवती) भी थी । जो अभी यौवन को प्राप्त नहीं हुई थी ।एक बार भृगु के पुत्र ऋचीक उनके पास गये और राजा से विवाह हेतु पुत्री की याचना की ।राजा सोचने लगा कि मेरी कन्या की आयु अभी कम है और ऋषि वृध्दावस्था में है दोनों की जोड़ी कैसी ठीक रहेगी । अतः उन्होंने टालने के लिए ऋ षि से यह कहा कि जब तुम श्यामकर्ण के आठ सौ घोड़े लाओगे तब तुमहारा विवाह मैं अपनी कन्या से कर दूगां । तब ऋचीक वरुण के पास गए और उन्होंने गंगा से लेकर ये घोड़े उन्हें[102] दिए।उन घोड़ों में से 200 मर गए थे अतः शेष छे सौ घोड़े लेकर उसने भेंट दी ।

पूर्वोक्त माधवी कन्या के पिता राजा ययाति थे । जो बड़े धर्मात्मा थे । वे अपने पुण्यों के प्रताप से स्वर्ग को गए। एक बार बातचीत के दौरान इन्द्र ने राजा से पूछा कि आप तपस्या में किस के समकक्ष हैं तो कहने लगे ''देवता, मनुष्य, गन्धर्व और महर्षियों में अपने समान तपस्वी मुझे कोई नहीं दिखाई पड़ता ।'' मैंने बहुत यज्ञ किए है और बड़ी दक्षिणा दी है। इस तरह अहंकार करने से उसे पतित होना पड़ा। ययाति ने कहा, 'ठीक है यदि सब का अपमान करने से मेरा पुण्य क्षीण हो गया है तो मै यहा से संतों के बहच में गिरु।' इन्द्र ने कहा अच्छी बात है।

इस पश्चात् राजाययाति पवित्र लोकों से च्युत होकर उस स्थान पर गिरनेलगे

100- गु · प्र · सू · रा 10, अंशु 26, पृ · 3863

101- महाभारत - अनुशासन पर्व , 650

102- वही

जहां उन के दोहते 'अष्टक, प्रतर्दन, वसुमान और शिवि आदि चारों तपस्या करते थे। उन चारों ने अपने पुण्यों का फल ययाति को देना चाहा परन्तु उनका प्रतिग्रह अस्वीकार करने के कारण ययाति को भी पुनः स्वर्ग की प्राप्ति हुई[103] ।

8- देवी और गुरु गोबिन्दसिंह की पुरातन कथा[104]

'गुरु प्रताप सूरज' में केवल पौराणिक कथाओं का ही वर्णन नहीं है अपितु इस में गुरु-कथा को भी कवि ने पौराणिक रुप देने का प्रयास किया है। जिस तरह से पुराण-साहित्य में विभिन्न देवी-देवताओं की कथाएं वर्णित है उसी तरह से, उसी शैली में भाई सन्तोख सिंह ने गुरु कथा का वर्णन किया है। गुरु गोबिन्द सिंह के पुरातन जीवन से सम्बन्धित एक आख्यान का इस में मार्मिक निरुपण हुआ हैजिस में उन्हें एक ऐतिहासिक व्यक्ति के स्थान पर देवता के रुप में चित्रित किया गया है। जो देवताओं की रक्षा हेतु अवतार धारण करते हैं।

हिन्दू धर्म के संरक्षक गुरु गोबिन्दसिंह के पुरातन जन्म की कथा सुनाते हुए ब्रह्मा जी ने देवताओं से कह कि सतयुग में दानवों और दैत्यों ने जब तुम्हें स्वर्ग से निकाल दिया था तब तुम सब ने दुर्गा[105] के पास जाकर उनकी स्तुति की थी । तुम्हारी स्तुति से प्रसन्न होकर देवी ने तुम्हारी दुःखभरी व्यथा सुन कर कहा कि मैं तुम्हारे शत्रुओं के नाश के लिए युध्द करुंगी । रण में देवी[106] ने महिषासुन के अतिरिक्त शुंभु, निशुंभ, चंडमुंड, धूम्रलोचन, रक्तबीज आदि को मार डाला। इसप्रकार उनका उत्पात शान्त हो गया और इन्द्र आदि को पुनः स्वर्ग की प्राप्ति हुई ।इसके पश्चात् अर्न्तध्यान होकर

103- महाभारत – आदि पर्व 24 तथा मत्स्य पुराण, 35 · 4 ; 38 · 20 ; 39·11 ; 41 · 8 , 10

104- गु · प्र · सू · रा · 11: अंशु 50-52, पृ · 4167- 4183

105- दुर्ग नामक दैत्य को मारने के कारण दुर्गा नाम से देवी की स्तुति की जाती है। द्रष्टव्य : मार्कण्डेय पु ·तथा स्कंद · पु · काशी, उत्तरार्ध्द, 72 · 7।

106- द्रष्टव्य : दुर्गा सप्तशती ; देवी भागवतपु · ; शिव पु · तथा ब्रह्मांपु· 2·20·39

देवी विंध्याचल पर्वत पर निवास करने लगी और तप में लीन होगई ।तब इधर उधर पहाड़ों आदि में देवी को खोजते हुए बेल और सुबेल नाम दो राक्षसों ने एक तपस्वी को तप में लीन देख कर उससे पूछा कि एक स्त्री जिस के सभी अंग मनोहर थे युध्द करती हुई अभी इधर आई है। हम उसे खोज रहे है। तब तपस्वी ने कहा कि हे मूर्खों । वह तो देवी है,शक्ति स्वरुपा है। जब उसने भयानक रुप धारण किया तो तुम्हें पता चलेगा कि वह कैसे तमहारे जैसे दैत्यों का संहार करती है। तब उस तपस्वी ने मन में सोचा कि मैं इस समय ब्रह्मपरायण ब्राह्मण के शरीर को धारण किए हुए हूँ।इन दैत्यों को दंड देने के लिए कौन सा उपाय करुं । तब उस तपस्वी ने अपने लाखों वर्षों के तप को याद करतेहुए कर्तापुरुष का ध्यान कर ओंम शब्द कह कर हुंकार की और शेर की खाल को हाथ म में लेकर जोर से झटकाया तब उससे तेज पुंज एक पुरुष निकला। उस पुरुष ने ऐसे दैत्यों का युध्द में संहार किया जो कभी देवताओं से भी न हारते थे । तब बेल राक्षस के अनुज सुबेल ने उस तपस्वी के सुत को बांध दिया। यह देख कर उसने क्रुध्द होकर सुबेल को मार दिया। यह देखकर बेल ने कहा कि ठहरो । इसे जाने न देना।वह स्वयं सेना सहित युध्द के लिए उद्यत हुआ तब उसने बेल तथा अन्य सभी दैत्यों का संहार कर दिया।इस तरह अनेक वर्षों तक घमसान युध्द होता रहा।राक्षस मरते जाते और पुनः उत्पन्न होकर फिर युध्द करने लगते । तब चंडिका,कालका और भवानी रुप मे प्रकट होकर असंख्य दैत्यों का उसने संहार किया। और विजय प्राप्त की ।

तब उसने उस तपस्वी के तप से उत्पन्न हुए पुरुष से कहा कि तुम ने मेरी दैत्यों के संहार में बहुत सहायता की है। जब तुम मुझे अगले जन्म में बुलाओगे तब मैं प्रसन्न होकर तुम्हें मनोवांछित वर दूँगी ।शब्द प्रकाश द्वारा तुम्हारे शरीर में प्रवेश करुँगी।तुम कुटुम्ब का मोह न करना।तब तक तुम इसी शरीर को धरण कर तप करो लघु कृपान देकर तथा प्यार कर देवी अन्तर्ध्यान हो गई।शेर की खाल से ही खालसा उत्पन्न हुआ। तब दुष्टदमन नाम को धारण किए वह तपस्वी अपने पिता के पास गया और देवी की प्रसन्नता तथा बरदान प्राप्ति की बात कही तब उन्हों ने कह कि युध्द करने से तुम ने वर प्राप्त किया है और युध्द हेतु ही मैंने तुम्हें उत्पन्न

किया है। इस समय तुम तप करो ।तब उसने कठोर तप किया। ब्रह्मा जी देवताओं से कहने लगे कि अब तप का समय समाप्त होने वाला है। अतः तुम सब भी जाकर नरतन को धारण करो ।जब हेमकूट पर्वत पर तप करते हुए दुष्टदमन को असंख्य वर्ष बीत गए तब देवता विमान लेकर उसे लेने आये।अकाल पुरुष की आज्ञा पाकर वे विमान पर सवार होकर वह उनके समीप पहुंचा। तब उन्होंने अकाल पुरुष की वन्दना की।जैसा कि 'जापसाहिब' में अंकित है। तब अकाल पुरुष ने कहा कि तुम्हारे समान किसी ने तपस्या नहीं की है।अब तुम अवतार धारण कर धरती पर जाओ और मेरा कार्य करो।यवनों ने भारत वसुन्धरा पर अनेक अत्याचार किये हैं उन्हें उचित द दंड देने के लिए तुम जाओ और सत्यनाम की भक्ति का दान दो । यह सुनकर दुष्टदमन ने कहा कि वहां जाने में अनेक कष्ट है और मैं इस समय आप के ध्यान मे लीन हूँ। इस पर प्रभु ने उसे पुनः समझाया और देवे के वरदान की स्मृति दिलाई और कहा कि तुम जाकर खालसा पंथ कासृजन कर उत्तम मार्ग चलाओ हो और क्षत्रिय धर्म को प्रकट करो ।[107]

9-अरस जरासन्ध की कथा[108]

पटना नगरी की शोभा का वर्णन करते हुए गुजरी के भ्राता कृपाल ने गुरु तेग-बहादुर जी से उसका पूर्व इतिहाससुनाने के लिए कहा तब गुरु जी ने उसको पुरातन कथा इस तरह से सब संगत को सुनाई।इस मगध देश में एक राजा वृहद्रथ हुए । वह इन्द्र के समान महा पराक्रमी था । उसने काशी के राजा की दोनो यमज (जोड़वा) पुत्रियों से विवाह किया।तथा उसने प्रतिज्ञा की कि मैं तुम दोनों के साथ समान प्रेम रखूंगा।परन्तु काफी समय व्यतीत होने पर भी उसके घर सन्तान न हुई तब चिन्तित होकर वह अपनी दोनों रानियों सहित चन्द्रिक(चंडकौशिक(गौतम कक्षी-वान के पुत्र महात्मा) नामक ऋषि के पास गए और अपनी सेवा से उन्हें प्रसन्न कर राजा ने कहा – 'भगवान्।मैं अभागा एवं सन्तान हीन हूँ।'राजा की इस तरह की कातर वाणी सुन कर ऋषि कृपा परवश हो गए।उसी समय जिस आम के वृक्ष के नीचे

107- गु॰ प्र॰ सू॰ रा॰ 11ःअंशु 52,अंक 18-20पृ॰ 4182-83

108- वही , रा॰ 11,अंशु 59,पृ॰ 4106-18

क्ष नीचे बैठे थे, उससे एक फल उनकी गोद में गिरा। महर्षि ने उसे अभिमन्त्रित कर राजा को दे दिया।[109] राजा उसे लेकर बहुत प्रसन्न हुआ और वापिस अपने घर आ गया। दोनों रानियों से समान प्रेम होने के कारण राजा सोचने लगा कि यह फल किस को दूं और किस को न दूं, बहुत विचार करने पर उसने उस फल को दो खंड कर दोनों रानियों को दे दिए। रानियों ने उस एक एक टुकड़े को खा लिया । संयोग से दोनों रानियां गर्भवती हो गईं। तब राजा बहुत प्रसन्न हुआ। समय आने पर दोनों के गर्भ से शरीर का एक एक टुकड़ा पैदा हुआ। प्रत्येक में एक आंख, एक बांह, एक पैर, आधा पेट, आधा मुंह और आधा कमर थी ।उन्हें देख कर दोनों रानियां हैरान हुईं। एक शरीर के दो टुकड़े देख कर उन्होंने उसे कपड़ें में लपेट कर रनिवास के बाहर फेंकवा दिया । उसे फेंकते हुए जरा नाम की एक राक्षसी ने देख लिया जो वहां समीप ही रहती थी । वह खून पीती और मांस खाती थी । उसने उन टुकड़ों को उठाया और संयोग वश सुविधा से ले जाने के लिए एक साथ जोड़ दिया। उन के जुड़ते ही वह बड़ी हैरान हुई कि यह एक महाबली और परम पराक्रमी राजकुमार बन गया है। वह उसे उठा तक न सकी ।बालक वर्षाकालीन मेघ की गर्जना के समान गंभीर स्वर में रोने लगा। उस के शब्द को सुनकर नगर के लोग उसे देखने के लिए दौड़ पड़े ।जरा उसे राजा के पास ले गई और कहा कि मैं तुम्हारे नगर में सुख पूर्वक रहती हूँ और तुम्हें सन्तान की बड़ी अभिलाषा है। मैं यह पुत्र तुम्हें देती हूँ । दोनों रानियों ने उसे लेकर प्रसन्नता पूर्वक जरा राक्षसी को विदा किया ।तब राजा ने बालक के जातकर्मादि संस्कार, यज्ञ आदि द्वारा सम्पन्न किए। मगध देश में बड़ा उत्सव मनाया । पुत्र का नाम करण करते हुए राजा ने कहा कि इस बालक को जरा ने सन्धित किया है (जोड़ा है) अतः इसका नाम 'जरासन्ध' होगा।[110] समय की गति के वह बड़ा होता गया।

109- द्रष्टव्य : महाभारत - सभा पर्व, अध्याय 17, 18

110- जरया सन्धितो यस्माज्जरासन्धोभवत्वयम् ।।

— महा॰ सभा पर्व, 18॰ ।।

कुछ समय पश्चात् महर्षि पुनः मगध देश आये । राजा ने उनको बड़ी आव-भगत की। उन्होंने प्रसन्न होकर कहा ''राजन् । जरासन्ध की सारी बातें हम ने अपनी दिव्य दृष्टि से जान ली हैं। तुम्हारा पुत्र बड़ा तेजस्वी होगा। इसके बाहुबल के समक्ष कोई भी विरोधी नहीं अड़ सकेगा।'' इतना कह कर ऋषि चले गए और राजा ने भी जरासन्ध को राज्यसिंहासन दे कर स्वयं बन में रानियों सहित तप हेतु प्रस्थान किया। पिता के पश्चात् जरासन्ध ने चतुरंगिनी सेना से अनेक शत्रुओं का संहार किया तथा अनेक राजाओं को कैदी बना लिया ।

उधर जब भगवान कृष्ण ने अवतार लिया तब उन्होंने अनेक दैत्यों और राक्षसों का संहार किया । उन्होंने कंस को भी मारा। जो जरासन्ध का जमाता था । तब कंस की दोनों रानियां अस्ति और प्राप्ति अपने पिता की राजधानी में चली गई।[1] उन्होंने अपने विधवा होने की सारी कथा सुनाई। उसे सुन कर जरासन्ध को बड़ा क्रोध आया। उसने अपनी तेईस अक्षौहिणी सेना सहित यदुवंशियों की राजधानी मथुरा को घेर लिया। उसने श्री कृष्ण और बल भद्र को मारना चाहा परन्तु वे बड़ी युक्ति से वहा से निकल गए और नई द्वारका पुरी बसा कर मथुरा वासियों की रक्षा की ।

काफी समय के पश्चात् जब पांडवों ने राजसूय यज्ञ करना चाहा और युधिष्ठिर ने अजातशत्रु बनना चाहा तब श्री कृष्ण जी ने कहा कि मगध नरेश जरासन्ध को मारे बिना यज्ञ सफल नहीं हो सकता । क्योंकि एक बार उसने अपने मन्दिर पर चढ़ कर बलराम जी को बदा मारनी चाही थी जो सौ योजन की दूरी पर प्रहार हेतु पहुंची। तब उसे बलराम ने अपनी शक्ति से निष्फल बना दिया । अतः जरासन्ध में अपार बल है और कोई भी उसके सम्मुख होकर सेना सहित लड़ सकने में सफल नहीं हो सकेगा। अतः आप मुझे अर्जुन और भीम को साथ ले जाने की अनुमति दें और मैं किसी तरह नीति से उसे मारने में सफल हो जाऊंगा। यह दोनों योध्दा मुझे धरोहर के रुप में दे दें । तब युधिष्ठिर ने कहा आप तो हमारे आश्रयदाता हैं जैसा चाहे

।।।- द्रष्टव्य : श्री मद् भागवत महापुराण, दशम स्कन्ध, उत्तरार्ध-पचासवां अध्याय, पृ 725

वैसा कर लें। तब तीनों ने (श्री कृष्ण, अर्जुन और भीम) ब्रह्मण का वेश धारण कर लिया। और चल पड़े । उन्होंने सीधे मार्ग को त्याग कर अन्य मार्ग से गण्ड को महाशोणगंगा आदि नदियों को पारकिया और मगध देश जा पहुंचे। जहां जरासन्ध का राज्य था । वहां बड़े बड़े दुर्ग थे । चारों ओर बड़े बड़े योध्दा द्वारपाल के रूप में खड़े थे । जिन्ह रास्ते में एक घण्टों की माला लगी हुई थी जो कोई शत्रु उस मार्ग से आता तो वे बजने लग जाते थे। उनके शब्द को सुनकर राजासावधान हो जाता। इस बात को श्री कृष्ण जानते थे अतः वे उस द्वार से न जाकर पिछली ओर से पुरानी बुर्ज को नष्ट-भ्रष्ट कर वहां से कूद कर अन्दर प्रविष्ट हो गए। उस दिन जरासन्ध अनेक प्रकार के अपशकुन भी देख रहा था । उस समय वह बैठा दान कर रहा था और याचक द्वार पर खड़े थे । फिर जब उसने श्रीकृष्ण, भीम और अर्जुन की ओर देखा तो सोचने लगा कि ये कहा से आ गए हैं। ये क्षत्रिय होकर ब्राह्मण के वेश को धारण किए हुए हैं । क्या ये कोई कपट करनेआये है। तब राजा उनके पास पहुंच कर पूछने लगा कि तुम कौन हो और कहां से आये हो । तुम ब्राह्मण नहीं हो। यदि सीधे मार्ग से आते तो घण्टे का शब्द होता । तुम पिछली ओर से दुर्ग से कूद कर आये हो । तब श्री कृष्ण ने कहा कि चतुर पुरुष शत्रु को पकड़ने के लिए किसी भी मार्ग से आ सकते है। जरासन्ध ने कहा मैंने आप का कोई बुरा नहीं किया है फिर मेरी और आप को शत्रुता कैसी ? मुझ निरपराध को शत्रु समझने का क्या कारण है? तब श्री कृष्ण ने कहा यदि शत्रुता न होती तुम 20800 राजाओं को अपना बन्दी न बनाते । इस से बढ़ कर और शत्रुता कैसी होती है ? तुझे मारने के लिए ही हमने ब्राह्मण वेश धार किया है। यदि तुम अपनी भलाई चाहते हो तो सभी राजाओं को मुक्त कर दो। और चल कर युधिष्ठर के चरणों में गिर कर अपने प्राणों की रक्षा करो यदि तुम्हें यह स्वीकार है तो ठीक है अन्यथा हमारा तुम्हारे साथ युध्द होगा । यह सुन कर जरासन्ध क्रोध से भर कर बोला – यदि तुम में इतनी शक्ति थी तो तुम ने विप्र का वेश क्यों धारण किया। मैंने तो समस्त राजाओं को युध्द करके जीता है। क्या तुम से डर कर इन राजाओं को छोड़ दूँ ? पुनः श्री कृष्ण कहने लगे – सदैव से मेरा नाम दुष्टदमन रहा है और मैं कृष्ण के रूप में प्रकट हूँ। यह भीम सेन है और यह अर्जुन है। हम तुम्हें युध्द के लिए ललकारते हैं। तुम या तो समस्त कैदियों

छोड़ दो और धर्मराज के पास चलो अथवा हमारे साथ युध्द करके परलोक सिधारो । हम तीनों में से किसी से युध्द करने के लिए तैयार हो जाओ । यह सुन कर राजा जरासन्ध क्रोध में भर गया और सभा त्याग कर अन्दर चला गया। वहां अपने पुत्र सहदेव के राज्याभिषेक की आज्ञा देकर पुनः बाहर आकर बोला तुम तीनों मेरे घर चल कर आये हो और युध्द हेतु मुझे अधिक क्रोधवान बनाया है। मैं तुम तीनों से अकेला लड़ सकता हूँ। तब श्री कृष्ण ने कहा यदि हम तीनों एक के साथ लड़े तो यह अनुचित होगा। निर्बल हो ऐसी विधि अपनाते हैं। हम तीनों में से तुम किसी एक क को चुन लो। शेष हम दोनों शान्त रहेंगे । फिर जरासन्ध कहने लगे – तुम तो मुझ से कई बार हार चुके हो । तुम मथुरा त्याग कर द्वारिका जा बसे थे । तुम तो बड़े निर्लज्ज हो और अर्जुन तो धुर्नविद्या में ही पारंगत है अतः तुम दोनों बल में मुझ से हीन हो। हीन के साथ योध्दा नहीं युध्द करता । अतः तृतीय भीमसेन से मेरा युध्द हो सकता है। बलवान के साथ लड़कर हारने से भी यश मिलता है। राजा ने भीम से कुश्ती लड़ना स्वीकार कर लिया ।

राजा ने युध्द के लिए तैयार होने के लिए रत्नजड़ित मुकट उतार कर रख दिया। बालों को बान्ध कर उनका जूड़ा कर लिया। कमर बांध कर तैयार हो गया । उधर भीमसेन भी सावधान हो गया और भुज दण्ड ठोक कर युध्द के लिए तैयार हो गया । दोनों भिड़ने के लिए अखाड़े में उतर आये। उन्होंने कुश्ती के अनेक दाव-पेंच किए। नगर के सभी लोग उनकी कुश्ती देखते और हैरान होते कहते कि इनका युध्द तो इन्द्र और वृतासुर के युध्द के समान है। जब यह युध्द 13 दिन तक होता रहा और कोई निर्णय न हो सका तब श्री कृष्ण ने चौदवें दिन भीम सेन से इशारे से कहा कि अब शत्रु में अधिक बल नहीं रहा है अतः तुम केवल भुज भुजाओं सेही लड़ते रहो। तब भीमसेन ने पूछा कि इसे आप ने थका हुआम या निर्बल कैसे जान लिया। मेरे तो स्वयं अंग अंग थक चुके हैं। तब श्री कृष्ण ने उसे उसके वीर्य शौर्य की स्मृति दिलाते हुए कहा कि हे पवन पुत्र । तुम तो महान् बलशाली हो । तुम्हें ऐसा नहीं सोचना चाहिए। एक तिनका लेकर उसे बीच से चीर कर एक से दो करने का इशारा समझा कर कहा कि तुम में तो दैव बल और वायु बल दोनों है। श्री कृष्ण के इशारे को समझ कर भीमसेन

ने वैसे ही किया और जरासन्ध के दो खंड कर दिए । इस तरह से प्रभु ने जरासन्ध को मरवाया। जरासन्ध के पुत्र सहदेव ने सर्व प्रकार से श्री कृष्ण का बन्दना की और भेंट आदि देकर उन्हें विदा किया। सभी कैदी राजाओं को मुक्ति प्राप्त हुई। श्री कृष्ण भीम और अर्जुन सहित हस्तनापुरम वापिस आ गए। श्री गुरु तेगबहादुर जी संगत के प्रति कहने लगे कि तब से श्री सहदेव इस मगध प्रदेश पर राज्य करने लगे ।जब फिर कौरवों और पांडवों में कुरुक्षेत्र की रणभूमि में युध्द हुआ तब देश देश के राजा उस में सम्मिलित हुए।सहदेव भी अपनी सेनाओं सहित युध्द में सम्मिलित हुआ । उसके पश्चात् अनेक राजाओं ने इस देश पर राज्य किया जिन की गणना करनी सरल नहीं है।

पुराण - ज्ञान - समीक्षा

महाकवि भाई सन्तोख सिंह के भारतीय पुराण साहित्य के गम्भीर अध्ययन की झलक उक्त कुछ पौराणिक आख्यानों के अध्ययन से सहज ही मिल सकती है। उन्होंने रामायण और महाभारत के कथा-रस का रसास्वादन किया था जिन में अनेक पौराणिक कथाएं संकलित हैं। अतः उन्होंने महाभारत की कथा शैली का अनुसरण करते हुए भारतीय अष्टदस पुराण साहित्य और उपपुराण साहित्य से अनेक कथाओं का वर्णन 'गुरु प्रताप सूरज' में किया है। उक्त कथाओं का तो उन्होंने पुराणों में वर्णित कथा के अनुकूल ही वर्णनकिया है। जैसे विष्णु पुराण , हरिवंश पुराण, भागवत पुराण, मार्कण्डे पुराण, देवी भागवत पुराण आदि की उक्त कथाएं 'गुरु प्रताप सूरज' में यथावत आई परन्तु उन की प्रतिभा की मौलिकता इस पुराण-साहित्य मे वर्णित कथाओं के अप्रस्तुत-विधान में देखी जा सकती है। जहां वे अपने विषय को स्पष्ट करने के लिए इस साहित्य से उपमानों का चयन करते हैं।वहां इन से पुरातन कथाओ को जानने के लिए पाठकों एवं श्रोताओं के हृदय में उत्सुकता उत्पन्न कर कथा-रस की स्रोतास्विनी बहाने का भी सफल प्रयास करते हैं। 'गुरु प्रताप सूरज' का शायद ही कोई ऐसा पृष्ठ हो जहां भाई सन्तोख सिंह ने किसी न किसी पौराणिक कथा की ओर संकेत न किया हो ।इस से स्पष्ट है कि उन्होंने इस साहित्य का गम्भीर अध्ययन किया हुआ था ।

पूर्वोक्त प्रमुख पौराणिक कथाओं के 'गुरु प्रताप सूरज' में संकलित किए जाने के प्रयोजन के विषय में एक स्थापर भाई वीर सिंह जी लिखते हैं कि 'यह केवल इतिहास ग्रंथ ही नहीं है प्रत्युत सिक्ख धर्म का प्राण भी है। इस में संकलित पौराणिक कथाओं का प्रयोजन यह है कि सिक्ख को इस के अतिरिक्त किसी अन्य संस्कृत के या दर्शन शास्त्र के ग्रंथ का आश्रय न लेना पड़े । पौराणिक कथाएं प्रासंगिक रूप में आई है जो केवल धार्मिक असूलों के वर्णन में दृष्टान्त का कार्य करती है। उनका ग्रहण उसी सीमा तक किया गया है जहां तक वे गुरमत के सिध्दांतों को स्पष्ट करने में सहायता प्रदान करती हैं।"[112] इस कथन में आंशिक सत्य विद्यमान हो सकता है। परन्तु केवल पौराणिक कथाएं उक्त प्रयोजन के लिए ही नहीं आई है वे तो इस महाकाव्य के कथा रस की भी प्राण कही जा सकती हैं। वे विषय प्रतिपादन के अतिरिक्त कथा के रिक्त अंशों को भरने का कार्य भी करती हैं। ऐतिहासिक व्यक्तियों के अवतारत्व के प्रतिपादन में भी इन का योगदान अनुपम है ।

'गुरु प्रताप सूरज' में इन आख्यानों के अतिरिक्त पौराणिक शब्दावली , दृष्टान्तों और संकेतों का इतना अधिक प्रयोग मिलता है कि उनका संकलन यहां सम्भव नहीं हो सकता। उस के लिए तो अन्य शोध प्रबन्ध तैयार हो सकेगा।इसके अतिरिक्त इस की पौराणिक भावना सिक्खा जगत में हिन्दू देवी देवताओं के प्रति श्रध्दा की भावना भी उत्पन्न करती है। जिससे दोनो जातियों की अभिन्नता और एकता के प्रतिपादन के साथ साथ धार्मिक सहिष्णुता की भावना भी जागृत होती है। कवि का इन दोनों में परस्पर प्रेम भावना जागृत करना भी उद्देश्य प्रतीत होता है।पौराणिक आख्यानों का इतने विस्तार से पूर्व के ऐतिहासिक प्रबन्ध काव्यों में वर्णन नहीं मिलता । कवि की बहुज्ञता के परिचायक इन आख्यानों से जन कल्याण और मंगलमय भविष्य के निर्माण का सन्देश भी मिलता है।

112- द्रष्टव्य : गु॰ प्र॰ सू॰ ग्रं॰ प्र॰ पृ॰ 84

4 - अलंकार के रूप में पौराणिकता

'गुरु प्रताप सूरज' रीतिकालीन काव्य की अलंकार प्रियता का भी द्योतक है परन्तु इस में किसी प्रकार की काव्यशास्त्रीय चमत्कृति दिखाने के लिए ही अलंकारों का प्रयोग नहीं हुआ प्रत्युत इस की अलंकार -योजना एक विशिष्ट सांस्कृतिक स्थिति की भी परिचायक है। इस की अलंकार योजना का एक उद्देश्य गुरु साहिबान के पौराणिक महत्व का प्रतिपादन करना भी कहा जा सकता है जिस से सांस्कृतिक वातावरण प्रस्तुत हो। ऐतिहासिक तथ्यों के मिथीकरण के लिए भी सादृश्यमूलक अलंकारों का इस में अनुपम योगदान रहा है। गुरु साहिबान के चरित से सम्बन्धित घटनाओं की पौराणिकता घटनाओं से समानता प्रदर्शित करने में 'गुरु प्रताप सूरज' की अलंकार योजना की सफलता सराहनीय है। पौराणिक अवतारवाद की और 'गुरु प्रताप सूरज' के प्रतिपाद्य गुरु साहिबान के चरित की समानता और अभिन्नता प्रदर्शित करने में भी भी भाई सन्तोख सिंह की काव्य कला अनुपम प्रदर्शन देखने को मिलता है। इस से उन्होंने हिन्दुओं और सिक्खों की सांस्कृतिक एकता ही प्रतिपादित नहीं की अपितु राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने के लिए उसकी आवश्यकता का भी प्रतिपादन किया है। इस हेतु अलंकार योजना एक विशेष उपकरण के रूप में प्रयुक्त हुई है।

रीतिकाल में अलंकार योजना के अन्तर्गत पौराणिक पुरुत्थान और 'गुरु प्रताप सूरज' में उसकी अभिव्यक्ति :

रीतिकाल की पृष्ठभूमि में पुराणों का पुनरुत्थान व्याप्त है। इस काल में लिखे गए पूर्वोक्त सभी 'गुरु काव्यों' में इस प्रवृति की झलक मिलती है। दशम ग्रंथ और गुर विलास आदि जहां पौराणिक स्रोतों से गति और सामग्री ग्रहण की गई है वहां 'गुरु प्रताप सूरज' में पौराणिक पुनरुत्थानवाद की उदातता का दर्शन हुआ है। भाई सन्तोखसिंह स्वयं एक सफल कथावाचक थे और पौराणिक की वृत्ति भी करते थे । इस लिए उनका पौराणिक अध्ययन बहुत गंभीर था। उनका कवि इस पौराणिक वृत्ति पर छाया हुआ होने के कारण तथा हृदय में अपने इष्ट गुरु का ध्यान होने के कारण उनकी आलंकारिक योजना के अप्रस्तुत अर्थ के निरुपण का

मुख्य स्रोत पौराणिक साहित्य ही था । यद्यपि उन्होंने उक्त प्रयोजन के लिए काव्य रूढ़ियों से भी सहायता ली तथापि उनके उपमानों में पौराणिक साहित्य का ही अधिक प्रतिबिम्ब देखने को मिलता है।

अलंकारों के लक्षण का निरूपण सांस्कृतिक परिधि में नहीं आता । केवल उपमान के रूप में आये हुए विविध उपकरणों में ही भारतीय संस्कृति का प्रतिबिम्ब देखा जा सकता है। इस प्रतिबिंब के निरूपक पुराण साहित्य में अवतार वाद की प्रतिष्ठा और निरूपण हुआ है। पौराणिक अवतारों का सम्बन्ध वैष्णव धर्म से है।इस वैष्णव धर्म की पृष्ठभूमि पर ही सिक्ख धर्म का अभ्युदय हुआ था अतः दोनों में एकता एवं समन्वय का प्रतिपादन करना भी भाई सन्तोख सिंह की अलंकार योजना का उद्देश्य कहा जा सकताहै। भाई सन्तोख सिंह ने जहां गुरु अंगद, गुरु अमरदास, गुरु रामदास तथा गुरु अर्जुन देव को लोकनायक और लोक रक्षक विष्णु, शिव के रूप में चित्रित करने के लिए उपमान-योजना का प्रयोग किया है वहां गुरु हरिगोविन्द और गुरु गोबिन्द सिंह को असुरो अविततों, मलेच्छों और तुर्कों के संहार करने वाले नृसिंह और कालपुरुष के अवतार के रूप में चित्रित किया । इस तरह से उन्होंने अपने कथा-नायकों पर विभिन्न अवतारों का अरोप कर तत्कालीन 'रावणत्व' पर रामत्व' को अथवा असत्य पर सत्य की विजय दिखाई है। इस उद्देश्य के लिए उपमान योजना उनके काव्य का प्रमुख उपादान बनी। रीतिकाल में यह प्रवृति अन्य कवियों में भी देखने को मिलती है जैसे भूषण ने शिवा जी को लोकरक्षक सिध्द करने के लिए उन्हें नृसिंह[113] और राम[114] का और इन्द्र[115] का अवतार माना।मतिराम ने अपने नायक सुरजन सिंह को की पृथु का अवतार माना[116] । पद्माकर ने प्रतापसिंह को धर्म में राम के समान कहा

113-भूषण ग्रंथावली , 148 · 164

114- वही

115- वही , 15 · 131 , 100 · 147 आदि

116- ललित ललाम , 24 · 350

और भूषण ने शिवा जजो को द्विजराज और बलराम के समान भो लिखा है[117] जहां भूषण ने शिवा जा को वैष्णव अवतारों के रुप में चित्रित किया वहां उन्होंने शिव रुप में शिवा जो और छत्रसाल को कल्पना[118] की है। इनके अतिरिक्त गणेश, कालिका आदि देवताओं, कुंभज ऋ षि , गरुड़, शेषनाग आदि के माध्यम से भी कुछ अलंकारों रचना की है। शिवा जो और बादशाह को शत्रुता कोकुछ पौराणिक शत्रुओं के समान भूषण ने बतलया है। राम और रावण, गणेश और विघ्न, कुंभज और सिंधु, हर और अनंग, गरुड और भुजंग, पार्थ और कौरव, कृष्ण और कंस, कालिका और कैटभ इत्यादि । भूषण के उक्त पौराणिक उपमानों को तरह ही भाई ~~सहक्ले~~ सन्तोख सिंह भी गुरु गोबिन्दसिंह को शुरवोतरता, दयालुता आदि का चित्रण निम्न प्रकार से करते हैः-

भूषण :

इन्द्र जिमि जंभ पर, वाडव सुअंभ पर
रावण सदंभ पर, रघुकुल राज है ।
× × ×
तेज तम अंस पर, कान्ह जिम कंस पर
त्यों मलेछ बंस पर शेर शिवराज है।

भाई सन्तोख सिंह :

राम छत्रि बंध पर, राम दस कंध पर,
राम जरासिंध पर त्रै ज्यों नरसिंह है।
रुद्र जिउं मार पर, बैन तेय मार पर,
पौन दोप मार पर, मार पर सिंह है।
सूर तम ब्रिंद पर, सूर रण दुंद पर,
सूर दित्ति नंद पर, दूजे नरसिंह है।

117- भूषण ग्रंथावली , 350 · 195

118- वही , 522 · 232

काल सर बंस पर, दाव बन बंस पर,
त्यों मलेछ बंस पर श्री गोबिंद सिंह है।।[119]

उक्त दोनों पद्यों के अवलोकन से सिध्द होता है कि तत्कालीन युग में पौराणिक पात्रों के माध्यम से किस तरह से पौराणिक पुनरुत्थान हो रहा था ।गुरु गोबिन्द सिंह के दरबार में रहने वाले 52 कवियों केकवित्तों में भी इस पौराणिक पुनरुत्थान की झलक देखी जा सकती है।इसके अवलोकन के लिए 'गुरु प्रताप सूरज' की पंचम ऋतु का 52 अंशु द्रष्टव्य है।

'गुरु प्रताप सूरज में आलंकारिक पौराणिकता

'गुरु प्रताप सूरज' में पौराणिक कथानकों, पात्रों, घटनाओं के आलंकारिक चित्रण से जहां गुरु साहिबान की महिमा व्यक्त की गई है वहां विषय निरुपण में उद्भुत सजीवता और चित्रात्मकता आ जाती है। स्थूलतः अलंकार योजना कुछ सीमा तक अप्रस्तुतविधानहै। इस अप्रस्तुत विधान में सादृश्य का सर्वाधिक महत्व है। वर्ण्य की अधिक स्पष्टता एवं प्रभविष्णुता प्रदान करने के लिए उसी के समान रूप, गुण वाली वस्तु की ओर कवि आकर्षित हो कर अप्रस्तुतों के जगत में प्रवेश करता है। भाई सन्तोख सिंह इन को संजोने के लिए पौराणिक जगत में प्रवेश करते हैं और एक से एक सुन्दर उपमान लाकर अपनी अभिव्यंजना को सौष्ठव प्रदान करते हैं क्योंकि वह सोते जागते, उठते बैठते अपने इष्ट गुरु साहिबान के ध्यान में लीन रहते थे अतः उनकी पौराणिक अध्ययनशीलता उन्हें बरबस पुराण-पुरुषों के साथ उनकी तुलना स्वाभाविक रूप में करती रहती थी । जिस की स्वाभाविक अभिव्यक्ति 'गुरु प्रताप सूरज' में हुई है। कुछ उदाहरण देखिए :

1- तहि उतरे तन शंभू सरीखा ।[120]

2- रिस करि उर महि लात प्रहारी।जिमि लच्छमी पति भ्रिगु मारी।।[121]

119- गु・प्र・सू・रि・5, अंशु 52, अंक 28 पृ・5734

120- वही , रा・1 अंशु 6, अंक 25, पृ・1330

121- वही , रा・1, अंशु 34 अंक 32, पृ・1462

3- घाति पाइ करि दुष्टा बोलो किशन पूतना केरि मनिंद।। 15 ।।[122]

4- सुत को ले प्रयंक परवैसे , राम चन्द्र को दशरथ जैसे।[123]

5- बैठि थड़े पर गुरु सुहाए। मानहु शंभु थित गिर कैलासा ।[124]

6- बोधमहिं बिदेह, जुध्द कुध्द मध्द रामचंद, सिख तारिबो को भव सिंधु ते
जहाज हैं ।
करुणा निधान ते बिशनु परमान मन, कोरति प्रकाशवे को सोई दिजराजहैं।
प्रगट प्रताप में प्रचंड मारतंड बड़े शोभा सभि लेवे कउ सुहाई सुरराज हैं।
धीरज धरन को धरनि रुप बीरवर, श्री हरिगोबिन्द सुख कंद ह्वै बिराजहैं ।[125]

7- जथा उचित करि सभा सु बैठे श्री हरिगोबिंद बीच सुहाई ।
मनहु सुरनि महिं सुरपति दुतिमत किधौं बिशनु अवनि पर आई।[126]

8- नृप को पुत्र इकीस हजार। क्रोध धुंधु ने दए संधार।
साठ सहंस्र सगर के सुत जिम। कपल महां मुनि दहे, हरे तिम।[127]

9- इन्द्र बृत्तासुर जनु द्वै लेर। दोनहु महिद बीर बल करें।।[128]

10- सैफ बचाइ चलाइ सु बरछा तब पुलादो फेरा ।
बर्यो जाइ गज मसतक मैं जबि पुन कर जुग करि जोरा।। 38 ।।
कर्यो धसावनि प्रविश्यो ऐसे उपमा कहौं बनाई ।
क्रौंच शैल महिं जिम शिव नंदन बरछो मार धसाई।। 39 ।।

122- गु · प्र · सू · रा · 3, अंशु 7, अंक 15, पृ · 1920

123- वही , रा · 3, अंशु 39, अंक 26, पृ · 2075

124- वही , रा · 3 , अंशु 39, अंक 34, पृ · 2076

125- वही , रा · 6, अंशु 1 अंक 7, पृ · 2782

126- वही , रा · 7, अंशु 56, अंक 22, पृ · 3284

127- वही , रा · 10 , ~~अंक~~ अंशु 24, अंक 23, पृ · 3856

128 -वही , रा · 11, अंशु 61, अंक 8 , पृ · 4215-16

बाशक किधों बेग फल दोरघ विनता सुत के त्रासा ।
देखि रंधगिर विरवै प्रवेशा नहि पुन बदन निकासा।। 40 ।।
मनहुं इंद्रकरि क्रोध बिलंदै लोनि रुद्र से सूलं ।
गिर को हत्यो बधन के हित करि अस उपमा अनुकूलं ।। 41 ।।[129]

इस तरह से पौराणिक उपमानों के अलंकृत उदाहरणों से 'गुरु प्रताप सूरज' भरा पड़ा है। इन से कवि को पुराण-प्रियता और गुरु साहिबान को महता ही प्रतिपादित नहीं होतो अपितु इन अप्रस्तुतों द्वारा काव्य में प्रभावोत्पादकता, प्रेषणीयता, भावों को विशदता और रसनीयता के गुण भी आये हैं। ऐसे वर्णनों को पढ़ कर सहृदय एवं पुराणज्ञ व्यक्ति जहां स्वयं आह्लादित होते है वहां कवि को कल्पनों को शक्ति को प्रशंसा किए बिना भी नहीं रह सकते । इन पौराणिक अप्रस्तुतों की सम्पूर्ण गुरु प्रताप सूरज में व्यापकता नये शोध प्रबन्ध को जन्म दे सकती है। वे उसमें अन्तर्भूत है इन पौराणिक उपमानों के अ अतिरिक्त सांस्कृतिक एवं सामयिक उपमानों द्वारा भी गुरु साहिबान का महिमा का कविने गुण गान किया है। अस्तु ।

5- पौराणिक कथाओं के संदर्भ में गुरुओं का पौराणिक महत्व

'गुरु प्रताप सूरज' काव्य मय इतिहास होने के कारण जहां अ अपने ऐतिहासिक पात्रों को ऐतिहासिक महता का निरूपण करता है वहां उन्हें भारतीय संस्कृति के संरक्षक के रूप मे प्रस्तुत करने के लिए उनको पौराणिक अवतारों के रूप में भी कल्पना करता है। उनके साथ उनको अभिन्नता का प्रतिपादन कर उनके पौराणिक महत्व को घोषणा भी करता है। अवतारों के अतिरिक्त अन्य पौराणिक घटनाओं और आख्यानों के द्वारा भी उनका महिमा का गान करता है। इस सम्बन्ध में हम अलंकार रूप मेंपौराणिकता' के अन्तर्गत कुछ संकेत कर आये हैं। इस में पुराणों के अवतारों के कथाओं के अतिरिक्त अन्य पात्रों द्वारा जैसे हिरण्यकशप और प्रहलाद, बालो और सुग्रीव,

---

129- गु॰ प्र॰ सू॰ सि॰ रि॰ 4, अंशु 26, अंक 38-41, पृ॰ 5313

दुर्योधन और पांडव, रावण और विभीषण आदि अपनी दुष्टता और सज्जनता के प्रतीक रूप में चित्रित हैं वैसे ही इस काव्य के ऐतिहासिक पात्रों की उन से तुलना करते हुए भी गुरु साहिबान के पौराणिक महत्व की स्थापना की गई है। कुछ उदाहरण देखिए:-

1- 'निरंकार के तुम आकरा।सरगुन रूप बिशन तन धारा।
सतिजुग महिं बावन बपु पावनि।मापे तीन लोक त्रै पावनि।। 18 ।।
त्रैतै रघुवर रूप सुहावन।धाइ अगिन राखश युत रावन।
द्वापुर होए क्रिशन मुरारी।शत्रन सैन असंख संघारी ।। 19 ।।
अबि कलिजुग की कल निहारा।गुरु रूप आपनि को धारा ।
हम नर मंदमती नहिं जानैं ।तुमरी महिमा महिद महानै ।। 20 ।। [130]

2- इमि कहि सिख सभि आंसू ढारति।उर बिखाद ते हैं बहु आरति।
जथा क्रिशन भे अन्तरध्याना।गन गोपी रुदियंत महाना ।। 23 ।। [131]

3- भेद न जानति नंदन को जिन पंनग काली को मानु मथ्यो ।
केसी कराल, बकासुर, कंस हते गन दैंत मुनीनि कथ्यो ।
मल्य चंडूर हन्यो बल सों, मघनाथ को जाहों ते तेज अथ्यो ।
जाइ सुयंबर भूपति के गन बैल को एक ही बार नथ्यो ।
श्री हरिगोबिंद नन्दन की महिमा कबिंहू चित जानति है।
श्री गुरपूरन केर सपूत भयो अवतार ही मानति है। [132]

4- चहुं जुग महिं जिन जिन आराधे।जाइ तिमिनि के कारज साधे ।।
प्रेमडोर ते ऐं चति जोइ ।निज समीप ही देखति सोइ ।। 21 ।।

130- गु॰ प्र॰ सू॰ रा॰ 3, अंशु 42, अंक 18-20, पृ॰ 2090

131- वही , रा 1, अंशु 35, अंक 23, पृ॰ 1465

132-वही , रा॰ 3, अंशु 9, अंक 21-22, पृ॰ 1930-31

त्रेते रामचन्द्र अवतार।बन गमने जिन चरित उदार।। 25 ।।

× × ×

पुन श्री क्रिशन बिदर के गए।सोदामा के तंदुल खए ।। 27 ।।

× × ×

श्री नानक कलि महि अवतार।नगर रयनाबाद मझार ।।

लालो शूद्र तांहि घर जाहि।रुचि सो असन बनायो छांहि।। 28 ।।[133]

5- देन प्रहलाद प्रहलाद को लख्यो जु दैत, दैत के बिदारिबे को रुप नरसिंह को।

हार दे बलोन को जुहार ले बलोन को हतन लंकपति रन राम नरसिंह को ।

कुपत कुपत पुरि करे हैं कुपति कूट, हरि हरि हहिरे जिउ हरि म्रिग सिंह को।

तैसे तेजतर ते तुरक नरुतोरन को, जरा मे जनम भयो श्री गुबिंदसिंह को।।38 ।।[134]

इस तरह के अनेक उदाहरण 'गुरु प्रताप सूरज' से प्रस्तुत किए जा सकते है जिन से सिध्द होता है कि इन में चित्रित कथाओं को पढ़ कर तथा सुन कर जहां श्रध्दालु सिक्खों के हृदय में गुरु साहिबान का भक्ति भावना प्रबल वेग से प्रवाहित होती है वहां उन के हृदय में हिन्दुओं के इन अवतारों तथा पौराणिक कथाओं को जानने का जिज्ञासा भी उत्पन्न होती है। जिस से सांस्कृतिक एवं भावात्मक एकता का वातावरण उत्पन्न होता है और राष्ट्रीय भावना विकसित होती है।

6- आलौकिक तत्व स्वरुप और उद्देश्य

'गुरु प्रताप सूरज' में गुरु साहिबान के दिव्य स्वरुप का चित्रण भी हुआ है। उनको अलौकिक शक्ति, अतिमानवीय शक्ति तथा उनसे सम्बन्धित अनेक चमत्कारपूर्ण घटनाओं का इस में समावेश हुआ है। इन के द्वारा भाई सन्तोख सिंह अपने इष्ट

133- गु॰ प्र॰ सू॰ रा॰ ।।, अंशु 46, अंक 21-28, पृ॰ 4149-50

134- वही , रा॰ ।, अंशु ।, अंक 38, पृ॰ 1303

देव गुरुओं को दिव्य रूप की प्रतिष्ठा करना चाहते थे । यही उनके काव्य का उद्देश्य था । इस लिए इस ग्रंथ में कहीं कहीं चरित्र-वैचित्र्य के दर्शन हो जाये कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

सिख गुरुओं का वैसे करामातों में विश्वास नहीं था और नही वे सिध्दियों और करामातों को दिखा दिखा कर जनता को संत्रस्त करना चाहते थे । यद्यपि उनको शक्ति और महिमा का कोई पार नहीं पा सकता तथापि भाई सन्तोख सिंह उनके महत्व प्रतिपदन के उद्देश्य की सिध्दि के लिए पुराणों के अनुरूप चरित्रगत अलौकिकता को मानकर चले हैं। ग्रंथारंभ में कवि ने श्री चन्द की अलौकिक शक्ति का निरुपण किया है । उन्होंने जहांगीर को खिंथा के कांपने की करामात दिखाई है[135] । गुरु अंगद के विषय में कवि ने कहा है कि उन में अजर शक्ति को जरने की अनुपम शक्ति थी । उन्होंने कहीं भी अपने अतिमानवीय रूप का प्रदर्शन नहीं किया है[136]। यही नही, उन्होंने गुरु अमरदास को भी अपनी शक्ति के प्रदर्शन से रोका[137]। फिर भी हमारे कवि ने गुरु अमरदास जी की अलौकिक शक्ति का निरुपण स्थान स्थान पर कियाहै।कहीं वे किसी जुलाहिन को कमली(पागल) बना देते[138] है तो कहीं किसी वृध्दा के मृत पुत्र को जीवित कर देते[139] हैं । कहीं वे वर्षा बरसा कर[140] पाखंडी तपे के पाखंड को स्पष्ट करते हैं तो कहीं अपने चरण स्पर्श से हाड को मनुष्य देह में[141] परिवर्तित कर देते हैं । श्री गुरु रामदास ,श्री गुरु अर्जुन देव और श्री गुरु हरिगोबिन्द को महिमा का यद्यपि अलौकिक स्वरुपअभिव्यक्त करने के लिए भाई सन्तोख सिंह लालायित रहते हैं तथापि उनकी अलौकिक शक्ति को

135- गु॰ प्र॰ सू॰ रा॰ 1,अंशु 6,अंक 22-39,पृ॰ 1330-31

136- वही रा 1 अंशु 7,अंक 10,पृ॰ 1333

137- वही , रा॰ 1,अंशु 16,अंक 24-26,पृ॰ 1382 तथा
रा॰ 1,अंशु 23,अंक 46,पृ॰ 1413

138- वही , रा 1,अंशु 17,अंक 11,पृ॰ 1386

139- वही , रा॰ 1,अंशु 42,अंक 1-6,पृ॰ 1498

140- वही , रा॰ 1 ,अंशु 23,अंक 40,पृ॰ 1412

141- वही , रा॰ 1,अंशु 24,अंक 38 ,पृ॰ 1417

अतिमानवीय रूप देने में संकोच से काम लिया गया है। पुराणों के अनुरूप उनकी चरित्र-गत अलौकिकता को अवतारी रूप में प्रदर्शित करने में उनकी काव्य-कला सफल रही है। गुरु हरिगोबिंद जी के चरित्र का निरुपण करते हुए कवि ने उनके अवतार धारण करने और दैत्यों के नाश करने की शक्ति का उल्लेख किया है।[142] श्री रामराय की चमत्कारपूर्ण 62 करामातों का उल्लेख 'गुरु प्रताप सूरज' में विस्तार से हुआ है।[143] श्री गुरु तेग-बहादुर जी की अलौकिक शक्ति के दृश्य भी इस ग्रंथ में अंकित हैं। गुरु तेगबहादुर जी का करावास में होते हुए भी अपने श्रध्दालु सिक्खों के घर भोजन ग्रहण करने जाने[144] बन्दीगृह के द्वारों का अपने आप खुल जाने का वर्णन पढ़ कर पाठक को पौराणिक कथाओं की सहज ही स्मृति हो आती है। गुरु गोविन्द सिंह के पुरातन जन्म की कथा को पढ़ कर पाठक गुरु जी के शौर्य-वीर्य से प्रभावित हो उठता है। उनके चरित्र निरुपण में कवि ने उन्हें पौराणिक दैत्यों के नाश करने वाले कृष्ण के रूप में चित्रित किया है। उनके दुष्टदमन रूप का 'गुरु प्रताप सूरज' में पौराणिक निरुपण हुआ है। उनके देहत्याग के पश्चात् भी अपने श्रध्दालु सिक्खों को अपने घोड़े पर चढ़े हुए रूप को दिखाने का उल्लेख 'गुरु प्रताप सूरज' की अलौकिकता का ज्वलन्त उदाहरण है[145]।

इस तरह से गुरु साहिबान के दिव्य एवं अलौकिक रूप की प्रतिष्ठा द्वारा जहां कवि ने पाठकों एवं श्रोताओं के हृदय में उनकी भक्ति को सुदृढ़ बनाने का यत्न किया है वहां उनकी महिमा की अभिव्यक्ति को पौराणिक रूप प्रदान कर भारतीयता को स्थिर रखने का अनुपम प्रयास किया है।

142- गु॰ प्र॰ सू॰ रा॰ 3, अंशु 9 अंक 21-22, पृ॰ 1930-31

143- वही रा॰ 9, अंशु 38, ~~अंक~~ 55, पृ॰ 3685 -3747

144- वही, रा॰ 12, अंशु 49-50, पृ॰ 4411-4418

145- वही, ऐन 2, अंशु 25, अंक 10-11, पृ॰ 6339-40

समीक्षा

'गुरु प्रताप सूरज' ऐतिहासिक महाकाव्य होते हुए भी अपने में असंख्य पौराणिक कथाओं, प्रासंगिक घटनाओं की पौराणिक कल्पना, पौराणिक उध्दरण, संकेत और शब्दवली को संजोए हुए है जिस से उसका सम्पूर्ण वातावरण मिथिक का सा प्रतीत होने लगता है और पाठक या श्रोता यह अनुभव करने लगते है कि वे किसी पुराण की कथा का पाठ या श्रवण कर रहे हैं। वे ये अनुभव करने लगते हैं कि उनके गुरु अवतारी पुरुष हैं। ऐतिहासिक पात्र होते हुए भी वे विष्णु आदि के अवतार प्रतीत होने लगते हैं । यही प्रतीति कवि का लक्ष्य है जिस के द्वारा वह हिन्दू -सिक्ख -अभिन्नता का निदर्शन कर उनकी सांस्कृतिक एकता का प्रतिपादन करता है। दोनों की एकरूपता में कवि की समन्वय भावना निहित है। आज के युग में इस भावना की कुछ अधिक आवश्यकता अनुभव की जा रही है क्योंकि कुछ राजनैतिक नेता हिन्दुओं और सिक्खों को पृथक बता कर जहां उनमें वैमनस्य की भावना विकसित कर रहे हैं वहां अपनी स्वार्थ सिध्दि के द्वारा राष्ट्र का बहुत बड़ा अहित कर रहे है । ऐसी भावना के दूरीकरण के लिए वे 'गुर विलास' (सुक्खासिंह) और 'गुरु प्रताप सूरज' का अध्ययन करें तो उन्हें विदित हो जायेगा कि कैसे हिन्दू और सिक्ख एकता के एक सूत्र में बन्धे हुए थे और अभिन्न थे । गुरु साहिब तो हिन्दू धर्म के परिष्कारक ही नहीं थे अपितु उसके संरक्षक भी थे ।तभी तो भाई सन्तोख सिंह ने लिखा भी है कि :-

"छाई जातीएकता अनेकता बिलाई जाती ,
होवती कुचीलता कितावन कुरान की ।
पाप ही प्रपक्व जाते धर्म धस्सक जाते,
वरन गरक्क जाते सहत विधान की ।
देवी देव देहुरे सन्तोख सिंह दूर होते,
रीति मिट जाती कथा वेदन पुरान की ।
श्री गुरु गोबिन्द सिंह पावन परम सूर,
मूरत न होती ज पै करुणा निधान की।।[146]

146- गु॰ प्र॰ सू॰ रि॰ 5, अंशु 52, अंक 27, पृ॰ 5733-34

करुणा निधान के बिना वेद पुराण की सभी रीतियां मिट जाती । भारतीय संस्कृति लोप हो जाती । इस संस्कृति की संस्थापना ही 'गुरु प्रताप सूरज' का महान उद्देश्य है। जिस के लिए उसे अपने ऐतिहासिक पात्रों का मिथीकरण करना पड़ा और उनके महत्व का जयघोष करना पड़ा जिस के जयनाद की ध्वनि युग युगान्तर तक सुनाई पड़ती रहेगी और भारतीय संस्कृति की अमरता स्थिर रहेगी । इस महिमामंडित ग्रंथ की विमल प्रभा देश और काल के दुर्भेद्य आवरण को छिन्न भिन्न कर अपने सांस्कृतिक प्रकाश से सन्मार्ग दिखाती रही है और दिखाती रहेगी । उन्हें भारतीयता की रक्षा ~~सकने~~ करने की समर्थता प्रदान करती रहेगी ।

चतुर्थ अध्याय

'गुरु प्रताप सूरज' का सांस्कृतिक अध्ययन ।

'गुरु प्रताप सूरज' का सांस्कृतिक अध्ययन

प्रवेश

'गुरु प्रताप सूरज' ऐतिहासिक भूमिका पर निर्मित एक सांस्कृतिक काव्य है । इस में सनातन हिन्दू-संस्कृति के तात्विक विश्लेषण के साथ साथ मध्यकालीन मुस्लिम संस्कृति के प्रभाव की अमिट छाप देखी जा सकती है। इन दोनों संस्कृतियों के समागम से जो नई संस्कृति प्रकाश में आई – वह थी सिक्ख संस्कृति । 'गुरु प्रताप सूरज' में इसी सिक्ख संस्कृति के आदर्शों एवं मूल्यों का विशेष रूप से विश्लेषण हुआ है। भारतीय संस्कृति के पूर्व स्थापित मूल्य मूल्यों के आधार पर विकसित इस नवीन संस्कृतिक के उद्भव और विकास की कहानी इस ग्रंथ में अंकित है। अतः इस में चित्रित सांस्कृतिक वातावरण एवं सम्पदा को उद्घाटित करने से पूर्व संस्कृति के स्वरूप, प्रकार और भारतीय संस्कृति के विकास की कहानी को जान लेना ऐसे सांस्कृतिक अध्ययन के लिए उपयोगी होगा। जिस से इस के सांस्कृतिक अध्ययन का दृष्टिकोण स्पष्ट हो सकेगा।

पूर्व - पीठिका

संस्कृति मानवात्मा को सद्पथ पर अग्रसर करती है। उसके आन्तरिक विचारों को परिष्कृति प्रदान करती है। उसके आन्तरिक भाव-तत्वों से इसका निर्माण होता है। किसी भी देश या जाति की सांस्कृतिक चेतना का ज्ञान उसके मानसिक और पारमार्थिक स्तर से प्राप्त होता है। प्रत्येक देश अथवा जाति की संस्कृति की अपनी मौलिक विशेषताएं होती हैं। भारतीय संस्कृति की पुरातनता, समन्वय भावना, उदारता, धर्म और अध्यात्मवाद, विकासशीलता आदि विशेषताओं ने आज तक इसे स्थिरता प्रदान की हुई है। इसने अन्य देशों की संस्कृतियों को आत्मसात करते हुए भी विश्व में अपना अनुपम स्थान बनाया हुआ है। इसमें विविध पुनीत धाराओं का अलौकिक समागम हुआ है। मानव के विकास में जिन संस्कारों, रीति-रिवाजों, वेशभूषाओं , परंपराओं आदि ने योगदान दिया होता है उन सब का इस में लेखा जोखा रहताहै।" मनुष्य जीवन रुकता नहीं, पीढ़ी दरपीढ़ी आगे

बढ़ता है। संस्कृति के रुपों का उत्तराधिकार भी हमारे साथ चलता है। धर्म, दर्शन, साहित्य, कला उसी के अंग है।"[1]

संस्कृति का स्वरुप और क्षेत्र

हिन्दी के प्रमुख कोशकारों में एक ने संस्कृति को 'रहन-सहन' की रुढ़ि कहा है,[2] तो दूसरे ने उसे 'आचारगत परंपरा बताया है[3] और तीसरे ने उसके अन्तर्गत मन, रुचि, आचार-विचार, कला-कौशल और सभ्यता के क्षेत्र में बौध्दिक विकास-सूचक[4] बातें ली हैं। इस प्रकार मानव के रहन-सहन और आचार-विचार से संबन्धित उन सभी परंपरागत बातों से 'संस्कृति' का संबंध बताया गया है जो उसकी विविध विषयक रुचियों के परिष्कार और त्रिविध अर्थात् शारीरिक मानसिक और आत्मिक शक्तियों के विकास में सहायक होती हैं। यों 'सस्कृति' के दो पक्ष हो जाते है। पहले पक्ष का संबंध उन बातों से रहता है जिनका निर्माण रहन-सहन आचार-विचार आदि से संबन्धित वातावरण, संपर्क आदि के फलस्वरुप हुआ करता है और दूसरे पक्ष संबंध परंपरा से अर्थात् उन बातों से रहता है जो मानव अपने पूर्वजों से प्रत्यक्ष या परोक्ष रुप से ग्रहण करता है। प्रथम पक्षीय विषयों की नींव मानव के जन्म-काल से ही पड़ जाती है और उसके रहन-सहन आचार-विचार आदि पर जिन बातों का आरंभ होते ही प्रभाव पड़ने लगता है, उनमें प्रमुख है– प्राकृतिक वातावरण, जीवन की सामान्य रुपरेखा, पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक स्थिति आदि। द्वितीय पक्ष के अन्तर्गत विभिन्न विषयों के संबंध में परंपरा से प्राप्त विश्वास और मान्यताओं के साथ साथ अनेक पर्वोत्सव आदि भी आ जाते हैं जिनसे जीवन के प्रति समाज के दृष्टिकोण की संकुचितता या व्यापकता का सहज ही परिचय मिल सकता है।

1- डा॰ वासुदेव शरण अग्रवाल : कला और संस्कृति, पृ॰ 11 (1958)

2- डा॰ श्यामसुन्दर दास, : हिन्दी शब्द- सागर', चतुर्थ भाग, पृ॰ 3415

3- सर्वश्री कालिका प्रसाद, राजवल्लभ, मुकंदीलाल, वृहत् हिन्दी कोश, पृ॰ 1344

4- श्री रामचन्द्र वर्मा : 'प्रामाणिक हिन्दी कोश' पृ॰ 1259

संस्कृति का सम्बन्ध मानव के भौतिक, आध्यात्मिक, आर्थिक, राजनैतिक , धार्मिक, साहित्यिक , दार्शनिक, कलात्मक आदि सभी प्रकार के महत्वपूर्ण विकासों एवं जीवन के विविध पहलुओं से है। मानव के इन विकासों में परंपरागत संस्कारों का बड़ा हाथ रहता है। इस लिए संस्कृति का संस्कारों से घनिष्ठ संबन्ध है। इसके अतिरिक्त इन विकासों द्वारा ही किसी देश की सभ्यता का भी पता चलताहै । इसी कारण सभ्यता को मानव के विकास की समस्त चेष्टाओं का बाह्य रूप कहा म जाता है। संस्कृति उनका आन्तरिक रूप है। अतः किसी देश की संस्कृति से उस देश के रहन-सहन, आचार-विचार रीति-रिवाज, ज्ञान-विज्ञान, परंपरागत अनुभव जीवन यापन के ढंग कला प्रेम , रुचि आदि का बोध होता है ।

संसार में देश भेद से अनेक प्रकार के मनुष्य हैं। उनकी संस्कृतियां भी अनेक हैं । यहां नानात्व अनिवार्य है। वह मानवीय जीवन का झंझट नहीं उसकी सजावट है। किन्तु देश और काल की सीमा से बंधे हुए हमारा घनिष्ट परिचय या सम्बन्ध किसी एक संस्कृति से ही संभव है। वही हमारी आत्मा और मन में रमी हुई होती है और उनका संस्कार करती है। यों तो संसार में अनेक स्त्रियां और पुरुष हैं पर एक जन्म में जो हमारे माता-पिता बनते है उन्हीं के गुण हममें आते है और उन्हें ही हम अपनाते हैं । ऐसे ही संस्कृति का सम्बन्ध है, वह सच्चे अर्थो में हमारी धात्री होती है। इस दृष्टि से संस्कृति हमारे मन का मन प्राणों का प्राण और शरीर का शरीरहोती है। इसका यह अर्थ नहीं कि हम अपने विचारों को किसी प्रकार संकुचित कर लेते हैं। सच तो यह है कि जितना अधिक हम एक संस्कृति के मर्म को अपनाते हैं उतने ही ऊंचे उठ कर हमारा व्यक्तित्व संसार के दूसरे मनुष्यों , धर्मो, विचारधाराओं और संस्कृतियों से मिलने और उन्हें जानने के लिए समर्थ और अभिलाषी बनता है। अपने केन्द्र की उन्नति बाह्य विकास की नींव है। एक संस्कृति में अ जब हमारी निष्ठा पक्की होती है तो हमारे मन का परिधि विस्तृत हो जाती है, हमारा उदारता का भंडार भर जाता है। संस्कृति जीवन के लिये परम आवश्यक है।

संस्कृति मनुष्य की सब से बड़ी विभूति मानी जाती है। यह वह सूक्ष्म भावनात्मक तत्व है जो हृदय की प्रेरणा से बाह्य कृत्यों एवं आचारों में प्रस्फुटित हो कर मानवके

मानसिक प्रशिक्षण का बोध कराता है। इसका सम्बन्ध उन विशेष आचारों, विचारों एवं क्रिया-कलापों से होता है जो मनुष्यता को विकास को ओर अग्रसर करते हैं। यह एक ऐसा व्यापक और गतिमान तत्व है जिसे परिभाषा के घेरे में नहीं बांधा जा सकता। समाज के विकास-क्रम को निर्देशिक परिस्थितियां हो संस्कृति का बोध कराती है। आत्मिक अभ्युत्थान का प्रतीक संस्कृति समाज के परिवेश में हो प्रफुल्लित होता है। जिसमें उसके लौकिक, पारलौकिक, राजनीतिक, आध्यात्मिक, दार्शनिक, सामाजिक, धार्मिक उन्नति की कहानी अंकित होती है। मानवीय जीवन की समस्त चेष्टाएं संस्कार इसमें सम्मिलित होते है। साहित्य दर्शन, धर्म आदि सभी इस में विस्तार को प्राप्त होते हैं। "संस्कृति प्रकाश की आराधना है, मानवता का प्रेम है। वह सुगन्धि है, जीवनऔर सौन्दर्य की एकता है। वह ऊँचा उठाने वाली भावनाओं का समन्वय है। वह मुक्ति है, प्रेरक शक्ति है, हृदय है? अगर हम संस्कृति को सब परिभाषाओं को एकत्र करें, तो हमें क्रियात्मक शिव, ज्ञान को वेदी और रचनात्मक सौंदर्य प्राप्त होता है"

"मानव जीवन का सम्पूर्ण गति विधियों का संचालन अंतवृत्तियों की जिस समष्टि द्वारा होता है तथा जिसके अपनाने से वह सच्चे अर्थों में मनुष्य बनने की दिशा में अग्रसर होता है, उसे संस्कृति कहते हैं।"[5] यह मानव-जीवन को विशिष्ट पध्दति तथा विकास की दिशा में सतत गतिशील किन्तु स्थायी जीवन-व्यवस्था है, जिसे 'मानव-जीवनका सौंदर्य एवं वैचारिक केन्द्रबिन्दु से संयुक्त सामूहिक दृष्टिकोण भी[6] कहा जा सकता है।
अत एवं यह एक प्रकार से सामाजिक भाव है। इस अत्यधिक प्रचलित शब्द के सम्बन्ध में आज इतनी अधिक संख्या में परिभाषाएं प्रकाशमें आ चुकी हैं कि उनके दृष्टिकोण वैशिष्ट्य के कारण व्यक्ति को उनकी परस्पर-असम्बध्दता का आभास सा होने लगता है। अभी तक इसकी कोई सर्व सम्मत परिभाषा नहीं निश्चित हो पाई है। इस लिए संस्कृति की अवधारणा से भली प्रकार परिचित होने के लिए इस के शाब्दिक स्वरूप एवं कतिपय परिभाषाओं को जान लेना उचित होगा।

5- डा॰ मदनलाल गुप्त : मध्यकालीन हिन्दी काव्य में भारतीय संस्कृति, पृ॰ ।

6- K.M.Munshi: Our Greatest Need, Ist Ed.p.58-60, <u>Heading The meaning of Culture</u>

(क) संस्कृति ; शाब्दिक विवेचन

संस्कृति शब्द की व्युत्पत्ति 'सम्' उपसर्ग पूर्वक 'जिस का अभिप्राय 'सम्य' समानता' अथवा पूर्णता लिया जाता है) 'कृति((कृ-धातु के भूषण अर्थ में 'सुट' का आगम करके 'क्तिन' प्रत्यय करने से) का अर्थ सृजन अथवा रचना है।[7] इस प्रकार सृजनात्मक अथवा भूषणभूत सम्यक् कृतियों या चेष्टाओं अर्थात् मानव की आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक उन्नति के अनुकूल चेष्टाएं या मानव की वैयक्तिक, सामाजिक, धार्मिक राजनैतिक आदि विभिन्न क्षेत्रों सम्बन्धी उन्नति संस्कृति कहलाती है। एक अन्य विद्वान ने 'संस्कृति' शब्द का व्युत्पत्ति जन्य अर्थ 'परंपरागत अनुस्यूत संस्कार' बताया है।[8] संस्कृत में 'संस्कृ' धातु के भी अनेक अर्थ होते हैं यथा – सजाना, संवारना, परिष्कृत करना इत्यादि।[9] इस शब्द का भावार्थ उपर्युक्त शब्दार्थ की अपेक्षा अधिक विशद एवं व्यापक है, क्योंकि डा॰ पी॰ के॰ आचार्य के शब्दों में ''इसमें परिमार्जन या परिष्कार के अतिरिक्त शिष्टता एवं सौजन्य के भावों का भी समावेश हो जाता है।[10] वैयक्तिक केन्द्र पर हुआ परिष्कार या उदात्तीकरण सामूहिक रुप धारण करके ही संस्कृति की अन्तिम परिणति पाता है। संस्कृति में निहित सामूहिकता या सामाजिकता का भाव इस उपसर्ग के द्योतित विस्तृत का प्राण है। परिष्कार या प्रकृतिका सुरुचिपुर्ण परिशोधन अनागत जीवन के औदात्य की भूमिका बनाता है। परिष्कार निषेधात्मक रुप से प्राप्त असंतुष्टि को व्यक्त करता है और विधि रुप में इस साधना का संकेत इसी से मिलता है जिसका लक्ष्य पूर्णता और तज्जन्य आनन्द है। इसके साथ संबध्द प्रत्यय क्रिया के भाव का ही वाचन करता है। उक्त विवेचन के ~~आधार~~ आधार पर 'संस्कृति' शब्द का अर्थ –'सम्यक् कृति' हुआ। और ~~सम्य~~ सम्यक् कृति किसी शुभ कर्म को ही कहा जा सकता है। आचार्य दिवेदी का कथन है कि यह शब्द व्यावहारिक अर्थों को स्पष्ट करने में सहायक नहीं होगा परन्तु यह

7- द्रष्टव्य : (क) शब्द कल्प द्रुम : पंचम कांड, पृ॰ 206-7, (ख) संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ पृ॰ 1148 (ग) कल्याण : हिन्दू संस्कृति अंक, पृ॰ 24

8- कल्याण : हिन्दू संस्कृति अंक , पृ॰ 4।

9 - द्रष्टव्य : आप्टे संस्कृत कोश

10- डा॰ प्रसन्नकुमार आचार्य : भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता, संस्करण सं॰ 2014 पूर्वाभास , पृ॰ 1, शीर्षक - संस्कृति।

इसका अर्थ संकेत अवश्य करता है और उससे एकान्ततः असंबध्द या असम्पृक्त नहीं है।[11] इस विवेचन के आधार पर सम्यक् कृतियों और परंपरा से प्राप्त संस्कारों की समष्टि को 'संस्कृति' कह सकते है।[12]

(ख) संस्कृति : अर्थ-विकास

धात्वर्थ का संदर्भ के अनुसार विकास या विस्तार होता है। व्युत्पत्ति की दृष्टि से एक विशिष्ट संरचना की क्रिया संस्कृति है। पर अपने बृहतर अर्थ में समस्त परिष्कृत उपकरण समवेत रुप से इस शब्द से द्योतित होते है।जब हम किसी देश विशेष या जाति विशेष की संस्कृति की चर्चा करते है तब अव्यक्त रुप से उसकी समस्त सांस्कृतिक उपलब्धियां और उन उन उपलब्धियों के सूचक संगृहीत उपकरण भी इस अर्थ के अन्तर्गत आ जाते है। विकास की एक और दिशा सूचित होती है। प्रकृति का संस्कार या परिष्कार जीवन-निरपेक्ष नहीं हो सकता।एक स्थिति में जीवन पूर्वागत संस्कृति को एक सीमा तक स्वीकार करता है।साथ ही सांस्कृतिक नवोन्मेष भी जीवन पध्दति में अपना स्थान बनाते है। इन पूर्वागत और नवोदित सांस्कृतिक तत्वों के आधार पर एक सामान्य जीवन-पध्दति निर्धारित होती है। इस जीवन पध्दति का बोध भी 'संस्कृति' शब्द से होता है।

संक्षेप में संस्कृति का धात्वर्थ मनुष्य की एक विशिष्ट क्रिया को प्रकट करता है। विभिन्न जीवन संदर्भो में इस शब्द का अर्थ विकास होता रहा है। साधारणतः परिष्कार की प्रवृति और प्रक्रिया[13] इस क्रिया की उपलब्धियां और एक जाति की इनके आधार पर जीवन-पध्दति इस शब्द के विस्तृत अर्थ की सीमाएं हैं।जीवन पध्दति आचरण की परंपरा में व्यक्त होती है।इस लिए इसका एक अर्थ आचरणगत परंपरा भी है।

11- विचार और वितर्क, (निबन्ध संग्रह, पृ० 123 (1954)

12- श्री महादेव शास्त्री दिवेकर : 'आर्य संस्कृति का उत्कर्षापकर्ष, पहला सं०, पृ० 5

13- डा० पी० के० आचार्य : भारतीय संस्कृति और सभ्यता , पृ० 1

(ग)'कल्चर'(Culture) का तात्पर्य

'संस्कृति' शब्द अंग्रेजी के 'कल्चर' शब्द के अधिक निकट कहा जाता है। ये दोनों समानार्थक हो गए हैं। "अंग्रेजी साहित्य में इस 'कल्चर' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम सन् 1420 ई॰ में कृषि तथा पशु- पालन के अर्थों में मिलता है।[14] जो अपने आदि अस्तित्व में यूरोप की अन्य भाषाओं के अन्तर्गत भी कृषि-सम्बन्धी कार्यों का ही द्योतक था।[15] तब से लेकर सन् 1871 ई॰ तक अनेक विचारकों द्वारा विविध अर्थों के द्योतन के लिए इसका प्रयोग होता रहा।[16] इसके वर्तमान तात्पर्य को सर्वप्रथम प्रतिष्ठा का श्रेय आंग्ल विद्वान टाइलर को प्राप्त है जिन्होंने उस समय तक प्रचलित 'कल्चर' विषयक परिभाषाओं का विवेचन करके सन् 1871 ई॰ में तत्सम्बन्धी 'सिविलिजेशन' (**Civilization**) की समानार्थक अवधारणा का निराकरण करते हुए जिस नवीन अर्थ का प्रतिपाद किया था, वह भी इसके बासठ वर्ष पश्चात् ही आंग्ल तथा अमरीकी शब्द-कोषों में स्थान पा सका।[17] वर्तमान अर्थ कोप्राप्त कराने वाली पृष्ठभूमि के रुप में 'कल्चर' से संबन्धित अनेक विविध अवधारणाओं का एक अत्यन्त रोचक इतिहास है जिसे विस्तार पूर्वक प्रस्तुत करना इस प्रबन्ध की दृष्टि से संभव भी नहीं है। अतः इससे सम्बन्धित परिभाषाओं पर विचार करते समय उसे केवल सूत्र रुप में प्रसंगानुसार आगे प्रस्तुत किया जायेगा। यहां सर्वप्रथम इसके निरुक्तिजन्य अर्थ पर विचार कर लेना अभीष्ट होगा।

14- **A.L.Kroeber and Clyde Kluckhohn: '<u>Culture</u> Ed. 1952, p.33 Heading Dictionary and Definition**

15- **Phillip Babby: Culture and History, Ed. 1951, p.72 Heading The Concept of Culture**

16- **A.L.Kroeber and Clyde Kluckhohn: Culture p.9**

17- द्रष्टव्य : वही , शीर्षक वही ।

निरुक्ति की दृष्टि से इस शब्द की व्युत्पत्ति लेटिन भाषा की धातु 'कोलर' (Colere)से निष्पन्न 'कुल्टुरा' (Cultura)शब्द से हुई है जो संक्षेप में क्रमशः 'पूजा करना' तथा 'कृषि संबन्धी कार्य'का बोधक है।[18] इन मूल अर्थों के साथ कल्चर के वास्तविक अर्थ के समन्वय का भी प्रयास विद्वानों द्वारा किया गया है। शब्दार्थ तथा व्युत्पत्ति की दृष्टि से 'कल्चर ' तथा 'कल्टीवेशन' में जो साम्य मिलता है[19] उस को लेकर डा॰ प्रसन्न कुमार आचार्य ने संस्कृति की प्रक्रिया को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि 'कल्टिवेशन का अर्थ कृषि है। भूमि की प्राकृतिक अवस्था को परिष्कृत करना ही कृषि का ढ उद्देश्य है। कृषि की विभिन्न पध्दतियों द्वारा भूमि का परिष्कार किया जाता है, रोड़े, कूड़ा-कर्कट और घास-तिनके हटाकर भूमि शुध्द की जाती है, जिस से भूमि उर्वरा बनती है। भूमि की भान्ति मनुष्य की मानसिक और सामाजिक अवस्थाएं

18- द्रष्टव्य : वही, पृ॰ 9

19- (a) Culture : Cultivation, the state of being cultivated refinement due to the result of cultivation, the type of civilization, a crop of experimentally grown bateria or the like- to cultivate, improve. Chambers Twentieth Century's Dictionary, Ed. 1957. p. 257

(b) Dr. Raghuvira: Comprehensive English-Hindi Dictionary, p.447 (1955)

(c) V.S.Apte: The Student's English - Sanskrit-Dictionary, p.89 (3rd Ed.)

(d) "The training and refinement of mind, tastes and manners, the condition of being thus trained and refined, the intellectual side of civilization the acquainting ourselves with the best that has been known and said in the World."

-See: Culture, Oxford Dictionary.

भी विकसित हुआ करती है। संस्कृति अथवा कल्चर मनुष्य की सहज प्रवृत्तियों, नैसर्गिक शक्तियों तथा उनके परिष्कार की द्योतक है। जीवन का चरमोत्कर्ष प्राप्त करना इस विकास का परिणाम है।[20] "इसी प्रकार कल्चर में कल्टिवेशन(Cultivations) के मूल कुल्ट्स[21](cults)के प्रच्छन्न अर्थ को प्रकाशित करते हुए सुप्रसिध्द इतिहासकार जयचन्द्र विद्यालंकार ने मानव के प्रागैतिहासिक विकास क्रम को प्रस्तुत करते हुए मानव संस्कृति के विकास का आरंभ उसके कृषक जीवन से ही माना है।उनके मतानुसार''अपनी प्राथमिक अवस्था में स्तनपायी जन्तु मानव में उसकी संस्कृति का विकास होता है उसके कृषक-जीवन से प्रारंभ होता है क्योंकि नियमित कृषि के आरंभ होने से ही उसे ऋतुओं का ज्ञान, भेड़ों तथा ऊटों, ऊन कातना वा बुनना, पशु पालना तथा उनके दूधा का खाद्य रूप में उपयोग, विविध धातुओं केउपयोग , वस्तुओं का विनिमय, भूमि के स्वत्व की भावना, बागवानी, भ्रमणशील जीवन के स्था स्थान पर एक स्थान पर रहना, सामूहिक जीवन तथा रहन सहन में सब प्रकार की उन्नति आदि बातें सम्यक् रूप में विकसित हुई है।"[23]

20- डा॰ प्रसन्न कुमार आचार्य : 'भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता', सं॰ 2014, पूर्वाभास, पृ॰ 1, शीर्षक - संस्कृति : कल्चर

21- (1) " Now, as you may be aware, our 'Hindiphil' friends... .... are bringing into vogue the word"Sanskrti" (संस्कृति) as a substitute for "Culture" and some of us are imitating that in Bengal. I venture to think that that expression is not a happy one, and it and its cognate "Sanskara" had better be reserved to connote what is called "Reformation" - the old Vedic word 'Krshti'(कृष्टि) being used as appropriate synonym for "Culture". Harindra Nath Dutta: Indian Culture p.3 (Ed. 1941)

(11) द्रष्टव्य : जयचन्द्र विद्यालंकार :भारतीय कृष्टि का क ख', प्रथम सं॰ अध्याय 1, पृ॰ 1-9 तक, शीर्षक 'मानव-कृष्टि का विकास तथा अर्थ ।

2?- वही , पृ॰ वही

उपर्युक्त सामूहिक जीवन के कारण मानव में परस्पर प्रेम, सहानुभूति, सहयोग, सुन्दर वस्तुओं को परखने तथा रचने की योग्यता तथा ज्ञानार्जन की उच्च प्रवृत्तियों का उदय हुआ जो सांस्कृतिक जीवन के विकास क्रम के प्रथम सोपान में आती है।[23] अतएव 'कल्चर' से सम्बन्ध रखने वाले उपर्युक्त 'कोलर' तथा 'कुल्टूस' के विवेचन के आधार पर यह कहना समीचीन होगा कि कृषि-विद्या के नियमों के आधार पर जिस प्रकार पेड़-पौधों को सुविकसित करके अच्छी होती तैयार की जाती है, ठीक उसी प्रकार मनुष्यों में भी मानवता को पल्लवित करने के लिए जो पध्दति काम में लायी जाती है उसे 'संस्कृति' कहा जा सकता है।[24]" व्युत्पत्ति की दृष्टि से अंग्रेजी शब्द 'कल्चर' का सम्बन्ध कृषि व्यवसाय से है। इसी के आधार पर 'अग्रिकल्चर' शब्द बना है। भूमि को उत्पादन की दृष्टि से उपयुक्त बनाने का भाव इस शब्द से द्योतित होता है। अर्थविकास के अनुसार जीवन के सभ पक्ष पक्षों का उपुयुक्त बनाना इससे द्योतित होने लगा। अंग्रेजी शब्द के साथ आरंभ से ही सुरुचि और सौंदर्य का भाव नहीं रहा। स्थूल उपयोगिता एवं व्यावसायिक दृष्टि से ही इसका अर्थ विकास हुआ है। इस दृष्टि से संस्कृति शब्द अंग्रेजी शब्द की अपेक्षा अधिक गर्भित है।[25] मध्यकाल तक भी 'कल्चर' का अर्थ व्यावसायिक बना रहा।[26] केवल आधुनिक युग में अभिरुचि का तत्व इसके अर्थ से सम्बध्द हुआ है।[27] संस्कृति शब्द में आरंभ से ही यह भाव सन्निहित

23- (क) द्रष्टव्य : जयचन्द्र विद्यालंकार, 'भारतीय कृषि का क ख', पृ. 10-13

(ख) डा भगवत शरण उपाध्याय : 'सांस्कृतिक भारत' प्रथम अध्याय, पृ 10-11

24- डा. मदनलाल गुप्त : मध्यकालीन हिन्दी काव्य में भारतीय संस्कृति, पृ. 2-3

25- 'The Sanskrit term 'Sanskriti' is more significant and implies refinement'. -Dr.P.K.Acharya: Glories of India on Indian Culture p.5

26- Philip Babby: Culture and History p.73

27- Ibid p.73

था । इसके द्वारा 'कल्चर' और 'सिविलिजेशन' दोनों ही अर्थ ज्ञापित होते है। अब अंग्रेजी और हिन्दी दोनों शब्दों से उदात्त अभ्यास, सद्व्यवहार, साहित्य विचारें, कला-कौशल, विज्ञान की उपलब्धियां और उनका जीवन सापेक्ष व्यवहार का परिचय मिलता है। ये सभी आधुनिक संस्कृत व्यक्ति के लिये आवश्यक उपादान हैं ।

(घ)संस्कृति की परिभाषाएं

ऊपर निर्देश किया जा चुका है कि संस्कृति शब्द अर्थ की दृष्टि से विकासशील रहा है।इस शब्द का अर्थ कभी रूढ़ नहीं हो सकता। क्योंकि मनुष्य की प्रगति कभी अवरुद्ध नहीं हो सकती। उसकी प्रगति के गौरवपूर्ण क्षणों का वाणी इस शब्द में समाहित होती ही जायेगी। जीवन के नवीन सौंदर्य-बोध, यथार्थ के नवीन संदर्भ और बदलते हुए जीवन-मूल्य इस शब्द के अर्थ को स्थिर नहीं होने दे सकते । इस प्रकार के विकासशील अर्थ को एक सुनिश्चित परिभाषा में निबध्द कर देना एक विशिष्ट काल से सापेक्ष ही होगा। ऐसी परिभाषा खोजना कठिन होगा जो युग-युग तक चलती रही ।जिस प्रकार ईश्वर, जीवन, सौंदर्य, प्रेम , कविता आदि को परिभाषा में बांधना कठिन होता है उसी प्रकार संस्कृति को भी परिभाषा में बांधना कठिन होता है। फिर भी काल सापेक्षही सही किसी जीवन संस्था को परिभाषित करता ही चलता है।संस्कृति की भी अनेक परिभाषाएं समय समय पर दी गयी हैं, दी जा रही हैं और दी जाती रहेंगी ।जिस प्रकार अर्थ विकास की स्थितियां है उसी प्रकार परिभाषा का विकास क्रम भी परिलक्षित होता है। परिभाषा वह शब्दावली है जिसका प्रयोग करके किसी शब्द का अर्थ स्पष्ट और वैज्ञानिक रूप से सुनिश्चित किया जाता है।[28] इसके सुनिश्चित करण में उस शब्द की जाति प्रमुख होती है। क्योंकि परिभाषा व्यक्तिगत नहीं जातिगत लक्षणों को लकर बनती है। आई · ए · रिचर्ड्स ने परिभाषा पर विचार करते हुए इसके कुछ आवश्यक तत्वों की ओर संकेत किया है।[29] परिभाषा का लक्ष्य ज्ञात के आधार पर अज्ञात तक पहुंचना होता है। इसलिए संबध्द विषय का एक पक्ष या एक अंग परिभाषा का आधार

28- Shipley-Dictionery of World Literary Terms p.92

29- Meaning of Meaning (1956) p.246

नहीं बन सकता ।इस प्रकार के अंगों की सूची भी उपादेय नहीं होती।परिभाष्य वस्तु का सामान्य परिचय ही परिभाषाको पूर्ण बना सकता है। इस दृष्टि से देखने पर संस्कृति की कुछ परिभाषाएं संस्कृति के अंगों की सूची देती हैं और कुछ व्याख्या सापेक्ष्य शब्दों के योग से दूषित क हो जाती है। परिभाषा में प्रयुक्त शब्द स्वयं पारिभाषिक नहीं होने चाहिए। कुछ परिभाषाएं संस्कृति के लक्ष्य की चर्चा करती हैं और कुछ में देशकाल की विशिष्ट स्थितियां आ जाती है। फिर भी कुछ प्रमुख विद्वानों की परिभाषाओं परविचार करना समीचीन प्रतीत होता है। अतः ऐसी कुछ परिभाषाओं का उल्लेख करके उनका विश्लेषण नीचे किया गया है।

(ङ•) प्रमुख भारतीय एवं पाश्चात्य परिभाषाएं

वैदिक साहित्य में संस्कृति की कोई स्पष्ट परिभाषा नहीं मिलती ।यजुर्वेद में इस शब्द का उल्लेख अवश्य[30] हुआ है परन्तु वहां इसकी व्याख्या नहीं की गई है।ब्राह्मण साहित्य में इसकी परिभाषाका प्रयत्न अवश्य हुआ है। ऐतरेय-ब्राह्मण में संस्कृति का संबन्ध मानव के व्यक्तिगत और सामाजिक उन्नयन से माना गया है। संस्कृति वह शक्ति है जो इस उन्नयन की साधना को सिध्द करती[31 8] है।

उपनिषद् साहित्य में संस्कृति की परिभाषा को विस्तार मिला है।छांदोग्योउपनिषद् के अनुसार संस्कृति उन समस्त आदर्शों की समष्टि है जो मनुष्य को मानवतावादी दृष्टि प्रदान करते है। यह मानवतावादी दृष्टि समस्त जीवन व्यापारों और सामाजिक सम्बन्धों व्याप्त रहती[32] है। मानवतावादी दृष्टि सेके आधार पर ही समस्त धर्म,सम्प्रदाय और

30- अच्छिन्नस्य ते देवसोम सुवीर्यस्य रायस्पोषस्य ददितारः,
'स्याम सा प्रथमा संस्कृति विश्ववारा' स प्रथमो वरुणो मित्रो अग्निः ।
— यजुर्वेद, 7- 14

31- 'आत्म संस्कृतिर्वाव शिल्पानि - एतैर्यजमान आत्मानं संस्कुरुते'
— ऐतरेय ब्राह्मण, 6 · 5 · 1

32- "कस्यापि देशस्य समाजस्य वा विभिन्नजीवनव्यापारेषु सामाजिकसम्बन्धेषुवा ।
मानवीयत्व दृष्ट्या प्रेरणाप्रदानां तत्तदार्शानां समष्टिरेव संस्कृति : ।"
— छांदोग्योपनिषद्, 8 · 4 · 1

सदाचार संगठित और समन्वित होते हैं।[33]

सुविख्यात दार्शनिक डा॰ राधाकृष्णन के मतानुसार जीव की विभिन्न और घनिष्ट समस्याओं पर हुआ चिन्तन और उसकी अभिव्यक्ति ही संस्कृति है'।संस्कृति है।[34]' राहुल सांस्कृत्यायन ने संस्कृति के विषय में बौध्द संस्कृति पर विचार करते हुए कहा है कि 'एक पीढ़ी आती है, वह अपने आचार विचार रुचि अरुचि कला संगीत, भोजन-छाजन या किसी और दूसरी आध्यात्मिक धारणा के बारे में कुछ स्नेह की मात्रा अगली पीढ़ी के लिए छोड़ जाती है। एक पीढ़ी के बाद दूसरी, दूसरी के बाद तीसरी अपनी अगली पीढ़ी पर छोड़ती जाती है। यही प्रभाव (संस्कार) संस्कृति है।[35]' रवीन्द्रनाथ ठाकुर के मतानुसार 'संस्कृति मस्तिष्क का जीवन है।[36] डा॰ देवराज के विचार में ''संस्कृति का अर्थ चिंतन तथा कलात्मक सर्जन की वे क्रियाएं समझनी चाहिए, जो मानव व्यक्तित्व और जीवन के लिए साक्षात् उपयोगी न होते हुए उसे समृध्द बनाने वाली हैं। इस दृष्टि से हम विभिन्न शास्त्रों दर्शन आदि में होने वाले चिन्तन, साहित्य, चित्रांकन आदि कलाओं एवं परहित साधना आदि नैतिक आदर्शों तथा व्यापारों को ' संस्कृति ' की संज्ञा दे सकते हैं[37]। डा॰ मंगलदेव शास्त्री के अनुसार ''किसी देश या समाज के विभिन्न जीवन व्यापारों में या सामाजिक सम्बन्धों में मानवता की दृष्टि से प्रेरणा प्रदान करने वाले उन-उन आदर्शों

33- 'इत्येवं वर्णयितुं शक्यते । अतएव च सर्वेषां धर्माणां सम्प्रदायानामाचरणं च परस्परं समन्वय संस्कृतेर्वा धारेण कर्तुं शक्यते'। — प्रबन्ध प्रकाश, भाग 2, पृ॰ 3

34-"..... It (culture) is thinking with one's whole mind and body. It is making entire organism, sense and sensibility mind and understanding thrill with the idea."
-Freedom and Culture p.24

35- बौध्द संस्कृति, अध्याय 1, पृ॰ 3 (प्रथम संस्करण)

36- The Centre of Indian Culture p.15

37- हिन्दी साहित्य कोश - पृ॰ 801-802

को समष्टि को हो 'संस्कृति' समझना चाहिए[38]। ' डा॰ वासुदेवशरण अग्रवाल 'संस्कृति को मनुष्य के भूत, वर्तमान और भावी जीवन का सर्वांगपूर्ण विकास मानते है। हमारे जीवन का ढंग हमारी संस्कृति है। ... जीवन के नानाविधि रूपों का समुदाय ही 'संस्कृति'[39] हैं। संस्कृति मानवीय जीवन की प्रेरक शक्ति है। वह जीवन की प्राणवायु है जो उसके चैतन्य भाव की साक्षी देतीहै। संस्कृति विश्व के प्रति अनन्त मैत्री की भावना[40] है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के विचारानुसार 'आर्थिक व्यवस्था, राजनैतिक संघटन, नैतिक परंपरा और सौंदर्य बोध को तीव्रतर करने की योजना ये सभ्यता के चार स्तंभ हैं । इस इन सब के सम्मिलित प्रभाव से 'संस्कृति ' बनती है[41]'। 'जनता को विविध साधनाओं की सब से सुन्दर परिणिति को ही संस्कृति कहा जा सकता है[42]।' डा॰ नगेन्द्र के मतानुसार संस्कृति मानव जीवन की वह अवस्था है जहां उसके प्राकृत राग-द्वेषों का परिमार्जन हो जाता है[43]।

इसी तरह अन्य भारतीय विचारकों ने भी संस्कृति की अनेक परिभाषाएं दी हैं। जिन में शाब्दिक हेर फेर के होते हुए भी भावों में एकरूपता दिखाई देती है। इन विचारकों में से श्री ब्रह्मानन्द सरस्वती[44], करपात्री[45], रामधारी सिंह दिनकर[46],

---

38- भारतीय संस्कृति का विकास : पृ॰ 4

39 - कल्पवृक्ष : लेख, संस्कृति का स्वरूप , पृ॰ 4

40- कला और स्मृति : भूमिका , पृ॰ 3

41- अशोक के फूल : पृ॰ 81

42- वही , पृ॰ 63

43- साकेत : एक अध्ययन : पृ॰ 100

44- कल्याण : हिन्दू संस्कृति, अंक, पृ॰ 24

45- वही , पृ॰ 35

46- संस्कृति के चार अध्याय, पृ॰ 65 3

डा॰ सत्यकेतु विद्यालंकार,[47] राजगोपालाचारी,[48] डा॰ सम्पूर्णानंद,[49] डा॰ गुलाबराय,[50] डा॰ रामजी उपाध्याय[51] आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। भारतीय चिन्तकों की तरह हीअनेक पाश्चात्य विद्वानों ने भी कल्चर शब्द की परिभाषाएं दी हैं। जो ~~सुस्क~~ संस्कृति शब्द का पर्याय-वाचीकमाना जाता है।[52]

जेम्स हेस्टिंग्स के ~~अ~~विचारानुसार संस्कृति मनुष्य के आध्यात्मिक जीवन के विविध पक्षों को प्रकाशित करती है। इसमें देश विशेष की विभूतियों के महत्वपूर्ण विचार और भावनाएं रहती है।'[53] मैलिनोवस्की के मतानुसार 'संस्कृति में वे पदार्थ, आचार तथा शारीरिक एवं मानसिक आदतें सम्मिलित रहती हैं जो मनुष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कार्य करती है।'[54] बोगार्डस 'संस्कृति को

47- भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास, प्रथम संस्करण, पृ॰ 19, 20

48- कल्याण : हिन्दू संस्कृति अंक, पृ॰ 63

49- वही , पृ॰ 70

50- भारतीय संस्कृति की रूपरेखा , पू॰ संशोधित तथा परिवर्ध्दित संस्करण, पृ॰ 1

51- भारत की प्राचीन संस्कृति, पृ॰ 2

52- हिन्दी साहित्य कोश, पृ॰ 801

53- " The motion of culture may be broad enought to express all forms of spiritual life in a man - Intellectual Religious, Ethical -- it is best understood intensively as Humanities effort to assert its inner and independent being."
-- <u>Encyclopaedia of Religion and Ethics</u>, Vol. IV. p. 358

54- "Culture consisits of the body of Commodities and instruments as well as of customs and bodily or mental habits which work directly or indirectly for the satisfaction of human needs ."
-- Malinowski, -<u>Encyclopedia of Social Sciences</u>' p. 621-26

किसो समूह के कार्य और विचार करने को समस्त रीतियों कहते हैं '[55] ए० एफ० वाल्टर पाल "समाजशास्त्रो तथा सांस्कृतिक मानवशास्त्रियों को दृष्टि से संस्कृति समूह के उन विचारों और कार्यों का योग है जो समूह के लोगों के द्वार व्यापक रुप से स्वीकार और अनुसरण किए गए हैं'[56] मैथ्यू आर्नल्ड के मतानुसार 'अपने से संबध्द सभी विषयों के तथा सृष्टि में कथित और विचारित सर्वोत्तम के ज्ञान द्वारा पूर्ण सिध्दि-सम्पादन एवं इस ज्ञान द्वारा अपनी पूर्व संचित कल्पनाओं और अभ्यासों पर जिनका आज हम विश्वापूर्वक – किन्तु यन्त्रवत् अनुसरण करते हैं' नूतन और स्वतन्त्र चिन्तधारा का प्रवाह ही संस्कृति है ।'[57] टी० एस० इलियट के विचार में 'वह व्यक्तिगत, वर्गगत तथा जाति अथवा समाजगत होती है।''[58] परन्तु संस्कृति व्यक्तिगत नहीं हो सकती वर्ग में भी उसे सीमित नहीं किया जा सकता । वह तो

55- " Culture is all the ways of doing and thinking of a group." -- Bogardus, <u>Sociology</u>, p.35

56- "Culture, as the term is used by sociologists and cultural anthropologists, is the totality of group ways of thought and action which are widely accepted and followed by a group of people."
---A.F.Walter paul : <u>Race and culture Relation</u> p.17

57- ".....Culture being a pursuit of our total perfection by means of getting to know, on all the matters which most concern us, the best which has been thought and said in the world: and through this knowledge, turning a stream of fresh and free thought upon our stock notions and habits, which we now follow staunchly but mechanically......" --<u>Culture and Anarchy</u>:preface

58- " The term culture has different associations according to whether we have in mind the development of an individual, of a group or class, or of a whole Society."
-- <u>Notes towards the Definition of Culture</u> p.21 (Third impression)

व्यापक रूप से जाति की सम्पति है।''ई॰बी॰टेलर के विचारानुसार 'संस्कृति में ज्ञान, विश्वास, शिल्पकला, और अन्य कलाएं, नैतिकता, नियम, रीति-रिवाज, तथा वे सभी अन्य योग्यताएं समाहित हो जाती हैं जिन्हें व्यक्ति समाज का सदस्य होने के नाते ग्रहण करता है।'[59] इस विचार से स्पष्ट होता है कि संस्कृति कासम्बन्ध मानव के उन वैयक्तिक और सामाजिक कार्यों की अभिव्यक्ति है जिन के द्वारा मानवता को पशुत्व से मुक्ति मिलतीहै ।

इसी तरह अन्य पाश्चात्य विचारकों की 'कल्चर' सम्बन्धी परिभाषाएं भी मिलती हैं । जिन में अधिक से अधिक सांस्कृतिक उपकरणों का परिभाषाओं में समाविष्ट करने के प्रयत्न हुए हैं ऐसे कुछ विद्वानों के नाम उल्लेखनीय हैं ।मैरिल तथा एलरिज,[60] ए॰व्हाइट लसली,[61] गिलिन तथा गिलिन[62], क्लखोन,[63] जोसेफ पीपर,[64] ओडम,[65] एडवर्ड सपीर,[66] फिलिप बाबी,[67] जान लूइस[68], राल्फ[69] लिंटन आदि । इन सभी की परिभाषाएं सामाजिक स एवं नैतिक मूल्यों की द्योतक हैं ।

59- " Culture is that complex whole which includes knowledge, belief, art, morals, law, custom, and other capabilities acquired by man, as member of society."
--E.B.Taller, <u>Primitive Culture</u> p.1

60- Marril and Eldredge: <u>Culture and Society</u> p.42
61- -- A.White Leslie: <u>Culturological Interpretations of Human Behaviour</u> p.686-698
62- Gillin and Gillin: <u>Cultural Socialogy</u> p.139
63- Kluckhohn : "<u>The Study of Culture.</u>"
64- Joseph Peper, '<u>Liesure, the Basis of Culture</u> p.20
65- H.W.Odum: Understanding Society: <u>Principles of Dynamic Socialogy</u> p.121
66- Writing of Edward Sapir, P.314
67- <u>Culture and History</u> p.88
68- <u>Cultural Socialogy</u> p.139-140 and P.149
69- <u>The Cultural Background of personality</u> p.21

निष्कर्ष :

संस्कृति सम्बन्धी भारतीय और पाश्चात्य परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि विभिन्न विद्वानों ने अपनी अपनी परिभाषाओं में संस्कृति के विभिन्न उपकरणों, गुणों एवं प्रवृत्तियों को समाविष्ट करने का प्रयास किया है। इतिहास, मानव शास्त्रियों, समाज शास्त्रियों एवं साहित्य शास्त्रियों आदि ने संस्कृति संबन्धी विभिन्न दृष्टि-कोणों को प्रस्तुत किया है। अधिकांश परिभाषाएं परिष्कार की प्रवृत्ति, जीवन पध्दति की परंपरा और रहन-सहन आचार-विचार के तत्वों की ओर संकेत करती है। कुछ में जीवन के आन्तरिक पक्ष का उद्घाटन हुआ है। आध्यात्मिक बौध्दिक, नैतिक, उन्नति का सन्देश इन में संकलित है। अन्ततः यह कहा जा सकता है कि परिष्कृत बाह्य और आन्तरिक जीवन किसी भी संस्कृति में प्रतिबिम्बित रहता है। इसका मूल स्वर सृजन की आत्मा को ध्वनित करता है। सांस्कृतिक क्रिया पूर्णता की ओर उन्मुख रहती है। पूर्णता का सांस्कृतिक अर्थ मानव जीवन की प्रत्येक दिशा और प्रत्येक पक्ष की उन्नति वैयक्तिक पूर्णता सामाजिक पूर्णता की भूमिका है।

(च) संस्कृति तथा सभ्यता

सभ्यता और संस्कृति का घनिष्ट सम्बन्ध है। यहां तक कि एक के स्थान पर दूसरे का प्रयोग सुगमता से किया जा सकता है। साधारण बोल-चाल की भाषा में तो ये दोनों शब्द ऐसे घुले मिले हैं कि इलियट जैसे विद्वान् की यह धारणा बन गई है कि इन में पार्थक्य का प्रयत्न ही व्यर्थ है।[70] फिर भी दोनों के निश्चित पार्थक्य से इन्कार नहीं किया जा सकता। संस्कृति तत्वतः मानसिक है, किन्तु सभ्यता भौतिक और बाह्य। वस्त्र-भोजन, मकान-यान, महल-मोटर आदि सब सभ्यता के उपकरण हैं। किन्तु इनके प्रयोग की विशिष्ट रीति में संस्कृति सन्निहित है। इस प्रकार संस्कृति मानसिक विकास की सूचक है जबकि सभ्यता शारीरिक व्यापारों एवं भौतिक

70- Notes towards the Definition of Culture, p. 13 (Intro. 3rd Imp)

प्रगति को । आचार्य द्विवेदी के शब्दों में "सभ्यता समाज की बाह्य व्यवस्थाओं का नाम है, संस्कृति व्यक्ति के अन्तर के विकास का[71]।" बस यही दोनों का मौलिक भेद है — संस्कृति अपेक्षाकृत सूक्ष्म है और सभ्यता स्थूल । किन्तु दोनों का सम्बन्ध भी काफी प्रगाढ़ है। कवि-विचारक दिनकर ठीक ही कहते हैं — "संस्कृति सभ्यता की अपेक्षा महीन चीज होती है। यह सभ्यता के भीतर उसी तरह व्याप्त रहती है जैसे दूध में मक्खन या फूलों में सुगन्ध[72]।" इसी लिए इन दोनों का अस्तित्व अथवा अनस्तित्व साधारणतः एक साथ ही मिला करता है। किन्तु एक के अभाव में दूसरे का भाव असंभव भी नहीं है। हमारे प्राचीन ऋषि इसका ज्वलन्त प्रमाण है जो भौतिक उपकरणों की सभ्यता से दूर होते हुए भी संस्कृति सम्पन्न एवं संस्कृति निर्माता थे । फिर भी दोनों का सह-अस्तित्व तो मानना ही पड़ेगा । शायद इसी लिए युग्म के रूप में सभ्यता और संस्कृति का प्रयोग होता रहा है ।

(छ) संस्कृति का क्षेत्र

संस्कृति का क्षेत्र बहुत व्यापक है। "संस्कृति का विस्तार मानव के आध्यात्मिक जीवन के सभी प्रकारों - बौध्दिक, धार्मिक, नैतिक — आदि की अभिव्यक्ति में निहित है। अपने आन्तरिक और स्वतन्त्र ~~स्वत्व~~ स्वत्व के विकास में किए गए मानवता के शुभ प्रयास ही वास्तविक संस्कृति के मूल[73] है। प्रस्तुत आधार पर संस्कृति का क्षेत्र विकसित होने लगता है। 'बौध्दिक' के अन्तर्गत चिन्तन और उसके उपकरण सम्मिलित हैं, अतः जाति-विशेष का समूचा दार्शनिक और विचार-सापेक्ष साहित्य उसकी भाषा, मिथिहास, (पौराणिक मान्यताएं) धारणाएं और रूढ़ियां, शास्त्रीय ज्ञान के स्रोत,

---

71- विचार और वितर्क (निबन्ध-संग्रह) संस्करण सन् 1954, पृ. 123

72- संस्कृति के चार अध्याय, प्रथम संस्करण, पृ. 652

73- " The notion of culture may be broad enough to express all forms of spiritual life in man - intellectual, religious, ethical - it is best understood intensive by as humanity's effort to assert its inner and independent being."
—<u>Encyclopaedia of Religion and Ethics</u> Vol.(iv)

प्रतिभापुंज विद्वानों के मत आदि सब संस्कृति की परिधि में आवेष्टित हो जाते हैं। दूसरा प्रकार 'धार्मिक' है। इस में सामाजिक जीवन को नियन्त्रित बनाने और मानव-मन के प्रशिक्षणोपरान्त इच्छा, ज्ञान और कर्म के मूल विकारों के परमत्व की साधना को विशेष स्थान दिया है। अतः समाज-प्रदत्त सब विधि-निषेध कर्तव्य और सदगुण(**Duties and Virtues**)जीवन को सम्यक् सूत्रों द्वारा अनुशासित करने वाले यम-नियम, शास्त्रीय आदर्श, वर्ण - आश्रमानुकूल कर्तव्य और उनका पालना, इच्छा, ज्ञान और कर्म के मूल विकारों के परमत्व के लिए क्रमशः भक्ति-योग, ज्ञान-योग और कर्म-योग आदि को ह सुचारु स्वीकृति सब संस्कृति के अंग बन जाते हैं ।तीसरे नैतिक पहलू में मनुष्य के निम्नस्तरीय कृत्यों , वासना और शारीरिक, क्षुधा तथा पार्थिक सम्पन्नता की अभिलाषाओं का संस्कार अपेक्षित है। संभवतः इसी दृष्टि कोण से अभिभूत होकर भारतीय ऋषियों ने 'काम और अर्थ, 'के लक्ष्यों को भी संस्कृति के विस्तृत घेरे में सम्मिलित कर लिया था । वासना और कामान्धता का परिष्कार समाज की विवाह-संस्था के माध्यम से और अर्थ लोभ की निम्न प्रवृत्ति कापरिमार्जन नियन्त्रित व्यापार संस्था के द्वारा किया गया है। कामाग्नि की प्रबलता के कारण यदि अवांछित शारीरिक सम्बन्ध भी बन गए हों तो उन्हें सामाजिक मान्यता देकर गृहस्थाश्रम स्थापना का भारतीय लक्ष्य जिसमें अनुलोम, प्रतिलोम, गान्धर्व, राक्षस, पिशाच आदि विभिन्न प्रकार के विवाहों को मान्यता दी गई थी ,समाज में नैतिकता के संरक्षणार्थ ही इनका विधान किया गया था। ऐसा होने से किसी भी काम -सम्बन्ध से उत्पन्न संतति समाज का प्रतिष्ठित अंग बन जाती थी, पतित-नारी वेश्या बनने की अपेक्षा गौरवशाली जननी और आदरणीया गृहिणी हो जाती थी । अतः वर्ण, आश्रम, विवाह आदि सभी सामाजिक संस्थाएं तथा उनकी आदर्श धारणाएं संस्कृति की परिधि में शामिल हैं[74] ।''

2- संस्कृति के प्रकार

मानव के प्राकृत राग द्वेषों का परिष्कार 'संस्कृति' है। संस्कृति के प्रकारों का वर्गीकरण मुख्यतः तीन आधारों पर किया जाता है। (1)देश, (2) काल, (3)परिष्कार की मात्रा । देशगत आधार के अन्तर्गत उस के क्षेत्रीय ,प्रादेशिक, राष्ट्रीय और विश्व

74- डा॰ मनमोहन सहगल : गुरु ग्रंथ साहिब : एक सांस्कृतिक सर्वेक्षण, पृ॰ 83-84

संस्कृति आदि भेद किए जाते है।[75] कालगत आधार के अन्तर्गत प्रस्तर युग की संस्कृति, नव-प्रस्तर युग की संस्कृति तथा संस्कृति के विकास की ऐतिहासिक स्थितियों के अन्तर्गत प्राचीन संस्कृति , मध्ययुगीन संस्कृति, आधुनिक संस्कृति की गणना की जा सकती है। कभी कभी संस्कृति का विभाजन जाति, वर्ग या कुटुंब व्यवस्था के आधार पर भी किया जाता है परन्तु ये प्रकार उक्त प्रकारों में ही समाविष्ट हो जाते हैं। विशेष प्रकार लोक संस्कृति और शिष्ट संस्कृति माने जाते हैं । परन्तु इस तरह के वर्गीकरण से संस्कृति को सीमित प्रदान करना क्या उचित है ? क्योंकि यह तो मानवमात्र की वस्तुहै - अन्तर्राष्ट्रीय है। तब फिर उसके पूर्वोक्त प्रकारों के अतिरिक्त भारतीय , अभारतीय, योरोपीय, रोमन, ग्रीकआदि भेद क्यों ? आचार्य हजारी प्रसाद दिवेदी ने तो स्पष्टतः इस भेद -प्रभेद का प्रत्याख्यान किया है— ''मैं संस्कृति को किसी देश-विशेषया जाति -विशेष की अपनी मौलिकता नहीं मानता । मेरे विचार से सारे संसार के मनुष्यों की एक ही सामान्य मानव संस्कृति हो सकती हैं।[76] "आचार्य जी के उक्त अभिमत से कोई भी विद्वान असहमत नहीं हो सकता ।विश्व-जनीन एक व्यापक मानव-संस्कृति की अपेक्षा और उपयोगिता से किसी को भी इन्कार नहीं है। पर अभी तक उसका अस्तित्व नहीं है। वास्तव में जैसा कि पंडित जवाहरलाल नेहरु का विचार है —'' संस्कृतिके के कुछ राष्ट्रीय पहलू भी होते हैं । और इसमें कोई संदेह नहीं कि अनेक राष्ट्रों ने अपना कुछ विशिष्ट व्यक्तित्व तथा अपने भीतर कुछ खास ढंग के मौलिक गुण विकसित करलिये हैं ।[77] " या फिर जैसा कि महामहोपाध्याय डा• पी• के• आचार्य कहते हैं - " जिस प्रकार संसार राष्ट्रों और जातियों में विभक्त है उसी प्रकार वह विशिष्ट चरित्र और चेतना आदि से सम्पन्न संस्कृति के प्रकारों में भी विभाजित है ।[78] "

75- डा• वे• वेंकटरमण राव : रीति कालीन काव्य का सांस्कृतिक पृष्ठ भूमि, पृ• 26

76- अशोक के फूल (निबन्ध-संग्रह), प्रथम संस्करण, पृ• 77

77- संस्कृतिक के चार अध्याय : दिनकर, (प्रथम संस्करण) (प्रस्तावना) पृ• 5

78- "Just as the world is divided into nations and races, so it is divided into types and Culture, each having its distinctive character, its esprit, its talent, its tone as recognizable in a nation as in an individual."
—Glories of Indiap-5(Intro.Ed.1952)

कहने का तात्पर्य यह है कि अपने विशिष्ट दृष्टिकोण, आदर्श एवं आचार-विचारों के कारण प्रत्येक देश एवं जाति की संस्कृति में कुछ मौलिक भेद मिलेगा । इसी लिए संस्कृति को उपाधि विशिष्ट करना संभव एवं व्यावहारिक है, अध्ययन के लिए आवश्यक भी । वास्तव में भारतीय , रोमन, आर्य, मुस्लिम आदि किसी विशेषण के बिना तो संस्कृति का विवेचन ही असंभव है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी भी मानते है कि भारतीय संस्कृति और कोई भी अन्य संस्कृति (अगर संस्कृति शब्द को विशेषण बिना कहा ही न जा सके) विश्वजनीन सत्य की विरोधी नहीं हैं।[79]

3 - भारतीय संस्कृति

हम ने अभी कहा कि प्रत्येक देश अथवा जाति की अपनी अपनी संस्कृति हुआ करती है। भारतीय संस्कृति भी भारतीय जाति अथवा जनता की संस्कृति है। किन्तु भारतीय कोई जाति-विशेष थोड़े ही है। भारत तो 'महामानवेतर सागर' है। न जाने समय समय पर कितनी जातियां आई और इस महामानव समुद्र में समा गई। अनादि काल से आगमन और विलयन भारत में चलता रहा है। सभी की अपनी विकसित - अविकसित संस्कृति भी अवश्य रही होगी । उन्हीं के मिश्रण और समन्वय से भारतीय संस्कृति का निर्माण हुआ है। संस्कृति-संगम के इस पवित्र प्रयागराज में मंजन के उपरान्त दिनकर जी का यह विश्वास है कि " भारत की संस्कृति आरंभ से ही सामाजिक रही है।"[80] सोलह आने सही है। निश्चय ही भारतीय संस्कृति सच्चे अर्थों में सामाजिक है। कतिपय विद्वान् उसे आर्य अथवा वैदिक संस्कृति कहते भी सुने जाते हैं। लेकिन वह अपने विशुध्द रूप में आर्य संस्कृति नहीं हैं । भारतीय संस्कृति में अनार्यों का योगदान भी कम महत्व का नहीं है और यह दृष्टिकोण भी कोई आज की नई उद्भावना नहीं है। प्राचीनों ने भी इस तथ्य को लक्षित किया था । तभी तो वे

79- विचार और वितर्क (निबन्ध संग्रह) पृ॰ 134

80- संस्कृति के चार अध्याय , प्रथम संस्करण , लेखक का निवेदन, पृ॰ 13

अपने विचारों और आदर्शों को 'निगमागम सम्मत' कहा करते थे। "निगम का मौलिक अभिप्राय हमारी सम्मति में निश्चितया व्यवस्थित वैदिकपरंपरा से है, और आगम का मौलिक अभिप्राय प्राचीनतर प्राग्वैदिक काल से आती हुई वैदिकेतर धार्मिक या सांस्कृतिक परंपरा से है।[81] इस प्रकार भारतीय संस्कृति में वैदिकेतर तत्व भी पर्याप्त मात्रा में हैं। फिर भी उसके प्रवर्तन का अधिकांश श्रेय वेद के रचयिता आर्यों को ही दिया जाता है। लेकिन इस विषय में यह स्मरणीय है कि वे उसके संकलन कर्ता मात्र हैं, निर्माता नहीं। दिनकर जी के शब्दों में "उन्होंने मधुमक्खी का काम किया है। यह सब कहने का तात्पर्य यह है कि भारतीय संस्कृति को आर्य तथा वैदिक आदि नामों से अभिहित नहीं किया जा सकता। एक बात और वह यह कि आर्यों की सभ्यता और संस्कृति को श्रेष्ठतर मानने का विचार भी अनेक व्यक्तियों के मन में बध्दमूल है। परन्तु वास्तव में जैसा कि हुमायूं कबीर ने लिखा है कि इस दृष्टि से आर्य पूर्ववर्ती अथवा आदि भारतवासियों की तुलना में हीन थे। (उनकी विजय का कारण थाउनकाआक्रमण स्वभाव और युध्द-कौशल)।[82] परन्तु फिर भी भारतीय संस्कृति के रूप-विन्यास में आर्यों का काफी हाथ रहा है। वास्तव में उनके भारत आगमन पर ही उसको स्वरूप मिला है। 'आर्य तथा आर्येतर संस्कृतियों के मिलन से जो संस्कृति ~~बनी~~ उत्पन्न हुई वही भारत की बुनियादी संस्कृति बनी।[83]"

(क) <u>भारतीय संस्कृति की संक्षिप्त रूपरेखा</u>

भारतीय संस्कृति को प्रायः सनातन और वैदिक संस्कृति कहा गया है। इतिहास आज तक इसका उदय-काल निश्चित करने में असमर्थ है, इसीलिए भारतीय विद्वानों ने इसे अनादि मानकर 'सनातन' नाम दिया है। इसकी सर्वप्रथम अभिव्यक्ति विश्व के प्राचीन-

---

81- भारतीय संस्कृति का विकास (वैदिक धारा)--डा॰ मंगलदेव, प्रथम संस्करण, पृ॰ 8

82- " In the scale of civilization, the Aryans were perhaps inferior to the people of Mohenjodaro, but their more aggressive character and their superiority in the art of warfare gave them the victory."
--Humayun Kabir: The Indian Heritage, Intro.p.3(Ed.1955)

83- संस्कृति के चार अध्याय, (प्रथम संस्करण) लेखक का निवेदन, पृ॰ 12

तम ग्रंथ ऋग्वेद में हुई है, इस लिये इसे 'वैदिक' संस्कृति भी कहा है। क्योंकि भारतीय संस्कृति का आरम्भिक विकास सिन्धु नदी के इस ओर ही हुआ था, तथा भाषोच्चारण-भेद के कारण जब सिन्धु 'हिन्दु' कहलाया, तब से प्रस्तुत संस्कृति को हिन्दू - संस्कृति के नाम से भी स्मरण किया जा रहा है।

भारतीय संस्कृति का आरम्भिक अभिलेख हमें वैदिक-साहित्य में प्राप्त है। इसमें वैदिक-संहिताएं, ब्राह्मण-ग्रंथ, आरण्यक , उपनिषद् तथा सूत्र साहित्य सम्मिलित हैं। चारों वैदिक-संहिताओं में मनुष्य की आनन्दवादी अभिवृत्ति तथा प्राकृतिक शक्तियों की प्रशस्ति दी गई है। ब्राह्मण-ग्रंथों एवं आरण्यकों में कर्मकाण्ड तथा कुछ वैधी-भक्ति का चित्रण है , उपनिषद् ज्ञानकाण्ड या 'सत्य' का चिन्तन प्रधान खोज के परिचायक हैं तथा उपनिषदों की लम्बी व्याख्याओं को सूत्र-साहित्य में सूत्र रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस साहित्य में भारत के आध्यात्मिक विश्वासों, देवी-देवताओं, राजा और राज्यों, राजनीतिक और आर्थिक संस्थाओं, नीति और न्याय, नियम और निषेध, कृषि और व्यापार , व्यवसाय और उद्योग, कर और नागरिक जीवन, सामाजिक संस्थाएं — जाति-भेद, विवाह, परिवार, स्त्री की स्थिति — नैतिक जीवन और उसके लिए निश्चित धर्म, यम और नियम आदि तत्व भी उपलब्ध होते हैं। जीवन-लक्ष्य, आत्मा की अमरता, और अपरिमित तत्व की खोज के सम्बन्ध में भी वैदिक - साहित्य मौन नहीं हैं। भारत की शिक्षण-पध्दति , प्रकृति-प्रेम और निसर्ग सम्बन्धी पर्वोत्सवों का भी विशद परिचय ब्राह्मण-ग्रंथों और आरण्यकों में मिलताहै । अभिप्राय यह कि भारत की उन्नत संस्कृति का प्रारम्भिक रूप, जो वैदिक -साहित्य में द्रष्टव्य है, वह सम्पूर्ण, स्थिरऔर सक्रिय है। उसमें उदारता, संग्राहकता और परता को भी आत्मसात् कर लेने की शक्ति विद्यमान है। यहां तक कि वर्ग-भेद की उपस्थिति में भी नीचे वर्गों के साथ घृणा और संकीर्णता का वातावरण बाद की उपज है, सैध्दांतिक स्तर पर ऐसी कोई चर्चा उपलब्ध नहीं । ऋग्वेद में तो अतिरिक्त पुरुष-सूक्त के एक पद के, केवल तीन ही वर्गों की चर्चा है। श्री डी • आर • भण्डारकर[84] के अनुसारशुद्र शब्द

84- D.R.Bhandarkar: <u>Some Aspects of Ancient Indian Culture</u> p.10

डा • मनमोहन सहगल : गुरु ग्रंथ साहिब एक सांस्कृतिक सर्वेक्षण , पृ • 9। से उद्धृत

मूलतः विदेशी या अनार्य के लिए प्रयोग होता था । उनका कथन है कि इस में नि निश्चय हा कोई सन्देह नहीं कि शूद्र आर्यों की तुलना में धर्म, आध्यात्मिक नियमों तथा सम्पति आदि के क्षेत्र में विदेशा थे । आर्यों में केवल तीन ही वर्ग थे, चौथा वर्ग बाद में सम्मिलित किया गया । अनार्य जाति के जो लोग युध्दों में पकड़ लिए जाते थे, शुद्ध शुद्र बना लिए जाते थे । ऋग्वेद के पुरुष-सूक्त तथा अन्य संहिताओं में भी सम्भवतः इन्हीं शूद्रों की ओर संकेत किया गया है।[85] यह तो बाद में मनुस्मृति के लेखक ने भारतीय समाज के प्रचलित नियमों को स्थिरता प्रदान करने के लिये जाति-भेद का बहुचर्चित रुप प्रस्तुत किया। वैदिक-संहिताओं में ऐसा कहीं नहीं हैं। डा॰ मूइर (Dr.Muir)[86] ने मूल संस्कृत पाठों के अनुवाद एवं डा॰ मैक्समूलर ने अपनी रचनाओं में ऐसा स्पष्ट अक्ष स्वीकार किया है। हां यह सर्व-मान्य है कि समय के बीतने के साथ - साथ वैदिक महानता धीरे धीरे गलित-सी होने लगी थी, मनु ने कट्टरता काआश्रय लेकर संस्कृति के उदार-तत्व को कुछ आघात भी पहुंचाया था और क्रिया की प्रतिक्रिया होना स्वाभाविक हो गया था ।

धीरे-धीरे ऐसा समय आया कि वेदों की प्रामाणिकता पर ही सन्देह होने लगा। भारत में बुध्द और महावीर के अवतरण से बुध्दमत और जैनमत का उदय हुआ । महात्मा बुंध्द ने जीवन के सुचारुवहन के लिए चार-परम-सत्यों सत्यों का उद्घाटन किया और आठ सम्यक् व नीति मार्गो का दिग्दर्शन करते हुए अपने अनुयायियों को उन पर चलने के लिए प्रेरित किया। महात्मा महावीर ने 'अहिंसा परमाधर्मः' का नारा लगाते हुए प्रकृति और जीव के तादात्म्य में निर्वाण खोजने की प्रेरणा दी । इन दोनों मतों ने वेदों तथा उनमें बताए कठिन पथ का विरोध किया। अतः वे लोग जो जाति-भेद की कट्टरता एवं जीव-बलि आदि से तंग आ गए थे , इन व दोनों मतों में सम्मिलित हो गए ।

काल ने अवसर पाकर इन्हें भी निगलना चाहा। इनमें भी तान्त्रिक और वज्रयानी शाखाएं पैदा हो जाने से नीति और शान्त सामाजिक जीवन का गला दबने लगा। बुध्द

85- Shri Bahadur Mal: <u>A story of Indian Culture</u> p.41

86- <u>Original Sanskrit Texts</u>, Vol.V.p.452

डा॰ मनमोहन सहगल : गुरु ग्रंथ साहिब एक सांस्कृतिक सर्वेक्षण, पृ॰ 92 से उद्धृत

का मध्यम-मार्ग अकस्मात् शुध्द विरक्ति को ओर आकर्षित हो गया। श्रमण-श्रमणियों का जीवन पवित्र न रह सका। राज्याश्रय मिल जाने से ये दोनों मत खूब प्रचलित और विकसित हुए । बुध्द मत तो देश की सीमाओं से बाहर भी प्रसारित हुआ, इन मतों के प्रचारक विरक्त साधुओं द्वारा राज्य और राज्याधिकार में अनुचित हस्तक्षेप के कारण जन-मन शीघ्र ही इन के आदर्शों और संस्कारों से तंग आ गया। अतः भारत में एक ओर शैवमत तथा विष्णुमत का पुनरुदय होने लगा तथा दूसरी ओर बुध्द और जैनमत का पतन आरंभ होगया । काल क्रमानुसार बुध्दमत के पांव भारत से पूर्णतः उखड़ गए, जबकि जैनमत काप्रसार सीमित परन्तु गहराई ~~म~~ में होने के कारण यहां बराबर बना रहा ।

शैव और वैष्णव भक्ति पंथ तत्कालीन भारत में सम्ग्रतः प्रसारित तथा प्रचारित हुए। शैव सम्प्रदाय को तो अति प्राचीन बताया जाता है। मोहनजोदड़ों की खुदाई में प्राप्त एक मूर्ति शि-रूप की पुरातन कल्पना ही है। बाद में वैदिक देवता रुद्र से शिव का तादात्म्य स्थापित किया गया, अतः शैव मत ~~के~~ बीज भारतीय संस्कृति के पुंसवन में मौजूद कहे जाने चाहिए। वैष्णव मत ने विभिन्न रूपों में भारत में चतुर्दिक प्रभाव जमाया और जनता की डगमगाती नैया को भक्ति की ऐसी पतवार प्रदान की, कि बौध्द तान्त्रिकों से सभीत मानवता आध्यात्मिक अव्यवस्था के तूफानों में भी ~~किन~~ किनारा खोज लेने की आशा करने लगी । क्रमशः वैदिक धर्म हिन्दू धर्म बन गया और जाति -वाद के चमत्कारपूर्ण विकास में ब्राह्मण-वर्ग ने उच्चतम महत्व ~~प्र~~ अर्जित कर लिया। समाज ने ब्राह्मणों को अति विस्तृत अधिकार दिए और राज्य में जहां पहले श्रमणों और उनकी सम्मतियों का बोल-बाला था , अब ब्राह्मणों ने सत्ता जमा ली। इस युग का सांस्कृतिक स्वरूप रामायण और महाभारत में उपलब्ध है। इन दोनों महाकाव्यों में कथा के अतिरिक्त शैवमत एवं वैष्णवमत की दार्शनिक और नीतिजन्य विचारधारा, देवी,-देवताओं की पुराण-कथाओं, तत्कालीन कलाओं, आध्यात्मिक पृष्ठभूमि, ज्ञान-विज्ञान एवं सामाजिक आदर्शों के चित्रण मिलते हैं । रामायण इस युग की पूर्वस्थिति पर प्रकाश डालती है तो महाभारत उत्तर-स्थिति पर। रामायण के आदर्शों और महाभारत ~~म~~ में

चित्रित पतित सामाजिक स्थिति से हम सहज में ही तत्कालीन समाज का अध्ययन कर सकते हैं। रामायण और महाभारत , दानों महाकाव्यों में जीवन के लक्ष्यों – काम, अर्थ, धर्म और मोक्ष – का महत्व स्थापित किया गया है। तत्कालीन नैतिक-आदर्शों, वर्णाश्रम एवं सामान्य धर्मों, प्रवृत्ति और निवृत्ति, संन्यास और कर्मक्षेत्र आदि का समूचा चित्र इन दोनों काव्यों में उपलब्ध है। इन्हीं काव्यों के माध्यम से उस युग के सौंदर्य-बोध, जीवन-विवेक, भाषा, वस्तु और संगीत का परिचय मिलता है।

महाकाव्य-काल के बाद भारतीय संस्कृति में एक लम्बे समय तक सर्वांगीण उन्नति हुई है। एक ओर दर्शन के क्षेत्र में छः महान् शास्त्रों की रचना हुई, तो दूसरी ओर गुप्तकाल में संस्कृत भाषा में उत्कृष्टतम रागात्मक साहित्य की रचना होने लगी । कालिदास और उसके समकालीन लेखकों ने भारत और भारत की आत्मा को काव्यात्मक माध्यम से चित्रित किया है। अश्वघोष और भास, शूद्रक और विशाख-दत्त, कालिदास और भवभूति आदि महान् नाटककारों ने क्रमशः धार्मिक , राजनीतिक और शास्त्रीय नाटकों की रचना की । कथा साहित्य में 'बृहत्कथा', 'कथा-सारित्सागर', 'शुक-सप्तशती' आदि महान् रचनाएं प्रकाश में आईं । नई पुराण-कथाएं बनी, नया जीवन दर्शन उदित हुआ और कुछ क्षेत्रों में केवल काम और अर्थ के लक्ष्यों को ही अपना-कार चार्वाक दर्शन सरीखे नास्तिक सिध्दांतों का प्रतिपादन किया गया। यह निश्चय ही भारतीय राज्य-संस्था , दर्शन, साहित्य एवं कला के क्षेत्रों में स्वर्ण-काल था । वास्तु और मूर्ति-कला अपने यौवन पर थी, बड़े बड़े चक्रवर्ती राजाओं के सुप्रबन्ध में भारत निर्भीक मन से सांस्कृतिक और रानीतिक उन्नति कर रहा था । इस युग में भारत की यात्रा करने वाले विदेशी घुमक्कड़ों ने देशकी लाखें सांस्कृतिक विशेषताओं का संकेत किया है। भारत का व्यापार भी इन दिनों चरमोत्कर्ष पर था, देशमें ऐश्वर्य और सम्पन्नता दिनों-दिन बढ़ रहा था – लोग कहने लगे थे कि यहां घी-दूध की नदियां बहतीथी ।

भारत के इसी वैभव को देखकर उत्तरी सीमाओं से पार के लोग ईर्ष्या से जल उठे थे । उन्होंने देश की सम्पन्नता से हाथ रंगने के लिए उस पर आक्रमण करने आरंभ रि दिये । शकों और हूणों ने कई आक्रमण किए, उन्हीं की देखा-देखी बाद में उत्तर-पश्चिम से आक्रमण होने लगे । शक और हूण तो केवल धन और

और स्त्रियों का ही ~~करण~~ हरण करते थे, मुसलमानों ने इन दोनों लक्ष्यों के साथ-साथ भारत के सांस्कृतिक-केन्द्रों को भी विध्वस्त करना शुरु कर दिया । नालन्दा सरीखे महान् संस्कृति - केन्द्र धूल में मिला दिए गए । बड़े बड़े पुस्तकालयों और साहित्यिक निधियों को जला ~~दिया~~ कर राख कर दिया गया। आध्यात्म-शिक्षा के मठ और मन्दिर धराशायी हुए ; कला को कुफ्र का फतवा देकर मूर्तियां तोड़ दी गईं, भव्य प्रासाद नष्ट कर दिए गए और चित्रकारों की होली जलाई गई। इस प्रकार चिन्तन, ज्ञान और कला के केन्द्रों का अन्त हो जाने से देश सांस्कृतिक दृष्टि से निर्धनहोग~~या~~ गया। परन्तु उसका पूर्व-अर्जित बल इतना अधिक था कि उसने आक्रमणकारियों को अपनी स्थिति पर विचार करने को विवश कर दिया । भारतीय संस्कृति की समन्वय-शक्ति के सम्मुख उनका पशु-बल झुक गया औरवे अन्ततगत्वा देश-वासियों का अंग बन कर रहने तथा देश के रीति-रिवाजों के सांचे में अपने को ढालने लगे । उनकी निजी संस्कृति के सब तत्व भारतीय संस्कृति में दूध-पानी की समान मिल गए। भारतीय संस्कृति का आदर्श था 'चरैवेति, ~~और~~ 'चरैवेति', और वह मार्ग की बाधाओं को संगिनी बनाकर आगे चल दी । मुगल-कालीन संस्कृति समन्वय का एक अनुपम उदहरण है ।

उक्त समन्वय में भारतीय संस्कृति को कुछ खोना ही पड़ा, तथापि भारत के कोने- कोने में भक्ति आन्दोलन का उदय असका पुरस्कार था। पंजाब में ~~गु~~ गुरु नानक इस भक्ति आन्दोलन के कर्णधार बने। उनके पश्चात् उनकी गद्दी पर आसीन होने वाले अन्य नौ गुरुओं ने (जिनका इतिहास हम पीछे दे आये है) अपने मत का प्रचार ही नहीं किया अपितु भारतीय संस्कृतिक संरक्षक बन कर अपना अद्भुत योगदान दिया है। इसी की कहानी गुरु प्रताप सूरज में अंकित है। अठारहवीं उन्नीसवीं शती में पाश्चात्य जातियों का भारत में आगमन और उनके द्वारा कूटनीति पूर्ण ढंग से शिक्षा-पध्दति को परिवर्तित कर भारतीय संस्कृति को क्षति पहुंचाने का प्रयास भारतीय आत्मा के आचरण'विचार, वेष-भूषा, रुचियों, लक्ष्यों और चिन्तन प्रविधि को दूषित करने मेंसमर्थ हुआ । भारत धीरे-धीरे अपनी संस्कृति की अपेक्षा करके पाश्चात्य रंग में रंगा जाने लगा। भारतीयों में दास मनोवृत्ति अंकुरित और पोषित

होने लगा। जनता समयानुसार अंग्रेजी भाषा के माध्यम से शिक्षित होने के कारण शंकर और उद्दालक को भूलकर प्लाटो और काण्ट का गुण गाने लगी ; बाल्मीकि और व व्यास का बजाय मिल्टन और शेक्सपीयर ही उनक रसना पर रह गए। यह अपने का विरोध और पराए का अन्धानुसरण, भारतीय संस्कृति के पतन का कारण तो बना, परन्तु साथ ही देश-वासियों म में अन्ध श्रद्धा का अपेक्षा विवेक और युक्ति युक्तिपूर्ण चिन्तन के प्रति लगाव भी बढ़ने लगा । छिपे वरदान के रूप में सुशिक्षित लोगों का नई चिन्तन-पध्दति ने, पूर्वक्रिया का प्रतिक्रिया के परिवेश में, पाश्चात्य कूटनीति को पहचान लिया और देश में कई धार्मिक आन्दोलनों का उदय हुआ। राजा राम मोहन राय ने 'ब्रह्मसमाज' की स्थापना की (1828); श्री केशवचन्द्र सेन ने 'भारतीय ब्रह्म-समाज' का संगठन किया (1866) ; महाराष्ट्र में 'प्रार्थना -समाज' स्थापित हुई (1867) स्वामी दयानन्द के चरण चिन्हों पर 'आर्य समाज' का आन्दोलन चला (1875); मादाम ब्लेवात्स्की के प्रयत्नों से 'थीओसाफिकल सोसाइटी' का निर्माण हुआ (1882); स्वामी विवेकानन्द ने 'रामकृष्ण मिशन' स्थापित किया (1897) तथा पंजाब में स्वामी देवात्मा ने देवसमाज' का संगठनकिया । इनमें आर्य समाज ने शुध्द वैदिक संस्कृति का प्रसार करना आरंभ किया, थ्रीओसाफिकल सोसाइटी ने हिन्दू आध्यात्मिकता के रहस्यवादी रूप को महत्व दिया और रामकृष्ण मिशन ने अद्वैत चिन्तन को पुनर्स्थापित किया। ब्रह्मसमाज मध्यम पथगामी रहा और देवसमाज ने जीवन कोवैज्ञानिक प्राकृतिक नियमों पर आश्रित करके नैतिक बन्धनों की चर्चा को प्रमुखता दी। इस प्रकार ये सभी आन्दोलन किसी न किसी रूप में भारतीय संस्कृति के पुनर्जागरण का आधारबने। सम्मान की भावनाएं बढ़ गईं, उन में दासता के विरोध की प्रवृत्ति जगी और वे स्वातन्त्र्य संग्राम में ह जूझने को मन से तैयार हुए। उन्होंने अतीत के गौरव, महापुरुषों के चिन्तन और उ उपदेश तथा राष्ट्र-वादी संस्कारों को अपनाकर जीवन के एक नए रूप की कल्पना करनी शुरु की । यह ठीक है कि अब भी उन्होंने पाश्चात्य वेश-भूषा, रुचियों, वैज्ञानिक सुविधाओं आदि के प्रति मोह नहीं छोड़ा, परन्तु नव-पध्दति में शिक्षा पाने के कारण भारतवासी संस्कृति के राष्ट्रीय रूप की कल्पना करने लगे थे । बाल गंगाधर तिलक ने गीता के निष्काम

कर्म को कर्मयोग के रूप में चित्रित कर उन्हीं दिनों एक नए सांस्कृतिक दृष्टिकोण की और संकेत किया था, बाद में गांधी जी ने भी उसी विषय को लेकर अनासक्ति योग की रचना की थी परन्तु आधुनिक शिक्षा के प्रभाव में पोषित भारतीय सन्तानें अभी कर्म के महत्व को नहीं समझ पा रहा है। उन्होंने अपने को परंपराओं का रूढ़ियों से बहुत कुछ मुक्त कर लिया है, किन्तु वे यह आवश्यकता अनुभव ~~करते~~ नहीं करती कि देश की प्रगति के लिए नए स्वस्थ विश्वासों और परंपराओं का निर्माण किया जाय[87]। इसी अभाव को देखते हुए डा० वासुदेव शरण अग्रवाल ने लिखा था -'इस देश की संस्कृति की धारा अति प्राचीन काल से बहती आई है। हम उसका सम्मान करते हैं, किन्तु उसके प्राणवंत तत्व को अपनाकर ही हम आगे बढ़ सकते है। उसका जो जड़ भाग है, उस गुरुतर बोझ को यदि हम ढोना चाहें तो हमारी गति में अड़चन उत्पन्न हो सकती है। निरन्तर गति मानव-जीवन का वरदान है। व्यक्ति हो या राष्ट्र 'जो एक पड़ाव पर टिका रहता है, उसका जीवन ढलने लगता है। इस लिए चरैवेति, चरैवेति की धुन जब तक राष्ट्र के रथ-चक्रों में गूंजती रहती है, तभी तक प्रगति और उन्नति होती है, अन्यथा प्रकाश और प्राणवायु के कपाट बन्द हो जाते है और जीवन रुँध जाता है। हमें जागरूक रहना चाहिए, ऐसा न हो कि 'हमारा मन परकोटा खींचकर आत्म-रक्षा को साध करने लगे।[88]' अतः आज की सर्व-प्रमुख आवश्यकता है कि हम अपने देश के अतीत तथा यूरोप के वर्तमान, दोनों के प्रति उचित आत्म-विश्वास एवं विवेक के साथ संतुलित प्रतिक्रिया करें, और दोनों की जीवन-दायिनी परंपराओं से प्रेरणा लेते हुए सजग साहस से आगे बढ़ें[89]। अतीत को केवल अतीत समझकर ही त्याग देना, या पाश्चात्य को मात्र नवीन जान कर अपना लेना कोई सांस्कृतिक विशेषता नहीं है। हमें दोनों में समन्वय करना होगा, जीवन-मूल्यों के यथार्थ रूप को पहचानना होगा, तभी हम अपेक्षित मंजिलों के

87- डा० देवराज : भारतीय संस्कृति, पृ० 197

88- डा० वासुदेव शरण अग्रवाल : कल्पवृक्ष (संस्कृति का स्वरूप) पृ० 26

89- डा० देवराज : भारतीय संस्कृति, पृ० 207, डा० मनमोहन सहगल : गुरु ग्रंथ साहिब : एक सांस्कृतिक सर्वेक्षण, पृ० 96 पर उद्धृत ।

सर्जन और उपभोग की क्षमता प्राप्त कर सकते हैं। जीवन-मूल्यों को समादृत करने की ऐसी कर्मठता, अनासक्त उपभोग और मानव-वादी नवीन दृष्टिकोण, ये सब मिलकर ही सही अर्थों में आधुनिक संस्कृति को साकार करने में समर्थ हैं ।

(ख) भारतीय संस्कृति की विशेषताएँ

मैक्समूलर ने लिखा है, 'यदि मुझ से पूछा जाय कि संसार में मानव-मन ने मानवता के उत्कृष्टतम मूल्यों तक पूर्ण विकास कहां प्राप्त किया है, जीवन की महत् समस्याओं पर गहराई से चिन्तन किया है, और उन में से कुछेक का, जोकि प्लाटो और काण्ट का अध्ययन करने वालों के आकर्षण का केन्द्र होना भी स्वाभाविक है, समाधान भी खोज निकाला है, तो मैं केवल भारत की ओर संकेत करूँगा । और यदि मैं अपने से यह प्रश्न करूँ कि योरुप में रहते हुए हमें – हम , जोकि पूर्णतः यूनानी, रोमन तथा एक सेमेटिक जाति यहूदियों की विचारधारा पर पोषित हैं – अपने आन्तरिक जीवन को समग्रता प्रदान करने, सारपूर्ण तथा सार्वलौकिक बनाने, बल्कि सच्चे अर्थों में मानववादी तथा इह-जन्मेतर अपरिमित जीवन-लाभ करने के लिए किस साहित्य से विशुद्ध मार्ग-दर्शन प्राप्त करना चाहिए, तो मैं पुनः भारत की ही ओर इंगित करूँगा[90] । भारत और भारतीय साहित्य एवं इतिहास का प्रकाण्ड अनुसंधित्सु होने के नाते मैक्समूलर का यह कथन भारतीय संस्कृति की महानता और सामर्थ्य का परिचायक है।

युग युग से भारतीय संस्कृति को मानव-संस्कृति के नाम से स्मरण किया जाता है। प्रत्येक बाल-वृद्ध वर्ग और जाति की आवश्यकताओं का समाधान इसमें उपलब्ध है; इसी लिए बाहियों विदेशी आक्रमणों, अनेक विरोधी आन्दोलनों और असंख्य विचार-धाराओं के उद्भव तथा के होते हुए भी भारतीय संस्कृति सदैव सार्वलौकिक तथ्यों पर आश्रित रही है और बिना किसी बलात् प्रयत्न के, बाहरी आगन्तुक स्वयमेव इसमें निजी धारणाओं सहित समाविष्ट होते रहे हैं। इस संस्कृति को हजारों वर्षों से कोई राज्याश्रय प्राप्त नहीं तो भी यह चिर-जीवी और दीर्घ-प्रभावी है। आध्यात्मिकता, दार्शनिकता, अमरता, उदारता, आस्तिकता, धार्मिक सहिष्णुता, समन्वय भावना, संग्राहकता , सर्वभूतहिताकांक्षा आदि इसके प्रमुख गुण हैं ।

90- Max Muller: India, <u>What can it Teach us</u>? p.6

4 - काव्य में सांस्कृतिक अभिव्यक्ति

काव्य संस्कृति का वाहक एवं व संरक्षक होता है। उसमें राष्ट्र की सांस्कृतिक उपलब्धियों का प्रामाणिक आलेख होताहै। अपने स्वरुप और प्रेरणाओं के लिए वह संस्कृति का ऋणी भी होता है। दोनों की प्रक्रियाओं मेंसमानता भी एलकती है। काव्य और प्रकृति की सृजनात्मकता की भान्ति संस्कृति को सृजनात्मक माना जाता है। प्रकृति और अध्यात्म के सामंजस्य से पूर्ण संस्कृति को क्षेत्र हो जीवन के सौंदर्य और आनन्द के स्वर्ग का कल्पनकानन है। मानवीय साधना के इस कल्प क कानन में कला की कल्पनाएं और काव्य के कल्प वृक्ष फलते हैं । संस्कृति की सृजनात्मक और परंपरा में आध्यात्म का निरपेक्ष सत्य साकार और सजीव होकर मान मानवीय जीवन की अमृत विभूति बनता है ।

आध्यात्म और प्रकृति का सामंजस्य होते हुए भी संस्कृति सृजनात्मक है और इस दृष्टि से इन दोनों से विलक्षण है। इस रुप में अध्यात्म और प्रकृति के समन्वय से सम्भूत होने पर भी संस्कृति एक मौलिक सत्य के रुप में प्रकट होती है। सृजनात्मकता इस सत्य का मिन निगूढ़तम रहस्य है। संस्कृति के इस सृजन के उपकरण और संभवतः इस सृजन की क्रियात्मक गति प्रकृति से प्राप्त होती है। प्रकृति जीव का अनिवार्य उपकरण है। अध्यात्म मनुष्य के स्वतन्त्र अध्यवसाय का सर्वोच्च रुप है। संस्कृति में जीवन की इन धारणों का संगम होता है। प्रकृति की धरती और अध्यात्म के आकाश के उदार क्षितिज पर ही संस्कृति के इन्द्र धनुष जीवन के स्वर्ग बन्दनवार रचते हैं तथा संस्कृति की सरस रंजित मेघमालाएं जीवन की अर्चना करती है ।

भारतीय कवियों की रुचि का निर्माण अध्यात्म, धर्म और संस्कृति के उदार संस्कारों से हुआ है। अतः उन्होंने इन्हीं तत्वों को अपनी काव्य कृतियों में अभिव्यक्ति की है।भारतीय संस्कृति की उदात-भावनाओं का आख्यान उनकी रचनाओं की महनीय विशेषता है।भारतीय काव्यों आदि ग्रंथों, रामचरित मानस, दशमग्रंथ आदि में भारतीय संस्कृति की धार्मिक , नैतिक और सामाजिक परंपराओं का ग्रहण पर्याप्त रुप में हुआ है। 'गुरु प्रताप सूरज' भी इसी कड़ी का महिमा मंडित काव्य है जिस में भारतीय संस्कृति के अंग भूत सभी विषयों एवं तत्वों का अनुपम निरुपण एवं अभिव्यक्ति हुई है।

5- सांस्कृतिक अध्ययन को लोक प्रियता

उन्नीसवीं शताब्दि ने वस्तु दर्शन का एक वैज्ञानिक दृष्टि प्रदान की । समाज विज्ञान एक नवीन पध्दति से मानव की सामाजिक स्थिति और उसके सम्बन्धों का अध्ययन करने लगा । मानव की उपेक्षित परंपराएं भी उसका ध्यान आकर्षित करने लगी । इन परंपराओं में आधुनिक युग के दृष्टा को न जाने कितनी मूल्यवान सामग्री मानव के इतिहास को नवीन और यथार्थ रूप देने के लिए दिखलाई पड़ने लगी । साथ ही समाज का मानव विज्ञान के विविध विषय परस्पर विच्छिन्न न रह कर एक दूसरे के पूरक हो गये । परस्पर संबध्द होकर ये मनुष्य के विकास क्रम का पूर्ण चित्र प्रस्तुत करने लगे । नृविज्ञान के अध्ययन में साहित्य और लोक साहित्य का, साहित्य के अध्ययन में संस्कृति और समाज ~~ष~~ शास्त्र का , इतिहास के अध्ययन में लोकवार्ता का प्रयोग होने लगा। इसी प्रकार अन्य विषय भी एक दूसरे से संबध्द होकर पूर्ण सत्य के अन्वेषण की साधना को नवीन दिशा प्रदान करने लगे । फलतः मिश्रित पध्दति के अनेक अध्ययन हमारे सामने आये । अतीत दर्शन के प्रति दृष्टि का विकास हुआ ।

इसी शताब्दि में संस्कृति शब्द बहुत व्यापक हुआ । जीवन के प्रत्येक क्षेत्र की विशिष्ट संस्कृति की खोज हुई । इतिहास के लेखकों ने भी स्थूल घटनाओं के विवरण को लक्ष्य न मान करउनके द्वारा एक युग विशेष की संस्कृति का उद्घाटन करना ही अपना साध्य माना। संस्कृति का अध्ययन भी अन्य उपलब्धियों के संदर्भ में होनें ~~लगा~~ लगी। वैज्ञानिक विकास ने संस्कृति को किस तरह प्रभावित किया है, यह देखा जाने लगा । इस प्रकार संस्कृतिक ने विभिन्न अध्ययनों को प्रभावित किया। सांस्कृतिक ~~अध्य~~ अध्ययन की लोक प्रियता इतनी बढ़ी कि अध्येता वन्य और आदिम जातियों की ओर गया और उसकी संस्कृति की उसने खोज की । दुर्लध्य सीमाओं में घिरे हुए देशों में भी संस्कृति काविद्यार्थी गया । संस्कृति की खोज भाषा, साहित्य, लोकवार्ता जैसे अनेक विषयों के माध्यम से हुई ।

संस्कृति या सांस्कृतिक पध्दति के अध्ययन को लोकप्रियता मिलने का कारण मनुष्य का भौतिक दृष्टि का विकास हो सकता है। पूर्व युगों में मनुष्य के अध्ययन की पध्दति

दार्शनिक या रहस्यवादी रही ।मनुष्य उसके स्रोत और उसके उसके आध्यात्मिक स्वरूप का ही चिन्तन करने लगा। भौतिक विज्ञान की उन्नति ने मनुष्य की दृष्टि को बदला और रहस्यवाद के नाम पर मानव मन और अन्तर्मन के रहस्यपूर्ण चेतना स्तरों का अध्ययन एक ओर प्रबल हुआ और दूसरी ओर उसके आर्थिक प्रयत्नों और तत्सम्बन्धी अधिकार बोध का अध्ययन समाजवाद की भूमिका से होने लगा। इस प्रकार समस्त अध्ययनों के केन्द्र में समाज स्थित मनुष्य हो गया । इस दृष्टि परिवर्तन ने मनुष्य के भौतिक जीवन के समस्त पक्षों का उद्घाटन करना ही अपना लक्ष्य बनाया। जैसे संस्कृति के व्यापक अर्थ में मनुष्य की आध्यात्मिक प्रक्रियाएं भी सम्मिलित कर ली जाती है।पर अधिक बल उसके भौतिक जीवन और उसकी उपलब्धियों पर ही दिया जाता है। धर्म वैसे मनुष्य के व्यवहार पक्ष से संबध्द होता है।पर उसकी मूल प्रेरणाएं आध्यात्मिक ही रहती है। इस लिए धार्मिक दृष्टि इस युग में दुर्बल हो गयी ।संस्कृति ने इन सभी को अपने में समेट कर एक व्यापक विषय के रूप में अपनी प्रतिष्ठा की ।

6 - काव्य के सांस्कृतिक अध्ययन का दृष्टिकोण

काव्य में सांस्कृतिक एवं परंपरा से प्राप्त संस्कारों पर सामूहिक रूप में विचार किया जाता है। कवि की कृति की वस्तु और अभिव्यक्ति सांस्कृतिक परिवेश का उल्लघंन नहीं कर सकती । मोटे रूप में सांस्कृतिक अध्ययन किसी कवि की किसी विशिष्ट रचना का भी हो सकताहै और साहित्य की किसी प्रवृति का भी सांस्कृतिक दृष्टि से विवेचन किया जा सकता है। यहां महाकवि सन्तोख सिंह की विशिष्ट रचना 'गुरु प्रताप सूरज' का सांस्कृतिक अध्ययन प्रस्तुत करना ही हमारा प्रयोजन है। ऐसे सांस्कृतिक अध्ययनों की उपयोगिता पर प्रकाश डालते हुए डा॰ हजारी प्रसाद द्विवेदी काकथन अवलोकनीय है :-" ..... ग्रंथों के आधार पर जनता की रहन-सहन ,खान-पान, वेष-भूषा, धार्मिक जीवन, विश्वास, सौंदर्य कला संबंधी चेतना, नृत्य, नाटक, गान, उत्सव, आनंदोल्लास खेतीबाड़ी, रोजगार, विभिन्न प्रकार के पेशे आदि का जो स्वरूप उद्घाटित होता है वह केवल उस काल के लिए ही महत्वपूर्ण नहीं जिसकाल में वे लिखी गई, बल्कि उसके परवर्ती काल के इतिहास को भी स्पष्ट करने में ये पुस्तके सहायक होती है।"[91]

91- डा॰ हजारी प्रसाद द्विवेदी : राष्ट्र कवि अभिनन्दन ग्रंथ, पृ॰ 942

इस प्रकार के अध्ययन में उद्देश्य साहित्य का अध्ययन न होकर सांस्कृतिक इतिहास का अध्ययन होता है। किन्तु यह भी इस प्रणाली से स्पष्ट होता है कि तत्कालीन रहन-सहन और सांस्कृतिक उपकरणों ने काव्य में किस सीमा तक प्रवेश किया है। यह एक तथ्यात्मक विवरण बन कर रह जाता है। दूसरी प्रणाली वह है जो इस प्रकार के अध्ययन से प्राप्त तथ्यों का काव्य के सौंदर्य विधान में योगदान का मूल्यांकन करती है । इस काल को भी डा॰ द्विवेदी जी ने अन्यत्र यों स्पष्ट किया है:-

'' आर्थिक व्यवस्था, राजनैतिक संघटन, नैतिक परंपरा और सौंदर्य बोध को तीव्र करने की योजना ये सभ्यता के चार ~~सं~~ स्तंभ हैं । इन सब के सम्मिलित प्रभाव से संस्कृति बनती है[92] ।''

इन दोनों उध्दहरणों को देखने से स्पष्ट होताहै कि सामाजिक जीवन से संबन्धित गति-विधियों, आचार-व्यवहारों आदि सभी तत्वों का काव्यगत अध्ययन ही काव्य का सांस्कृतिक अध्ययन है। इसी लिए एक अंग्रेजी विद्वान[93] ने लिखा है कि ऐतिहासिक और सामाजिक आलोचनाओं से संबन्धित आलोचना को, जिसका सम्बन्ध सांस्कृतिक व्यवहारों से है, सांस्कृतिक आलोचना कह सकते हैं । इसी को दूसरे शब्दों में सांस्कृतिक अध्ययन कह सकते है।

साहित्य के सांस्कृतिक अध्ययन के दो मार्ग है। प्रथम साहित्य के माध्यम से संस्कृति का अध्ययन है। इस तरह के अध्ययन में पुरातत्व और अन्य साधनों से जिस प्रकार इतिहास लिखा जाता है उसी प्रकार साहित्य में प्रयुक्त सांस्कृतिक तथ्यों के आधार पर तत्कालीन संस्कृति को सिध्द किया जाता है। पाणिनी कालीन भारत[94], रामायण कालीन समाज[95], कालिदास कालीन भारत[96] आदि साहित्य के माध्यम से स्पष्ट किये हुए सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनैतिक आदि परिस्थितियों के चित्रों से भरपूर है।

92- डा॰ हजारी प्रसाद द्विवेदी : अशोक के फूल , पृ॰ 8।

93- **David Daiches: Critical approach to Literature p.376**

94- डा॰ वासुदेव शरण अग्रवाल ।

95- डा॰ शान्ति कुमार नानूराम व्यास ।

96- श्री भगवत शरण उपाध्याय ।

सांस्कृतिक तत्वों का काव्योन्मुख अध्ययन साहित्यिक दृष्टि से विशेष महत्वात्मक माना जाता है। इसमें प्रथम सांस्कृतिक तत्वों का आविष्कार किया जाता है। यह बाह्यान्वेषण हो है।इन उपकरणों के प्रकाश में कृति के अन्तर में बैठने की चेष्टा की जाती है। इस में गति बाह्य से आन्तरिक की ओर होती है। इस प्रकार अध्येता के सामने ये प्रश्न उठते है कि कवि ने इन और इन्हीं सांस्कृतिक तत्वों का उपयोग क्यों किया ? इनका वस्तु और अभिव्यक्ति की सौंदर्य वृध्दि में क्या योगदान है?इन तत्वों के प्रयोग से प्रभाव और प्रेषण कितना सुगम और व्यापक हुआ है ? इस तरह के अध्ययन में सांस्कृतिक तत्वों की परंपरा का भी पूर्ण उपेक्षा नहीं होती । पर मुख्य रुप से कृति की रचना प्रक्रिया में सांस्कृतिक तत्वों के योगदान का मूल्यांकन किया जाता है ।

7 - हिन्दी में सांस्कृतिक अध्ययन और प्रस्तुत अध्ययन की आवश्यकता

हिन्दी में सांस्कृतिक विषयों की लोक-प्रियता बढ़ती जा रही है । सांस्कृतिक दृष्टि से साहित्य का अध्ययन प्रस्तुत करने वालों में डा॰ हजारी प्रसाद द्विवेदी जी का नाम उल्लेखनीय है। द्विवेदी जी ने हिन्दी साहित्य की आदि युगीन प्रवृत्तियों के सांस्कृतिक सूत्रों पर आधिकारिक रुप से प्रकाश डाला है। यह पध्दति उनके कबीर, हिन्दी साहित्य की भूमिका, सूर साहित्य में विशेष रुप से द्रष्टव्य है। इनके साथ ही उन इतिहास या पुरातत्व के विद्वानों का नाम भी लिया जा सकता है जिन्होंने अपने इतिहास ज्ञान के द्वारा साहित्य के सांस्कृतिक अंगों की खोज और व्याख्या की है।इनमें डा॰ वासुदेवशरण अग्रवाल और डा॰ भगवतशरण उपाध्याय जैसे विद्वान प्रमुख स्थान ग्रहण करते हैं ।इनकी दृष्टि साहित्य के आधार पर ऐतिहासिक पुनर्गठन की तो रही है, पर अव्यक्त रुप से तत्कालीन परिवेश में साहित्यिक प्रतिक्रिया की प्रवृत्ति भी स्पष्ट हो गयी है। इनके साथ ऐसे प्रबन्ध भी लिख गये हैं जो मूलतः लोक-साहित्य पर हैं , पर उनमें लोक-सांस्कृतिक पर्यावरण भूमिका के रुप में प्रस्तुत है। इसी परंपरा में वे शोध प्रबन्ध भी आते हैं जिनमें सांस्कृतिक दृष्टि से साहित्य का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।[97]

97- डा॰ वै॰ वेंकटरमण राव : रीतिकालीन काव्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, पृ.56

सांस्कृतिक दृष्टिकोण को अपना कर प्रस्तुत किये गये शोध प्रबन्धों में कुछ तो सम्पूर्ण साहित्य को लेकर लिखे गये हैं और कुछ व्यक्तिगत रुप से कवियों को लेकर । इस प्रकार के अध्ययन के पर्यवेक्षण से यह स्पष्ट होता है कि अधिकांश प्रबन्ध मध्यकालीन साहित्य से सम्बन्धित है। इसका कारण यह हो सकता है कि मध्यकाल सांस्कृतिक दृष्टि से समृध्द भी था । और भक्ति काल अपने में सांस्कृतिक निधि को समेटा हुआ था ।

जहां तक रीतिकाल का सम्बन्ध है , इसका सांस्कृतिक अध्ययन क्षेत्र अछूता हा कहा जा सकता है । इतना तो अवश्य है कि रीतिकालीन साहित्य का सांस्कृतिक झांकी साहित्य के इतिहासों , रीतिकाल से सब आलोचनात्मक ग्रंथों और शोध प्रबन्धों में मिल जाती है। परन्तु रीतिकालीन भक्ति काव्यों की परंपरा में अनेक प्रबन्ध काव्यों का सृजन हुआ है । जिनका सांस्कृतिक अध्ययन तो दूर की बात है उनका नामोल्लेख भी हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रंथों में अभी तक नहीं हुआ है ।गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध अनेक महाकाव्यों का हिन्दी की देवनागरी लिपि में अभी तक बहुत कम प्रकाशन हुआ है[98] । यह दायित्व किस का है[99] ? इन के संदर्भ में रीति काल का पुनर्मूल्यांकन भी हो रहा है[100] । रीतिकाल यद्यपि लौकिक जीवन की पृष्ठभूमि पर आधारित है तथापि उक्त सामग्री के प्रकाश में आने पर यह स्पष्ट हो जायेगा कि इस काल में भी तुलसी जैसे महान कवि हुए हैं अथवा उनके प्रभाव में रीति युगीन कवियों ने भी ऐतिहासिक एवं पौराणिक प्रबन्ध काव्यों का सृजन किया है । जिन के मूल्यांकन की आवश्यकता है । इसी प्रकार के एक महिमा मंडित ग्रंथ 'गुरु प्रताप सूरज' का सांस्कृतिक अध्ययन यहां प्रस्तुत किया जा रहा है ।

98- डा• जय भगवान गोयल : गुरु मुखी लिपि में हिन्दी साहित्य , पृ• 5-6

99- साप्ताहिक हिन्दुस्तान : दिनांक , 13-4-58

100- डा• जय भगवान गोयल : रीतिकाल का पुनर्मूल्यांकन (प्रकाशक : आत्मा राम एण्ड संज़, देहली)।

8- 'गुरु प्रताप सूरज' का सांस्कृतिक अध्ययन : विविध पक्ष

'गुरु प्रताप सूरज' भारतीय संस्कृति के अनेक तत्वों का प्रकाशक ग्रंथ है। इस की सांस्कृतिक सम्पदा भारतीयता का द्योतक है। इस में कवि के व्यापक जीवनानुभव, विशाल दृष्टि एवं गहरी सम्वेदना को अभिव्यक्ति मिली है। यह ग्रंथ सार्वभौम एवं मानवतावादी दृष्टिकोण से सम्पन्न है। इस में ऐसे सांस्कृतिक तत्वों की व्याख्या की गई है जो मानव जाति के लिए सदैव मूल्यवान रहे हैं। इस में भावान्दोलन और भाव परिष्करण की अद्भुत शक्ति निहित है। आज जब कि ऐसे नूतन सांस्कृतिक काव्यों का निर्माण अल्प मात्रा में ही रुका तो ऐसी दशा में इस सांस्कृतिक काव्य की व्याख्या और उस में परिव्याप्त जीवन-तत्वों का विश्लेषण अवश्य ही हमारे भावी जीवन के लिए उपयोगी सिध्द हो सकता है। अतः इसका सांस्कृतिक अध्ययन हमें नवीन प्रकाश प्रदान कर सकता है। इस में चित्रित सांस्कृतिक वातावरण एवं सम्पदा का उद्घाटन आगामी तीन अध्यायों द्वारा किया गया है।

आगामी पंचम अध्याय में 'गुरु प्रताप सूरज' में अभिव्यक्त धार्मिक और अध्यात्मिक जीवन के चित्र प्रस्तुत किए जा रहे है जिन के द्वारा तत्कालीन जीवन में व्याप्त धार्मिक तत्वों एवं विश्वासों के साथ साथ आध्यात्मिक साधना मार्गों पर भी पर्याप्त प्रकाश पड़ेगा। षष्टम अध्याय में दार्शनिक विवेचन के अन्तर्गत 'गुरु प्रताप सूरज' में अभिव्यक्त दार्शनिक दृष्टिकोण का परिचय देते हुए ब्रह्म स्वरूप विवेचन, जीव, आत्मा, सृष्टि, जगत माया, आदि अनेक विषयों पर प्रकाश डाला गया है। सप्तम् अध्याय में लौकिक तत्वों के अन्तर्गत सामाजिक व्यवस्था, पर्वोत्सव और त्योहार, मनोविनोद लोक विश्वास तथा मान्यताओं के निरूपण के अतिरिक्त आर्थिक राजनैतिक, पारिवारिक और सामान्य जीवन की झांकी भी प्रस्तुत की गई है।

पंचम अध्याय

'गुरु प्रताप सूरज' में अभिव्यक्त धार्मिक और आध्यात्मिक जीवन

पंचम अध्याय

'गुरु प्रताप सूरज' में अभिव्यक्त धार्मिक और आध्यात्मिक जीवन

प्रवेश

भारतीय संस्कृति मूलतः धर्म-प्रधान है। इस तथ्य का प्रतिपादन वैदिक साहित्य, हिन्दू धर्मशास्त्र एवं पुराण साहित्य में स्पष्टतः हुआ है। भारतीय संस्कृति की सभी महान उपलब्धियां प्रायः धार्मिकता से अनुप्राणित हैं। अतः भारतीय साहित्य में ऋग्वेद से लेकर 'राम की शक्ति पूजा' (निराला) तक में भारतीय संस्कृति की इसी विशिष्टता की छाप अंकित है। इसका प्रमुख कारण यह है कि भारतीय जीवन दर्शन भौतिकता की अपेक्षा आध्यात्मिकता को अधिक महत्व देता है। भारत में वैयक्तिक जीवन, सामाजिक आदर्श, राजनैतिक नियम एवं ललित कलाओं से सम्बन्धित उद्योग परस्पर विच्छिन्न एवं असंबद्ध रूप में विकसित नहीं हुए, अपितु उन सब के मूल में सर्वत्र एक ही चेतना विद्यमान दिखाई पड़ती है ; वह चेतना वस्तुतः धार्मिकता एवं आध्यात्मिकता की है। अतः मध्यकाल में भी धम्म धर्माश्रित काव्यों के सृजन का सांस्कृतिक प्रयास अपनी सुदीर्घ धार्मिक परंपरा का ही द्योतक है। इस युग में भारतीय धर्म साधना से अनुप्राणित विभिन्न धार्मिक आन्दोलनों के प्रवर्तकों ने अपनी भक्ति भावना को अभि-व्यक्ति के लिए तथा जनता में धर्म-रक्षा की भावना को जागृत करने लिए काव्य को अपना माध्यम बनाया। सिद्धों, शैवों जैनियों एवं वैष्णवों की पारस्परिक प्रतिद्वंदिता इसी माध्यम से उनके धार्मिक सन्देश की वाहिका बन कर रोचक एवं आकर्षक शैली में जनता तक पहुंची। परन्तु अभी यह पहुंच भी न पाई थी कि भारत में एक नये धर्म इस्लाम ने प्रवेश ग्रहण किया। इस्लाम के प्रचारकों ने कलम की शक्ति में ही विश्वास न रखा अपितु तलवार के द्वारा भी अपनेधर्म का प्रचार एवं प्रसारकिया। परन्तु भारत के परंपरागत धर्मों के उन्नायकों न उन का सामना कलम से ही किया। मध्यकाल में

जब जब मुस्लिम आक्रान्ताओं ने भारतीय धर्मों पर आक्रमण किया तब तब भारतीय धर्म परायणता ने धर्म-रक्षा-आन्दोलन को और अधिक सुदृढ़ और सबल बनाने का प्रयास किया । रामानन्द से लेकर गुरु गोबिन्दसिंह तक हिन्दू नेताओं ने धार्मिक संघर्ष को आत्म त्याग और बलिदानों द्वारा जारी रखा ।

'गुरु प्रताप सूरज' भारतीय धार्मिकता एवं आध्यात्मिकता की भावनाओं का परिचायक धर्म ग्रंथ है। इस में जहां वैदिक एवं लौकिक धर्म की व्याख्या हुई है वहां धर्म की ग्लानि होने पर गुरु नानक और उनके सिंहासन पर आसीन होने वाले अन्य नौ गुरु साहिबान के समय समय पर अवतरित होने और धर्म-रक्षा के लिए संघर्ष-रत रहने की कहानी अंकित है। उन्होंने भारत की धार्मिक परंपरा को जीवित रखने के लिए, जनता को सन्मार्ग पर लाने के लिए, आध्यात्मिक लक्ष्य की स्मृति दिलाते हुए कर्मयोगी बन कर आततायियों के विरुध्द रण में जूझ मरने का पाठ पढ़ाने के लिए भारत वसुन्धरा पर वैसे ही अवतरित हुए जैसे भगवान कृष्ण ने अवतरित होकर धर्म की संस्थापना[1] की थी । गुरु साहिबान ने राष्ट्रीय चेतना की जागृति का सन्देश सुनाने के लिए उसे 'स्वधर्मे निधनं श्रेयः' का पाठ पढ़ा कर राष्ट्रीयता की रक्षा की । उसमें अपने राष्ट्र के प्रति ममत्व की भावना को जागृत किया । इस्लाम धर्म के प्रचारकों ने जब कुरान में प्रतिपादित विचारधारा के अनुकूल साम्राज्य स्थापित करने का प्रयत्न किया, तीर्थ यात्रा पर कर लगाए, सार्वजनिक धार्मिक पूजा स्थानों को नष्ट किया, उनके मन्दिरों को नष्ट किया तथा अनेक भीषण अत्याचार किए तब हिन्दुत्व के संरक्षक गुरु तेगबहादुर ने हिन्दुओं के धार्मिक चिन्हों (तिलक जंजू)[2] की रक्षा के लिए स्वयं ही बलिवेदी पर

1- यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।। 7 ।।
परित्राणाय साधूनाम् विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ।। 8 ।।
— श्री मद् भगवद् गीता - 4 · 7-8

2- तिलक जंजू राखा प्रभु ताका ।
कीन्हा बडो कलू महि साका ।
साधनि हेति इती जिनि करी।
सीसु दिया पर सी न उचरी ।।—श्रीबचित्र नाटक, अध्या॰ 5, चौ॰ 13, पृ॰ 33-34

नहीं चढ़े अपितु अपने सारे वंश को भारतीयता की रक्षा के लिए निछावर कर दिया । गुरु अर्जुन देव, गुरु तेगबहादुर और गुरु गोविन्द सिंह ने अपने बलिदानों से भारत की राष्ट्रीयता एवं धार्मिकता से अनुप्राणित भावनाओं की रक्षा की । 'गुरु प्रताप सूरज' में इन्हीं गुरु साहिबान की भक्ति एवं शक्ति की कहानियों को भाई संतोख सिंह ने काव्यात्मकता प्रदान की । तत्कालीन युग का विराट धार्मिक चित्र भी इस में अंकित है। हिन्दू धर्म और इस्लाम धर्म के संघर्ष के साथ साथ उनकी धार्मिक विकृतियों एवं विश्वासों का भी इस में निरूपण हुआ है । इसी भूमिका पर सिक्ख गुरुओं द्वारा प्रचारित सिक्ख मत के विकास, उसके सिध्दांतों का स्पष्टीकरण भी इस ग्रंथ का प्रमुख प्रतिपादय विषय है। इन धर्मों के विभिन्न तत्वों एवं आध्यात्मिक साधना पध्दतियों पर आगे विस्तार से प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

1-पूर्व पीठिका

धर्म का स्वरूप और परिभाषा

भारतीय संस्कृति को शाश्वता एवं अक्षुण्णता प्रदान करने वाला तत्व 'धर्म' ही है। इस 'धर्म' का मानव जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है। यह उसका जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में साथी रहा है। जीवन में ही नहीं अपितु मृत्यु प्राप्ति पर भी यह मनुष्य के पीछे पीछे चलता है।[3] यही उसके जीवन का आधार स्तंभ बन कर उसे भयंकर परिस्थितियों के आघात – प्रतिघातों से सुरक्षित रखता है।

'धर्म' क्या है ? 'धर्म' शब्द 'धृ' धातु से बना है, जिसका अर्थ है धारण[4], पोषण करना या धारण करने योग्य वस्तु या कर्तव्य जिसे हम स्वीकार कर लेते हैं। हम उसी के अनुसार दृढ़ संकल्प होकर कार्य करते हैं । वही हमारा धर्म माना जाता है।

3- धर्मस्तिमनुगच्छति । तथा गु॰ प्र॰ सू॰ रा 9, अंशु5 7, अंक 13-15, पृ॰3752-53

4- धारणाध्दर्ममित्याहु धर्मो धारयते प्रजाः ।

– महाभारत, कर्ण पर्व 49.50. तथा शान्ति पर्व, 110, 11-12

वास्तव में कर्तव्य पालन से धर्म भिन्न नहीं है। 'धर्म' वास्तव में वह सद्गुण है जिस के द्वारा मनुष्य सब कुछ प्राप्त कर लेता है जो कि उसे कर्तव्यपालन करने के कारण मिलता है। वैशेषिक दर्शन के अनुसार धर्म वह है जिससे ऐहिक-पारलौकिक अभ्युदय तथा निःश्रेयस (मोक्ष) की सिद्धि हो।[5] परन्तु यह परिभाषा धर्म के कार्यों को बताती है, उसके स्वरूप और साधन को नहीं। धर्माचरण कारण है, अभ्युदय और निःश्रेयस उस के कार्य। महर्षि जैमिनि के मतानुसार विधि-निषेधात्मक वेद-वाक्यों द्वारा बोधित अर्थ ही धर्म है।[6] श्रुति अर्थात् वेद और स्मृति अथात् धर्मशास्त्र[7] में निरूपित कर्तव्यों का पालन करने से मनुष्य इस लोक में कीर्ति और परलोक में अपवर्ग का उत्तम सुख पाता है। इसी लिए स्वकर्म एवं स्वधर्म का पालन करना तथा उसकी रक्षा करना ही मनुष्य का सर्वोच्च कर्तव्य[8] है। इसी 'धर्म' का आश्रय ग्रहण करते हुए भारतीयता ने विश्व कल्याण की कामना व्यक्त[9] की थी और आज भी इसी पर स्थिर रह कर विश्व में शान्ति की स्थापना का जयघोष कर रही है।

'धर्म' के विभाग और उसकी उपयोगिता

छान्दोग्य उपनिषद्[10] में धर्म के तीन विभाग पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। (1) यज्ञ, अध्ययन, दान, (2) तप, (3) नैष्ठिक ब्रह्मचर्य। 'धर्म' के अनुसार इन तीन

5- चोदनालक्षणो र्थो धर्मः ।- तथा 'धर्म' के अन्य लक्षणों के लिए देखिए कल्याण : हिन्दू संस्कृतिक अंक, पृ. 370

6- यतो भ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः। - कणाद सूत्र, 1.1.2

7- श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः ।
ते सर्वार्थेष्वमीमांस्ये ताभ्यां धर्मो हि निर्बभौ ।।

8- स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः सं सिद्धिं लभते नरः ।

9- सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत् ।।

10- छान्दोग्योपनिषद् : - 2.23.1

के अनुपालन से मनुष्य को पुण्य लोकों की प्राप्ति होती है। तभी तो मनु जी ने भी कहा है कि 'धर्म ही 'एक मात्र मित्र है जो करने के पश्चात् भी साथ जाता है'[11] आचार्य क्षेमेन्द्र के अनुसार धर्म की लोक और परलोक में उपयोगिता होने के कारण वह अपरिहार्य है।[12] वैदिक,[13] औपनिषदिक एवं पौराणिक[14] साहित्य में धर्म की उपयोगिता पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। महाभारत में अनेक स्थान पर इस के महत्व को प्रकाशित किया गया है।[15] धर्म ही मानव को साहस और शान्ति प्रदान करता है, उसके जीवन को सुखी और अनन्द-मय बनाता है। इसी कारण भारतीय संस्कृति ने साध्य चतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष) में धर्म को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। इसी धर्म की प्राचीन भारतीय साहित्य में महिमा मुखरित है ।

2- भारत की प्राचीन धार्मिक परंपरा और उसका विकास

हिन्दुत्व के प्रतिपादक प्राचीन भारतीय धर्म ग्रंथों में हमारे पूर्वज धर्माचार्यों का धार्मिक और आध्यात्मिक चिन्तन संकलित है। स्थूल रुप में प्राचीन वैदिक साहित्य से

11- एक एव सुहृद् धर्मो निधने ऽप्यनुयाति यः । — मनुस्मृति, 8.17

12- विदेशेषु धनं विद्या व्यसनेषु धनं मतिः ।
परलोके धनं धर्मः शीलं सर्वत्र वै धनम् ।।

13- 'धर्मं चर', 'धर्मेण सुखमाप्नोति' ; 'धर्मान्न प्रमदितव्यम्'
द्रष्टव्य : कल्याण, हिन्दू संस्कृति अंक, पृ. 369

14- भागवत पु. 3.12.41 ; 6.1.44
वायु पु. 59 वा अध्या. ; महापुराण 39.20-21

15- महाभारत अश्वमेधिका पर्व 94.31 ;
शान्ति पर्व 182.30 , 161.5 - 6 ;
वन पर्व 2.71 - 73,
कर्ण पर्व 69.58

हिन्दू धर्म की तीन धाराएं विकसित हुई। जो हिन्दू धर्म के क्रमिक विकास को प्रदर्शित करती है ।

1 - कर्म प्रधान वैदिक धारा

2 - ज्ञान प्रधान औपनिषदिक धारा

3 - भक्ति प्रधान पौराणिक धारा

इन्हीं तीन धाराओं ने परवर्ती साहित्य को अनुप्राणित किया और भारतीय धर्म सा साधना का संबल बनी । भारतीय संस्कृति वैदिक साहित्य में निरुपित धर्म पर ही आश्रित कही जाता है। इसी वैदिक धर्म ने विश्व शान्ति और विश्व बन्धुत्व की भावनाओं को प्रकाशित कर मानव मात्र के लिए कल्याणकारी मार्ग प्रशस्त किया ।

(1) कर्म प्रधान वैदिक धारा

वैदिक ग्रंथ भारतीय धर्म व्यवस्था के प्राण हैं।[16] भारत की कोई भी ऐसी धर्म-पध्दति नहीं जिन पर इनका थोड़ा बहुत ऋण न हो । यहां तक के इनका कट्टर विरोध करने वाले नास्तिक बौध्द भी इन के प्रभाव से न बच सके थे[17] ।

स्थूल रुप से वैदिक साहित्य को चार भागों में विभक्त किया जाता है --(1) संहिता (2) ब्राह्मण (3) आरण्यक और (4) उपनिषद्। प्रथम तीनों में कर्म मार्ग का निरुपण है तो चतुर्थ में ज्ञान मार्ग का विवेचन मिलता है। वेदों के संहिता भाग के मन्त्र समूह इन्द्र,[18] अग्नि,[19] वरुण,[20] सविता, रुद्र आदि देवताओं के स्तोत्र-स्तुति से पूर्ण है। इन सब मन्त्रों के द्वारा प्राचीन आर्य लोग देवताओं के उद्देश्य से याग-यज्ञ करके अभीष्ट - प्रार्थना करते थे । एक ही मूल शक्ति विभिन्न देवताओं के नाम से अभिव्यक्त होती थी ।

16- वेदाद् धर्मो हि निर्बभौ । श्रुति वाक्य ।
वेदो खिलो धर्म मूलम् । -- मनुस्मृति 2 · 6

17- द्रष्टव्यः डा · कर्न : मैनुएल आफ बुध्दिइज्म

18- ऋग्वेद : 2 · 12 · 9

19- ऋग्वेद : 10 · 7 · 3, तथा 1 · 1 · 9

20- वही , 7 · 86 · 5

परमेश्वर एक और और अद्वितीय है – यह रहस्य वैदिक आर्यों को ज्ञात था।[21] उसी एक अद्वितीय सत्ता को ऋग्वेद में स्थान स्थान पर हिरण्यगर्भ,[22] प्रजापति,[23] विश्वकर्मा पुरुष[24] सर्वव्यापक[25] इत्यादि नामों से अभिहित किया गया है। प्राचीन आर्यों का प्रधान धर्म था 'यज्ञ'। अभीष्ट देवता के उद्देश्य से वे यज्ञादि कर्म श्रध्दापूर्वक अनुष्ठित होते थे।[26] परन्तु यही धर्म ब्राह्मण युग में आकर जटिल क्रिया विशेष बाहुल यज्ञानुष्ठान में पर्यवसित होता है। काल क्रम से एक ऐसा मत प्रबल हो उठा कि 'यज्ञ कर्म ही एक मात्र धर्म है, उसी के द्वारा जाव स्वर्ग प्राप्त करता है, इस के सिवा और कुछ नहीं। यद्यपि यज्ञ का अनुष्ठान इन्द्रादि देवताओं के उद्देश्य से किया जाता था, फिर भी मुख्यता यज्ञ की ही है। देवता गौण हैं, प्रयोजक नहीं। अतएव 'यजेत स्वर्गकामः' इसी का नाम 'वेदवाद' है।

वैदिक देवताओं में से अनेक देवताओं का अस्तित्व काल की गति के साथ मन्द और धूमिल पड़ गया और केवल ब्रह्म, विष्णु, शिव को त्रिदेव के रूप में आगे चलकर अधिष्ठाता माना जाने लगा। अन्य देवताओं की पूजा को दबाकर कमजोर कर दिया गया। इन त्रिदेवों की पूजा आज भी धर्म का अंग मानी जाती है। ब्राह्मण ग्रंथों में उक्त कर्मकांड का ही निरूपण है तथा आरण्यकों में विविध उपासनाओं की चर्चा है। इन्हीं से आध्यात्मिकता मूलक आधिदैविक दृष्टि का विकास हुआ।[27]

21- एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति ।
अग्निं यमं मातरिश्वानमाहु :। – ऋग्वेद : 1 · 164 · 46

22- ऋग्वेद , 10 · 121 (हिरण्यगर्भ सूक्त)

23- वही 10 · 21 (प्रजापति सूक्त)

24- वही, 10 · 90 (पुरुष सूक्त)

25- वही, 10 · 129 (नासदीय सूक्त)

26- वही , 10 · 151

27- डा · मंगल देव शास्त्री : भारतीय संस्कृति का विकास (वैदिक धारा), पृ 26।

(2) ज्ञान प्रधान औपनिषदिक धारा

भारत मेंसब से अधिक उपनिषदों की चर्चा होती रही है। यह उपनिषद् संख्या में बहुत अधिक थे। कहते हैं कि ऋग्वेद की 21, यजुर्वेद की 102, सामवेद की 1000 और अथर्ववेद की 9 शाखायें प्रशाखायें थीं। इन सभी शाखाओं से सम्बन्धि उपनिषद् भी रहे होंगे, केवल मुक्तिकोपनिषद में 108 उपनिषदों के नाम दिए हुए हैं। डा० बेलवेलकर औररानडे ने अपने भारतीय तत्व ज्ञान के इतिहास मेंउपलब्ध उपनिषदों की संख्या दो तीन सौ के लगभग मानी है।[28] अतः स्वाभाविक ही था कि इतनी संख्या में पाये जाने वाले इन ग्रंथों का भारतीय विचारधारा पर अक्षुण्ण प्रभाव पड़े।

उपनिषद् युग में पूर्वोक्त यज्ञानुष्ठान वाले प्राणहीन कर्मकांड की बाहिक्यकता के विरुध्द प्रतिवाद की सूचना मिलती है। उपनिषदों में वेदों के इस कर्मकांड को संसार सागर से पार उतारने के के लिए अदृढ़ प्लव' (बेड़ा) कहकर उसकी निन्दा की गई है।[29] इसके अतिरिक्त इसमें स्थान स्थान पर बहुदेववाद के विरोध की भावना पाई जातीहै। मूर्तिपूजा का खंडन मिलता है।

उपनिषद्-युग में साधक की दृष्टि बहिर्जगत से हट कर अन्तर्जगत में ही केन्द्रीभूत हो जाती है। चरमतत्व का स्वरूप निर्णय करने के लिए उपनिषद् ऋषियों ने समाहित हो कर यह उपलब्धि की कि इस नामरूपात्मक दृश्य-प्रपंच के अन्तराल मेंएक नित्य, शाश्वत, सत् पदार्थ है, ज्ञानयोग से उसको जानना चाहिए, वही 'ब्रह्म' है। यह ब्रह्म विद्या ही उपनिषद् या वेदान्त का प्रतिपाद्य विषय है। उपनिषद् कहते है कि उक्त'वेदवाद' स्वर्गसाधक होने पर भी मोक्षसाधक नहीं है, एक मात्र 'ब्रह्मवाद' के अवलम्बन से ही निःश्रेयस की प्राप्ति हो सकती है। उपनिषदों के इस ब्रह्मवाद में उसे निगुर्ण, निर्विशेष तथा अवाङ् मनस गोचर कहा गया है। जिसे ज्ञान के द द्वारा जाना जा सकता है। 'गुरु प्रताप सूरज' के दार्शनिक तत्व निरूपण पर औपनिषदिक विचारधारा का पर्याप्त प्रभाव परिलक्षित होता है। जिसके सम्बन्ध में आगामी अध्याय में विचार किया गया है।

28- द्रष्टव्य : रानडे और बेलवेलकर : भारतीय तत्व ज्ञान का इतिहास, भाग 2, पृ० 87

29- प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञ रूपाः ।

— मुण्डक उपनिषद्, 1 · 2 · 7

सूत्र ग्रंथ — ब्रह्म-सूत्र अथवा वेदान्त-सूत्र[30]

उपनिषदों के अतिरिक्त ब्रह्म सूत्र में भी साधक का धर्म मोक्ष प्राप्ति कहा गया है।[31] व्यासदेव रचित यह ब्रह्म सूत्र भी 'ब्रह्म ज्ञान का प्रकाशक है। परन्तु इस में ज्ञान के साथ साथ भक्ति का भी प्रकारान्तर से निर्देश मिलता है।[32] सगुण ब्रह्म के के बिना भक्तिमूलक उपासना संभव न होनेके कारण पूर्वोक्त उपनिषद् साहित्य में ब्रह्म स्वरुप के सगुण सविशेष विभाग के वर्णन के संकेतों[33] के आधार पर आगे चल कर कई भक्ति सूत्रों का भी प्रणयन हुआ जैसे 'शाण्डिल्य भक्ति सूत्र' नारद भक्ति सूत्र' इत्यादि । इस सूत्र साहित्य की भी अनुपम महता है।

'ब्रह्मसूत्र' पर सभी सम्प्रदायों के प्रधान प्रधान आचार्यों ने अपने अपने मतों के अनुरुप भाष्य लिखे । इस से भी इस ग्रंथ की महता और समादरणीयता सूचित होती है। 'प्रस्थान त्रय ' में 'ब्रह्मसूत्र ' का प्रधान स्थान है। इसी तरह नारद के 'भक्ति सूत्र' को विद्वान लोग षट्दर्शनों की भान्ति एक दर्शन मानते हैं और इसे सप्तम दर्शन कह कर पुकारते हैं। इस में प्रेमा भक्ति के निरुपण द्वारा प्रभु प्राप्ति का सरल उपाय बताया गया है। परन्तु इसमें ज्ञान के प्रति विरोध कहीं भी प्रतिपादित नहीं है। और न ही कर्मों को त्यज्य बताया गया है परन्तु उन दोनों के भक्ति के अनुकूल होने पर बल दिया है ।

बाल्मीकीय रामायण और व्यास देव रचित महाभारत

भारतीय संस्कृति के प्रकाशक ग्रंथों में बालमीकीय रामायण और व्यासदेव रचित महाभारत का महत्वपूर्ण स्थान है । इन धर्म ग्रंथों में हिन्दू धर्म के आदर्श और यथार्थ रूप

30- डा• मंगलदेव शास्त्री : भारतीय संस्कृति का विकास (औपनिषद धारा) पृ• 17

31- तन्निष्ठस्य मोक्षोपदेशात् । — ब्रह्म सूत्र , 1•1•7

32- डा. मंगल देव शास्त्री : भारतीय संस्कृतिक का विकास (औपनिषद धारा) पृ• 213

33- (क) यस्य देवे परा भक्ति :।— श्वेताश्वतर उपनिषद, 6•23

(ख) तद्ध तद्वनं नाम तद्वनमित्युपासितव्यम् ।— केन• उ•, 4•6

(ग) बृहद्• उप•, 4•3•32 (घ) तैति• उप•, 2•7•1

का चित्रण हुआ है। इन में राम[34] और कृष्ण[35] के जीवन चरित की अभिव्यक्ति ही नहीं हुई अपितु उनके अवतारत्व पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। भारतीय जनता ने राम और कृष्ण की भक्ति और स्तुति से अपनी अभिलाषाएं पूर्ण की हैं। महाभारत के अन्तर्गत गीता में अवतारवाद[36] की स्पष्ट घोषणा की गई है। इसी में सर्वप्रथम वैदिक धर्म वैष्णव धर्म के साँचे में ढला। इसी में भारतीय आध्यात्मिकता अपने चरम शिखर पर पहुंची ।

<u>गीता :</u>

यह एक परम रहस्यमय ग्रंथ है। इस में सम्पूर्ण वेदों, एवं उपनिषदों का सार संकलित[37] है। इस के अमृत को जिस ने पा लिया है उसे सर्वस्व प्राप्त हो जाता है। क्योंकि इस में सांख्य योग, कर्मयोग और भक्ति का इतना सुन्दर प्रतिपादन है कि शायद ही कहीं अन्यत्र वैसा मिले । हिन्दू धर्म में इसका स्थान सर्वोच्च माना जाता है। सनातन हिन्दू धर्म का सार इस में सरस शैली द्वारा प्रतिपादित मिलता है। वैष्णव धर्म का यह उपजीव्य ग्रंथ है। इसकी महिमा अवर्णनीय है। इसकी अवतरणा महाभारत के ऐतिहासिक युध्द के अवसर पर कुरुक्षेत्र की पुण्यभूमि में षोडशकला-सम्पूर्ण अवतार साक्षात् भगवान श्री कृष्ण के द्वारा हुई है। इसका निष्काम कर्मयोग[38] परमात्मा की प्राप्ति का सरल साधन

34- (क) वाल्मीकीय रामायण, युध्द कांड, अ० 117, श्लो० 11 तथा अ० 120, श्लो० 5·8·9

~~35~~- (ख) महाभारत, वन पर्व, अ० 151, श्लो० 6-7

35- (i) A.Barth: <u>The Religions of India</u> p.166
(ii) E.W.Hopkins: <u>Religions of India</u> p.388

36- गीता : 4·7-8

37- सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपाल नन्दनः
पार्थो वत्सः सुधी र्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्।।

38- तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर ।
असक्तो ह्याचरन् कर्म परमाप्नोति पूरुषः ।।

— गीता, 3·19 तथा 20

है।अहं भावना का सर्वथा त्याग होने पर ही साधक को इस ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होती है। इसमें ब्रह्म के सगुण[39] और निर्गुण[40] दोनों रूपों का वर्णन है। इस कारण डा० बी० एम० बरुआ आदि ने इसे भक्ति ग्रंथ के रूप में स्वीकार किया है[41]।

(3) भक्ति प्रधान पौराणिक धारा

भारतीय धर्म-साधना का जो बीज वेदों के संहिता -भाग में निहित था, वही क्रम विकास के पथ में उपनिषद में आकर अंकुरित हुआ और पुराणों में शाखाप्रशाखा युक्त हो कर महा वृक्ष के रूप में परिणत हो जाता है ।

अष्टादश पुराण साहित्य[42] की महिमा उनके पंचम् वेद होने से भी विदित होती है। वेदों के निगूढ़ अर्थों को समझने के लिए पुराणों की सहायता लेने के सिवाय दूसरा कोई अन्य उपाय नहीं है क्योंकि अल्प श्रुत पुरुषों से वेद डरता है[43]।स्त्री, शुद्र और वर्णधर्म लोगों का वेद-श्रवण में अधिकार न होने के कारण महर्षि वेद-व्यास ने जनता के के कल्याण साधन के लिए वेद में निहित आध्यात्मिक निगूढ़ तत्वराशि को पुराणों में विस्तृत रूप से नाना प्रकार के आख्यान-उपाख्यान की सहायता से प्रकाशित किया है[44]।

भारतीय धर्म साधना के क्षेत्र में कर्म, ज्ञान और भक्ति मुक्ति के त्रिविध त्रिविध साधन के रूप में स्वीकृत होते चले आते आ रहे हैं। साधकगण अपनी अपनी रुचि और अधिकार के भेद से इन में से किसी एक या इनकी समन्वित साधना का

39- गीता – 12 · 2

40- वही , 12 · 5-12

41- **Dr.B.M.Barua: The Bhakti doctrine in Sandilya Sutra**

42- पं० रघुनाथ दत्त बन्धु : पुराण कथा कौमुदी, पृ० घ

43- पं० गिरधर शर्मा चतुर्वेदी : पुराण परिशीलन, पृ० 12

44- (क) वेदेभ्य उद्धृत्य समस्तधर्मान् , यो यं पुराणेषु जगाद देवः ।

व्यासस्वरूपेण जगाद्धिताय, वन्दे तमीशं कमलासमेतम् ।।

— पद्म पुराण, क्रियायोगसार , 1 · 3

(ख) भाग० पु० 1 · 4 · 25

अवलम्बन करके निः श्रेयस के पथ पर अग्रसर होते हैं। पुराण शास्त्र में कर्मयोग, ज्ञान-योग और भक्ति योग – इन तीनों विषयों की शिक्षा होने पर भी भक्तियोग के ऊपर विशेष जोर दिया गया है, क्योंकि वह मनुष्य के लिए तत्काल कल्याणकारक है तथा भक्तिमार्ग का अनुसरण ब्राह्मण, शूद्र, नर-नारी सभी निर्विशेष रूप से सहज ही कर सकते हैं।[45] श्री मद्भागवत में भगवान श्री कृष्ण ने परम भागवत उध्दव जी को उपदेश देते हुए कहा है कि 'कर्म, तपस्या, ज्ञान, वैराग्य, योग, दान, धर्मतथा तीर्थयात्रा, व्रत आदि अन्य साधनों के द्वारा जो प्राप्त होता है, मेरा भक्त भक्ति योग के द्वारा वह सब अनायास प्राप्त कर लेता है।[46]' यह भक्ति मार्ग ब्राह्मणऔर चंडाल सभी के लिए खुला है।[47] यह गणतान्त्रिक धर्म (**Democratic Religion**)है। इस पौराणिक धर्म ने अवतारवाद को बहुत अधिक बढ़ाया। इन में अवतारों की संख्या में आश्चर्यजनक वृध्दि हुई।[48]

श्री मद्भागवत[49]

वैष्णव पुराणों में श्री मद् भागवत पुराण वैष्णवों का सर्वस्व है। भारतीय धर्म साधना के साहित्य का मुकुटमणि है। भारतवर्ष में जितने भी वैष्णव - सम्प्रदाय प्रचलित हुए हैं, उन सभी में श्रीमद् भागवत का वेदों के समान आदर है। कई आचार्यो ने तो प्रस्थानत्रयी के अन्तर्गत उपनिषदों और ब्रह्मसूत्रों के साथ इसी को तीसरा प्रस्थान माना है। यह वैष्णव धर्म और भारतीय संस्कृति का पहला विश्वकोश है। इसी के हिन्दू धर्म की विजय वैजयन्ती शताब्दियों[50] से भारत भू पर फहर रही है। इसे वेदमहोदधि का अमृत कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। इसे भगवान श्री कृष्ण का साक्षात् वाङ्मय –

45- देवी भागवत – 7 · 37 · 2-3

46- श्री मद् भागवत – 11 · 20 · 32

47- (क) वृहन्नारदीय पु · 32 · 39

(ख) श्री मद् भागवत – 3 · 33 · 7

48- डा · मलिक मोहम्मद : वैष्णव भक्ति आन्दोलन का अध्ययन, पृ · 39

49- वही, पृ · 291

50- श्री मद् भागवत् – 7 · 5 · 23-24

स्वरुप माना जाता है। साक्षात् भागवान के कलावतार श्री वेदव्यास जी जैसे अद्वितीय महापुरुष को जिसकी रचना से ही शान्ति मिली, उस श्री मद्भागवत की महिमा कहाँ तक कही जाये । इस में प्रेम, भक्ति , ज्ञान, विज्ञान, वैराग्य —सभी कूट कूट कर भरे हुए हैं । इसका एक एक श्लोक मन्त्रवत माना जाता है। इसी से इस का धर्म परायण जनता में इतना अधिक आदर है। इस में विष्णु के सभी अवतारों की स्तुति की गई है। राम और कृष्ण की लीलाओं का भी सुन्दर वर्णन है। यह पुराण हिन्दी भक्त कवियों के लिए महान स्रोत का काम करता है। पुष्टी मार्गीय वैष्णवों के लिए तो यह पुराण असाधारण महत्व रखताहै। मध्ययुगीन वैष्णव भक्ति आन्दोलन को भी इसने सर्वाधिक प्रभावित किया है। क्योंकि इस में भक्ति का माहात्म्य प्रतिपादित है।

पौराणिक देवता

पौराणिक साहित्य मेंवैदिक देवताओं का भी संस्कार करके उन्हें नवीन रूप प्रदान किया गया। पुराणकारों ने तन्त्र साहित्य का आश्रय ग्रहण कर वैदिक देवताओं के गुणों कार्यों एवं व्यापारों के अनुरुप उनके व्यक्तित्व, स्वभाव, चरित्र, आकार,- प्रकार, अस्त्र-शस्त्र आयुध, वहन, नाम, रुप, लीला, धाम आदि का प्रभावोत्पादक वर्णन किया है। इस तरह पुराणों में भगवान को एक विशेष सरस भावात्मक व्यक्तित्व प्रदान किया गया हैऔर वे अब सहज में ही सर्वसाधारण भक्तों कि के लिए बोधगम्य से हो गए हैं। पुराणों में ईश्वर के पांच रुपों – सूर्य, गणेश, देवी, शिव और विष्णु – पर विशेष जोर दिया गया है। आगे चल कर सूर्य की पूजा नवग्रहों की पूजा के साथ सम्मिलित होगई । गणेश को सभी मांगलिक कार्यों में प्रथम पूज्य स्थान प्रदान किया गया। देवी पूजा तांत्रिकों के द्वारा ही विशेष रुप से ग्रहण की गई। शिव और विष्णु की पूजा शानदार एवं जोरदार रूप से समानान्तर भाव से बढ़ती चली गई पर आगे चल कर विष्णु की पूजा के मोहन प्रवर्तक के रुप में श्री कृष्ण चन्द्र जी के आविर्भाव का वैष्णव सम्प्रदाय के प्रति जितना प्रगाढ़ आकर्षण हुआ उतना शैव सम्प्रदाय के प्रति न हो सका । यही कारण है कि अन्ततः

वैष्णव सम्प्रदाय निर्विवाद रूप से भारतीय धर्म साधना के प्रतिनिधि सम्प्रदाय के रूप में प्रतिष्ठित हो गया । आज भी शैवों की अपेक्षा वैष्णवों की प्रधानता वहां स्पष्टतया गोचर हो रही है ।

इस वैष्णव धर्म या भागवत धर्म का प्रसार समस्त भारत में हुआ था दक्षिण में यही 'पांचरात्रमत' के रूप में विकसित हुआ । परन्तु वैष्णवों को जैसी आचार्य परंपरा मिली और उन के मत का प्रचार हुआ वैसा शैवमत का नहीं । परन्तु शैवमत का प्रचार जन-आन्दोलन के रूप में दक्षिण में काफी हुआ। वास्तव में इन्हीं शैवसन्तों से ही वहां पर भक्ति आन्दोलन जन आन्दोलन के रूप में विकसित हुआ । उधर उत्तर भारत में वैष्णव सम्प्रदायों का विशेष विकास हुआ ।

3 - मध्ययुगीन भारत की धार्मिक और आध्यात्मिक स्थिति

इस्लाम धर्म के प्रवेश के पूर्व भारत में तीन धर्म विशेष रूप से प्रचलित थे । हिन्दू धर्म (ब्राह्मण धर्म), बौध्द धर्म और जैन धर्मभारतीय धर्म साधना को विकसित करने ~~म~~ में अपना अपना योगदान दे रहे थे । बौध्द धर्म और जैन अपनी उन्नति के शिखर पर पहुंच कर पतन की ओर ~~अग~~ अग्रसर होने लगा क्योंकि कुमारिल भट्ट और शंकराचार्य के धर्माभियानों ने इन्हें भारत से निर्मूल करने का बीड़ा उठा लिया था । हिन्दू धर्म की उदार समन्वयात्मकता ने इन दोनों धर्मों को आत्मसात कर इनकी पृथक सत्ता को समाप्त कर दिया ।गौतम बुध्द को विष्णु के प्रमुख अवतारों में गिन कर बौध्द धर्म को हिन्दू धर्म का ही एक अंग ब माना जाने लगा था[51] । इस तरह जैन धर्म भी हिन्दू धर्म का अंग बन कर विलीन होने लगा ।विभिन्न धर्मों में परस्पर एकता की सथापना ने धार्मिक असहिष्णुता एवं वैमनस्य को समाप्त कर एक दूसरे के प्रति सम्मान की भावना को विकसित किया । सामाजिक स्तर पर हिन्दुओं बौध्दों और जैनियों में परस्पर विवाह-सम्बन्ध के होने से परस्पर सह-अस्तित्व की भावना जागृत हुई जिसने हिन्दू धर्म को नवीन संजीवनी शक्ति प्रदान की[52] ।

51- द्रष्टव्य : हिन्दी साहित्य कोश , पृ॰ 389

52- ओझा : गौरीशंकर हीरा नन्द, मध्यकालीन भारतीय संस्कृति , पृ॰ 30

हिन्दू धर्म अपनी अनेकरुपता के लिए विश्व में विख्यात है। ऊपर जिस वैदिक धर्म के स्वरुप पर प्रकाश डाला गया है उसी से पौराणिक बहुदेवोपासना ने विकसित हो अनेक मतमतान्तरों को जन्म दिया परन्तु वे सभी मत एक ही ईश्वर की विभिन्न शक्तियों के प्रतीक माने जाते हैं।[53] मध्ययुगीन भारत म में सब को अपनी इच्छानुसार किसी भी अथवा सभी की उपासना की स्वतन्त्रता थी । कोई वैष्णव था तो कोई शैव, कोई भगवती का उपासक था तो कोई सूर्य की आराधना करता था ।[54] किसी किसी के हृदय में सभी देवी देवताओं के प्रति आदर का भावना भी थी ।

भारत में इस्लाम धर्म के प्रवेश से पूर्व हिन्दू धर्म , वैष्णव , शैव, शाक्त आदि अनेक सम्प्रदायों में विभक्त था । कहीं नाथ और सिध्द योगी अपनी साधनात्मक धर्म साधना का प्रचारकर रहे थे तो कहीं शंकर के अद्वैतवाद को मान्यता मिल रही थी । नव विकसित विशिष्टाद्वैतवाद और द्वैवाद आदि का प्रचार भी अपने शिखर को छू रहा था । ये दार्शनिक सम्प्रदाय वैष्णव भक्ति आन्दोलन को लोक प्रिय बना रहे थे ।[55] जिन के फलस्वरुप हिन्दी साहित्य के मध्यकाल में निर्गुण और सगुण भक्ति धारा वि विकसित हुई। उधर बौध्द, जैन, योगी और चार्वाक भी अपने जीवन-दर्शन के प्रचार के लिए कटि-बध्द हो रहे थे । सिध्दों एवं नाथ पंथियों ने योग दर्शन को विकसित करने के भरसक प प्रयत्न किए। इस तरह से भारतीय धर्म साधना की अनेक धाराएं स्वतन्त्र रुप से प्रवाहित हो रही थी । एक ओर वेदान्तवादी- न्याय और योग दर्शन के व्याख्याकार ईश्वर की सत्ता को सिध्द करने का प्रयास कर रहे थे तो दूसरी सांख्य सम्प्रदाय के निरीश्वरवाद का प्रचार भी हो रहा था । कोईकर्मकांड का प्रतिपाद कर रहा था तो कोई ज्ञान के द्वार मोक्ष प्राप्ति का मार्ग दिखा रहा था ।[56] उत्तरभारत में दक्षिण की भक्ति धारा प्रवाहित हो रही थी । इस तरह से मध्ययुगीन भारत में आध्यात्मिक जीवन में योग, कर्म, ज्ञान और भक्ति का व्याप्ति थी ।

53- ओझा , गौरीशंकर हीरानन्द, मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, पृ॰ 30

54- वही , पृ॰ 33

55- वही , पृ॰ 76-77

56- वही , 79

4 - भारत में इस्लाम धर्म का प्रवेश

यात्रा और व्यापार के लिए मुसलमानों का भारत आना कदाचित् हजरत मुहम्मद के जीवन काल में प्रारम्भ हो चुका था । उनके प्रभाव से कतिपय हिन्दुओं द्वारा इस्लाम धर्म स्वीकार करने के भी कुछ एक उदाहरण मिलते हैं।[57] परन्तु एक संगठित शक्ति के रूप में उनका भारत-प्रवेश सन् 711-12 ई० में मुहम्मद-बिन-कासिम के सिन्ध अभियान के साथ हुआ । इसके पश्चात् सन् 1000 ई० तक सिन्ध, मुलतान तथा दक्षिण भारत के क्षेत्रों में किसी न किसी रूप में इनका प्रभाव बना रहा[58], महमूद गजनवी के भारत आक्रमणों (सन् 1000 ई० से 1027 ई०) से केवल मुसलमानों का आगमन ही स्थिर नहीं हुआ बल्कि उनका प्रभाव क्षेत्र भी बढ़ा। महमूद का लक्ष्य मुख्य रूप से इस देश को लूट-पाट कर इस्लाम की शक्ति से आतंकित करना था । अपने प्रत्येक आक्रमण के साथ वह अतुल धनराशि लूट ले जाता तथा मन्दिर-मूर्तियों का विध्वंस कर निरीह लोगों को मौत के घाट उतार जाता[59] । इसके विपरीत 12 वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में भारत अभियान करने वाले मुहम्मद गौरी का उद्देश्य यहां मुस्लिम साम्राज्य की स्थापना था[60] । उसके इस स्वप्न को पूरा करने वाला उसका दास कुतुब-उद्दीन था जिसने अपने को सन् 1206 ई० में प्रथम मुसलमान शासक के रूप में स्थापित किया[61] ।

ये आक्रमणकारी अपने साथ एक धर्म भी लेकर आए जिसकी श्रेष्ठता के प्रति इन्हें अटूट विश्वास था । यह नया धर्म इस्लाम, एकेश्वरवादी और हजरत मुहम्मद को ईश्वर का संदेशवाहक मानने वाला था । विजेता होने के कारण ये लोग अपने इस धर्म को जबरदस्ती यहां के लोगों पर लादना चाहते थे । भारतीय बहुदेवोपासना उनकी दृष्टि कुफ्र था और मुसलमान का कर्तव्य माना गया था कि वह कुफ्र का अन्त करे । यह उनके लिए सब से बड़ा कारे-सवाब (पुण्य कार्य) था । इस पुण्य को लूटने के लिए इन्होंने अपने राजनीतिक युद्धों को धर्म युद्धों का रूप दिया। मन्दिरों-मूर्तियों का विध्वंस तथा 'इस्लाम या मृत्यु' का आतंक दिखला कर उन्होंने लोगों को धर्म बदलने के लिए विवश किया ।

57- Arnold, T.W., The Praching of Islam p.261-65
58-A Ibid p.265-66
59- Pandey, A.B., Early Medieval India p.12-13
60- Ibid p.22
61- Ibid p.44

इस्लाम-धर्मावलम्बियों का एक ऐसा वर्ग भी था जो तलवार के बल से नहीं बल्कि प्यार के बल पर धर्म का प्रचार करता था । ये सूफ़ी सन्त थे जिनको आक्रान्ताओं से कोई प्रयोजन नहीं था । वे जन साधारण के साथ रहकर उन्हें धर्म परिवर्तन के लिए प्रेरित करते थे । जबरदस्ती धर्म परिवर्तन करने वालों का प्रतिरोध हुआ परन्तु इन उदार सूफ़ी सन्तों ने अपने शान्त उपायों से उनके हृदयों पर विजय प्राप्त करना प्रारंभ कर दिया[62] । सूफ़ियों के धार्मिक सिद्धांत भारतीय विचारधारा के साथ बहुत साम्य रखने के कारण सहज ही लोकप्रिय हो गये[63] ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि एक ओर तो अविश्वास असहिष्णुता और विद्वेष की भावनाएं काम कर रही थी और दूसरी ओर प्रेम और शान्ति पूर्ण सह-अस्तित्व के लिए प्रयत्न हो रहे थे । इस वातावरण में बदलती हुई परिस्थितियों ने एक महत्वपूर्ण योग दिया । मुसलमानों के स्थायी रूप से भारत में बस जाने के साथ दो पृथक संस्कृतियों को निकट से एक दूसरे के सम्पर्क में आने और समझने का अवसर मिला तथा जीवन के विविध क्षेत्रों में परस्पर आदान-प्रदान प्रारंभ हुआ । धर्म और दर्शन भी इससे अछूते न बचे । हिन्दुओं ने मुसलमानों के एकेश्वरवाद, सूफ़ियों के प्रेम तत्व तथा भावात्मक रहस्यवाद को अपनी धर्म-साधना में स्थान दिया[64] तो सूफ़ियों ने भारतीय वेदांत और साधनात्मक रहस्यवाद को । चैतन्य जैसे भक्त अपने इष्ट देव का नाम-कीर्तन करते समय सूफ़ियों की सी हाल अवस्था में आकर आत्म-विभोर होकर मूर्छित होने लगे तो सूफ़ियों की साधना में नृत्य-संगीत इत्यादि का समावेश हुआ । शबे-बरात पर दीपमाला और मुहर्रम के अवसर पर ताजिया का जलूस स्पष्टतः दीवाली और रथयात्रा जैसे हिन्दू उत्सवों से प्रभावित हैं[65] । पुण्य

62-रामपूजन तिवारी : सूफ़ीमत साधना और साहित्य, पृ. 407

63- हजारी प्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ. 62-63

64- रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 55-67

65- (a) Nizami, K.A., Religion and Polictics in India p.302-3 and p.298, 302-303
(b) Chopra, Pran Nath, Some Aspects of Society and Culture p.95-97

तिथियों पर गरीबों को भोजन खिलाने की प्रथा मुसलमानों ने हिन्दुओं की श्राद्ध-पद्धति से ग्रहण की[66]। हिन्दू खानकाहों में जाने, मुसलमान सन्तों के प्रति श्रद्धा के भाव रखने लगे[67]।

उपर्युक्त विवरण का यह अभिप्राय नहीं कि उस काल में हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य समाप्त हो गया था। वास्तव में कट्टर पंथी और प्रतिक्रियावादी धर्माचार्य तो इस प्रकार के सांस्कृतिक -संगम को कभी पसंद न कर सके और न ही उन्होंने कभी अपने आपको बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार ढालने का प्रयत्न किया[68]। धर्म को लेकर हिन्दुओं और मुसलमानों के मध्य जो खाई बनी रही है उसके लिए यही लोग अधिक उत्तरदायी कहे जा सकते हैं।

5 - सांस्कृतिक पतन और तत्कालीन विकृत धार्मिक अवस्था

तत्कालीन राजनैतिक अशान्ति ने भारतीय जन जीवन को सांस्कृतिक पतन के गर्त में धकेल दिया था। तैमूरलंग के अमानुषिक संहारक आक्रमण ने देश को कुफ्र और बहु-देववाद के कलुष से मुक्त करना चाहा[69]। ऐसी अवस्था में हिन्दुओं पर बलात् इस्लाम धर्म लादा जाने लगा। उस समय धार्मिक पक्ष पक्षपात सीमा को पार कर गया था। यह विचारणीय है कि तुगलक-वंश से लेकर लोदी वंश के शासन का सीमा दो -सौ वर्षों का है और इन दो सौ वर्षों का उपयोग सोलह शासकों ने शान्ति एवं सुव्यवस्था स्थापित करने के स्थान पर धर्मान्ध प्रचार एवं आक्रमणों – जो अनावश्यक राज्य-विस्तार की भोग-विलास-लिप्सा से किए जाते थे – में नष्ट किया। जनता में घोर असन्तोष एवं हीन-भावना की जो ग्रन्थि पड़ गई थी, वह दो सौ वर्षों के बाद भी

66- Nizami K.A., <u>Religion and Policts in India</u> p.298
67. Ibid , p.323
68. Ibid , p.262

69 - डा॰ अवधबिहारी पांडेय : पूर्व मध्यकालीन भारत का इतिहास, पृ॰ 274

सुलझ न सके। इस प्रकार तुर्क-अफगान सुलतानों की धार्मिक असहिष्णुता ने अनेक बार अपना नग्न रूप प्रदर्शित किया था और इस धार्मि असहिष्णुता से जो अशान्ति होतीहै, उसमें अत्यधिक तीव्रता ला देती था। राजवंशों का शीघ्र परिवर्तन, जो उस युग की सब से बड़ा विशेषता थी। प्रत्येक राजवंश में आन्तरिक विद्रोहों एवं घातक षड्यन्त्रों का तांता लगा रहा। इस राजनीतिक उथल पुथल और अशान्ति का प्रत्यक्ष प्रभाव प्रजा पर पड़ता था। इसमें भी हिन्दू प्रजा अत्यधिक प्रभावित होती थी, क्योंकि हर अशान्ति या विद्रोह अर्थाभाव का कारण बन कर आता था और साधारण मुसलमान सैनिक से लेकर सुलतान तक हिन्दुओं को 'कारु' का खजाना' समझ कर उन्हें चूसना अपना परमकर्तव्य समझता था १ जजिया की जंजीर हर बार कसती थी और यहां तक कि ब्राह्मणों को भी जो कभी इस कर से मुक्त थे आगे चलकर 'जजिया' देने के लिए बाध्य किया गया। अब तक अनेक मन्दिर मस्जिदों में परिवर्तित हो चुके थे, वेदिका'जा,-ए-नमाज' बन चुका था। सारांश यह है कि राजनीतिक सत्ता हाथ से जाते ही हिन्दुओं को धार्मिक पराधीनता का भी आभास होने लगा था। अनेक तथा कथित निम्नवर्गीय हिन्दुओं ने दरिद्रता के भार या प्राण के मोह में इसी युग में मुसलमान धर्म स्वीकार किया था। यही सांस्कृतिक पतन था जिसने तत्कालीन धार्मिक अवस्था को विकृत कर दिया था।

विचाराधीन काल में प्राचीन वैष्णव धर्म की भी बुरी अवस्था थी। ब्राह्मण धर्म के ठेकेदार बने रहे। अनेकानेक पौराणिक तथा स्थानीय महत्व के देवी-देवताओं की पूजा प्रचलित थी। तंत्र-मंत्र और भैरवी चक्र में ब्राह्मणों ने भी बौद्धों से होड़ लगा रखी थी। भूत-प्रेत, जादू-टोना और देवी देवताओं की बहुरंगी उपासना का जितना आविष्कार इस युग में हुआ था, उतना न तो इसके पूर्व किसी युग में हुआ था और न आनेवाली शताब्दियों में ही, इस दृष्टि से इतना उर्वर सिध्द हुई। मुसलमान शासकों की कट्टर धार्मिक नीति, इस्लाम के प्रचार मेंउनके द्वारा किए गए अत्याचार, हिन्दू जनता की उदासी, समाज में वर्ण-व्यवस्था की कठोरता, उच्च वर्ग का भोग-विलासपूर्ण जीवन, शूद्रों की दयनीय स्थिति धार्मिक क्षेत्र में पतित अवस्था आदि सभी बातों ने मिलकर एक व्यापक सुधारवादी आन्दोलन की नींव डाली। ऐसे समाज सुधारवादी आन्दोलन की आवश्यकता रह गई, जिसमें ऊंच-नीच के भेद-भाव रहित सब को समान रूप से समाज में आदर मिल सके और धर्म के क्षेत्र में भक्ति का सरल रूप प्रदान कर आत्म-शान्ति प्राप्त करने का अवसर उपलब्ध हो सके।

6- सांस्कृतिक पुनर्जागरण और मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन

पूर्वोक्त सांस्कृतिक पतन के युग का मांग थी कि कुछ धार्मिक सुधारक पैदा हों और इस अव्यवस्थित और गिरी हुई धार्मिक स्थिति को ठीक करें । उसकी सांस्कृतिक स्थिति का पुनरुत्थान करने के लिए विभिन्न धर्मों की कमजोरियों और बुराइयों को पूरी तरह समझ कर , सभी धर्मों के अच्छे आदर्शों को ग्रहण कर सब के लिए सुलभ और सरल ऐसा मार्ग प्रदर्शित करें जिस में पूरी जनता को समान रूप से शान्ति मिल सके ।युग की मांग के अनुकूल ही इस सूमगभक्ति आन्दोलन का उत्तरभारत में भी सूत्रपात हुआ । दक्षिण में जन्म लेने वाले वैष्णव भक्ति आन्दोलन का सन्देश उत्तर में निम्बार्क स्वामी द्वारा 12वीं शताब्दी में ही पहुंच गया था[70] परन्तु उनके पश्चात् चौदहवीं शताब्दी में इसका विशेष प्रसार श्री रामानन्द ने सारे देश में घूम कर किया।[71]

उत्तर भारत के धार्मिक वातावरण की नस-नस सेपरिचित रहने वाले स्वामी रामानन्द ने अपने आकर्षक व्यक्तित्व और उदार भक्ति-सिध्दांतों के आधार पर इस भक्ति-आन्दोलन का नेतृत्व किया । स्वामी जी ने सामाजिक रूढ़ियों के प्रति क्रियात्मक विरोध करके सामान्य जीवन-क्रम को अपने ढंग से सुधारने की चेष्टा की । निःसन्देह रामानन्द जी मध्यकालीन हिन्दी-प्रदेश की प्रगतिशील विचारधारा के एकमात्र कर्मठ नेता और सबल प्रेरणा-स्रोत थे[72] । उदारता के तो व साकार स्वरुप थे । 'जाति-पांति पूछे नहिं क्व कोई ।हरि को भजै सो हरि का होई।' का महामन्त्र ही रामानन्द का आदर्श था । जिन शूद्रों के लिए आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग समाज में सिर उठाकर रहने का अधिकार सदा के लिए बंद कर दिया क्व गया था , उनके लिए उन्होंने भगवान् की दया का द्वार खोल दिया । अज्ञान के अन्धकार में से ज्ञानके प्रकाश में जाने का मार्ग खोल दिया, अपने को भी मनुष्य समझने का अधिकार प्रदा कर दिया ।उन्होंने भगवान् के समक्ष किसी को ऊंच-नीच नहीं ठहराया । भक्ति के लिए उन्होंने ऊंच नीच सब को एक बराबर समझा।[73]

70- ब्रजेश्वर : हिन्दी वैष्णव कवि, पृ॰ 14

71- रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य काइतिहास , पृ॰ 101

72- डा॰ केशनीप्रसाद चौरसिया : 'मध्यकालीन हिन्दी सन्त : विचार और साधना, पृ॰ 33

73- 'रामानन्द की हिन्दी रचनाएं' , पृ॰ 30

भक्ति के सन्देश को सर्वसाधारण तक पहुंचाने के लिए उन्होंने जन-भाषा का प्रयोग किया। जन-भाषा में भक्ति का प्रचार शुरु हुआ कि भक्ति -आन्दोलन जन-आन्दोलन हो गया ।

7- तत्कालीन पंजाब का धार्मिक वातावरण और भक्ति आन्दोलन

तत्कालीन पंजाब की धार्मिक स्थिति भी पूर्वोक्त विकृतियों से युक्त होने के कारण क्रान्तिकारी सुधारकों की राह देख रही थी । यहां भी पौराणिक हिन्दू धर्म रुढ़िग्रस्तता का शिकार हो चुका था । आध्यात्म के नाम पर दम्भ फैला हुआ था । मुग़लों की धार्मिक नीति से जनता संत्रस्त थी । उसी समय उक्त भक्ति आन्दोलन का वहां भी उदय हुआ जिसे विकसित करने में निर्गुण उपासकों के साथ साथ राम और कृष्ण के सगुणोपासकों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया । इन सब ने मिलकर इस युग में एक ऐसा स्वस्थ धार्मिक वातावरण प्रस्तुत किया जिसने तत्कालीन निराश हिन्दू जनता में अद्भुत उत्साह और उल्लास का संचार किया ।

देश में मुसलमानों के बस जाने के कारण धर्म के क्षेत्र में भी कुछ नवीन परिस्थितियों की उद्भावना हुई जिनके परिणाम स्वरुप हिन्दू मुसलमान दोनों के ऊपर एक सामान्य भक्ति मार्ग का विकास होने लगा[74]। इसमें जाति-पान्ति -तीर्थ-व्रत, रोजा-नमाज़ आदि सब बाह्याडम्बरों को छोड़ कर सहज समाधि द्वारा ईश्वर प्राप्ति का विधान था । इस नये मार्ग का निर्माण वेदान्त के अद्वैतवाद, इस्लाम के एकेश्वरवाद, सूफियों के प्रेम तत्व, वैष्णवों के अहिंसावाद और सिध्दों-नाथ पंथियों के हठ योग आदि तत्वों के मिश्रण से हुआ । अपनी इसी व्यापकता के कारण इसे लोकप्रियता भी प्राप्त मिली । आचार्यों ने इसे निर्गुण भक्तिधारा के ज्ञान मार्ग के नाम से अभिहित किया । सन्त धारा भी इसी का दूसरा नाम है। इस धारा के प्रथम सन्त महाराष्ट्र के नामदेव माने जाते है। बाद में कबीर, दादू, नानक आदि ने इसे जनसाधरण तक पहुंचाया ।

74- रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ॰ 54

8- सिक्खमत का अभ्युदय और विकास

गुरु नानक देव जी के अवतरण के साथ ही पंजाब में सिक्ख मत का भारतीय धर्म साधना के वट-वृक्ष से पृथक सम्प्रदाय के रूप में अभ्युदय हुआ। गुरु भक्त कवियों ने गुरु नानक के अवतरणके समय की धार्मिक अवस्था के चित्र प्रस्तुत किए हैं और यह भी स्पष्ट किया है कि उस समय अज्ञान, अन्धविश्वास और आडम्बर आदि का अन्धकार कैसे नष्ट हुआ। किस तरह से सद्धर्म का प्रकाश फैला। इस विचार का सुन्दर अलंकृत शैली में भाई गुरुदास ने निम्न प्रकार से निरूपण किया है।

सतिगुरु नानक प्रगटिआ मिटी धुंधु जगि चानणु होआ ।
जिउ करि सूरजु निकलिआ तारे छपि अंधेर पलोआ ।।
× × × ×
गुरमुखि कलि विचि परगटु होआ ।। 27 ।।[75]

भाई सन्तोखसिंह ने भी -'गुरु नानक प्रकाश' तथा 'गुरु प्रताप सूरज' दोनों ग्रंथों में इस तथ्य का सफल निरूपण किया है। 'गुरु प्रताप सूरज' ग्रंथ का नाम-करण सम्बन्धी रूपक भी इसी धार्मिक स्थिति की यथेष्टता से स्पष्ट करता है। इस ग्रंथ के रूपक की व्याख्या कवि ने इस प्रकार से की है :-

इहठा द्वादश पूरनि रासी। जिम रवि वरतहि बारहि मास ।
तिम सतिगुरु की भई प्रकाश । बरन्यो पर मिस द्वादश राशि ।
एक रासि जिम सूरज चले । चहुर दूसरो मसनति मिले ।
तिम गुरु रथ पर असवार । उदे जगत, मिट्यो अन्धकार ।
× × × ×
इम सूरज श्री सतिगुर उदे । तम अग्यान समीप न कदे[76] ।

75- (क) भाई गुरदास : वारां, पउड़ी 27, पृ० 28, (1951) प्रकाशक, खालसा समाचार, अमृतसर।
(ख) भाई गुरदास : कबित्त सवैये, 486, 488

76- गु० प्र० सू० रा० 12, अंसु 68, अंक 22-33, पृ० 4483-84

गुरु नानक देव के अनन्तर उनकी गद्दी पर अन्य नौ गुरु आसीन हुए । जिनका जीवन-इतिहास द्वितीय अध्याय में दिया जा चुका है। इन्होंने सिख मत को विकास के पथ पर अग्रसर किया। इन्हीं के प्रताप का सूर्य अज्ञान तिमिर को दूर कर जनता को स्वधर्म का मार्ग दिखाता रहा है । यह सम्प्रदाय यद्यपि भक्ति आन्दोलन की उपज था परन्तु इसका दृष्टिकोण उससे कई बातों में पृथक था । इस मत की अपनी कुछ विशिष्टताएं थी । नाम जप को इस सम्प्रदाय में सर्वोच्च स्थान प्राप्त हुआ। इस मत में अन्य सन्त मतों के समान निर्गुण भक्ति के प्रायः सभी तत्व उसी रूप में समाविष्ट हुए । परन्तु इस मत के धार्मिक विश्वासों में सेवा, कीर्तन, गुरु वाणी का पाठ आदि का सर्वाधिक महत्व प्रतिपादित है। भाई सन्तोख सिंह ने सन्त मत के समकक्ष सिक्ख मत में आने वाले धार्मिक विश्वासों के साथ सिक्खमत के विशिष्ट तत्वों का बड़ी निष्ठा से 'गुर प्रताप सूरज' में प्रतिपादन किया और सिक्खों की महिमा का वर्णन किया है। वस्तुतः यही इस ग्रंथ का प्रमुख प्रतिपाद्य विषय है। सिक्खमत के तत्वों पर आगे विस्तार से प्रकाश डाला गया है ।

<u>खालसा पंथ</u> : इसी सिक्ख मत के अन्तर्गत तत्कालीन राजनैतिक एवं धार्मिक परिवेश से विवश होकर दशम गुरु श्री गोविन्द सिंह जी ने सिक्खी मत के अन्तर्गत खालसा पंथ की स्थापना की । जिस में हरिभक्ति के साथ अन्याय और अत्याचार के विरोध एवं सत्य न्याय एवं स्वधर्म की रक्षा के लिए खड्ग को धारण करने का भी विधान किया गया । गुरु गोविन्द सिंह ने खालसा पंथ के लिए ऐसे सामाजिक एवं धार्मिक आदर्श स्थापित किए जिनसे इसके धार्मिक एवं राजनैतिक संगठन को ही बल नहीं मिला वरन् उस के सामाजिक एवं नैतिक पक्ष को भी दृढ़ता प्रदान की । खालसा की स्थापना से पंजाब में एक नवीन राजनैतिक एवं सांस्कृतिक जागरण का अभ्युदय हुआ जिसने यहां के जन जीवन को प्रेरित और उत्साहित किया । नई शक्ति और साहस प्रदान किया । पंजाब की जीवन धारा को बदल दिया । गुरु प्रताप सूरज में खालसा पंथ की स्थापना की पृष्ठभूमि उसके आदर्शों और महिमा आदि का निष्ठा एवं श्रद्धा पूर्वक विशदता से निरूपण हुआ है[77] ।

77- गु॰ प्र॰ सू॰ रि॰ क॰ 3, अंशु 17-22, पृ॰ 5046-71

भाई सन्तोख सिंह खालसा पंथ को श्रेष्ठता एवं महिमा का वर्णन करते है हुए लिखते हैं :–

पंथ खालसा सुरतरु बोवा । सतिगुरु तप दिढ़ मूल खरोवा ।
सिख संगति छाया जिस पाइ । दुहि लोकन सुख को उपजाइ ।।[78]

खालसा गुरु है गुरु खालसा करौं मैं अबि जैसे
गुरु नानक जो अंगद को कोनिओ ।।[79]

जिस प्रकार गुरु गोबिन्द सिंह खालसा को अपना रूप मानते थे उसी तरह ही भाई सन्तोख सिंहने इसके स्वरुप पर प्रकाश डाला है ।खालसा पंथ ने गुरु गोविन्द सिंह के पश्चात् सिक्ख मत के अनुयायियों को सामान्यतः पंजाब के धार्मिक सांस्कृतिक, राजनैतिक एवं वैयक्ति जीवन को जिस शक्तिमता के साथ प्रभावित किया है उसके संकेत गुरु प्रताप सूरज में मिलते हैं ।

9- 'गुरु प्रताप सूरज' में वर्णित धर्म का स्वरुप

'गुरु प्रताप सूरज' पंजाब के सिक्ख गुरु इतिहासके कथानक को लेकर धर्म-निष्ठता से अनुप्राणित भाई सन्तोख सिंह को गुरुमुखी लिपि में लिखी गई 'ब्रज भाषा' कि हिन्दो को अनुपम रचना है ।उन को गणना हम ऐसे सिक्ख कवियों में कर सकते हैं जिन के हृदय में भारतीय धर्म साधना के प्रति स्वाभाविक प्रेम था । उनकी काव्य साधना ने सांस्कृतिक क्षेत्र में हिन्दुओं और सिक्खों को निकट लाने का उपक्रम किया ।अपनी रचना में हिन्दू धर्म सिक्ख धर्म और इस्लाम के तत्वों का समन्वित विश्लेषण प्रस्तुत कर उन्हें एकता के सूत्र में बान्धने का प्रयास किया है । उन्होंने भारतीय संस्कृति के उत्थान के प्राचीन काल को सांस्कृतिक सम्पति के उपयोग

78- गु · प्र · सू · रा ।, अंशु ।, अंक 35, पृ · 1302
79- वही , रि · 3, अंशु 20 अंक 6, पृ · 5059

के साथ साथ मध्ययुगीन संस्कृति का निरूपण भी 'गुरु प्रताप सूरज' में बड़ी शिदता से किया है। तत्कालीन धार्मिक वातावरण का इस में भव्य चित्रण हुआ । इसके साथ ही उन्होंने सिख गुरु साहिबान द्वारा किए गए सांस्कृतिक पुनरुत्थान की झांकी भी इस में प्रसतुत की गई है ।उन्होंने नवीन सांस्कृतिक चेतना को विकसित करने के लिए जो जो प्रयास किए उन सब का इस में विशदता से उल्लेख हुआ है ।

10- 'गुरु प्रताप सूरज' और हिन्दू धर्म :

जैसाकि ऊपर संकेत कियागया है कि गुरु साहिबान के युग में हिन्दू धर्म अपने अनेक मत मतान्तरों सहित उत्तरी भारत में प्रतिष्ठित था । साधरण लोग किसी एक मत के अनुयायी होते हुए भी दूसरे मतों के प्रति श्रध्दा का भावरखते थे । भाई सन्तोख सिंह का अपनायुग भी अनेक मत मतान्तरों की छाप लिए हुए था । गुरु प्रताप सूरज' में इन्होंने इस तथ्य की अभिव्यक्ति करते हुए लिखा है :-

केतिक मत गिनिए जग भये ।तनक सिध्दि लहि पंथ चलए ।
परमेशुर को नहीं पहिचानै।अपर विधिनि उपदेश बखाने ।। 5 ।।

ऐसी धार्मिक स्थिति के भ्रमजाल में जनता फंसी हुई थी । उन्हें सद्धर्म बतानेवाला कोई नहीं था । इसी लिए प्रभु स्वयं गुरु नानक रूप में अवतारित हुए और जनता को संमार्ग दिखाया ।

आप जाइ जाई करि सुमति बताओं ।परे कुमग ते सुमग चलावौ।
यो बिन सरै कारइहु नांही ।यांते नरतन धरि जग माहि ।। 8 ।।

(क) विविध धार्मिक सम्प्रदाय

'गुरु प्रताप सूरज' में हिन्दू धर्म के अनेक देवी देवताओं और धार्मिक सम्प्रदायों की उपासना पध्दतियां का उल्लेख हुआ है। कहीं देवी के भक्तों के चित्र अंकित तो कहीं वैष्णव भक्तों का उल्लेख है। कहीं शैवमत के अनुयायी का उल्लेख है तो कहीं योगियों की चमत्कारपूर्ण करामतों का, कहीं ब्राह्मण धर्म के गायत्री मन्त्र के जाप की ध्वनि सुनाई देतीहै तो कही मूर्तिपूजा द्वारा अपने उपास्यदेव को रिझाया जा रहा था ।

ब्राह्मण वर्ग के पाखंडपूर्ण व्यवहार से सामान्य जनता संत्रस्त थी । जाति पांति के भेद भाव ने भी समाज को जर्जरित कर दिया था ।

(1) देवी पूजकों का सम्प्रदाय(शक्ति उपासना) : शक्ति या देवी पूजा का प्रारंभ कब से हुआ , इस सम्बन्ध में विद्वान अभी तक एक मत[80] नहीं है इसके व्यापक प्रभाव के दृश्य लोक जीवन के विभिन्न स्तरों पर देख जा सकते है । लोक जीवन को इस ने विशेष प्रभावित किया हुआ था । दुर्गा सप्तशती, मार्कण्डेय पुराण तथा देवी भागवत पुराण में दुर्गा भवानी आदि विभिन्न रूपों में इसकी उपसना का उल्लेख मिलता है । लोग देवी उपासना के लिए देवी -मन्दिरों की यात्रा किया करते थे । गुरु अंगद सिख धर्म में दीक्षित होने से पूर्व ऐसे लोगों के प्रतिनिध बन कर ज्वाला जी की पूजा के लिए प्रतिवर्ष यात्रा किया मकरते थे । 'गरु प्रताप सूरज' में खेड़ा सोयनी ब्राह्मण[81] की देवी -उपासना का चित्र भी अंकित है । इस के अतिरिक्त गुरु गोबिन्द सिंह के जीवन -चरित में देवी उपासना का विशेष उल्लेख मिलता है। वे स्वयं देवी से कदवरदान प्राप्त करने के लिए महायज्ञ करते हैं और देवी की प्रसन्नता प्राप्त कर 'खालसा पंथ की रचना करते हैं ?। उन्होंने स्वयं भी अपने काव्य ग्रंथ 'चंडी दी वार' में उसकी स्तुति की है ।[82] तदानुकूल विचाराधारा का अनुसरण करते हुए भाई सन्तोखा सिंह ने देवी की स्तृति का वर्णन 'गुरु प्रताप सूरज' में किया गया है । यथा

''जै जै देवी जै चंड करालो । जै जै अंबे बाहु बिसालो ।
जै जै अबट भुजा बलवालो । जै जै भामा मुडनि मालो ।।[83]

इन पंक्तियों से इस सम्प्रदाय का प्रभाव स्पष्ट होता है। उसके विभिन्न नामों का भी इस ग्रंथ में कई स्थानों पर उलेख हुआ है ।

80- हिन्दुत्व , पृ॰ 718

81- चंडी दी वार ,दशम ग्रंथ , छन्द , 2

82- गु॰ प्र॰ सू॰ रि 3, अंशु 10, अंक 19,24,पृ॰ 4956

(2) वैष्णव मत : वैष्णव मत के प्रति 'गुरु प्रताप सूरज' में चित्रित समाज को सहज श्रद्धा है। सिक्ख धर्म में दि दीक्षित होने से पूर्व गुरु अमरदास परम वैष्णव भक्त के रूप में चित्रित किए गए हैं।[83] कवि ने कई स्थानों पर गुरु साहिबान को विष्णु के अवतार के रूप में चित्रित कर इस मत के प्रभाव को स्पष्टतः स्वीकार किया है । कवि ने मंगलाचरणों में विष्णु के अवतार राम, कृष्ण कृष्ण की बन्दना का तत्कालीन धार्मिक भावना को व्यक्त किया है।

1?-श्री पति विष्णु भेये अवतारा ।[84]

2- हरता विघनान महा अघ को उर आतम ग्यान प्रकाशति ज्यों हरि।[85]
हरि देति बड़ाई सु दासन को कमलासन ध्यावति जाहि भजे हरि ।।

इस प्रकार 'गुरु प्रताप सूरज' में भगवान विष्णु के विभिन्न राम ,कृष्ण, नृसिंह ,वामन आदि अवतारों के वर्णन[86] से इस मत की तत्कालीन युग में लोक प्रियता व्यक्त होती है माई दास वैष्णव का चरित्र भी इस में अंकित है[87] ।

(3) शैव मत : शैव मत के प्रति चिरकाल से भारत के जनसाधारण की श्रध्दा रही है। मध्यकाल में भी शिव भक्ति हिन्दू जनसाधारण और हिन्दू धर्म के प्रभाव में आने वाली जातियों का धर्म था[88] । गुरु प्रताप सूरज में गुरु साहिबान के महत्व प्रतिपादन के अलंकारिक चित्रों में शि,भक्ति का उल्लेख किया है । कहीं उनकी समाधिस्थित मूर्ति से से तुलना की गई है तो कहीं उन्हें पौराणिक रूप में अपने भक्तों के अहंकार को दूर करने की कथाओं का उल्लेख है ।

83- "Amar Dass was a zealous believer in Vaishnau faith" Macauliffe: The Sikh Religion , Vol.II p.30

84- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 1, अंशु 14, अंक 18, पृ 1369

85- वही , रा 1, अंशु 1 अंक 11, पृ॰ 1278

86- वही , रा 1, अंशु 1, अंक 23, पृ॰ 1294

87- वही , रा 1 अंशु 52, पृ॰ 1547

88- Dr. Tara Chand: Influence of Islam on Indian Culture p.131

1- ताहि उतरे तन शंभू सरोखा[89]।

2- मनो किश शिव मूर्ति ध्यान लगाई –।[90]

3- जथा शंभू मुनि गन के माहि - ।

पावन सभा शुभति ते ताहीं ।-[91]

(4) योगी और सिध्द सम्प्रदाय : 'गुरु प्रताप सूरज' के अध्ययन से विदित होता है कि गुरु कालीन भारत समाज में विविध योगी सम्प्रदायों का विशेष प्रभाव था । इसकी पुष्टि नानक वाणी से भी होती है। उन दिनों में सर्वाधिक प्रभाव नाथपंथी योगियों का था जिनके सब से बड़े पुरस्कर्ता गोरख नाथ थे । इस सम्प्रदाय के साधकों के अपने नाम के आगे नाथ शब्द जोड़ने के कारण इसका नाम नाथपंथ पड़ा । जिस मेंयोगपरक पाशुपत शैवमत का कि विकास हुआ[92] । इस संबन्ध में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का मता है कि गोरख नाथ ने शैव प्रत्यभिज्ञ दर्शन के आधार पर बहु विस्तृत काया -योग के साधनों को क्रम व्यवस्थित किया[93] ।

'गुरु प्रतापसूरज में योगी और सिद्ध सम्प्रदाय का विशेष उल्लेख कि मिलता है । इस मत के प्रवर्तक समय समय पर आकर गुरु साहिबान से चर्चा करते थे । अपने चमत्कार दिखाते थे तथा गुरु साहिबानका परीक्षा लेते थे।सिक्ख धर्म मे ऐसे तपस्वी सिध्दों की कठोर तपस्या को आदर की दृष्टि से नहीं देखा जाता था । इसी लिए विचारधारा का भाई सन्तोख सिंह जी ने उल्लेख किया है ।

89- गु॰ प्र॰ सू॰ रा ।, अंशु 6, अंक 25, पृ॰ 1330

90- वही रा । अंशु 9, अंक 9, प 1341

91- वही, रा॰ ।, अंशु 34 अंक 31, पृ॰ 1462

92- हिन्दी साहित्य कोश , पृ॰ 389

93- नाथ सम्प्रदाय , पृ॰ 148-156

गोरख नाथ के अनुयायी सिध्द भतृहरि, चर पट, गोपी चन्द, ईशर नाथ आदि गुरु अंगद के दर्शनार्थ आते है और उनको परीक्षा लेने के साथ साथ योग मत की श्रेष्ठता प्रतिपादित करते हैं । तब गुरु अंगद देव उन्हें कहते है कि कठोर तप साधना और योग अभ्यास का अब युग व्यतीत हो चुका है। हमारा मत तो भक्ति योग है।

आतम ज्ञान भगति हो देति ।
भगति करति सभि हो सुख लेति ।
× × × ×
याति रहो अनातम मांहो ।
ब्रह्मातम को जानहु नाहो ।। 33 ।।[94]

इसके अतिरिक्त उन्होंने योगियों के कर्मकांड को निरर्थकता भी व्यक्त की है ।[95] इसो तरह जब ये सिध्द गुरु रामदास के गुरु गद्दो पर विराजमान होने की सूचना प्राप्त करते है तो उनके दर्शनार्थ एवं परोक्षार्थ आकर उनसे पुछते हैं कि आप के गुरमत में अष्टांग योग के अनुसार चित का विरोध करना क्यों नहीं सिखाया जाता क्योंकि इस का बिना मन को स्थिर नहीं किया जा सकता ।मन की एकाग्रता के बिना आत्मा का सक्षात्कार नहो हो सकता । तब गुरु जी ने उन्हें निम्न शब्दों द्वारा प्रेमा भक्ति का सन्देश दिया ।

प्रेमा भति जाग जबि आवहि ।
अपर वसतु महिं ब्रितो न लावहि ।। 32 ।।[96]

गुरमत में तो सहज योग प्रतिपादित है। जो प्रेमा भक्ति पर आश्रित है। सिध्दों जैसो वेश भूषा धारण करलेने से कोई सिध्द नहीं हो जाता ।वास्तविक सिध्द तो वही है जिस ने अपने मन से तन अहंता को ममता को , दूर कर दिया हो । गुरु हरि-

---

94- गु॰ प्र॰ सू॰ रा॰ 1, अंशु 10, अंक 30-33, पृ॰ 1348
95- वहो , रा 1 अंशु 10 पृ॰ 1348 श्री मुखवाक
96- वहो , रा 2 , अंशु 2, अंक 32, पृ॰ 1649

गोबिन्द जो भो उक्त विचारो द्वारा इन सिध्दों को संमार्ग दिखाने का प्रयास करते हैं परन्तु ये है कि बिना अपने चमत्कार दिखाये मानते हो नहों । भंगर सिध्द के अजमत खिाने पर गरु जो उसे प्रताडित भो करते हैं और जब अपने प्रताप को दिखाते हैं तो सभो सिध्द गोरख के पास भाग कर चले जाते हैं ।

(ख) हिन्दुओं के धार्मिक विश्वासों का निरुपण

'गुरु प्रताप सूरज' में सनातन हिन्दु धर्म को वैदिक पौराणिक धर्म निष्ठा, ईश्वर वाद, अवतारवाद, मूर्तिपूजा आदिके प्रति आस्था काविशद निरुपण हुआ है। परन्तु इन सभो तत्वों के प्रति सिक्ख धर्म को आस्था न थोथो ये विश्वास और मान्यतांए पूर्व विवेचित हिन्दू धर्म के ग्रंथों में वर्णित हैं। इन्हीं विश्वासों ने हिन्दुओं के जोवन मं घर किया हुआ है ।

(1) वैदिक धर्मनिष्ठा : हिन्दुओं में अपने धर्मग्रंथों के प्रति अपूर्व निष्ठा पाई जाती है। जिन में शीर्ष स्थान वेदों को प्राप्त है। इन्हें ईश्वरोय ज्ञान को निधि माना जाता है।[97] विविध अनुष्ठानों और संस्कारों के समय वेद मन्त्रों का उच्चारण आज भो श्रध्दा सहित होता है।[98] वेदो का ज्ञान होना एक बहुत बडी योग्यता मानो जातो है। भाई सन्तोख सिंह का इन में प्रतिपादित विचारधारा के प्रति अद्वितोय विश्वास था । उन्होने सिक्ख गुरुओं के विविध अनुष्ठानों और संस्कारों के अवसर पर इन ग्रंथों में प्रतिपादित मर्यादा के पलन का उल्लेख[99] किया है इन ग्रंथों में प्रतिपादित यज्ञ को महानता के प्रति उनको आगाध आस्था थो[100] उन्होंने गुरु साहिबान द्वारा कराये गए यज्ञों के द्वारा इस आस्था का 'गुरु प्रताप सूरज' में स्पष्ट उल्लेख हुआ है ।

97- (क) चारु वेद भेदको पावहि - - - ।- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 1, अंशु 44, अं 10, पृ॰1506

(ख) गाइत्रो श्रुति स्मृति सार - - ।वहो रा । अंक 7पृ॰ 1506

98- वेद धुनि वर प्रिय उचारो ।। वहो, रा 1, अं 68, अंक 48, पृ॰ 1627

99- वहो, रा 1, अंशु 68, अंक 26, पृ॰ 1625

100- वहो ऐन 2, अंशु 20-21, पृ॰ 6319-6327

(2) ईश्वरवाद : हिन्दू जनता का परंपरा से 'ईश्वरवाद-' में विश्वास रहा है। भारतीय संस्कृति में इसकी प्रतिष्ठा उसके पूर्व विवेचित ग्रंथों[101] द्वाराहुई है। भाई सन्तोख सिंह को अस्तिकता का इस मे अपार विश्वास है। उन्होंने अपने ग्रथ में के मंगलाचरणों मे अपने इष्ट गुरुओं को ईश्वर का अवतार माना है। ईश्वर के 'सत् चित् और आनन्द स्वरूप को व्याख्या को है। उनका 'अकाल पुरुष' इसी ईश्वरवादो भावना कापरिचयक है।

तीनो काल सु अचल रहि अलंब सकल जग जालि ।
जाल काल लखि मुचति जिहि करता पुरुष अकाल ।। ।[102] ।।

(3) अवतार वाद : भारतीय संस्कृतिक के पौराणिक साहित्य में इसकी सुन्दर कल्पना को गई है। हिन्दू जनता का यह प्रबल विश्वास है कि प्रभु ने सत्य युग, द्वापर', और त्रेता में कई अवतार धारण कर राक्षसों का नाश किया । कलिकाल में प्रभु ने हो गुरु नानक के रूप में अवतारधारण[103] किया । गुरु प्रताप सूरज' में इस भावना का स्पष्ट उल्लेख हुआ है। भाई सन्तोख सिंह ने अपने पूर्ववर्ती कवियों (भाई गुरदास, गुलाबसिंह सूखा सिंह आदि)को भान्ति हो गुरु साहिबान को अवतार रुप में वर्णित किया है । धर्म को ग्लानो को दूर करने के लिए अवतरित होते है[104] ।दशम ग्रंथ मे[105] प्रतिपादित विचार धारा के अनुसार हो गुरु गोबिन्द सिंह स्वयं इस धरतो परअकाल पुरुष के अवतार के रूप मे अवतरित हो कर दुष्ट दोखयनि' का विनाश करते हैं । इसी भावना का

101- ऋग्वेद 1 · 164 · 46, यजुर्वेद 40 · 1, ब्रह्म सूत्र 1 · 2योग सूत्र 1 · 24 -26, महाभरत :अनुशासन पर्व 149 ·138, विष्णु पुराण 6 · 5 · 86, भागवत पुराण 1 · 1 ·1 11 · 9 · 21, गोता 15 · 17 · 18 · 61

102- गु · प्र · सू · रा 1, अंशु 1 अंक 2 पृ · 1261

103- वही , रा 1, अंशु 6, अंक 65 8, पृ · 1328

104- वही , रि 5, अंशु 52, अंक 26, पृ · 5733

105- जब जब होत अरिसटि अपारा ।तब तब देह धरत अवतारा ।।

— दशम ग्रंथ पृ · 155

भाई सन्तोख सिंह भ प्रतिपादन करते हुए अपनी आ लंकारिकत शैली में गरु साहिबान कोपौराणिक अवतारों के रूप में चित्रित करते हैं । इस तथ्य का पीछे तृतीय अध्याय में विशदता से निरूपण किया जा चुका है।

यद्यपि गुरु नानक तथा अन्य सन्तमतों ने सगुणवादी अथवा अवतारवादी भावना के सथान पर निर्गुणवादी भावना को प्रतिपादित करने का प्रयास किया था तथापि सामान्य हिन्दू जनता के हृदय में भगवान के लीला मय एवं दुष्ट दमनकारी अवतारा रूप के प्रति अपार आस्था थी ।

(4) मूर्तिपूजा : परंपरा सेहिन्दू धर्म के अनुयायी मूर्तिके माध्यम से ईश्वर की आराधना करते आये है। इस युग में भी लोग मूर्तिपूजा द्वारा अपने इष्ट को रिझाया करते थे । उसकी मूर्ति के समक्ष प्रेम में विभोर हो जाते थे । मन्दिरों में प्रातः से सांय तक मूर्ति का मूल्यवान रत्नों से श्रृंगार होता था । दुर्लभ भेंटे चढाई जाती थी । परन्तु समय की गति ने मूर्ति पूजा की वास्तविक भावना को भुला दिया था । ईश्वर का पूजा पत्थर की मूर्ति द्वारा होने लगी । सर्वव्यापक प्रभु को एक मन्दिर विशेष में बन्द कर दिया गया । यद्यपि ईश्वर ध्यान के निमित मात्र के लिए मूर्ति की कल्पना हुई था परन्तु लोगों ने उसे ही सर्वस्व बना दिया । जब इस मूर्ति पूजा के नाम पर अनेक ढोंग और बाह्याडंबर फैलने लगे तब मध्यकालीन अन्य सन्तों की तरह गरु साहिबान ने भी मूर्तिपूजा जन्य उन सभी बुराइयों पर कटु आघात किए[106] । तदानुसार ही भाई सन्तोखसिंह ने भी हिन्दू धर्म की इस भावना पर प्रहार किया और लिखा है:-

'पाथर को धर मूरति को करि चित्र कियों लिखि भीत दिया।
पूजति है तिह सीस निवावति भोजन को धरि देति आगारी।

× × ×

इष्ट अरोपि कै मूरत महिं उर ध्यान धरै मन प्रेम लगावै।
पावति है धरि कामन को, चित को निश्चा नहि कों सफलावै।'[107]

106- आकल स्तुति , दशम ग्रंथ , छन्द सं 90, वही छन्द 30

107- गु॰ प्र॰ सू॰ रैन 2 अंशु 16, अंक 5,9 पृ॰ 6294

इसी कारण उन्होंने पत्थर की पूजा अर्जना करने वाले हिन्दुओं के धर्म को कच्चा मत बताया है।

(5) भाग्यवाद : यह वाद मानव वर्ग की उक्त सीमित शक्ति का ही प्रकाशक है। इसी को दैव वाद या विधिवाद भी कहा जाता है। मनुष्य प्रभु के हाथ की कटपुतली या शतरंज के शक्तिहीन मोहरे की तरह है जिस में स्वतः कुछ कर सकने की समर्थता हो कहां है ? अनतिक्रमणीय नियामक दैव की महिमा का 'गुरु प्रताप सूरज' में भी वर्णन है जो प्रभु के 'हुकम सिध्दांत' और भाणा सिध्दांत का समर्थक है ।

'गुरु प्रताप सूरज में इस भाग्यवाद का निरूपण अनेक स्थानों पर हुआ है। इस में कहा गया है कि दर्लभ वस्तु बिना भाग्य प्राप्त[108] नहीं होती । भाग्य से ही गुरु सन्त का मिलाप[109] होता है। ललाट मे लिख मिटाने के में कोई समर्थ नहीं होता है। जिस के भाग्य में प्रभु ने हरिस्मरण लिखा है उनकी बुराई कोई क्या कर सकता है। गुरु जी के शब्दों में द्रष्टव्य : -

तिनी अंतरि हरि आराधिआ जिन कउ धुरि लिखिआ लिखतु लिलारा ।
तिन की बखीली कोई किआ करे जिनका अंगु करे मेरा हरि करतारा ।।[110]

प्रारब्ध के दुख सुख सभी को भोगने[111] पड़ते है। सब इसी के वश में है। संयोग वियोग[112] सब विधाता के अधीन[113] है। इसे कोई नहीं टाल सकता । जो प्रभु को अच्छा लगता है वही[114] होता है।

108- गुरु प्र· सू· रा 2, अंशु 21, अंक 28, पृ· 1728 तथा अंशु 23 अंक 59 पृ· 1736

109- वही, रा· 2 अंशु 22, श्री मुखवाक , पृ· 1730

110- वही , रा 2, अंशु 22 श्री मुखवाक , पृ· 1734

111- वही , रा 2, अंशु 24, अंक 8, पृ· 1741

112- वही , रा 3, अंशु 36, अंक 28 , पृ· 2061

113- वही रा 4, अंशु 7, अंक 42 पृ· 2253

114- वही रा 4 , अंशु 8, अंक 11 पृ· 2258

भावो को कोई नहीं मिटा सकता[115] । इस लिए इसके प्रति आस्थावान होना चाहिए।[116] बिना प्रारब्ध के किसा को कुछ प्राप्त नहीं होता[117] ।

कर्मवाद :

शुभाशुभ कर्मों के कारण हो जवात्मा सुखदुख भोगता है । पूर्व देह को त्याग कर जोव अपने कर्मानुसार हो स्व स स्वर्ग या नरक में पहुंचता है।[118] चेतन आत्मा का जब अन्तःकरण और अज्ञान से मिलन होता है तब हो वह कर्म धारण करने में समर्थ होता है । इस भाव कोसक रुपक द्वारा स्पष्ट करते हुए भाई सन्तोख सिंह लिखते है :-

> तानहु के संजो जबि क होइ । करम धुरनि समरथ हैं सोइ ।
> अन्तकरण रुप तरकश महि । कस वाण वासा नित प्रति लहिं।[119]

115- (1) गु॰ प्र॰ सू॰ रा 4, अंशु 46 अंक 41, पृ॰ 2423
(2) वहो रा 4, अंशु 50 अंक 2, पृ॰ 2436
(3) वहो, रा 5, अंशु 12, अंक 11, पृ॰ 2557
(4) वहो, रा 5, अशु 14, अंक 30, पृ॰ 2565
(5) वहो, रा 9 अंशु 18 अंक 20 पृ॰ 3610

116- वहो, रा॰ 9 अंशु 19 अंक 2 पृ॰ 3614

117- वहो, रि6 अंशु 56, अंक 9 पृ॰ 5971

118- नरक सुरग हुइ जिन फल साथा ।।- वहो अंक 6, पृ॰ 5650

119- वहो, रि 5 अंशु 41 पृ॰ 5651

कर्म फल भोग को दृष्टि से जीव के त्रिविध कर्म कहे गए है – संचित, प्रारब्ध और क्रियमाण (वर्तमान)[120] ।

(1) संचित[121] : अनेक जन्मों के किए गए प्राक्तन कर्म को संचित कर्म कहते हैं यह संचित कर्म कच्चे फल से सदृश्य है जो भोग के योग्य नहो हुआ[(2)] । प्रारब्ध जीवन के देह धारण करते समय कालसंचित कर्मों के जिस अंश के भोग के लिए उसे प्रेरित करता है उसे 'प्रारब्ध कहते है । प्रारब्ध कर्म पका फल है जो भोग के योग्य है । इस जन्म का जो प्रारब्ध कर्म है उसे भोगना ही पडेगा । बिना भोगे उसका क्षय नहीं होगा । वह तो धनुर्मुक्त वाण है जो लक्ष्य को वेध कर ही रहेगा ।

जो तरकश ते तीर निकारा । ऐंचि धनुख छुटिचलयो अगारा ।
अपनो बेग सु सभि हो करी के । निष्फल होति रहै धर परि के ।
पाररबध है या को नाम । दे फल सभि को हेइ विराम ।। 18 ।।[122]

3 क्रियमाण : इस समय जो कर्म किया जा रहा है उसे क्रियमाण ' यावर्तमान कर्म कहते है[123] ।

'क्रिया होति नित जुति अभिमान ।
किरेमान ए जान सुजान ।।[124]

120- तीन बिधिनि के करम पछान । सचति , परालब्ध , किरेमान ।
– गु · प्र · सू · रि 5, अंशु 4। अंक 7पृ 5650

121- अनिक जनम के करे इकत्र । सो संचति है नाम वचित्र ।।
- वही , रि 5, अंशु 4। अंक 20, प? 5651

तथा , अनेक जन्म संजातं प्राक्तनं संचितं स्मृतम् । – देवी भागवत पुराण 6 ·10 · 9

122- गु · प्र · सू · रि 5, अंश 4। अंक 18 पृ · 5651

तथा देहारम्भे च समये काल : प्रेरयतीव तत ।– देवी भागवत पु · 6 · 10 · 13-14

123- क्रियमाणं च यत्कर्म वर्तमानं तदुच्यते । – देवी भागवत पु · 6 · 10 · 12 तथा
गुरु प्र · सू · रि 5, अंशु 4। अंक 21 पृ · 5651-52

124- वही , अंक 21-23 पृ · 5652

इसो क्रियामाण कर्म को तान संज्ञाएं हो जातो है ।प्रथमा वस्था में यह 'क्रिमाण कहा जाता है द्वितीय में इसे 'संचित कहा जाता है और तृतोयावस्था में इस को प्रारब्धसंज्ञा हो जातो है । जैसे एक भविष्य काल होता है, पुनः वर्तमान होजाता है और फिर वहो भूतकाल हो जाता है।

'गुरु प्रताप सूरज' में इस कर्मवाद केप्रति पूर्ण आस्था व्यक्त को गई है। गुरु साहिबान यह मानते है और अपने सिक्खों को इस बात का उपदेश देते है कि जैसा कोई व्यक्ति कर्म करता है तदानुसार उसे फल भोगना हो पड़ेगा । कहा भो है :-

1- पूरबले जिन भाग मन्देरे ।नहिं पहुंचे सतिगुर के नेरे[125] ।

2- बिना करम दुख सुख नहि पायो

× × ×

पूरब करम फल मिटतो नाहि ।।[126]

3- करमनि बसि जूनन महि खेल ।

जहिं जहिं जनम धरौ मैं जाइ ।।[127]

कर्म हो मनुष्य को विभिन्न योनियों मेंभटकाता रहता है। मनष्य को अपने शुभाशुभ कर्मो का फल अवश्य भोगना पड़ता है। इसी का नाम कर्मविपाक[128] है जो पुर्नजन्म का कारण बनता है। यह कर्म भो सकाम और निष्काम रूप मे दो प्रकार के कहे गए[129] है ।

125- गु. प्र. सू. रि 3, अंशु 21, अंक 33, पृ. 5066

125- वहो , रा 2, अंशु 17, अंक 29,30, पृ 1712

127- वहो रा 8, अंशु 8, अंक 7-8, पृ. 3338

128- वहो , रा 2, अंशु 17, अंक 14 पृ. 1710

129- वहो रा 5, अंशु 44 , अंक 6,14 पृ. 2684

पुनर्जन्मवाद : यह वैदिक सनातन धर्म का मूल सिध्दांत है ।पुनर्जन्म शब्द का अर्थ ही मानव के दुबारा जीवन प्राप्त करने का द्योतक है। जड़ देह में बारंबार रोगशोक, जरा, मृत्यु , सुख दुख, को श्रृंखला श्रृंखला में आबध्द होकर आवागमन के चर्क में भटकता रहता है । जीवात्मा को साधरणतया निम्न मुख्य कारणों के वशीभुत होकर जन्म ग्रहण करना पड़ता है। (1) भगवान को आज्ञा से , (2) पुण्य के क्षय हो जाने पर, (3) पुण्यका फल भोगने के लिए (4) पाप का फल भोगने के लिए, (5) बदला लेने के लिए (6) बदला चुकाना , (7) अकाल मृत्यु होजाने से या (8) अपूर्ण साधन को पूण करने कके लिए । इन के अतिरिक्त अन्य कारण भी आशीर्वाद, शाप आदि हो सकते हैं । इस सिध्दांता का निरूपण – वेद, वेदांग , दर्शन , स्मृति , पुराण आदि सभी ग्रंथों में देखा जा सकता है ।

भारतीय संस्कृति की यह मान्यता है कि मृत्यु को मानव जीवनका अन्त नहीं होता । हमारा आत्मा शरीर रूपी जर्जर वस्त्र त्याग कर नया वस्त्र (नयाशरीर) धारण करता है। आत्मा अमर है।[130] कर्म के अनुसार उपहार या दण्ड रूप में जीव नाना योनियों (84 लाख) में जन्म लेता है । संसार में अपने अच्छे या बुरे कर्मों के अनुसार उत्पन्न होता है और उक्त योनियों में भ्रमण करने के पश्चात् मनुष्य जीवन जैसा दुर्लभ और समुन्नत शरीर प्राप्त करता है। स्वेदज , उद्भिज्ज, अण्डज, जरायुज आदि जीव योनियाँ एक के बाद दूसरी , पहले से ऊंची मानी जाती है। कर्म के अनुसार ही जीव योनि प्राप्त करता है। पुनर्जन्मवाद में कर्म-विपाक ही प्रबल प्रमाण माना जाता है । उक्त कर्मवाद के विवेचन से ही विदित हो गया होगा कि 'गुरु प्रताप सूरज' में भारतीये संस्कृति की इस धार्मिक भावना का उल्लेख कई स्थानों पर हुआ है और इसके प्रति आस्था व्यक्त की गई है जैसे :-

इहु तन तजि कै अपर धरीजै ।
पुन हम ढिग हुइ आनंद लीजै ।।

× × ×

130- ऋग्वेद 1 · 164 · 38 तथा अथर्ववेद 9 · 10 · 16

सो जोगी धरि वाशना जनमो गुर कुल माहि।। [131 क]

2-फल पूरबले पुंननि केरा।जनम धारि भोगहि इस बेरा।। 25 ।। [131 ख]

3-तप फल ते इह मम सुत होवा।सिमरि प्रभु को संकट खोवा।
बार मुखा इह नुखा भई है।तपसो रति ते सुमति लई है।। 31 ।। [131 ग]

4-पूरब जनम हुतो नर तन मैं।अबि केहरि हुइ बासौं बन मैं ।। 38 ।। [131 घ]

5-तबि को मैं शूकर तनि पाइ।बिचरति रह्यो वडालो थाइ ।। 46 ।। [131 ङ]

उक्त सभी उदाहरणों से स्पष्ट होता हैं कि प्राणी का पुनर्जन्म उसके पापों और पुण्यों के फल भोगने के लिए होता है। उसकी कामनाएं एवं वासनाएं ही उसके पुर्नजन्म का कारण बनती हैं। कहीं कोई पूर्वजन्म का महन्त अजगर के रूप में जन्म ग्रहण करता है,[132] कहीं कोई किन्नर मुनि के शाप वश जन्म धारण करता है।[133] कहीं कहीं कोई अहंकारी पंडित अजगर की योनि ग्रहण करता है[134] कहीं किसी मसन्द की पुरातन जीवन कथा वर्णित है[135] तो कहीं किसी लांगरी की।[136] इस तरह की कथाएं

131- (क)गु॰प्र॰सू॰रा 1,अंशु 58,अंक 47,पृ॰ 1576तथा अशु 59,अंक 1,पृ॰1576

(ख)वही , रा 3, अंशु 52, अंक 25, पृ॰ 2151

(ग)वही , रा 3,अंशु 69, अंक 31,पृ॰ 2223

(घ)वही , रा 4, अंशु 55,अंक 38,पृ॰ 2460-61

(ङ)वही, रा 7, अंशु 11, अंक 46, पृ॰ 3097

132- वही, रा 7, अंशु 57, अंक 29, पृ॰ 3289

133- वही , रा 8, अंशु 35, अंक 13-16, पृ॰ 3445

134- वही , रा 9, अंशु 4, अंक 26, पृ॰ 3560

135- वही , रि 3, अंशु 40, अंक 3, पृ॰ 5150

136- वही , रैन 1, अंशु 16, अंक 15, पृ॰ 6059

उपदेशात्मकता से ओत प्रोत हैं । इस तरह के कथानकों के संकलन से मनुष्य की धार्मिक भावना ही विकसित नहीं होती प्रत्युत वह संमार्ग पर चलने लगता है । इनके द्वारा प्रतिपादित जीवन का मूलोद्देश्य ही आध्यात्मिक है। भाई सन्तोख सिंह मानव योनि में जन्म लेने का एक मात्र उद्देश्य भव-सागर से छुटकारा पाना ही व्यक्त करते हैं[137]।

(8) तीर्थ-सेवन :

स्वरूप : 'तीर्थ' शब्द का अर्थ है – पवित्र करने वाला। महापुरुषों को इसी लिए परमतीर्थ कहा जाता है, क्योंकि अपने लोकोत्तर भगवदीय गुणों के प्रभाव से वे तीर्थों को भी पवित्र करते हैं – 'तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि'। सामान्यतः उस नदी, सरोवर, मन्दिर अथवा भूमि को तीर्थ कहा जाता है, जहां ऐसी दिव्य शक्ति है कि उसके सम्पर्क में (स्नान - दर्शनादि के द्वारा) जाने पर मनुष्य के पाप अज्ञात रूप से नष्ट हो जाते हैं । ऐसे तीर्थ तीन प्रकार हैं – नित्य तीर्थ, 2- भगवदीय तीर्थ, 3- सन्त तीर्थ[138]।

(1) नित्य-तीर्थ : काशी, प्रयागराज, अमृतसर आदि नित्य तीर्थ हैं । सृष्टि के प्रारंभ से यहां की भूमि में दिव्य पावनकारिणी शक्ति है। गंगा, यमुना आदि पुण्यसरिताएं हैं।

(2) भगवदीय तीर्थ : जहां भगवान का अवतार हुआ, जहां उन्होंने कोई लीला की, जहां उन्होंने किसी भक्त को दर्शन दिए, वे भगवदीय तीर्थ हैं । गुरु साहिबान के जन्म स्थान, निवास,स्थान, लीला स्थान – सभी भगवदीय व गुरु तीर्थ हैं।

(3) सन्त तीर्थ : प्रभु के ध्यान में लीन रहने वाले सन्तों का शरीर भले पांचभौतिक एवं नश्वर हो, किन्तु उस देह में भी सन्त के दिव्यगुण ओतप्रोत हैं । इसलिए सन्त के चरण जहां जहां पड़ते हैं, वह भूमि तेष्ट तीर्थ बन जाती है। गुरु साहिबान ने जिन जिन स्थानों की यात्राएं की वे आज तीर्थ स्थान बने हुए हैं ।

137- (क) गु॰ प्र॰ सू॰ ऐन 2, अंशु 36, अंक 29, पृ॰ 6408

(ख) वही , अंक 34, पृ॰ 6411

138- कल्याण – तीर्थांक, पृ॰ 594

महत्व : पूर्वोक्त विश्वासों को तरह हिन्दुओं में यह विश्वास भो प्रचलित था कि तोर्थो पर स्नान करने जाने, रहने तथा दान पुण्य करने से पापों का नाश होता है। तोर्थ स्थानों को यात्रा संसार के प्रायः सभी धर्मों का एक प्रमुख अंश माना जाता है। धर्म प्रधान संस्कृति वाले इस भारत में तोर्थो को आध्यात्मिक महता प्रतिपादित है। वैदिक साहित्य में तीर्थों को बड़ो प्रशंसा है। ऋग्वेद में तोर्थराज प्रयाग में स्नान दानादि करने वालों को स्वर्ग प्राप्ति की बात कही गई है।[139] अथर्ववेद के अनुसार तोथों के सेवन से बड़े बड़े पाप नष्ट हो जाते है।[140] इसी तोर्थ प्रशंसक अनेक मन्त्र इस साहित्य में मिलते हैं । भारतीय धर्म शास्त्र एवं इतिहास, पुराण में तोर्थो को महिमा का अनुपम गान हुआ है। महाभारत का कहना है कि तीर्थाटन – तीर्थाभिगमन यज्ञों से भो बड़ा है ।[141] विष्णुपुराण स्मृति बतालातो है कि महापातको भो तोच्छा तोर्थानुसरण से शुध्द हो जाता है।[142] 'गुरु प्रताप सूरज' में भी इसी तोर्थ सेवन को महिमा वर्णित है। इस में हिन्दू धर्म के अतिरिक्त इस्लाम और सिक्ख धर्म का वर्नन वर्णन होने के कारण इस में इन तोनों मतों के इस विश्वास से सम्बन्धित विचार मिलते हैं ।

गुरु साहिबान को तोर्थ यात्रा : सिक्ख धर्म में दोक्षित होने से पूर्व श्री गुरु अंगद देव जो ज्वाला जो के दर्शनार्थ जाते थे ।[143] उनके साथ उनके ग्राम के और भी अनेक व्यक्ति जाते थे । उनके प्रतिनिधि हुआ करते थे । इस से स्पष्ट होता है कि हिन्दू लोग उस समय 'ज्वाला जो' को अपना तोर्थ स्थान मानते थे । उनके पश्चात् श्री अमरदास जो की वैष्णव भक्ति भावना गंगा पूजन के लिए प्रतिवर्ष नियमित रूप से जाने से व्यक्त होती है।[144]

139- सितासिते सरिते यत्र संगते सत्राप्लुतासो दिवयुत्पतन्ति ।– ऋक् - परिशि

140- तोर्थैस्तरन्ति प्रवतो महोरिति यज्ञ कृतः सुकृतो येन यन्ति ।-अथर्व• 18 • 4 • 7

141- महाभारत - वन• 82. 17-19

142- विष्णु स्मृति 35 • 6, 36 • 8

143- ना • प्र • उत्त • अध्याय 47, अंक 12, पृ • 1153

144- गु • प्र • सू • रा 1, अंशु 14, अंक 8-11, पृ • 1367-68

वह तो गुरु प्राप्ति के लिए भी बार बार गंगा की स्तुति करते हैं[145]। इस के अतिरिक्त गुरु बनने के पश्चात् अन्य अनेक तीर्थों की यात्रा करते हैं जैसे पेहोवा,[146] कुरुक्षेत्र (ज्योत सरोवर),[147] यमुना स्नान, कनखल[148] इत्यादि। वे इन तीर्थ स्थानों की यात्रा करते हुए अपने श्रध्दालुओं को इन तीर्थों से सम्बन्धित पौराणिक कथाएं भी सुनाते हैं। इन कथाओं पर तृतीय अध्याय में प्रकाश डाला जा चुका है। इनके पश्चात् श्री हरगो हरिगोबिन्द जी की तीर्थ यात्रा का 'गुरु प्रताप सूरज' में उल्लेख मिलता है। वे 'वे नानक मते' की यात्रा करते हुए मार्ग में विभिन्न नदियों में स्नान[149] आदि करते है। तथा थानेसर भी[150] जाते है। तत्पश्चात् हमें गुरु तेगबहादुर जी की तीर्थ यात्रा का विशद वर्णन मिलता है। वे कुरुक्षेत्र में सूर्यग्रहण[151] के अवसर पर जाते हैं तथा तत्पश्चात् मथुरा आगरा होते हुए प्रयागराज,[152] काशी,[153] पटना[154] गया[155] आदि तीर्थों की यात्रा करते हैं। इनके पश्चात् श्री गोबिन्द राय पटना से आनन्दपुर आते हुए मार्ग में काशी[156] और अयोध्या[157] आदि तीर्थों से होकर आते हैं। इस तरह से 'गुरु प्रताप सूरज' में गुरु साहिबान द्वारा की गई तीर्थ स्थानों की यात्राओं के उल्लेख मिलते हैं।

145- गु॰ प्र॰ सू रा 1 अंशु 14, अंक 34-35, पृ॰ 137।

146- वही, रा 1, अंशु 45, पृ॰ 1512-16

147- वही, अंशु 46, पृ॰ 1517

148- वही, अंशु 49, पृ॰ 1532

149- वही, रा 5, अंशु 33, पृ॰ 2637

150- वही, रा 5 अंशु 35, पृ॰ 2645

151- वही, रा 11, अंशु 46 पृ॰ 4143

152- वही, रा 11, अंशु 48, 53, पृ॰ 4156, 4183

153- वही, अंशु 54, पृ॰ 4188

154- रा 11, अंशु 58, पृ॰ 4203

155- वही, अंशु 57, पृ॰ 4199

156- वही, रा 12, अंशु 43, पृ॰ 439।

157- वही रा 12, अंशु 45, पृ॰ 4398

नये सिक्ख तीर्थ : गुरु साहिबान ने अपने सिक्खों के लिए अनेक नये तीर्थ स्थानों की रचना की है। गुरु अमरदास ने गोइंदवाल में बावली की रचना कर पानी की समस्या को ही दूर नहीं किया अपितु उसकी चौरासी पौड़ियों पर 'जपुजी' पाठ द्वारा चौरासी लाख योनियों से पार उतरने की विधि बता कर उसकी महानता भी व्यक्त की है।

"करी बापिका निज सिक्ख कारन ।जनम जनम के कलुष निवारन।
कथा सुनहि जे चित को लाई।सो नर पापन ते छुट जाई।।[158]

गुरु रामदास जी सन्तोखसर[159] तथा अमृतसरोवर[160] को व्यक्त करते है ।कविने इनका पौराणिक महात्म्य[161] भी वर्णन किया है। अमृतसरोवर में हरिमन्दिर का निर्माण करा कर गुरु अर्जुन देव जी ने अपने सिक्खों पर महान उपकार किया है।[162] इस सुधासर की समानता अन्य कोई तीर्थ नहीं कर सकता क्योंकि यहां पर अखण्ड प्रभु-कीर्तन होता रहता है। कवि ने कहा भी है :-

महिमा महा सुधासर जानि ।
गंग जमन सरसुति कुरखेत।कांशी, अरु परयाग समेत ।। 13 ।।
नई मथुर, बिंदाबन, मथरा। द्वारावती, रामपुरि, सुथरा।
गया, गोमती, नदि गोदावरि।अपर नरमदा, मानसरोवर।। 14 ।।
पुरी अयुध्या, अरु केदार ।पुशकर देव सथान उदार ।
नदी गंडका बर गिर नीला।थल रिधि सिध्दनि जहिं रचि लीला।। 15।।

158-गु· प्र· सू· रा 1, अंशु 58, अंक 41, पृ· 1575
159- वही रा 2, अंशु 34, पृ· 1779
160- वही , रा 2, अंशु 37-39, पृ· 1793
161- वही रा 7, अंशु 4, अंक 17-36, पृ· 3064-67
162- वही रा , 2, अंशु 53, अंक 36-37, पृ· 1858

पंजाब के प्रमुख गुरुधामों का मानचित्र

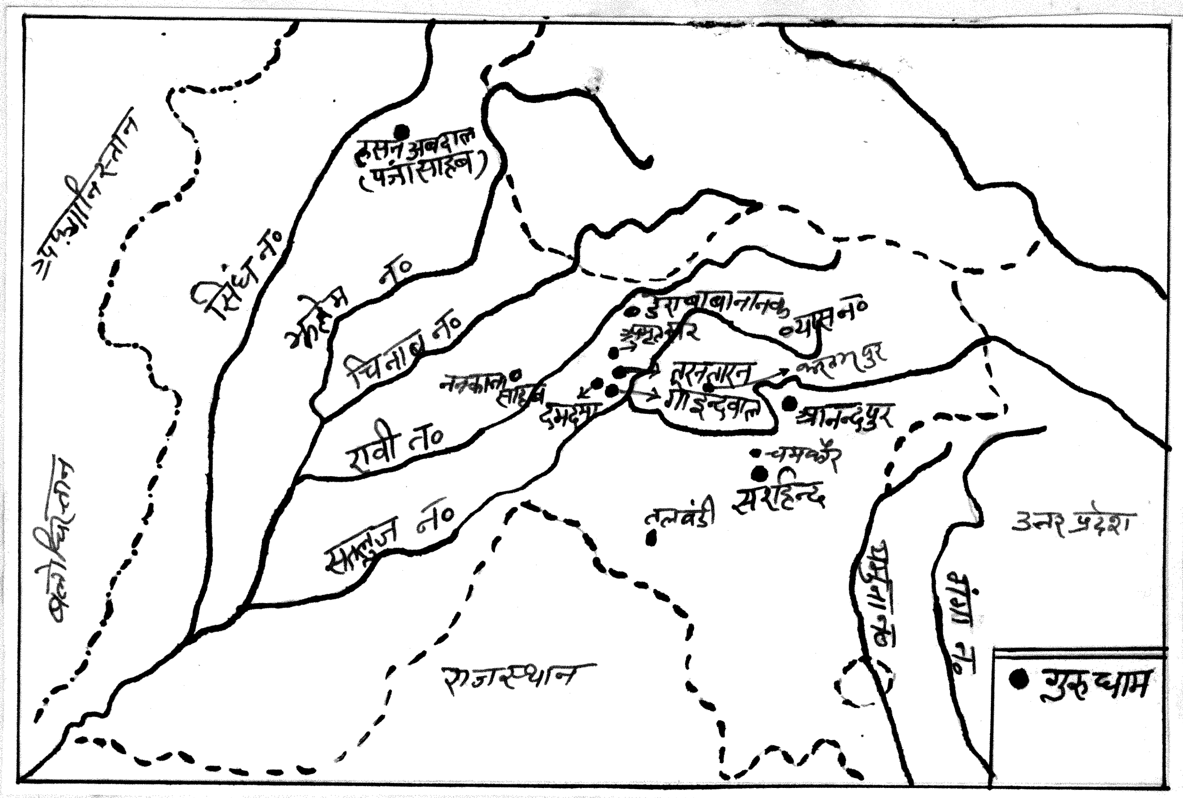

सिखो केश, आर्वति, कदाख ।तीरथ अनगन जे अभिलाख ।
कलि महिं इन कहु महां प्रताप।इहां आनि सभि खोवैं पाप।। ।6 ।।
नहां सुधासर के सम कोइ ।भजन अखंड प्रभू को होइ ।
सरब कामना पुरवहिं मन को ।जे मज्जहिं करि सुचता तन की'[163] ।।17 ।।

श्री हरिगोबिन्द ने कौलसर, बिबेकसर आदि सरोवरों को बनवाया । गुरु तेगबहादुर ने आनन्दपुर बसाया और पटना में श्री गोबिन्दरास का जन्म हुआ तो वह भी सिक्ख जनता का तीर्थ स्थान बन गया । इसी तरह गुरु साहिबान ने अनेक तीर्थ स्थानों के निर्माण में योगदान देकर देश की संस्कृति को सजीवता प्रदान की । गुरु साहिबान ने अपने सिक्खों को भी यह आदेश दिया कि वे वर्ष में वैसाखी आदि के अवसरों पर अवश्य तीर्थ स्थानों की यात्रा करें ।इस तरह से हिन्दुओं के तीर्थ स्थानों के अतिरिक्त खडूर साहिब, गोइंदवाल, अमृतसर, तरनतारन, पटना, आनन्दपुर, हजूर साहिब आदि अनेक सिक्ख तीर्थ स्थानों का 'गुरु प्रताप सूरज' में विशद वर्णन मिलता है। वैसे तो सिक्ख के लिए सतिगुरु ही अनुपम तीर्थ है जहां पहुंचकर गुरु की शिक्षा से उसके समस्त अवगुण दूर हो जाते हैं । इस प्रकार से नित्य, भगवदीय और सन्त तीर्थों की इस ग्रंथ में महिमा वर्णित है। ये तीर्थ भारतीय जातीयता और भारतीय व्यापक अखण्डता के दिव्य प्रतीक हैं ।

सिक्खों के अतिरिक्त इस्लाम मतावलम्बियों के मक्का आदि की यात्रा का इस ग्रंथ में उल्लेख मिलता है। 'हज' के लिए जाना मुसलमान पुण्य कार्य समझते हैं। औरंगजेब को काबे और मक्के जाकर नमाज़ पढ़ने की लोक कथाएं भी इस ग्रंथ में निरूपित हैं[164] ।

163- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 7 , अंशु 11, अंक 13-17, पृ॰ 3098-99

164- वही , ऐन 1, अंशुरु 31, अंक 13-15, पृ॰ 6123-24

(ग) अध्यात्म चिन्तन :

आध्यात्मिकता भारतीय संस्कृति का सार तत्व है। इसी से भारतीयता अमरता को प्राप्त है। यही उसकी आधार शिला है । भारत के आध्यात्मिक ज्ञान की अथाह निधि वेद आदि पूर्व विवेचित ग्रंथों में सुरक्षित है। 'गुरु प्रताप सूरज' उन्हीं ग्रंथों पर आधारित हिन्दू धर्म की आध्यात्मिकता का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। इसी की पृष्ठभूमि पर आधारित सिक्ख धर्म की आध्यात्मिकता का भी इस में व्यापक विवेचन हुआ है। सिक्खमत यद्यपि साधनापरक मत है तथापित 'गुरु वाणी' में इस मत के दार्शनिक एवं आध्यात्मिक तत्व भी निहित हैं । भाई सन्तोखसिंह एक निष्ठावान गुरु भक्त सिक्ख ही नहीं थे वरन् वे एक स्वतन्त्रचेता चिन्तक भी थे । उन्होंने भारतीय वैदिक ,औपनिषदिक, पौराणिक और दार्शनिक साहित्य का व्यापक अध्ययन किया हुआ था । 'गुरु प्रताप सूरज' से पूर्व रचित 'जपुजी' भाष्य 'गरबगंजनी' में भी उनके तत्वचिन्तन का स्वरूप स्पष्ट हो चुका था । इस ग्रंथ में भी उन्होंने आध्यात्मिक विचारों का विशदता से प्रकाशन और विवेचन किया है। एक ओर जहां गुरु वाणी एवं गुरुओं के उपदेशों के संदर्भ में वे गुरुमत के आध्यात्मिक विचारों एवं धार्मिक विश्वासों आदि का निरूपण करते हैं वहां भारतीय परंपरा के अनुसार अन्य आध्यात्मिक तत्वों पर भी गंभीरता से विचार करते हैं । इस ग्रंथ की पांचवीं ऋतु में भक्ति योग, कर्मयोग, ज्ञान योग आदि साधना मार्गों का गंभीर दार्शनिक विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इस के साथ ही मध्ययुगीन आध्यात्मिक चिन्तन का संकलन इस ग्रंथ के सांस्कृति महत्व का बोधक है।

(1) पारलौकिक भावना :

हिन्दू धर्म के आस्थावान मनीषियों ने सदा इहलोक से परे अन्य श्रेष्ठ लोक (स्वर्ग लोक) की स्थिति मानी है। उन्होंने जीवन के ऐहिक रूप से परे उसके आध्यात्मिक दिव्य रूप की वांछनीय स्थिति को सहज रूप में स्वीकार किया है।

सत्कर्मों एवं दुष्कर्मों को सामान्यतः धार्मिक मान्यतानुसार पुण्य और पाप का कारण माना जाता है और इसके परिणाम स्वरूप में स्वर्ग और नरक की प्राप्ति पर विश्वास किया जाता है। परंपरा से इस पारलौकिक भावना मे मनुष्य विश्वास करता चला आया है। वेदों में त्रैलोक्य की भावना के अतिरिक्त अनय अनेक लोकों की भी कल्पना की गई है।[165] उपनिषदकाल में भी परलोकों की गणना बहुत बढ़ गई थी[166] और पुराणसाहित्य में इस भावना को अधिक विश्वास और विस्तार मिला[167]। धर्म शास्त्रों से सम्बन्धित साहित्य में भी परलोक प्राप्ति की अनेक गाथाएं मिलती हैं। मनुष्य अपनी जीवन साधना से परलोक को प्राप्त होकर सुख प्राप्त कर सकता है।

'गुर प्रताप सूरज' के रचयिता को परलोक में आस्था है और उन्होंने स्थान स्थान पर नरक और स्वर्ग के दुःखों और सुखों का परंपरानुकूल वर्णन किया है : जैसे

1 - परलोक गमन बैकुंठ सोइ[168]।

2 - अति पुनीत है मेल तिनहु को लोक प्रलोक भले हुई जाइ[169]।

3- रहो कुशल सो सभि कुछ पावहु पुन प्रलोक मैं निज ढिग कीन[170]।।

4 - गति प्रलोक बिगरे है तिन ते - - - - [171]।

5 - तीन लोक महि खोजन कीने। सतिगुरु विदत नहीं कित चीने[172] ।। 34 ।।

165- ऋग्वेद, 1 · 35, 10 · 88 · 15, 10 · 7, 10 · 58, 10 · 14, 10 · 15, 7 · 88 अथर्व वेद 2 · 14 · 3, यजु · 40 · 3

166- बृहदारण्यक 3 · 6 , कठोपनिषद् 1 · 1 · 12

167- कल्याण - हिन्दू संस्कृति अंक , पृ · 587

168-गु · प्र · सू · रा 1, अंशु 30, अंक 29, पृ · 1438

169- वही , रा 1 अंशु 32, अंक 23, पृ · 1451

170- वही , अंक 29, पृ · 1452

171- वही, अंक 31, पृ · 1453

172- वही , अंशु 35, अंक 34, पृ · 1466

6 - आगे ते दस गुन धन पै हैं ।लोक प्रलोक सुफल तुव द्वै है ॥2। ।।[173]

7 - तो परलोक अचल सुख भारो । जनम मरन नहिं संकट भारो ।

× × ×

लोक प्रलोक महां सुख दोई। लीजहि एक, जाचि करि सोइ ।।[174]

8 - करे पाप परलोक बिगारेयो ।। 34 ।[175]

इन सभी पंक्तियों में लोक और परलोक के वर्णन से कवि की इन के प्रति आस्था व्यक्त होती है। ऐसे उदाहरणों से 'गुरु प्रताप सूरज' भरा पड़ा है।

यह भावना भारतीयता की प्रतीक होने के साथ साथ इस्लाम धर्म द्वारा भी अनुमोदित है। इसमें उनको दोजक और बहिश्त की भावना का उल्लेख मिलता है। इस पर आगे इस्लाम धर्म के विवेचन में प्रकाश डाला जायेगा ।

(2) साधना मार्ग :

भारतीय संस्कृति में अध्यात्म साधना के लिए परंपरा से चार साधना मार्ग प्रचलित हैं । 1- कर्म मार्ग, 2-ज्ञान मार्ग, 3- योग मार्ग, 4- भक्ति मार्ग । साधक की साधना का जिस क्रिया से सम्बन्ध होगा , उसी के अनुसार उसकी साधना का नामकरण होगा ।[176]

'गुरु प्रताप सूरज' मेंउक्त चारों साधना मार्गों का निरूपण मिलता है और उनके समन्वय से एक विशेष प्रकार की साधना पध्दति का अभ्युदय भी होता है जिसे सिक्ख धर्म की साधना पध्दति कहा जा सकता है। इस धर्म में विभिन्न साधना पध्दतियों के मन्थन से उत्पन्न हुई भक्ति पध्दति का नवीन रूप में प्रतिपादन मिलता

173- गु॰ प्र॰ सू॰ रा । अंशु 38, अंक 21, पृ॰ 1478

174- वही , अंशु 50, अंक 16-17, पृ॰ 1538

175- वही , रा 9 , अंशु 20, अंक 34, पृ॰ 3621

176- डा॰ त्रिलोकी नारायण दीक्षित : सुन्दर दर्शन , पृ॰ 116

है जिस में ज्ञान, योग, वैराग्य आदि से उसकी श्रेष्ठता के निरुपण के साथ साथ केवल -नाम मार्ग' को भक्ति का विकास होता है। जिस में न तो बाह्याडम्बरों को कोई स्थान मिला है, न कृत्रिम वेशभूषा को आवश्यकता है। यह भक्ति का भाव लोक है। जिस में विशेष प्रकार को गुरुपदेश से प्राप्त स्थिति में साधक श्रवण, मनन, निदिध्यासन के द्वारा ब्रह्म का साक्षात्कार कर उसके रुप में अपने आप को विलीन कर लेता है। इस में न तो शुष्क ज्ञान की आवश्यकता है न हठयोग को कठिन साधना का प्रतिपादन है जिस से अहं भावना जन्म लेती है ।कर्मकाण्ड का तो इस कलिकाल में वैसे हो कोई उपयोग नहीं रहा है क्योंकि न तो ध साधक के पास लम्बी आयु है न धन और न हो यज्ञ कराने वाले सच्चे ब्र ब्रह्मण।कहा गया भो गया है :-

तप आदिक मख करिबे करम।इह तो तीन जुगन को धरम।।
अबि जे नर होए कलि मांहो।किसू करन की समरथ नांही ।। ।6 ।।
बिना अन्न ते प्रान बिनासें।किमि तप करहि जाइ बन वासें।
दरब नहां अर बलु कछु नांहो ।कहा शकिति मख करबि मांहो।। ।7।।
करमकांड महिं जे अबि लागें।किमि हुइ आवें सभि दिन भागें ।
दुसकर सोच आदि को करनो ।खानपान बिधि तैसो बरनो ।। ।8 ।।
इमि अशकति नर जानहु सबै।प्रिथम धरम किमि होवहि अबै।[177]

कलियुग में होने वाले धर्म के विषय में लिखते हैं :-

तप आदिक शुभकरम महाने ।गुर सेवा के ह्वै न समाने ।।
सतिनाम को सिमरन सार।भुकति मुकति दे महिद उदार ।
सिमरन श्रवन भगति वडिआइ।इस सम कलि नहि आन बडाइ।।[178]

यह कर्मकांड मानव को स्वर्ग नरक के सुख दुख तो दे सकता है परन्तु मोक्ष दिलाने में यह भी असमर्थ है। जोव के बन्धन काटने के लिए जो जोव को गुरु की शरण में जाना हो होगा[179]।

।77- गु॰प्र॰सू॰रा ।, अंशु 62, अंक ।6-।9, पृ॰ ।595

।78- वही , अंक 2।-22, पृ॰ ।595

।79- वही , रा 3, अंशु 29, अंक ।6-।7, पृ॰ 2027

अतः इस विवेचन से स्पष्ट है कि 'गुरु प्रताप सूरज' में उक्त साधना मार्गो के महत्व का यद्यपि प्रतिपादन मिलता है तथापि भक्ति को सर्वश्रेष्ठता का प्रतिपादन करना हो उसके रचयिता का लक्ष्य कहा जा सकता है। उन्होंने इन सभी मार्गो का समन्वय गुरमत प्रतिपादित भवि में किया है कियो क्योंकि उक्त सभो साधना पध्दतियां अन्योन्याश्रित कहो जातो हैं। इन सभो के निरूपण के पश्चात् भक्तिका स्वरूप उजागर हो जाता है। उक्त साधना पध्दतियों का अपना पृथक महत्व भो है परन्तु भक्ति के साथ मिलकर इनका महत्व और अधिक बढ़ जाता है।

1- कर्म मार्ग : भाई सन्तोख सि सिंह ने इस मार्ग के स्वरूप का विश्लेषण 'गुरु प्रताप सूरज' को 'पंचम् ऋतु' में किया है। मनुष्य अपने पूर्व विवेचित संचित, प्रारब्ध और आ क्रियमान कर्मो के द्वारा विभिन्न योनियों में भटकता हुआ अपने पुण्यों के फल स्वरूप मनुष्य योनि प्राप्त करता है। जिसको प्राप्ति पर वह विभिन्न प्रकार के शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक कर्म करता है। ये सभो कर्म वह पूर्व जन्म के संस्कारों केअनुकूल हो करता है। उसे उसके भले बुरे सभी कर्मो का फल मिलता है। परन्तु उस के कुछ कर्म बन्धन प्रद होते हैं और कुछ के करने से उसे मोक्ष की प्राप्ति हो सकतो है। कर्मों को विवेचन को सुविधा को दृष्टि से तोन भागों में निरुपित किया जा सकता है।-कर्मकांड युक्त कर्म, 2-अहंकार युक्त कर्म, 3- त्रैगुणो त्रिविध कर्म ।

1-कर्मकांड युक्त कर्म : इन कर्मो का उल्लेख पूर्व मोमांसा दर्शन के अनुसार ही भाई सन्तोख सिंह ने किया है — काम्य कर्म, नित्य कर्म, प्रायश्चित कर्म, निषिध्द कर्म, नैमित्तिक कर्म । चारों वर्णो के और आश्रमों के जो कर्म हैं वे सब कर्मकांड के अन्तर्गत आते है[180]।

2-अहंकार युक्त कर्म : इनके अन्तर्गत विद्या, धन, यौवन, सम्पति आदि के अहंकार वश होने वाले कर्मो का उल्लेख किया गया है[181]।

180-(क) गु॰ प्र॰ सू॰ रि॰ 5, अंशु 43, अंक 26-27, पृ॰ 5665

(ख) वहो, रि॰ 5, अंशु 45, अंक 20-23, पृ॰ 5678

181- वहो, रि 5, अंशु 41, अंक 40-44, पृ॰ 5654-55

3-त्रैगुणो त्रिविध कर्म : सत्व, रज, तम इन तीन गुणों के अनुसार मनुष्य विविध प्रकार के कर्म करता है। माया के वशोभूत होकर वह इन कर्मों के जाल में ही बन्धा रहता है और आवागमन के चक्र में पड़ा रहता है।[182]

मोक्ष प्रद कर्मों के अन्तर्गत गुरु जो ने अहं भाव से रहित होकर किए जाने वाले शुभ कर्मों की प्रशंसा की है। इन के अन्तर्गत साधु संगति और हरि यश का कीर्तन द्वारा गान, उसके हुकमानुसार भाणा को मानते हुए निष्काम कर्म करने[183] की प्रेरणा, स्नान, दान, परोपकारादि कर्मों के द्वारा अध्यात्म साधना की ओर प्रवृत करने की प्रेरणा आदि से ही ब्रह्म साक्षात्कार के लिए जीव को श्रवण, मनन और निदिध्यासन करने का वेदान्त प्रतिपादित मार्ग दिखाया है। मन को जीतने से मनुष्य प्रभु नाम स्मरण की ओर बढ़ता है। प्रभु ज्योति को सब प्राणियों में देखते हुए, सत्याचरण के पथ पर अग्रसर होते हुए, प्रभु की उपासना करना ही गुरुमत में प्रतिपादित है। गुरु साहिबान ने कर्मों के त्याग का सन्देश नहीं दिया अपितु अहंकार युक्त किए जाने वाले कर्मकांडपरक कर्मों का खंडन किया है जो मनुष्य को बन्धनों में डालते हैं। 'हुकम रजाइ' कर्मों से मुक्ति मिलने का मार्ग दिखाया है। यही विचारधारा 'गुरु प्रताप सूरज' में निरूपित है। निष्काम कर्म ब्रह्म एकता में साधक सिध्द होता है। यही भाई सन्तोख सिंह का प्रतिपाद्य है[184]।

2-ज्ञान मार्ग : ब्रह्मैक्य की स्थिति जिस साधना से प्राप्त होती है वह ज्ञान मार्ग कहलाता है। इस अवस्था या स्थिति में साधक का एक रूप हो जाना प्रतिपादित किया गया है। इस ऐक्य रूप की प्राप्ति वेदान्त प्रतिपादित महावाक्यों[185] के उल्लेख के द्वारा भाई सन्तोख सिंह ने गुरु प्रताप सूरज' में निरूपित की है। साधक को इन वाक्यों के रहस्य को

182- गु・प्र・सू・रि・5, अंशु 41, अंक 12-14, पृ・5651।

183- वही, रि 4, अंशु 51, अंक 42-45, पृ・5416

184- वही, रि 5, अंशु 46, पृ・5681 - 86

185-वही, रि 5, अंशु 43, अंक 31-32, पृ・5667

जान लेने पर 'तत्' और 'त्वम' की अभेदता का ज्ञान प्राप्त होकर आनन्द की अवस्था की प्राप्ति होती है। ब्रह्मज्ञान या तत्व ज्ञान के प्रकाशक वेदान्त के चार महावाक्यों – 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म, 'तत्त्वमसि', सर्वं खल्विदं ब्रह्म, ''एकमेवाद्वितीयम्'– के उल्लेख के द्वारा ज्ञान के रहस्य और अनुभव की प्राप्ति हो अद्वैतावस्था की प्राप्ति है।[186] इस में केवल उक्त महावाक्यों के ज्ञान द्वारा अद्वैतावस्था की प्राप्ति हो साधक का लक्ष्य कहा गया है ।

इस अद्वैतवाद की विचारधारा का गुरमत दर्शन पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा। जिसका भाई सन्तोख सिंह ने निरूपण किया है। इसअद्वैतवाद को न मानने वाले डा॰ शेर सिंह[187] जैसे विद्वानों को चाहिए था कि वे 'गुरु प्रतापसूरज' काअध्ययन करने के पश्चात् ही कोई निर्णय देते कि गुरमत दर्शन पर इसका कोई प्रभाव नहीं है। जीव और ब्रह्म की एकता प्रतिपादित करने के लिए वेदान्त के उक्त वाक्य भाई सन्तोखसिंह की विचारधारा के आधार वाक्य हैं । उन्होंने 'तत् ' और 'त्वम' का गुरमत प्रतिपादित निरूपण किया है[188] और 'जपुजी' से उध्दरण भी दिए है।[189] इस के अतिरिक्त विवेक, वैराग्य, श्रध्दा, श्रवण, मनन, निदिध्यासन, अहंकार त्याग, गुरु कृपा और स्वरूप आदि पर पर्याप्त प्रकाश डाला है।[190] ज्ञान उपलब्धि के पश्चात् ब्रह्मज्ञानी, जीवन्मुक्त के विषय में किसी को गुरमत विचारधारा को जानना हो तो इस प्रामाणिक ग्रंथ की दार्शनिकता

186- संक्षेप शारीरक : 3·3·3

187- **Dr. Sher Singh:** <u>The Philosophy of Sikhism</u> **p.82-84**

188 - गु॰प्र॰सू॰रि॰5, अंशु 49, अंक 31, पृ॰ 5703

189- वही , रा 5, अंशु 47, पृ॰ 5686

190- वही , अशं 47 – 49, पृ॰ 5704

का अवलोकन करें ।हां , एक बात पर भाई सन्तोख सिंह ने विशेष बल दिया है , वह यह है कि ज्ञान भी भक्ति के बिना शोभा नहीं देता है। केवल ज्ञान अहंकार को जन्म देता है और अहंकार त्याग गुरुमत दर्शन का प्रमुख सिध्दांत है। भक्ति से सिक्त ज्ञान ही श्रेयस्कर है। ज्ञान का महत्व तो निर्विवाद है परन्तु यदि उसका भक्ति के साथ समन्वय हो जाये तो सोने से सुगन्ध की बात हो सकती है।

3- <u>योग मार्ग</u> : (हठयोग निरूपण) योग मार्ग भारतीय धर्म साधना का गौरवपूर्ण अंग रहा है। इसकी प्राचीनता और लोकप्रियता के संकेत भारतीय सांस्कृतिक ग्रंथों में मिलते है।[191] पतंजलि के योग सूत्र में इसकी पूर्ण प्रतिष्ठा हुई है। उस में चितवृत्ति निरोध-रूपिणी साधना के आठ अंगों(यम[192] , नियम[193] , आसन[194] , प्राणायाम[195] , प्रत्याहार[196] , धारणा[197] , ध्यान[198] , समाधि[199]) का उल्लेख किया गया है। भाई सन्तोख सिंह ने भी इस के आठ अंगों का भेदोपभेद सहित निरूपण किया है।[200]

191- ऋ• वे• 18 • 7, 9 • 97, अथर्व • 19 • 1 • 8 • 2, यजु• वे• 12• • 68, सामवेद 2 • 3• 10 • 3, कठ• उप• 3• 2• 3• 10-12, 1• 2• 12, श्वेत • उप• 1• 8-9, छान्दो • उप • 1 • 13 • 4, 4 • 3 • 3-4

192- अंहिसा स त्यास्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः ।।— पातंजल योग सू दर्शन साधनप 2, सू •30

193- यो • सू • 2 • 32 , गु • प्र •सू • रि 5, अंशु 44 अंक 6, 5669

194- वही , सूत्र 2 • 46 -47 , रि गु • प्र • सू • रि 5, अंशु 44 अंक 9-11, पृ •5670-71

195(क)यो • सूत्र 2 • 49 (ख)गु • प्र • सू • रि 5, अंशु 44, अंक 11-12 , पृ • 5671

196-(क) यो • सू • 2 • 54-55 और उस पर भोजवृति

(ख)गु • प्र • सू • रि • 5, अंशु 44, अंक 12 , पृ • 5671

197- (क) यो • सू • 3 • 1 और उस पर भोजवृति ।

(ख) गु • प्र •सू • रि 5, अंशु 44, अंक 12 , पृ • 5671

198- (क) यो • सू • 3 • 2 और उस पर भोजवृति ।

(ख) गु • प्र • सू • रि 5, अंशु 44, अंक 13, पृ • 5671

199- (क)यो • सू • 3 • 3 • और उस पर भोजवृति ।

(ख)गु • प्र • सू • रि • 5, अंशु 44, अंक 13, पृ • 5671

200- गु • प्र • सू • रि 5, अंशु 44, अंक 1-5, पृ • 5668-69

इस योग साधना में (योगाग्नि में) साधक के शुभाशुभ कर्म भस्म हो जाते हैं और साधक त्रिगुणात्म अवस्थात्रय को पार कर तुरीयावस्था में पहुंच जाता है। उसे 'सोऽहमस्मि को[201] अखंड वृति के अनन्तर आत्मानुभवप्राप्त हो जाता है। परन्तु गुरमत में हठयोग[202] के आसनों आदि को साधना का निषेध है।[203] जैसा कि पहले लिख आये हैं कि उन्होंने योगी सम्प्रदाय के सिध्दों को सिध्दियों का खंडन किया है। उसके कष्टकारक जगड्वाल में उनको कोई आस्था नहीं हैं । हां, यदि ये सहज[204] योगमें परिणत हो कर साधक को ध्यान (लिव) के लिए प्रेरित करे तो श्रेयस्कर हो सकता[205] है। 'गुरु प्रताप सूरज' में इस योग दर्शन के पारिभाषिक शब्द कैवल्य(परमपद)[206] का भी उल्लेख हुआ है। भाई सन्तोख सिंह भी गुरु साहिबान की तरह ही गुण ग्राही थे । उन्होंने इस मत की निन्दा नहीं की । हां, उन्होंने इस के पाखंडों, बाह्याचारों की आलोचना की है। बिना भक्ति के यह योग किस काम का ? यह तो निष्प्राण और तत्वहीन है। बिना भक्ति के योग अहंकार पैदा करता है।

201- गु · प्र · सू · रि · 5, अंशु 15, अंक 19, पृ · 5496

202- (क) हठयोग प्रदीपिका, पृ · 1-2, (1 · 1)तथा 3 · 15

(ख) डा · गोबिन्द त्रिगुणायतः हिन्दी को निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि, पृ · 496

(ग) हिन्दी साहित्य कोश, पृ · 391

(घ) गु · प्र · सू · रि 5, अंशु 18, अंक 38-49, पृ · 5521-22

203- (क) हठु निग्रहु करि काइआ छोजै। वरतु तपनु करि मनु नहीं भीजै।

— आदि ग्रंथ, रामकली, असटपदी 5 · 1

(ख) आदि ग्रंथ, गउडी असटपदी, 12 · 1

204- The concept of Sahaj in Guru Nanak's Theology - its antecedents" p.29 a paper read at the international Seminar on Guru Nanak's life and teaching.

205- गु · प्र · सू · रि 5, अंशु 50, अंक 9, पृ · 5706

206- वही, रि · 4, अंशु 1, अंक 1, पृ · 5209

4- भक्ति मार्ग : ऊपर हम यह स्पष्ट कर आये हैं कि पूर्वोक्त सभी मार्ग यदि भक्ति की धारा से सिंचित होकर अपना कार्य करते तो श्रेयस्कर हैं अन्यथा उनका सिक्ख धर्म में कोई स्थान नहीं है।

भक्ति का स्वरूप : भक्ति शब्द[207] 'भज सेवायाम्'[208] धातु से 'क्तिन'[209] प्रत्यय लगाकर बनाया गया है। इस का व्युत्पति जन्य अर्थ है 'सेवा करना'। महर्षि शाण्डिल्य ने 'ईश्वर परानुक्ति[210] अर्थात् अपूर्व और अदृष्ट अनुराग रखने को भक्ति कहा है। वस्तुतः भगवान के प्रति परमप्रेम ही भक्ति[211] है। यह अमृत स्वरूपा[212] भी है। भक्त शिरोमणि नारद् के मत में अपने समस्त कर्मों को भगवान के प्रति समर्पित करना और उनका थोड़ा सा भी विस्मरण होने पर व्याकुल होना ही भक्ति[213] है। अतः ये स्वयं प्रमाण रूपा,[214] शान्ति प्रदायिनी एवं परमानंद रूपा भी[215] है। इस में श्रध्दा और प्रेम के अनुपम महत्व के कारण ही आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में 'श्रध्दा और प्रेम के योग का नाम ही भक्ति[216] है।' ऐसी भक्ति करने वाले साधक के लिए विषय-भोगों के प्रति कोई उत्साह नहीं रह जाता।

207- द्रष्टव्य : हिन्दी शब्द सागर, हिन्दी विश्व कोश आदि।

208- पाणिनि, धातुपाठ, भ्वादिगण, पृ. 15, पं 6

209- पाणिनि, अष्टाध्यायी, अ 3, पाद 3 सूत्र 94

210-सा परानुरक्तिरीश्वरे – शाण्डिल्य भक्ति सूत्र, 2

211- 'सा त्वस्मिन् परम प्रेम रूपा।' ना. भ. सू. 2

212- 'अमृत स्वरूपा च' – ना. भ. सू. 3

213- नारदस्तु तदर्पिताखिला चारिता तद्विस्मरणे परम व्याकुलतेति।'
– ना. भ. सू. 19

214- प्रमाणान्तरस्यानपेक्षत्वात् स्वयं प्रमाणत्वात् –
– ना. भ. सू. 59

215- शान्ति रूपात्परमानन्द रूपाच्च'।-ना. भ. सू. 60

216- चिन्तामणि (भाग पहला) 'श्रध्दा भक्ति' निबन्ध, पृ. 32

भागवत कार ने भी भक्ति के स्वरूप पर विचार करते हुए इसका लक्षण इस तरह दिया है ''मनुष्य के लिए सर्व श्रेष्ठ धर्म वही है जिसके द्वारा भगवान श्री कृष्ण में भक्ति हो, 'भक्ति भी ऐसी जिस में किसी तरह की कामना न हो और जो नित्य बनी रहे । ऐसी भक्ति से हृदय अनन्हुर अन्दस्वरूप भगवान को उपलब्धि करके कृत-कृत्य हो जाता है।[217] इसी तरह ही विष्णु पुराण में भी भक्तराज प्रहलाद भक्ति के स्वरुप पर प्रकाश डालते है।[218] और'भक्ति रसामृत सिन्धु'में भी भक्ति के स्वरूप पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।

भक्ति के प्रकार

उक्त विभिन्न सांस्कृतिक ग्रंथों में भक्ति के विविध भेदों का वर्णन मिलता है। परन्तु सामान्यतः भक्ति के दो रूप ही अधिक मान्य है — 1- वैधी(गौणी) 2- रागात्मिका (अहेतु की भक्ति)या प्रेमा भक्ति ।

वैधी(गौणी) : इस भक्ति में साधक असंख्य विधि विधानों के जाल में ही फंसा रहता है। यह भक्ति सिध्दि रूप न होकर साध्य रूपा कही जाती है। इसके पांच अंग कहे जाते हैं । उपासक, उपास्य, पूजा द्रव्य, पूजा विधि, और मन्त्र जप। इस भक्ति के गुण और भाव के आधार पर तीन गुणों के अनुसार तीन भेद माने जाते है–[219] [220] 1-सात्विकी, [221] राजसी , [222] 3- तामसी । इन में सात्विकी भक्ति परम पवित्र है। राजसी अहं भाविक और तामसी मोह रूपा है। यह तीनों प्रकार की भक्ति अल्पाधिक स्वार्थ समाहित है पर निष्काम भक्ति सर्वथा स्वार्थशून्य होती है।इसी भक्ति को गुरमत में भी उत्तम कहा गया है। यह 'निगुर्ण भक्ति[223] कही जाती है। यह चौथे प्रकार की भक्ति हुई ।

217- भागवत पुराण 1 · 2 · 6 तथा 11 · 20 · 9

218-विष्णुपुराण , 1 · 20 · 19 -20

219- गौणी त्रिधा गुणभेदादार्तादि भेदाद्वा ।। — ना · भ · सू · 56

220- गीता 14 · 6 तथा श्रीमद्भगवत स्कंध 3 अध्याय 29 , श्लोक 10

221- वही 14 · 7 वही , स्कंध 3 · अ · 29 · श्लोक 9

22-2वही , 14 · 8 तथा वही ~~क~~ स्कंध 3 · अ · 29, श्लोक 8

223- भा · पु · 3 · 29 · ·7-14

2-रागात्मिका (व अहेतुकी या प्रेमा भक्ति): पूर्वोक्त वैधी भक्ति यदि रागात्मिका भक्ति को उद्दीप्त करने में अपना योगदान दे तो उसकी सार्थकता सिध्द हो सकती है अन्यथा साधक को उसके बाह्याडम्बरों से परे ही रहना चाहिए और प्रेमाभक्ति द्वारा निष्कपट और निष्काम भाव से प्रभु में अनुरक्ति उत्पन्न करनी चाहिए[224]। भगवान के चरणों में स्वाभाविक प्रेम से जो भक्त को भजन प्रवृति होती है, उसे ही रागात्मिका भक्ति कहते हैं। वास्तव में प्रेमा भक्ति ही भक्ति को कही जा सकती है। सिक्ख-धर्म में इसी प्रेमा भक्ति की महिमा का गान हुआ है।[225] प 'गुरु प्रताप सूरज' में भी इस के स्वरुप पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है :- जैसे

ऐसे प्रेम भगति महिं हमरे। इक चित सत्यनाम को सिमरे।। 36 ।।
प्रेम बिहीन जि साधन मुकति। निशफल होति संत की उकति।
बिनां प्रेम करि घाल बिसाला। प्रेम करहि फल लहि ततकाला।। 37 ।।[226]

प्रभु के प्रेम में ही अहर्निश तलीन रहना ही प्रेमा भक्ति है। नारद भक्ति सूत्र में इसकी विभिन्न आसक्तियों का भी उल्लेख हुआ है। परन्तु 'गुरु प्रताप सूरज' में इस

224- डा• मुंशीराम शर्मा : भक्ति का विकास, पृ• 472

225- (क) जउतउ प्रेम खेलण का चाउ। सिर धरि तली गली मेरी आउ।
इतु मारगि पैर धरीजै। सिरु दीजै काणि न कीजै।
— आदि ग्रंथ सलोक वारां ते वधीक, 20, पृ• 1412

(ख) जिसु पिआरे सिउ नेहु तिसु आगै मरि चलीए।
ध्रिगु जीवणु संसारि ता के पाछै जीवणा।। 2।।
— सलोक गुरु अंगद, गुरु प्र• सू• रा 1, अंश 9, अं 22, पृ• 1343

226- गु• प्र• सू• रा 2, अंशु 2, अंक 36-37, पृ• 1650

की विस्तृत सैध्दान्तिक चर्चा नारद भक्ति सूत्र की तरह तो नहीं हुई अपितु भाई सन्तोख सिंह ने उन भावनाओं को अपने शब्दों में बड़ी सुन्दर रीति से कहा हैः–

अपर सुनहु जस-प्रेमा भगति । जिह सम अपर न सुख दे जगत।
तरुवर फल पूरब हुइ सावा।स्वाद चिखे कौरा लखि पावा।। 40 ।।
पुन पारो तब लहि तुरशाई।बृच्छ बीच ते ले रसु पाई ।
पुन पाको होवहि रंगु लाल।स्वाद पाइ सो मधुर बिसाल।। 41 ।।
तिमि परमेशुर प्रेमी होइ।तिन के लच्छन इस बिधि जोइ ।
प्रथमै रुदन करति चित चाहै।प्रीतम दरशन धरति उमाहै।। 42 ।।
बिछरे हम-गोते दुख पावै।दीरघ स्वासनि ले पछुतावै ।
रोमंचति हुइ गद गद बानी।कबि गुन गाइ,कि तूशन ठानी।। 43 ।।
तबि सुख की सावा हुइ रंग।सुधि भूलहि सभि आदिक अंग।
ज्यों ज्यों वध है प्रेम बडेरा।त्यों त्यों होति अहार छुटेरा ।। 44 ।।
भूख प्यास की गम हुइ थोरी।निसदिन रहै प्रेम मति बोरी ।
ब्रिहु ते वधहि बिखाद अधोरा।बदन बरन हुइ आवति पोरा।। 45 ।
प्यारे की जे बात बतावहिं। अस संतन के निकट सिधावहि ।
सुनि पिखि कै प्रिय मिलनि निशानी।निकट जान हुइ प्रीत महानी[227] ।। 46 ।।

यहां विरह आसक्ति का सुन्दर निरूपण हुआ है।

<u>भक्ति के साधन</u> : भक्ति के विभिन्न प्रकारों के वर्गीकरण में से 'नवधा भक्ति' की ख्याति सर्वाधिक है। भक्ति विचारकों ने अनेक प्रकार की अवेक्षणीय नवधा भक्तियों का निरूपण किया है । इस का निरूपण आध्यात्म रामायण और 'भागवत' में[228] हुआ है।

227- गु॰ प्र॰ सू॰ रा ।, अंशु 39, पृ॰ 1484

228- श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।
अर्चनं बन्दं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ।।
– भा॰ पू॰ 7॰5॰23

'शिव पुराण[229], ब्रह्म वैवर्त पुराण[230], आदिपुराण[231] आदि में उक्त नवधा भक्ति का अविकल उल्लेख मिलता है। रामानन्द, बल्लभाचार्य[232], रूप गोस्वामी[233] आदि[234] अनेक भक्ति शास्त्रियों ने इसी को आप्त मानकर इसकी नव-विधाओं को अधिक गौरव दिया है। भाई सन्तोख सिंह ने भी उक्त परंपरा का अनुसरण करते हुए गुरु प्रताप सूरज में इस का विस्तृत उल्लेख किया है।

प्रथम सुनहु नवधा के भेद।प्रापति भए बिनासहिं खेद ।। 29 ।।
शरधा सहत गुरु के बैन।श्रवण करहि सनमुख मन नैन।
दुतीए कथा कीरतनु करने।नीके प्रभु के गुन गन बरने ।। 30 ।।
त्रितीए सतिनाम सिमरंते । बना भजन नहिं समी बितंते ।
स्वासन संग सु नाम मिलावैं।उठति बैठति नहिं बसरावैं ।। 31 ।।
चौथे सति गुर के भगवान।ठानहि चरन कमल को ध्यान ।
कै संतन के चरन पखारे ।शरधा ते चरनांमृत धारे ।। 32 ।।
पंचमि करहि अहार भलेने ।प्रथम अरपि हरि गुरु अगेरे ।
जथा शकति संतन अचवावे ।बसत्र शरीर साथ पहिरावै ।। 33 ।।
खशटमि प्रभु गुर कै गुरदवारे ।बंदन करहि प्रदछना धारे ।
धूप दीप चंदन चरचावे । फूलन आनि सुगंधि चढावै ।। 34 ।।
सपतमि दासु आप को जाने ।परमेस्वर स्वामी पहिचानै ।
तन मन धन जानै प्रभु दान।सती नार सम पति भगवान ।। 35 ।।

229- शिव पु॰ 2॰ 2॰ 23, 22-23

230- ब्र॰ वै॰ पु॰ 2॰ 63॰ 19-20 तथा 1॰ 6॰ 14-16, 2॰ 36॰ 73-74
4॰ 1॰ 33 - 34

231- आदि पु॰ 18 ॰ 24-26

232- वै॰ म॰ भ॰ 66

233- तत्वदीप 1॰ 10 2, अष्ट॰ पृ॰ 521-23

234- ह॰ र॰ सि॰ 1॰ 2॰ 26-39

अश अशट मि मित्र लखै श्री पति को ।नहीं डुलवै अपने चित को ।
जो कछु करहि भलो मन जानै।नहां तरकना तिन पर ठानै ।। 36 ।।
जथा सखा को कृति लखंता । करहि जु कछु मन भी भलो करंता।
तिमि प्रभु मित्र किरत को हेरै ।जो किछु करै भलो सो मेरै ।। 37 ।।
नौमी तन धन प्रभु अप अरपाइ।अपनो कछु न लखहि कदाइ ।
ममता तजहि पदारथ केरो । हरिके जानि न सुखदुख हेरो ।। 38 ।।
नवधा भगति कही इहु जोइ ।जेकरि इक भी प्रापति होइ ।
तौ उधार जन को करि देति । क्या संसे हुइ सरब समेत ।।[235] 39 ।।

यहां श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, बन्दन, दास्य, सख्य, आत्मनिवेदन , आदि का गुरमत अनुकूल निरुपण हुआ है।

<u>पराभक्ति</u> : सात्विकी भक्ति की साधना करते करते साधक क्रम से परम प्रेम रूपा पराभक्ति को प्राप्त होता है। पराभक्ति प्राप्त हो जाती है जिस को वह धन्य हो जाता है।[236] भक्ति की भूमिका मे द्वैत रूप में उपास्य-उपासक भाव विद्यमान रहता है ; इसी से अद्वैत ज्ञान उत्पन्न नहीं हो सकता । परन्तु यह पराभक्ति अद्वैत ज्ञान की जननी है। पराभक्ति की परिणति में उपास्य - उपासक भाव दूर हो जाता है। सर्वत्र अद्वैत अनुभूति होती है 'पंडित लोग भक्ति और वैराग्य की चरम सीमा को 'ज्ञान' कहते हैं क्योंकि ज्ञान के उदय होने पर भक्ति और वैराग्य की सम्पूर्णता सिध्द हो जाती है।'[237] इस ज्ञान से ही साधक अपरोक्षानुभूति प्राप्त करता है।[238] 'गुरु प्रताप सूरज' में इस पराभक्ति को भाई सन्तोख सिंह ने निम्न प्रकार से व्याख्या की है :-

---

235- गु॰ प्र॰ सू॰ रा॰ 1 ,अंशु 39 , पृ॰ 1483-84

236- देवी भागवत , 7॰ 37॰ 11-12

237-वही , 7॰ 37॰ 27-28, 15

238- श्री नरहरि : बोध सार : , 32॰ 10

संत संग जबि वध्यो वधेरा।पूरन प्रभू सरब में हेरा ।
तबि मुख लाल रंग दृशटावै।त्रिपति होइ मन कितहुं न धावै ।। 47 ।।
शांति मुधरता तबि हुइ आई।अंतर बृति सथिरता पाइ ।
दिढ अभ्यास ग्यान मनि लावहि ।-पराभगति-उप उतपति हुइ आवहि।।48।।
अपनि सरूप निहारन चाहा ।ईशर जीव अभेद उपाहा ।
सतिचेतन आनद रूप ।नभ सम ब्याप्यो चलित अनूप।। 49 ।।
इस प्रकार जे भगति कमावै।इकता ब्रहम रूप हुइ जावै ।
तीनहु सुनिकै भए अनंद ।भानू माईआ अरु अ गोबिंद।। 50[239] ।।

'गुरु प्रताप सूरज' में भक्ति का स्वरूप और नाम स्मरण आदि का प्रतिपादन

'गुरु प्रताप सूरज' में नवधा भक्ति, प्रेमा भक्ति और परा भक्ति का पारम्परिक निरूपण हुआ है। परन्तु इस के साथ साथ सिक्ख धर्म में सर्वमान्य नाम स्मरणात्मक भक्ति का भी सुन्दर प्रतिपादन किया गया है।

नामस्मरण और उसका प्रतिपादन : 'गुरु प्रताप सूरज' में नाम स्मरण और नाम कीर्तन को विशेष महत्व दिया गया है। भक्त को भगवान का परिचय नाम के आधार पर ही प्राप्त होता है। नाम के अभाव में नामी का परिज्ञान संभव नहीं । कलियुग में नाम को ही एक मात्र आधार मानते हुए भाई सन्तोख सिंह ने कहा है :-

अपर जुगनि के धरम सरब हैं ।बली विशाल सूमूह दरब हैं।
कलि महि केवल है सतिनाम ।इस ते लहै श्रेय सुखधाम ।। 9[240] ।।

'गुरु प्रताप सूरज' में वाहिगुरु नाम और सतिनाम के स्मरण पर विशेष बल दिया गया है।[241] यज्ञ, तप आदि की कष्ट साध्यता का निरूपण किया गया है। नाम स्मरण

239- गु॰ प्र॰ सू॰ रा॰ 1, अंशु 39 ,पृ॰ 1484-85

240- वही , रा 5, अंशु 46, अंक 9-10, पृ॰ 2692

241- वही , रा॰ 5, अंशु 46, अंक 9, पृ॰ 2692

के बिना कर्म, ज्ञान, योग सर्व निरर्थक सिध्द होते है। 'गुरु प्रताप सूरज' में नाम स्मरण के प्रति अपूर्व निष्ठा और विश्वास व्यक्त किया गया है। उसके महात्म्य का यत्र तत्र प्रातिपादन किया गया है। इस में गुरु साहिबान द्वारा प्रदत नाम 'सतिनाम' और 'वाहिगुरु' के अतिरिक्त हिन्दुओं एवं मुसलमानों नामों के द्वारा भी नाम स्मरण का प्रतिपादन और उसके नामों की एकता का प्रतिपादन भी हुआ है। जो उन्हें दोनों धर्मों में भावात्मक एकता लाने वाला लोक नायक भी सिध्द करता है तथा उनको अन्य धर्मों के प्रति उदारता का परिचायक भी है ।

इस के अतिरिक्त नाम स्मरण करने वाले साधक को चारो पदार्थों की प्राप्ति होती है । इस का उल्लेख भी किया है । इस नामस्मरण से न केवल मोक्ष की प्राप्ति होती है अपितु धर्म साधना के साथ साथ अर्थ और काम की भी प्राप्ति होती है। अतः सर्व प्रकारेण नाम स्मरण ही प्रभु प्राप्ति का सरल और सहज मार्ग कहा जा सकता है।[242]

<u>समन्वयात्मक दृष्टि कोण</u> : भाई सन्तोख सिंह ने उक्त साधना पध्दतियों का महता स्वीकार करते हुए इन्हें हरिमन्दिर के चार द्वार कहते हैं । भक्ति की सर्वश्रेष्ठता का स्थान स्थान पर प्रतिपादन करते हैं। इन पध्दतियो से साधक हरिमन्दिर में प्रवेश तो पालेता है परन्तु उसे ब्रह्म प्राप्ति या साक्षात्कार केवल नाममार्ग (नाम जप सम्बन्धी भक्ति) से ही हो सकता है। इसके अतिरिक्त भक्ति के स्त्री स्वरुप के प्रतिपादन द्वारा भी कहा है कि ज्ञान, वैराग्य, जो आदि पुरुष रुप है वे महाठगनी माया के मोहजाल में आ सकते हैं परन्तु भक्ति स्त्री रुप है। उस पर माया रुपी स्त्री का कोई वश नहीं चलता । अतः भक्ति मार्ग सर्वश्रेष्ठ मार्ग है ।

भक्ति मार्ग के निरुपण के अतिरिक्त कई अन्य साधनाके का भी गुरु प्रताप सूरज में उल्लेख किया गया है जिन के द्वारा भगवत - प्राप्ति हो सकती है जैसे

242-(क) जिनी नामु धिआइआ गए मसकति घालि ।
नानक ते मुख उजले केती छुटी नालि ।।
— जपुजी श्लोकु ।

(ख) जे लागे सिमरनि सतिनाम ।से लाहा लै गे निज धाम।जिस
के छूटि जाइ भ्रम उर का।तिस कै क्या हिंदू क्या तुरका।। 53 ।।
— गुरु प्र॰ सू॰ रा 4, अंशु 55, पृ॰ 2457

स्नान, दान, परोपकार, सेवा, त्याग, सदाचार, संयम आदि। परन्तु ये सभी मार्ग पूर्वोक्त विवेचित मार्गों के भेदों के रुप में अन्तर्निहित हो जाते है। इस तरह से निष्कर्ष रुप में कहा जा सकता है कि भाई सन्तोख सिंह ने अपने गंभीर अध्ययन द्वारा पूर्वोक्त साधना मार्गो में समसमन्वय स्थापना के अतिरिक्त स्वमत मार्ग का भी सुन्दर प्रतिपादन कियागया है ।

11- 'गुरु प्रताप सूरज' और इस्लाम धर्म

यद्यपि 'गुरु प्रताप सूरज' सिक्ख धर्म की महानतम कृति माना जाता है तथापि उसके विशाल चित्रपट पर अन्य धर्मों की झांकियां भी देखी जा सकती हैं । सिक्ख धर्म के अभ्युदय के साथ साथ भारत में मुगल राज्य की स्थापना भी होती चली गई । इन मुग़ल शासकों को इस्लाम धर्म की धार्मिक नीति विरासत में मिली थी । इन्होंने भी मुस्लिम[243] संस्कृति के अ प्रसार के लिए इस धर्म का प्रचार किया । यद्यपि अकबर आदि उदार धार्मिक नीति ने सहिष्णुता का परिचय दिया तथापि उसके परवर्ती मुग़ल शासकों (विशेष औरंगजेब) ने अपने असहिष्णुतापूर्ण व्यवहार से शान्ति प्रिय सिक्ख धर्म के अनुयायियों को योध्दा सम्प्रदाय में परिणत कर दिया। औरंगजेब के शरा[243] प्रचार से जब उनके अत्याचारों की अति होने लगी तो गुरु गोबिन्दसिंह से पहले गुरु तेगबहादुर ने अपने बलिदान द्वारा भारतीय संस्कृति और स्वधर्म की रक्षा की ।गुरु गोबिन्द सिंह ने तो अपना सर्वस्व बलिदान कर मुगल राज्य की नींव को हिला दिया ।

इस्लाम धर्म के अनुयायी मुग़ल शासकों के राज्य शासन की सांस्कृतिक अवस्था का चित्रण करते हुए भाई सन्तोख सिंह ने प्रसंग वश इस्लाम धर्म के विभिन्न सम्प्रदायों और तत्वों का भी 'गुरु प्रताप सूरज' में निरुपण किया है। कुरान के साम्राज्य की

243- **Shorter Encyclopaedia of Islam** p.417

244-(क) गु· प्र· सू· रा 9, अंशु 20, अंक 2, पृ· 3618

(ख) वही, रा· 12, अंशु 64, अंक 33, पृ· 4468

स्थापना के लिए उनकी कट्टरता और नृशंसता की कहानी भी इस ग्रंथ में अंकित है। मुस्लिम संस्कृति का सैध्दान्तिक पक्ष भी इस में उजागर है। उनके कर्मकांड से सम्बन्धित तथ्यों का भी इस में उल्लेख मिलता है ।

धार्मिक दृष्टि से कुरान और हदीस(मुहम्मद साहिब के सत्य वचन) द्वारा निर्दिष्ट आचरण पर विश्वास रखना इस्लाम है।[245] मुग़ल काल में इस धर्म का विशेष प्रसार तत्कालीन शासकों की कट्टरता के कारण सामान्य हिन्दू जनता से सम्मान प्राप्त न कर सका। एक ओर इसके प्रचारक मुल्ला, मौलवियों, काजियों[246] ने शान्ति का सन्देश देने के स्थान पर प्रलोभन[247] और तलवार के सहारे इसे प्रसारित करने का उपक्रम[248] किया तो दूसरी ओर सूफी सन्तों ने प्रेम तत्व के प्रचार से इसका प्रसार करना आरंभ किया ।

इस इस्लाम धर्म के तीन प्रमुख सम्प्रदाय उस समय प्रचलित थे ।-सुंनी, 2- शिया, 3-सूफी । मुग़ल शासक सुन्नी सम्प्रदाय के मानने वाले थे । औरंगजेब के युग में उसकी अनुदारता, असहिष्णुता, और अज़मत पसंदगी[249] के कारण हिन्दुओं को ही 'काफिर' नहीं कहा जाता था प्रत्युत शिया और सूफी सम्प्रदाय के फकीरों पर भी अत्याचार[250] किए जाते थे । औरंगेब ने 'सरमद'[251] फकीर को यातनाएं दी

245- Shorter Encyclopaedia of Islam p.176-178

246- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 9, अंशु 33: अंक 3। पृ॰ 3669

247- (क) वही , रा 9, अंशु 25, अंक 31, पृ॰ 3639

(ख) वही , रा 9, अंशु 27, अंक 37, पृ॰ 3648

(ग) वही , रा 9, अंशु 32, अंक 35, पृ॰ 3665

(घ) वही , रा 9, अंशु 33, अंक 2, पृ॰ 3667

(ङ) वही , रा 12, अंशु 51, अंक 19 पृ॰ 4420

248- वही , रा 12, अंशु 48, अंक 8-15, पृ॰ 4409-

249- वही , रा 12, अंशु 52, अंक 20-21, पृ॰ 4423

250- वही, रा 9, अंशु 24, पृ॰ 3633

251- वही, रा 9 , अंशु 20, अंक 23, पृ॰ 3619-28

और उसे कत्ल कराया।

'गुरु प्रताप सूरज' में उक्त स्थिति के निरूपण के साथ साथ इस्लाम धर्म के अनेक विश्वासों – पैगम्बरो एकेश्वरवाद (तौहीद)[252], दरगाह[253], जन्नत (बहिशत)[254] दोज़ख[255] (नरक)[256], हराम (सूअर का गोश्त[257], जुआ[258], ब्याज लेना[259]) हलाल, कुरान में आस्था[260] आदि

252- (क) कुरान, 17 · 23, 2 · 256, 7 · 158, 2 · 255, 5 · 40, 19 · 35

(ख) गु · प्र · सू · रा · 4, अंशु 54, अंक 49, पृ · 2456

(ग) वही, रा 4, अंशु 58, अंक 32, पृ · 2471

(घ) वही, रा · 9, अंशु 21, अंक 10, पृ · 3622

(ङ) वही, रि · 6, अंशु 57, अंक 57, पृ · 5982

(च) वही, ऐन 1, अंशु 50, अंक 9, 11, पृ · 6216-17

253- गु · प्र · सू · रा 5, अंशु 3, अंक 11-17, पृ · 2522

254-(क) वही, रा 9, अंशु 26, अंक 7, पृ · 3640

(ख) वही, रा 9, अंशु 44, अंक 2, पृ · 3707

255- (क) वही, रा 8, अंशु 12, अंक 4, पृ · 3357

(ख) वही, रा 8, अंशु 30, अंक 9, पृ · 3425

(ग) वही, रा 9, अंशु 24, अंक 8, पृ · 3634

(घ) रि, 6, अंशु 57, अंक 44, पृ · 5980-81

(ङ) वही, ऐन 1, अंशु 49, अंक 9, पृ · 6212

256- कुरान, 2 · 173, 2 · 219, 5 · 38

257- गु · प्र · सू · रा 12, अंशु 51, अंक 28-40, पृ · 4420-21

258- वही, रा 8, अंशु 17, अंक 30, पृ · 3379

259- वही, ऐन 2, अंशु 14, अंक 29, पृ · 6288

260- (क) वही, रि · 6, अंशु 57, अंक 36, 47, पृ · 5980-81

(ख) वही, ऐन 2, अंशु 20, अंक 11, पृ · 6320

का भी सांकेतिक उल्लेख हुआ है। जिन से मुस्लिम संस्कृति की झलक देखी जा सकती है। सांस्कृतिक दृष्टि से इस्लाम धर्म के धार्मिक अनुष्ठानों एवं कृत्यों ने उसे संघीय धर्म के रूप में प्रस्तुत किया । इस्लाम मत के अनुयायियों का दृढ़ विश्वास है कि जो व्यक्ति जैसा कर्म करेगा उसे कियामत के दिन वैसा ही फल मिलेगा । इस लिए इस्लाम में एक खुदा की बन्दगी पर बल दिया गया है और उसकी आचार-संहिता में कलिमा, नमाज़, रोज़े, हज्जे-कअबा, मक्का, ज़कात आदि अनेक कृत्यों पर प्रकाश डाला गया है।[261] 'गुरु प्रताप सूरज' में इन कृत्यों का सांकेतिक उल्लेख मिलता है। कलबा,[262] रोज़े,[263] ईद, नमाज[264] और उसके पांच समयों[265] के उल्लेख के साथ साथ हलाल सेवन, कबाब[266] सेवन, गाय का मांस कासेवन, सूअर की पवित्रता, हज्ज के लिए यात्री,[267] तसबी फेरना,[268] सुन्नत[269], निकाह करना,[270], कबर में दफनाना[271] आदि का संकेत भी मिलता है। लेकिन भाई सन्तोख सिंह ने इस धर्म की विकृतावस्था को देखकर इसे कच्चा धर्म कहा है ।

"काचो मतो अपनो तुम देखहु, मानति हो कबरें, जिन नाशा ।

261-(क) द्रष्टव्य : डा· असद अली : भक्ति कालीन हिन्दी साहित्य पर मुस्लिम संस्कृति का प्रभाव। पृ· 108-118

(ख) रामधारी सिंह दिनकर' : संस्कृति के चार अध्याय, पृ· 237-38

262-(क) गु· प्र· सू· रा· 8, अंशु 27, अंक 55, पृ· 3415

(ख) वही, रा 9, अंशु 53, अंक 5, पृ· 3738

(ग) वही, रा 12, अंशु 27, अंक 22, पृ· 4333

(घ) वही, ऐन 1, अंशु 49, अंक 9-11, पृ· 6212

263- वही रा 6, अंशु 48, अंक 10, पृ· 2988

264- वही, रा 12, अंशु 48, अंक 10, पृ· 4409

265- वही, रा 6, अंशु 48, अंक 10, पृ· 2988

266- वही, रा 6, अंशु 39, अंक 19, पृ· 2955

267- वही, ऐन 1, अंशु 31, अंक 15, पृ· 6123

268- वही रा 9, अंशु 50, अंक 17, पृ· 3729

269- वही, ऐन 1 अंशु 47, अंक 17-33, पृ· 6205-6

270- वही, रा 8, अंशु 5, अंक 4, पृ· 3326

271- वही, रा 8, अंशु 48, अंक 27, पृ· 3490

क्या तिन ते कहु काज सरे, मृतका मिलि गे मन, धरि आस ?।। 10 ।।
करहु बंदगी रोज़ तुम बंदा बनि करि आप ।
देख्यो सुन्यों न रब किते, करहु निवाज़ कलाप ।। ।। ।।
रूप न रंग न ठौर कित पाक अल्लाहि अपाज ।
सिजदा करहु, दरुद दिहु रोजा कूर निवाज़ ।। 12 ।।
कहिना क्या अरु हिरस क्या बाद जाति बकवाद ।
नीकी करनो जिन करो कर्यो खुदाइ सु याद ।। 13 ।।
पोर पैकंबर जानि सजूद। देत फाइता बहुर दरूद ।
रोज़ा बांग निवाज़ सुजान । मुसलमान इन करहि प्रमान ।। 14 ।।[272]

इस उदाहरण से स्पष्ट होता है कि इस ग्रंथ में इस्लाम धर्म के सिध्दांतों और विश्वासों का भो सांकेतिक निरुपण हुआ है ।

12- 'गुरु प्रताप सूरज' में वर्णित बाह्याचार और आडम्बर का विरोध :

मध्ययुगोन भारत को विकृत धार्मिक और आध्यात्मिक स्थिति पर यद्यपि पोछे प्रकाश डाला जा चुका है तथापि उसके सांस्कृतिक पुनरुत्थान के लिए किए गए गुरु साहिबान के प्रयासों का आदि ग्रन्थ[273] और दशम् ग्रन्थ[274] को तरह हो इस ग्रंथ में भो

272-गु० प्र० सू० रैन 2, अंशु 16, अंक 10-14, पृ० 6295-96
273-(क) रामकलो , अशटपदो 4 · 3
(ख) धनासरो , अशटपदो 2 · 5
(ग) रामकलो , शलोक ।
(घ) रामकलो , अशटपदो 2 · 3-6
274- श्री दशम गुरु ग्रंथ , अकाल स्तुति , छन्द सं० 30, पृ० 8, वहो , छन्द सं० 72, पृ० 11, वहो, छन्द सं० 29 , 82, 86 , 89

व्यापक चित्र देखने को मिलता है। भाई सन्तोख सिंह ने 'गुरु नानक प्रकाश'[275] नामक ग्रंथ में भी विविध साधकों, सिध्दों-नाथों, सूफी फकीरों आदि के चित्र अंकित किए हैं परन्तु 'गुरु प्रताप सूरज' में उनके बाह्याचारों और आडम्बरों का जितना विराट चित्र प्रस्तुत किया है वैसा अन्य किसी गुरु काव्य में देखने को नहींमिलता है । उस युग की साधना पध्दतियों एवं विविध साधकों के चित्रों के देखने से लोक धर्म सम्बन्धी विविध आस्थाओं का व्यापक प्रकाश पड़ता है।

'गुरु प्रताप सूरज' में एक ओर हमें हिन्दू धर्म के विविध सम्प्रदायों से सम्बन्धित जोगियों, सन्यासियों, ब्रह्मचारियों[276], जपी तपी साधुओं[277], भगवे वस्त्रधारी पाखंडियों[278], नागे[279], कनपाटे[280], वैरागियों, जन्त्र-मन्त्र[281] के प्रचारक तपे, गुरु के

275-(क) डा॰ जय भगवान गोयल : गुरु नानक प्रकाश, भूमिका, पृ॰ 22

(ख) गुरु नानक प्रकाश : पू॰ अध्याय 14, 27·42

276- संन्यासी, योगी ब्रहमचारी । बैठे शुभ मति सभ मझारी ।
अपने अपने पंथनि जथा । बाक बिलास चली तबि कथा ।। 14 ।।
- रि 3 अंशु 45, पृ॰ 5175

277- जपी तपी बहु भेख बिरागी ।
- रि 2, अंशु 50, अंक 24, पृ॰ 4912

278- प्रथमै सिर मुख मुंडन करैं । भगवें बसत्र देहि पर धरैं ।। 27 ।।
भसम लगाइ कुरूप बनावहिं । घर घर फेरहिं भीख मंगावहिं ।
सिर पर जटा जूट बंधावहिं । जाचे टुकड़े तिनहिं खुवावें ।। 28 ।।
– रि 3, अंशु 22, पृ॰ 5070

279- लाखहुं नर धारहिं इह बाना । केतिक नांगे बनहिं महाना ।
– रा 5, अंशु 37, अंक 43, पृ॰ 2656

280- (क) जोग अभ्यासी अरु कंनपाटे दोनो ढिग किय संग महान।
ब्रहमचारी, तपसी, बैरागी अपर कितिक को करे बखानि ।।
– रा 3, अंशु 48, अंक 12, पृ॰ 2123 तथा रि 1, अंशु 34, अंक 14, पृ॰ 4626

281- जंत्रमंत्र करिबे जिस आवै। लोकन बिखे पंखड कमावै।। 2 ।।
- रा 1, अंशु 21, पृ॰ 1402 तथा रा 1, अंशु 23, अंक 20, पृ॰ 1411

पुजारी[282] लोगों, सालिग्राम और ठाकुर की मूर्ति के पुजारी पंडितों,[283] नाथों-सिध्दों[284] के चित्र देखने को मिलते हैं तो दूसरी ओर इस्लाम धर्म से सम्बन्धित पीरों फकीरों,[285] सरवर सेवकों[286] (रोट पकवान आदि चढ़ाने वाले गोर मड़ी के पूजकों[287],

---

282- हम गये सुलतान को पूजहिं मन भाए ।

× × ×

हमरे पीर कदीम के पूरति सभि आसे ।। 6 ।।

गु॰प्र॰सू॰ – रि 6 ,अंशु 56,पृ॰5971

283-(क) सालगराम दरस को पावहु ।। 22 ।।–

- गु॰प्र॰सू॰रा 2,अंशु 30,पृ॰1767

(ख) गु॰प्र॰सू॰रा॰2, अंशु 30, अंक 29, पृ॰1767

(ग) वही , रा॰3, अंशु 28, अंक 25, पृ॰2022

(घ) वही , रि 5, अंशु 10, अंक 33, पृ॰5464

(ङ) वही, रि 5, अंशु 39, अंक 29, पृ॰5637

(च) वही, रि 6, अंशु 25, अंक 29, पृ॰5835

284-(क) बहुर मछिंदर गोरख नाथ ।आवति भए मेलकरि साथ

-- गु॰प्र॰सू॰रि 5,अंशु 21,अंक 39,पृ॰5531

(ख) गोरख लीए सिध्द समुदाई । आनि अदेश अदेश अलाई ।। 39 ।।

-गु॰प्र सू॰ऐन 1, अंशु 35,पृ॰6148

(ग)जे नव नाथ सिध्द चवरासी ।-वही, रा 4,अंशु 64,अंक 34,पृ॰2497

285-(क) पीर फकीर सती संन्यासी ।-वही , रा 4,अंशु 64,अंक 34,पृ॰2497

(ख) गु॰प्र॰सू॰रि 5, अंशु 21, अंक 32-33,पृ॰5534

286- (क) सरवर पीर सेव सभि काला।-रा 2,अंशु 43,अंक 2,पृ॰1825

(ख)गु॰प्र॰सू॰रा 3, अंशु 61,अंक 6, पृ॰2186

(ग) वही , रा 7, अंक 14, अंशु 18, पृ॰3126

(घ) वही , रा 11, अंशु 37, अंक 32, पृ॰4116

(ङ) वही , रा 11, अंशु 39, अंक 11, पृ॰4121

287- (क) वही , रा 2, अंशु 47, अंक 33, पृ॰1830

(ख) वही , रा 1, अंशु 40, अंक 33, पृ॰1488

(ग) गोर मड़ी अरु पंथ अनेक।- रि 3, अंशु 20,अंक 43,पृ॰5058

पोरों[288] मोरों, जानो[289] सय्यद,[290] शेख, मूर्ख मुलाणों[291] के चित्र देखने को मिलते हैं, जो उस युग की सामान्य लोक मान्य धर्म-भावाना के परिचायक हैं, किन्तु भाई सन्तोख सिंह ने गुरु कथा एवं गुरु उपदेश के माध्यम से इस प्रकार की साधना-पध्दतियों को व्यर्थता, मिथ्यत्व, रुढ़िवादिता का निरूपण किया है।

गुरु साहिबान ने उक्त दोनों धर्मों और उन से सम्बन्धित विविध सम्प्रदायों के अन्ध विश्वासों, पाखंडों, बाह्याडम्बरों का विरोध भी किया है किन्तु ये विरोध जड़ताभूलक न होकर पूर्ण बुध्दि वादी है। उन्होंने एक ओर हिन्दुओं के धार्मिक ठेकेदारों एवं पंडितों को चेताक्क चेतावनी दी कि उन की संध्या, तपस्या, षटकर्म आदि सभी अंक अहंकारोत्पादक है। अतः अहंकार मूलक कर्मों का सहज धर्म में कोई स्थान नहीं है। दूसरी ओर इस्लाम धर्म के ठेकेदार काज़ियों और[292] मौलवियों को चेतावनी दी कि रोज़े और नमाज़ आदि सब ढोक्का ढकोसला मात्र हैं। ये पाखंड मनुष्य की आध्यात्मिक उन्नति में बाधक हैं। केवल हृदय की सत्यता से ईश्वर अनुग्रह की प्राप्ति के लिए उद्यत रहना चाहिए। आत्मज्ञान के बिना फोकट कर्म व्यर्थ हैं। कर्मकांड का अन्धानुसरण पाखंड है। मिथ्या वेशाडम्बर दिखावा मात्र है। गुरु साहिबान ने इन दोनों धर्मों के आदर्श - मूल्यों को अपना कर सार्वलौकिक

288- इक सय्यद जानो जिस नामू। बेख फकीर भयो तजि धामू।। 9 ।।

-गु· प्र· सू· रा 6, अंशु 48, पृ· 2988

289- लरे गुरु सों पीर जु पीर। कराभात कामल बड मीर।

– गुरु प्र· सू· रा 8, अंशु 36, अंक 11, पृ 3448

290- गु· प्र· सू· रा 2, अंशु 46, अंक 23, पृ· 1829

291- मूढ मुलानि सु चरचा करो। बने अबूयक ग्यान बिहीने।

– गु. प्र· सू· रा 9, अंशु 16, अंक 6, पृ· 3602

292- रोज़ा बांग निवाज सुजान। मुसलमान इन करहि प्रमान।

- गुरु प्र· सू· रैन 2, अंशु 16, अंक 14 पृ 6296

सिक्ख धर्म की स्थापना की । जातिपांति[293] का खंडन कर धार्मिक सहिष्णुता और मानवीय भावात्मक एकता पर बल दिया । संसार की नश्वरता पर बल देते हुए सत्कर्मों की प्रक प्रेरणा दी[294] । सेवा, विश्वस और प्रेम[295] की भावनाओं को जागृत कर सिक्ख धर्म के नवीन नैतिक मूल्यों की स्थापनाकी ।

13-'गुरु प्रताप सूरज' और सिक्ख धर्म

गुरु नानक देव जी ने नर तारन हेतु जग खेत में सिक्ख धर्म की बेल बोई और अन्य नौ गुरु साहिबान ने अपने उपदेश के जल से उसका प्रतिपादन[296] किया।

293- जाति पाति की ह किम हम छोरहिं ।। 4 ।।

- गु. प्र . सू . रि 3, अंशु 21, पृ . 5064

(ख) बरनाश्रम की रीति विरोधी। मम सिख करहि न राखहि सोधी।

— गु . प्र . सू . रि 3, अंशु 50, अंक 41, पृ 5201

294- (क) इक प्रेमी नर नेम बिहीना। नैनि दिवस एकै लिवलीना।

प्रेम प्रवाह बधै निति जिनके । बसी होति पुरखोतम तिनके ।।

- गु . प्र सू . रा 1, अंशु 57, अंक 1-2, पृ . 1567

(ख) जिसके रिदै प्रेम बहु जागा । जागन लगे भालके भागा ।। 17 ।।

—गु . प्र . सू .रा 1, अंशु 61 , पृ . 1588

(ग) गुरु परमेशर सन जिन प्रेम । से ततकाल पावते छेम ।। ।। ।।

बिना प्रेम फोकट सभि जतन। प्रेम मुकरमनि सभि महिं रतन।

-गु . प्र . सू . ऐन 1, अंशु 25, अंक 11-12पृ. 6096

295- (क) अधिक प्रीतकरि सेवा ठानहिं ।

वही , रा 1, अंशु 16, अंक 6, पृ . 1378

(ख) इक सेव के ततपर ह्वै करि गुरु अराधहिं सरब प्रकार ।। 36 ।।

वही , रा 1, अंशु 16 , पृ . 1384

(ग) सभि सनीप की सेवा करे ।

- वही , रा 1, अंशु 20, अंक 21, पृ . 1400

296- वही , रा 1, अंशु 1, अंक 33, पृ . 1300

दसों गुरु साहिबान को शरण में जा कर अनेक मनुष्यों ने सदुपदेश को ग्रहण किया और अपने जीवन को सफल बनाया।[297] सिक्ख धर्म के सार्वभौमिक धार्मिक सिध्दांतों से तत्कालीन पंजाब के लोग इतने अधिक प्रभावित हुए कि लोगों के दल के दल आकर उनके अनुयायी बने। इसका प्रमुख कारण यह था कि साधारण जनता अंधविश्वासों और भौतिकता में आकंठ डूबी हुई थी । हिन्दू नेताओं ने ऐसे लोगों को आध्यात्मिक सत्यों का उपदेश देने में उपेक्षा बरती । इस्लाम धर्मावलम्बियों में भी असहिष्णुता घर कर चुका था । ऐसी स्थिति में सिक्ख गुरुओं ने भक्ति, प्रेम और मानवता को एक नई भावना जनता में स्पन्दित की । इन्होंने इस बात बपर जोर दिया कि किसी आदमी के धर्म की परख उसके विश्वासों से नहीं होती, वरन् उसके आचरण से होता है। कोई भी हृदय ,जो सत्य और प्रेम के लिए अपने कपाट बन्द कर रखता है, वह ईश्वर का धाम नहीं बन सकता ।

सिक्ख - गुरु मानव जाति को मशाल दिखाने वाले मसीहा बन कर अवतरित हुए वे अकाल पुरुष के सन्देश वाहक थे । उन्होंने कोई नया सिध्दांत सिखाने का दावा नहीं किया था ,अपितु शाश्वत ज्ञान को ही नवीन रूप में प्रस्तुत कर जन-सामान्य को संमार्ग दिखाया । गुरु साहिबान पूर्वोक्त दोनों धर्मों की औपचारिकता के आलोचक थे ।

गुरु नानक के शान्ति प्रेमी अनुयायियों को योध्दा सम्प्रदाय के रूप में परिणत करने का श्रेय छटे गुरु श्री हरगोबिन्द और दसवें तथा अन्तिम गुरु गोबिन्दसिंह को दिया जाता है। इन्होंने जाति पांति के भेदभाव को दूर कर 'खालसा पंथ' का निर्माण किया जिसके सम्बन्ध में पीछे विचार किया जा चुका है।[298] इस पंथ की स्थापना द्वारा उन्होंने सामाजिक एकता पर बल दिया । पाहुल का पान करा उन्होंने अपने सिंहों को पंच ककार प्रदान किए तथा उनका

297- गु • प्र • सू • रि • 5, अंशु 49, अंक 400, पृ • 5704

298- वही , रि • 3, अंशु 19, पृ • 5053-58

'रहत'[299] (केश न काटना, तम्बाकू न पीना, इत्यादि) के पालन का आदेश दिया। गुरु ग्रंथ साहिब को गुरु की शब्द-देह मानकर उसका सम्मान करना, आराधना के नवीन केन्द्र (तीर्थ), नये धर्म प्रतीकों ने सिक्खमत को नये धर्म के रूप में विकसित किया। इसी धर्म विकास की कहानी 'गुरु प्रताप सूरज' में अंकित है। इसी लिए इसे आदि ग्रंथ और दशम् ग्रंथ के पश्चात् धर्म ग्रंथ के रूप में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इस में सिक्ख धर्म के आध्यात्मिक विचारों के साथ साथ उसके संस्कारों, नित्यकर्मों और नैमित्तिक कर्मों पर भी विशदता से प्रकाश डाला गया है।

सिक्ख धर्म से सम्बन्धित सम्प्रदाय : इस धर्म ने न केवल नाथों सिध्दों आदि के मतों के विरोध में ही अपनी खंडन की प्रवृत्ति का परिचय दिया है अपितु अपने धर्म से विकसित होने वाले या सम्बन्ध रखने वाले मतों एवं सम्प्रदायों का भी विरोध किया। यह सिक्ख धर्म गृहस्थ धर्म के रूप में विकसित हुआ था इस लिए इस ने उदासी सम्प्रदाय का भी विरोध किया है। इसके अतिरिक्त पृथी चन्द से सम्बन्धित मीने रामराय से सम्बन्धित रामराइए और धीरमल से सम्बन्धित धीरमलीए सम्प्रदायों का भी विरोध किया[300] है। ये सभी गुरु गद्दी की प्राप्ति न होने के कारण अपने नवीन सम्प्रदायों को जन्म देते हैं। परन्तु गुरु साहिबान ने इन के अनुसरण का निषेध किया है।

उदासी सम्प्रदाय[301] : इस सम्प्रदाय का पंजाब की तत्कालीन जनता पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। इसके संस्थापक गुरु नानक देव जी के पुत्र श्री चन्द थे। इस सम्प्रदाय के विकास की गाथा भी 'गुरु प्रताप सूरज' में इंकित है। इस सम्प्रदाय के पवर्तक श्री

299-(क) गु॰ प्र॰ सू॰ रि 3, अंशु 20, पृ॰ 5060-61।

(ख) वही, रि 3, अंशु 50, पृ॰ 5196-5202

300- (क) वही, रि॰ 3, अंशु 19, अंक 35, पृ॰ 5057

301-(क) ज्ञानी अीशर सिंह नारा : इतिहास बाबा श्रीचन्द जी साहिब अते उदासी सम्प्रदाय (पंजाबी)

(ख) डा॰ सच्चिदानन्द शर्मा : उदासी सम्प्रदाय और कवि सन्तरेण।

चन्द अपनी गोदड़ी का चमत्कार जहांगीर को ही नहीं दिखाते[302] अपितु गुरु साहिबान समय समय पर भेंट लेने के लिए आते है। गुरु साहिबान यद्यपि इन का आदर करते हैं तथापि इनकी विचारधारा उन्हें मान्य न थी। श्री चन्द के पश्चात् बाबा गुरुदित्ता उनकी गद्दी पर विराजमान हुए तथा उनके पश्चात् बालू हसना, फूल, गोंदा अलमस्त आदि प्रमुख उदासी सम्प्रदाय को चलाने वाले हुए है।[303] पूर्वोक्त अन्य सम्प्रदायों का यद्यपि गुरु प्रताप सूरज' में उल्लेख हुआ है तथापि उनके विकास की परंपरा का इसमें विवरण नहीं दिया गया है। इस धर्म के विचार और सिध्दांत सिक्ख धर्म के सिध्दांत के बहुत निकट है अन्तर केवल इतना है कि यह मत साधना और तपस्या में विश्वास रखता है। संसार को त्यागने का सन्देश देता है जबकि गुरु नानक देव जी की विचारधारा इस के विपरीत थी।

14- गुरु साहिबान द्वारा धर्मभावना से उत्प्रेरित नवीन नैतिक मूल्यों की स्थापना

'गुरु प्रताप सूरज' में वर्णित गुरु साहिबान के उपदेशों से यह स्पष्ट विदित होता है कि वे समस्त सामाजिक, मानसिक एवं शारीरिक रोगों का मूल कारण अनैतिकता मानते थे। अतः उन्होंने विविध मानवीय क्षेत्रों से अनैतिकता के दूरीकरण के लिए नैतिक पथ्य के रुप में नो नवीन नैतिक मूल्यों की स्थापना का प्रयास किया। इस लिए उन्होंने सार्वजनिक एवं सार्वभौमिक मूल्यों का परिस्थिति अनुसार भारतीय शाश्वत ज्ञान चिन्तन से सारभूत तथ्यों का चयन ही नहीं किया अपितु अपने जीवन के उदाहरण प्रस्तुत कर उनका आदर्शीकरण भी किया। उन्होंने सतनाम के स्मरण एवं कीर्तन का ऐसा युगानुकूल संमार्ग दिखाया जो सर्व जातियों के प्राणियों के लिए श्रेयस्कर था। उन्होंने संसार से विरक्ति का सन्देश न देकर गृहस्थाश्रम में कमलवत रहने का उपदेश दिया।

302- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 1, अंशु 6, अंक 31, पृ॰ 1330

303- वही अंक 42-45, पृ॰ 1331

(1) सद्गुरु का महत्व : जीवन के सभी क्षेत्रों में गुरु की आवश्यकता सदैव मानी गई है परन्तु धार्मिक एवं आध्यात्मिक साधना पथ पर अग्रसर होते ही साधक को गुरु की विशेष आवश्यकता अनुभव होने लगती है। इसी लिए सद्गुरु की महिमा का ब गान भारतीय धर्म साधना में बहुशः मिलता है। वेद हमारे आदि ग्रंथ माने जाते हैं और ब्रह्मा आदि गुरु।[304] पुराण[305] और उपनिषद् साहित्य में भी गुरु की महिमा का अनुपम गान हुआ है।[306] महाभारत[307] और घेरण्ड संहिता[308] में गुरु की अनुकम्पा से सर्वसुखों की प्राप्ति का उल्लेख मिलता है। यही गुरु भक्ति की धारा मध्यकालीन सन्त साहित्य में नवीन रूप धारण करती है। डा॰ हजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन है कि " नाथपंथी योगियों, सहज और बज्रयानियों, तांत्रिकों और परवर्ती सन्तों में इसी लिए सद्गुरु की महिमा इतनी अधिक गाई गई है। सद्गुरु के बिना जगत के चाहे और सभी व्यापार हो जाये पर यह जटिल साधना पध्दति नहीं हो सकती।[309]

गुरु रहित होना सन्त साहित्य में बुरा माना जाता है। कबीर आदि ने तो गुरु को

304- गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः ।

— कल्याण : उपासना अंक, पृ॰ 629

305- श्री मद्भगवत पुराण : 11·7·20; 11·17-27, 11·17·28-32, 11·10·5, 10·80·32-34

306- (क) यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ तस्यैते कथितोह्यर्थाः प्रकाशन्त महात्मनः ।— श्वेताश्वतर उपनिषद्, 6·2·3

(ख) अन्यत्र भी देखे : बृहदारण्यक उपनिषद् 4·4·33, मुडंक 1·2·12, ब्रह्मविद्योपनिषद् 28, 31·34

307- महाभारत, आदि पर्व 3·35-77, 131·34-58, तथा द्रोण पर्व 181·17

308- घेरण्ड संहिता, 3·10, 3·13-14

309- डा हजारी प्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ॰ 65

गोबिन्द से भी बड़ा बताया है।[310] यह गुरु महिमा वर्णन की परिपाटी इतनी प्रचलित हुई कि साधक एवं कवि मंगलाचरण के रूप में इष्टदेव महिमा के यश वर्णन के स्थान पर गुरुदेव की कीर्ति का गान करनेलगे । आदि ग्रंथ में इसी परिपाटी का अनुसरण मिलता है।'जपुजी' वाणी के आरंभ में दिए गए मूल[311] मन्त्र में गुरु की इतनी महिमा वर्णित है कि उसकी कृपा के बिना परमात्मा का साक्षात्कार नहीं हो सकता । सद्गुरु की प्राप्ति से मानव देवता के रूप को धारण कर[312] सकता है। ऐसे गुरु की प्राप्ति के लिए गुरु अमरदास जी की प्रयत्न शीलता का 'गुरु प्रताप सूरज' में उल्लेख मिलता है। 'निगुरे' होने का वे कितना पश्चाताप[313] करते हैं। क्योंकि बिना गुरु की सहायता के कोई प्रत्यावर्तन की यात्रा नहीं कर सकता । साधक को इस बात की कौन सी गारंटी है कि वह ठीक राह पर चल रहा है जब कि उसे कोई व्यक्ति निश्चित मार्ग से विपथ होते समय बतला न दे । उसके साथ सदा एक ऐसा व्यक्ति रहना चाहिए जो उक्त यात्रा को स्वयं पूर्ण कर चुका है और उसके कष्टों तथा सुखों से अभिज्ञ भी हो ।---- यदि किसी को सच्चा गुरु मिल जाये तो आगे की सफलता निश्चित हो जाती है और यही कारण है जिससे निर्गुण सम्प्रदाय में इस इतना महत्व दिया जाता है।गुरु को परमेश्वर का स्वरूप कहा जाता है''।[314]

310- गुरु गोबिन्द दोउ खड़े-काके लागू पांय ।
बलिहारी गुरु आपणे जिन्ह गोबिन्द दियो बताये।।
— संत वाणी संग्रह : भाग पहला, पृ॰ 2

311- आदि ग्रंथ (शब्दार्थ) पृ॰ ।

312- "बलिहारी गुरु आपणो दिउहाड़ी सदवार ।
जिनि माणस ते देवते किए करत न लागी वार।।
-वही , पृ॰ 462

313- गु॰ प्र॰ सू॰ रा॰ 1, अंशु 14, अंक 40-42, पृ॰ 1372

314- डा॰ पीताम्बर बड़थ्वाल : हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, पृ॰ 255, 263

आदि ग्रंथ और दशम ग्रंथ[315] में इसी विचारधारा का प्रतिपादन मिलता है। ''नानक मार्ग न तो दुरूह साधना का मार्ग है और न इसमें ब्राह्मण-विरोध का स्वर इतना प्रबल और तीव्र है जितना संतमार्ग में । तो भी नानक-मार्ग में गुरु-महत्व को स्वीकार किया गया है।इसका मुख्य कारण तो यह प्रतीत होता है कि 'गुरु' उस नवीन चेतना का प्रतीक बन चुका था जिसके कारण धर्म के द्वार निम्न जातियों के लिए खुल सके थे। 'गुरु' वर्ण-धर्म पर आश्रित धार्मिक संकीर्णता के विरुध्द विद्रोह का प्रतीक बन चुका था । अतः गुरु नानक द्वारा इसका अपनाया जाना बहुत स्वाभाविक ही था ।गुरु नानक के उत्तराधिकारियों की वाणी में खंडनात्मक प्रवृत्ति सर्वथा नगण्य है और जब पंचम गुरु के निधनोपरांत संगठन का आग्रह प्रबलतर होता गया और हिन्दू जाति के सभी अंगों के संयुक्त संघर्ष के लिए आयोजन होने लगा तो 'गुरु का सिध्दांतपरक रूप अपेक्षाकृत क्षीण होने लगा[316] ।"परन्तु सिख धर्म में गुरु का महत्व आज तक अक्षुण्ण दिखाई देता है। सिक्खों की सुप्रसिध्द नारा "श्री वाहिगुरु जी की फतह" भी गुरु महिमा का उद्घोषक है। गुरु गोबिन्द सिंह ने पंथ चलाने का आदेश आकल पुरुष से प्राप्त किया और अपने पश्चात् आदि ग्रंथ को ही एक मात्र गुरु मानने का आदेश दिया[317] । आदि ग्रंथ में अनेक स्थानों पर गुरु को परमेश्वर[318] के रूप में

315- दशम ग्रंथ : विचित्र नाटक, छन्द 4,42 तथा पाख्यान चरित्र 405

316- डा॰ हरिभजनसिंह : गुरु मुखी लिपि में हिन्दी काव्य ,पृ॰ 84

317- आगिआ भई अकाल की तबै चलायो पंथ ।
सब सिक्खन को हुकम है गुरु मानिओं ग्रंथ ।। ।। ।।
— पंथ प्रकाश , निवास 40,पृ॰ 338

318-(क) आदि ग्रंथ : मारु सोहले 6 · 11, सिरी असटपदी 10/रहाउ ,सूही, असटपदी 2 · 7, रामकली, सिध गोसटि 70, माझ वार शलोक 1-2, गउड़ी ,असटपदी 8, आसा वार शलोक 2

(ख) भाई जोध सिंह : गुरमति निरणय : (पंजाबी) (सप्तम संस्करण ।पृ॰ 106-150

(ग) डा॰ सुरेन्द्रसिंह कोहली : सिख-दर्शन, पृ॰ 83

सम्माननीय मबा बताया गया है। इस में गुरु के स्वरुप, लक्षण, आवश्यकता और महत्व पर कई प्रकार से प्रकाश डाला गया है। वास्तव में सिक्ख धर्म में गुरु का महत्व अद्वितीय है। इस धर्म को सिध्दांतिगत व्यवस्था का यह इतना महत्व-पूर्ण अंग है कि इसके बिना सिक्ख धर्म की कल्पना भी नहीं की जा सकती। आदि-ग्रंथ का लगभग प्रत्येक श्लोक प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से गुरु की ही बात करता है। गुरु ही सिक्ख धर्म एवं दर्शन का धुरा है। इसी विचारधारा का 'गुरु प्रताप सूरज' में प्रतिपादन मिलता है।

'गुरु प्रताप सूरज' में ब'गुरु' शब्द की व्युत्पत्ति पर प्रकाश डालते हुए भाई सन्तोख सिंह लिखते हैं कि 'गु' का अर्थ है अन्धकार और 'रु' का अर्थ है दूर करने वाला।[319] इस व्युत्पत्ति अनुसार गुरु वह है जो सिक्ख (शिष्य) के अज्ञान-तिमिर को दूर करे[320]। सरदार खजान सिंह ने इसी अर्थ की पुष्टि[321] की है। भाई कान्ह सिंह इस शब्द की व्युत्पत्ति 'गृ' धातु से मानी है जिस का अर्थ है निगल लेना (खा लेना) और समझाना अर्थात् जो अज्ञान को निगल जाता और सिक्ख को तत्व-ज्ञान समझाता है वह गुरु[322] है। ऐसा गुरु ही साधक को ईश्वर प्राप्ति का मार्ग दिखाता है।[323] ईश्वर अंश जीव इस संसार में आकर अंशी (ईश्वर) को ही भूल जाता है। मायामोह लोभ ईर्ष्या, तृष्णायुक्त संसार के अन्धकार में जीव लक्ष्यहीन भटकता रहा

319- (क) भाम कहैं – गो – को तम नाश ।
- रु – को अरथ जु करहि प्रकाश ।
– गु · प्र · सू · रा · 3, अंशु 55, अंक 21, पृ · 2163

(ख) अद्वयतारकोपनिषद -- 16-19, श्री रामशर्मा : (सम्पादक) 108 उपनिषद, पृ·193

320- सतिगुर के सुनिबे उपदेश । हतहि अविद्या सहत कलेश ।।
– गु · प्र · सू · रा · 2, अंशु 36, अंक 12, पृ · 1790

321

322- महान कोश , पृ · 311

323- गु · प्र · सू · रा 5, अंशु 46, अंक 42-48, पृ · 2695-96

है निरन्तर आवागमन के चक्कर में फंसा रहता है। इसी लिए गुरु प्राप्ति के बिना साधक संसार सागर से संतरण नहीं कर सकता। भारतीयता के सच्चे प्रतिनिधि महाकवि सन्तोख सिंह इस ग्रंथ में साधक और गुरु के परस्पर सम्बन्धों, गुणों आदि का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि जिस साधक को गुरु वचनों पर प्रतीति होती है उसे उच्च पद की प्राप्ति होती है।[324] कलियुग में सद्गुरु ही गति प्रदान करने वाला है।[325] गुरु की सेवा से उसे चतुर्पदार्थों की प्राप्ति होती हैं। बिना सेवा के उसे भक्ति प्राप्त नहीं हो सकती और बिना भक्ति के ज्ञान नहीं मिलसकता और बिना ज्ञान के मुक्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती। अतः सेवा से ही साधक कृतार्थ होता है। क्योंकि सद्गुरु अपने सेवक के अंग संग रहते हैं और दोनों लोकों में

324-'गुरु वचन पर परतीति। तिस हि मिलहि ऊंचोपद तीति।

- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 1, अंशु 13, अंक 48, पृ॰ 1366

325- (क) धंन धंन सतिगुर गतिदाना।कलि महिं करहु उधारन प्राना।

- वही रा 1, अंशु 53, अंक 14, पृ॰ 1552

(ख) तिन को भी गुर सद्गति दे हैं।जनम मरण संकट नहिं पै हैं।। 44 ।।

- वही रा 5, अंशु 49, अंक 44, पृ॰ 5704-5

326- (क) सेवा कर ले चतुर पदारथ।गुर सिक्ख सेवहि होहि क्रितारथ।- - ।

- वही, रा 2, अंशु 3, अंक 47-47, पृ॰ 1657

(ख) सतिगुर की प्रसन्नता अति ह्वै।चार पदारथि तिसु कर गति ह्वै।
गुरु शरधा उर धरि जोइ। सो सभि आइ प्रापती होइ।। 9 ।।

- वही, रा 2, अंशु 40, पृ॰ 1805

(ग) महा कठिन है सतिगुर की सेवा।
जिनहु करी सो जानहि भेवा।।

- वही रा 2, अंशु 57, अंक 56, पृ॰ 1875

उनके सहायक होते है।[327] गुरु का स्वरुप सूरज के समान होता है[328] ।

सतिगुरु के स्वरुप पर प्रकाश डालते हुए भाई सन्तोख सिंह ने चार प्रकार के सद्गुरुओं का उल्लेख किया है। और गुरु नानक को उन सब से बड़ा बताया है। भृंगी के समान, पारस के समान, चन्दन के समान और दीपक के समान।[329] अन्तिम प्रकार का सद्गुरु अपने सिक्ख को ब्रह्मज्ञानी बना देता है। एक अन्य स्थान पर उन्होंने गुरु के तीन प्रकारों का भी उल्लेख किया है। ब्रह्म निष्ठ गुरु, ब्रह्म श्रोत्री तथा श्रोत्री ब्रह्मनिष्ठ[330] । केवल श्रोत्री से शास्त्र ज्ञान तो मिल जाता है परन्तु कल्याण नहीं होता । इसी तरह केवल ब्रह्म निष्ठ से भी कल्याण नहीं हो पाता । ये दोनों केवल स्वयं को ही भावसागर से पार उतार सकते हैं परन्तु दूसरे जिज्ञासु को ब्रह्म का साक्षात्कार कर सकने में असमर्थ रहते हैं । परन्तु भाई सन्तोख सिंह के विचारानुसार उनका सद्गुरु दोनों– श्रोत्री और ब्रह्मनिष्ठ– होने के साथ साथ हितकारी भी हैं । जो महान प्रतापी एवं जगतपति के अवतार हैं । जो चारो पदार्थों को देने वाले हैं । अपनी करुणा एवं बल से साधक के

327- (क) सतिगुरु सदा अमर पहि चानहु ।अंगसंग निज सिक्खनि जानहु ।
दोनहुं लोक नि बिखै सहाइ ।अनिक बिघन ते लेति बचाइ ।। 22 ।।
– गु॰ प्र॰ सू॰ रा 4, अंसु 53, पृ॰ 2450

(ख) 'सति गुर सकल जगत के दाते ।'
– वही, रा 10, अंसु 16, अंक 30, पृ॰ 3828

328- गुरु सरुप सूरज सम भासे ।
– वही, रि॰ 5, अंसु 5, अंक 17, पृ॰ 5436

329-वही , रा 5, अंसु 46, अंक 25-31, पृ॰ 2693-94

330-(ब्रहम नेष्टो ते ब्रहम श्रोत्री गुरुः -)श्रोत्री ब्रहम निशठी गुर पूरा ।
– वही रि 5, अंसु 45, अंक 36, पृ॰ 5679

हृदय में ब्रह्मज्ञान उत्पन्न कर देते हैं और गृहस्थ भोग में ही योग दे देते हैं । इस लिए इन का शरण त्यज्य नहीं हैं । दसों गुरु साहिबान ऐसे ही अवतरित हुए थे और उन्होंने अपने असंख्य सिक्खों का उध्दार किया था ।[331]

(2) नाम साधना : सतनाम स्मरण और कीर्तन : मध्ययुगीन भक्ति साहित्य में
नाम साधना का तत्व सगुण और निगुर्ण दोनों प्रकार के भक्ति साहित्यों में स्वीकृत है। डा॰ हजारी प्रसाद दिवेदी लिखते हैं '' मध्य युग के भक्तों में भगवान के नाम का माहात्म्य बहुत अधिक है। मध्ययुग की समस्त धर्म-साधना को नाम की साधना कहा जा सकता है। चाहे सगुण मार्ग के भक्त हो , चाहे निर्गुण मार्ग के, नाम पज के बारे में किसी को सन्देह नहीं । इस अपार भव-सागर में एक मात्र नाम ही नौका का रूप है।''[332] आदि ग्रंथ में भगवन्नाम की महिमा व आवश्यकता, स्वरुप, नाम स्मरण, जप का अनेक स्थलों पर उल्लेख हुआ है। जैसे :-

1-अंम्रित वेला सचुनाउ वडिआई वीचारु ।[333]

2- हरि के नाम समसर किछु नाहि ।[334]

3- सरब धरम महि स्रेसट धरम ।
हरि को नाम जपु निरमल करम ।।[335]

4- उठत बैठत सोवत धिआइए ।
मारग चलत हरे हरि गाइए ।।[336]

5- रामनाम बिन स्थि बिरथे जग जनमा ।[337]

331- गु॰ प्र॰ सू॰ रि 5, अंसु 45, अंक 42-45, पृ॰ 5680

332- डा॰ हजारी प्रसाद द्विवेदी : मध्यकालीन धर्मसाधना, पृ॰ 5

333- आदि ग्रंथ, जपुजी

334- वही , गउड़ी सुखमनी महला 5

335- वही ,

336- वही, आसा महला 5

337- वही , भैरउ महला ।

इसी तरह ही दशम ग्रंथ में संकलित वाणी में भी नाम साधना के महत्व पर प्रकाश डाला गया है। एक दो उदाहरण देखिए :-

1 - किउ न जपो ताको तुम भाई।अन्तिकाल जो होई सहाई ।।
फोकट धरम लखो कर भरमा।इन ते सरत न कोई करमा।।[338]

2 - न जटा मुंड धरों ।।न मुद्रका सुवारो ।।
जपो तास नामं ।। सरै सरब कामं ।।[339]

इसी तरह ही 'जापु साहिब'[340] 'अकाल उस्तुति'[341] शब्द हजारे'[342] ज्ञान प्रबोध[343] आदि वाणियों में भी नाम की महिमा का प्रतिपादन मिलता है।

सिक्ख धर्म में प्रभु के विभिन्न नामों में से 'वाहिगुरु' नाम की श्रेष्ठता प्रतिपादित[344] की गई है।'गुरु नानक प्रकाश में इसी 'वाहिगुरु' नाम या 'सतिनाम' के स्मरण पर करने पर अधिक बल दिया गया है।यही नाम स्मरण ही अखिल कलमल का नाश करने वाला[345] है।यह धर्म से ही 'नाम-मार्ग' का अनुयायी ।यह प्रभु नाम ऋध्दियों सिध्दियों का प्रदाता और मोक्ष को प्रदान करने वाला[346] कहागया है।इस लिए आठों याम इस के स्मरण का गुरु साहिबान ने उपदेश दिया है। यह नाम (वाहिगुरु)

338- दशम ग्रंथ , बचित्र नाटक , 49

339- वही , 51

340- वही , जापु , 82

341- वही , अकाल उस्तुति , 35,87

342- वही , राग कलिआणी, 1·3 तथा देव कंधारी 2·1

343- वही , ज्ञान प्रबोध , छन्द 126-135

344- श्री गुरु नानक प्रकाश, पू अध्य· 1·61,पृ· 92

345- वही , पू·अ·1·64,पृ· 99

346- वही पू·अ·1·68,पृ· 107

ही मनुष्यों को चारो प्रकार की मुक्तियां प्रदान करने वाला है।

'चार मुकति के इहु दर चार।किधों विषनु को हैं भुजचार ।
चारुपदेश चक्र जेचार । चार अवस्था महि सुखकार ।। 70 ।।[347]

इस नाम-स्मरण में कुछ भी खर्च नहीं होता ।यह सरल मार्ग है और भवसागर से पार उतारेनेवाला[348] है।

'गुरु प्रताप सूरज' भी इसी परंपरा की एक महत्वपूर्ण कड़ी है जिस में उक्त विचारधारा की ही व्याख्या की गई है। भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालों में ,तीनों लोकों में और चारों युगों में नाम जप द्वारा ही लोगों ने मुक्ति प्राप्त[349] की है। परन्तु कलिकाल में तो विशेष रुप से सतिनाम ही श्रेय प्रदायक है। भाई सन्तोख सिंह ने भी कहा है :-

1- कलि महिं केवल है सतिनाम।इस ते लहै श्रेय सुखधाम ।। 9 ।।
बिना नाम ते नहिं छुटकारा।अपर करम ते बधै अहंकारा।।[350]

2- सतिनाम सिमरन ते होन।श्रवणा दि जु करहि हित चोन।।
× × ×
छुटिहि न तिन को आवा गउन।बिन सहाइ बपुरे नर जौन।।[351]

347- श्री गुरु नानक प्रकाश , पू॰ अ॰ 1॰ 70, पृ॰ 113

348- वही , पू॰ अ॰ 1॰ 77, पृ॰ 123

349- कल्याण : भगवन्नाम महिमा और प्रार्थना अंक , पृ॰ 71

350- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 5, अंसु 46, अंक 9-10, पृ॰ 2692

351- वही , रा 9, अंसु 17, अंक 20-22, पृ॰ 3606

3- प्रीत नाम की, नाम जपः नाम रवै विच प्राण
नाम उपदेसै नाम सुख सखा साचिला नाम ॥ 13 ॥[352]

कलिकाल में अनेक मतों का विस्तार हुआ परन्तु सत्य नाम स्मरण के बिना कोई भी सुखकर सिध्द न हुआ । पूर्व युगों में तप, यज्ञ आदि किये जाते थे परन्तु कलिकाल में तो जीव की दीन दशा को देख कर नाम स्मरण के बिना कोई अन्य उपाय ही नहीं है जो धर्ममार्ग पर चला सके ।[353] इसी सत्य नाम के स्मरण से अहंकार का नाश[354] हो सकता है। ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति सरलता से हो सकती है और जन्म मरण के चक्र में जीवात्मा फिर कभी नहीं पड़ेगी[355] । इसी नाम के जहाज पर चढ़ कर भव सागर से उतरा जा सकता है । जैसे :-

कल महि नाम जहाज महाना।
शब्द पठनि कीजहि अभ्यास ।
चढहु जहाज नाम सुख राशि ॥[356]

आठ पहर स्मरण करने[357] तथा गुरुशब्द के प्रतिदिन गायन से या सुनने से दोनों लोकों की प्राप्ति होती है । प्रभु की महिमा सुनने से तथा एक सतिगुरु की लिव लगाने से ब्रह्म के ज्ञान की प्राप्ति[358] होती है तथा उनके अभिराम पद की प्राप्ति होती[359] है ।

352- गु · प्र · सू · रा 9, अंशु 17, अंक 20-22, पृ · 3606
353 - वही , रा 1, अंशु 6, अंक 4-7, पृ · 1328
354 (क) वही , अंक 10, पृ · 1329
(ख) वही , अंशु 30, अंक 11, पृ · 1440
355- वही , अंशु 11, अंक 18, पृ · 1353
356 - वही , रा 5, अंशु 47, अंक 52, पृ · 2696
357- वही , अंशु 20, अंक 21, पृ · 1400
358- वही , अंशु 26, अंक 41-42, पृ · 1422
359 - वही , अंशु 40, अंक 33, पृ · 1488

गुरु साहिबान स्वयं भी गुरु शब्द का कीर्तन किया करते थे और अपने रबाबियों से सुनते थे ।[360] वे नाम स्मरण में एकाग्रचित होकर अपनी लिव को लगाये रखते थे । साध संगत को सत्यनाम के स्मरण का उपदेश देते थे जिस से उनकी मनोकामनाएं पूर्ण होती थी ।[361] जो मानव नित्य इसका जाप करते है वे धन्य हैं । उन पर प्रभु प्रसन्न होते हैं ।[362] सत्य नाम के गुर मन्त्र के जाप से व श्वास श्वास में नामको आधार बनाने से मनुष्य नरक में नहीं पड़ता है। श्री गुरु नानक देव जी ने नाम के प्रताप को ही जगत में व्यक्त किया है तथा अन्य गुरु साहिबान ने भी उसीके द्वारा मृगतृष्णा से संतप्त जगत को सन्मार्ग दिखाया ।[363] और बताया है कि जिस के मन में राम नाम का वास होता है उसके सब संकट मिट जाते हैं । गुरु जपने से ही वैराग्य की भी उत्पत्ति होती है । मनुष्य को वास्तविक ज्ञान प्राप्त हो जाता है।[364]

(3) <u>सत्संगति</u> : सर्व साधारण के निःश्रेयस का साधक होने के कारण सत्संगत भी है। इसकी महिमा अपरंपार कही गई है। यह मोक्ष का मार्ग है। मोक्ष के अन्य साधन फूल समान कहे जाते है परन्तु यह तो फल सिध्दि है। पारमार्थिक दृष्टि से ही नहीं व्यावहारिक एवं नैतिक दृष्टि से भी इसकी महिमा अनुपम है। साधुसंग तो अलौकिक तीर्थराज है। इसी जीवन में इसके द्वारा हलत पलत में सभी शुभ फलों की प्राप्ति हो सकती है।

360- गु॰ प्र॰ सू॰ रा॰ 1, अंशु 30, अंक 19, पृ॰ 1441

361- वही , अंशु 32, अंक 4, पृ॰ 1448

362- वही , रा 1-2, 5, अंशु 47, अंक 52, पृ॰ 2696

363 - वही , रा॰ 3, अंशु 67, अंक 19-21, पृ॰ 2214

364- वही , रा 12, अंशु 62, श्री मुखवाक , पृ॰ 4460

ज्ञान, योग और तप की तरह भक्ति की एकाकी साधना नहीं होती, वह व्यक्ति-धर्म ही नहीं है, समाज-धर्म है। सांसारिक विषयों के प्रलोभनों से बचने के लिए यह आवश्यक है कि ऐसे समाज में रहा जाए, जहां भक्ति -विरोधी परिस्थितियां नहीं हों । साधु महात्माओं के साथ बैठने से आत्मा को शान्ति मिलती है उनके उपदेशों से लोक-लिप्सा का ह्रास होता है। उनकी सेवा और अनुकरण से भगवान के ज्ञान का साक्षात्कार होता है।

सिक्ख धर्म में सत्संग की अद्वितीय महिमा कही गई है। सच्चे सिक्ख आदर्श संगति में रह कर अपने जीवन को सफल बना लेते हैं। सत्संगति या सुधुसंग का भाव सन्तों की संगति या सज्जनों का संसर्ग कहा जाता है। 'संगत' मनुष्यों के समूह को कहा जाता है। जिस में कुछ सच्चे सिक्ख होते हैं । और कुछ 'सचिआर' बनने के लिए उस में सम्मिलित होते हैं । इस में स्थान प्राप्तकरने वाला सौभाग्यशाली माना जाता है। साधु की संगति अत्यन्त पवित्र और महिमा शालिनी कही गई है। इस में सम्मिलित होकर साधक के हृदय में प्रभु प्रेम उत्पन्न होता है। इस प्रेम की पूर्णता पर व्यक्ति आनन्दावस्था को प्राप्त कर भव सागर से पार उतर जाता है।

सज्जनों का संग पारस के समान है जो साधारण व्यक्तियों को भी सोनें में परिवर्तित कर देता है। उन्हें सत्य का साक्षात्कार प्राप्त होता है। शुध्द समाधि की अवस्था को पाकर साधक की सभी इच्छाएं तृणवत हो जाती हैं। इस साधुसंग में जब कोई पापी या मनमुख प्रवेश के लिए आता है तो उसे ठुकराया नहीं जाता अपितु उसे इस का सदस्य बना कर उपदेश दिया जाता है। जिस की सुगन्धि को धारण कर वह दुर्गुणों को त्याग देता है। सत्संग एक सच्चे गुरु की पाठशाला है जहां शिष्य केवल हरि के गुणों को सीखता है। उन्हें धारण कर अपना जीवन सफल बना लेता है। क्योंकि इस सत्संग का मुख्य कार्य प्रभु - नाम स्मरण है। यहां पर गुरु की अमृत वाणी का गान होता है। हरि कीर्तन का श्रवण ही साधक का मानसिक खद्य बन जाता है। अहंकार को त्याग कर वह मुक्ति पथ पर अग्रसर होता है ।

उक्त भावनाओं का आख्यान ही 'गुरु प्रताप सूरज' में हुआ है। इस में वर्णित गुरु चरित्र के साथ साथ उनके उपदेशों का भी सुन्दर संग्रह किया गया है। उन्होंने अपने शिष्यों को जो उपदेश दिए हैं उन में से सर्वाधिक महत्वपूर्ण सत्संग की महिमा है। उनके सत्संग में आने वाले अनेक शिष्यों ने उनके उपदेश से अपने जीवन को सफल बनाया है ।

सत्संगति की सेवा से मन में परमेश्वर का प्रेम जागृत[365] होता है। इस में आने वाले की सभी कामनाएं पूर्ण हो जाती[366] है। गुरु की संगति में जाना इस लिए भी कल्याणकारी है कि वहां भजन, सेवा में समय व्यतीत होता है। व्यर्थ बैठे रह कर समय व्यतीत करने का क्या लाभ मृत्यु होने पर शरीर को कोई स्पर्श भी नहीं[367] करता। पूर्व युगों में (सत्ययुग, द्वापर, त्रेता आदि में)तप साधना द्वारा प्रभु की प्राप्ति का प्रयास किया जाता था परन्तु कलिकाल में तो केवल सत्संगति की सेवा से ही उसकी प्राप्ति हो सकती है , जल लाना, पंखा करना, चरण धोना ,अन्न पकाना इत्यादि अनेक प्रकार की सेवा से अपने जीवन को सफल बनाया जा सकता[368] है। इस लिए सतिगुरु और सत्संगति की सेवा की महिमा सब से महान है। हजारों वर्षों के तप से भी अधिक इस सेवा का फल कहा[369] गया है। सत्संगति की सेवा की रीति का वर्णन निम्न पंक्तियों में देखिए :-

'सति संगति सेवन सिखरावैं।भउ भगति की रीति चलावैं ।। 35 ।।
श्री परमेशुर के हम दास।निरहंकार अलोभ निरासु ।

365-गु॰ प्र॰ सू॰ रा॰ 1, अंशु 12,अंक 41,पृ॰ 1362
366- वही , रा 1,अंशु 13, अंक 19 , पृ॰ 1363
367- वही , रा 1, अंशु 13, अंक 38,पृ॰ 1365
368 - वही , रा 1, अंशु 16, अंक 2-4,पृ॰ 1377-78
369- वही , रा 1 अंशु 19,पृ अंक 42,पृ॰ 1397

परमेशुर आणा गुन गावन।काजां ते हंता सु उटावन ।। 36 ।।
नित संतनि का सेवा करनो । । सति संगति महिं चित बृति धरनो ।।
आपा नहीं जनावन करनो ।दासन दास दास निज बरनो ।। 37 ।।
परम प्रेम परमेसुर मांहो । बिनता करन, सु मैं कुछ नांहो ।
करन करावन को इक दाता । पूरन सरब ठोर सो जाता -।। 38 ।।
शब्द गुरु के गावन करने ।किधों शबद धुनि श्रोननि धरने ।
निसदिन सिमरहु श्री सतिनाम । दुहि लोकनि के पूरति काम ।।[370] 39 ।।

सत्संगति में रह कर व्यक्ति भक्ति करते हैं । सत्नाम के रंग में रंगे जाते हैं । इस से हजारों का उध्दार[371] होता है। जब सन्तों का संग अधिक हो जाता है तब साधक उस पूर्ण प्रभु को सब में देखने लगता है। तब उसका मुख लाल हो जाता है। शान्ति और मधुरता से पूर्ण होकर आन्तरिक वृत्तियों में स्थिरता आ जाता है। पर भक्ति के स्व-स्वरुप को जान कर जोवात्मा को परमात्मा में अभेदता स्थापित[372] हो जाता है।सत्संगति में मन का सम्पूर्ण कलुषता दूर हो जाती[373] है। क्योंकि यहां सतिगुरु को वाणी पढ़ी जाती[374] है। इस संगति को जो सेवा करता है। उसे कोई भो पदार्थ दुर्लभ नहीं होता । 9निधियां और 18 सिध्दियां उसको सेवा में उपस्थित रहती[375] है। क्योंकि यहां हरिनाम का, स्मरण और सुन्दर कोर्तन होता[376] है।साधु को चरण धूलि प्राप्त कर साधक पार उतर जाता है।

370- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 1,अंशु 20, अंक 35-39,पृ॰ 140।
371- वही , अंशु 25, अंक 36-37, पृ॰ 142।
372- वही , अंशु 39, अंक 47-48, पृ॰ 148 4-85
373- वही , रा 1, अंशु 40, अंक 40, पृ॰ 1489
374- वही , रा 1, अंशु 40, अंक 42-43, पृ॰ 1489
375- वही , रा 1 अंशु 43, अंक 21, पृ॰ 1503
376- वही , रा 1 ,अंशु 45, अंक 10, पृ॰ 1513

श्री गुरु रामदास जी के मुख से इस की महिमा सुनिए :-

''गंगा जमना गोदावरी सरस्वती ते करहि उदमु धुरि साधू की ताई।
किल-विखि मैलु भरे परे हमरै विचि हमरी मैलु साधू की धुरि गवाई ।। । ।।
तीरथ अठसठि मजनु नाई ।। सत संगति की धूरि परी उडि नेत्री सभ
दूरमति मैलु गवाई ।। × × × ×
हरि का संतु मिले गुर साधू ले तिसकी धुरि मुखि लाई ।। 3 ।।
जितनी सिसृटि तुमरी मेरे सुआमी सभ तितनी लोचै धूरि की ताई।।
नानक लिलाटि होवै जिसु लिखिआ तिसु साधू धुरि दो हरि पारि लंघाई।।4/2 ।।[377]

ऐसा सत्संगति का फल तप से 10 गुणा अधिक कहा गया[378] है। इस में जाकर साधक को नम्रता प्राप्त होती है। बादल की भान्ति नम्र होकर वर्षा होती है। विशेष पर्वो पर धर्मशाला में जा कर जीवन सफल बनाना चाहिए । सत्संगति में जाकर साधक सत्य नाम के स्मरण से विषयों का मैल को दूर कर , सुजान बन कर , तत्व ज्ञान का भागी बन जाता है।[379] तभी तो कहा भी है :-

याते जानहु सेवा सार।सेवहु सन्त कि गुरु दरबार ।
ऐसा दुर्लभ वसतु कुछ नांहि ।सेवहि संगति बहुर न पाहीं ।।[380]
× × ×
सभि उपाव सम दम, चरज, जोग, जग्य, तप, दान।
सति संगत बिनु बिफल हैं बांझ सुवन सम मान।।[381]

377- गु ॅ प्र ॅ सू · श्री मुख वाक रा 2, अंक 21 के पश्चात् पृ · 1653-54

378- वही , रा 2, अंशु 3, अंक 44-4-, पृ · 1656-57

379- वही , अंक 11 , पृ. 3488

380- वही रा 11,अंशु 33-, अंक 34, पृ · 4100

381- वही , रि 5, अंशु 10, अंक 28, पृ · 5463

यह सत्संग ही भक्ति की उत्पत्ति और विकास के लिए अनुकूल वातावरण उपस्थित करने वाला अद्वितीय साधन है। यही भव-बन्धन से मुक्ति का प्रधान साधन है।

(4-) प्रभु भाणे में विश्वास : गुरमत के प्रतिपादक ग्रंथों में प्रभु के 'भाणे' अनुसार जीवन व्यतीत करने का आदेश दिया गया है। सांसारिक सुख दुःख सब प्रभु इच्छा या उसके हुकम से ही प्राप्त होते हैं । मनमुख दुःखों एवं कष्टों में दुखित होते हैं और सुखों के वैभव प्राप्त करने पर सुखी होते हैं परन्तु गुरमुख व्यक्ति सुख दुःख दोनों को प्रभु का इच्छा मान कर कष्टों आदि को हंसते हंसते सहन कर लेते हैं । उदाहरणार्थ श्री गुरु अर्जुन देव जी का आदर्श हमारे सामने है।जिन्होंने हंसते हंसते अनेक कष्टों को सहन किया और प्रभु के 'भाणे' को मीठा कर के जाना ।

इस भाणे और उसकी रजा में राजी रहने के सिध्दांत का 'गुरु प्रताप सूरज' में अनेक स्थानों पर उल्लेख हुआ है। पतिव्रता स्त्री के रूपक द्वारा इस सिध्दांत का सुन्दर विश्लेषण भी किया है।

1 - भाणा परमेशुर कहु जैसे ।हुइ प्रसन्न अनुसारी तैसे ।[182]

2 - सतिगुरु अर प्रभु जथा रजाइ ।तिस पर राजी रहिन सदाइ ।। ।5 ।।
मुख्य धरम सिक्खी की एही।जो धारहि सिख गुरु सनेही ।
जिम पतिव्रता इसत्री लच्छन ।पति आज्ञा महिं सुखी विचच्छन ।। ।6 ।।
प्रभु आज्ञा महिं तथा सदीवा ।रहु राजी बनि गुरमुख जीवा ।
जप तप वरत दान फल सारे ।इस ते प्रापति होइ सुखारे ।। ।7 ।।[183]

भाणे के अनुसार जीवन व्यतीत करने का उपदेश गुरु जी कई स्थानों पर दिया है। श्री गुरु अर्जुन देव जी भाई बहोड़े को उपदेशदेते हुए कहते है कि सुख दुःख में

182- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 1, अंशु 6, अंक 10, पृ॰ 1329

183- वही , रा 1, अंशु 11, अंक 15-17 , पृ॰ 1353

प्रभु का भाणा मानना और हर्षशोक में एक सा रहना,[384] श्री हरिगुबिन्द जी भी भाणा मानने का उपदेश देते हैं और कहते हैं इस से तन की अहंता का विकार दूर होता है।[385] श्री गुरदत्ता के परलोक गमन पर रोदन करने वाली स्त्रियों को धैर्य देते हुए भी कहा गया है कि परमेश्वर के हुकम को मिटाने की समर्थता किस में है ? किसी मे नहीं ।भावी सभी के सिर पर झूलता है। अतः भाणा मान कर ही प्रसन्न रहना चाहिए । व्यर्थ के तर्क करने का कोई लाभ नहीं होता[386] । यही सन्तों का विचार है। दाराशिकोह को उपदेश देते हुए गुरु हरिराय जी कहते हैं प्रभु के भाणे को मीठा करके जानने और अदृष्ट सत्यस्वरूप को देखने में ही परम[387] गति है। इसी उपदेश के अनुसार उस ने हंसते हंसते मृत्यु को कष्ट को सहन किया । प्रभु की रजा को कोई नहीं मिटा[388] सकता । विद्वानों का बुध्दि बल भी इसे फेर नहीं सकता । परलोक सुधारने के लिए इसे मानकर ही जीवन यापन करना श्रेयस्कर[389] है। प्रभु के भाणे के प्रति तर्क करना अनुचित[390] है ।

(5) परोपकार : समाज के कल्याण के लिए परोपकार को भी मानवोचित आवश्यक धर्म बताया गया है। मन से, वचन से, कर्म से परोपकार सन्तों का, गुरमुख व्यक्तियों का सहज स्वभाव है। भारतीय धर्म की मान्यता है कि समस्त जड़ चेतन प्राणियों में वही एक प्रभु व्याप्त है। अतः जो धर्म सब में समानता की भावना का प्रचार करे, सर्व प्रेम उत्पन्न करे वही मानव के लिए करणीय है। सब में आत्म और आत्म में

384- गु· प्र· सू· रा 2, अंशु 45, अंक 39, पृ· 1827

385- वही , रा 4, अंशु 52, अंक 31, पृ· 2447

386- वही , रा 8, अंशु 39, अंक 6-7, पृ· 3458

387- वही , रा 9, अंशु 17, अंक 34, पृ· 3607

388- वही , रा 10, अंशु 17, अंक 9, पृ· 3829-30

389- वही , रा 10, अंशु 42, अंक 9-13, पृ· 3921-22

390- वही , रा 10, अंशु 49, अंक 31 पृ· 3949

सब का दर्शन मानव मात्र का कर्तव्य है। सर्वत्र परमात्म दर्शन ही सर्वोत्कृष्ट धर्म है। परोपकार इसी दृष्टि से प्रेरित प्रवृत्ति है। निःस्वार्थभाव से दूसरों के लिए यत्न करना ही 'परोपकार' कहलाता है। यही समस्त धर्म साधना का सार है। गुरु प्रताप सूरज' में गुरु साहिबानके उपदेशों में इस की महिमा प्रतिपादित है। यथा :-

सार महां सिमरनि सतिनामू कार महां करिबे उपकार ।
इन दोनहु बिन मानुष न धिककामी बिरथाबहि लखहि न सार।
पूछ सीग बिन पशू जनम तिन, आए बाद बीच संसार ।
अंत समें जमदूत गहै दिढ झूरति गमनहिं द्वै कर झारि ।। 22 ।।
× × ×
पुन, दान, तप, मख को करिबो होत न पर- उपकार समान।[391]

(6) गुरु वाणी पाठ : परम निःश्रेयस को प्राप्ति के लिए एवं नैतिक उत्थान के लिए सिक्ख जन 'आदि ग्रंथ' के पाठ और श्रवण को परमावश्यक मानते हैं क्योंकि इस में गुरु आत्मा का सन्देश, उसका नाम, और वाणी संग्रहीत होने के कारण, गुरु गोविन्दसिंह जी ने इसे गुरु की पदवी प्रदान की थी । दशम गुरु के साथ स ही गुरु का भौतिक रुप तिरोहित हो गया और गुरु आत्मा शब्द, नाम या वाणी के रुप में अवतरित हुई। वास्तव में, शरीर मृत्यु का ग्रास बनता है, परन्तु 'शब्द' या 'वाणी' सदैव रहती है। आदि ग्रंथ में गुरु वाणी या शब्द की महत्ता प्रतिपादित है :-

वाणी गुरु है वाणी विच वाणी अंम्रित सारे ।
गुरुवाणी कहै सेवक जन मानै प्रतख गुरु निसतारे।।[392]

391- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 3, अंसु 45, अंक 22, 23, पृ॰ 2107

392- आदि ग्रंथ , नट असटपदी महला 4

यह गुरु वाणी समस्त वैदिक एवं वेदान्त साहित्य के सार से अलंकृत है। ब्रह्म-ज्ञान की निधि है। इसके श्रवण, मनन, निदिध्यासन से साधक ब्रह्म का साक्षात्कार कर लेता है।

'गुरु प्रताप सूरज' में भी इस की महिमा का अनुपम गान हुआ है। भाई सन्तोख सिंह जी लिखते हैं कि कलिकाल में वेद पुराण का उपदेश कुएं के जल के समान है जिसे महान प्रयास करने पर निकाला जा सकता है परन्तु गुरु के शब्द सर्व जातियों के लिए हितकर हैं। वह मेघ के समान सब को सहज ही प्राप्त हो सकता है। उन्हीं केशब्दों में देखिए : -

"बेद पुरान कूप जल जैसे ।बरोसाइ को इक किति कैसे ।। 27 ।।
सतिगुर बानी मेघ समान।बरखे चहुदिशि बिखे महान ।।
बन के पसु पंछी सुख पावहिं । करहिं पान अरु तपत मिटावहिं ।। 28 ।।
कूप बिखे के होइ कि नांही । इक सम घन ते सभि सुख पांही ।
सारे खेती बोइ पकाइं बिना जतन सभि को सुख पाइं ।। 29 ।।
त्यों सतिगुर के शबद सुखेन। पढि गति प्रापति जेन स्केन।
धरती बिखे कूप को पानी। तऊ मेघ बरखहि, सुख ठांनी ।। 30 ।।
याते पंडित रिदे बिचारहु । धन अरु कूप नीर निर धारहु ।
गुर बानी को कारन ऐहु । सुनहु सुजन नहिं करहु संदेहू ।। 31 ।।
बरोसाइ लाखहुं गुर बानी ।ऊच नीचु कै एक समानी।
प्रेम ठानि जो पठ हि बिचारहि ।बहुर कमावहि हुइ निसतारहि ।। 32 ।।[393]

जब गुरु अमरदास जी मोहरी के सपुत्र अनंद के होने की सूचना प्राप्त कर आनन्द में लीन हो जाते हैं तथा 'अनंदु' की वाणी की रचना करते हैं तब उस मंगलकारी वाणी की महता के विषय में इस तरह का विचार व्यक्त करते हैः-

---

393- गु॰ प्र॰ सू॰ रा॰ 1, अंशु 46, अंक 27-32, पृ॰ 1520

" निति इस पठ न नेम निरबाहे । अलभ न बसतु होति जि चाहे ।। 19 ।।
भुकति मुकति को इह फल दाइक । पाइ पदारथ सहिन सुभाइक ।
रछा हेतु सिक्खन कल्याण ।पठहिं सुनहिं सुख लहहिं महांन ।। 20 ।।
सभि कारज की सिध्दो देति। जो इसि धारहि प्रेम समेत ।
सभो मंगल के आदि पढाजे । पूरन ह्वै निरबिधन लहीजै'' ।। 21[394] ।।

यह वाणी भी आदि ग्रंथ में संकलित है। सिक्ख जगत में समस्त मांगलिक पर्वों पर इसका पाठ होता है।

गुर वाणी कलिकाल के लोगों के निस्तार के लिए जहाज के समान कही गई[395] है। इस के पाठ से भवसागर से सहज हो पार उतरा जा सकता है। जिस नाम की महिमा का गान वेद 'नेति' 'नेति' कह कर करतेहैं उसी नाम की महिमा का इसमें आख्यान हुआ है। इस के पाठ एवं श्रवण से सभी मनोरथों की प्राप्ति होती है। अन्तकाल में यम पीड़ा से पीड़ित नहीं होना पड़ता । अतः रात दिन सत्य नाम के स्मरण से जीवन को सफल बनाया जा सकता है।[396] इसके पठन एवं श्रवण से मन विषयों से हट कर शान्ति प्राप्त कर लेता है। सिक्खों को उपदेश देते हुए गुरु जी के मुखारबिन्द से भाई सन्तोख सिंह ने इस की शक्ति, फल आदि का उल्लेख निम्न प्रकारसे किया है :-

श्रीमुख मे फुरमावनि कीना।'गुरबानी महिं शकति प्रबीना ।
जिन प्रानी चाह्यो कल्याना ।सो जे पठहि सुनहिं शुभकाना ।। 33 ।।
फल बिसाल तिस प्रापति होइ । बहु अभ्यास करहि नर जोइ ।
सो हुइ मुकंद परायन। सिमरन करहि कुसंगहि पाइ न ।। 34 ।।
जग महिं पाइ कामना सुखी । नहिं प्रलोक महिं कैसे दुखी '।
तिन सिखनि सुनि के सुख पायो ।गुरबानी संग प्रेम बधायो ।। 35 ।।[397]

394- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 1, अंशु 59, अंक 29-32 पृ॰ 1577

395- वही , रा 3, अंशु 43, अंक 37, पृ॰ 2137

396- वही , रा 3, अंशु 50, अंक 4-13, पृ॰ 2140-41

397- वही , रा 3, अंशु 65, अंक 33-35, पृ॰ 2205

इस में पूर्वोक्त 'अनन्दु' नामक वाणी के महिमा की तरह ही 'सुखमनी' और 'जपुजी' की महिमा का भी आख्यान हुआ है। सिक्ख धर्म के अनुयायी इन वाणियों को विशेष श्रध्दा से पढ़ते हैं। कहा भी है :-

''सुखमनी सुख अंमृत प्रभ नामु। भगत जना कै मनि बिस्राम'।
सुनि दौला मन भयो अनंद। लग्यो बिचारनि अरथ बिलंद ।। 22 ।।[398]

'हमरे तौ इक जपुजी अहै ।। 7 ।।
सगले कशटन कहु निरवारति। भूत प्रेत आदिक सभि हारति।
इस आगे अटकति किछु नांही। अति बलि तीन लोक के मांही।। 8 ।।
दुख काटति अरु इच्छा पूरहि। जगके बिधन अगिन कहु चूरहि।
अबि कलजुग के बीं मझार। इस का सम नहिं अपर उदार।। 9 ।।[399]

ऐसी गुरु वाणी के समानकोई अन्य वाणी नहीं है जिसकी एक पंक्ति के सुनने से परम गति की प्राप्ति हो जाती है।[400] गुरु ग्रंथ के विषय में कहा जाता है कि यह गुरु काशरीर है। यह ज्ञान स्वरूप है। यह भव सागर का पुल है।[401] यह कल्याणप्रद है, सुख प्रदान करने एवं प्रेम उत्पन्न करने वाली वाणी है।[402] इस के पाठ से पतितों का का उध्दार हो जाता है। इस की महिमा अनुपम है। यह पाठक के हृदय से विकारों को दूर करती है। तृष्णा को मारने वाली है। देखिए कैसे काव्य कौशल से कवि इस का महिमा का गान करता है:-

''गुर अनभै बिच बानी। रुप। यांकी महिंमा अमित अनूप।
भव अगनि सागर कहु तरनी। सतिगुर सिखनि को सुख करनी।। 13 ।।

398- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 6, अंशु 51, पृ॰ 3000-।
399- वही, रा 9, अंशु 48, अंक 7-9, पृ॰ 3721।
400- वही, रा 6, अंक 25, पृ॰ 3001
401- वही, रा 7, अंशु 4, अंक 16, पृ 3064
402- वही रा 9, अंशु 9, अंक 43-48, पृ॰ 3576-77

पाठ करि दै बिकाररनि हरनो । हरनो तिशना सिक्खनि बरनो ।
बरनो गुर दुख तरु की करनो।करनो ग्यान अगनि को अरनो।। ।4 ।।
जो सिख गुरबानो भै करै।बिन प्रयास भवसागर तरै ।
गुरबानो महिमा महायाने । जे मिरयादा हम नहिं ठाने ।। ।5 ।
तौ सिख भै न करै गो कोई।बिन भै करे श्रेय नहिं होई ।
बूरबानो को भै हम धरि कै । तज्यो प्रबंक शोघ्रता करकै ।।[403] ।6 ।।

इस महिमा मंडित ग्रंथ के दर्शन करने वाले को भो पुण्य प्राप्त[404] होता है।इस ब्रह्म-ज्ञान और 'हरि भगति' के खजाने से 'कैवल्य' की प्राप्ति होता है। इस के नमस्कारात्मक मंगल में इसे भुक्ति मुक्ति प्रदायिनो कहा है :-

'' ब्रह्म ग्यान हरि भगति खज़ाना । सागर जगत जहाज समाना।
संगति आनो पतल उधारन।'गुरु ग्रंथ' गुर कीनि उचारन ।। 30 ।।
जिस महिं ज़ाहर जागनि जोति।सिक्खनि अभिमति पूरन होति ।
भुगति मुकति दाइक जगनाथा । नमो करो धर पर धरि माथा ।। 31 ।।
लाखहुं लिखो धारातल सारे । पठहिं सुनहिं सिख्र वार न पारे ।
सकल कामना लहोअति जिसते । अंत समैं केवल हुइ तिसते ।। 32[405]।

इसी लिए सिक्ख धर्म में आदि ग्रंथ का पाठ करना तथा कीर्तन करना विशेष रूप से महत्वपूर्ण बताया गया है।

403- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 10, अंशु 21, अंक 13-15, पृ॰ 3844

404- वही , रा 11, अंशु 24, अंक 7, पृ॰ 4063

405- वही , रि 1, अंशु 1, अंक 32, पृ॰ 4498

(7) संसार की नश्वरता : सिक्ख धर्म प्राणियों को सांसारिक ऐश्वर्यों के मिथ्यात्व का परिचय दिलाकर उन्हें आध्यात्मिक पथ पर अग्रसर होने का सन्देश देता है। क्योंकि इस संसार में कुछ भी स्थिर नहीं कहा जा सकता । इस की नश्वरता, अस्थिरता एवं क्षण भंगुरता के कारण ही इसे असत्य कहा गया है। इस परिवर्तन शील संसार से मोह सम्बन्ध स्थापित करना अज्ञानता का चिन्ह है। यह सांसारिक माया जाल ही हमें अपने कलावे में जकड़े हुए है। यदि हम इस में रहते हुए इसके प्रति मोह ममता के भाव को त्याग दें और ईश्वर की ओर अपनी वृत्तियों को लगा ले तो हम इस भव सागर से पार उतर सकते हैं । उस प्रभु के नाम के बिना इस चलायमान संसार की प्रत्येक वस्तु असत्य है। आदि ग्रंथ में कई स्थानों पर[406] इस संसार के भौतिक सुखों, ऐश्वर्यों आदि की नश्वरता पर गुरु साहिबान ने प्रकाश डाला है। एक उदाहरण देखिए :-

कूड़ु राजा कूड़ु परजा कूड़ु सभु संसारु ।।
कूड़ु मंडप कूड़ु माड़ी कूड़ु बैसणहारु ।।
× × ×
किसु नालि कीचै दोसती सभु जगु चलणहारु ।।[407]

'गुरु प्रताप सूरज' में भी इसी तरह संसार की नश्वरता पर प्रकाश डाला गया है। गुरु साहिबान के उपदेशों में जगत की असत्यता प्रतिपादित[408] है।

1- सकल जगत को मिथ्या मानो ।म्रिग त्रिसना मानिंद पछानो ।। 31 ।।
अखल पदारथ झूठे जाने ।तबि हूं होति वासना हाने ।।[409]

406- आदि ग्रंथ , सिरी॰ 5, 2॰1॰71, पृ॰ 42, सिरी॰ 1, 1॰24 , पृ॰ 23
407- वही , वार आसा पृ॰ 466
408- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 2, अंशु 35, अंक 13, पृ॰ 1786
409- वही , रा 3, अंशु 66, अंक 31-32, पृ॰ 2210

2 - मिथ्या तन हैं बिनसनि होरे।
मेलि बनो जल ताउ समानि ।। 23 ।।[410]

3 - द्रिष्टि मान हैं जितिक अकार।सभि कूरे है बिनस निहार ।
इन सों मोह कर हि अग्यानो ।जो लखियति है सुपन समानो ।। 16 ।।[411]

इसी तरह अन्य अनेक स्थानों पर[412] भी जगत को नश्वर बताया गया है। गुरु तेगबहादुर जी के एक शब्द में इससत्य का सुन्दर उद्घाटन हुआ है । यथा :-

राम गइओ रावन गइओ जा कउ बहु परवार ।
कहु नानक थिरु कछु नहीं सुपने जिउ संसारि।। 50 ।।
चिन्ता ताको कीजाए जो अन होनी होइ ।।
इह मारगु संसार को नानक थिरु नही कोइ ।। 51 ।।
जो उपजिओ सो बिनसि है परे आजु के काल ।
नानक हरिगुन गाइ ले छाडि सगल जंजाल ।। 52 ।।[413]

410- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 4, अंसु 22, अंक 23, पृ॰ 2316
411- वही , रा 4, अंसु 40, अंक 16, पृ॰ 2394
412- (क) वही , रा 8 , अंसु 48, अंक 36, पृ॰ 3490
(ख) वही , रा 8 ,अंसु 56, अंक 29, पृ॰ 3517
(ग) वही , रा 9, अंसु 3, अंक 38, पृ॰ 3551
(घ) वही , रा 9, अंसु 17, अंक 31, पृ॰ 3604
(ङ) वही , रि 5, अंसु 16, अंक 29, पृ॰ 5508
(च) वही , रि 6, अंसु 54, अंक 32, पृ॰ 5965
413- वही , रा 12, अंसु 62,श्री गुरुवाक महला 9, पृ॰ 4459

इस नश्वर संसार में जब किसी ने स्थायी रूप से रहना ही नहीं है तो क्यों न सत्कर्म किए जायें। अन्ततः काल ने सब को अपना ग्रास तो बना ही लेना है। यहां पर किसी ने बैठे तो रहना नहीं। सब ने चले जाना है। किसी की आज बारी है तो किसी की कल आने वाली है। इस लिए सत्कर्मों तथा नाम स्मरण द्वारा जीवन को सफल बनाना चाहिए।[414]

(8) विशिष्ट नैतिक मूल्य : लोक मंगल के लिए समाज का नैतिक उत्थान होना परमावश्यक है। अतः गुरु साहिबान ने अपने सिक्खों के नैतिक जीवन को सफल बनाने के लिए उनकी आचरणिक उन्नति के लिए विशिष्ट मूल्यों की स्थापना भी की है। प्रत्येक सिक्ख के लिए दैनिक आचार विधान के अंतर्गत गुरु द्वारे जाने, सेवा, अरदास[415] आदि करने के अतिरिक्त 'गुर प्रताप सूरज' में अन्य अनेक विशिष्ट मूल्यों का भी भाई सन्तोख सिंह ने एक स्थान पर सुन्दर संकलन किया है। प्रत्येक सिक्ख को नाम साधना, निदिध्यासन[416] आदि पूर्वोक्त नैतिक मूल्यों के अतिरिक्त दान[417], इशनान[418]

414- मिथ्या सभि जग की वडिआई। बिना नाम नहिं थिरता पाई ।। 40 ।।

- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 10, अंशु 44, पृ॰ 3828

415- वही, रि 5, अंशु 14-15, पृ॰ 5481-5501

416- वही, रि 5, अंशु 50, अंक 2-70, पृ॰ 5705-8

417-(क) वही, रा 9, अंशु 4, अंक 14, पृ॰ 3558

(ख) आदि ग्रंथ, आसा पटी, महला 3

418-(क) गु॰ प्र॰ सू॰ रि 5, अंशु 41, अंक 11, पृ॰ 5682

(ख) वही, रि 5, अंशु 50, अंक 1, पृ॰ 5705

(ग) 'अंम्रित वेला सचु नाउ वडिआई वीचार'।— आदि ग्रंथ, जपुजी

(घ) वारां भाई गुरदास, वार 3

(स्नान), दया[419], सत्य भाषण[420], मैत्री भाव[421], सन्तोष[322], क्षमा[423], निराभिमानी होना[424], मधुर भाषण[425], धर्म की किरत करना, बंड छकणा (बांट कर खाना), स्वच्छता[426], कुसंगति का त्याग[427], कथा श्रवण[428], अमृतसर (स्नान के लिए) यात्रा[429] आदि के पालन का आदेश

419- गु · प्र · सू · रि · 5, अंशु 46, अंक 11-13, पृ · 5682 तथा
'सति सन्तोख दइआ कमावै' – सिरी, महला 5

420- (क) गु · प्र · सू · अंक 14, पृ · 5682
(ख) 'सच की बाणी नानक आखै' – आदि ग्रंथ, तिलंग, महला 1

421- (क) गु · प्र · सू · रि 5, अंशु 46, पृ · 5682
(ख) 'करि मित्राई साधु डिसिउ' – आदि ग्रंथ, आसा महला 5

422- (क) गु · प्र · सू · रि 5, अंशु 46, अंक 16, पृ · 5682
(ख) आदि ग्रंथ वार आसा, पृ · 466-67

423- (क) गु · प्र · सू · रि 5, अंशु 46, अंक 17, पृ · 5683
(ख) आदि ग्रंथ, दखणी ओंकार रामकला 1, पृ · 937

424- (क) गु · प्र · सू · रि 5, अंशु 46, अंक 17-19, पृ · 5683
(ख) आदि ग्रंथ, वार आसा, पृ · 466

425- (क) गु · प्र · सू · रि 5, अंशु 46, अंक 20, पृ · 5683
(ख) आदि ग्रंथ, वार आसा पृ · 473

426- (क) गु · प्र · सू · रि 5, अंक 21, पृ · 5683
(ख) आदि ग्रंथ वार, आसा, 2, महला 1

427- (क) गु · प्र · सू · रि 5, अंक 22-23, पृ · 5683
(ख) 'कुसंगति बहहि सदा दुख पावहि'। - आदि ग्रंथ, मारु सोहले, महला 3

428- (क) गु · प्र · सू · रि 5, अंक 24, पृ · 5683-84
(ख) 'कथा सुणत मल सगली खोवै' - आदि ग्रंथ, माझ महला 5

429- (क) गु · प्र · सू · रि 5, अंक 25-26, पृ · 5684
(ख) आदि ग्रंथ गउड़ी 4, पृ · 305

दिया गया है। कहने का तात्पर्य यह है कि 'गुरु प्रताप सूरज ' भी आदि ग्रंथ में प्रतिपादित नैतिक मूल्यों के अनुसरण की आवश्यकता पर बल देता है और उन्हें धार्मिक एवं आध्यात्मिक उन्नति के लिए आवश्यक बताता है।

15 - निष्कर्ष

'गुरु प्रताप सूरज' में अभिव्यक्त युगीन धार्मिक एवं आध्यात्मिक स्थिति के आधार पर कहा जा सकता है कि इस ग्रंथ में जहां सिक्ख धर्म का भारत धर्म या हिन्दू धर्म की शाश्वतधारा में उसके परिष्कार के लिए विकास हुआ है वहां इस धर्म ने भी भारतीय संस्कृति के संरक्षणार्थ एवं मानवता की हित साधना के लिए निष्काम भावना से धर्म पालन का समर्थन कर अपना अद्भुत योगदान दिया है ।

इस ग्रंथ में प्रतिपादित धर्म आध्यात्मिक जागृति के सन्देश का कार्य करता है। अतः यह केवल धार्मिक ग्रंथ न होकर मानवता के शाश्वत धर्म का भी प्रकाशक ग्रंथ है। इस की अनन्त सूक्तियों में उच्चतम विचारों और जीवन-सिध्दान्तों का स्वारस्य निहित है ।

षष्टम् अध्याय

'गुरु प्रताप सूरज' में वर्णित दार्शनिक विचार

षष्टम् अध्याय

'गुरु प्रताप सूरज' में वर्णित दार्शनिक विचार

प्रवेश

'गुरु प्रताप सूरज' का भारतीय काव्य परंपरा के अनुसार यदि अनुशीलन किया जाये तो यह बात स्पष्ट हो जायेगी कि इस के प्रणेता भाई सन्त सन्तोख सिंह जी भी अन्य भारतीय महान् कवियों की भान्ति भारतीय दार्शनिक परंपरा से विशेष रूप से प्रभावित थे । इस ग्रंथ में उनके दार्शनिक विचारों की मन्दाकिनी प्रवाहित है । वे महान कवि थे । वे न केवल द्रष्टा ही थे अपितु जीवन-द्रष्टा भी थे । उन्होंने जीवन को उसके समग्र रूप में देखा था । वे केवल कवि-दार्शनिक ही न थे अपितु भक्तिमान् दार्शनिक कवि थे ।उन्होंने अपनी आध्यात्मिक अनुभूति को रस-रूप काव्य के माध्यम से प्रस्तुत किया था ।'गुरु प्रताप सूरज' तर्क कर्कश मोक्ष-शास्त्र का व्याख्यान नहीं करता प्रत्युत काव्यत्व के मधु से मधुर होकर ब्रह्म-विद्या का निरूपण करता है। ब्रह्मानन्द स्वरूप रस और ब्रह्म सहोदर रस का इस में अद्भुत संगम हुआ है। इसमें अनुभूति और चिन्तन, हृदय और बुद्धि, भावुकता और दार्शनिकता का अनुपम अनुरंजनकारी सामंजस्य हुआ है। इसकी व्यापक महत्ता का यह भी एक आधारभूत कारण है।इसमें उपलब्ध परा भौतिक सूत्रों एवं आध्यात्मिक विचार चर्चा के आधार पर गुरु-मत की दार्शनिक चिन्तन पद्धति का प्रतिपादन मिलता है। इनको उन्होंने आदि-ग्रंथ एवं दशम् ग्रंथ में प्रतिपादित विभिन्न विचारों का व्याख्यान भारतीय चिन्तन-परंपरा के अनुकूल किया गया है। गुरु साहिबान की विचारधारा भारतीय दार्शनिक पृष्ठ-भूमि से प्रतिभासित है।

दर्शन सांस्कृतिक अनुभूति की व्याख्या, विश्लेषण एवं मूल्यांकन करने का प्रयत्न है। इसे हमारे मानवीय आत्मा का वर्णनात्मक अध्ययन अथवा मानवीय संस्कृति का समीक्षात्मक वर्णन भी कह सकते है। इसी लिए बरट्रेंड रस्सेल ने लिखा है कि

यदि हम किसी युग अथवा जाति को समझने के इच्छुक हैं तो हमें तत्सम्बन्धी युग के दर्शन को हृदयंगम करना चाहिए[1]। फलस्वरूप भाई सन्तोख सिंह के युग को समझने के लिए आवश्यक है कि हम उस समय की प्रचलित दार्शनिक धारणाओं का अनुशीलन करें। इसी सादृश्य के आधार पर हम कह सकते है कि महाकवि सन्तोख सिंह के गुरु प्रताप सूरज में प्रतिपादित विचारों का मूल्यांकन करने के लिए हमें उनकी दार्शनिक धारणाओं का विश्लेषण करना पड़ेगा।

1 - पारम्परिक दार्शनिक विचारधारा :

भाई सन्तोख सिंह के दर्शन को समझने के लिए यह आवश्यक है कि उनकी समकालिक तथा पूर्वकालिक चिन्तन धाराओं का सम्यक् परिचय प्राप्त कर लें, चाहे वह परिचय अतीव सार रूप में ही क्यों न हो अन्यथा हम उनकी तत्वग्राहिणी मेधा का साक्षात्कार नहीं कर सकेंगे।

भारतीय जीवन में दार्शनिक तत्व — आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक तत्व -- इस प्रकार ओत प्रोत हैं कि वे किसी प्रकार एक दूसरे पृथक नहीं किए जा सकते। जीवन की स्वच्छता, उच्चादर्शों में आस्था, अन्तःकरण की प्रशान्त भावना, नैतिकता, परम सुख अथवा आनन्द की खोज, पारमार्थिक दृष्टि से जगत का मिथ्यात्व आदि गुण अथवा विशेषताएं साधारणतया प्रत्येक भारतीय में अथवा विभिन्न भागों में प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में दृष्टिगोचर होगा। जीवन के झमेलों से तटस्थ होकर सुख-दुःख, जड़-चेतन, सत्य-असत्य, पर-अपर, प्रिय-अप्रिय, श्रेय-प्रेय आदि का रहस्योद्घाटन भारतीय दृष्टि के आरंभ से ही करते आये हैं।[2] वेदों से लेकर आज तक का सम्पूर्ण साहित्य इसका साक्षी है। अतः यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि भारत-वर्ष की पुण्य भूमि दार्शनिक अथवा आध्यात्मिक चिन्तन के लिए सर्वथा उपयुक्त है।

1- Bertrand Russel: Western Philosophy p.1-3

2- Dr.Radha Krishnan: Indian Philosophy p.22

मनुष्य की इच्छा अनन्त और जिज्ञासा नवीन है। उसका जीवन प्रश्नों का जीवन है। अनेकानेक प्रश्नों के समाधान के लिए वह सतत् प्रयत्नशील रहता है। मूलतः मनुष्य की प्रवृत्ति बहिर्मुखी है, इस लिए उसकी दृष्टि सर्वप्रथम प्रकृति के स्थूल वैभव-विलास पर टिकती है। किन्तु प्रकृति और मानव का सम्बन्ध यहीं इति श्री नहीं हो जाती। शनैः शनैः मानव-मन स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढ़ने लगता है। वह जिज्ञासा करता है -हम कौन हैं ? क्या हम हैं ? कहां हैं ? कहां से आये हैं ? हमारे चारों ओर फैली हुई प्रकृति का वास्तविक स्वरूप क्या है ? इसकी उत्पत्ति कहां से हुई है ? इसका कर्ता कौन है ? वह स्वयं चेतन है अथवा अचेतन ? यह प्रपंच (लीला-विलास) किस का है ? किस के लिए है ? यदि ब्रह्म अथवा आत्मा (आत्मा-ब्रह्म) ही समस्त जगत का मूल तत्व है तो पुनः प्रश्न उठता है - वह ब्रह्म क्या है ? जगत से उसका सम्बन्ध क्या है ? जीव क्या है ? प्रकृति और परमात्मा के साथ उसका क्या लगाव है ? जैसा कि ऋग्वेद में एक स्थान पर आता है :-

किं कारणं ब्रह्म कुतः स्म जाता जीवाम केन क्व च सम्प्रतिष्ठाः

अधिष्ठिताः केन सुखेतरेषु वर्तामहे ब्रह्मविदो व्यवस्थाम् ।। [3]

उक्त प्रश्नों के आधार स्वरूप बाह्य सौंदर्य पर टिकी हुई उसकी दृष्टि धीरे धीरे अन्तर्मुखी होने लगती है और वह प्रकृति के बाह्यान्तर के चिरंतन सत्य को पा लेने के लिए व्यग्र हो उठता है। यही मानव की दार्शनिक दृष्टि है।

परंपरा से दर्शन भारतीय जीवन का अंग बना हुआ है। इसे सर्वप्रथम विद्या माना गया है। मुण्डक उपनिषद् में इसे 'सर्वविद्या' प्रतिष्ठा'[4] तथा कौटिल्य अर्थशास्त्र में 'प्रदीप सर्वविद्यानाम्'[5] कहा गया है। इस सर्वातिशायी महत्ता के कारण दर्शन शास्त्र को परम श्रद्धा का विषय माना जाता रहा है और दार्शनिकों को सामाजिक-आध्यात्मिक जीवन तथा उसके उद्देश्यों के स्रष्टा के रूप में स्वीकार किया

3- श्वेताश्वतर, प्रथम अध्याय, 1, तथा ऋग्वेद, 10 · 81 · 2

4- मुण्डक उप·, 1 · 1,

5- कौटि · अर्थ·, 1 · 2

जाता रहा है। भारतीय संस्कृति इसी कारण ''ब्राह्मण-संस्कृति'' कही गई है । 'ब्राह्मण ' का अर्थ है ब्रह्म पर विचार करने वाला । 'दर्शन' को 'ब्रह्म विद्या' कहा भी गया है।[6]

इस 'ब्रह्म-विद्या' या दार्शनिक चिन्तन का आरंभ वेदो से होता है जो संसार के समस्त ग्रंथों में प्राचीनतम माने जाते है। हमारी सारी क्रियाओं का मूल वेद ही हैं । इन्हीं वेदों पर हमारी संस्कृति, धर्म, दर्शन, साहित्य आदि जितने भी विषय हैं उन सब की नींव टिकी हुई है। इसी लिए मनु ने वेदों को सर्व ज्ञानमय कहा है। वेद वह ज्ञान है जिसका सर्वप्रथम ऋषियों ने साक्षात्कार किया था । वेद स्वयं भूत स्वयं प्रकाश और स्वयं प्रमाण हैं क्योंकि वे सृष्टि से पूर्व भी विद्यमान थे । वे नित्य और अनादि तथा अपौरुषेय हैं । ईश्वर की कृपा से सृष्टि के आरंभ में ऋषियों ने इन के प्रथम दर्शन किए । ये सम्पूर्ण भारतीय चिन्तन के मूलाधार हैं ।

वेद एक सम्पूर्ण वाङ्मय है। परवर्ती मनीषियों ने अपनी अपनी रुचि के अनुसार वेदों के मूल भावनाओं को लेकर उनका विकास किया । कर्म, उपासना, ज्ञान इन्हीं मूलभूत भावनाओं का प्रसार हमें ब्रह्मण ग्रंथों, आरण्यकों और उपनिषदों में दृष्टिगोचर होता है। इन्हीं का समन्वय हमें गीता में और ब्रह्म सूत्रों में प्राप्त है। षड्दर्शन के स्रोत भी वेद और उपनिषद ही हैं । आगे चल कर मध्य युग में प्रस्थानत्रयी को ही आधार मान कर भिन्न वादों -अद्वैतवाद, द्वैतवाद विशिष्ट द्वैत शुध्दाद्वैत वाद, द्वैता द्वैतवाद, और अचिन्त्य भेदाभेद वाद का प्रवर्तन हुआ । (क्रमशः सर्वे वेदात्प्रसिध्यन्ति)

2 - प्राचीन भारतीय दर्शन का संक्षिप्त परिचय

भारतीय षड्-दर्शन भारतीय तत्व-चिन्तकों के उर्वर मस्तिष्क का परिचायक है। ये दर्शन शास्त्र अधिकारी भेद से तत्व-प्रतिपादन की शैली निर्धारित करते हैं । महर्षियों के तत्व ज्ञान में न तो कोई अन्तर है और न भेद । सब की बुध्दि समान रूप से सूक्ष्मग्राहिणी नहीं होती । अतः स्थूल से सूक्ष्म की ओर धीरे धीरे जाना पड़ता

6- मुण्डक उपनिषद् , 1 . 1

है अतएव इनका विवरण उनकी कक्षा के क्रम से देना समीचीन होगा। भारतीय षट्-दर्शनों की स्थापना उपनिषदों में वर्णित तथ्यों को लेकर हुई है। इन सूत्रों का रचना-काल ई 400 वि॰ पू॰ से 200 वि॰ पू॰ तक माना गया है।[7]

(1) वैशेषिक दर्शन :

वैशेषिक शब्द विशेष से बना है। विशेष नामक पदार्थ की विशिष्ट कल्पना के कारण इस दर्शन का नाम 'वैशेषिक दर्शन' पड़ा इसके प्रवर्तक कणाद (कणभुक्) माने जाते है। प्रत्येक परमाणु में स्थित 'विशेष' को महत्व देने के कारण इसे 'वैशेषिक' कहा जाता है।

वैशेषिक परमाणुवादी हैं। इसमें चार प्रकार के परमाणु – पृथ्वी अप (जल) तेजस् वायु माने जाते हैं। इन नित्य परमाणुओं को जगत में उपादान कारण माना गया है। इनके संयोग से 'अनित्य' मूर्त द्रव्य उत्पन्न होते है।[8] परमाणु अनन्त हैं। परमाणुओं का स्थित अतिन्द्रिय तत्व जो उनकी पृथक्ता का कारण है, विशेष है। इन्हीं के विभिन्न प्रकार के संघात द्वारा जगत की उत्पत्ति होती है। कार्य कारण में पहले विद्यमान नहीं रहता। वह नया होता है।

वैशेषिक वस्तुतः प्राचीन भौतिक शास्त्र का दर्शन था। धर्म की व्याख्या एवं मोक्ष की प्राप्ति का साधन बताना इस का लक्ष्य था। ईश्वर और जीवह नित्य तत्व हैं। जीव का जगत में कर्तव्य है कि वह धर्म का पालन करें। जिससे अभ्युदय और निःश्रेयस की प्राप्ति हो वही धर्म है। इस शास्त्र में सात पदार्थ माने गए हैं – द्रव्य, गुणकर्म, सामान्य, विशेष, समवाय (कारण'कार्य, सम्बन्ध) तथा अभाव।[9]

बौद्ध दर्शन के साथ घनिष्ट सम्बन्ध होने के कारण इसके अनुयायियों को अर्द्ध वैनाशिक कहा जाने लगा पर कालान्तर में न्याय के साथ साहचर्य स्थापित होने

7- पं॰ बलदेव उपाध्याय : भारतीय दर्शन, पृ॰ 26

8-(क) वैशेषिक सूत्र 1॰1॰4, 9॰1॰1-10

(ख) **Dr.Ui : Vaisesika Philosophy p. 3-7**

9- (क) वैशेषिक, सूत्र, सू॰ 6॰2॰16, 1॰1॰4, 3॰2॰21

(ख) सप्तपदार्थी, पृ॰ 2

पर वैशेषिक ने बौद्ध धर्म का खंडन करना आरंभ कर दिया था ।

(2) न्याय दर्शन :

इसके प्रणेता गौतम माने जाते हैं । वरदराज, केशव मिश्र, विश्वनाथ तथा अन्नंभट्ट के ग्रंथ इसे वैशेषिक से संयुक्त कर देते हैं । इसे तर्कशास्त्र, प्रमाण शास्त्र, वाद-विद्या ह तथा आन्वीक्षिकी भी कहा जाता है। इसको न्याय इस लिए कहते है क्योंकि विवक्षित अर्थ की सिद्धि इस से होती है[10] ।

''जिस प्रकार दीपक का प्रकाश अपने सामने उपस्थित होने वाली समस्त वस्तुओं के स्वरूप कोप्रकट कर देता है, उसी प्रकार बुद्धि (ज्ञान)समस्त पदार्थों को प्रकाशित कर देता है। ज्ञान अधिष्ठान आत्मा होता है। इसी लिए यह प्रकाश आत्मगत होता है।' यह ज्ञान दो प्रकार का होता है। (1(स्मृति[11] और(2) अनुभव[12] ।संस्कार मात्रा से उत्पन्नहोने वाल ज्ञान'स्मृति' कहलाता है। स्मृति से भिन्न ज्ञान 'अनुभव कहलाता है। ह यह ज्ञान दो प्रकार का होता है (1)यथार्थ तथा(2) अयथार्थ[13] ।यथार्थ ज्ञान को प्रमा कहते हैं और अयथार्थ ज्ञान को अप्रमा[14]।प्रमा चार प्रकार की होती है –(1(प्रत्यक्ष, (2)अनुमिति, (3)उपमिति, (4) शब्द[15]। अप्रमा तीन प्रकार की होती है –(1)संशय (2) विपर्यय, (3) तर्क[16]। उक्त चार प्रकार के प्रमाण होते है –प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द। प्रमाण साधन हैं और प्रमा उसका फल। इस में यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति के

10- (क) बृहद• उप• 12• 4• 5, छा• उप• 7• 1• 2

(ख) रामायण : अयोध्याकांड, 100• 39

(ग) महाभारत : शान्ति पर्व , 7• 43•,11. 5 , 1• 2-7

(घ) नीयते विवक्षितार्थ सिद्धिरनेन इति न्याय ।

11- बलदेव उपाध्याय : भारतीय दर्शन, पृ• 184

12- वही , पृ• 185

13- यथार्थानुभवः प्रमा तत्साधनं च प्रमाणम् –उदयन ।

14 - बद्दल बलदेव उपाध्याय : भारतीय दर्शन ,पृ• 190

15- न्याय सूत्र , 1• 1 15, तर्क भाषा ,पृ• 1

16- सिद्धान्त मुक्तावली ,पृ• 440,445

लिए सोलह पदार्थों का वर्णन ही किया गया है। प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धांत, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास, छल, जाति और निग्रह स्थान।

न्याय असत्कार्यवाद का समर्थक है। यह उत्पत्ति से पूर्व कार्य की सत्ता नहीं मानता। यह पूर्ववर्ती कारणों के संयुक्त व्यापार से उत्पन्न होता है। एक कारण से एक ही कार्य उत्पन्न होता है। कारण तीन प्रकार हैं – उपादान या समवायी कारण, असमवायी कारण तथा निमित्त कारण । इन त्रिविध कारणों की परस्पर सहकारिता से ही कार्य की उत्पत्ति होती है। मोक्ष के कारण रूप 12 प्रमेय स्वीकृत हैं – आत्मा, शरीर, (आत्मन) इन्द्रिय, इन्द्रियार्थ विषय, बुद्धि, मन, प्रवृत्ति, दोष, प्रेत्यभाव-पुर्नजन्म, फल, दुःख तथा अपवर्ग । इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख दुख तथा ज्ञान ये आत्मा (जीव) के चिन्ह। संख्या, परिमाण, पृथकत्व, संयोग, विभाग, इच्छा , बुद्धि और प्रयत्न ये आत्मा तथा ईश्वर के गुण है। चेष्टा इन्द्रियों तथा विषयों का आश्रय शरीर है। पूर्व कर्म कृत से शरीर बना है। पंचमहाभूतों के सूक्ष्मांश से पांचों ज्ञानेन्द्रिया निर्मित हैं । मन कर्म अतीन्द्रिय तथा अणुरूप हैं। बुद्धि अनित्य है क्योंकि यह केवल ज्ञानोपलब्धि मात्र है। वैशाषिक एक परमात्मा और अनेक आत्मा को मानते हैं। ज्ञान को वे आत्मा का गुण मात्र मानते हैं । उनके अनुसार ईश्वर को जगत का निमित्त कारण मात्र माना जाता है।

(3) <u>सांख्य दर्शन :</u>

'सांख्य' भारतीय दर्शनों में अत्यन्त प्राचीन तथा महत्वपूर्ण माना जाता है। इसके प्रवृतक 'कपिल' माने जाते हैं। इस दर्शन का नाम 'सांख्य' क्यों पड़ा ? इस सम्बन्ध में दो मत हैं (1) इस दर्शन मे संख्या -अर्थात् सम्यक् ज्ञान का प्रधानता है। संख्या का अर्थ है सम्यक् इत्याति का ज्ञान या विवेक ज्ञान । इसी विवेक ज्ञान की प्रधानता के कारण इसे 'सांख्य' कहा गया है। (2)दूसरे मतानुसार इसका नाम 'सांख्य' इस लिए पड़ा क्योंकि इस में उन तत्वों की गिनती की गई है जिन के ज्ञान से हम मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं। मौलिक तत्वों की गिनती के बारे में जो विचार करे उसे सांख्य कहते है।[17]

17- Dr.Radhakrishnan: <u>Indian Philosophy</u>, Vol.I p.527

इसी सांख्य-दर्शन में सर्वप्रथम उपनिषदों की विचारधारा का समन्वय हुआ[18] किया गया है। यह द्वैतवादी दर्शन है क्योंकि यह दो ही अनादि तत्वों को मौलिक मानता है - एक प्रकृति तथा दूसरा पुरुष। परन्तु अन्य तत्वों को मिलाकर 25 तत्वों की मीमांसा इस दर्शन में की गई है।

ईश्वर कृष्ण की 'सांख्य-कारिका' ही सांख्य दर्शन का प्राचीनतम ग्रंथ माना जाता है। इस में प्रतिपादित उक्त 25 तत्वों का वर्गीकरण चार प्रकार से किया जाता है - (1) कोई तत्व ऐसा तो है जो सबका कारण तो होता है पर स्वयं किसी का कार्य नहीं होता (प्रकृति) (2) कुछ तत्व कार्य ही होते हैं - किसी से उत्पन्न है पर स्वयं किसी अन्य को उत्पन्न नहीं करते (विकृति) (3) कुछ तत्व कार्य तथा कारण दोनों होते हैं - किन्हीं तत्वों से उत्पन्न भी होते हैं तथा अन्य तत्वों को उत्पन्न भी करते है (प्रकृति-विकृति) (4) कोई तत्व कार्य तथा कारण उभयविध सम्बन्ध से शून्य रहता है- न वह कार्य ही होता है, न कारण ही (न प्रकृति न विकृति)। इनका विवरण निम्न प्रकार से है:-

स्वरूप	संख्या	नाम
1-प्रकृति	1	प्रधान, अव्यक्त, प्रकृति,
2-विकृति	16	5 ज्ञानेन्द्रिय (चक्षु, घ्राण, रसना, त्वक् तथा श्रोत्र) 5 कर्मेन्द्रिय (वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ) 5 महाभूत (पृथ्वी, जल, तेज, वायु आकाश) 1 मन 1 (5+5+5+1=16)
3-प्रकृति-विकृति	7	महत्तत्व, अहंकार, 5 तन्मात्र (शब्दतन्मात्र 2 स्पर्शतन्मात्र, 3 रूपतन्मात्र, 4 रसतन्मात्र 5 गन्ध तन्मात्र)
4-न प्रकृति न विकृति	1	पुरुष।[19]
कुल	25	

18- Deussen: <u>Philosophy of the Upanishads</u>, p.239

19- बलदेव उपाध्याय : भारतीय दर्शन, पृ. 257

यह दर्शन सत्कार्यवाद का समर्थक है।[20] सांख्य दर्शन कार्य को सर्वथा नवीन मानता है परन्तु सांख्य कार्य को कारण का परिणाम मानता है। यह सत्कार्यवाद दो प्रकार का होता है पहला परिणामवाद और दूसरा विवर्तवाद। परिणाम वहां होता है जहां कारण से उत्पन्न कार्य वास्तव होता है जैसे दूध से दही की उत्पत्ति। यहां दूध वस्तुतः सच्ची चीज है। अतः कार्यों को वास्तव, सच्चे रूप में बतलाने वाला सिध्दांत 'परिणाम' कहलाता है। यही सांख्य दर्शन का मत है। दूसरा विवर्तवाद अद्वैतवेदान्त का मत है। इस के अनुसार जो कार्य दिखाई पड़ता है वह वास्तव न होकर केवल आभासमात्र है। कार्य का केवल प्रतीति होता है, उसकी वास्तव वस्तुस्थिति नहीं रहती। जैसे अंधेरे में पड़ी रस्सी को सांप भ्रम कर हम डरते हैं। यहां रज्जु में सर्प उत्पन्न होता है परन्तु यह कल्पना मात्र है, सच्ची घटना नहीं क्योंकि दीपक के प्रकाश में हम रस्सी देखते हैं सांप नहीं। अद्वैत वेदांत के अनुसार ब्रह्म से ही यह नाना नामरूपात्मक जगत उत्पन्न होता है, परन्तु जगत असत्य है, कोरी कल्पना है, ब्रह्म ही एक मात्र सत्ता है। जगत की केवल प्रतीति होती है, वह सच्चा नहीं है। यह सिध्दांत विवर्तवाद (अर्थात् कारण से कार्य का असत्य रूपान्तर) कहलाता है।

(4) योगदर्शन :

भारतीय योग को मोक्ष प्राप्ति का सर्वोत्तम साधन मानते आये हैं। 'योगसूत्र' के प्रणेता पतंजलि ऋषि इसके प्रवर्तक माने जाते हैं। ईश्वर की प्राप्ति की यह आध्यात्मिक प्रक्रिया को व्यक्त करता है। यह सांख्य दर्शन द्वारा स्वीकृत 25 तत्वों को मानता है। परन्तु ईश्वर की सत्ता मान कर 26 वें तत्व की भी स्वीकृति देता है। इसी लिए इसे 'सेश्वर सांख्य' भी कहा जाता है। इस में प्रकृति और पुरुष के अतिरिक्त 26 वें तत्व ईश्वर की सत्ता व्यक्त है जो प्रकृति की साम्यावस्था को भंग करता है। वह प्रकृति के परिणामों का निष्क्रिय निमित्त है। वह योग-सिध्दि में सहायता करता है। वह पुरुष विशेष है जो क्लेश, कर्म, विपाक और आशयों से अस्पृष्ट होता है। उसके दस नित्य गुण माने गए हैं — ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, तप, सत्य, क्षमा, धैर्य, सृजन-शक्ति, आत्म-ज्ञान तथा अधिष्ठातृत्व।[21]

20- बलदेव उपाध्याय : भारतीय दर्शन, पृ. 257

21- योगसूत्र, 1. 24 तत्व वैशारदी 4. 3, 1. 25

'योग' शब्द का प्रयोग भिन्न भिन्न अर्थों में किया जाता है। (1)इसका साधारण रूप से प्रचलित अर्थ है सम्बन्ध (2)दर्शन में योग प्रायः जीवात्मा और परमात्मा के संबंध को तथा उस संबन्ध को प्राप्त करने के उपायों को कहते हैं। यहां इस से मार्ग या प्रणाली अर्थ भी अभिव्यक्त होता है, जैसे ज्ञान योग मार्ग (3)योग- चित्त-वृत्ति के निरोध- के अर्थ में भी प्रचलित है।[22]

चित्तवृत्ति निरोध-रूप योग के आठ अंग है :-(1)यम, (2)नियम, (3)आसन, (4)प्राणायाम, (5)प्रत्याहार, (6)ध्यान, (7)धारणा, (8)समाधि।[23] चित्त की पांच भूमियां या अवस्थायें होती है - क्षिप्त, मूढ़ विक्षिप्त, एकाग्र, निरुद्ध।[24] इन में प्रथम तीन समाधि के लिए उपयुक्त नहीं होता। चित्त की पांच वृत्तियां भी मानी गई हैं- (1)प्रमाण, (2)विपर्यय, (3)विकल्प, (4) निद्रा, (5) स्मृति।

उक्त आठ अंग में से पहले पांच योग के बहिरंग साधन कहे गए हैं अन्तिम तीन- धारण,[25] ध्यान[26]और समाधि[27] अन्तरंग साधन माने जाते हैं। ध्यान और ध्येय वस्तु के एकाकरण को समाधि कहते हैं जो सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात - दो प्रकार की मानी गई है। सविकल्पक - जिस में ध्येय वस्तु का ज्ञान बना रहता है और निर्विकल्पक जिस में चित्त का कोई आलंबन नहीं रहता।

(5)- मीमांसा दर्शन :

इस दर्शन के प्रणेता जैमिनि मुनि थे। प्रभाकर तथा कुमारिल ने इसे विकसित किया। 'मीमांसा' का शाब्दिक अर्थ है - किसी वस्तु के यथार्थ स्वरूप को निर्णय या गम्भीर चिंतन।[28]

22- योगश्चित्तवृत्तिः निरोधः।- योग सूत्र, 1·2

23- योग सूत्र, 2 · 29, 31, 3 · 3, 4, 7, 8

24- योग भाष्य, 1 · 1

25- देशबन्धश्चित्तस्य धारणा (योग सूत्र, 3 · 1)

26- तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् (वही, 3 · 2)

27 -सम्यगाधीयते एकाग्रीक्रियते विक्षेपान् परिहृत्य मनो यत्र स समाधिः।

28- डा· राममूर्ति शर्मा : अद्वैत वेदान्त, पृ· 38

वेद के दो भाग हैं – कर्मकांड तथा ज्ञान कांड। यज्ञ यागादि का विधि तथा अनुष्ठान का वर्णन कर्मकांड का विषय है तथा जगत्, आत्मा एवं ईश्वर के रूप तथा संबंध का निरूपण ज्ञान कांड का विषय है। कर्मकांड का मीमांसा होने से इस दर्शन का पूरा नाम कर्म-मीमांसा परन्तु साधारण रीति से यह 'मीमांसा' शब्द से अभिहित किया जाता है। ज्ञान-कांड के यथार्थ निरूपण करने वाले दर्शन का नाम 'ज्ञान-मीमांसा' है जो साधारणतया 'वेदांत' के नाम से अभिहित होता है। कर्मकांड वेद का पूर्व-कांड और ज्ञान कांड उत्तरकांड। इसी लिए यह दर्शन 'पूर्व मीमांसा' तथा वेदांत 'उत्तर-मीमांसा के नाम से भी प्रसिद्ध हैं।[29]

'मीमांसा दर्शन' का उद्देश्य धर्म का प्रतिपादन है।[30] धर्म के लिए प्रमाणभूत वेद हैं। वेद नित्य शब्दसमूहात्मक हैं, अतः वे भी नित्य हैं। वेद के पांच प्रकार के विषय हैं – विधि-मन्त्र, नामधेय, निषेध और अर्थवाद[31]। इन पांच ही अंगों का अभिव्यक्ति शब्द में होता है। ग्रंथ का उपक्रम, उपसंहार अभ्यास, अपूर्वता, फल, अर्थवाद और उपपत्ति इन सात बातों पर ध्यान देकर ही वेदादि का अर्थ समझा जा सकता है। प्रत्येक वाक्य किसी व्यापार या कर्म का बोधक होता है। नित्य, नैमित्तिक और काम्य–[32] ये तीन कर्म हैं। (प्रातः और सांय, उपासना=ग्रहण के अवसर पर गंगा स्नान, अश्वमेध यज्ञ)।

कर्म और उसके फल में अनिवार्य सम्बन्ध है। इस सम्बन्ध का संस्थापक अपूर्व है जो कर्म से उत्पन्न हुई एक शक्ति है। मीमांसा को कर्मकांड मात्र समझने के कारण इस की कटु आलोचना की गई है परन्तु मीमांसा का वास्तविक रूप कर्मकांड नहीं है प्रत्युत कर्मवाद है जिस में निष्काम कर्म करने पर बल है।

मीमांसा में आठ पदार्थ माने गए हैं – द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, परतन्त्रता, शक्ति, सादृश्य तथा संख्या[33]। कुमारिल पदार्थों के 'भाव' तथा अभाव दो वर्ग करते हैं।[34] इन्हीं

29- बलदेव उपाध्याय : भारतीय दर्शन, पृ॰ 309

30- ''धर्माख्यं विषयं वक्तुं मीमांसायाः प्रयोजनम् ।''

31- बलदेव उपाध्याय : भारतीय दर्शन, पृ॰ 330

32- वही, पृ॰ 331

33- वही, पृ॰ 326

34- तन्त्र रहस्य, पृ॰ 20

ज्ञान स्वतः प्रामाण्य माना गया है।[35]

जगत सत्य और नित्य है। शरीर (भोगायतन) इन्द्रिय (भोगसाधन) तथा पदार्थ (भोगविषय) से युक्त संसार अनादि और अनन्त है। सृष्टि तथा प्रलय नहीं होते, केवल व्यक्ति उत्पन्न और नष्ट होते हैं।

(6) वेदान्त दर्शन :

वेदान्त दर्शन भारतीय अध्यात्म शास्त्र का मुकुटमणि माना जाता है। इस में अब तक वर्णित दार्शनिक प्रवृत्तियों तथा तात्विक विचारों का चूडान्त उत्कर्ष उपलब्ध है। इसका मूलाधार बादरायण व्यास कृत 'ब्रह्मसूत्र' है जिसमें औपनिषदिक सिद्धांतों का एक वाक्यता का प्रतिपादन किया गया है। 'ब्रह्मसूत्र' (चार अध्याय तथा 16 पदों में विभक्त) के भाष्यकारों में शंकराचार्य का 'शारीरक भाष्य' शीर्षस्थ है। उन्होंने अपनी व्याख्या से अद्वैत वाद की सिद्धि की है। इसी कारण इसे 'अद्वैत-वेदान्त'[36] या 'शंकर वेदांत' भी कहा गया है। इसे 'ज्ञान कांड' भी कहा जाता है जिसके सम्बन्ध में पहले संकेत कर आये हैं। इस के अनुसार एक मात्र ब्रह्म सत् है। वह पूर्ण, निरपेक्ष, त्रिकालातीत, निरवयव, भेद रहित तथा अद्वैत है। वह सच्चिदानन्द, सत्य, ज्ञान और अनन्त है। वह सत्य का सत्य है, पारमार्थिक सत्ता है। वह एक है। अविद्या के कारण नानात्मक प्रतीति होती है।[37] शेष सब मिथ्या विवर्तमात्र है।

35- श्लोक वार्तिक, 2 · 47

36- Dr. S. N. Das Gupta: Indian Philosophy Vol. I P.429
(ii) Encyclopaedia of Religion and Eithics, Vol. I, p. 137

37- (क) ब्रह्म सूत्र शां 1 · 1 · 1, 1 · 3 · 9, 10,
(ख) बृहदा · शां 2 · 2 · 4 · 7, 9, 3 · 9 · 28
(ग) कठ · शां 1 · 2 · 14
(घ) छान्दो · शां 8 · 1 · 1
(ङ) तैत्ति · शां 2 · 1 · 1

ब्रह्म के दो रूप हैं 'पर और 'अपर'। 'पर' ब्रह्म निरुपाधि, निर्विशेष, तथा निर्गुण है। 'अपर' ब्रह्म सोपाधि, सविशेष तथा सगुण है। सविशेष ब्रह्म का संज्ञा 'ईश्वर' है । वह मायोपहित ब्रह्म है। वह संसार का कर्ता, पालक तथा संहर्ता है। वह उसकी नैतिक व्यवस्था का स्वामी है। वह उस का उपादान तथा निमित्त कारण है। वह अवतार लेता है। वह पुरुषोतम है, विवर्त[38] है ।

ईश्वर शासक है, जीव शासित[39] है। दोनों हो विवर्त है। प्रथम माया के शुध्द सत्व से उपहित होता है और द्वितीय अविद्या से । जीवन आत्म-अनात्म के अविवेक के कारण सांसारिक बन्धन में पड़ कर दुख भोगते हैं, ईश्वर इन से अलिप्त रहता है। जीव सीमित ज्ञान वाला, सीमित शक्ति वाला, अपूर्ण, बध्द, कर्ता तथा भोक्ता है और ईश्वर नित्य, बुध्द, मुक्त पूर्ण तथा जीवों के लिए कर्मों और भोगों को योजना करने वाला[40] है।

जीव और ब्रह्म का भेद व्यावहारिक है, उपाधि जनित है। जीव न तो ब्रह्म का अंश है आन रफरि और न परिणाम क्योंकि ब्रह्म निरवयव तथा अविकारी है। मोक्ष आत्मा की अपने शुध्द रूप में ब्राह्मी स्थिति है। अवरोध ज्ञान के द्वारा अविद्या का नाश हो जाने पर अद्वैतभाव का उपलब्धि होती[41] है। मोक्ष शाश्वत परमानन्द की अवस्था[42] है।

प्रपंच (जगत) माया-हस्ती, रज्जु-सर्प, मृग तृष्णा, स्वप्न आदि की भान्ति मिथ्या है । यहां यह ज्ञातव्य है कि मिथ्या होने पर भी वह शश-विषाण तथा वन्ध्या पुत्र की भान्ति नितान्त असत् नहीं है। जगत की सत्ता प्रातिभासिक नहीं है। वह प्रातिभासिक वस्तुओं की अपेक्षा सत् है।

माया (दो शक्तियां आवरण तथा विक्षेप) और अविद्या को शंकर ने एक माना है। दूसरा नाम वस्तुएं इसी से निर्मित हैं। उनका जन्म तथा विनाश व्यावहारिक दृष्टि से होता है। माया न तो सत्य है और न असत्य , वह अनिर्वचनीय[43] है। वह ईश्वराधीन

38- ब्रह्मसूत्र भा॰, 3 · 2 23 · 1 · 1 ·4, 20-23, 3 · 2 23, 4 · 1 · 3

39- वही , 2 · 3 · 45

40- वही , 2 · 1 · 9; 2 · 3 · 43, 2 · 4 · 20

41- ब्रह्म सूत्र भा॰ , 1 · 1 · 4

42- (क) वही, 2 · 3 · 40, 4 · 1 · 4 (ख) गीता भा॰ , 1 · 2· 11 , 5 · 20 · 21

43- ब्रह्म सूत्र भा॰, 2 · 1 · 7, 14,·17, 31, 1 · [illegible] 1 · 5

है। वह त्रिगुणात्मक है। वह सम्पूर्ण कार्यों कोकारण-शक्तियों का योग है।[44]

'ब्रह्मसूत्र' के अनेक भाष्यकारों शंकर, भास्कर, रामानुज, मध्व, निम्बार्क, वल्लभ आदि ने आगे चल कर वैष्णव दर्शन द्वारा भक्तिधारा का प्रचार किया।[45] क्ब

'गुरु प्रताप सूरज' में उक्त षड्दर्शन की पर्याप्त चर्चा हुई है। भाई सन्तोख सिंह ने इन दशा दर्शनों की पारिभाषिक शब्दावली का भी उपयोग किया है। इसे पृष्ठभूमि के रूप देकर 'गुरमत दर्शन' के स्वरूप को स्पष्ट किया।[46] औपनिषदिक चिन्तन को उन्होंने आधार रूप में ग्रहण किया है। वे आत्मवादी थे। इस में सन्देह नहीं कि उनकी विचार-धारा भारतीय विचारधारा का सफलतम प्रतिनिधित्व करती है। उनकी दार्शनिक मनोदृष्टि समन्वयात्मक है। उन्होंने किसी भी मत का अनादर नहीं किया है। अपितु सभी के सार ग्रहण करने का प्रयास किया है।

5- 'गुरु प्रताप सूरज' में अभिव्यक्त दार्शनिक दृष्टिकोण

भारतीय दर्शन की विकास परंपरा में 'गुरु प्रताप सूरज' का महत्वपूर्ण स्थान है। 'गुरु प्रताप सूरज' से शताब्दियों पूर्व वेद, उपनिषद् आदि आर्ष ग्रंथों में जिस दार्शनिक विचारधारा का विकास सहस्रों वर्ष में हुआ था उसके विभिन्न रूपों का संग्रह संग्रंथन 'गुरु प्रताप सूरज' में कक्षु हुआ है। सिद्ध और नाथ सम्प्रदाय के सिद्धांतों, हठयोग, सन्तमत के विचारों, सूफी सन्तों की साधना, राम तथा कृष्ण भक्ति की परंपरा, गुरु कवियों की वाणी की दार्शनिकता की परंपरा में विकसित इस रीतिकालीन कवि की दार्शनिकता ने जो तत्व ज्ञान साधना का समन्वित रूप प्रस्तुत प्रस्तुत किया वह अपने युग में फैले हुए समस्त जीवन-चिन्तनों को सूत्र बद्ध कर नवीन दृष्टिकोण को प्रस्तुत करता है। जो विभिन्न अविरोधी साधन पक्षों का निर्माण करता है। जो न केवल किसी विशेष युग में अपितु युग युग तक मानव जीवन को अनुप्राणित करतारहेगा। इस ग्रंथ में चिन्तन की सूक्ष्म शिराएं इतनी व्यापक हैं कि उसमें भारतीय जीवन का अतीत, वर्तमान और सम्भावित भविष्य सभी एक साथ

44- ब्रह्म सूत्र शां फ्2 • 1 • 2 • 22, 1 • 3 • 7, 1 • 4 2, 3

45- बलदेव उपाध्याय : भारतीय दर्शन, पृ • 337

46- गु • प्र • सू • रि • 5, अंसु 46-51, पृ • 5681-5711

प्रत्यक्ष होने लगते हैं। अतः जीवन के अन्य पक्षों के साथ ही दर्शन की दृष्टि से भी इस ग्रंथ को भारतीय दर्शन का विश्वकोष कहा जा सकता है।

भाई सन्तोख सिंह कवि होने के साथ दार्शनिकता के निर्माण करने वाले तत्वों को 'गुरु प्रताप सूरज' में सहज ही समाविष्ट करते चले गए हैं। सम्पूर्ण महाकाव्य में भारतीय दार्शनिक विचारधारा को अन्तः सलिला सी प्रवाहमान है। इस ग्रन्थ के सम्पूर्ण सांस्कृतिक गौरव का स्पष्टीकरण उसमें अन्तर्व्याप्त दर्शन की व्याख्या से ही हो सकता है। यह महाकाव्य भी अनेक भावों में समाहित प्राचीन भारतीय दार्शनिक पारम्परिक दार्शनिक विचारधारा की आधारभूमि पर ही निर्मित हुआ है। इस में पूर्ववर्ती एवं समवर्ती अनेक दार्शनिक विचार-धाराओं के सम्मिश्रण से जो उस समय एक नवीन दार्शनिक संस्कृति का निर्माण हुआ था, वह इसकी पृष्ठभूमि में विद्यमान है।

भाई सन्तोख सिंह जी ने भारतीय दर्शन शास्त्र का मन्थन करके उसको मृदु रस मय बना दिया है। यह शुष्क चिन्तन नहीं। चिन्तन की विशिष्टता उसकी सतरंगी आभा होकर प्रकट हुई है। अतः यहां यह कहना भी आवश्यक है कि उनकी काव्यकला भी सतरंगी दार्शनिक आभा से अलग करके नहीं देखा जा सकती। पूर्वोक्त विविध दार्शनिक पृष्ठभूमि को जानने पर हम यह देख सकते है कि उन्होंने अनेक स्रोतों एवं दिशाओं से प्राप्त वैचारिक सम्पत्ति को किस प्रकार से नवीन राष्ट्रता और व्यापकता के रूप में ग्रहण किया। यही उनकी विशिष्ट उपलब्धि है। उनकी दार्शनिक दृष्टि के निर्माण में निजी जीवनानुभव, अध्ययन, शिक्षा, दीक्षा, परिवेश, संघर्ष, प्रभाव, विचार आदि विविध — उपकरण उत्तरदायी हैं। वे एक ओर भारतीय दर्शन — न्याय, सांख्य, योग, वेदान्त आदि से प्रभावित हैं तो दूसरी ओर आदिग्रंथ, दशम् ग्रंथ, वारां, भाई गुरदास आदि में प्रतिपादित 'गुरमत' दर्शन पर व्यापक दृष्टि से विचार करते दिखाई देते हैं।

कोई भी विचार धारा अपने आप में परिपूर्ण नहीं है। सब के द्वारा सत्य के स्वरूप का आंशिक उद्घाटन होता है। आगत तथा अनागत नवीन विचारधाराओं का उद्देश्य पूर्ववर्ती धाराओं की अपूर्णता की पूर्ति करना होता है और यह पूर्ति सदैव आंशिक होती है। परिपूर्णता की प्राप्ति हो जाने के अनन्तर तो विकास की इति श्री हो जायेगी जो जीवन-सिद्धांत के प्रतिकूल है। इस दृष्टिकोण को प्रश्रय देते हुए भाई

सन्तोख सिंह ने चिन्तन मात्र को महत्वपूर्ण माना है और अपने मन्तव्य की सिद्धि के लिए अपनी कविता गंगा के दो घाटों पर रहने, महान जल जन्तुओं के रूप में और ज्ञान के साथ साथ जप, तप, संयम आदि लघु[47] जलजन्तुओं का स्वरूप मान अंकित कर जीवन में उनकी आवश्यकता पर बल दिया है। इस तरह से एक वृहत् बौद्धिक भूमिका के आधार पर सांस्कृतिक उन्नयन की दृष्टि प्रदान करते हुए अपने वैचारिक औदार्य का परिचय दिया है।

4- प्रमुख विषय

'गुरु प्रताप सूरज' की दार्शनिकता उसमें वर्णित गुरु साहिबान के जीवन-दर्शन के आधार से अभिव्यक्त हुई है। उन्होंने परंपरा से प्रतिपादित चिन्तन-पद्धति के अतिरिक्त-अंशों का परित्याग कर उनके सार तत्वों को अपने नवीन दृष्टिकोण द्वारा प्रस्तुत और युगानुकूल बना कर उसे ग्रहण करने का सन्देश दिया। भाई सन्तोख सिंह जी ने अपने इष्ट गुरु साहिबान द्वारा प्रतिपादित जीवन दर्शन को ही भारतीय दर्शन की पृष्ठभूमि पर पुनः अपने चिन्तन का विषय बनाया और 'गुरमत दर्शन' के सिद्धांतों का निरूपण किया। उन्होंने अपने विचारों को युगानुकूल बनाने के लिए, उनमें क्रियाशीलता लाने के लिए, जिन प्रमुख विषयों को अपने चिन्तन का विषय बनाया उन्हें निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है। उनके दार्शनिक विचारों का विश्लेषण निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत किया जायेगा। (1) ब्रह्म-स्वरूप निरूपण, (2) सृष्टि-क्रम, (3) आत्मतत्व का निरूपण, माया, मन, मनमुख, गुरमुख, सन्त, (4) मोक्ष, मोक्ष प्राप्ति के साधन इत्यादि।

(1) ब्रह्म स्वरूप - विवेचन

'गुरु प्रताप सूरज' में निरूपित ब्रह्म का स्वरूप यद्यपि 'गुरु ग्रंथ साहिब' में निरूपित अकालपुरुष के स्वरूप की व्याख्या है तथापि वह अपनी सुदीर्घ परंपरा का

47- गु॰ प्र॰ सू॰ ऐन 2, अंसु 36, अंक 23-25, पृ॰ 6407

भी परिचायक है। आदि काल से ही मानव अपनी उपासना के लिए किसी परम सत्ता की कल्पना करता आया है। यह कल्पना समय और स्थान भेद से विकास करती हुई वेदों से लेकर गुरुग्रन्थ तक विभिन्न रूपों को धारण करती हुई रही परन्तु परम-ब्रह्म का स्वरूप आज भी अपने अनादि रूप में ही शोभायमान है।

ब्रह्म स्वरूप निरूपण की परंपरा

वेद भारतीय दर्शन के प्राण हैं, वे भारतीय दार्शनिक विचारधारा के मूलस्रोत हैं। इनके अनुसार वह 'ब्रह्म अणु से भी सूक्ष्म और महान से भी महान है। संसार के कण कण अणु अणु में व्याप्त है।[48] ये सब भूत प्राणी जिस से उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होकर जिसकी सत्ता से जीवित रहते हैं और विनाश के पश्चात जिसमें प्रवेश कर जाते हैं वह ब्रह्म है।[49] ब्रह्म के ऐसे स्वरूप की कल्पना अनेक सूक्तों में[50] उपलब्ध होता है।

उपनिषद् में ब्रह्म

उपनिषदों का ब्रह्म अनन्त, असंग, निर्विकार और निराकार है। उसमें ब्रह्म के सगुण रूप की भी विवेचना है। मूलतः ब्रह्म के दो स्वरूपों का विशद् वर्णन किया गया है – सविशेष सगुण रूप तथा निर्विशेष अथवा निर्गुण रूप। अधिक स्पष्ट करने के लिए निर्विशेष को परब्रह्म और सविशेष को ब्रह्म कहा गया है। निर्विशेष ब्रह्म किसी लक्षण अथवा विशेषण से अभिहित नहीं किया जा सकता। अतः परब्रह्म को निर्गुण, निर्विशेष, निरुपाधि, निर्विकल्प आदि संज्ञाओं से विभूषित किया जाता है। सविशेष की सत्ता भावात्मक है, वह गुण, उपाधि, लक्षण से अलंकृत है।

48- श्वेताश्वतर उप॰ 3・20

49- तैत्तिरीय उप॰ भृगु वल्ली।

50- ऋग्वेद, पुरुष सूक्त, 10・90・1-2, यजु॰ अ॰ 31 मन्त्र। तथा अथर्ववेद, उच्छिष्ट सूक्त

51- (क) यद् वाचा नभ्युदितं येन वागभ्युद्यते।

तदेव ब्रह्मत्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥ केनो॰ 1・4

(ख) मुण्डकोपनिषद् 1・1・6 (ग) बृहदारण्यक उप॰ 3・8・8

वस्तुतः भारतीय आर्ष ग्रंथों में जागृत चेतना के प्रतिभासित चरम तत्व को ब्रह्म की संज्ञा दी गई है। समस्त जीवन का तत्व चर, अचर का मूल ब्रह्म ही है। इसी कारण 'सर्व खल्विदं ब्रह्म' के प्रतिपादकों ने ब्रह्म की प्रतिष्ठा की और परब्रह्म को 'सच्चिदानन्दघन के नाम से अभिहित किया गया है।

श्रीमद् भागवद् गीता में ब्रह्म :

गीता में ब्रह्म के सगुण और निर्गुण दोनों रूपों का वर्णन मिलता है। इन दोनों की एकता एवं अभिन्नता के प्रतिपादन[52] के अतिरिक्त उस के व्यक्त, अव्यक्त और व्यक्त अव्यक्त दोनों रूपों का भी वर्णन मिलता है।[53] ब्रह्म के विराट-रूप[54] का उल्लेख भी इस में हुआ है। वह जगत का प्रभव (उत्पत्ति) तथा प्रलय (लयस्थान) है।[55]

इस तरह से गीता में ब्रह्म के सगुण और निर्गुण दोनों रूपों का वर्णन मिलता है परन्तु इन रूपों में किसी प्रकार का विरोध नहीं है।

भारतीय षड्दर्शन में ब्रह्म

न्याय और वैशेषिक दर्शन ईश्वर के अस्तित्व को मानते हुए उसे अद्वितीय अनन्त और सदैव स्थिर रहने वाला माना है। वह संसार की उत्पत्ति, स्थिति और नाश का निमित्त कारण है परन्तु उपादान कारण नहीं। मनुष्य कर्म के सम्पादन में निमित्त कारण होता है और ईश्वर उनका प्रयोजन कर्ता होता है, जो उसे कार्यों में लगाता है तथा प्रेरणा देता है।[56] सांख्य में प्रकृति और पुरुष को मूल तत्व माना गया है तथा 25 तत्वों की मीमांसा की गई है। इन में पुरुष सत्ता स्वयं सिद्ध मानी गई है वह स्वयं प्रकाश्य है और उसे प्रकाशित करने वाले किसी अन्य की आवश्यकता नहीं है। पुरुष का स्वरूप सोरसो प्रकृति से भिन्न पड़ता है और दूसरी ओर व्यक्त पदार्थों से भी। पुरुष शरीर, इन्द्रिय तथा मन से भिन्न एवं

52- गीता - 13·14

53- वही, 11·16·13·19

54- वही,

55- वही, 7·6

56- डा० रामजी लाल – कबीर दर्शन, पृ० 122

स्वतन्त्र होता है। आत्मा शुद्ध चैतन्य रूप है, जो सर्वदा ज्ञाता के रूप में होता है। वह कभी ज्ञान का विषय नहीं होता। योगदर्शन के अनुसार परम तत्व के लिए ईश्वर शब्द का प्रयोग किया गया है। योग के शब्दों में पुरुष विशेष क्लेश, कर्म, विपाक (कर्मफल) तथा आशय (विपाकानुरूप संस्कार के समुदाय) से शून्य रहता है वह ईश्वर है।[57] वह नित्य सर्वज्ञ, सर्वव्यापी परमात्मा है। पूर्व मीमांसा ब्रह्म के विषय में मौन है। वह यज्ञ के द्वारा ही विभिन्न प्रकार के फल के विषय में बताता है। इस में कर्म-फल का दाता ईश्वर न मानकर यज्ञ माना गया है। ब्रह्मसूत्र और अन्य प्राचीन मीमांसा ग्रंथों में ईश्वर को सत्ता सिद्ध नहीं माना जाता पर पीछे के मीमांसकों को यह त्रुटि बेतरह खटकी और इसके परवर्ती मीमांसकों ने ईश्वर को यज्ञपति के रूप में स्वीकार किया। वेदांत या उत्तर मीमांसा में ब्रह्म की कल्पना अधिक स्पष्ट है। ऊपर हम 'उपनिषदों में ब्रह्म' शीर्षक के अन्तर्गत ब्रह्म के स्वरूप निर्णायक दो प्रकार के लक्षणों का उल्लेख कर आये हैं। ब्रह्म जगत की उत्पत्ति, स्थिति तथा लय का कारण है। वह सत् (सत्ता) चित् (ज्ञान) और आनन्द रूप (सच्चिदानंद) है। वह सगुण भी और निर्गुण भी। दोनों के एक होते हुए भी दृष्टिकोण की भिन्नता दिखाई देती है। उपासना के निमित्त सगुण ब्रह्म की कल्पना व्यावहारिक दृष्टि से की गई है परन्तु पारमार्थिक दृष्टि से ब्रह्म निर्गुण है।[58]

ऊपर हम ब्रह्म स्वरूप के पारम्परिक विवेचन का संक्षिप्त परिचय दे आये हैं जिस से स्पष्ट है कि विभिन्न दार्शनिकों ने उस परम सत्ता का अपने अपने दृष्टिकोण विवेचन प्रस्तुत किया है। 'गुरु प्रताप सूरज' का ब्रह्म स्वरूप विवेचन जहां दीर्घ पारम्परिक विचारधारा से प्रभावित है वहां गुरु साहिबान के वाणी संकलन ग्रंथों – आदि ग्रंथ और दसम् ग्रंथ से विशेष रूप से प्रभावित है। 'गुरु प्रताप सूरज' का ब्रह्म

57- क्लेश कर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुष विशेष

— पातंजल योग दर्शन, 1 · 24

58- एक रूपेण हि अवस्थितो यो र्थः स परमार्थः।

— शांकर भाष्य, 2 · 1 · 11

निरूपण इन में प्रतिपादित विचारधारा को अपना आधार बनाये हुए है। या यूं कहिए कि यह ग्रंथ उस विचारधारा का व्याख्याता है। गुरुवाणी के अनेक उद्धरणों की यहां काव्यमयी व्याख्या भी मिलती है तथा उन में प्रतिपादित विचारों के द्वारा अपने मत की अभिव्यक्ति भी मिलती है ।

आदि ग्रन्थ में ब्रह्म-निरूपण

पूर्वोक्त ब्रह्म निरूपण के अनुसार ब्रह्म के दो रूप स्पष्ट होते है-- अव्यक्त और व्यक्त। गुरु साहिबान की ब्रह्म भावना पूर्णतः आध्यात्मिक है। अतः उनका ब्रह्म अनुभूति[59] का विषय होने के कारण अव्यक्त रूप में ही चिन्तन का विषय बन सका। परन्तु कहीं कहीं भक्ति भावना का आवेश इतना अधिक है कि परमात्मा के व्यक्त स्वरूप का भी चित्रण हो गया है। आदि ग्रंथ के आरंभ में दिए गए मूलमन्त्र में उसके अव्यक्त और व्यक्त दोनों रूपों का वर्णन मिलता है। समस्त ग्रंथ इसी मूलमंत्र में प्रतिपादित अकाल पुरुष के स्वरूप की व्याख्या करता है। वह बीजमन्त्र इस प्रकार है:-

एक ओंकार सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु
अकाल मूर्ति अजूनी सैभं गुर प्रसादि[60] ।

उपासक के भेद के अनुसार उपास्य अव्यक्त परमात्मा के विभिन्न गुणों का उल्लेख दर्शन ग्रंथों में मिलता है। गुरु साहिबान ने भी उपासक की आन्तरिक वृत्ति के अनुकूल ब्रह्म के स्वरूप का निरूपण तीन प्रकार से किया है:-

---

59- डा॰ जयराम मिश्र : श्री गुरु ग्रंथ दर्शन, पृ 60

60- (क) आदि ग्रंथ (शब्दार्थ) पृ॰ 1

(ख) व्याख्या के लिए द्रष्टव्य : डा॰ जयराम मिश्र, श्री गुरु ग्रंथ दर्शन, पृ॰ 61-75

(ग) डा॰ मनमोहन सहगल : गुरु ग्रंथ साहिब : एक सांस्कृतिक सर्वेक्षण, पृ 243-53

(घ) डा॰ मोहन सिंह : पंजाबी भाखा विगिआन अते गुरमति गिआन, पृ॰ 21, 22, 23

1- निर्गुण ब्रह्म, 2- सगुण ब्रह्म, 3- उभयविध (सगुण और निर्गुण दोनों से मिश्रित)

निर्गुण ब्रह्म अवाङ्मनस गोचर होने के कारण बुद्धि द्वारा अग्राह्य है। निर्गुण ब्रह्म की इसी अगम्यता की ओर संकेत करते हुए गुरु नानक देव जी ने कहा है :-

सहस सिआणपा लख होहि त इक न चलै नालि ।[61]

अतः गुरु साहिबान ने निर्गुण ब्रह्म के निरूपण में निषेधात्मक[62] शैली का अनुसरण किया है और सगुण ब्रह्म[63] का उल्लेख विधि शैली द्वारा किया। सगुण रूप भी विराट स्वरूप[64] वर्णन और गुणों के आख्यान रूप में स्पष्ट रूप से चित्रित है। गुरुओं ने मन के चिन्तन के निमित्त परमात्मा के अनेक गुणों को सम्मुख रखा। उसे सर्वव्यापी, सर्वान्तर्यामिन्, सर्वशक्तिमान, दाता, भक्त वत्सल, पतित पावन, परम कृपालु, सर्वरक्षक, रोग हन्ता, सखा, सहायक माता पिता, स्वामी आदि अनेक विशेषणों से विभूषित किया है।[65] इसके अतिरिक्त 'उनके विचार में ब्रह्म निर्गुण भी है और सगुण भी है।'[66] इसके साथ ही साथ वह निर्गुण और सगुण दोनों ही एक साथ है। गुरु नानक ने 'सिध्द गोष्ठ' में कहा है कि परमात्मा ने अव्यक्त निर्गुण से सगुण ब्रह्म को उत्पन्न किया है और वह दोनों आप ही है :-

अविगतो निरमाइलु उपजे निरगुण ते सरगुण थीआ ।[67]

61- आदि ग्रंथ – जपुजी, महला 1, पृ. 1

62- वही, मारु सोहले, महला 1, पृ. 1035-36

63- वही, गउड़ी सुखमनी, महला 5, पृ. 290-91

64- वही, सोहिले, रागु धनासरी, महला 1, पृ. 13

65- डा. जयराम मिश्र : श्री गुरु ग्रंथ दर्शन : पृ. 84

66- वही, पृ. 94

67- आदि ग्रंथ (शब्दार्थ) महला 1, सिध गोसटि, पृ. 940

गुरु अर्जुन देव जी ने एक स्थान पर कहा है :-

सरगुण निरगुण थापै नाउ ।दुह मिलि एकै कीनो थाउ ।।

× × × ×

मैं नाही प्रभ सभ किछु तेरा।इधै निरगुण उधै सरगुण केल करत बिचि
सुआमी मेरा।

× × × ×

निरगुनु आपि सरगुनु भी ओही।कलाधारि जिनि सगली मोही।। 8 ।। 18 ।[68]

इस तरह से गुरु वाणी में ब्रह्म के निर्गुण, सगुण, तथा निर्गुण-सगुण (उभयविध) रूपों का चित्रण मिलता है।

दशम् ग्रन्थ में ब्रह्म-निरूपण

आदि ग्रंथ में निरूपित ब्रह्म वर्णन के अनुसार ही दशम् ग्रंथ में भी ब्रह्म-स्वरूप चित्रित है। ब्रह्म के स्वरूप की अव्यक्तता को ध्यान में रखते हुए गुरु गोबिन्दसिंह जी ने भी कहा है :-

निरजूप हैं।अनूप हैं।अकाल हैं । अजात हैं ।[69]

''अकाल, कृपाल, अरूप, अनूप, अभेख, अलेख अनाम .... ।''[70] इत्यादि अनेक शब्दों द्वारा उसकी अव्यक्तता का संकेत किया है। 'ज्ञान प्रबोध' नामक रचना में भी इसी अव्यक्तता का संकेत मिलता है।

68- आदि ग्रंथ (शब्दार्थ) महला 5, सुखमनी, पृ. 287

69- श्री दशम् गुरु ग्रंथ, जापु साहिब, छन्द संख्या 37

70- वही, छन्द संख्या 2-13

आदि ब्रह्म आदि आतमा राम ।
जिह अमित तेजि अविगत अकाल ।
जिह भेद भरम नहीं कर्म काल ।
जिह सत्र मित्र सखा दिआल ।।[71]

'चौबीस अवतार' नामक रचना में भी इसी भाव का संकेत मिलता है।[72]

'सगुण' रूप के वर्णन करते हुए उसके अनेक गुणों का वर्णन भी आदि ग्रंथ की तरह ही इस ग्रंथ में भी हुआ है। उसे जापु साहिब[73], चौबीस अवतार[74] नामक रचनाओं में सर्व-व्यापक, सर्वान्तर्यामिन्, सर्वशक्तिमान, दाता इत्यादि अनेक शब्दों से अलंकृत किया गया है। ऐसे ही ब्रह्म की तीन महा विभूतियों -सत्, चित्, आनन्द अर्थात् सच्चिदानन्द के के नाम से भी उसका उपनिषदों की तरह ही गुणगान किया है। दो एक उदाहरण देखिए :-

1- सदा सच्चिदानन्द सरबं प्रणासी ।[75]
2- सदा सच्चिदानन्द सत्रं प्रणासी ।।[76]

इसके अतिरिक्त गुरु गोविन्द सिंह उस ब्रह्म के निर्गुण -सगुण उभय रूप का वर्णन करते है और उसे इन दोनों से परे भी मानते हैं[77]।

उन्होंने धर्म चलाने, सन्तों का उद्धार करने, तथा दुष्टों को नष्ट करने के लिए ईश्वर कृपानिधि, अस्त्र शस्त्र धारणकर्ता आदि कह कर भी अनेक स्थलों पर उसके स्वरूप का चित्रण किया है :-

---

71- श्री दसम् गुरु ग्रंथ : ज्ञान प्रबोध, छन्द संख्या 128
72- वही, चौबीस अवतार, चौपाई 15
73- वही, जापु साहिब, छन्द संख्या 47
74- वही चौबीस अवतार, छन्द संख्या 34
75- वही, जापु साहिब, छन्द संख्या, 158
76- वही, छन्द संख्या, 198
77- वही अकाल स्तुति, छन्द संख्या 11

तीर तुही सैथी तुही तुही तबर तरवार।
नाम तिहारो जो जपै भए सिंधु भव पार।
काल तुही काली तुही तुही तेग अरु तीर।
तुही निसानी जीत की आजु तुही जगबीर।
तुही सूल सैथी तबर तूं निखंग अरु बान।
तुही कटारी सेल सभ तुम ही करद क्रिपान[78]॥

इस तरह से गुरुचेतना के अनुकूल ब्रह्म का शस्त्र और शस्त्रास्त्रों के रूप में स्तुति करते हुए उसके स्वरूप का निरूपण किया।

भाई सन्तोख सिंह जी ने अपने इष्ट गुरु साहिबान की वाणी में वर्णित ब्रह्म स्वरूप के अनुकूल ही 'गुरु प्रताप सूरज' में ब्रह्मस्वरूप का विवेचन किया है परन्तु भारतीय दार्शनिक विचारधारा की पृष्ठभूमि को भी ग्रहण कर अपनी समन्वयात्मक और ग्राहिणी प्रतिभा को भी उद्घाटित किया है।

'गुरु प्रताप सूरज' में ब्रह्म निरूपण

'गुरु प्रताप सूरज' का ब्रह्म-निरूपण गुरमत दर्शन के प्रकाशक उक्त ग्रंथों के अनुसार होने पर भी अनेक दार्शनिक मान्यताओं से प्रभावित है। वैदिक, औपनिषदिक एवं पौराणिक ग्रंथों में प्रतिपादित विचारधारा को उनकी आध्यात्मिक क्षुधा एवं आकांक्षा ने ग्रहण किया था। उनके ब्रह्म के स्वरूप में सभी प्रकार के प्रभावों की छाया देखी जा सकती है। आदि ग्रंथ में 'ब्रह्म' के लिए 'करता पुरखु' शब्द का प्रयोग हुआ है और 'दशम् ग्रंथ' में उसी के लिए 'अकाल पुरखु' शब्द प्रयुक्त हुआ है। भाई सन्तोख सिंह ने दोनों के आधार पर 'अकाल पुरखु' के रूप में उसका चिन्तन किया है। अपने ग्रंथ की विभिन्न राशियों एवं ऋतुओं के आरंभ में दिए गए 'मंगलाचरणों' में ब्रह्म के स्वरूप का निरूपण किया है। वही 'अकाल पुरख' उनके इष्ट देव हैं और इनके अवतार दस गुरु साहिबान भी

78- श्री दशम् गुरु ग्रंथ, शस्त्र नाम माला, छन्द 4, 7

उनके इष्ट गुरु देव हैं। यद्यपि 'गुरु प्रताप सूरज' में नव गुरु साहिबान के प्रताप का ही आख्यान है तथापि गुरमत के प्रवर्तक गुरु नानक देव जी की भी इष्ट गुरु देव के रूप में स्तुति की गई है ।

प्रथम राशि के आरम्भिक मंगलाचरण में भाई सन्तोख सिंह ने अपनी आध्यात्मिक अनुभूति के आधार पर ब्रह्म के नित्य स्वरूप[79] एवं जगत के आश्रय रूप में वर्णन करते हुए अकाल पुरुष को रूप में चिन्तन का विषय माना है। यथा -

> तीनो काल सु अचल रहि अलम्ब सकल जग जालि ।
> जाल काल लखि मुचति जिसि करता पुरख अकाल ।।[80]

जिस ब्रह्म के भय से पृथ्वी, सूर्य, अग्नि, यम और पवन अपने अपने स्वभावानुसार कार्यरत रहते है ऐसा ब्रह्म मेरे हृदय में प्रकट[81] हो। वह अभेद, अनादि, सति, चेतन, आनन्द एक, अलिप्त[82] अस्ति, भान्ति, प्रिय रूप[83] हो कर सब में व्याप्त, माया सबल,[84] सर्वत्र व्यापक[85] और विश्व रूप हैं । तथा इस जगत के कर्ता, भर्ता और संहर्ता है।

79- सर्व काल वर्तमानत्वं हि नित्यत्वम् । – ब्र· सू· 1 · 1 · 1

80-गु· प्र· सू· रा· 1, अंशु 1, अंक 1, पृ· 126।

81-(क) भयादस्याग्नि स्तपति भयात्तपति सूर्यः ।
भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पंचमः ''।। –
– कठोपनिषद् , 2 · 3 · 3

(ख) आदि ग्रन्थ (शब्दार्थ, 464)

(ग) गु· प्र· सू· रा· 1, अंशु 1, अंक 2, पृ· 1263

82- गु· प्र· सू· रि· 1 अंश 1, अंक 1, पृ · 4487

83- वही , रा· 6, अंशु 1, अंक 1, पृ· 2777

84- वही , रा· 7 अंशु 1 अंक , 1 पृ· 3037

85- वही , रा 12, अंशु 1, अंक 1, पृ· 4219

स्वरूप लक्षण : वह ब्रह्म सच्चिदानन्द स्वरूप है। यही उनका समीचीनतम स्वरूप लक्षण है । वह एक रूप, एक रस, अखंड, अकारण, अपार हैं। यही उनका पारमार्थिक रूप है—

सति चित आनन्द परमातमा सभि जीवन को जीव।
सदा शान्ति , नभ सम स्वच्छ रव्यो , सरब शक्ति को सीव ।।

सवैया : तारनि गैन गिनै तु गिनै, सुख सागर के गुन कोकबि पार न ।
पारनि जीव न को कर्ता, जिस को जस वेद वदै सम चारनि ।
चारनि भेद लख्यो न गयो, किस को न बिशै अस रूप अकारन।
कारन जो ब्रहमण्ड अखण्ड निरतरि, आप रचयो तम तार न ।।[86] 3 ।।

ऐसे ब्रह्म के गुणों का गान कर सकने में कौन समर्थ हो सकता है। वेद भाटों की भान्ति जिस के यश का उच्चारण करते हैं।

तटस्थ लक्षण : ब्रह्म सृष्टि के कर्ता, भर्ता और संहारक हैं। उन का कर्तृत्व, भर्तृत्व और संहर्तृत्व कादाचित्क होने के कारण उनका तटस्थ लक्षण है। इसी लिए उक्त स्वरूप लक्षण के उदाहरण में कारण का भी कारण कहा गया है । वे इस जगत से अभिन्न उसके निमित एवं उपादान दोनों ही कारण है। वे सर्वत्र व्यापक हैं । इस सृष्टि की रचना करने वाले तथा इस के पालक भी हैं ।

माया से सबल जु भयो, जिति किति व्यापि समान ।
सार असार संसार करि सचिदानन्द महान ।[87]

सवैया : श्री पुरुषोतम पूरन हैं, परमानम पालक, लेप न माया ।
श्री परमेश्वर माधव, पावन पोषक, प्रेरक पार न पाया ।

86- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 5, अंशु 1, पृ॰ 2507

87- वही , रा 7 अंशुक 1 अंक 1, पृ॰ 3037

जै करिता जगदीश, जजे जग जीवन जोनि बिना, जस छाया ।
श्रपति , जोति सरुप अनूपम, भूपन भूप नमो हरिराय ।।[88]

उस ब्रह्म के चरित्रों (लोलाओं)[89] का रहस्य कोई नहीं जान सकता । आदि ग्रंथ में प्रतिपादित ब्रह्म के अव्यक्त और व्यक्त दोनों रुपों का भो 'गुरु प्रताप सूरज' में निरुपण हुआ है। अव्यक्त निगुर्ण ब्रह्म जहां आध्यात्मिक अनुभति के विषय है वहां सगुण ब्रह्म भक्ति भावना द्वारा उपासक के उपास्य हैं ।

निर्गुण सगुण रुप ब्रह्म :

भाई सन्तोखा सिंह ने 'गुरु प्रताप सूरज' में कई स्थानों पर ब्रह्म के निर्गुण सगुण रुप का भी चित्रण किया है। ब्रह्म को लोला ही को उन्होंने सगुण रुप धारण करने का मुख्य कारण बतलाया है। भाई सन्तोख सिंह इन दोनों ही रुपों को परमार्थतः सत्य मानते हैं तथा निर्गुणा सगुण के अनेक समशील शब्दों का उसी तरह व्यवहार करते है जैसे कि आदि ग्रंथ में व्यवहृत हैं । यथा -

पारब्रह्म पूरन करतारा। परमेशुर अ जगतेश उदारा ।
दीन बन्धु प्रिय सिक्खन केरा। प्रभु हरि व्यापक जहि कहिं हेरा।। 32 । ।
अच्युत महापुरुष गुण खानो । परम कृपाल परम सुखदानी ।
निरभाउ निरंकार निरकाल। निरगुन सरगुन रुप विसाला ।। 33 ।।
प्रभु संभू निरभउ, सभि स्वामी। मधु सूदन नरपति जगदाता ।
दुष्टन गंजन जन मन रंजन। करता पुरुष अनन्त अनंजन ।। 34।।
सति रुप जोतिन को जोति । जिह सत्ता ते जगत उदोति ।
परमातम नरहरि अविनाशी । रुप न रंग न घटि घटि वासी।। 35[90]

88- गु॰ प्र॰ सू॰ रा॰ 9, अंशु 1, अंक1, पृ॰ 3535

89- वही रा॰ 3, अंशु 1, अंक 2, पृ॰ 1878

90- वही , ख॰ रि॰ 4, अंशु 51, पृ॰ 5415

इस निगुर्ण सगुण निरूपण में जहां आदि ग्रंथ के बीज मन्त्र की व्याख्या मिलती है वहां द दशम् ग्रंथ में निरूपित 'दुष्ट गंजन' रूप का भी उल्लेख है। निगुर्ण ब्रह्म के स्वरूप का जा जहां निषेधात्मक शैली में निरूपण हुआ है वहां सगुण ब्रह्म का विधि-शैली में सुन्दर प्रतिपादन है। यही नहीं – अपितु ब्रह्म के विभिन्न विरोधी गुणों का भी पारम्परिक प्रतिपादन किया गया है। श्रुतियों,[91] पुराण-ग्रंथों[92], गीता[93] तथा महिम्न स्तोत्र[94] में ब्रह्म विभिन्न विरोधी गुणों का उल्लेख मिलता है। इसी परंपरागत मान्यता के अनुसार भाई सन्तोख सिंह ने भी अनिर्वाच्य ब्रह्म की महिमा प्रतिपादित की है। 'अकाल 'अच्युत' भी है और 'गुणों की खान' भी। 'निरकाल 'भी है और 'परम सुखदाता ' भी है।

निगुर्ण-सगुण -निरूपण की विशेषता

भाई सन्तोख सिंह ने निगुर्ण सगुण समन्वय के लिए दोनों रूपों के में एकता प्रदर्शित की है। उन्होंने जिस अद्भुत रूप से सामंजस्य किया और जिस प्रकार निगुर्ण को प्रधान रख कर सगुण साकार उपासना का प्रचार किया है, वह अभूतपूर्व है। जिन्हें ब्रह्म की का ज्ञान हो गया है, वे निगुर्ण सगुण में भेद भाव न समझेंगे।

सति चित अनंद समान इक निरगुण सरगुण माहिं।
ग्यानादिक गुन ईश के जीवन विखै इह नाह ।।[95]

91- ऋग्वेद, 10·81·3, छा· उप· 3·14·4, तै· उप· 2·9·1, कठ· उप· 2·1·1, मु· उप· 3·1·8, श्वे· उप· 3·19, बृ· उप· 2·3·1

92- वि· पु· 1·9·50, 1·20·9, ब्र· वै· पु· 4·5·98, भा· पु· 7·9·48, न· पु· 1·2·21·

93- गीता - 13·14-17

94- महिम्न स्तोत्र : 29

95- गु· प्र· सू· रा· 11, अंशु 1, अंक 1, पृ· 3975

श्री अरजन सुनि सुमति बताइ ।निष्फल अस संदेहि उठाई ।
निरगुन सरगुन तौ दुइ कहोअहि।जो इन बिखे भेउ कुछ लहोअहि।[96]

गुरु साहिबान इसी ब्रह्म को एक कहते हैं। 'दशम् ग्रंथ' को शैली में भाई सन्तोखसिंह ने भो एक स्थान पर कहा है :-

तूही एक ईशं सभै लोक चेरो ।
तूही एक रूपं तूही रूप नाना।
तूही जीवका दे करै जोव खाना ।[97]
× × ×
कारन करन आप तुम सारे ।[98]

'कारण करन' रूप ब्रह्म ही एक से अनेक रूपों में प्रकट होकर अपनी लीला करता है। वैसे निगुर्ण सगुण परस्पर पूरक हैं। गुरु साहिबान उसी ब्रह्म के अवतार रूप मेंअवतरित हुए और जोवों को उपदेश देकर उनके कल्याण का मार्ग दर्शन किया । उन गुरु साहिबान की लीलाओं का वर्णन करते हुए भाई स्व सन्तोख सिंह ने विष्णु के अवतार की भान्ति उनके सर्वशक्ति सम्पन्न रूप का वर्णन किया है।

भाई सन्तोख सिंह आध्यात्मिक विचारक थे । उनकी विचारधारा पारम्परिक आध्यात्मिक विचारधारा की प्रबल कड़ी के रूप में आई है। उन्होंने जहां निगुर्ण या अव्यक्त ब्रह्म के निरुपण में अपनी रुचि दिखाई वहां युगीन परिस्थितियों के अन्तर्गत गुरु साहिबान को अकाल पुरुष काअवतार यावैष्णव भावना के अनुकूल विष्णु का अवतार रूप में चित्रित कर व्यावहारिकता प्रदान की । वे स्वयं भक्त हृदय प्राणी थे अतः उन्होंने अपनी भक्तिभावना के अनुकूल भावनात्मक शैली में ब्रह्म - निरुपण कर अपनी ब्रह्मानुभूति का परिचय दिया ।

96- गु॰प्र॰सू॰रा॰ 3, अंशु 55, अंक 37, पृ॰ 2164
97- वही, रा॰ 3 अशं 41 , अंक 36, पृ॰ 2086
98- वही, रा॰ 4, अंशु 30 , अंक 50, पृ॰ 2349

(2)- सृष्टि क्रम का विश्लेषण

यह संसार भी एक अद्भुत पेहेली है। युग युगों से मानव प्रकृति और अन्य सांसारिक दृश्यों को देखकर विस्मय विमुग्ध होता रहा है। उसके मन में अनेक प्रश्न उठते है कि इससृष्टि की रचना विधाता ने क्यों और कब की । इस विषय में भारतीय चिन्तकों और दार्शनिकों ने अपने अपने मतानुसार अनेक विचार व्यक्त किए हैं परन्तु यह रचना अभी तक सब के लिए पहेली ही बनी हुई है। न वैज्ञानिक इस की थाह पा सके हैं और न दार्शनिक । उन्होंने इस पहेली को हजतना सुलझाना चाहा है यह उतनी ही उलझती हो गई ।

पारम्परिक स्वरूप : सृष्टि रचना के सम्बन्ध में ऋग्वेद में अनेक उल्लेख मिलते हैं । नासदीय सूक्त में इसकी[99] आरम्भिक अवस्था पर प्रकाश डाला गया है। उपनिषद् साहित्य में इसके स्वरूप पर विशदता से विचार किया गया[100] है। परन्तु इस में भी मतैक्य उलब उपलब्ध नहीं है ।न्याय और वैशेषिक दर्शन के अनुसार संसार की रचना परमाणु, दिक्, काल, आकाश, मन और आत्मा आदि उपादानों द्वारा स हुई । जीवन अपने पाप और पुण्य कर्मों के अनुसार दुःख सुख सके – इसी निमित सृष्टि की उत्पति हुई।[101] यह दोनों दक्षर दर्शन इस बात पर सहमत हैं कि परमाणु में ईश्वरच्छा से क्रिया उत्पन्न होकर प्रारम्भिक संयोग द्वारा क्रमशः सृष्टि की उत्पति होती है और प्रलय भी ईश्वरेच्छा के अधीन है। सांख्य दर्शन के अनुसार प्रकृति और पुरुष के द्वारा सृष्टि रचना हुई है। सत्, रज, तम इस प्रकृति के तीन गुण हैं। सृष्टि से पूर्व ये तीन साम्यावस्था में रहते है। प्रकृति और पुरुष के संयोग से इन साम्यावस्था भंग हो जाती है और सृष्टि-क्रम आरंभ हो जाता[102] है। इस दर्शन के 25 तत्वों का पीछे उल्लेख हो चुका है। प्रकृति की सृष्टि उत्पति क्रिया क्रमशः सूक्ष्म से स्थूल की ओर होती[103] है।योग दर्शन भी सांख्य दर्शन

99- ऋग्वेद मण्डल, 10, 123 सूक्त, ऋचा 1 और 2

100- मुण्डक उप • 2 • 1 • 1, कठ उप • 2 • 2 • 9, प्रश्न उप • 6 • 4

101-शतीशचन्द्र चट्टोपाध्याय : भारतीय दर्शन, पृ • 23

102- गौड़पाद भाष्य , करिका 8

103- वही , कारिका 38

की तरह इस सृष्टि की रचना – प्रक्रिया में सहमत है। इस दर्शन के अनुसार संयोग का अन्त होने पर प्रलय की स्थिति उत्पन्न होती है।[104] मीमांसा भौतिक जगत को मानती है परन्तु किसी जगत स्रष्टा की कल्पना नहीं करती । इस दर्शन अनुसार जगत अनादि और अनन्त है। न इसकी कभी सृष्टि हुई है और न कभी प्रलय होगा । कर्मानुसार भौतिक तत्वों की उत्पति होती है। वेदान्त अनुसार माया से सम्बन्धित ब्रह्म ईश्वर अपनी लीला के लिए सृष्टि उत्पन्न करता है। इस में पांच महाभूतों से सृष्टि की उत्पति बताई गई है। इस दर्शनानुसार मनुष्य का सूक्ष्म शरीर इन्हीं से उत्पन्न हुआ है। 'गुरु प्रताप सूरज' में जीवात्मा के त्रिविध शरीरों, माया, ईश्वर आदि पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। जिस पर इस दर्शन की छाप स्पष्ट प्रतीत होती है।

आदि ग्रंथ में सृष्टि रचना का स्वरूप

आदि ग्रंथ में सृष्टि क्रम से सम्बन्धित तीन सिध्दांतों पर विशेष प्रकाश डाला गया है।

(1) ओंकार द्वारा सृष्टि रचना

(2) हुकम द्वारा सृष्टि रचना

(3) हउमै (अहंकार) द्वारा सृष्टि रचना।

(1) ओंकार द्वारा सृष्टि रचना : आदि ग्रंथ में कई स्थानों पर इस बात का संकेत मिलता है कि उस ओंकार स्वरूप परमात्मा ने इस सृष्टि की रचना की है। 'रामकली ओंकार' में कहा[105] गया है कि ओंकार से ही ब्रह्मा की उत्पति हुई है, ओंकार से ही पर्वतों और वेदों का सृजन हुआ है। यही ओंकार ही तीनों लोकों का सार है। ओंकार द्वारा सृष्टि रचना सम्बन्धी यह वैदिक और औपनिषदिक विचारधारा के अनुकूल है।[106] जिस से विदित होता है कि आदि ग्रंथ की विचारधारा पारम्परिक भारतीय चिन्तन के अनुकूल है।

104- सतीश चन्द्र चट्टोपाध्याय : भारतीय दर्शन, पृ. 28

105- आदि ग्रंथ, रामकली ओंकार ।

106- ऋग्वेद, 1 . 3 . 22, माण्डू. उप. 1 ., छां. उप. 2 . 23 . 2

(2)हुकम द्वारा सृष्टि रचना : आदि ग्रंथ में कई स्थानों पर प्रभु के हुकम(Divine Will[107] or Universal Order[108])से सृष्टि की रचना मानी गई है। 'जपुजी'[109] 'सिध्द गोसटि '[110] आदि में सिध्दांत की प्रतिष्ठा का निरुपण हुआ है। 'आसा की वार',[111] माझ की वार'[112] आदि में भी इस सिध्दांत की व्याख्या मिलती है। यह हुकम सृष्टि रचना से पूर्व भी व्याप्त था । तब न धरती और नआकाश, केवल प्रभु का अपार हुकम था ।[113] फिर इस हुकम से ही समस्त जीव आकार धारण करते हैं । हुकम से ही उन्हें गौरव मिलता है। उन्हें सुख दुःख की प्राप्ति होती है। यही सारी सृष्टि ईश्वरी विधान के अनुसार चली आ रही है।उसके भय से ही सारा कार्य विधान चल रहा है।[114]

(3) हउमै (अहंकार) द्वारा सृष्टि रचना : अफुर ब्रह्म के 'हुकम' की उत्पति के साथ ही हउमै(अहंकार) की भी उत्पति होती है। यही अहंकार सृष्टि रचना का मूल कारण है। आदि ग्रंथ[115] से पूर्व योगवासिष्ठ[116] में भी अहंकार को ही सृष्टि उत्पति का मूल कारण माना गया है। 'आसा की वार' में इसे दीर्घ रोग बताया गया है।यही जीवात्मा

107- Dr. Sher Singh: Philosophy of Sikhism p. 182
(ii) Dr. S. S. Kohli: Outline of Sikh Thought p. 56

108- डा॰ मोहन सिंह : पंजाबी भाखा विगिआन अते गुरमति गिआन, पृ॰ 29

109- जपुजी : महला पहला, पउडी 2, 16

110- सिध्द गोसटि , रामकली , 22

111- हुकम कीए मनि भावदे राहि भीड़ै अगै जावणा, - आसा-वार, पउड़ी 14

112- माझ की वार, श्लोक 16

113- अरबद नरबद धुंधुकारा । धरनि न गगना हुकमु अपारा।
— महला पहला, मारु राग , सोहले 15

114- आसा की वार, शब्दार्थ, पृ॰ 464 तथा कठोपनिषद् 2 · 3 · 3

115- आदि ग्रंथ , रामकली , सिध्द गोसटि 68 तथा मारु, अष्टपदी 2 · 6

116- योग वासिष्ठ प्रकरण 3 · 12 · 5-9

117- आदि ग्रंथ : सलोक महला 2, तथा
द्रष्टव्य : आसा की वार : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ॰ 149

को सांसारिक यात्रा का मूल कारण कहा गया है। आगे इस पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। आदि ग्रंथ में सृष्टि के क्रम का व्यवस्थित निरूपण उपलब्ध नहीं होता अपितु स्थान स्थान पर गुरु साहिबान के फुटकर कथन उपलब्ध होते हैं । जिन के आधार पर उक्त सिध्दांतों का स्वरुप स्पष्ट होता है।

दशम् ग्रंथ में सृष्टि - रचना का स्वरुप

इस ग्रंथ में पूर्व विवेचित परंपरा के अनुयालन के साथ साथ आदि ग्रंथ में प्रतिपादित उक्त सिध्दांतों के अनुकूल ही सृष्टि रचना का स्वरुप अभिव्यक्त हुआ है। ईश्वर के संबन्ध यह निश्चित रुप से नहीं कहा जा सकता कि उसने सृष्टि की रचना किस तरह की –

तुम्हारा लखा न जाय पसारा ।
के हि विधि सृजा प्रथम संसारा ।।[118]

ईश्वर अपनी इच्छा (हुकम) और प्रकृति के संयोग से सृष्टि करता है:–

प्रिथमें ओंकार तिन कहा । सो धुन पूर जगत को रहा।
ताते जगत भयो विस्थारा । पुरुख प्रकित जब दुइ विचारा।[119]

यहां भी उक्त आदि ग्रंथ के हुकम और ओंकार आदि सिध्दांतो का संकेत मिलता है।

'गुरु प्रताप सूरज' में सृष्टि रचना का स्वरुप

इस ग्रंथ में सृष्टि रचना के स्वरुप विवेचन में भारतीय सांख्य और वेदान्त दर्शन के विचारों की छाप अंकित है। इन के अतिरिक्त गुरमत दर्शन के प्रतिपपदक उक्त दोनों ग्रंथो की विचारधारा का भी स्थान स्थान पर विश्लेषण हुआ है।इस ग्रंथ में भारतीय सांख्य दर्शन द्वारा प्रतिपादित परिणाम वाद और अद्वैत वेदांत दर्शन द्वारा प्रतिपादित विर्वतवाद की व्याख्या द्वार सृष्टि रचना के स्वरुप पर प्रकाश डाला गया है ।

118- दशम् ग्रंथ : ज्ञान प्रबोध, छन्द संख्या 25

119- वही , चौबीस अवतार , छन्द संख्या 29-30

(1) परिणामवाद : सांख्य दर्शन के प्रवर्तक नैयायिकों के असत्कार्यवाद (कार्य उत्पति से पूर्व अपने कारण में वर्तमान न होना) का विरोध करते हुए अपने सत्कार्यवाद (उत्पति से पूर्व कार्य का कारण में अव्यक्त रूप में विद्यमान होना) की स्थापना करते हुए इस परिणाम वाद का विवेचन करते हुए कहते हैं कि परिणाम वहां होता है जहां कारण से उत्पन्न कार्य वास्तव[120] होता है जैसे दूध से दही की उत्पति । यहां दही वस्तुतः सच्ची चीज है। उसका रूप, स्वाद आदि दूध से भिन्न होता है। कार्यों को सच्चे रूप में व्यक्त करने वाला यह सिध्दांत 'परिणामवाद' कहलाता है। भाई सन्तोख सिंह सृष्टि रचना का स्वरूप स्पष्ट करते हुए इस से सम्बन्धित पारम्परिक सिध्दांतों का उल्लेख करते है । परिणामवाद[121] की चर्चा करते हुए लिखते है :-

वाद प्रणाम अपर विधि मानो । रूप दूध ते दधि हुई जानो ।
दधि ते बहुर दुग्ध हुइ नाहि । पूरब रूप नाश भा तहि ।। 8[122] ।।

ब्रह्म की माया से जगत का आभास होता है। इस सिध्दांत का निरूपण करते हुए विर्वतवाद के स्वरूप पर भी प्रकाश डालते हैं ।

(2) विर्वतवाद : शंकराचार्य ने सृष्टि की रचना का रहस्य इस सिध्दांत द्वारा स्पष्ट करते हुए कहा है कि यह सृष्टि ब्रह्म[123] की विर्वतरूप है। विर्वत से अभिप्राय है कि जो कार्य दिखाई पड़ता है, वह वास्तव न होकर केवल आभास मात्र है ; कार्य की केवल प्रतीति होती है, उसकी वस्तु स्थिति नहीं रहती । जैसे अन्धेरे में पड़ी रस्सी को देख कर हम डर कर भागते हैं कि यह सांप है। यहां रज्जु में सर्प[124] उत्पन्न होता है, परन्तु यह कल्पना मात्र है, सच्ची घटना नही, क्योंकि दीपक के जलाने

120- पं॰ बलदेव उपाध्याय : भारतीय दर्शन, पृ॰ 257-58

121- गु॰ प्र॰ सू॰ रा॰ 2, अंशु 36, अंक 2-4, पृ॰ 1790

122- वही , अंक 8, पृ॰ 1790

123- ब्रह्म सूत्र भाष्य , 2 · 1 · 28

124- विवेक चूडामणि, 349-350

पर रज्जु के रूप को ही हम देखते है, सांप को नहीं । इस तरह से सिध्दांतानुसार ब्रह्म से ही यह नामरूपात्मक जगत उत्पन्न होता है परन्तु यह असत्य है, कोरी कल्पना है, स्वप्न के समान अलोक है, ब्रह्म ही एक मात्र सत्ता है। जगत की केवल प्रतीति होती है, वह सच्चा नहीं होता । भाई सन्तोख सिंह भी इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए विर्वतवाद के सम्बन्ध में लिखते हैं :-

विवरतवादि इहु हम ने कह्यो द्रिश्य प्रपच ब्रह्म ते लह्यो ।। 5 ।।
जथा रजू ते स्रप उपजंता ।भे आदिक ते कंप उठंता ।
तैसे ब्रह्म ते जग इह दीखा ।हर्ष शोक दे तिसे सरीखा ।। 6 ।।
बिना ग्यान ते मिटे जु नाही ।सदा सशंकित दुख सुख माहीं ।। 7 ।।[125]

इसी तरह सीप में चांदी का भ्रम, मरीचिका में जल आदि दृष्टांत इस विर्वत भावना को स्पष्ट करते हैं। इसी विर्वत भावना को स्पष्ट करने वाले एक अन्य सिध्दांत का भी 'गुरु प्रताप सूरज' में उल्लेख हुआ ।वह प्रतिबिम्ब[126] भावना है :-

तन घट, अन्तहकरण सुजलु है ।ब्रह्म चन्दु प्रतिबिम्ब सतुल है।
सभि महिं भासै सभि ते न्यारो ।एव्र आत्मा को उर धारो ।। 34 ।।[127]

इस में जल और प्रतिबिम्ब का दृष्टान्त लिया गया है[128] ।

125- गु॰ प्र॰ सू॰ रा॰ 2, अंशु 36, अंक 6, पृ॰ 1790

126- (क) ब्रह्म सूत्र भाष्य , 3॰2॰19-20

(ख) विवेक चूडामणि : 509-10

127- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 5, अंशु 41, अंक 34, पृ॰ 2672

128- वही , रा॰ 5, अंशु 46, अंक 44-45 पृ॰ 2695

<u>जगत</u> : वेदांत वादियों की तरह जगत को बाजीगर की माया का प्रसार भी बताया है। ब्रह्म वस्तुतः जगत्कारण है, परन्तु जगत-कार्य उसकी अध्यक्षता में होते हुए भी इन्द्र जाल के कौतुक से अधिक कुछ नहीं है। 'गुरमतदर्शन' के प्रतिपादक उक्त ग्रंथों में भी इसी भावना का कई स्थानों पर अ उल्लेख मिलता है।

बाजीगर जैसे बाजी पाई ।नाना रूप भेख दिखलाई ।
सांगु उतारी थम्हिओं पासारा ।तब एको एकं कारा।[129]

तदानुसार ही भाई सन्तोख सिंह भी लिखते है :-
माया करि ब्रह्म ते जग भासा ।जिम बाजीगर करे तमासा ।
होहि बिनाश अजबै अग्यान।नहिं पुन रहे ब्रह्म बिनुआन ।।[130]

संसार का यह तमाश 'धुअर[131] धौलर' के समान है। नश्वर और क्षणभंगुर[132] है। परन्तु इस के आदि और अन्त का किसी को ज्ञान नहीं ।तभी तो भाई सन्तोख सिंह भी इसे अनादि काल से इसी तरह चला आ रहा बताते हैं । जिस प्रका पार पा सकना अत्यन्त कठिन है।

129- (क) आदि ग्रंथ , गउड़ी सुखमनी , पृ॰ 136

130- (ख) भाई जोध सिंह : गुरमति निरणय, पृ॰ 30 (7वा संस्करण)

(ग) गु॰ प्र॰ सू॰ रा 2, अंशु 35, अंक 14, पृ॰ 1786

130- वही , रा॰ 2, अंशु 36, अंक 10, पृ॰ 1790

131- वही , ऐन 1 , अंशु 44, अंक 14, पृ॰ 6185

132- (क) वही , रा 1, अशुं 25, अंक 19, पृ॰ 1420

(ख) वही , रा 4, अंशु 30, अंक 48, पृ॰ 2349

जगत अनादि काल को ऐसे ।
चल्यो आइ जिह पार न कैसे ।[133]

इसके अतिरिक्त उन्होंने गुरमत को प्रणववादी[134] और अहंकारोवादी[135] भावनाओं का भी उसके अनुकूल अनुमोदन किया है। हुकम[136] सिध्दांत में भी अपनी आस्था व्यक्त की है। इस विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि भाई सन्तो सन्तोखसिंह का सृष्टि स्वरुप निरुपण पारम्परिक भारतीय विचारधारा और गुरमत दर्शन के अनुकूल है ।

माया का स्वरुप : निर्विशेष - निर्लक्षण ब्रह्म से सविशेष - सलक्षण जगत की सृष्टि कैसे हुई ? एक अद्वितीय या केवल ब्रह्म से अनेक नाम रुपात्मक जगत का निर्माण कैसे संभव हुआ ? इस प्रकार के शंकाओं के दूरीकरण के लिए शंकराचार्य नेक मायावाद की कल्पना[137] की । इस विश्वप्रपंच की बीजरुपा, ईश्वर की अपृथग्भूता, त्रिगुणात्मिका एवं अनिर्वचनीय शक्ति को 'माया' कहा[138] गया है।इस अघटित घटना पटीयसी तथा विचित्र कार्य कारणशील माया के द्वारा संसार का अस्तित्व दिखाई दे रहा है।

वेदान्तियों की भान्ति सिक्ख गुरुओं को माया का स्वतन्त्र अस्तित्व स्वीकार नहीं[139] है। उन्होंने स्थान स्थान परइस बात को स्वीकार किया है कि इस नामरुपात्मक जगत की रचना परमात्मा के 'हुकम' से हुई है। हां, इसके अन्य नाम शक्ति और कुदरत(प्रकृति)

133- (क) गु॰ प्र॰ सू॰ रा 1, अंशु 28, अंक 9, पृ॰ 1431
(ख) भाई जोधसिंह : गुरमति निर्णय, पृ॰ 33

134- ना॰ प्र॰ पू॰ अध्य॰ 1, अंक पृ॰ 2

135- गु॰ प्र॰ सू॰ रा॰ 4, अंशु 54, अंक 58, पृ॰ 2457

136- वही , ऐन 2, अंशु 20, अंक 12, पृ॰ 6320

137- डा॰ राम मूर्ति शर्मा : अद्वैत वेदान्त , पृ॰ 168

138- डा॰ नामानन्द तिवारी : शंकराचार्य का आचार दर्शन, पृ॰ 58

139- डा॰ जयराम मिश्र : श्री गुरु ग्रंथ दर्शन, पृ॰ 146

उन्हें मान्य है।[140]

'गुरु प्रताप सूरज' में 'माया' का स्वरूप

'गुरु प्रताप सूरज' में भाई सन्तोख सिंह ने जहां शंकराचार्य और उनके उत्तरवर्ती अनुयायियों की भान्ति 'माया' को परब्रह्म की आदि शक्ति[141] स्वीकार कर उसे अनिर्वचनीय, अनादि, आदि विशेषणों द्वारा व्यक्त किया है वहां आदि ग्रंथ में प्रतिपादित विचारधारा अनुसार उस के स्वतन्त्र अस्तित्व को न मान कर उसे अनेक ब्रह्मा की मोह कारिणी शक्ति ही कहा है। 'अज्ञान ' का स्वरूप निरूपण करते हुए उन्होंने इसकी षट्[142] संज्ञाओं द्वारा इस के स्वरूप को अभिव्यक्ति की है। उसे 'अव्यक्त' और अव्याकृत' नामों से भी स्पष्ट किया है। सत, रज, तम का मूलाधार 'अव्यक्त ' से सत्व, रज, और तम की साम्यावस्था, प्रकृति विकसित होती है । उसके तीनों गुण समभाव से रहते हैं। त्रिगुणात्मिका साम्यावस्था चेतन प्रतीत होती परन्तु ज्योंकि ही पुरुष का प्रकृति की इस साम्यावस्था से संयोग होता है तो तीनों गुणों में उथल पुथल या विकार उत्पन्न होने लगता है। इस विकृतावस्था मे वे सृजन के लिए तत्पर होते हैं। ध शुध्द सत्व से जैसे 'माया अस्तित्व में आती है ऐसे मलिन सत्व से 'अविद्या' उत्पन्न होती है।[143] अतः माया के दो रूपों की कल्पना की जाती है— विद्या और अविद्या। जीव को जब अपने अतःकरण में 'अहम ब्रह्मस्मि' का ज्ञान होता है, द्वैत की भावना समाप्त हो जाती है, प्रखण्ड वृति टिक जाती है। यह विद्या है । 'माया' का दूसरा भेद 'अविद्या' है जो जीव के संसार का कारण है। 'मैं देह हूँ'- इस प्रकार शरीर आदि अनात्म पदार्थों में देह बुध्दि 'अविद्या' है । दूसरे शब्दों में मिथ्या को सत्य और सत्य को मिथ्या समझना ही 'अविद्या है। 'अविर्द्या 'से आवृत मूढ़ जीव स्वस्वरूप और भगवत् स्वरूप को भूलकर भव बन्धन में बध्द होता है। अतः अविद्या जीव के संसार का हेतु है और विद्या निवृति का[144]

140- डा॰ जयराम मिश्र : श्री गुरु ग्रंथ दर्शन, पृ॰ 146

141-अविद्यात्मिका हि बीज शक्ति : — ब्र॰ सू॰ शा॰ भा॰ 1॰4॰3

142-गु॰ प्र॰ सू॰ रि॰ 5, अंशु 42, अंक 7-11, पृ॰ 5655-56

143- सत्वशुध्दयविशुध्दिभ्यां मायाविद्ये च तमते । (पंचदशी 1॰16)

144 - ब्र॰ सू॰ 1॰1॰1 पर शा॰ भा॰ तथा आ॰ रा॰ 2॰4॰34

परन्तु जब अज्ञान का नाश हो जाता है तब ब्रह्म ही ब्रह्म दिखाई देने लगता है। इस लिए इस माया को न तो असत्य ही कहा जा सकता औरब न सत्य और न ही सत्यासत्य । इस लिए भाई सन्तोख सिंह भी वेदान्तवादियों की भान्ति इसे अनिर्वचनीय तथा आनादि कहते हैं ।

नहिं असत्य नहिं सत्य सु माया । सत्यासत्य भी नहिं बनि आया ।
लखहु अनरबचनी इहु याते । किह बिधि कहिबे जाहि न कहाते ।। ।। ।।
है अनादि जिसु अनि आदि न मान । अंत पइ उपजे जबि ग्यान ।
सतिगुर के सुनिबे उपदेश ।हतहि अविद्या सहत कलेश ।। 12 ।।[145]

इस की शक्ति की अनंतता के विषय में भी उन्होंने लिखा है :

जे माया की कीजहि निरनो। इस को अंत न क्यों हूं बरनो ।
जुग कोटानि कोट गन हेरै । तऊ सु लखियति परे परेरै ।। 47 ।।
माया की है शकिति अनंत ।खोजि खोजि हारे बुधिवंत ।
किस ते पार न पायो । याते एक रहे लिवलाइ ।। 48 ।।[146]

इसे त्रिगुणात्मिका[147] शक्ति के रूप में भी उन्होंने चित्रित किया है तथा इसकी आवरण तथा विक्षेप शक्तियों का वर्णन भी वेदान्तपरक[148] ही किया है ।

उभै शकति के धार निहारी । इक आवरण विशेप उचारी ।। 38 ।।
करहि सरुप अछादनि जोइ । ग्यानी भनहिं आवरण सोइ ।
जिह नानत्व प्रतीत कराई। सो विखेप, जहिं कहिं दृशटाई ।। 39 ।।
उपादान इह सभि जग केरी । है अघटन घटना से घनेरी।[149]

145- गु० प्र० सू० रा 2, अंशु 36, अंक 11-12, पृ० 1790

146- वही , रा० 4, अंशु 53, अंक 47-48, पृ० 2452

147- वि० चू० 110

148- सदानन्द : वेदान्ता वेदान्त सार , पृ० 34

149- गु० प्र० सू० रा० 2, अंशु 35, अंक 38-39, पृ० 1788

इस माया से पार पाना बड़ा ही कठिन है। इसके पाश के छूट सकना प्राणी के लिए सहज नहीं । परन्तु भाई सन्तोख सिंह ने एक मनोवैज्ञानिक तर्क द्वारा इसके जाल से बच निकलने का रास्ता बताया है। भारतीय ब्रह्मसाधना के लिए स्वीकार्य ज्ञान, वैराग्य और योग की असफलता बताते हुए भक्ति की सर्वश्रेष्ठता का प्रतिपादन करते हुए कहा है कि यह भक्ति स्त्री रुपा है। अतः माया भी स्त्री रुपा होने के कारण इस पर अपना प्रभाव डालने में असमर्थ रहती है। उक्त ज्ञान आदि पुरुष रुप होने के कारण उसके मोहपाश में बध्द हो सकते है परन्तु भक्ति को बांध सकना अत्यन्त कठिन है। अतः गुरु उपदेश द्वारा भक्ति के साधन द्वारा साधना कर साधक जीवन को सफल बना सकता है । यथा :

भगति अहै पतिब्रता नारी । इस पर नहिं माया बलु भारी ।
इसत्री को इसत्री न भ्रमावे । धरहिं भगति तिस प्रभु मिलावे ।। 26 ।।[150]

भाई सन्तोख सिंह ने वेदान्तपरक ही इसका स्वरुप निरुपित नहीं किया है प्रत्युत आदि ग्रंथ में प्रतिपादित इसके ईश्वर की दासी रुप[151] का भी चित्रण किया है :-

ब्रह्म सबल माया जग जाई ।
हुकम प्रमेशुर को तिन पायो ।
अपने महिं सब जग भरमायो ।।[152]

जो उसके 'हुकम' के अधीन रहती है। गुरुवाणी के श्रवण, कीर्तन एवं मनन द्वारा इस चंचल हरनी के प्रभाव को तत्क्षण क्षीण किया जा सकता है । यथा -

गुरबानी बरजन आचरनी ।
रिदे बिकारनि तिन के छरनी ।
महद अविद्या चंचल हरनी ।
करि निज बल को ततछिन हरनी ।।[153]

150- गु· प्र· सू· रा· 1, अंशु 12, अंक 26, पृ· 1360

151- (क) आदि ग्रंथ, गउड़ी सुखमनी, महला 5, पृ· 294 (ख) वही, रामकली, म· 5, छं, पृ 924

152- गु· प्र· सू· रा 1, अंशु 12, अंक 23, पृ 1360 (153) वही, रा 9, अं 8 अं 39,

अहंकार (हउमै)

हमारे धर्म शास्त्रों में ऐसा वर्णन मिलता है कि सृष्टि का मूल कारण ही अहंकार है। क्योंकि 'अफुर' ब्रह्म से जब 'हुकम' द्वारा सृष्टि की उत्पति होती है तो अविद्या अज्ञान या माया द्वारा 'अहंकार' (हउमै) की भावना भ उत्पन्न होती है जो जीव और ब्रह्म में द्वैत भावना को जन्म देती है। नाम अद्वैत सत्ता का प्रतीक है तो अहंकार द्वैत सता का। इन दोनों में परस्पर विरोध की भावना रहती है। योग वासिष्ठ आदि धर्म शास्त्रों में इस भावना का उल्लेख मिलता है।[154] आदि ग्रंथ में गुरु साहिबान ने भी इसी भावना का समर्थन करते हुए बताया है कि इस अहंकार ने ही जीवात्मा को परमात्मा से पृथक किया है। इसके पृथक अस्तित्व का मूल कारण यही 'हउमै' है। मनमुख इसी कारण जन्म मरण के चक्र में पड़े रहते है। यह मानवीय समाज इसी अकार के कारण दुखित है। यह एक भयानक रोग है।

जीव की 'हउ'[155] या अहंता ही बन्धन -मोक्ष आदि का मूल कारण है। इसी के कारण जीव बार बार जन्म ग्रहणकरता है तथा विभिन्न योनियों में भटकता है[156] तथा दुःख को प्राप्त करता है। इसी भावना को भाई सन्तोख सिंह जी ने इस तरह से व्यक्त किया है :-

तन हंता महिं सभि उतपात। दुख प्रापति पुन पुन पछुतात ।। 43 ।।
जनम असंख इसी ते धरे । अप्रमान संकट ते मरे ।
ममता आदि बिकार अनेक। तन हंता जनती अविबेक ।।[157] 44 ।।

154- बी · एल · आत्रेय : द योग वासिष्ठ , पृ · 188

155- (क) हउ विचि आइआ हउ विचि गइआ ।
हउमै करि करि जन्त उपाइआ ।।
— आसा की वार, एक सांस्कृतिक आध्ययन, पृ · 140,

(ख) गु · प्र · सू · रि · 5, अंशु 41, अंक 42, पृ · 5654

156- डा · शेर सिंह : गुरमति दर्शन , पृ · 254

157- गु · प्र · सू · रि · 5, अंशु 41 पृ · 5655

गुरु की कृपा से ही अहंकार जनित अविवेका का दूरी करण हो सकता है। उसकी कृपा से हो नाम स्मरण के द्वारा जन्म मरण के दुखों से छूटा जा सकता है। यथा :-

जिस जन पर होवे गुर करूना। तन हंता को करहि प्रहरना ।
तत उपेदश नाम लिव लावै । जनम मरन दुख ते छुटि जावै।। 45 ।।[158]

इस भयानक मानसिक रोग का इलाज 'गुरु' के पास ही है। इसके त्याग से ही साधक प्रभु का साक्षात्कार कर सकता है ।

इस अहंकार के स्वरूप की व्यापकता इस के विभिन्न रूपों से सहज ही व्यक्त होती है। मनुष्य की अनन्त वासनाओं के कारण इसके भेदों की संख्या निश्चित नहीं की जा सकती । इसके भेद भी अनन्त हैं । किसी को अपनी विद्या का अहंकार है तो कोई अपने हुसन(सौंदर्य) पर इतरा रहा है।किसी को उच्च कुल में जन्म लेने से कुलीनता का गर्व है तो किसी को धन पर । किसी को अपनी भक्ति पर अभिमान है तो किसी को अपनी शक्ति पर नाज है।भाव यह है कि यह सारा संसार इस अहंकार के जाल में बन्धा हुआ है। इस तरह से इस अहंकार के विभिन्न रूप हो सकते हैं फिर भी स्थूल दृष्टि से 'गुरु प्रताप सूरज' में वर्णित अहंकार के विभिन्न रूपों को निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है :-

1 - विद्या का अहंकार , 2- जाति का अहंकार , 3-वंश का अहंकार, 4-धन-सम्पति अहंकार, 5- तप का अहंकार, 6- शक्ति का अहंकार आदि । गुरु प्रताप सूरज में उक्त विभिन्न प्रकार के अहंकारों के सरुपों पर प्रकाश डालते हुए इन्हें सांसारिक बन्धनों का कारण बताया गया है।

(1) <u>विद्या का अहंकार</u> : अधिक ज्ञान की प्राप्ति अहंकार का कारण बनती है। वास्तव में ज्ञान यदि प्रभु के माहात्म्य का हो तो ठीक है अन्यथा वेद शास्त्र आदि का अध्ययन कर लेने एवं विभिन्न शास्त्रार्थों में विजेता घोषित होने से तो विद्यागत

158- गु॰ प्र॰ सू॰ रि 5, अंशु 41, पृ॰ 5655

अहंकार बढ़ता है। यदि वास्तविक ज्ञान प्राप्त किया जाये तो व्यक्ति आत्म तत्व को पहचान कर 'मोक्ष' प्राप्त कर सकता है।श्रवण, मनन, निधियासन द्वारा उसे आत्म तत्व को पहचान हो सकती है परन्तु होता क्या है? विभिन्न ग्रंथों के अध्ययन का बोझ उठाये मनुष्य अपने को ही ब्रह्म ज्ञानी समझने लगता है। 'गुरु प्रताप सूरज' में ऐसे ही पंडित वर्ग का प्रतीक विद्याभिमानी वेनी पंडित[159] का गुरु जी कल्याण करते हैं । जो पुस्तकों उसका अहंकार दूर करते हुए गुरु जी कहते है कि शास्त्रार्थ से तो केवल अहंकार बढ़ता है। वास्तविक पंडित वही है जिसे दरगाह में सम्मान मिले[160] ।ऐसे ही अहम् ब्रह्म का उपदेश देने वाले एवं अशेष विद्याओं को ~~जाम्न~~ जानने वाले एक ब्राह्मण पंडित ने अजगर रूप धारण कियाहुआ था और जो अपने कल्याण के लिए पूर्व जन्म की कथा कहता है।प्रभु हरिराय उसका उध्दार करते हैं।[161] इसी तरह गुरु अर्जुन देव जी सता बलवंड[162] और ब्रह्म-ज्ञानी[163] भाई कान्हा का भी अहंकार दूर करते हैं ।

(2)<u>जाति का अहंकार</u> : ~~जब मुरु अमर~~ 'गुरु प्रताप सूरज' में गुरु अमरदास का जाति अभिमानी ब्राह्मणों और क्षत्रियों के जातिगत अहंकार को दूर करने का उल्लेख मिलता है।[164] गुरु गोबिन्द सिंह भी जाति अभिमानी पं॰ केशोदास के अहंकार को दूर करते है।[165]

वास्तव में जाति भेद का अहंकार मानवीय सृष्टि है। ईश्वर ने किसी को भी उंचा-नीचा नहीं बनाया ।उन्होंने तो सब में अपनी ज्योति समान रूपसे ही रखी है। ब्राह्मण

159- गु॰प्र॰सू॰रा 1, अंशु 62, अंक 30-31, पृ॰ 1596

160- वही , मुखवाक , मलार महला 3, घरु 2, पृ॰ 1596

161- वही , रा॰ 9, अंशु 4, अंक 26-27, पृ॰ 3560

162- वही , रा 3, अंशु 44, अंक 50, पृ॰ 2099

163- वही , रा 3 अंशु 46, अंक 26, पृ॰ 2113

164- दिज खत्री सु जाति अभिमानी।भये इकत्र दुरजन अनजानी।। 41 ।।

— गु॰प्र॰सू॰रा॰ 1, अंशु 44, अंक 41, पृ॰1505

165- वही , रि॰ 3 , अंशु 12, अंक 27, पृ॰ 4965

यदि 'ब्रह्म' को नहीं जानता तो वह ब्राह्मण कैसा[166] ?इसी तरह क्षत्रिय यदि रण क्षेत्र से भाग जाये तो वह क्षत्रिय कैसा ? यदि धर्मानुसार कर्तव्यपालन किया जायेतो जाति प्रथा समाज का उपकार कर सकती है।

(उ) <u>वंश का अहंकार</u> : किसी उच्च कुल में या गुरु वंश में उत्पन्न होने से कोई ऊंचा नहीं हो जाता या गुरु पदवी का अधिकारी नहीं हो जाता । गुरु नानक ने अपने पुत्रों को गुरु गद्दी नही दी। इस तरह गुरु अगंद जी ने भी अपने पुत्रों को अयोग्य समझाते हुए अपने सेवक अमरदास को गुरु पदवी प्रदान की । दातू और दासू के हृदय अहंकार से भरे थे ।जो पिता की आज्ञा का भी तिरस्कार करते हैं । वे गुरु पद के कैसे ~~अयोग्य~~ योग्य हो सकते हैं[167] ?

इसी तरह जब श्री गुरु रामदास के सम्बन्धी उन्हें मिलने के लिए आते हैं तो वे अपने क्षत्रिय वंश के अभिमान के कारण गुरु अमरदास को नमस्कार नहीं करते[168] । एक ठाकुर पूजक पाखंडी ब्राह्मण अपने को ब्रम्म ब्राह्मण वंशी होने के कारण श्रेष्ट मानता है तथा क्षत्रिय वंशी गुरु जी को अपने से निम्न स्थान का मानता है। तब गुरु जी उस के पाखंड का खंडन करते हुए कहते है—

सो पंडितु गुर सबद कमाइ ।त्रै गुण की ओसु उतरी माइ ।।
चतुर वेद पूरन हरि नाइ ।नानक तिसकी सरणी पाइ ।। 4 · 6 · 17 ।।[169]

वह पंडित बाद मे गुरु जी का सिक्ख बन कर अपने जाति के अहंकार को नष्ट कर देता है। गुरु जी को पूर्ण अवतार मानने लगता है। गुरु जी को जब पता चलता है कि चन्दू ने अपने को उच्च जाति का कुलीन माना है और हमें निम्नकोटि का क्षत्रिय माना है तो उसका अहंकार दूर करने के लिए वह सगाई वापिस कर देते हैं[170] ।

166- सो ब्रहमन जिन ब्रहम पछान्यो, सभि घट महि इक पूरन जान्यो।। 38 ।।
— गु · प्र · सू · रा · 3, अंशु 61, पृ · 2185

167- वही रा 1, अंशु 18, अंक 17, पृ · 1390

168- वही रा 1, अंशु 51, अंक 51 तथा 55, पृ · 1545

169- वही , श्रीमुखवाक , पृ 2023

170- वही , रा 4 , अंशु 3, अंक 8, पृ · 2238-39

(4) धन सम्पति का अहंकार : भौतिक सुखों की प्राप्ति धन सम्पति से होती है। जिन पास इन की अधिकता रहती है वे प्रायः वैभवान्ध हो कर किसी अन्य को अपने जैसा समझते ही नहीं । उन्हें अपने धन और सम्पति का ऐसा अहंकार हो जाता है कि वे राक्षसी कृत्यों पर भी उतरने में संकोच नहीं करते । वे हरदम दूसरे व्यक्तियों से अपने सम्पतिवान होने के कारण सम्मान सूचक शब्दों में सम्बोधित होना चाहते हैं। वे इस अहंकार की दावाग्निमें जल कर अपने मनुष्य जीवन को व्यर्थ गवा लेते हैं। ऐहिकता को जुटाने के लिए पारमार्थिकता की सोच उन्हें होती ही नही । वे यह नहीं जानते कि ये सब धन, सम्पति वैभव क्षण-भंगुर हैं ।

'गुरु प्रताप सूरज' में भाई गंगों शाह के ऐसे धन सम्बन्धी अभिमान का चित्र प्रस्तुत किया गया है जिसे धन के अहंकार ने ईश्वर को भूला दिया और लोभ में पड़ कर अनेक कष्ट सहन करता है।[171] जिस के पास धन आ जाता है उसे अन्य की सुधि ही नहीं रहती । वह इसी मद में दीवाना हो जाता है, उसे योग्य अयोग्य का भी ध्यान नहीं रहता । पृथिया जब गुरुगुरु गदी के लिए पिता से झगड़ा करता है और अपने धन के अहंकार के कारण धन देकर निकटवर्ती बल से मिलकर गुरगदी अपने अनुज से छीनना[172] चाहता है और अपने ही भाई को दुःखी करना चाहता है और पिता के प्रति भी रोष व्यक्त करता है तब गुरु रामदास जी कहते हैं -

काहे पूत झगरत हउ संगि बाप ।।
जिन के जणे बडीरे तुम हउ नि सिउ झगरत पाप ।। । ।। रहाउ
जिस धन का तुम गरबु करत हउ सो धन किसहि न आप ।
खिन महि छोडि जाइ बिखिआ रस तउ लागे पछुताप ।[173]

पृथिए जैसे मनमुख को धन के अहंकार के वंश होकर जीवन भर प्रायश्चित करना पड़ता है।

171- गु॰ प्र॰ सू॰ रा॰ 1, अंशु 54, अंक 27-28, पृ॰ 1558

172- वही रा॰ 2, अंशु 22, अंक 40, पृ॰ 1733

173- वही , श्री मुखवाक , सारंग महला 4, घरु 3, दुपदा ।

सम्पति (भूमि का स्वामित्व) भी अहंकार का कारण है। इसके उदाहरण स्वरुप कौड़े और महाराज के राहकों का चित्र प्रसतुत किया गया है जिन्हें भूमि के स्वामित्व का अधिक अहंकार[174] था । उन्हें गुरु जी का यही सन्देश मिलता कि सिक्खी के पद को प्राप्त करने के लिए अहंकार त्याग परमावश्यक[175] है।

(5) तप का अहंकार : तप का अहंकार साधक के आध्यात्मिक पथ मेंबाधक कहा गया है । इसके कारण साधक को वास्तविक शक्ति कीप्राप्ति नहीं हो सकती । इस के चित्र को 'गुरु प्रताप सूरज' में एक पौराणिक कथा केरुप में प्रस्तुत किया गया है। मंकण मुनि के तप के अहंकार को भागवान शिव दूर करते[176] है ।

गुरु साहिबान से प्रश्नोतर करने के लिए अनेक बार सिध्दों के आगमन का यत्रतत्र गुरु प्रताप में भी उल्लेख मिलता है। जो अपने तप के बल के अनेक चमत्कार दिखाते हैं। परन्तु गुरु उनके अहंकार को सदैव दूर ही करते रहे हैं ।तप के अहंकार में सिध्द भंगर नाथ की जो दशा होती है। उसका हास्यस्पद चित्र भी अवलोकनीय[177] है। ऐसे तप के मद महर्षि नारद का अपमान करने वाले तपस्वी का सर्पयोनि से श्री हरिगोबिन्द जी उध्दार करते[178] हैं ।

(6) शक्ति का अहंकार : बल के अहंकार में मदमस्त दैतयों की अनेक कथाएं हमारे पुराण साहित्य में मिलती हैं। इसी से दो करुक कथांए 'गुरु प्रताप सूरज' में भी वर्णित है। मधुकैटभ, बाली, रावण,[179] दर्योध,न , आदि का अहंकार प्रभु[180] दूर करते हैं । श्री गुरु अर्जुन

174- गु॰ प्र॰ सू॰ रा॰ 10, अंशु 5, अंक 21, पृ॰ 3788

175- वही अंक 31, पृ॰ 3788

176- वही रा 1, अंशु 45, अंक 29-44, पृ॰ 1515-16

177- वही , रा 5, अंशु 35, अंक 2-6, पृ॰ 2645

178- वही , रा॰ 3, अंशु 9, अंक 8 -11, पृ 1929

179- वही रा 1, अंशु 47, अंक 1553 , पृ॰ 1522-28

180- वही , रा 3, अंशु 18, अंक 21-24, पृ॰ 1975-76

इसी आधार पर पृथिया को समझाते है कि बलवान बन कर अहंकार करने वाले यदि अनीति पर चेले तो उनके अहंकार का दूरीकरण उक्त उदाहरणों की तरह प्रभु स्वयं करते हैं[181]। पैदे खां के अहंकार को दूर करने का एक स्थान पर उल्लेख हुआ है। प्रभु को अहंकारी का अहंकार दूर करने की बान पड़ी हुई है। अतः शक्ति का अहंकार त्याग कर सद्गुरु की शरण में जाना चाहिए जिससे सदगति प्राप्त हो सके। अन्यथा बिना त्याग के अनेक कलेश और जन्ममरण के अशेष कष्ट सहन करने पड़ते हैं[182]।

अहंकार के दुष्परिणाम : यह अहंबुद्धि ही मनुष्य के बन्धन, जन्म मरण एवं दुःख प्राप्ति की मूल कारण कही गई है[183]। वेद शास्त्र का अध्ययन, जप, तप, ज्ञान, योग, दान, पुण्य, तीर्थ स्नान आदि सभी कर्म हमें इस अहंकार की चार दिवारी से बाहर नहीं निकलने देते। इन से सद्गुरु ही छुटकारा दिला सकता है जो हमें इनकी मूलभावना का ज्ञान कराता है। हमें आत्म तत्व को जानने की प्रेरणा देता है।

3- जीवात्मा का स्वरूप

जीव विषयक कल्पना भारतीय दर्शन की उदात्त कल्पना है। जीव सच्चिदानन्द रूप ब्रह्म का एक अंश है। वह स्वरूपतः चेतन है। जीव परमात्मा की सर्वोत्कृष्ट सृष्टि है। इसमें सुख दुःख अनुभव करने की शक्ति तथा चेतना है। जीव नित्य है। उसके जन्म मरण का व्यवहार उसके देह सम्बन्ध और देह वियोग का ही द्योतक है। चित, मन, बुध्दि, पंचेन्द्रिय और पंच प्राण स्वयं में जड़ अथवा अव्यक्त के ही भाग हैं। इनमें अपनी गति नहीं होती है। ये सभी जीवात्मा की गतिशक्ति से सम्प्रेरित होते हैं।

जीवात्मा निरूपण की परंपरा : जीवात्मा-विषयक सर्व प्रथम धारणा हमें ऋग्वेद में मिलती है[184]।

181- गु॰ प्र॰ सू॰ रा॰ 8, अंशु 8, अंक 35-37, पृ॰ 3340

182- वही, रि॰ 5, अंशु 4। अंक 41, पृ॰ 5654

183- बड़े अहंकारिआ नानक गरब गले। — आदिग्रंथ, सुखमनी, महला 5, पृ॰ 278

184- 'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वात्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति।
— ऋग्वेद : 1॰164॰20

इस में आत्मा खाने वाला पक्षी और परमात्मा देखने वाला पक्षी है। इन दोनों को एकता का प्रतिपादन [redacted] उपनिषद् साहित्य में किया गया है।

उपनिषद् साहित्य में प्रतिपादित विचारधारा ही आगे चल कर सभी विचार - धारणोओं की स्रोत बनी ।उपनिषदों में आत्मा विषयक तीन प्रश्नों पर गंभीर विचार हुआ है। (1)आत्मा का स्वरूप क्या है ?(2) क्या आत्मा इसी जीवन काल तक रहता है या इसके उपरांत भी उसका निवास है ?(3)आत्मा की कितनी अवस्थाएं हैं?

प्रथम औरद्वितीय प्रश्न का विवेचन 'कठोपनिषद्' में अत्यन्त व्यापकता के साथ हुआ है। कठोपनिषद् के अनुसार आत्मा,अजर,अमर ,सर्वव्यापी बताकर कहा है कि आत्मा नित्य वस्तु है,न कभी वह मरता है,न कभी अवस्थादि कृत दोषों को प्राप्त होता है।इसमें एक रुपक द्वारा आत्मा के स्वरूप का भी सुन्दर परिचय दिया गया है:-

आत्मानं रथिनं विध्दि शरीरं रथमेव मु ।
बुध्दिं तु सारथिं विध्दि मनः प्रग्रहमेव च ।। 3 ।।
इन्द्रियाणि हयानाहु विषयान् तेषु गोचरम् ।
आत्मेन्द्रिय मनोयुक्त भोक्तो त त्याहुर्मनीषिणः ।। 4 ।।[185]

शरीरादि का समस्त व्यापार रथी आत्मा के हेतु है। अतः आत्मा ही श्रेष्ठ है। 'माण्डूक्य' उपनिषद् आदिमें आत्मा को 'चतुष्पात् ' कहा गया है — वैश्वानर,तैजस, प्राज्ञ और आत्मा।[186] इन से [redacted] सम्बन्धित जीव की चार अवस्थाओं का वर्णन हमें लिंग पुराण में भी मिलता है।शुध्द आत्मा को 'तुरीय' कहा जाता है और जागृत,स्वप्न तथा सुषुप्ति आदि तीन अवस्थाएं अभिमानी जीव[187] की है।

श्रीमद् भगवद् गीता के द्वितीय अध्याय में जीवात्मा का विशेष निरुपण मिलता है।

185- कठोपनिषद् , 2 · 3 · 4 तथा आदिग्रंथ,आसा की वार,सलोक महला 1,पृ ·470

186- माण्डूक्य उप · ,मन्त्र 2-7 और उन पर शां · भा '

187- जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिश्च तुरीयं चाधिभौतिकम् । — लिंग पुराण, 1 · 86 · 72

उसे षड्विकारों से रहित माना गया है। 188

न्याय औरर और वैशेषिक दर्शन में आत्मा को द्रष्टा, सर्वज्ञ, नित्य सर्वव्यापक, माना गया है । आत्मा शरीर, ज्ञानेन्द्रिय, मन, चेतना के प्रकार से पृथक वस्तु है। इसका अनुभव मानसिक अनुभति द्वारा हो सकता है। परन्तु आत्मा एक नहीं , अनेक है। प्रत्येक शरीर में भिन्न भिन्न आत्मा है।

विज्ञान भिक्षु ने सांख्य सूत्र(1 · 62) की व्याख्या में लिखा है कि अन्तःकरण में प्रतिबिम्बित चेतन जीव है। जो देह में अभिमानी बन कर अधिष्ठित है और शुभाशुभ कर्मो को करता है और भोगता है। सांख्य के अनुसार जीवात्मा अनेक है। वह मध्यस्थ है। वह सुख दुःख की अनुभूति का साक्षी होता हुआ भी सुख दुख का स्वरुप नहीं है। इस लिए वह कर्ता द्रष्टा या अधिष्ठाता रहता हुआ भी 'मध्यस्थ' कहा जाता है [189]

योगमतानुसार जीवात्मा स्वभाव से शुध्द चैतन्य स्वरुप है। यह शरीर के बन्धों और उ मन के विकारों से मुक्त रहती है परन्तु अज्ञान कारण 'चित' के साथ एकता कल्पित कर लेती है। 'चित' स्वभाव वश ष जड़ है परन्तु आत्मा के निकटतम सम्पर्क में रहने के कारण आत्मा के प्रकाश से प्रकाशित हो जाता है [190] ।

मीमांसा दर्शन में आत्मा परमात्मा से भिन्न है और एक न होकर अनेक है। आत्मा न अणु है न मध्यम परिमाण वाला अपितु विभु है। एक देश काल से अपरिछिन्न व्यापक सता है। परन्तु वेदान्त दर्शन में आत्मा एक है, अद्वैत है। उसका स्वरुप स्वतः वह स्वयं प्रकाश रुप है । आत्मा ब्रह्म और मोक्ष सभी ~~सच्चिदा~~ सचिचदानन्द स्वरुप हैं। केवल उपाधि विशिष्ट चेतन दो भागों में व्यष्टि और समष्टि रुप व्यावहारिक

188-(क) न जायते म्रियते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता न भूयः
अजो नित्यः शाश्वतो यं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे । – गीता, 2 · 20

(ख) य एनं वेति हंत्तार श्यचै नं मन्यते हतम् ।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हंति न हन्यते । – गीता , 2 · 19

189- पं · उदय वीर शास्त्री : सांख्य सिध्दांत , पृ · 131 (द्वितीयावृति)

190- डा · सतीश चन्द्र चट्टोपाध्याय : भारतीय दर्शन , पृ · 188

विभाग में विभक्त होकर जीव और ईश्वर नाम से पुकारे जाते हैं। निरुपाधि रुप में दोनों परमार्थतः एक है ।

इस विवेचन से स्पष्ट है कि भारतीय दार्शनिक परंपरा में आत्मा का स्वरुप स्पष्ट करने का प्रयास होता रहा है। भारतीय विचार धारा के अनुसार आत्मा और परमात्मा में कोई भेद नहीं है। परमात्मा की भान्ति आत्मा भी नित्य, मुक्त, अनन्त अजर, अमर और अविनाशी है । अविद्या या अज्ञानता के कारण मनुष्य की बुध्दि में विकार उत्पन्न हो जाता है । और जब जीवात्मा अपने आप को परमात्मा से पृथक शरीर-बध मानने लगती है। दुःख सुख भोग कर जीवन यात्रा समाप्त कर देती है। आत्मा को अपने स्वरुप का ज्ञान प्राप्त होने पर मोक्ष की प्राप्ति होती है।

आदि ग्रन्थ में जीवात्मा का स्वरुप

आदि ग्रंथ में संकलित वाणी भारतीय परंपरा में विकसित विचारधारा को ही प्रकाशित करती है । गुरु साहिबान ने यद्यपि किसी निश्चित पध्दति का आश्रय ग्रहण कर जीवात्मा के स्वरुप का वर्णन नहीं किया है तथापि उनकी आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति में भारतीय दर्शन के विभिन्न विचार संकलित हो गए हैं । वे आत्म-ज्ञान के लिए उपदेश देते हुए जिज्ञासु को प्रेरित करते हैं कि आत्म तत्व को जान लेने वाला परमात्मा रुप हो जाता है क्योंकि परमात्मा रुपी अमृत के वृक्ष पर जो फल लगते हैं वह भी अमृत रुप ही होते हैं । जिन्होंने उसअमृत रुप फल का आस्वादन किया है वे सत्य स्वरुप परमात्मा में ही विलीन हो जाते हैं । उनके भ्रम और भेदमिट जाते हैं । द्वैत भावना नष्ट हो जाती है? उनकी जिह्वा हरि रस में रसलीन हो जाती है।[191]

191- जिनी आतमु चीनिआ परमातमु सोई ।
एको अमृत बिरखु है फलु अंमृत होई ।
अमृत फलु जिनी चाखिआ सचि रहे अघाई ।
तिंना भरमु न भेदु है हरि रसन रसाइ ।।

— आदि ग्रंथ - आसाराग , अष्टपदी, 20 · 5-6

गुरु द्वारा साधक आत्म तत्व को पहचानने में समर्थ होता है।[192] आत्म ज्ञान के महत्व प्रतिपादन को विचारधारा का मूल स्रोत औपनिषदिक विचार धारा हो है[193]। इसो विचार धारा से आदिग्रंथ के वाणोकार प्रभावित थे । वे भी जोवत्मा को परमात्मा का अंश स्वीकार करते ह् । गोता और उद्वैत वेदान्तियों के विचारानुसार अंश अंशी सम्बन्ध का आदि ग्रंथ में भी प्रतिपादन[194] हुआ है । इस से यह स्पष्ट है कि वे जीवात्मा और परमात्मा को एकता एवं अभेद में अटूट विश्वास रखते[195] थे । आत्मा परमात्मा में और परमात्मा आत्मा में लोन है।[196] पंच महाभूतों से निर्मित इस शरोर में राम रत्न अथवा परमात्मा का अंश विद्य-मान है।[197]

192- नानक आपे आपु पछाणें गुरमुखि ततु विचारी ।

— आदि ग्रंथ ,तुखारी ,छंत 4 · 4

193- आत्मा वा अरे श्रोतव्य दृष्टव्य - - - - - ।

— वृहदारण्यक उपनिषद, 2 · 4 · 5

194- निरमल काइआ ऊजल हंसा ।

तिसु विच नामु निरंजन अंसा ।।

— आदि ग्रंथ , मारु सोहले 14 · 6

195- आतमा परमातमा एको करै ।

अन्तरि को दुबिधा अन्तरि मरै ।

— आदि ग्रंथ , धनासरी ,पदे 4 · 1

196- (क) सागर महि बूंद महि सागरु कवणु बूझे विधिजाणै ।

— आदि ग्रंथ , रामकलो , पदे 9 ।

(ख)जिउ जल तरंग फेनु जल होई है सेवक ठाकुर भए एका ।

— वही , सारंग महला 5, पृ · 1209

(ग) गु · प्र · सू · रा · 1, अंशु 28, अंक 6

197- (क) पंच ततु मिलि काइआ कीनो । तिस महि राम रतनु लै चीनो ।

आतम रामु राम है आतम हरि पाईऐ सबदि वोचार है ।

— वही , मारु सोहले 10 · 7

(ख) ऐ सरीरा मेरिआ हरि तुम महि नोति रखी ता तू जग महि आइआ।

— वही ,अनन्दु , रामकली , 33

दशम् ग्रंथ में जीवात्मा का स्वरुप

दशम ग्रंथ में जीवात्मा और परमात्मा में अंश अंशी भाव स्पष्ट किया गया है। समस्त जीव परमात्मा से उत्पन्न होकर अन्त में उसी में विलीन हो जायेंगे ।

जितिक जगति के जीव बखानो ।
एक जोत सभै ही महि जानो ।।
काल रुप भगवान भनै वो ।
ता महि लीन जगति सब ह्वै वो[198] ।।

गुरु गोबिन्द सिंह पुर्नजन्म में भी विश्वास व्यक्त करते है । वे स्वयं ईश्वर की प्रेरणा से दुष्टों के संहार निमित जन्म धारण करते है ।

'गुरु प्रताप सूरज' में जीवात्मा का स्वरुप

'गुरु प्रताप सूरज' में जहां एक ओर भारतीय दार्शनिक विचारधारा की छाप अंकित है वहां दूसरी ओर 'गुरमत दर्शन, के प्रतिपादक उक्त ग्रंथों के भावों की अद्वितीय माला भी मिलती है जिसे धारण कर जीवात्मा परमात्मा के साथ साक्षात्कार करने में समर्थ हो सकती है। भाई सन्तोख सिंह ने आत्मा को सत्चित और आनन्द स्वरुप मानते है ।

तन कूरा सम बसत्र लखे हो।जीरन भए अपर धरि लै हो ।। 10 ।।
ताते तन पट पहिरहि जोइ ।अपन सरुप जानीयहि सोइ ।
कबहूं मरहि न मारयो जाइ ।जल डूबे नहिं आगनि जलाइ ।। ।। ।।
तन झूठा, सति रुप तुमारा ।तन दुख, तुम हो अनंद उदारा ।
तन जड़ है, चेतन निज रुप । अस निशचै उर धरहु अनुप'[199] ।। 12 ।।

198- श्री दशम ग्रंथ , चौबीस अवतार , चौ 22

199- (क) गु॰ प्र॰ सू॰ रा 1, अंशु 18, पृ॰ 1714

(ख) वही , रा 1 , अंशु 12, अंक 4-7, पृ॰ 1358

इसी आत्मा के संसर्ग से शरीर में चेतनता आती है। इस के अविनाशी स्वरूप पर यहां गीता के प्रभाव की छाप है वहां उस परमतत्व के सहज स्नेही चिरपरिचित एवं संघाती स्वरूप पर औपनिषदिक विचारधारा का प्रभाव देखा जा सकता है। उसके स्वरूप, उसकी अवस्थाओं, विभिन्न शरीरों, पंच कोशों, मुक्ति के प्रकारों आदि सभी में औपनिषदिक प्रभाव स्पष्ट प्रतीत होता है। उन्होंने 'आत्मपुराण' का अनुवाद भी किया था। उसके भावों की छाप भी 'गुरु प्रताप सूरज' में अंकित है। उनका अनूदित यह ग्रंथ अभी तक उपलब्ध नहीं हो सका है।

जीवात्मा परमात्मा के 'हुकम' से इस संसार में अवतरित होकर कर्मजन्म, सुख दुःख भोक्ता है। परन्तु उसके शुभाशुभ कर्मों के अनुसार फल भोग का नियामक ईश्वर है।

चेतनता जीवनु कहु होई। क्रिया करति जिससे सभि कोई।
दुख सुख ते ह्वै विषय महाने। इस महि करन हेतता जाने।। 18 ।।[200]

: यह विचारधारा आदि ग्रंथ (सूही महला 5, घरु) में प्रतिपादित विचारधारा की व्याख्या के रूप में प्रस्तुत की गई है। अब वेदान्तिक विचारधारा का प्रभाव देखिए इसमें जीव परवश और अल्पज्ञ हैं। ईश्वर ही सर्वज्ञ हैं। ब्रह्म का प्रतिबिम्ब ईश्वर और जीव दोनों में पृथक रूप लिए हुए है।

वाच दुहनि को भिन्न पछानो। जीव वाच अलपग्ग महानो।
ईश्वर वाच्य अहै सरवग्य। जानति नीके जोई तत्तग्य।।[201]
इक उज्जल इक ताल मलीन। रवि प्रतिबिम्ब दुहिन महि चीन।
जल मलीन महि मैलो भासे। उज्ज्वल हुई उज्जल जल आशे।। 44 ।।
शुध्द सतोगुन माया माहिं। ब्रह्म प्रतिबिंब सु ईश्वर आहि।
मलिन अविद्या तम गुण विखे। ब्रह्म प्रतिबिंब जीव तिह पिखे।। 45 ।।

---

200 - गु॰ प्र॰ सू॰ रा॰ 27, अंशु 35, अंक 18, पृ॰ 1787

201 - वही, रा 5, अंशु 46, अंक 43-45, पृ॰ 2695

अन्यत्र भी उन्होंने इस भाव को व्यक्त करते हुए जीव को परतन्त्र , दुःखी और गुणहीन बताया है। परन्तु इस जीव की ब्रह्म से एकता कैसे स्थापित हो ?इस समस्या पर प्रकाश डालते हुए लक्षणा द्वारा जीव और ब्रह्म को एकता का प्रतिपादन करते है और कहते है कि दोनों में इसके द्वारा 'सत् चित् आनन्द' को अनुभव किया जा सकता है।[202] उन्होंने तत्वमसि'के वेदान्तिक निरूपण द्वारा दोनों की एकता स्थापित करने का प्रयास किया है[203] ।

आत्मा की अणुता एवं परिच्छिन्नता

जीव के स्वरूप में तत्वज्ञों (सांख्य एवं उपनिषद् दर्शन के व्याख्याकारों) के विचार अनुसार भाई सन्तोख सिंह प्रतिबिंबवाद में आस्था रखते हैं। जैसे मलीन जल में सूर्य का प्रतिबिंब मैला भासताहै वैसा ही उज्ज्वल जल में उज्ज्वल।यह जीवात्मा तमोगुणी मलीन अविद्या के कारण ब्रह्म का प्रतिबिंब कही जाती है और सतोगुणी शुध्द माया में ब्रह्म का प्रतिबिम्ब ईश्वर कहलाता है। इस से स्पष्ट होता है कि जीव ब्रह्म का प्रतिबिंब हैं। जीव औरजगत को सता अस्वतन्त्र है। दोनों ही माया के वशवर्ती है ।यह जीवात्मा हृदयाकाश में अंगुष्ठ परिमाण रूप में निवास करता है। वह शरीर से सदैव पृथक रहता है। इस परिच्छिन्न सूक्ष्म आत्मा को बुध्दि द्वारा जानना चाहिए क्योंकि उसमें ब्रह्म का प्रतिबिम्ब पड़ता है। इस तरह जड़ बुध्दि में चेतन ब्रह्म के प्रतिबिंब से दोनों के धर्म मिलकर एक जैसे हो गए हैं। परन्तु विशुध्द बुध्दि में ही आत्मा का साक्षात्कार होता है। जब बुध्दि बाह्य कृतियों से प्रभावित हा रहती है तब वह इस दिशा में प्रवृत नहीं होती । मन सहित समस्त इन्द्रियां आत्मा की प्रवृति को ब्रह्म विषयों की ओर सदा आकृष्ट करती रहतीहै ,उनका निरोधकर उसे विशुध्द अमृत आत्मा को जानना चाहिए। भाई सन्तोख सिंह ने इन्हीं विचारों को 'गुरु प्रताप सूरज' में इस प्रकार से प्रस्तुत किया हैः-

---

202- वेदान्तसार : पृ॰ 71-82

203- गु॰ प्र॰ सू॰ रि॰ 5, अंशु 49, अंक 23-31, पृ॰ 5701-3

उर महि नभ अगुंषट प्रमान ।जीवातम को वास पछान ।
बुध्दि महिं प्रति बिम्बति भा ब्रह्म ।जड़ चेतन मिल भे एक धरम।
मन साधन संकलप करन को ।अति चंचलता करहि धरन को ।
रवि के अग्र तिरवरा जैसे ।मन सरूप सुखम लखि तैसे ।
इन्द्रै ग्यान उपावन हारो ।मन ते बिना न अपर विचारो ।
तुच के संग सपरश होइ मन ।पंचहु ग्यान उपावन ततछिन ।।[204]

देह विशेष में सीमित इस अधु रूप जीवात्मा के स्वरूप विश्लेषण पर स्पष्ट रूप से औपनिषदिक छाया ही[205] नहीं देखी जा सकती प्रत्युत उन्हीं विचारों का काव्यमय करने में भी इस महाकवि ने अपने काव्य कौशल का परिचय दिया है। उक्त पद्यांश श्वेताश्वतर उपनिषद् की निम्न पंक्तियों का काव्यानुवा प्रतीत होता है :

अगुंष्ठमात्रो रवितुल्य रूपः संकल्पाहंकार समन्वितो यः
बुध्देर्गुणेनात्मगुणेन चैव आराग्रमात्रो ह्यपरो पिदृष्टः ।। 8 ।।
बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च ।
भागों जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते[206] ।। 9 ।।

ऐसे आत्मपरिमाण सम्बन्धी वर्णन आत्मा के सूक्ष्मातिसूक्ष्म अणु परिमाण अथवा परिच्छिन्न परिमाण की ओर संकेत करते हैं ।सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त होने पर इसे 'विभु'[207]कहा जाता है।समाधि द्वारा बुध्दि में सत्वसमुद्रेक होने पर मस्तिष्कगत हृदय देश में आत्मा का साक्षात्कार योगी जन करते हैं । उसके होने पर परमात्मा का साक्षात्कार हो जाता है ।

204-गु॰ प्र॰ सू॰ रि॰ 5,अंशु 50,अंक 21-24,पृ॰ 5708-9

205- कठोपनिषद् : वल्ली 1, 12-13

206- श्वेताश्वतर उपनिषद् , अध्याय,5पृ॰ 224-25(गीता प्रेस)

207- वि॰ चू॰ 220, 223

त्रिविध शरीर और पंचकोश : गुरु प्रताप सूरज में वेदान्त प्रतिपादित जीव के त्रिविध शरीरों – स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर, कारण शरीर[208], और सत्व आदि गुणों से घिरे पंच-कोशों –[209] अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनन्दमय कोशों की ओर भी संकेत किया गया है। यह पांच कोश ही त्रिदेह है। स्थूल शरीर पूर्ण स्थूल अन्नमय कोश एवं अल्प स्थूल प्राणमय कोश का संयुक्त रूप है । अंशतः सूक्ष्म प्राण मय कोश, मनोमय कोश और विज्ञानमय कोश तीनों मिलकर सूक्ष्म शरीर हैं। कारण शरीर ही आनन्दमय कोश है । इन तीनों शरीरों और इन की तीनों अवस्थाओं से परे जो चतुर्थ अवस्था या दिव्य शरीर है वह इन पांच कोशों से मुक्त है। युक्त योगी अपने ज्ञानबल से पांचों कोशों एवं तीन शरीरों और विविध अवस्थाओं को पार कर इस जीवन में भी ब्रह्म-सुख की अनुभूति कर सकता है। भक्त के लिए यह दशा और भी सुलभ है ।

चतुर्विध अवस्थाएं : भाई सन्तोख सिंह के अनुसार देहाभिमान की दृष्टि से जीव की चार अवस्थाएं है – जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय[210]। प्रथम तीन अवस्थाएं अभिमानी जीव की है। चौथी अवस्था (तुरीया) अभिमानी मुक्त जीव की है। जाग्रदावस्था के इन्द्रियां और मन दोनों कार्यशील रहते हैं । स्वप्नावस्था में इन्द्रियों का कार्य बन्द हो जाता है, केवल मन (स्वतेजसा) कार्यशील रहता है। सुषुप्ति दशा में मन का कार्य बन्द हो जाता है परन्तु वह अविद्या रूप में वहां विद्यमान रहता है। तुरीयावस्था में मन ही समाप्त हो जाता है और चैतन्य अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है। इन चार आवस्थाओं के अनुसार जीव भी चार प्रकार के हैं – विश्व, तैजस, प्राज्ञ और तुरीय।[211]

208- वि॰ चू॰ 89-93, 98-103, 122-123 तथा गु॰ प्र॰ सू॰ रि॰ 5, अंशु 42, अंक 14-15, पृ॰ 5657

209- (क) तै॰ उप॰ ब्र॰ वल्ली, अनु॰ 1-5, पंचदशी प्र 3 (पंचकोश विवेक प्रकरण)

(ख) गु॰ प्र॰ सू॰ रि॰ 5, अंशु 42, अंक 26, पृ॰ 5659, वि॰ चू॰ 156-190

210- गु॰ प्र॰ सू॰ रि॰ 5, अंशु 42, अंक 13-18, पृ॰ 5657-58

211- वही , पृ॰ 5657, सि॰ बि॰ पृ॰ 153, वे॰ सा॰ 5॰ 30, मा॰ उ॰ मन्त्र[4] पर शां॰ भा॰

जीव की विभिन्न योनियां : प्रभु की सृष्टि में अनन्त जीव कर्म पाश में बन्धे अनन्त योनियों में भटकते रहते हैं।[212] शास्त्रों में वर्णित जीव की चौरासी लाख[213] योनियां कही गई है। भाई सन्तोख सिंह जीने इन के प्रति अपना विश्वास व्यक्त किया है।[214] कर्म के अनुसार जीव को योनि प्राप्त होती है। पाप कर्मो के कारण नरक में पड़ता है।[215] पूर्व जन्म के कर्मों अनुसार वासनाओं के अनुरूप जीव शरीर धारण करता है[216] और आवागमन के चक्र में पड़ा रहता है। हरट की टिंडों की भान्ति चक्र काटता रहता है।[217] प्रारब्ध कृत कर्म उसे अवश्य भोगने ही पड़ते है ।

मनुष्य और उसके जीवन की चार अवस्थाएं

मनुष्य योनि को उक्त योनियो में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। वह अपनी चेतनाता के कारण इस योनि में रह कर परमपुरषार्थ द्वारा रह कर मुक्ति प्राप्त कर सकता है। अतः इस योनि को दुर्लभ कहा जाता है किसी किसी को इसकी प्राप्ति होती है[218] । आदि ग्रंथ आदि गुरमत का प्रतिपादन करने वाले ग्रंथों में भी इस की दुर्लभता[219] वर्णन मिलता है। भाई सन्तोख सिंह ने भी इसे अमूल्य माना है :-

---

212- गु॰ प्र॰ सू॰ रा॰ 27, अंशु 18, अंक 2-3, पृ॰ 1714

213-कल्याण : परलोक और पुनर्जन्मांक - विशेषांक, पृ॰ 516

214- गु॰ प्र॰ सू॰ रा॰ 3, अंशु 61, अंक 32, पृ॰ 2188

215- वही , रा॰ 4, अंशु 40, अंक 11, पृ॰ 2394

(ख) वही , रा 4, अंशु 56, अंक 11, पृ॰ 2462

(ग) वही, रा 8 , अंशु 8, अंक 7, पृ॰ 3338

216- वही , रा॰ 10, अंशु 17, अंक 5, पृ॰ 3829

217- (क) वही, रा॰ 2, अंशु 15, अंक 3-4, पृ 1701-2

(ख) वही, रा॰ 4, अंशु 65, अंक 3, 4, पृ॰ 2500

(ग) वही, रा॰ 5, अंशु 7, अंक 20, पृ॰ 2540

218- वही

219-(क) 'माणुस जनमु दुलंभु गुरमुखि पाइआ'- आदि ग्रंथ, सूही , असटपदी 3॰ 1

(ख) 'इहु माणकु जीउ निरमोलु है इउ कउडी बदलै जाइ'- वही, सिरी , पदे, 22॰ 3

मानुख जनम अमोलक रतन। दुरलभ प्रापति हुइ बड जतन।।[220]

इस जन्म को पाकर भी जो प्रभु को भक्ति नहीं करता और अपने जन्म मरण के अनेक कष्टों को सहन करता है उस जैसा दुर्भाग्यशाली इस संसार में कौन हो सकता है।[221] भाई सन्तोख सिंह इसके अनन्त कष्टों का वर्णन करने में अपने को असमर्थ पाते हैं:-

इस जग में सभि जीव दुखारे । बसि अग्यान बन्ध महि भारे ।
अति संकट ते तन को तजै । अघ ते दूत सासना सजै ।। 29 ।।
नाना नरकनि कष्ट भुगावै। अघ फल भुगे वहिर निकसावै ।।[222]

ऐसे दुःखी मनुष्य के जहवन की चार अवस्थाओं[223] – गर्भावस्था, बाल्यावस्था, यौवन-अवस्था, वृद्धावस्था – का उल्लेख भी 'गुरु प्रताप सूरज' में हुआ है । गुरु कृपा से मनुष्य के कर्म-बन्धन कट सकते है। नहीं तो वह इस संसार में कष्ट ही भोगता रहता है। भव-सागर से पार उतरने के लिए उसे गुरु की शरण में जाना ही पड़ेगा ।

<u>मनका स्वरूप</u>

यह संस्कृत का शब्दहै । व्युत्पति अनुसार जिसके द्वारा मनन करने काकार्य सम्पादित हो वह[224] मन है। मन प्राणियों को वह शक्ति है जिसके द्वारा उन्हें वेदना, संकल्प इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, बोध और विचार का अनुभव होता[225] है। यह अदृश्य शक्ति मनुष्य के शरीर का अत्यन्त सूक्ष्म अंश है। पारम्परिक चिन्तन में इसकी सूक्ष्मता व्यक्त है।

220- गु॰ प्र॰ सू॰ रा॰ 4, अंशु 55, अंक 32, पृ॰ 2457

221- वही , रि॰ 3, अंशु 21, अंक 33, पृ॰ 5066

222- वही , रि॰ 5, अंशु 50, पृ॰ 5709

223- वही , रि 5, अंशु 50, अंक 35-51, पृ॰ 5710-11

224- मन्यते अनेन इति मनः ।

225- संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ , पृ॰ 862

पारम्परिक स्वरुप : भारतीय दर्शन ग्रंथों में इसकी विस्तृत चर्चा उपलब्ध है। कठोपनिषद् में इसे इन्द्रियों की लगाम कहा गया है।[226] न्याय दर्शन में मन को एक द्रव्य माना गया है जो आत्मा और जीव से भिन्न है। वैशेषिक में मन को अप्रत्यक्ष द्रव्य मान कर उसके आठ गुणों का उल्लेख किया गया है – संख्या, परिणाम, पृथक्त्व, संयोग आदि। सांख्य में मन को 11वीं उभयात्मक इन्द्रिय माना गया है।[227] योग दर्शन में इसे चित कहा गया है। गीता में इसकी चंचलता पर विशदता से प्रकाश डाला गया है।[228] वेदान्त में अन्तःकरण के चार रुपों (बुध्दि, अहंकार, चित और मन) मेंसे मन चौथा। यह अन्तःकरण संकल्प विकल्पात्मक है।[229] 'गुरु प्रताप सूरज' में इसके चारों रुपों पर वेदान्तानुसार प्रकाश डाला गया है।[230] योग वासिष्ठ में मन को सर्वशक्तिमान मानकर उसकी अद्भुत शक्तियों का विस्तार से वर्णन किया गया है।[231] मन ही जगत का कर्ता है, यह विश्व मनोमय है। यह कुछ सहज प्रवृतियों से प्रेरित होता है। जैसे आहार, निद्रा, भय, मैथुन। ये प्रवृतियां सभी प्राणियों में समान रुप से पाई जाती हैं। भौतिक दृष्टि से प्रथम तीन का सम्बन्ध जीव की आत्मरक्षा से है और अन्तिम का आत्मविस्तार से। आदि ग्रंथ में वर्णित मन से सम्बन्धित चिन्तन भी भारतीय वेदान्तिक चिन्तन पध्दति के काफी समीप है। 'सध्दि गोसटि' में अहंकारमय मन को हाथी बताया गया है।[232] आसा राग' की एक अष्टपदी में इसे दीवानेपन की चर्चा हुई है:-

---

226- कठ. उप. 1.3.3

227- (क) सां. का. 27 पर गौड़, वाच. जयमंगला, चन्द्रिका

(ख) पं. बलदेव उपाध्याय : भारतीयदर्शन, पृ. 270

228- गीता, 6.34

229- (क) मनस्तु संकल्प विकल्पनादिभि : ।– वि. चू. 95

(ख) मनो विमर्श रुपं स्यत् – पंचदशी, 1.20

230- गु. प्र. सू. रि. 5, अंशु 41, अंक 31-35, पृ. 5653

231 (क) यो. वा. 5.13.54, 3.96.18-20 (ख) यो. वा. और उसके सिध्दांत प्र 223

232- आदि ग्रंथ, रामकली, सिध्द गोसटि, 64

मन मैगलु साकतु देवाना ।
बनखण्हि माइआ मोहि हैराना ।।
इत उत जाहि काल के चापै । —आसा रागु असटपदी 8

जपुजी' मेंइसकी प्रबलता पर प्रकाश डाला गया है।और कहा गया है कि इसे जीत लेना जगत को जीत लेने के तुल्य है।[233] इसकी उत्पति पांच तत्वों से हुई है।[234] यह मनुष्य के शरीर रूपी नगर का राजा है।[235] इसके दो रूप हैं - ज्योतिमय[236] मन और माया आच्छिन्न मन।[237] प्रथम रूप प्रभु को ज्योति से ज्योतित रहता है और दूसरा रूप अहंकार युक्त होकर द्वैतभाव के वशीभूत है। बिना इसे वशं में किए अध्यात्मक चिन्तन र संभव नहीं[238] । जब तक यह मन नहीं मरता तब तक माया भी नहीं करती।[239] इसे मारने से ही आलौकिक आनन्द की प्राप्ति संभव बताई[240] गई है।

'गुरु प्रताप सूरज' में वर्णित मन का स्वरूप

भाई सन्तोख सिंह भारतीय वेदान्त दर्शन के अनुसार मन के स्वरूप को स्पष्ट करते हैं। उसकी सहज प्रवृतियों और उनसे उत्पन्न मानसिक रोगों या विकारों पर भी प्रकाश डालते हैं। उनके अनुसार 'अन्तःकरण चतुष्टय'[241] में मन ही प्रबलतम रूप में षट-विकारों (मोह, काम, क्रोध, लोभ, मद, मत्सर) को उत्पन्न करने वाला[242] है । यही जीव के

233- आदि ग्रंथ , ''मनि जीतै जगु जीतु' — जपुजी ,पउड़ी 28

234- 'इहु मनु पंच ततु ते जनमा'— आदि ब ग्रंथ, आसा, असटपदी 8 · 3

235- वही रामकली , असटपदी 9 · 9

236- वही, सिरी ,पदे 21 · 4तथा आसा, असटपदी 8 · 5-6

237- वही, बसंत, अषटपदी 2 · तथा गउड़ी अषटपदी , 3 · 1 , 3 · 2-3

238-वही , गउड़ी गुआरेरी , असटपदी 3

239- वही , प्रभाती विभास, असटपदी ।

240-वही, सारंग, असटपदी 1 · 3-6 तथा असटपदी 2 · 4

241- गु · प्र · सू · रि · 5, अंशु 41, अंक 11, 32, 34, पृ · 5650-54

242- अतंहकरण अहै मन जोई। जबि अग्यान समेतै होई।— वही रि 5, अंशु 41, अंक10, 5650

अजेय षड्रिपु कहे गए हैं। मन स्थूल है। आत्मा सूक्ष्म है। यह उसकी ओर कभी नही जाता। बाह्यमुखी ही रहता है। यह कभी तृप्त नहीं होता। दौड़ता ही रहता है। इसे अन्तर्मुखी करने का एक ही उपाय है गुरु की शरण[243]। गुरु कृपा से ही अहंकारयुक्त मन को ज्योतिर्मय मन के रूप में परिवर्तित किया जा सकता है। मन-निरोध से ही अनिर्वचनीय आनन्द की प्राप्ति हो सकती है[244]।

मनुष्य के द्विविध रूप

आचरण और मानसिक प्रवृत्तियों केआधार पर गुरमत दर्शन में जीवों को द्विविध कहा गया है। मनमुख और गुरमुख। इनके मानसिक, वाचिक तथा कार्मिक असंख्य गुणों का उल्लेख आदि ग्रंथ में हुआ है। तदानुसार ही 'गुरु प्रताप सूरज' में भी उनका उल्लेख हुआ है। इस ग्रंथ में उनके भेदों पर भी प्रकाश डाला गया है।

मनमुख[245]: अहं-वृति से युक्त मनमुख को जड़ (मूर्ख) कहा जाता है। मायासक्त मन वाला मनमुख सांसारिक झूठे वैभवों को प्राप्त करना ही अपना जीवन लक्ष्य मानता है। उसे आध्यात्मिक आनन्द की प्राप्ति से कोई सरोकार नहीं होता है। वह सभी सांसरिक पदार्थो पर अपना प्रभुत्व जमाना चाहता है। वह यह नही जानता के सांसारिक सभी वैभव नश्वर हैं। प्रभु नाम स्मरण से उसका कोई लगाव नहीं होता। रात दिन विषयों में आसक्त रहता है। कुमार्ग पर चलता हुआ नरकों को भोगता हुआ बारंबार जन्म ग्रहण करता और आवागमन के चक्र में पड़ा रहता है। भाव यह है कि मनमुख अवगुणों की खान है।

243- (क) गु॰ प्र॰ सू॰ रि॰ 5, अंशु 43, अंक 35-40, पृ 566।

244-(क) वही, अंक 41, पृ॰ 566।

(ख) वही, रा 1, अंशु 62, अंक 34 के पश्चात् उद्धृत श्री मुखवाक मलार महला 3, घरु 2, पृ॰ 1596

245 (क) मनमुख कथनी है पर रहत न होइ।

— आदि ग्रंथ, बिलावल, असटपदी, 1·3

(ख) अन्यत्र देखिए: वही, मारु असटपदी, 1·3, मारु सोहले 12·11, 5·15

'गुरु प्रताप सूरज' में भी उसके उक्त अवगुणों का उल्लेख मिलता है तथा उसकी विभिन्न कोटियों का भी उल्लेख किया गया है। मनमुख, मनमुखतर और मनमुखतम — तीन रूपों में वर्गीकृत किया गया है। उसके विभिन्न लक्षणों से हमें भाई संतोखसिंह ने परिचित कराने का प्रयास किया है।

मनमुख व्यक्ति प्रभु के लिए किए को मिटाने में तो समर्थ नहीं होते परन्तु व्यर्थ ही तर्क (हुज्जते) करते है।[246] मनमुख का मन चंचल होता है।[247] बेमुख धन के लोभ में गुरु की महिमा को नहीं जानता। दूसरों को निन्दा मेंउसका मन लगता है। संसार में उसका मुख काला होता है।[248] बेमुख साकत में मन मे अनेक अवगुण होते हैं। वह दूसरे के यश को सहन नहीं कर सकता, रातदिन चिन्ता में लीन रहता है। दूसरे की सम्पति को देख कर उसके हृदय में दुःख होता है। दूसरे के दुःख में स्वयं चौगुण प्रसन्न होता है। किसी को चिन्ता नहीं, मित्रता को देखकर उसे ज्वर चढ़ जाता है और उनमें वैर विरोध बढ़ाने के लिए अनुचित बोलता रहता है।[249] बाले, विशने आदि सेवकों को उपदेश देते हुए गुरु जी कहते हैं कि बेमुख व्यक्ति वही होते हैं जो विषयों में लीन रह कर मनुष्य जन्म को व्यर्थ गवां देते हैं। और सदैव दुःखी रहते है।[250]

उक्त मनमुख व्यक्ति तीन प्रकार के कहे गए हैं। प्रथम प्रकार के मनमुख व्यक्ति का ऊपर वर्णन किया गया है। इस से भी निम्नतर मनुमुख को मनमुखतर कहा गया है। जो दूसरे का भला होता देख कर मन में दुःखी होता है और सदैव यह सोचता रहता है कि कैसे किस का बुरा हो। दूसरे का भला देख कर उसकी छाती में जलन होती है परन्तु मुख से मीठा बोलता है। हिताहित को एक समान जानता है। सारे संसार को बैरी की तरह तानता है। अधिकतर लोगों के प्रति द्वेष ही रखता है। मनमुखतम सब

246- गु॰ प्र॰ सू॰ रा॰ 1, अंशु 11, अंक 13, पृ 1353

247- वही, रा 1, अंशु 13, अंक 50, पृ॰ 1366

248- वही, रा 1, अंशु 61, श्री मुखवाक सलोक महला 4, पृ 1592

249- वही, रा 3, अंशु 20, अंक 13-14, पृ॰ 1984-85

250- वही, रा 3, अंशु 53, अंक 23, 25, पृ॰ 2155

का बुरा और अपना भला च चाहता है। सतिगुर के शब्द नहीं सुनता तथा पुराण आदि की कथा में कोई रुचि नहीं लेता । दान, पुण्य, इशनान(स्नान) विहीन रहते हुए जीविका के लिए झूठ बोलता है। बुरा कर के ही सुख प्राप्त करता है। ऐसा व्यक्ति सीधा नरक को जाता है। उसका शरीर घोर सज़ाएं सहन करता है और जन्म मरण की पीड़ा को बार बार सहन करता है।[251] मनमुख व्यक्तिसदैव दुःख को प्राप्त होता है।[252]

गुरमुख : संसार में सर्वगुण सम्पन्न व्यक्ति को , जो दूसरे के लिए आदर्श बन सके, गुरमुख व्यक्ति कहा जाता है। वह प्रभु के दरबार में कभी पराजित नहीं होता । वह गुरु के उपदेश को क्रियात्मक रूप[253] प्रदान करता है। उसके शब्दों में अटल विश्वास रखता[254] है और रात दिन राम नाम के स्मरण में लीन रहता है। वह स्वयं तो इस भवसागर से पार उतरता है साथ में अन्य साथियों को भी पार उतार देता है। अपने सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों को 'सचिआर' बना देता है । उसे शास्त्रों, स्मृतियों एवं वेदों आदि का ज्ञान रहता है। वह सर्व प्राणियो के कल्याण के लिए सोचता है और वे प्राणियों में उसी प्रभु की ज्योति को देखते हुए उन से प्यार करता है। राग द्वेष से रहित ,[255] आत्मतत्व को जानने वाला, आध्यात्मिक व्यापार करने वाला व्यापारी , कोमल हृदय, पंच,[256] साध,[257] सन्त और जीवन्मुक्त[258] कहा जाता है।

गुरमुख व्यक्ति स्वयं संकट सहन कर लेते हैं परन्तु प्रभु के किए पर तर्क नहीं करते । उसी की रजा में राजी रहते[259] है । गुरमुख व्यक्ति दृढ़ मति वाले होते हैं ।

251- गु॰ प्र॰ सू॰ रा॰ 3, अंशु 54, अंक 39-47, पृ॰ 2156-57

252- वही , रा॰ 8, अंशु 56, अंक 8 पृ॰ 3516

253- भाई कान्हसिंह : गुरमत मारतण्ड, प्रथम भाग, पृ॰ 397

254- डा॰ मनमोहन सहगल : सन्त काव्य का दार्शनिक विश्लेषण, पृ॰ 78-79

255- आदि ग्रंथ , जपुजी , पउड़ी 16

256- वही , गउडी , पदे 6. 5

257- वही , मारु , सोहले 6 · 4

258- वही , आसा , अष्टपदी , 3 · 3

259- वह गु॰ प्र॰ सू॰ रा॰ 1, अंशु 11, अंक 14, पृ॰ 1353, 13 · 50 · 1366 में

गुरमुख गृहस्थ में रह कर प्रभु भक्ति करते हैं और मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं। उनका पुनः इससंसार में जन्म नहीं होता।वे किरत करके सत्संगति की सेवा करते हैं । याचक को उचित आहार आदि देते हैं[260] । छलबल का वह प्रयोग नहीं करता , वह गुणों की राशि अजर को जरने को समर्थता, प्रभु भजन में लीन रहता है, दूसरे के यश और प्रताप को सुनकर सदेव प्रसन्न होता हैं दूसरे के सुख और सम्पति को देखकर हर्षित होता है। पर दुख में दयावान रहता है। वह परलोक में भी सम्मान प्राप्त करता है[261]। सन्मुख व्यक्ति वाहिगुरु नाम का जाप करता है। नामदान इशनान को निमयानुसार अपने जीवन में ढाल लेता है। पिछली रात को निद्र त्याक कर शौच मुज्जन से निवृत होकर अमृत वेले में नित्य निष्काम भावना से स्मरण करता है। गुरुवाणी का पाठ कर उसे हृदय में विचारता है । सांसारिक व्यवहार में लीन रहते हुए भी सत्य नाम को नहीं भूलता तथा यथाशक्ति भूखे नगे को दान देताहै[262] ।

गुरमुख व्यक्ति भी तीन प्रकार के कहे गए हैं । गुरमुख, गुरमुखतर, गुरमुखतम[263] । गुरमुख कुकर्मो के प्रति पीठ कर लेता है तथा गुरु के वचन के प्रति मुख कर लेता है । सदैव दूसरों का भला ही करता है; परोपकार में ही मन को लगाए रखता है। एक सार सभी का भला करता है। ये गुरमुख के लक्षण हैं । गुरमुखतर कुकर्मो को त्याग कर सुकर्मो में मन लगाता है। किसी का यदि कोई कार्य कर सकता है तो कर देता है, दोषों की गोर नहीं करता ।जो व्यक्ति उसका अपकार करता है वह उसका भी उपकार करता है । हृदय से सभी द्वेषों को त्याग कर स्वाभाविक रुप में भलोई में लीन रहता है। गुरमुखतम सतिगुरु के उपदेशानुसार आत्म रुप को जानने का प्रयास करता है । संसार की विचित्रता को ध्यान में न लाते हुए सर्व प्रणियों में उस प्रभु की ज्योति को देखता है[264]।

260- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 1, अंशु 39, अंक 19-20, पृ॰ 1482

261- वही , रा॰ 3, अंशु 20, अंक 1H2 , पृ॰ 1984

262- वही , रा॰ 3, अंशु 53, अंक 19-23, पृ॰ 2154-55

263- वही , रा॰ 3, अंशु , 53, अंक 33, पृ॰ 2155

264- वही , रा 3, अंशु 53, अंक 34-38, पृ॰ 2155-56

गुरमुख व्यक्ति का तेज सभी पर छा जाता है। सदैव गुरु शब्द को हृदय में बसाये रखताहै। जब बोलताहै तो उसके शब्दों से सभी के हृदय शीतलता प्राप्त करते हैं । यदि कभी कुसंगति में भी पड़ जाये तो भी चन्दन की तरह रह कर सर्पों को शीतलता ही प्रदान करता है।[265] स्फटिक और हीरे के काव्यमय उपमानों से भी दोनों के व्यक्तित्व को स्पष्ट किया है। गुरमुख व्यक्ति सदैव परस्वार्थ को करता है और हृदय में कभी लोभ और अहंकार को धारण नहीं करता[266] । तभी तो कहा भी है :-

मनमुख हारति जगत में गुरमुखि जावहि जीत ।
प्रतिपारति साबत सिदक ,प्रीत प्रतीत हि चीत ।। 22 ।।[267]

'सन्त' स्वरूप और महिमा

'सन्त' शब्द के अनेक अर्थो पर विचार करते हुए पंडित परशुराम चतुर्वेदी जी ने अन्ततः कहा है कि सन्त शब्द उस व्यक्ति की ओर संकेत करता है जिस ने सत् रूपी प परमतत्व का अनुभव कर लिया हो और जो इस प्रकार अपने व्यक्तित्व से ऊपर उठ कर उसके साथ तद्रूप हो गया हो ।जो सत्य स्वरुप नित्य सिध्द वस्तु का साक्षात्कार कर चुका है अथवा अपरोक्ष की उपलब्धि के फल स्वरुप अखंड सत्य में प्रतिष्ठित हो गया है, वही 'सन्त' है।[268] आदि ग्रंथ में ऐसे ही सन्तों की महिमा का गान हुआ है। उसके रचयिता स्वयं सन्तों के आदर्श माने जाते हैं ।'गुरु प्रताप सूरज 'मेंउन्हीं के उपदेशों का संकलन है । उन उपदेशों में उन्होंने 'सन्त' के उक्त स्वरुप पर प्रकाश डाला है। भाई सन्तोख सिंह ने उनके प्रमुखगुणों की चर्चा की है ।

265- गु॰ प्र॰ सू॰ रा॰ 3, अंशु 53, अंक 34-38, पृ॰ 2155-56 , वही, 3॰64॰24-32॰ 2200-1

266- वही , रा 11, अंशु 56, अंक 17, पृ॰ 4197

267- वही रि॰ 3, अंशु 46, अंक 22, पृ॰ 5180

268- उत्तरी भारत की सन्त परंपरा, भूमिका, पृ ॰ 5 (प्र॰ सं , 2008वि॰)

सन्तों का एक व्यावर्तक धर्म भगवद् भक्ति है । वे सभी स्वयं प्रभु भक्ति में लीन रहते हैं तथा अपने सम्पर्क में आने वाले मनुष्यों को भी भक्ति के लिए प्रेरित करते हैं। वह अजमत को प्रदर्शित नहीं करते[269], वे अजर को स्वयं जर लेते हैं । सिर तक देने में देर नहीं लगाते । हृदय में धैर्य और गंभीरता को धारण किए रहते हैं । सदैव कृपालु प्रभु का स्मरण करते रहते हैं । वे कमल सदृश्य सदैव प्रफुलित रहते[270] है । वे द्वैत तत्व को स्वीकार नहीं करते और आत्मा परमात्मा को एक रूप मानते हैं जैसे जल में बुलबुला होता है वैसे ही जन्म मरण को मानते[271] हैं । वे उपकारी पुरुष स्वयं भवसागर से पार होते हैं तथा अन्य व्यक्तियो प को पार लंघाते हैं । उनसे बोलना मिलना अच्छा होता है क्योंकि वे तत्काल हृदय के संकटो ं को दूर कर[272] देते हैं । वे सभी प्राणियों में उस प्रभु को ज्योति को ही देखते[273] हैं । वे स्वयं सदैव प्रसन्न रहते हुए बुरा करने वाले का भला करने को सोचते[274] हैं । ऐसे सन्तों की सेवा करने से महाफल की प्राप्ति होती है। वे निधि और सिध्दि के दाता कहे जाते हैं । अन्त में मुक्ति पदार्थ देते हैं । हंस के समान मेरे सिक्ख जो इन को सेवा करेंगे उन्हें कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं होगी[275] । क्योंकि सन्तों के सब कार्य प्रभु स्वयं करते हैं । वे स्वयं नाम का महारस पीते हैं और अपने सेवको को पिलाते[276] है। गुरु घर में बाबा बुढ्ढाआदि सन्तों के कारण ही उसकी महिमा जगत विश्चात हुई । ऐसे सन्तों में बाहिगुरु की कला विराजमान रहती है। वे पूर्ण सन्त और पूर्ण गुरमुख थे । उनकी महिमा करते हुए श्री गुरु अर्जुन देव जो सन्त की महिमा पर निम्न पंक्तियों में प्रकाश डालते है ।

269- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 1, अंशु 16, अंक 26, पृ॰ 1382

270- वही , रा 1, अंशु 27, अंक 4, पृ॰ 1426

271- वही , रा 1 अंशु 28, अंक 7, पृ॰ 1431

272- वही , रा 1, अंशु 37, अंक 21, पृ॰ 1473

273- वही , रा॰ 1, अंशु 39, अंक 47, पृ॰ 1484

274- वही , रा 1, अंशु 62, अंक 65, पृ॰ 1593

275- वही , रा 2, अंशु 3, अंक 58-60, पृ॰ 1658

276- वही , रा 2, अंशु श्री मुख वाक पृ॰ 1852

अंत संत को कोइ न पावहि, सुर नर असुर जाति सभि हारि।
संत हुकम को फेर न सकहिं सगरे सादर लें सिर धार ।
बूड्ढा साहिब तप की मूरति, आतम ग्यानी गुन गन सार ।
जिह सेवे बांछित हुइ प्रापति, दुख दारिद्र के दुंद बिदार ।।[277]

ऐसे सन्तों की महिमा अनन्त कहीगई है । वे तो भगवान के समान होते हैं । उनके वचन सत्य होते हैं[278] । संत हंस के सदृश होते हैं । सदैव यम ताप को दूर करते है[279] ।जहांगोर जब पोर मोआ मीर के पास पहुंच कर संत के लक्षण पूछते है तब पीरजी कहते हैं :-

कहै पीर सुनि संतनि भूखन । सभि बिकार ते रहै अदूखन ।
रोक बाशना चाह मिटाई । भए अचार एक लिवजाई ।। 8 ।।
× × ×
मृतक मनिंद जगत महिं अहै । सभि रस तजि आतम रस लहै ।
चिदानंद महिं पाइ बसेरे । त्रिण सम अपर रसनि को हेरे ।। 10 ।।[280]

इसो तरह श्री हरिगोबिन्द जो भो सन्तों के लक्षणों का उल्लेख करते हैं[281] ।

संतों के हृदय में सदैव शान्ति रहतीहै । उनका हृदय बड़ा उदार होता है[282] । दुःख-सुखमेंसदैव एक रस रहते हैं । ऐसे संतों से मिलना सुखदायी कहा जाता है। संसार में उस के समान कोई अन्य नहीं[283]।वह स्वर्ण और मिट्टी को, विष और अमृत को एक समान मानता है ।

277- गु॰ प्र॰ सू॰ रा॰ 3, अंशु 3अंक 28-29, पृ॰ 1900
278 - वही, रा 3, अंश4[illegible], अंक 3, पृ॰ 1901
279 - वही, रा॰ 3, अंशु 33, अंक 5 पृ॰ 2045
280- वही, रा 4, अशु 64, अंक 8-10, पृ॰ 2494
281- वही, रा॰ 5, अंशु 63, श्री मुखवाक, पृ॰ 2681
282- वही, रा॰ 7अंशु 23, अंक 10, पृ॰ 3146
283- वही, रा॰ 9, अंशु 16, अंक 7, पृ॰ 3602

ऐसे संत के दर्शन की अभिलाषा माता गुजरी जी जब श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी के प्रति व्यक्त करती है तब वे उन्हें भाई रामकुंवर जी के दर्शन कराते हैं[284] । जो बाबा बुड्ढा जी की भान्ति ही आदर्श सन्त कहे जाते हैं । ऐसे ही आदर्श सन्तों की आराधना करते हुए भाई सन्तोख सिं जी ग्रंथ की पूर्णता के लिए उनकी बन्दना करते हुए कहते हैं :-

ग्यान ध्यान सकल जन सिमरैं नाम बिअंत ।
जिन जान्यो बुधि स्वच्छ ते परे पार भव संत ।। । ।।
अस परमातम संत गन सदा सचिादानंद ।
करहु अ ग्रंथ पूरन सरब बंदों द्वै कर बंदि ।। 2 ।।[285]

मोक्ष और उसकी प्राप्ति के साधन

भाई सन्तोख सिंह जी ने 'गुरु प्रताप सूरज' में मोक्ष अथवा मुक्ति के लिए पारम्परिक दर्शन शास्त्रीय शब्दों 'कैवल्य'[286], अपवर्ग'[287] आदि के उल्लेख के साथ साथ गुरमत के 'सुगति 'शुभगति 'परम गति'[288] आदि शब्दों का प्रयोग किया है तथा इस ग्रंथ में 'परम पद', चौथा पद', 'तुरीयावस्था', 'बन्द खलासी' शब्द भी प्रयोग किए गए हैं ।

पारम्परिक स्वरूप : 'मोक्ष' का सिध्दांत भारतीय दर्शन की सर्व प्रमुख विशेषता है। प्रत्येक दर्शन में यह किसी न किसी रूप में विद्यमान है। प्रत्येक दर्शन यह मानता है कि यह संसार कष्टों से भरा हुआ है और कुछ विशेष साधनों से मृत्यु के पश्चात् एकऐसी स्थिति में पहुंचा जा सकता है जहां सांसारिक दुःखों का किंचित मात्र भी अस्तित्व नहीं रहता ।

284- गु॰ प्र॰ सू॰ रि 4, अंशु 33, अंक 8 पृ॰ 5341
285- वही , रि 5, मंगलाचरण , पृ॰ 5417
286- वही , रि 4, अंशु 1, अंक 1, पृ॰ 5209
287- श्री गुरु नानक प्रकाश , पू॰ आ॰ 1, 74, पृ॰ 119
288- गु॰ प्र॰ सू॰ रा॰ 1, अंशु 62, अंक 13, पृ॰ 1594

वैदिक एवं उपनिषद् साहित्य में 'मोक्ष' का विचार उस रूप में नहीं मिलता जिस रूप में बाद में वह 'वेदान्त' आदि दर्शन शास्त्रों में विकसित हुआ है। ऋग्वेदानुसार मृत्यु के पश्चात् सभी व्यक्ति यमलोक (स्वर्गलोक) को जाते हैं और वहां वे अनन्तकाल तक आनन्द का उपभोग करते हैं। तैतिरीय उपनिषद् में भी इसी आनन्द प्राप्ति की अवस्था का उद्घोष मिलता है। परन्तु बाद में वेदान्त में विकसित विचारधारानुसार अज्ञानमय ग्रंथि के नाश को[289], परमात्मा में जीवात्मा के लय को मोक्ष कहा गया है।[290] पुराणों में जीव तथा ब्रह्म की 'एकता' का ज्ञान ही मुक्ति है।[291] भागवत में अज्ञान-कल्पित कर्तृत्व, भोक्तृत्व आदि अनात्मभाव का परित्याग करके अपने वास्तविक स्वरूप परमात्मा में स्थित हो जाना ही 'मुक्ति'[292] है। योग वाशिष्ठकार ने कहा है कि समस्त आशाओं से अलग होने पर चित का क्षीण हो जाना, अज्ञान से उत्पन्न अहंभाव रूप मृषा ग्रंथि का खुल जाना, ही 'मोक्ष' है।[293] न्याय दर्शन में शरीर, मनसमेत छः इन्द्रियां, उनके छः विषय और छः ज्ञान तथा उनसे उत्पन्न सुख-दुःख – इन इक्कीस दुःखों से आत्यतिक नाश को 'मोक्ष' य 'अपवर्ग' कहा जाता है।[294] साधन उसका है 16 पदार्थों का

289- अज्ञान मय ग्रंथिभेदो यस्तं विदुर्मोक्षम् ।

– परमार्थ सार - 73

290- वेदान्तिनस्तु ' परमात्मनि जीवात्मलयो मोक्षः ' इति वदन्ति

– योगसार संग्रह , पृ॰ 65

291- वायु पुराण , 2॰42॰97॰ मा॰पु॰36॰1

292- मुक्तिर्हित्वान्यथारूपं स्वरूपेण व्यवस्थितिः

– भा॰पु॰2॰10॰6

293- अज्ञानस्य महाग्रंथिर्मिथ्यावेद्यात्मनो सतः ।

अहमित्यर्थरूपस्य भेदो मोक्ष इति स्मृतः ।।

– यो॰वा॰5॰73॰36 ॰20॰17

294- (क) न्यायसूत्र 1॰1॰2॰ तथा उस पर वात्स्यायन भाष्य, तर्क भाषा , पृ 91-92

(ख) डा सतीश चन्द्र चट्टोपध्याय : भारतीय दर्शन , पृ॰ 135

तत्व ज्ञान[295] ।सांख्य में त्रिविध तापों से छुटकारा प्राप्त करना ही 'कैवल्य'है। सांख्य के मतानुसार प्रकृति औरपुरुष को समभाव से शुध्दि, उनके कल्पित तथा आरोपित सम्बन्ध (बन्धन) को दूर होने पर उनका स्व स्वरूप में अवस्थान, धर्माधर्म का क्षय, और प्राकृत गुणों से आत्यंतिक वियोग होने पर पुरुष का अपने स्वच्छ ज्योतिर्मय स्वरूप में केवलीभाव से प्रतिष्ठित हो जाना, 'कैवल्य' 'अपवर्ग' या 'मोक्ष'[296] है। इस मोक्ष की प्राप्ति का साधन है – विवेक ।योग दर्शन के अनुसार अहंकार को पूर्ण निवृति हो जाना और द्रष्टा का स्वस्वरूप में स्थित हो जाना ही 'कैवल्य' है। इसकी प्राप्ति का साधन है-चित्वृतयों का पूर्णरूपेण निरोध[297] ।मीमांसाकों ने प्रपंच सम्बन्ध अर्थात् (भोगायतन–––भोगोपकरण – भोगविषय – रूप)त्रिविध बन्धन अथवा धर्माधर्म और देह को आत्यंतिक विनाश को 'मोक्ष'कहा[298] है। वेदान्त के अनुसार जगत असत्य, जड़ और दुःख मय है। केवल ब्रह्म ही सत्, चित् आनन्द है। जीव और ब्रह्म एक हैं । जब तक द्वैत का मान कराने वाली अविद्या या अज्ञान से जीव मुक्त रहताहै तभी तक उसकी वैयक्तिक सता रहती है। इसी कारण उसमें अहं भावना और ममता उत्पन्न होती है। शरीर आदि उपाधियों के संसर्ग से वह अपने अन्तर में स्थित चेतन्य को भूल जाता है।ज्ञान से मोक्ष की प्राप्ति होती है। माया को दोनों शक्तियां – आवरण और विक्षेप – जीव को भ्रान्त कर अज्ञान की श्रृंखला में बांध लेती हैं। इन्हीं से मोहित होकर यह देह को आत्मा मान कर संसार चक्र में घूमता रहता है। अतः मोक्ष कोई नवोन प्राप्ति नहीं

295- गु॰ प्र॰ सू॰ रि॰ चौथी , मंगलाचरण , पृ॰ 5209

296- (क) सांख्य कारिका – 44,56-57,65-68 तथा उस पर गौड॰ तथा वाच॰, तथा सांख्य संग्रह चु॰ 24

(ख) डा॰ रामजी लाल : कबीर दर्शन, पृ॰ 236

298- प्रपंच सम्बन्ध विलयो मोक्षः । – शास्त्र दीपिका , पृ॰ 357तथा

तदस्य त्रिविधस्यापि बन्धस्य आत्यन्ति को विलयो मोक्षः ।।

– शास्त्र दीपिका , पृ॰ 358

297- यो॰ सू॰ 3॰55॰,4॰34

अपितु अविद्या कृत बन्धनों का नाश है। ज्ञान इस की प्राप्ति का साधन है। इस के द्वारा ब्रह्म से समरूपता स्थापित होती है तथा अखंड आनन्द में लीन हो जाना एवं दोनों का मिलकर एक हो जाना ही मोक्ष है[299]। आचार्य शंकर के अनुसार मोक्ष मानव का सर्वोत्कृत पुरुषार्थ है जो व्यक्ति मनुष्य जन्म पाकर भी मोक्ष के लिए प्रयन्त नहीं करता वह आत्महा[300]' है।

गुरमत दर्शन के अनुसार जीवात्मा का परमात्मा के साथ एकरूपता स्थापित हो जाना ही मोक्ष है।भाव यह है कि जीवात्मा का परमात्मा के साथ शाश्वत सम्बन्ध इसका साधन है प्रेम और प्रेम का विदित स्वरूप स्मरण[301] है ।

आदि ग्रंथ और दशर्म ग्रंथ में 'मुक्ति' का स्वरूप

आदि ग्रंथ और दशम ग्रंथ में 'मुक्ति' का स्वरूप कोई व्यवस्थित स्वरूप वर्णित नहीं है हां यत्र तत्र कुछउक्तियां मिलती हैं जिन के आधार पर सांसारिक बन्धनों से छलासी को मुक्ति[302] माना जाता है। इन बन्धनों को उन्होंने कूड़ की पालि' अर्थात् मिथ्या का परदा और सांसारिक प्रपंचो का भ्रम भी कहा है ।इन प्रपंचो से ऊंचा उठकर जिज्ञासु का गुरु के मिलाप द्वारा आत्म तत्व को पहचानना और आत्म ज्ञान प्राप्त करना ही 'मोक्ष' का द्वार है । यह 'मोक्ष' वास्तव में ब्रह्म साक्षात्कार की मंजिल है। इस साक्षात्कार के प्राप्त हो जाने पर साधक को 'मोक्ष' की आवश्यकता नहीं रहती ।इसी विचार को अन्य गुरु साहिबान ने भी अपनी वाणी में व्यक्त[303] किया है । आदि ग्रंथ में सांसारिक[304] बन्धनों से

299- डा· गोबिन्द त्रिगुणायत : हिन्दी निगुर्ण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि , पृ· 450

300- उमेश मिश्र : भारतीय दर्शन , पृ· 252-253

301- गु·प्र·सू·रि 4,अंशु 1,अंक 1,पृ· 5209

302- (क) मुकति भइ बन्धन गुरि खोल्हे सबदि सुरति पति पाई ।
— आदि ग्रंथ , मलार,पदे 4·5

303- आदि ग्रंथ,पृ· 534, 1324

304- 'किव कूड़ै तुटे पालि' — वही ,जपुजी , पउड़ी ।

से खलासी प्राप्त करने की भावना के लिए कैवल्य और अपवर्ग आदि के अतिरिक्त अन्य सभी (मुक्ति, मोक्ष, परमपद, चौथा पद, महासुख, बंदि खलासी, तुरीयावस्था आदि) पारम्परिक शब्दों का प्रयोग हुआ है।[305] परन्तु 'मुक्ति शब्द का अधिक प्रयोग हुआ है। 'दशम ग्रंथ में' भी भक्ति द्वारा परमपद की प्राप्ति का सन्देश दिया गया है।

धन्य जीयो तिह को जग मे मुख ते हरि चित में जुध्द विचारे ।
देह अनित न नित रहे जसु नाव चढ़े भव सागर तारे ।
धीरज धाम बनाइ इहै तन बुध्दि सु दीपक जिउं अजियारे ।
ज्ञानहि की बढनी मनहु हाथ लै कात कातरता कुतवार बुहारे।[306]'

गुरु प्रताप सूरज' में मोक्ष

'गुरु प्रताप सूरज' के रचयिता भाई सन्तोख सिंह ने उक्त पारम्परिक विचारधारा में समन्वय स्थापित करते हुए जहां वेदान्त में प्रतिपादित मुक्ति के स्वरूप का उल्लेख किया है वहां उक्त गुरमत दर्शन के आधार ग्रंथों में प्रतिपादित विचारधारा के अनुसार सांसारिक बन्धानों से खलासी के लिए मुक्ति शब्द का प्रयोग किया है। इसको प्राप्ति का साधन गुरु चरणों की शरण में जाना माना है।

बिन सतिगुर की शरनी पेरे ।कोइ न बंद खलासी करे ।।[307] 48 ।।

साधक जब गुरु की शरण में आत्मज्ञान प्राप्त कर लेता है उसे मुक्ति और भुक्ति का दाता मानने लगता है और उसके भाणे में विश्वास रखते हुए, नाम स्मरण में लीनरहते हुए,

305- आदि ग्रंथ , आसा , पदे ।3 · 4 जपुजो पउड़ी ।5; गउड़ी असटपदी ।3 : रहाउ। बिलावल , थिती 5, रामकली, सिध गोसटि 39, जपु -पउड़ी 25, आसा पदे 22 · 4

306- दशम ग्रंथ , कृष्णावतार (चौबीस अवतार), छ · सं 2492

307- गु · प्र · सू · रि 5, अंशु 5, अंक 48, पृ · 57।।

अहंकार का त्याग कर देता है तो उसे 'मुक्ति' को प्राप्ति हो जाती है। इसके अतिरिक्त उन्होंने भारतीय मोक्ष शास्त्र के प्रणेताओं द्वारा प्रतिपादित विविध मान्यताओं के आधार पर इसकी प्राप्ति के अनेक मार्गों का भी उल्लेख यत्र तत्र किया है। भक्ति , उपासना , पूजा, ज्ञान, विवेक, ध्यान, योग, वैराग्य, दया, दान, धर्म, कर्म आदि अनन्त मार्गों का अनेक स्थानों पर उल्लेख किया है। परन्तु उन्होंने इन सभी साधनों में से चार मार्गों का विशेष रूप से उल्लेख किया है और उन में से भी 'भक्ति' की सर्वश्रेष्ठता प्रतिपादित की है। इस सम्बन्ध में पिछले अध्याय में पर्याप्त प्रकाश डाला जा चुका है ।

मोक्ष प्राप्ति के चार मार्ग

मनुष्य जीवन के परम पुरुषार्थ मोक्ष की प्राप्ति के लिए परंपरा से चार मार्गोंगा का उल्लेख होता आया है। वैराग्य, योग , ज्ञान और भक्ति । प्रभु की माया प्रथम तीन मार्गों के साधकों को अपने मोह पाश में बान्धने में समर्थ हो जाती है क्योंकि वे पुरुष हैं । परन्तु स्त्री रूप भक्ति मार्ग के अनुयायियों पर इसका वश नहीं चलता ।अतः भक्ति मार्ग ही सर्व श्रेष्ट मार्ग है।कहा भी है :-

> बहुर प्रभु ने चतर उपाए।जिन ते मिलहि मोह कहु आए ।
> इक वैराग जोग अरु ग्यान । चउथी उपजी भगति महान ।। 24 ।।
> ग्यान, बिराग जग शुभ तीन।पुरख रूप इन को मन चीन ।
> माया ले अ इनको भरमाई।बड़े जतन ते उपर्यो जाइ ।। 25 ।।
> भगति अहै प्रतिव्रता नारी । इस पर नहिं माया बलु भारी ।
> इसत्री को इसत्री न भ्रमावै । धरहि भगति तिस प्रभु मिलावै ।। 26.।।[308]

इस लिए माया अपने रूप से भक्ति को पराजित करने में असमर्थ है।अतएव भक्त को (ज्ञानी की भांति) माया का भय नहीं है। इस रूपक का मनोवैज्ञानिक रहस्य है।

308- गु॰ प्र॰ सू॰ रा ।, अंशु ।2, अंक 24-26, पृ॰ ।360

काम मानव को प्रबलतम सहज प्रवृति है। ज्ञान की निराधार सूक्ष्म भूमि पर मन की एकाग्रता कठिन है। लय, विक्षेप आदि ध्निो विघ्नों के कारण उसका चंचल हो जाना बिल्कुल स्वाभाविक है। भक्ति प्रेम रुपा है। विषयों से चितवृति का निरोध करके परमानुरक्ति के आलम्बन ब्रह्म के सगुण रुप पर मन को स्थिर किया जा सकता है। यह सगुण भक्ति योग मन की प्रेमवृति के अनुकूल है, फ्लतः अधिक श्रेयस्कर है ।ज्ञान आदि और उनका भक्ति के साथ संबन्ध व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा है कि इस भक्ति की प्राप्ति भो गुरु कृपा से होतहै गुरु बिना गति नहीं हो सकती[309] । वेदान्तानुसार वर्णित श्रवण, मनन , निध्दासन द्वारा भो साधक को ब्रह्म साक्षात्कार हो सकता है । इन व्यापारों का उल्लेख भाई सन्तोख सिंह ने भी गुरमत अनुसार किया हैं । 'जपुजी' में उक्त व्यापारों का निरुपण कर इन के द्वारा साधक जीवन्मुक्त हो जाता है।[310] उसे आत्मज्ञान की प्राप्ति हो जाती है। 'गुरु प्रताप सूरज' में भक्ति के अतिरिक्त युध्द के द्वारा भो मुक्ति प्राप्ति के मार्ग पर प्रकाश डाला गया है। दशम ग्रंथ की पूर्वोक्त विचार धारा के अनुसार युध्द मेंशत्रुओं के नाश करने और वीरगति पाने से भी मनुष्य को सद्गति प्राप्त हो सकती है।[311] तत्कालीन परिस्थितियों में भाई सन्तोखसिंह का यी संदेश था।

मुक्ति के द्विविध रुप

देह के संबंध से भव बन्धन ग्रस्त प्राणी को मुक्ति दो प्रकार की कही गई है । जीवन्मुक्ति और विदेह मुक्ति । जिन्हें शरीर के रहते हुए भक्ति अथवा ज्ञान के द्वारा सांसारिक बन्धनों से मुक्ति प्राप्त हो जाती है। वे जीवन्मुक्त कहलाते हैं । जिन्हें शरीर नष्ट हो जाने पर मुक्ति प्राप्त होती है वे विदेह मुक्त कहलाते है।भाई सन्तोख सिंह को

309- सतिगुर बाझहु मुकति किनेहो।— आदि ग्रंथ, मारु सोहले , 8 · 4

310- गु · प्र · सू · ग्रं · रि · 5, अंशु 47-50, पृ · 5686-5708

311- लरहि जुध्द महिं शत्रनि हते ।गुरनि रिझावे ले करि फ्ते ।42 ।। × ×
लरहि मरहि मारहि रणखेत ।। 43 ।। तिन को भी गुर सदगति देहैं।
— गु · प्र · सू · रि 5, अंशु 49, अंक 42-44,

दोनों रूप मान्य है। अदवैत वादियों के अनुसार उन्होंने भी आत्मसाक्षात्कार या ब्रह्म साक्षात्कार को देहावसान से पूर्व आत्मा को जीवन्मुक्ति माना है। तथा विदेह मुक्ति के चारोंरूपों सालोक्य, सरूप य, सामीप य और साजुज्य, आदि को भी स्वीकार किया है।[312] इन में उन्हें कोई विरोध प्रतीत नहीं होता । गुरुमुख या सन्त व्यक्ति तो जीवितावस्था में ही मुक्त रहता है।

जीवन्मुक्ति : जीवमुक्त व्यक्ति का गुरु के अउपदेश, श्रुतिवाक्य और अपने अनुभव से आत्मगत सकल अज्ञान का नाश हो जाता है। जब वह आत्मा और ब्रह्म को एकता का ज्ञान प्राप्त कर ब्रह्म का अखंड साक्षात्कार प्राप्त करलेता है तब वह सम्पूर्ण बन्धों से रहित होकर ब्रह्मनिष्ठ हो जाता है। तबउसे हर्ष शोक सन्तप्त नहीं कर सकते । अदि ग्रंथ में ऐसे ही जीवान्मुक्त के विषय में लिखा गया है :-

प्रभु की आगिआ आतम हितावै।जीवन मुकति सोऊ कहावै ।
तैसा हरखु तैसा उसु सोगु ।सदा अनंदु तह नही बिओगु ।।[313]

यह अनन्द की अवस्था मृत्यु के पश्चात् प्राप्त होने वाली नहीं है। गुरमुख व्यक्ति को यह जीवित रहते ही प्राप्त हो जाती है। तब जीव की समस्त पारलौकिक एवं ऐहिक पुत्रवित्तलोकैषणाएं समूल नष्ट हो जाती हैं तब वह इस शरीर में रहता हुआ ही ब्रह्म-भावरूप मोक्षको प्राप्त कर लेताहै। 'गुरु प्रताप सूरज' में ऐसे जीवन्मुक्ति के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए भाई सन्तोख सिंह ने भी एक स्थान पर कहा है:-

''जिनहु ब्रहममय पछाता।तजि नानत्व अनंद इक माता ।
कहीअति जीवन मुकति सु प्रानी।मूल कलेश अविद्या हानी ।।[314] 18 ।।

312- नानक प्रकाश , पू॰ अध्य॰ 1, अंक 70 तथा गु॰ प्र॰ सू॰ रा॰ 2॰56॰16॰1866

313- आदि ग्रंथ , गउड़ी , सुखमनी ,

314-गु॰ प्र॰ सू॰ रा 2, अंशु 36, अंक 18, पृ॰ 179।

इस अवस्था को सब से ऊंचा तथा महत्वपूर्ण मानते हुए गुरु जी अपने विशेष सिक्खों को इसकी प्राप्ति का वर दिया करते थे[315] ।इस अवस्था को प्राप्ति के लिए चार साधनों का उन्होंने उल्लेख किया है। श्रवण, मनन, निदिध्यासन और साक्षात्कार । इनके ज्ञान के द्वारा जो ब्रह्म का साक्षात्कार प्राप्त कर लेता है वही जगत में जीवन्मुक्त कहलाता है:-

उर साख्यातकार जिन कोना ।नभ सम सभि महिं ब्रह्म चोना। ।2 ।
याते प्रथम श्रवण तुम करो ।मनन बहुर निदयासन धरो ।।
उर सख्यातकार हुइ जाइ । जनम मरन दुख अखिल बिलाइ ।। ।3 ।।
जोवन मुकति होइ बिचरै हो । प्रलै काल को अगनि जिमे हो ।
सरब भसम करि आपे रहै।ब्रहम रूप महिं इकता लहै ।। ।4 ।।[316]

यही सहज वृति है और इसे ही जोवन्मुक्त है अवस्था[317] कहा गया है। इस इस अवस्था में चित शीतल रहता है। साधक आत्मरस में लीन रहता है। उसकी समस्त वृतियां एक रस हो जाती है।[318]

जीवात्मा के बन्धन का मूल कारण उसके आत्म तत्व को जानाना कठिन समझा और शरीर कीअहंता और ममता है, जो अज्ञान, अविद्या और माया के प्रभाव से उत्पन्न होती है । इन के त्याग के बिना प्रभु साक्षात्कार होना कठिन है।मन का इन्द्रियों के साथ जो सम्बन्ध है यही बन्धन है और इसी का कारण कष्ट प्रद सिध्द होता है। जब यह मन इन्द्रियों से हट कर हृदय -निकेत में टिक जाता है, स्थिर हो जाता है, वही 'मुक्ति' की अवस्था कहलाती है। सभी सन्तों एवं वेद शास्त्रों का यही मत है ।[319]

315- गु. प्र. सू · रा 2, अंशु 56, अंक 25-26, पृ · 1867
315- वही , रा · 3, अंशु 63, अंक 12-14, पृ · 2195
317- वही , रा 4, अंशु 64, अंक 9, पृ · 2494
318- वही , रा 4, अंशु 64, अंक 38, पृ · 2497
319- वही , रा 4, अंशु 22, अंक 10, पृ · 2314

निष्कर्ष : दार्शनिक समन्वय

'गुरु प्रताप सूरज' में भारतीय जीवन के विकास में उद्भूत अनेक दार्शनिक मतों का उल्लेख और उनके सिध्दांतों का व्यापक विवेचन हुआ है। भारतीय दर्शन के विकास मेंवैदिक युगीन एवं उपनिषद् कालीन विचारधारा ही षडंदर्शनों में विकसित होकर प्रस्फुटित हुई । इसी विचारधारा का भक्तियुगीन निगुर्ण और सगुण साधकों ने नवीन दृष्टिकोणों से विवेचन किया । सन्त कवियों की परंपरा में गुरु नानक तथा अन्य गुरु साहिबान ने उक्त दार्शनिक पृष्ठभूमि को आधार बना कर आदि ग्रंथ एवं दशम ग्रंथ की वाणियों मेंउन विशेषताओं का सन्निवेश किया जिन्होंने भारतीय जीवन को समूचे रूप में सर्वाधिक प्रभावित किया था । उनका समन्वात्मक दृष्टिकोण ही 'गुरु प्रताप सूरज' में व्यापक रूप में सन्निविष्ट दिखाई देता है ।समन्वय की इस विराट-भावना में दर्शन के साधन -पक्षों का समन्वय भारतीय संस्कृति को 'गुरु प्रताप सूरज' की कत महत्वपूर्ण देन कही जा सकती है ।

सप्तम् अध्याय

'गुरु प्रताप सूरज' में चित्रित सामाजिक जीवन

सप्तम् अध्याय

'गुरु प्रताप सूरज' में चित्रित सामाजिक जीवन

प्रवेश

'गुरु प्रताप सूरज' मध्यकालीन समाज का दर्पण है।भारतीय संस्कृति के दृष्टिकोण से सामाजिक जीवन की प्रतिष्ठा वर्णाश्रम धर्म पर आधृत है । यही दीर्घकाल से हमारे सामाजिक जीवन का प्रधान आधार रही है। परन्तु मध्यकालीन आर्थिक और राजनैतिक परिस्थितियों के अनुशीलन से प्रकट है कि इस युग में भारतीय व्यवस्था विशृंखलित हो चुकी थी ।इस युग का जन जीवन कुटिल सामाजिक बन्धनों के मायाजाल में ग्रस्त था ।चारों ओर पाखंड, ढोंग, बाह्याडम्बर, रुढ़िग्रस्तता और अन्धविश्वासों का साम्राज्य था । प्रत्येक वर्ग के कर्तव्यों मेंशिथिलता ही दिखाई देती थी । भारतीय समाज अनेक जातियों में विभाजित हो चुका था । सर्वत्र भेदभाव की भावना दृष्टिगोचर होती थी । नव-निर्मित जातियों का एक स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि ऊंच नीच की भावनाओं को बल मिलने लगा तथा जाति संगठन में जटिलता और कठोरता बढ़ने लगी । हिन्दू समाज के समक्ष एक ओर शासक वर्ग की ओर से बलपूर्वक धर्म परिवर्तन की समस्या थी तो दूसरी ओर उसके लिए प्रलोभन भी थे । परन्तु इन दोनों स्थितियों में उसका अधिकांश भाग स्वधर्म पर ही स्थित रहा । हिन्दू समाज की विकृतियों के परिष्कार के लिए लोकनायक गुरु साहिबान का योगदान भी कुछ कम महत्वपूर्ण नहीं है। उन्होंने उदार सामाजिक भावनाओं के प्रचार में अभूतपूर्व योगदान दिया तथा अपनी भक्ति भावना के द्वारा जहां शूद्रों का ब्रह्मणों के कठोर प्रभुत्व सेउध्दार किया वहां राम रहीम की एकता प्रतिपादित कर हिन्दू -तुर्क के भेद भाव को मिटाने का भी सन्देश दिया ।

'गुरु प्रताप सूरज' में तत्कालीन समाज की व्यापक झांकी मिलती है। ऐसी झांकी को देखने के लिए प्रस्तुतः अध्ययन को सुविधा को दृ ष्ट से निम्न उप-शीर्षकों में विभक्त किया जा सकता है। सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत 1-'वर्ण व्यवस्था, 2-आश्रम-व्यवस्था , 3- समाज के नारी का स्थान , 4- मनोविनोद , 5- पर्वोत्सव और त्योहार, 6-लोकाचार लोक व्यवहार, विश्वास तथा मान्यताएं शीर्षकों के अन्तर्गत अध्ययन करना उचित होगा तथा इसी अध्याय में तत्कालीन 7- आर्थिक जीवन और , 8- राजनैतिक जीवन की झांकी प्रस्तुत कर इस अध्ययन को और अधिक उपयोगी बनाने का प्रयास किया गया है। इसके साथ ही इसी अध्याय में पारिवारिक जीवन और सामान्य जीवन पर भी प्रकाश डाला गया है ।

सामाजिक व्यवस्था :

'गुरु प्रताप सूरज' में चित्रित समाज का स्वरूप चिर प्रतिष्ठित भारतीय सामाजिक धारणा के अनुरूप ही है । जिसका मूलाधार वर्णाश्रम व्यवस्था है। मनुष्य समाज में रह कर अपनी सहज प्रवृतियों को विकसित करता है । उसकी आत्मरक्षा और संगठन की भावनाओं के द्वारा ही समाज अस्तित्व में आता है। मानवीय गुणों के विकास से ही सभ्यता और संस्कृति का विकास होता है। अतः सांस्कृतिक विकास में उसकी उक्त भावनाओं का विशेष महत्व माना गया है। मानव समाज में रहकर ही आचार-विचार तथा शिष्टाचार और व्यवहार के सिध्दान्तों से अवगत होता है। कालांतर में उसकी उक्त प्रवृतियां ही सामाजिक संगठनों को रूप प्रदान करती हैं । भारतीय समाज के संगठन के उक्त दो ही मूलाधार माने गए है – 1- वर्ण- व्यवस्था 2- आश्रमव्यवस्था ।

1- वर्ण व्यवस्था : परंपरा से गुण और कर्म के अनुसार भारतीय समाज चार वर्णों में विभाजित रहा है – ब्राह्मण , क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र । ऋग्वेद के एक रूपक में इन चारों वर्णों की उत्पति के सम्बन्ध में कहा गया है कि 'समाज रूपी पुरुष के मुख

से ब्राह्मण ,भुजाओं से क्षत्रिय, जंघा से वैश्य और पैरों से शूद्र उत्पन्न हुए।[1] 'इसके आधार पर कहा जा सकता है कि आरंभ में उक्त वर्गीकरण का मुख्य आधार श्रम-विभाजन का अ आर्थिक सिध्दांत था ; किन्तु आगे चल कर इस व्यवस्था में अनेक जातियों और उप - जातियों का उदय हुआ । वर्ण व्यवस्था कर्ममूलक के स्थान पर जन्ममूलक हो गई और अनेकानेक जातियों की उत्पत्ति[2] भेद भावना की पृष्ठभूमि बन गई । जो समाज के लिए अभिशाप सिध्द हुई। प्रारंभ में उक्त चारों वर्णो में प्रथम अर्थात् ब्राह्मण के मुख्य तीन कार्य थे -- पुरोहिता, शिक्षण और मन्त्र रचना, यज्ञ आदि कराना।[3] इन कार्यो का सम्पादन करके ब्राह्मण समाज में सर्वश्रेष्ठ समझा जाता था परन्तु उसे श्रेष्ठ तभी माना जाता था जब कि वह विद्या में पारंगत हो । इसी तरह क्षत्रिय-वर्ग का कार्य प्रबलों के उत्पीड़न से निर्बलों को बचाना था । वैश्य-वर्ग का सम्बन्ध मुख्यतः वाणिज्य व्यवसाय से था । इस प्रकार वर्ग पर राजनैतिक परिवर्तनों का प्रभाव उन पर साधारणतया कम पड़ता था । शूद्र वर्ग को निर्विकार भाव से उक्त तीनों वर्गो की सेवा का कार्य सौंपा गया था । कालांतर में यह वर्ग उच्च वर्णो द्वारा हेय दृष्टि से देखा जाने लगा ।

'गुरु प्रताप सूरज' में वर्ण-व्यवस्था सम्बन्धी उल्लेख :

गुरु प्रताप सूरज 'में वर्णित गुरु-काल के समय में राजनैतिक उथल पुथल के साथ सामाजिक आदर्शों में भी पर्याप्त परिवर्तन हुए। मुस्लिम आक्रमणों के पश्चात् वर्णव्यवस्था में जकड़ी हुई जातियों को धर्म-परिवर्तन का रास्ता मिलने लगता है और वर्ण व्यवस्था

1- (क)ब्राह्मणो स्य मुखमासाद् बाहू राजन्यः कृतः ।

उरु तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायतः ।।-ऋग्वेद , 10 · 905 ।2

(ख)द्रष्टव्य : बाल्मीकि रामायण, अरण्य कांड, 14 · 30

(ग) महाभारत : शान्तिपर्व, अ · 47 · 60

(घ) श्रीमद्भागवत (स्कंध 11, 5 · 2), 2 · 5 · 37 (ङ) विष्णु पुराण , 3 · 8 · 9

(च) गीता, 4 · 13 (छ) कल्हन : राजतरंगिणी , 8 · 2407

2- Dr.P.K.Acharya: Glories of India on Indian Culture and Civilization p.59-61

3- Ibid p.59-60

शिथिल होने लगती[4] है। इस ग्रंथ में उक्त चारों वर्णों की वस्तुस्थिति का सटीक चित्रण मिलता है। इसमें समाज -व्यवस्था में दृष्टिगोचर होने वाली विश्रृंखलताओं की झांकी भली भान्ति प्रतिबिम्बित है जिसे उसमें वर्णित ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा इतर निम्न जातियों से सम्बन्धित उल्लेखों द्वारा निम्न प्रकार से देखा जा सकता है:-

(क) 'गुरु प्रताप सूरज' में ब्राह्मण : ब्राह्मण के लिए पंडित, ब्राह्मण, द्विज, विप्र आदि अनेक शब्दों का 'गुरु प्रताप सूरज' में प्रयोग मिलता[5] है। यह वर्ग पुरोहितों का कार्य भी करता[6] है। श्री अमरदास स्वयं बाबो भानो के योग्यवर की खोज के अवसर पर 'विप्र' को ससम्मान बुलाते[7] हैं। तब इसके लग्न निकालने, मुहूर्त शोधने आदि के कार्यों से पता चलता है कि इसे ज्योतिष का भी ज्ञान होता था। ये ब्राह्मण समाज-नायक बन कर जनता से संस्कारों आदि के अनुष्ठानों द्वारा आजीविका चला रहे थे – जब गुरु साहिबान ने सामाजिक सुव्यवस्था आदि के लिए नवीन संस्कारों को प्रस्तुत किया तो इन्होंने काफी हाहाकार मचाई। तत्कालीन शासकों के पास गुरु साहिबान के विरुध्द शिकायतें भी[8] की। तब श्री गुरु अमरदास जी ने अकबर के दरबार में ब्राह्मणवाद के विरोधी स्वर को उस की जड़ता से परिचित कराने के लिए रामदास को भेजा था। उस समय ब्राह्मण वर्ग स्वयं गायत्री आदि मन्त्रों के जप के रहस्य से अपरिचित[9] होकर केवल अपने प्रभुत्व को स्थापित रखने की इच्छा से कर्मकांड को आवश्यक करार देते थे क्योंकि इससे उनके स्वार्थों की पूर्ति होती थी। इस प्रकार उन्होंने अशिक्षित हिन्दुओं पर काफी प्रभुत्व और प्रभाव स्थापित किया हुआ था। वह कर्म काण्ड आदि ही करवाता[10] था। दान आदि भी ग्रहण

4- **Mazumdar B.P.: <u>Socia Economic History of India</u> p.77**

5- (क) गु० प्र० सू० रा 1, अंशु 14, अंक 14-19, पृ० 1368-69

(ख) वही, रा 1, अंशु 61, अंक 1, पृ० 1587

6- 'दिज कैतिक प्रोहत ते आदि।'- वही रा 1, अंशु 51, अंक 32, पृ० 1543

7- वही, रा 1, अंशु 41, अंक 14-15, पृ० 1492-93

8- वही, रा 1, अंशु 43, अंक 28, पृ० 1504-5

9- वही, रा 1, अंशु 44, अंक 16-21, पृ० 1507

10- (क) वही, रा० 3, अंशु 61, अंक 40, पृ० 2185

(ख) वही, रि 3, अंशु 1, अंक 5-6, पृ० 4916-17

करता था।[11] श्राध्द-कर्म के अवसरों पर जहां उसका आदर होता है वहां उसके लोप को भी पर्याप्त चर्चा है।[12] उसकी लोलुपता और आचार भ्रष्टता[13] का कई स्थानों पर उल्लेख किया गया है। आचार और व्यवहार में स्खलित ब्राह्मण-वर्ग के पतन की कहानी इस में अंकित है।[14] ब्राह्मण के वास्तविक स्वरूप पर भी प्रकाश डाला गया है।[15]

सो ब्रहमन जिन ब्रहम पछान्यो। सभि घट महिं इक पूरन जान्यो।[16]

गुरु जी ऐसे ब्राह्मणों के संरक्षक थे।

(ख) 'गुरु प्रताप सूरज' में क्षत्रिय : वर्ण व्यवस्था की विश्रृंखलता ने 'क्षत्रिय वर्ग' को भी निस्तेज किया हुआ था। गुरु साहिबान ने उसे पुनः तेजवान बनाने का सन्देश दिया।[16] उस समय मुस्लिम शासन था। अतः हिन्दू 'क्षत्रिय वर्ग' का शौर्य वीर्य जागृत करने के लिए, उसे युद्ध वीर बनाने के लिए, उसके प्रसुप्त तेज को जगाने के लिए गुरु हरिगोबिन्द जी ने और गुरु गोबिन्द सिंह ने विशेष प्रयत्न किए।[17] उसे समाज की सुरक्षा, निजत्व की रक्षा, और युद्धों में भाग लेने के लिए उद्बोधित किया गया।

11- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 3, अंशु 15, अंक 14, पृ॰ 1959, वही, रि 3, अंशु 9, अं 23, पृ॰ 5496

12- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 3, अंशु 62, अंक 10, पृ॰ 2189

13-(क) वही, रा 3, अंशु 15, अंक 18, पृ॰ 1959

(ख) वही, रि 3, अंशु 1, अंक 17-20, पृ॰ 4918

14- वही, रा 3, अंशु 28, पृ॰ 2020-2025

15- वही, रि 5, अंशु 39, ब्राह्मण लक्षण, पृ॰ 5636-37

16- वही, रा 3, अंशु 61, अंक 38, पृ॰ 2185

17- (क) वही, रा 1, अंशु 12, अंक 14, पृ॰ 1359

(ख) वही, रा 10, अंशु 24, अंक 7, पृ॰ 3855

(ग) वही, रा 11, अंशु 52, अंक 18, पृ॰ 4182

छिन छत्री धर्म हुइ परकासा।सभि दूर बुधि मलेश बिनाशु ।

× × ×

तुमरे हित जगमात मनावौं।पूज महां कोल महिं विदतावों ।
रण करते निति बनहि बडाई।शत्रुनि जगरे देहि खपाई ।। 58[18] ।।

गुरु गोबिन्द सिंह ने उसे 'खंडे का पाहुल' के अमृत को पान करा कर उस में नवीन शक्ति का संचार कर पुनः स्फूर्ति भर दी[19] ।इस के परिणाम स्वरूप गुरु साहिब जी के अनेक युद्धों में गादड़ों से बने शेरों ने[20] युद्ध-कौशल का अनुपम प्रदर्शन किया।उसे शस्त्र-पूजा, दुर्गा उपासना, वीर काव्य(चंडी की वार, चंडी चरित्र आदि) का पाठ सिखा कर रण में जूझ मरने का सबक सिखाया।क्षत्रियों के अतिरिक्त अन्य वर्गों की कायरता को दूर करने के लिए मांस आदि के सेवन की भी प्रेरणा दी।इसके शौर्य की अभिव्यक्ति 'गुरु प्रताप सूरज ' में वर्णित युद्धों में विशेष रूप से[21] हुई है। अतः सभी वर्गों के क्षत्रियत्व के जागृत रूप को उन में अभिव्यक्ति हुई[22] है ।

(ग)'गुरु प्रताप सूरज' में वैश्य वर्ग : यह वर्ग सामाजिक व्यवस्था में,उस की आर्थिक स्थिति को स्थिर रखने में विशेष योगदान देता आया है। 'गुरु प्रताप सूरज' में इसके लिए बनिया,[23] शाह,[24] वाणिआं[25] आदि शब्दों का व्यवहार हुआ है। इस वर्ग को

18- गु॰ प्र॰ सू॰ रि 3, अंशु 4,अंक 58,पृ॰ 4929

19- वही रि 3, अंशु 19, अंक 21,पृ॰ 5056

20-वही , रि 4, अंशु 10, अंक 28, पृ॰ 5250

21- सफल मरन छत्रीन को रिपु मारति मरिबो।कुपति हुइ आगे चलनि पग पाछ न धरिबो ।। – वही रि॰ 2, अंशु 32, अंक 6,पृ॰ 4823

22- (क) वही , रि 3, अंशु 20 , अंक 42,पृ॰ 5058

(ख) वही , रि 4, अंशु 10 अंक 25-26,पृ॰ 5250

23- वही , रा 8,अंशु 4अंक 14 पृ॰ 3324

24- वही ,

25- वही , रा 2, अंशु 54, अंक 27, पृ॰ 1861

स्थिति सामान्य थी । यह वर्ग दुकानदारी, लेन देन, क्रय विक्रय, ब्याज पर रुपये देने, देश विदेश से माल मंगाने और उसे विभिन्न स्थानों और नगरों में बेचने का कार्य करता था । कहीं कहीं पर इस वर्ग की कृपणता और संग्रह वृति के चित्र भी मिलते हैं[26] । इस वर्ग के कुछ लोग अपनी नेक कमाई से इच्छानुसार 'दसवन्ध' निकाल कर भी 'गुरु घर' को समर्पित करते थे या स्वेच्छा से भेंट आदि मसंदो द्वारा भेज कर या स्वयं देकर अपनी कमाई की सफलता मानते थे[27] । व्यापार के कार्य में समाज के अनेक 'शाह' लोग 'हुण्डी' आदि भी लिया दिया करते थे[28] । सामान्य दुकानदार छोटी छोटी दुकाने करते थे । एक ब्राह्मण गंगा राम जो अन्न तथा बाजरा लाद कर इधरउधर बेचता था उसका चित्र मिलता है[29]। जिस से विदित होता है कि कुछ ब्राह्मण व्यापार भी करते थे । उस समय सुदूरवर्ती स्थानों पर जहाज के द्वारा व्यापार भी किया जाता था[30] । हिन्दुओं के अतिरिक्त पठान वर्ग भी इस तरह का व्यापार किया करता था[31]। जहाज़ द्वारा व्यापार करने वाले 'मक्खन शाह' का इस ग्रंथ में विशेष उल्लेख हुआ है[32]। जो गुरु तेगबहादुर को खोज कर वास्तविक गुरु से सभी साध संगत को परिचित कराता है। तथा अपनी भेंट समर्पित करता है।

(घ) 'गुरु प्रताप सूरज' में शूद्र : सामाजिक व्यवस्था के बंधनों की जटिलता ने इस वर्ग को निम्न और अस्पृष्य समझ कर अपनी घृणा का पात्र बनाया हुआ था परन्तु गुरु साहिबान ने इसवर्ग का भी उध्दार किया । इसे ऊपर उठाने, जाति पांति तथा ऊंच-

---

26- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 8, अंशु 4, अंक 18-19, पृ॰ 3324

27- वही , रा 8, अंशु 7, अंक 27-37, पृ 3336

28- वही , रा 1, अंशु 54, अंक 7-25, पृ॰ 1557-58

29- वही , रा 2, अंशु 49, पृ॰ 1839

30- वही , रा 5, अंशु 28, अंक 40- पृ॰ 2660

31- वही , रा 1, अंशु 37, अंक 38-39, पृ॰ 1474

32- वही , रा 11, अंशु 3-9, पृ॰ 3986-4011

नोच के भेद भाव को मिटाने तथा सामाजिक समानता और एकता का भावनाओं को विकसित करने के लिए जहां गुरु अंगद देव जा ने 'लंगर' को प्रथा को चलाया।[33] गुरु अमरदास ने 'पहले पंगत पाछे संगत' का सन्देश दिया।[34] गुरु गोबिन्द सिंह जो ने एक हो बाजे मेंसे सभो निम्न वर्गीय लोगों को, निम्न समझो जाने वाली जातियों को अमृत पान करा कर महान उपकार किया है।[35] इसी तरह गुरु साहिबान ने अंतरजातोय विवाह सम्बन्धों को समर्थन देकर भो इस वर्ग का उध्दार किया है।[36] यहो नहों इसे प्रभु स्मरण कर सकने तथा प्रभु के दरबार में आकर अन्य वर्गीय लोगों के साथ बैठ कर कोर्तन करने और सुनने का अधिकार देकर भो इस वर्ग के उत्थान में अभूतपूर्व योगदान दिया है।[37]

(छ) 'गुरु प्रतापसूरज' में इतर जातियां : चंडाल, तुर्क, मलेछ इत्यादि। : 'गुरु प्रताप सूरज' में अनेक जातियों के पात्रों का उल्लेख मिलता है। एक स्थान पर सामाजिक मान्य प्राप्त 36 जातियों का भो संकेत किया गया है। परन्तु उनको पूरो सूचो नहों दो गई है। कुछ जातियों का उल्लेख हुआ है।[38] इनसभो को योध्दा बनाया जाता है। तथा अपने यज्ञ आदि के अवसर पर निम्न वर्णो तक को बुलाकर भोजन खिलाने का उल्लेख 'गुरु प्रताप सूरज' में मिलता है।[39] 'चंडाल' जाति का भो इस में उल्लेख मिलता है।[40] मलेछ

33- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 1 अंशु 10, अंक 11-12, पृ॰ 1346

34- वहो रा 1, अंशु 63, अंक 50, पृ॰ 1604

35- वहो रि॰ 3 अंशु 19, अंक 42, पृ॰ 5058

36- वहो रा 1 अंशु 60, अंक 59, पृ॰ 1586

37- वहो, रा 1, अंशु 30, अंक 14, पृ॰ 1440

38- 'नाई, बामन, शूद, सुनार। बनोर, रोड़े, जाट लुहार।
झोवर जाति, कलाल, कुम्हार। खातो, छोंबे और लुबाणे।
छतोस जाति समाज पछाणे। अपर कहां लगि करों उचार।
हैं हलाल खुरबोच चुमार।। — वहो, रि॰ 2, अंशु 22, अंक 36-37, पृ॰ 4783

39-वहो, ऐन 2, अंशु 21, अंक 41-42, पृ॰ 6322

40-(क) वहो, रा2, अंशु 31, अंक9, पृ॰1 769 तथा अंशु33, अंक1 पृ॰1 775
(ख) वहो रि 5, अंशु 39, अंक1 7, पृ॰ 5636

जाति,[41] तुर्क[42] और मुसलमानों के प्रति समाज में विशेष कर हिन्दू समाज में घृणित भावना जागृत हो चुकी थी । इस का श्रेय तत्कालीन असहिष्णु और संकीर्ण विचारधारा वाले अदूरदर्शी शासकों (औरंगजेब जैसे) को हो दिया जा सकता है।[43] उन्होंने उनके मन्दिरों आदि को गिरा कर उन की धार्मिक भावना को क्षति पहुंचाई था । हिन्दू वर्ग म्लेच्छ के स्पर्श से अपने को अपवित्र हुआ मानता था ।

'गुरु प्रताप सूरज' में वर्णित सामाजिक जीवन की विकृतियां और वर्ण व्यवस्था का महत्व

'गुरु प्रताप सूरज' में वर्ण व्यवस्था की विशृंखलता के साथ साथ वर्ण शंकरता का भी उल्लेख मिलता है।[44] इसका प्रमुख कारण तत्कालीन राजनैतिक अव्यवस्था और मुस्लिम शासन भी है। उस समय हिन्दू स्त्रियों के मुसलमान शासकों से विवाह आदि के संकेत मिलते है ।[45] जिस से चाहे दोनों वर्गों में कुछ समन्वय भी उत्पन्न हो तो भी समाज में वर्ण शंकरता निन्दोय समझो जो जाती थ ।

इसके अतिरिक्त अन्य विकृतियों में – जाति गत और कुलगत अहंकार की भावना, खानपान में छुआछुत का विचार आदि सामाजिक संगठन को शिथिल बनाये हुए था[46] । गुरु साहिबान ने जनता के हृदय में समानता और एकता की भावनाएं जागृत की । शूद्र वर्ग की स्थिति का उदात्तीकरण, धर्म-परिवर्तन और इस्लाम ग्रहण के लिए प्रलोभन

41-(क) गु॰ प्र॰ सू॰ रि 5, अंशु 39, अंक 16, पृ॰ 5636
(ख) वही, रा 6, अंशु 12, अंक 22, पृ॰ 2835
42- वही, रा 9, अंशु 36, अंक 4, पृ॰ 3679
43-(क) वही, रा 9, अंशु 36, अंक 6, पृ॰ 3678
(ख) वही रा 12, अंक 27, अंक 2-22, पृ॰ 4332-33
44- (क) वही रा 1, अंशु 43, अंक 32, पृ॰ 1504
(ख) वही रि 4, अंशु 2, अंक 41-42, पृ॰ 5218-19
45- वही रा 2, अंशु 4, अंक 27, पृ॰ 1662
46- वही रा 1, अंशु 40, अंक 10-13, पृ॰ 1486

और दण्ड व्यवस्था को रोकथाम और सिक्ख धर्म में स्वेच्छा से विभिन्न जातियों के मिलने के लिए प्रेरणा आदि सभी बातें 'गुरु प्रताप सूरज' में स्थान स्थान पर वर्णित हैं। जोवर्ण-व्यवस्था के प्रति विरोध को इतना व्यक्त नहीं करता जितना के ब्राह्मण धर्म को निरंकुशता को दूर कर समाज को मानवतावादी औरउदारतावादी दृष्टिकोण से उसके महत्व को नवीन रूप में प्रतिपादित करता है।

2- आश्रम व्यवस्था

वर्ण व्यवस्था को तरह ही आश्रम व्यवस्था भी सामाजिक उन्नति और स्वस्थता के लिए अत्यन्त उपयोगी मानी गई है।[47] शारीरिक और मानसिक शक्तियों के नियमित और व्यवस्थित विकास के लिए मानव की नैसर्गिक आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर भारतीय मनीषियों ने उसके जीवन को सौ वर्षों का मान कर उसकी आयु को चार आश्रमों – ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास में विभाजित किया था । प्रत्येक आश्रम 25 वर्ष का माना था । प्रथम आश्रम में ब्रह्मचर्य पूर्वक रह कर शक्तियों का सम्यक् विकास करते हुए विद्याध्ययन के लिए, द्वितीय में विवाह तथा गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हुए अपने आश्रित सन्तान आदि के लालन पालन के लिए, तृतीय में चित-वृत्तियों को संयमित करके लोक कल्याण में प्रवृत होने और पारलौकिक विषयों का चिंतन मनन करने के लिए तथा चतुर्थ आश्रम में सभी क्षेत्रों में चित वृत्तियों का निरोध और इन्द्रियों का दमन करके मोक्ष साधन के लिए निश्चित किया गया था ।[48]

'गुरु प्रताप सूरज' में आश्रम व्यवस्था : गुरु प्रताप सूरज' में ब्रह्चर्य की महिमा और गृहस्थ आश्रम के प्रतिपालन की महत्ता का विशेष रूप से निरूपण कियागया है । अन्य दोनों आश्रमों से सम्बन्धित संकेत नहीं के बराबर हैं।इस में एक ब्रह्मचारी के जीवन की ओर भी संकेत किया गया है जिस की प्रेरणा से श्री अमरदास जी गुरु धारण करने के लिए प्रयत्नशील होते है।[50] ब्रह्मचर्य की महिमा का वर्णन गुरु गोबिन्दसिंह

47- पी · वी · काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, अनु · अर्जुन चौबे काश्यप, पृ · 266

48- मनुस्मृति अ · 4 · 5 · 6

49-- गु · प्र · सू · रा 1, अंशु 14, अंक 25-31, पृ · 1370

जो के जीवन में विशेष रूप से हुआ है। गृहस्थ में रह कर भी वे ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए अपने क्षत्रिय धर्म के अनुसार युद्धों के कार्यों में लीन रहते है। केवल धर्म कर्म में सहधर्मिणी पत्नियों के साथ वे उनके सन्तानोत्पत्ति के अनुरोध के लिए सहवास करते हैं और जब 'साहिब देवां' के विवाह की बात चलतीहै तो वे अपने 'ब्रह्चर्य' धारण कर लेने की बात कहते हैं।जब कि हम देवी बिदताई''[50] तब से हम ने ब्रह्मचर्य धारण किया हुआ है। इस आजीवन ब्रह्मचर्य के फलस्वरुप ही वे अपनी अमित शक्ति से युद्धों में लीन रहे । इसी तरह बन्दा बहादुर के विषय में भी वे संकेत करते हैं कि जब तक वह ब्रह्मचर्य का पालन करता रहेगा उसका तेज बढ़ता जायेगा ।परन्तु ज्योंही उसने इस को त्याग कर वैवाहिक सम्बन्धों की स्थापना की उसका तेज क्षीण हो गया तथा उसे अनेक यातनाएं सहन करनी पड़ी।[51]

जती रहिं जावति रहे तेज तरो बधि तावति।

× × ×

ब्रहमचरय ते तेज सवाया ।ब्रह्म चरज ते सभि किछ पाया ।[52]

इन योद्धाओं के जीवन के अतिरिक्त सामान्य जीवन में भी लोग इस की महत्ता का अनुभव करते थे । परन्तु बाल विवाह आदि की प्रथाओं के कारण इस के अनुपालन का परंपरानुमोदित स्वरुप स्थिरता न प्राप्त कर सका ।[53] इस ब्रह्मचर्य के संकेतों के अतिरिक्त 'गुरु प्रताप सूरज' में गृहस्थाश्रम की महिमा का अनुपम गान हुआ है।[54] इस का मूल कारण गुरु साहिबान का जीवन के प्रति दृष्टिकोण था ।वे सामाजिक

50- गु॰प्र॰सू॰रा 1, अंशु 14, अंक 25-31, पृ॰ 1370

51- वही , ऐन 2, अंशु 26, अंक 31, पृ॰ 6350-5

52- वही ऐन 2, अंशु 6, अंक 11-12, पृ॰ 6245

53- वही रा 5, अंशु 64, अंक 8, पृ॰ 2764

54- भगति शुध्द नहिं, सुध आचार।बहुते ग्रिहसथी सुध्द सु बारि।

सदन शुध्द ग्रिहसती जहिं बहुते ।ऐकल घर ग्रिग देव न भुगते ।

— ऐन 1, अंशु 46, अंक 38-39, पृ॰ 6191

संगठन और व्यवस्था के लिए उदासियों, योगियों और संन्यासियों के निवृत्तिमूलक मार्ग के अनुसरण का निषेध करते हुए जनता को लौकिक जीवन में ही कमलवत रहने की प्रेरणा देते हैं ।

'जैसे जल महि कमलु निरालमु मुरगाई नैसाणे'[55]।

उनका प्रतिपादित सिक्ख धर्म वास्तव में गृहस्थ धर्म ही है।

(क) गृहस्थाश्रम का विशेष वर्णन : 'गुर प्रताप सूरज' में वर्णित सभी गुरु साहिबान गृहस्थ धर्म में रह कर ही अपनी जीवन चर्या व्यतीत करते हुए चित्रित किए गए हैं। यद्यपि उनके उपदेशों में वैराग्य भावना, संसार की असारता आदि का वर्णनहोता था तथापि वे गृहस्थ धर्म के पालन के लिए योग और भोग में समन्वयमूलक सन्देश भी देते थे[56]। वे मन की संभाव्य निर्बलता तथा जीवनगत व्यावहारिकता को भली भान्ति समझते थे। यही कारण है कि उन्होंने घर छोड़ कर बन में जाकर रहने को अनावश्यक ठहरा कर घर ही में परमानन्द प्राप्ति और मोक्ष आदि प्राप्ति की नामकामना अभिव्यक्ति[57] की है।

(ख) गृहस्थाश्रम की उपयोगिता और सफलता: इस आश्रम की उपयोगिता और सफलता का निर्देश गुरु साहिबान के उपदेशों में मिलता[58] है। वे अपने जीवन के आदर्शों के द्वारा भी इस दृष्टिकोण को अभिव्यक्त करते थे । वे आश्रम दान धर्म, सन्तति पालन, परोपकार

55- आदि ग्रंथ : सिध गोसटि, रामकली महला १, पृ॰ 938

56- जोग भोग दोनहु को पाई। रहे अलेप कमल जल माई ।।

-गु॰प्र॰सू॰ रा १, अंसु 37, अंक ११, पृ॰ 1472

57- गु॰प्र॰सू॰ रैन १, अंसु 46, अंक 38~~5~~ 39, पृ॰ 6191

58- (क) वही , रा 3 , अंसु 52, अंक 35-36, पृ॰ 2152

(ख) वही , रा 6, अंसु 59, अंक 40, पृ॰ 3035

(ग) वही , रा 7, अंसु 7, अंक 36, पृ॰ 3083

आदि के लिए परंपरा से अपनी उपयोगिता व्यक्त करता आया है। वानप्रस्थी और संन्यासी आदि भी गृहस्थी के द्वार पर भिक्षा (अन्न दान ग्रहण करने के लिए) आदि की प्राप्ति के लिए आते हैं। इसी लिए समाज में इस की मूल्यी प्रतिष्ठा मानी जाती है।

(ग) गृहस्थाश्रम के कर्तव्य, अतिथि सत्कार, धार्मिक क्रियाएं आदि : गृहस्थ पुरुष के लिए केवल अपनी स्त्री पर प्रेम रखना, सदा सत्पुरुषों के आचार का का पालन करना और जितेन्द्रिय होना परमावश्यक है। सभी गुरु साहिबान का गृहस्थ जीवन इन तथ्यों के आदर्श उदाहरण हैं। इस आश्रम में हमारे धर्म शास्त्रकारों ने श्रद्धापूर्वक पंच महायज्ञों के करने और देवताओं की आराधना करने का वर्णन किया है। इन का अनुष्ठाता गृहस्थ ही सब आश्रमों में श्रेष्ठ माना गया है।

> ग्रिहपति विरलें ने सगति करी ।
> गुर सेवहि प्रभु को सिमरैं ।। 45 ।
> तिन समान दूसर नहि होइ ।।[59]

परन्तु गुरु साहिबान ने इन पंच महायज्ञों[60] में से अतिथि पूजन को ही विशेष मान्यता दी है। और उसके निर्देश 'गुरु प्रताप सूरज में पर्याप्त मिलते[61] हैं।

<u>अतिथि सत्कार</u> : भारतीय संस्कृति में अतिथि सत्कार का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। अपना घर छोड़ना मानव को कभी प्रिय नहीं लगता, परन्तु शरीर, परिवार, और समाज की कुछ ऐसी आवश्यकताएं होती है जिन के लिए उसे इच्छा-अनिच्छा से प्रवास में जाना ही पड़ता है। किसी परिचित अपरिचित परिवार में पहुंचने पर ऐसे लोग अतिथि कहलाते हैं। इन में सुख सम्पन्न और दुख के मारे दोनों प्रकार के लोग आते हैं। साधारणतया

---

59 -(क) गु॰ प्र॰ सू॰ रा I, अंशु 55, अंक 45-46, पृ॰1563

(ख) वही, रा 2, अंशु 11, अंक 34, पृ॰ 1693

60- अध्यापनं ब्रह्म यज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम् ।
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञो अतिथिपूजनम् ।।
- मनुस्मृति, तृ॰ अ॰ श्लो॰ 70

61- गु॰ प्र॰ सू॰ रा I, अंशु 11, अंक 26, पृ॰ 1354

सुख सम्पन्न व्यक्ति का जितना स्वागत सत्कार होता है, दुःखी पीड़ित का उतना नहीं । भारतीय संस्कृति दोनों के आदर को प्रेरणा देती है। गुरु दरबार में तथा उनके धामों में अतिथि का भारतीय संस्कृति के अनुकूल ही आदर सत्कार होता है। दूर दूर से सेवक आते हैं तब उन्हें गुरुद्वार की मर्यादा के अनुकूल 'लंगर' से भोजन आदि दिया जाता है। उसके 'स्वागत सत्कार' और सेवा का पूरा ध्यान रखा जाता है। एक बार जब भाई गुरदास गुरु अर्जुन देव को मिलने के लिए जाते हैं तब उन्हें चने की रोटी परोसी जाती है। इसे देख कर वह बहुत हैरान होते है और कहते हैं कि मैं सम्बन्ध में तुम्हारा मातुल और सिख हूं।क्या ऐसा अतिथि सत्कार किया जाता है। गुरु अर्जुन देव उसके शब्दों को सुन कर उसे किस स्थिति से अवगत कराने के लिए माता भानी के पास भेजते हैं तो वही पूछते है :-

पाहुनचारो में चलि आयो ।चणिक रोटिक भोजन ख्वायो।[62]

तब माता भानी जी उन्हें सारी स्थिति बताती है कि गुरु अर्जुन देव के दोनों बड़े लड़के भाई आज्ञा में नहीं रहते तथा गुरुपद के लिए लालयित रहते हैं। जिस के कारण ऐसी स्थिति है।

इस चित्र से यह स्पष्ट होता कि गुरुधर में अतिथि को देव तुल्य माना जाता था परन्तु कभी कभी उक्त स्थिति होने पर उसकी इस तरह यथाशक्ति सेवा की जाती थी ।इस धर्म के अनुसार निर्दोष अर्थ उपार्जन अर्थात् नेककमाई करके गृहस्थ के पालन के साथ साथ स्वेच्छा से यज्ञ करने और दान देने की धार्मिक क्रियाओं का भी परंपरा से समाज में प्रचलन रहा है।[63] गुरु साहिबान के धर्म में तो 'नेक[64] कमाई'

62- गु・प्र・सू・रा 2, अंशु 28, अंक 25-30,पृ・1755

63- 'पुर्न दान का करे सरार।सो गिरही गंगा का नो'।
धरम गिरहसत का दान गहीर।। 37 ।।
बसत्र नगन को,छुधित अहारा ।।
– गु प्र・सू・रा 3,अंशु 52,अंक 37-38,पृ・2152

64- वही , रा 3, अंशु 47, अंक 5, पृ・2116

और 'वंड छक्कण' को अनुपम महिमा प्रतिपादित है।

1- निज तन ते श्रम करैखाट करि धन बहुर बांट करि भोजन[65] खाहि।

2- वंड खावणा हित धरि मिलना।धरम किरत ते करनि अहारा।[66]

3- धरम किरत ते करहिं कमाई।सिखनि साथ बांटि हम खाई।[67]

सच(सत्य), सन्तोख(सन्तोष) आदि नियमों के पालन के साथ साथ लोगों ब की सेवा करने का उपदेश भी गुरु वाणी में व्यक्त है।[68] जिसका प्रतिपादन 'गुरु प्रताप सूरज' में हुआ है।[69]

इस विवेचन से स्पष्ट है कि 'गुरु प्रताप सूरज' गृहस्थाश्रम के विशद चित्रों को प्रस्तुत कर इसकी उपयोगिता का समर्थन करता है। गृहस्थाश्रम ही भारतीय समाज का मेरु दण्ड है। वही हमारे समाज का रीढ़ है।

3- समाज में नारी का स्थान : और गुरु प्रताप सूरज' में नारी चित्रण

किसी समाज का अध्ययन उसमें नारी की स्थिति के विश्लेषण केबिना पूर्ण नहीं हो सकता। नारी और पुरुष के सम्बन्ध किसी समाज की रागात्मक, अर्थिक और सांस्कृतिक गतिविधि को प्रकट करते हैं। पुरुष प्रधान समाज का नारी-इतिहास उत्थान पतन का इतिहास होता है।पुरुष के संदर्भ में नारी की अनेक स्थितियां घटित होती हैं। ये स्थितियां

65- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 3, अंशु 47, अंक 7, पृ॰ 2116

66- वही , रा 3, अंशु 54, अंक 5, पृ॰ 2157

67- वही , रा 3, अंशु 62, अंक 12,पृ॰ 2190

68- (क)'सच सन्तोख दइआ कमावै'- आदि ग्रंथ , सिरी महला 5

(ख)आदि ग्रंथ वार आसा, पृ॰ 466-67

69- (क) गु॰ प्र॰ सू॰ रि 5, अंशु 46, अंक 14,पृ॰ 5682

(ख) वही , अंक 16, पृ॰ 5682

वर्म, परिवार आदि के अनुसार निश्चित होती रही हैं।

मध्यकालीन समाज में नारी जीवन की स्थिति धर्म साधना के क्षेत्र में बाधक और साधक दोनों ही दृष्टियों से देखी जा सकती है। परिवार में उसकी स्थिति पुरुषों की अनुवर्तिनी होने की थी । पंजाब में नारी की स्थिति तत्कालीन समाज में विशेष अच्छी न थी[70] । उस समय सती प्रथा और पर्दा प्रथा प्रचलित थी ।उसका समाज में सहधर्मचारिणी, अर्द्धांगिनी, शक्ति रूपा आदि रूप तिरोहित हो रहे थे । भारतीय संस्कृति के अनुसार तो उसके उक्त रूपों की पूजा होनी चाहिए थी ।वह भोग्या न होकर अनन्तता की प्रतीक मानी जाती थी । मनुस्मृति में तो उसके सम्मानित स्वरूप का इस तरह से आह्वान किया गया है —

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रिया।।[71]

वैदिक काल से लेकर हिन्दू शासन काल के अन्त तक नारी को सम्मान और गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त रहा ।परंपरा से जिस नारी का समाज में ऐसा सम्मानित स्थान था वह इस काल तक आते आते तिरोहित हो चुका था । शाही दरबारों और महलों में तो वह केवल विलासता का साधन बनी हुई थी । शासक वर्ग के 'अत्याचारों से वह पीड़ित थी । 'गुरु प्रताप सूरज' में बहादुर शाह की काम-पीड़ा की शिकार स्त्री के सतित्व की रक्षा के लिए गुरु गोबिन्दसिंह के प्रयासों का उल्लेख मिलता है।[72] उन से पूर्व के बादशाहों के रनिवासों की शोभा बन कर भी वह अपना जीवन काट[73]

70- डा० गोपालसिंह दर्दी : पंजाबी साहित्य का इतिहास, पृ० 99 (1962)

71-(क) मनुस्मृति 3 · 56, तथा कल्याण हिन्दू संस्कृति अंक पृ० 146

(ख) महाभारत - अनु० 46 , 5-6-7

(ग) शतपथ ब्राह्मण - 5 · 2 · 1 · 10

72- गु० प्र० सू० रैन 1, अंसु 49, पृ० 6212-16

73-(क) वही, रा 2, अंसु 4, अंक 14, पृ० 1661

(ख) रजपूतनि तनुजा के घेरे।सुनि सुन्दर लेयति करि जोरे।। 5 ।।
हिन्दवाइनि को महां कलंक।जथा अंक लाग्यो सु मयंक ।।
-वही रा 9, अंसु 9 अंक 5-6, पृ० 3577

रहा था ।नैतिक पतन के साथ साथ पारिवारिक और सामाजिक पतन के दृश्य भी तत्कालीन युग में मिलते हैं।[74] श्री गुरु नानक देव जी ने उसकी ऐसी स्थिति का एक चित्र अपनी वाणी में अंकित किया है।

''मंदि जंमारे मंडि निमारे मंदि मंगणु वीआहु ।

× × ×

सो किउ मंदा आखीऐ जितु जंमहि राजानु ।।[75]

उस समय समाज में बाल विवाह और सती प्रथा दोनों प्रचलित थी ।[76] बाल विवाह तो गुरु परिवारों में भी होते रहे थे परन्तु सती प्रथा की रोकथाम के लिए गुरुसाहिबान ने भरसक प्रयत्न किए थे ।[77] वेश्या प्रथा भी समाज में प्रचलित थी ।औरंगजेब के काल में इसका घृणित रूप देखने को मिलता है। उसने इस प्रथा के उन्मूलन के लिए सभी वेश्याओं को जमना में डिबोने के प्रयत्न कर इसे समाप्त करना चाहा था[78] परन्तु फिर भी यह किसी न किसी रूप में प्रचलित रही ।[79]

स्त्री की ऐसी स्थिति के कारण लोग कन्याओं को जन्म लेते ही मार देने के प्रयत्न करते थे । गुरु साहिबाननारी की भारतीय संस्कृति की मान्यताओं के अनुकूल आदर

74- सभि औरत की बेनी गहि गहि।बहिर निकारहिं दुरबच कहि कहि ।। ।4 ।।

— गु・प्र・सू・रि 6, अंसु 53, पृ・5959

75- आदि ग्रंथ (शब्दार्थ) पृ・473

76- गु・प्र・सू・रा 5, अंसु 64,अंक 8,पृ・2764

77- वही, रा ।अंसु 67, अंक 8,पृ・1619

78- वही , रा 9, अंसु 24,पृ・3633-34

79- वही , रि 4, अंसु 37, अंक 53,पृ・5558

युक्त स्थान दिलाने के लिए प्रयत्नशील रहे हैं। गुरु परिवारों में नारी जीवन के जो चित्र गुरु प्रताप सूरज में अंकित हैं उन के अनुसार तो नारी भारतीय धर्मशास्त्र के अनुसार पुरुष की अर्द्धांगिनी के रूप में ही चित्रित है। बीबी अमरो, माता भानी, गंगा, नानकी, दमोदरी, गुजरी, सुन्दरी जीती आदि सभी सम्मानित जीवन व्यतीत करती हैं। वह अपने पति के कार्यों में सहयोग देती है। उसी को पारिवारिक सौहार्दता और सामाजिक लोक-कल्याण के कार्यों में भाग लेने के चित्र इस में अंकित है। वह गृहस्थ जीवन में मधुरता लाती है। गुरु गोबिन्दसिंह के 'खालसा पंथ' के निर्माण के समय उनकी पत्नी तैयार हो रहे 'खंडे की पाहुल' में पतासे लाकर डालती है।[80] जो उसके पति-सहयोग के स्वरूप को स्पष्ट करता है। इस तरह से कहा जा सकता है कि 'गुरु प्रताप सूरज' में चित्रित नारी अपने सामाजिक और पारिवारिक सम्मान को सुरक्षित रखे हुए थी।

(क) <u>नारी माता पिता के घर में</u> : जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है कि 'गुरु प्रताप सूरज' पुरुष प्रधान महाकाव्य है इस लिए उसमें नारी जीवन के चित्र पुरुष जीवन के चित्रों की अपेक्षा कम अंकित है फिर भी हमें कुछ अतुल्य निर्देश मिल ही जाते हैं। गुरु परिवारों में एक चित्र गुरु हरिगोबिन्द जी की पुत्री बीबी वीरों[81] के जीवन के आधार पर नारी के माता पिता के घर में व्यतीत हो रहे जीवन और स्थिति पर किंचित प्रकाश डालता है। सामान्यजन परिवारों में तो इस के जीवन के अनेक चित्र 'गुरु प्रताप सूरज' में अंकित है। ये चित्र उन व्यक्तियों के पारिवारिक हैं जो गुरु साहिबान के साथ अपनी पुत्रियों के विवाह[82] के लिए, दहेज आदि के संग्रह[83] के लिए,

---

80- गु॰ प्र॰ सू॰ रि 3, अंशु 19, अंक 21, पृ॰ 5056

81 (क) वही रा 5, अंशु 54, अंक 7-8, पृ॰ 2625

(ख) वही, रा 6, अंशु 56, अंक 6, पृ॰ 2732

82- (क) वही, रा 4, अंशु 6, अंक 4-21, पृ॰ 2050-51

(ख) वही, रा 4, अंक 25-27, पृ॰ 2252

83- वही, रा 1, अंशु 54, अंक 23-24, पृ॰ 1557

तथा योग्य वरके पाने के लिए चिन्तित दिखाये गए हैं[84]।

गुरु परिवार का एक चित्र बाबा मानो के विवाह से सम्बन्धित 'गुरु प्रताप सूरज' में अंकित है। कैसे माता पिता अपनी कन्या के लिए योग्य वर का खोज के लिए विप्र को बुलाते हैं और तत्पश्चात् गुरु रामदास के साथ उसकी शादी की व्यवस्था करते हैं[85]। विवाह के पश्चात् भी उसका जीवन सम्मानित रूप में अंकित दिखाया गया है। वह पतिव्रत धर्म के पालन में लीन रहती हैं। बीबी अमरो आदि का भी गुरुवाणी का पाठ करती थी[86]।

(ख) नारी ससुराल में : कन्या जब गृहलक्ष्मी बन कर ससुराल में जाती है तो वह साम्राज्ञी बन जाती है[87]। ससुराल में आकर नारी कैसे जीवन यापन करती है। इस का एक सुन्दर उदाहरण गुरु प्रताप सूरज' में गुरु अंगद देव जी की पुत्री बीबी अमरों के व्यक्तित्व से देखा जा सकता है जो अ प्रातः उठकर शौच स्नान के पश्चात् गुरु वाणी को अमृत वेला में पाठिका है। जिसके व्यक्तित्व और मधुर ध्वनि ने अमरदास के जीवन में परिवर्तन ला दिया। वह जब प्रातः काल होते ही उसके पास आकर उससे वाणी के शब्द के विषय में पूछ ताछ करते हैं तो वह कैसे नम्र शब्दों में उन्हें सम्बोधित करती है। जब वे उसे साथ लेकर बाहर जाना चाहते हैं तब भी वह ससुराल की मर्यादा के

84- गु॰ प्र॰ सू॰ रि 1, अंशु 9, अंक 14-15, पृ॰ 4529 ',

(ख) वही, रि 1, अंशु 20, अंक 30-39, पृ॰ 4575-76

85- वही रा 1, अंशु 41, अंक 12-18, पृ॰ 1492-93

86- वही रा 1, अंशु 15, अंक 7, पृ॰ 1573

87-(क) सम्राज्ञी श्वशुरे भव – ऋग्वेद।

(ख) यथा सिन्धुर्नदीनां साम्राज्यं सुषुवे वृषा।
एवा त्वं सम्राज्ञेधि पत्युरस्तं परेत्य च।
– अथर्व वेद 14·1·43

(घ) पारस्कर गृहसूत्र 1·6·3

के पालन के साथ साथ बिना बुलाये अपने पिता के घर भी जाने से संकोच करती हुई ही जाती है और वहां जाकर जबउसके पिता उसे अचानक आया देखकर विस्मित होते हैं तो वह पितृतुल्य गुरु अमरदास की आज्ञा के पालन का संकेत करता है। इस चित्र से जहां नारी के ससुराल जाकर आज्ञाकारिणी रूप की अभिव्यक्ति होती है वहां सामाजिक मार्यदा का भी संकेत मिलता है कि नारी अपने माता पिता के घर भी बिना बुलाये नहीं जाना चाहिये[88]। बिना बुलाये पिता के घर जाने पर अपमानित होने की दशा से सम्बन्धित एक पौराणिक कथा भी 'गुरु प्रताप सूरज' में मिलती है।सती की पत्नी को उसका पिता कहता है।

> पति ते छपि कै बना हकारे।क्यों आई चलि सदन हमारे ।
> मो घर महिं रहिबे नहिं थान।जहिं इच्छा तहिं करहु पयान।।[89] ।9 ।।

ससुराल में जाकर नारी गृहलक्ष्मी और साम्राज्ञी ही नहीं रहती अपितु मातृत्व को भी प्राप्त करती है। भारतीय सामाजिक गठन में प्रत्येक इकाई भोग से त्याग की ओर प्रयाण करता है। नारी में मातृत्व उसी उपक्रम की पूर्ति है। 'गुरु प्रताप सूरज' में नारी की इस कामना के नर्तन के चित्र भी मिलते हैं और मातृत्व में उस कामना के समर्पण के विशेष कर देने के आदर्श भी मिलते हैं जैसे माता[90] गंगा, माता[91] सुंदरी, माता[92] जीती के चित्र अवलोकनीय हैं।कौला[93] और साहिब[94] देवी के मातृत्व पद न प्राप्त कर सके

88- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 1, अंशु 15, अंक 22-23, पृ॰ 1375

89- वही , रा 1, अंशु 48, अंक 19, पृ॰ 1530

90-वही रा 3, अंशु 2, अंक 13-14-पृ॰ 1891

91- वही, रि 2, अंशु 37, अंक 20-21, पृ॰ 4854

92- वही, रि 2, अंशु 44, अंक 24-25, पृ॰ 4886

93- (क) वही रा 5, अंशु 57, अंक 26, पृ॰ 2737

(ख) वही, अंशु 58, अंक 11, पृ॰ 2739-40

94- वही रि 5, अंशु 2, अंक 39-43, पृ॰ 5422

के आक्रोश का भी 'गुरु प्रताप सूरज' में उल्लेख है। नारी पुत्र के बिना जीवन को कैसे दुभर मानती है इसके चित्र माता सुन्दरी के जीवन में अवलोकनीय हैं । जब वह पालक पुत्र रखने का हठ करती है[95] और अन्त में दुःख प्राप्त करती है।[96] समाज में इन माताओं के गुरु पुत्रों की भारता आज भी सम्मानित है।

(ग) नारी के अधिकार और कर्तव्य : सृष्टि का आदि स्रोत है नारी। नारी सृष्टि-सृजन में पुरुष की पूरक होने के कारण समाज में सम्मानित होती आई है। वह विधाता की अनुपम कृति ही नहीं अपितु गृह का रत्न भी होने के कारण 'गृहलक्ष्मी' के पद पर प्रतिष्ठित है। नारी - गृहिणी, जननी, पत्नी, अर्द्धांगिनी, पतिव्रता, कान्ता, आदि अनेक रूपों में समाज में सम्मानित होती आई है। उसके पातिव्रत्य की पुनीत धर्म ध्वजा की प्रशस्ति 'गुरु प्रताप सूरज' में भी वर्णित हैं।

पतिव्रता इस्त्री अहै (जिस्)।
पति मोहिं प्रेम जामना दिन में। फुरहि न अपर पुरश को मन में।। 5 ।।
तिह सिख ने सिक्खा सु द्रिढ़ाई। अपनि भारजा को सुखदाई।
पतिब्रति ते तिह शकति बिसाला। जहिं चाहै पहुंचे ततकाला ।। 6 ।।
कोस हज़ारहुं घटिका मांही। पहुंचति देर लगहि जिस नांही।
इत्यादिक शकती कहु धरति। सदा प्रेम पति सो प्रतिपारत ।। ।। 7 ।।[97]

इस नारी धर्म की मीमांसा में उसके कर्तव्यों का अधिक उल्लेख है। उसके अधिकारों के स्थान पर उसके धर्म पर ही अधिक प्रकाश डाला गया है। पति सेवा ही उस का अधिकार और उसका सर्वस्व है। इसी में उसके अधिकार और कर्तव्य निहित हैं । माता

95- गु॰ प्र॰ सू॰ रैन 1, अंसु 44, अंक 25, पृ॰ 6185

96- वही रैन 2 अंसु 28-29, पृ॰ 6360-63

97- वही , रा 1, अंसु 55, पृ॰ 1560-61

जीतो के जीवन में अधिकार और कर्तव्य की हलकी सी झांकी देखा जा सकती है। परन्तु उस युग में नारी आज की तरह सामाजिक और सांस्कृतिक कार्यों में विशेष योगदान नहीं देती था ।

नारी के कुछ अन्य रूप : जैसा कि पीछे संकेत कर आये है कि 'गुरु प्रताप सूरज' में चित्रित समाज में नारी कन्या, पत्नी, और मां के मर्यादित एवं स्पृहणीय आदि रूप ही विशेष रूप से समाहत है। इसके अतिरिक्त उसके वेश्या रूप का भी इसमें चर्चा मिलता है। इसका उत्तरदायी भी तत्कालीन समाज ही है। उसके इस गर्हित रूप से गुरु गोबिन्दसिंह अपने सिक्ख की रक्षा करते हुए वर्णित है।[98] जब गुरु तेगबहादुर जी असम की यात्रा करते तथा उनके साथ राजा रामसिंह (गुरु प्रताप सूरज' के अनुसार मिर्जा मान सिंह) भी वहां पहुंचता है तो वहां की स्त्रियों के मायावी रूप को देखकर भयभीत होकर गुरु जी से रक्षा की प्रार्थना करता है। कामरूप की इन स्त्रियों का चित्र भी गुरु प्रताप सूरज में अंकित है।[99]

(ग) नारी पुरुष के सम्बन्ध - विवाह पध्दतियां : भारतीय समाज और संस्कृति के अनुसार नारी और पुरुषके सम्बन्ध को विवाह के मधुर बन्धन के द्वारा सुदृढ बनाया जाता रहा है। जिस से दोनों को नियन्त्रण में रहने और – शारीरिक , मानसिक, बौध्दिक, ऐहलौकिक, पारलौकिक तथाआध्यात्मिक उन्नति करने का प्रेरणा दी जाती रहा है। सन्तान की उत्पत्ति के द्वारा पितृ-ऋण को चुकाना ही इस अटूट बन्धन का मूल कारण नहीं है अपितु नारी और पुरुष के मधुर-पवित्र सम्बन्धों तथा सामंजस्य द्वारा पारिवारिक सामाजिक तथा राष्ट्रीय जीवन की सुव्यवस्था एवं सुख-स्वास्थ्य शान्ति की रक्षा करना है। विवाह के मूल उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए यदि तत्कालीन समाज की स्थिति का अवलोकन करें तो गुरु परिवारों में हुए विवाहों के द्वारा नारी और पुरुष के सम्बन्धों में मधुरता के चित्र ही 'गुरु प्रताप सूरज' में देखने को मिलेंगे । उस में पति-पत्नी के

98- गु प्र॰ सू॰ रि॰ 4, अंसु 36, पृ॰ 5354-58

99- वही, रा 12, अंसु 7, अंक 26-30, पृ॰ 4249-50

रूप में पवित्र प्रेम तथा एकात्मकता से युक्त गार्हस्थ्य जीवन के सुख शान्ति , उत्तम सन्तान की उत्पत्ति और दोनों की आध्यात्मिक उन्नति के चित्र अंकित हैं[100]।

हमारे धर्मशास्त्रकारों ने विवाह से पूर्व वर-वधू के लक्षण, कुल, शील, वय, जाति, तथा जन्म पत्री मिलाने आदि के अनेक विषयों पर विचार करने का विधान किया है।[101] इसी लिए हमारे समाज में असवर्ण-विवाह, स्वगोत्र-विवाह अपने वय से अधिक वयवाली कन्या से विवाह, विधवा, विवाह आदि वर्जित कहे गए हैं।[102]

इसी धर्म-विधान के अनुसार गुरु अमरदास जी अपनी कन्या के लिए वर की खोज के समय उक्त सभी विधानों का विचार करते हैं तथा विप्र को बुलाकर पूछताछ करते हैं। कन्या के विवाह के अतिरिक्त वर के विवाह के अवसरों पर भी इस विधान का विचार किया जाता है।[103] 'गुरु प्रताप सूरज' में गुरु साहिबान के विवाह -सम्बन्धों के अवसरों पर जाति, गोत्र, आयु आदि का विचार किया गया है।

हमारे धर्म शास्त्रकारों ने विवाह की आठ पध्दतियों का उल्लेख किया है – ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पैशाच।[104] इनके लक्षणों के विषय में भी मनुमहाराज ने विस्तारसे चर्चा की है । और इन में से प्रथम चार प्रकार के विवाहों को उत्तम कहा है। उन में से 'गुरु प्रताप सूरज' में तो गुरु परिवारों के ब्राह्म विवाह की पध्दति को अपनाया गया है।

100- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 3, अंशु 3, अंक 13-19, पृ॰ 1898-99

101- मनु स्मृति तृतीय अध्याय

102- वही, तृतीय अध्याय , श्लोक 43-44 पृ॰ 53

103- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 1, अंक 1, पृ 1493

104- ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथासुराः ।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमो धमः ।।
-- मनुस्मृति , 3 ·21

'गुरु प्रताप सूरज' में तत्कालीन विवाह पध्दति तथा तत्सम्बन्धी लोक रीतियों का पर्याप्त जानकारी मिलती है। उस समय 'वर' को ही विशेष रूप से देखा जाता था।[105] उसकी आर्थिक स्थित की जानकारी भी प्राप्त की जाती थी परन्तु इस का विचार जाति, कर्मगुण आदि की तरह ही होता था।[106] सगाई आदि से पूर्व ज्योतिषियों को बुला करवर और कन्या के राशि ग्रह पर भी विचार किया जाता था। पुत्रो के विवाह पर प्रायः व्यक्ति अपनी पत्नी से विचार विमर्श आदि करता था।[107] पुरोहित विवाह संबंध स्थिर करने का कार्य करते थे। साहा सोधने[108] और छुहारा देने की प्रथा भी प्रचलित[109] थी। वर वालों की बरात की तैयारियों और विदाई के दृश्य भी इस में अंकित[110] है। विवाह के अवसरों पर लावां[111] लेने, लौकिक वैदिक रीति रिवाजों का प्रचलन,[112] स्त्रियों का गालियां[113] देना, अग्नि परिक्रमा,[114] गणेश तथा नवग्रहों का पूजन[115] आदि के अतिरिक्त कंगन खोलने[116] आदि

105-गु॰ प्र॰ सू॰ रा 1, अंशु 41, अंक 14, पृ॰ 1492

106- वही अंक 16, पृ॰ 1493

107- वही, अंक 12-13, पृ॰ 1492

108- वही, रा 7, अंशु 6, अंक 3-4, पृ॰ 3076

109- वही, रा 7, अंशु 8, अंक44, पृ॰3084, वही, रि 1, अंशु9, अंक19, पृ॰ 4530

110- वही, रा 4, अंक27-40, पृ॰ 2264, वही, रा4, अंशु 14, अंक11, पृ॰ 2282

111-वही, रा 4, अंशु 12, अंक11, पृ॰ 2274, रा॰ 8, अंशु 6, अंक9, पृ॰3331

112-वही, रा 5, अंशु 27, अंक17, पृ॰ 2414, वही, अंक 35, पृ॰ 2615

113-वही, रा5, अंशु27, अंक19, पृ॰2614, रा 7, अंशु7, अंक 14, पृ॰ 3081

114- 'अगनि प्रदछन फेरे नाथ'। वही, रा 5, अंशु 27, अंक 36, पृ॰ 2615

115(क) नौं ग्रैह को अभिखेकनि करे।' वही रा 5, अंशु 55, अंक 31, पृ॰ 2730

(ख) 'गणपति नौ ग्रैह को पुजवाइ'। वही रा 6, अंशु 18, अंक 4, पृ॰ 2860

116- (क) वही, रा 4, अंशु 10, अंक 17, पृ॰ 2267

(ख) वही, रा 8, अंशु 6, अंक 32, पृ॰ 3333

तक के दृश्य 'गुरु प्रताप सूरज' में देखे जा सकते हैं ।

विवाह में देहेज देने की प्राचीन प्रथा[117] का भी 'गुरु प्रताप सूरज' के समाज में प्रचलन था । उस समय की राजनैतिक परिस्थितियों के कारण हिन्दू समाज में बाल विवाह[118] का ही विशेष प्रचलन था । गुरु हरिगोबिन्द और गुरु हरिराय जी आदि के बाल विवाहों का इस में उल्लेख हुआ है। यहां यह भी कहा जा सकता है कि भाई सन्तोख सिंह को तत्कालीन वैवाहिक रीतिरिवाजों की विशेष जानकारी थी ।

इस प्रसंग में एक बात और भी उल्लेखनीय है 'गुरु प्रताप सूरज' के समाज में पुरुषों को बहु-विवाह की छूट थी । गुरु हरिराय के आठ विवाहों,[119] गुरु हरिगोबिन्द के तीन विवाहों तथा गुरु गोबिन्द सिंह के तीन विवाहों का उल्लेख[120] हुआ है। इसके अतिरिक्त समाज में वृद्ध-विवाह[121] तथा चादर डालने की प्रथा भी प्रचलित[122] थी ।

4 - मनोविनोद अथवा मनोरंजन के साधन

मनुष्य की जब भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाती है तो वह मनस्तुष्टि के लिए निजी रुचि के अनुकूल मनोविनोद के ऐसे साधनों को अपनाता है जिन से वह जीवन-संग्राम की क्लान्ति को कुछ समय के लिए दूर कर सके । प्राचीन काल से चले

117- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 4, अंशु 14, पृ॰ 228। तथा
वही , रा 8, अंशु 6, अंक 22, पृ॰ 3332

118-वही, रा 5, अंशु 64, अंक 8, पृ॰ 2764

119-(क) वही रा 1, अंशु 8, अंक 9-10, पृ॰ 1336-37
(ख) इस तथ्य को विद्वान प्रमाणिक नहीं मानते, देखिए: भाई वीरसिंह का फुटनोट, पृ॰ 2616 - 2618

120- द्रष्टव्य: पूर्वोक्त अध्याय शीर्षक, पारिवारिक जीवन ।

121-गु॰ प्र॰ सू॰ रा 10 अंशु 4, अंक 15, पृ॰ 3784

122- (क) वही , रा 1, अंशु 33, अंक 33-34, पृ॰ 1459
(ख) वही , रा 1, अंशु 33, अंक 6, पृ॰ 1454-55

आ रहे इन साधनों का विस्तृत विवरण आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने ग्रंथ 'प्राचीन भारत के कला कलात्मक विनोद' में प्रस्तुत किया है।[123] ये मनोविनोद अथवा मनोरंजन के साधन किसी भी देश या समाज की संस्कृति की निजी विशेषताओं के द्योतक हुआ करते हैं । कहना न होगा कि व्यक्ति के बौद्धिक स्तर तथा व्यवस्था के अनुसार इन के रूप भी स्वभावतः भिन्न हुआ करते हैं । बच्चों, व्यस्कों, तथा वृध्दजनों के मनोविनोद के साधन उनकी रुचि के अनुसार जिस प्रकार भिन्न होते हैं उसी प्रकार धनी, निर्धन तथा शिक्षित, अशिक्षित के मनोविनोदात्मक रूपों में स्वाभाविक भिन्नता होतीहै ।

जीवन में इन मनोविनोदों का महत्वपूर्ण स्थान है। मनुष्य बालकाल से लेकर बुढ़ापे तक इन के लिए लालायित रहता है। प्रारम्भिक अवस्था में इनकी आवश्यकता शारीरिक शक्तियों के विकास के लिए होती है तो प्रौढ़ावस्था में जीविकोपार्जन की व्यस्तता,-जनित क्लान्ति या शिथिलता को दूर करने के लिए मनोविनोदों की आनन्ददायी योजना आ बनाई जाती है। बालकाल से लेकर वृध्दावस्था तक मनोविनोद के साधन बदलते रहते है। बाल-काल में दौड़ धूप के कार्यक्रमों में बच्चों का मन अधिक लगता है। बड़े होने पर सामाजिक जीवन में सहयोग की भावना अधिक बलवती हो जाती है।

<u>'गुरु प्रताप सूरज' में मनोविनोद और मनोरंजन के साधन :</u> 'गुरु प्रताप सूरज' में बालकाल से लेकर वृध्दावस्था तक के खेलों और मनोविनोदों का वर्णन हुआ है। गुरु जी साहिबान जी के बालकाल की घटनाओं के वर्णनों का अध्ययन करने पर उनके खेलों का भी पर्याप्त ज्ञान होता है। मुगल कालीन संस्कृति के साथ सम्पर्क होने के कारण उन्होंने शिकार, मृगया, घुड़सवारी, आयुध विद्या[124] आदि के शुगलों में भी भाग लिया । वे बाज रखते थे ।[125] कुश्ती देख कर उससे मनोरंजन करते थे । बादशाहों के साथ चौपड़ चौगान आदि

123- प्रकाशक : ग्रंथरत्नाकर बम्बई ।

124- गु० प्र० सू० रा 7, अंसु 15, अंक 20, पृ० 3114

125-(क) मल्लनि की कुशती कहु जोवा ।। ।7 ।।

× × ×

कुशतीकरति न त्यागै काहू । तरे गिरावै बहु बल जांहू, ।। वही, रा9, अंसु48 पृ० 3722

(ख) वही रि 1, अंसु 18, अंक 8 , पृ० 4565

(ग) वही, ऐन 2, अंसु 17, अंक 24, पृ० 6301

खेलते थे ।

सामान्य जनता बाजारों के तमाशों, नट और मदारियों के खेलों को देखकर अपना मनोरंजन करती थी भ। शाही दरबारों में नृत्य और संगीत के कलाओं द्वारा भी मनोरंजन होता था परन्तु औरंगजेब के समय में इन कलाओं को निकाला जा चुका था । पंजाब में सामूहिक उत्सवों में नृत्योल्लास के दृश्य देखने को मिलते थे । नवयुवक कुश्ती, मल्ल क्रीड़ा, शिकार आदि का अधिक शौक रखते थे ।

गुरु अंगद देव और गुरु अमरदास की आयु बड़ी होने के कारण वे बच्चों के साथ खेल करअपने बचपन का स्मरण करलिया करते थे । 'गुरु प्रताप सूरज' में ऐसा उल्लेख मिलता है कि जब हुमांयू गुरु अंगद देव जी के दर्शनार्थ गया तो उस समय गुरु जी बालक बालिकाओं से खेल में व्यस्त थे ।[126] गुरु अमरदास के पारिवारिक जीवन के चित्रों गुरु अमरदास जी के पोतों[127] और दोहते[128] के प्रति वात्सल्य के चित्र देखने को मिलते है । जिन से उनके बच्चों के साथ खेलने के संकेत मिलते हैं। गुरु रामदास और गुरु अर्जुनदेव के जीवन सम्बन्धी चित्रों में खेलोंऔर मनोविनोदों के विशेष दृश्य देखने को नहीं मिलते , हां गुरु हरिगोबिन्द जी के बाल्यकाल और यौवन काल के खेलों और मनोविनोदों के पर्याप्त निर्देश मिलते हैं । बचपन मेंवे बाबा बुड्ढा से शिक्षा ग्रहण करते समय यदि खेल में भी अपनी व्यस्तता दिखाते हैं तो यौवन में वे बादशाह जहांगीर के कृपा पात्र बन कर उनके साथ चौपड़ आदि खेलते हैं। यही नहीं बल्कि उनकी सन्तान भी अपने साथियों के साथ कन्दुक क्रीड़ा[129] आदि में लीन दिखाई देती है। इसके पश्चात् गुरु गोबिन्द सिंह जी के बाल्यकाल के खेलों और विनोदों के पर्याप्त चित्र देखने को मिलते हैं । उन्हें छोटी अवस्था[130] में तोते, सारिका, कबूतर,

---

126- गु० प्र० सू० रा १, अंशु 10, अंक 14, पृ० 1346-47

127- वही रा 1, अंशु 59, पृ० 1577

128- वही रा 1 अंशु 68, अंक 53, पृ० 1614

129- वही, रा 6, अंशु57 अंक 33-35, पृ० 3026

130- वही रा 12, अंशु 17, अंक 26, पृ० 4212

तीतर आदि पक्षियों के खेल दिखा कर उनका मन बहलाया जाता है। तत्पश्चात् उनके बाल कौतुकों[131] के दृश्य देखने को मिलते हैं । यौवन तो युद्धों के खेलों में व्यस्त रहता है। और उनके अन्तिम समय के चित्र में भी चौपड़ के खेल के प्रति उनके शौक का पता चलता है। वे अपने पास आने वाले पठान के साथ चौपड़ खेलते[132] है और उसे प्रतिदिन पांच मोहरे भी देते हैं । इनके अतिरिक्त उनके वीररसात्मक खेलों के तो पर्याप्त निर्देश - 'गुरु प्रतापसूरज' में बड़े मार्मिक ढंग से वर्णित हैं ।

(क) आंख मिचौनी तथा अन्य खेल : गुरु गोबिन्द सिंह अपने बालकाल में अपने अनेक साथियों के साथ जहां कृत्रिम युद्ध आदि के अधिक खेल खेलते थे वहां आंख मिचौनी'[133] के खेल में भी व्यस्त दिखाये गए हैं। उनके बाल कौतुकों में से – नौका विहार , गुलेल चलाना,[134] आदि बन्दरों का तमाशा देखना और उन्हें गुड़ डालना[135] आदि का 'गुरु प्रताप सूरज में वर्णन मिलता है। उनके मनोरंजन के लिए आसाम के राजा के उपहार भी विशेष उल्लेखनीय है जिस में कठपुतली[136] के नृत्य का विशेष आकर्षण वर्णित है।

(ख) चौपड़ या चौसर : यह खेल भी मुगलकालीन भारत में विशेष रुप से लोकप्रिय रहा है। बादशाह वजीर ही नहीं अपितु सामान्य जनता भी आमतौर पर इस खेल में रुचि लेता था । इस खेल का गुरु हरिगोबिन्द[137] और गुरु गोबिन्दसिंह जी के जीवन चरित्र में वर्णन मिलता[138] है। यह खेल मुस्लिम संस्कृति के प्रभाव से भारत प्रचलित हुआ

131- गु० प्र० सू० रा 12, अंशु 18, पृ० 4294

132-वही ऐन 2अंशु 17, अंक 24,पृ० 6300

133- वही रा 12, अंशु 19, पृ० 4300-1 तथा अंशु 20,पृ० 4304-5

134- वही, रा 12, अंशु 21, अंक 14,पृ० 4311

135- वही , रा 12, अंशु 45,अंक 21-25,पृ० 4399-4400

136- वही , रि० 1, अंशु 23, अंक 3,पृ० 4583

137- वही , रा 8,अंशु 17, अंक 28,पृ० 3379तथा अंशु 18,अंक 3-4,पृ० 3380

138 - वही , द्रष्टव्य : 132 फुटनोट ।

और मध्यकालीन भारत में इसके सर्वाधिक प्रचलित रूप को देखा जा सकता है। औरंगजेब भी रामराय के साथ चौपड़ के की बाजी खेलतेहै और हार जाते हैं ।[139]

(ग) द्यूत क्रीड़ा : इस खेल का निर्देश औरंगजेब और उसकी बेगमों के जीवन में के जो मिलता है जब रामराय जी उन्हें अपना करामाते दिखाते हैं तब इस प्रकार की खेलों से भाग्य-निर्णायक अपने करतबों से औरंगजेब को विस्मित कर देते हैं । इस खेल से यद्यपि मनोरंजन होता है तथापि हार जीत के आवेश में कभी कभी हानि भी हो जाती है। जिसके लिए व्यक्ति को कष्ट सहन करने पड़ते हैं। इस खेल का चलन समाज में सदा से ही रहा है। निम्नवर्ग के अतिरिक्त शासक वर्ग का विशेष लोकप्रियता रही है। गुरु साहिबान तो इसे निन्दनीय कर्म ही समझते है ।[140]

(घ) बाज़ उड़ाना और पकड़ना : इस खेल से सम्बन्धित निर्देश गुरु हरिगोबिन्द और शाहजहां के जीवन चित्रों में मिलते हैं ।[141] एक बार तो उनके परस्पर युद्ध का कारण ही बाज़ बन गया था ।[142]

(ङ) चौगान का खेल : 'गुर प्रताप सूरज' में इस खेल से सम्बन्धित निर्देश गुरु हरिगोबिन्द और जांहगीर के परस्पर सम्बन्धों में मिलते हैं।[143] यह खेल जन साधारण के मनोरंजन का साधन न था । मुगलकाल में यह खेल बादशाओं और वजीरों में लोकप्रिय था।[144]

(च)बाजीगर के खेल : नट तथा बाजीगर के खेल आज भी आश्चर्य चकित करने वाले देखे जाते है। गुरुकाल तथा मुग़लकाल में ये खेल जन सामान्य का विशेष मनोरंजन करते थे । और अपना कौतुहल की सृष्टि से लोगों को अपनी ओर आकर्षित

139- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 9, अंशु 46, अंक 3[illegible]-45, पृ॰ 3715-17

140- वही, रा 8, अंशु 17, अंक 2[illegible], पृ॰ 3[illegible]79

1[illegible]1- वही , रा 6, अंशु 4, अंक पृ॰ 2800

142- वही , अंशु 5, पृ॰ 280[illegible]

1[illegible]3- वही , रा 4, अंशु 55, अंक 14-17, पृ॰ 2499

144- द्रष्टव्य : आईने अकबरी (उर्दू) आईन न 29, पृ॰ 452-456

करते हैं। 'गुरु प्रतापसूरज' में [illegible] का निर्देश मिलते हैं।[145] [illegible] साधना में भी [illegible] को [illegible] के [illegible] सदृश बताया गया है। बाजार के तमाशे के माध्यम से ईश्वर द्वारा माया के [illegible] के [illegible] का भी उल्लेख मिलता है।[146]

(ग) नट- [illegible] : जनसाधारण के बीच आज भी बन्दर और रीछ के नाच दिखा कर [illegible][147] लोग इन के द्वारा मनोरंजन करते है और अपनी आजीविका का उपार्जन करते हैं । 'गुरु प्रताप सूरज' की दार्शनिकता इन के [illegible] के द्वारा भी व्यक्त की गई है।[148] नट के खेलों का तो कई स्थानों पर उल्लेख हुआ है।[149]

मनोरंजन के कुछ अन्य साधन :

(क) जल-विहार : 'जल विहार' या 'जल-क्रीड़ा,' भी सामान्य जनता के मनोरंजन के कुछ साधनों में से एक रहा है। छोटे बालकों की नदी-जल में क्रीड़ा के निर्देश भी 'गुरु प्रताप सूरज' में मिलते हैं ।[150]

(ख) बाग की सैर: मध्यकालीन जनसमाज का उद्यान-विहार भी मनोरंजन का साधन रहा है। गुरु साहिबान तो जहां भी बाहर यात्रा के लिए जाते हैं वे तो अपना शिविर भी बागों में जाकर लगाते हैं। जिनसे उनके उद्यान प्रेम की झांकी मिलती है। इसके अतिरिक्त जंगलों का भ्रमण या कुंजविहार भी अपनी रमणीयता के कारण जन के आकर्षण का केन्द्र रहा है। एकबार गुरु हरिगोबिन्द जी के साथ उद्यान-विहार करते हुए हरिराय के बड़े चोगे के एक फूल के पौधे के साथ [illegible] उलझ जाने

145- गु॰ प्र॰ सू॰ रि 3, अंशु 29, अंक 26, पृ॰ 5098

146- वही रा 2, अंशु 35-36, पृ॰ 1785-90

147- (क) वही, रा 1 अंशु 18, अंक 5, पृ॰ 4565

(ख) वही, रि 1, अंशु 14, अंक 19, पृ॰ 4549

148- वही , रा 8, अंशु 47, अंक 36-37, पृ॰ 3486

149-(क) वही , रा 6, अंशु 31, अंक 11, पृ॰ 2920

(ख) वही रा 6, अंशु 46, अंक 11, पृ॰ 2980

150- वही , रा 12, अंशु 19, अंक 9-10, पृ॰ 4300-1

का संकेत 'गुरु प्रताप सूरज ' में वर्णित है।[151] गुरु गोविन्द सिंह की उद्यान क्रीड़ाओं का वर्णन भी गुरु प्रताप सूरज' में मिलता है।[152]

(ग) शिकार खेलना : मुग़ल कालीन भारत में शिकार खेलना एक बहुत ही अच्छा मनोविनोद माना जाता था । मुग़ल कालीन चित्र कला इस बात की साक्षी देती है[153] तथा आईने अकबरी में इसकी सुविस्तृत चर्चा मिलती है।[154] यह खेल बड़ा खतरनाक होते हुए भी बहादुरी का था । गुरु हरिगोबिन्द जी[155] और गुरु गोविन्दसिंह जी[156] के शिकार खेलने के चित्र भी 'गुरु प्रताप सूरज' में मिलते हैं । वे शेर का शिकार कर जहां अपने शौर्य वीर्य और साहस का परिचय देते हैं वहां दर्शकों का भी मनोरंजन करते हैं ।

(घ) मल्ल युद्ध : 'गुरु प्रताप सूरज 'में वर्णित पौराणिक आख्यान के रूप में भीम और जरासन्ध के 'मल्लयुद्ध ' का भी वर्णन किया गया है।[157] जिस पर महाभारत के इस युद्ध की छाप अंकित है। जो मनोरंजन के साथ साथ शारीरिक बल के प्रदर्शन के चित्र भी प्रस्तुत करता है। उक्त शेर के शिकार की तरह ही यह एक महत्वपूर्ण मनोविनोद है। जो सामान्यतया नवयुवक पुरुषों के मनोरंजन का ही प्रमुख साधन है।

अन्य मनोविनोद : 'गुरु प्रताप सूरज' में उक्त मनोविनोदों के अतिरिक्त बहिया युद्ध[158]

151- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 8, अंशु 45, अंक 14, पृ॰ 3478

152- वही , रा 12, अंशु 18, अंक 8-15, पृ॰ 4295-97

153- **Dr. Tara Chand: Influence of Islam on Indian Culture Plate No. 23 p. 229-230**

~~154-~~

154- अबुल फज़ल : आईने अकबरी (उर्दू), अट्ठाईसवां आईन, पृ॰ 434-452

155- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 4, अंशु 55, अंक 31-32, पृ॰ 2460

156-(क) वही, रि 1, अंशु 51, अंक 24-26 पृ॰ 4694

(ख) वही, ऐन 1, अंशु 50, पृ॰ 6219

157-वही , रा 11, अंशु 61, पृ॰ 4215-16

158-(क) वही रा 5, अंशु 54, अंक 15-17 पृ॰ 2725

(ख) वही, रा 7, अंशु 15, अंक 21, पृ॰ 3114

और घोड़ों[159] आदि को दौड़ाने के चित्र भी देखने को मिलते हैं। इनके युद्ध के तमाशे को हजारों की संख्या में लोग देखते थे ।

निष्कर्ष :

गुरु साहिबान जीवन में मनोविनोद का महत्व भली भान्ति समझते थे । कुछ लोग चाहे इन्हें समय का अपव्यय समझते हों परन्तु इनके बिना जीवन में नीरसता का ही साम्राज्य रहेगा । गुरु साहिबान के अतिरिक्त मुग़ल शासकों की भी इन में रुचि दिखाई देती है। सामान्य जनता के पास यद्यपि उदरपूर्ति की समस्या से ही कम समय निकलता था तथापि वे भी कभी कभी मेलों, मदारी आदि के खेलों, पहलवानों की कुश्तियों के प्रदर्शनों को देख कर अपना मनोरंजन कर लिया करते थे । बालिकाओं के खेलों के विषय में संकेत नहीं के बराबर है। जिस से पता चलता है कि समाज के इस अंग के मनोरंजन की ओर विशेष ध्यान नहीं दिखाई देता है अपितु तत्कालीन पुरुष प्रधान समाज ने अपने मनोरंजन का ही साधन बनाया हुआ था । 'गुड़ियों' के खेलने की आयु में ही उसका विवाह हो जाता था ।

5 - सामाजिक पर्वोत्सव और त्यौहार :

पर्वोत्सव किसी भी समाज की सांस्कृतिक निधि हुआ करते हैं तथा देश और समाजगत वैशिष्ट्य के अनुसार जनजीवन के बीच विशेष प्रकार से प्रचलित होकर देश के निजी व्यक्तित्व को प्रस्तुत करते हैं।भारतवर्ष में अनेक ऐसे पर्वोत्सव हैं जिन्हें यहां का समाज चिरकाल से मानाता चलाआ रहा है और उनके माध्यम से यहां की सनातन संस्कृति की एकता को प्रतिष्ठित कर सका है।'पर्वोत्सव' के अवसर पर अच्छा खाने पीने, पहनने ओढने, सजने, सजाने का चलन भी सदा से रहा है।इस से भारतीय समाज की समृद्धि का परिचय मिलता है।

159-गु॰ प्र॰ सू॰ रा ?, अंशु 15, अंक 23, पृ॰ 3114

'गुरु प्रताप सूरज' में सामाजिक पर्वोत्सव और त्योहार

'गुरु प्रताप सूरज' में अनेक पर्वोत्सव और त्योहारों का वर्णन मिलता है। इन में से कुछ का तो ऐतिहासिक, सामाजिक और धार्मिक महत्व है और कुछ भारतीय ऋतुओं के परिवर्तन के अनुसार मनाये जाते हैं। इनका भारतीय लोक जीवन में सांस्कृतिक महत्व है। इनसे हमारे जातिगत और देशगत वैशिष्ट्य का झलक मिलती है। यह उल्लेखनीय है कि मध्यकालीन जीवन की झांकी प्रस्तुत करने वाले इस काव्यग्रंथ में पर्वोत्सवों से सम्बन्धित पर्याप्त निर्देश संकीत हैं। कुछ हिन्दू त्योहारों को मनाने की नई रीति का प्रचलन भी गुरु साहिबान ने किया और अपनी साध-संगत को प्रत्येक मास में कुछ निश्चित दिनों पर गुरु दरबार में अवश्य सम्मिलित होने के आदेश दिए। गुरु दरबार में एकत्रित होने से तथा प्रीति भोज (लंगर) आदि के ग्रहण करने से सामाजिक एकता और भाईचारे की भावनाएं जागृत हुई।

(1) पर्वोत्सव : इन के अन्तर्गत ऋतु, मास, आदि से सम्बन्धित वैसाखी, अमावस, संक्रान्त, एकादशी, पूर्णमासी, तीज, राखी आदि सम्मिलित किए जा सकते हैं। गुरु साहिबान ने अपने से पूर्व के गुरुधामों पर जाकर उत्सव मनाने के विषय में भी संकेत किया है।

(2) त्योहार : इन के अन्तर्गत नवरात्रे, दीपावली, दशहरा, जन्माष्टमी, तथा होली आदि सम्मिलित किए जा सकते हैं।

(1) पर्वोत्सव :

(क) वैसाखी : इस पर्व का पंजाब के जन जीवन में सांस्कृतिक महत्व है। कृषक वर्ग कृषि के काटने आदि के पश्चात् वैसाखी के मेले में बड़े उल्लास से भाग लेता है। गुरु साहिबान ने इस अवसर पर संगत को गुरु-द्वारों में एकत्रित होने का सन्देश दिया। तदानुसार लोग उल्लास दर्शनार्थ गुरु दरबार में उपस्थित होते और अपनी मनोकामनाएं पूर्ण करते हैं। 'गुरु प्रताप सूरज' में इस पर्वोत्सव का कई स्थानों पर उल्लेख मिलता है:-

1- जो तुम चितवो सम चित तोरा। सगरे आवहिं दिवस बसोरा।

लिखि सिक्खन को लिखहु पठावहु ।गुर दरशन को इकठे आवहु'।। 6 ।।[160]

2- बड़ मेला वैसाखी होवा।पुरहिं कामना सतिगुर जोवा ।। 44 ।।[161]

3- पुन मेला वैसाखी केरा।आइ मिल्यो गुर निकटि घनेरा।। 23 ।।[162]

4- भलो परब अबि पहुंच्यो आनि।भयो बिसाखी को इशनान।। 7 ।।[163]

5- दिवस बसोए को बड मेला।चहुं दिशि ते नर नारि सकेला।।[164]

6- जबहि बसोए को दिन आवै।चहुं दिशि ते संगति उमडावैं।।[165]

7- बड मेला वैसाखा होवा ।[166]

(ख)चातुर्मास : चातुर्मास का सांस्कृतिक महत्व भारतीय जीवन के अन्तर्गत चिरकाल से प्रतिष्ठित है। इसके चार मासों में सम्भवतः वर्षा के कारण बड़े बड़े साधु-संत एक स्थान पर निवास करते है और अपने श्रध्दालु भक्तों को उपदेशादि देने का कार्य करते है । गुरु गोबिन्द सिंह जब बहादुर शाह को आगरे मिलने जाते हैं तो 'चौमासा' वहीं धर्मोपदेश में ही व्यतीत करते हैं ।[167]

(ग) संक्रान्ति(संक्रान्त), एकादशी और पूर्णमासी : यह सूर्य के मेषादि राशिभोग से होतीहै। सौर वर्ष में ये 12 होती हैं। उन में से मकरादि छः उत्तरायण की और कर्कादि छः दक्षिणायन की होती है।इससंक्रान्त के पश्चात् एकादशी, पूर्णमासी और अमावस का भी हिन्दू संस्कृति में विशेष महत्व है।इन अवसरों पर लोग

160- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 1, अंशु 43, अंक 6-15, पृ॰ 1502-3

161- वही , रा 9, अंशु 6, पृ॰ 3568

162- वही , रा 10, अंशु 4, पृ॰ 3784

163- वही, रा 11, अंशु 21, पृ॰ 4051

164- वही, रि 2, अंशु 45, अंक 5, पृ॰ 4891

165- वही , रि 3 , अंशु 3, अंक 2, पृ॰ 4924

166- वही , रा9, अंशु 6, अंक 44, पृ॰ 3568

167- वही , ऐन 2, अंशु 1, अंक 7, पृ॰ 6226

स्नान आदि कर तथा स्वच्छ वस्त्रों से विभूषित होकर मन्दिर या गुरुद्वारे जाते हैं। पाठ या गुरुबाणी कीर्तन का श्रवण करते हैं । 'गुर प्रताप सूरज' में इन सब से सम्बन्धित उल्लेख मिलते है । यथा :-

संक्रान्त :

1- हुतो मेखा को तदि संक्रान्ति ।[168]

2- बहुर मेख को जबि संक्रान्त ।[169]

3- मेख संक्रांत को ।[170]

4- मेख संक्रात को धरि शरधा रहै हैं।[171]

5- जिस दिन माघ की संक्रांत[172]

एकादशी :

संजम को अहारनित करिबे । इहुएकादशी सिख बृत्ति धरिबे।[173]

पूर्णमाशी :

1- पूरनमाशी को मेला गुर दरशन करि नर समुदाइ ।[174]

2- पूरनमाशी पत्र महिं लिख मेला दरसाइ ।[175]

3- पूरनमाशी मेला मेरे ।।[176]

अमावस:

1- दिन गुर पूरब दरस संक्रांति ।[177]

168-गु॰ प्र॰ सू॰ रा 2, अंसु 37, अंक 37, पृ॰ 1796

169- वही , रा 2, अंसु 57, अंक 58, पृ॰ 1870

170- वही , रा 3, अंसु 1, अंक 30, पृ॰ 1887

171- वही , रा 3, अंसु25 अंक 16, पृ॰ 1909

172- वही , रा 8, अंसु 7, अंक 11, पृ॰ 3335

173-वही, रा 3, अंसु 60, अंक36, पृ॰ 2184

174- वही , रा 4, अंसु 22, अंक 27, पृ॰ 2312

175- वही , रा 4, अंसु 22, अंक 1, पृ॰ 2312

176- वही , रा 8, अंसु 47, अंक 11, पृ॰ 3484

177-वही , रा 1, अंसु 40, अंक 46, पृ॰ 1489

2- ऐसा होइ अचारज भारो ।[178]

(घ) त्योहार :

(क) नवरात्रे : नवरात्रों के मनाने तथा दुर्गा पूजन से सम्बन्धित कई स्थानों पर निर्देश मिलते है। गुरु गोबिन्द सिंह जो दुर्गा और शक्ति के उपासक थे। वे इन के मनाने के सम्बन्ध में संकेत करते हैं। यथा :-

1- पितरनि पख ते नौरते चंडी जगत मनाइ।[179]

2- मलगे नुराते अगरे पूजन चंडि कालका माई।[180]

3- पूज नुराते दुरगा माई।

× × ×

इत सतिगुर पूजति नवराते । चंदन धूप फूल बहु भांते ।[181]

(ख) दशहरा या विजय दशमी : यह आश्विन मास के शुक्ल पक्ष को दशमी को मनाया जाता है। परंपरा से इस सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक त्योहार को समाज मनाता चला आया है। 'क्षत्रिय धर्म' का उद्घोषक त्योहार होते हुए भो सभी वर्गों के लोग इसे मनाते आये हैं। बच्चे, बूढ़े और जवान, स्त्री पुरुष, सभी नये वस्त्र भूषण पहन कर इसे सोल्लास से मनाते हैं। 'गुरु प्रताप सूरज' में इसका कई स्थानों पर संकेत मिलते हैं। यथाः-

1- होहि दुसहिरा मिलि इक थाइ। करहि कराहु उछाह बधाइ।। 46 ।।[182]

2- करहिं दसहिरा रीति भलेरो ।।[183]

178- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 3, अंसु 68, अंक 23, पृ॰ 2219

179- वही , रि 4, अंसु 32, अंक 1, पृ॰ 5336

180- वही, रा 4, अंसु 32, अंक 17, पृ॰ 5337

181- वही , ऐन 2, अंसु 1, अंक 13, पृ॰ 6226

182- वही , रा 1, अंसु 40, पृ॰ 1489

183- वही , ऐन 2, अंसु 1, अंक 9, पृ॰ 6226

(ग) <u>दीपावली : या दिवाली</u> : यह भारतीय समाज द्वारा मनाये जाने वाले पर्वोत्सवों में दीपावली का अत्यधिक महत्व है। यह त्यौहार आज समाज में केवल वैश्य (व्यापारी) वर्ग तक ही सीमित नहीं है अपितु सार्वजनिक सांस्कृतिक त्यौहार के रुप में मनाया जाता है। यह कार्तिकी अमावस्या को मनाया जाता है। इस अवसर पर चतुर्दिक प्रकाश ही प्रकाश बिखरा हुआ दिखाई देता है। गुरु समाज में इस त्यौहार को बड़े उल्लास से मनाने की व्यवस्था है। स्वर्ण मन्दिर की चमक-दमक इस अवसर पर विशेष अवलोकनीय होती है। सामान्य जनता भी आतिशबाज़ी आदि चलाती है। अपने सम्बन्धियों और परिवारों के सदस्यों में मिठाईयां बांटी जाती है। यह भारतीय संस्कृति की सम्पन्नता का प्रतीक है। 'गुरु प्रताप सूरज' में इस त्यौहार के मनाने के उत्साह का उल्लेख निम्न प्रकार है :--

1- दीपमाल नगरे पुर होई ।[184]

2- आवहिं दीपमाल हित ठाने ।[185]

3- दीपमालका बहुरो आई ।[186]

4- दीपमालका जहिं कहिं होई ।[187]

(घ) <u>कृष्ण जन्माष्टमी</u> : हिन्दुओं में इस त्यौहार को बड़े उल्लास से मनाने की परंपरा चली आती है। कृष्ण उनके आराध्य होने के कारण विशेष रुप में समाज में सम्मानित रहे हैं 'गुरु प्रताप सूरज' में इन त्यौहारो से सम्बन्धित निर्देश भी मिलते हैं ।

''जनम अशटमी को दिन आवा। नगर नगर नर वरत रखावा।[188]

184- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 1, अंशु 36, अंक 47, पृ॰ 1471

185- वही , रा 2, अंशु 57, अंक 57, पृ॰ 1870

186- वही , रा 4, अंशु 44, अंक 36, पृ॰ 2414

187- वही , रा 5, अंशु 23, अंक 2, पृ॰ 2599

188- वही , रा 2, अंशु 30, अंक 21, पृ॰ 1767

(क) होली : यह फाल्गुन मास की पूर्णिमा को मनाये जाने वाले हर्षोल्लास से पूर्ण इस त्यौहार का वर्णन 'गुरु प्रताप सूरज' में कुछ विस्तार से हुआ है। यह त्यौहार कई दिनों तक चलता रहता है। इस त्यौहार के अवसर पर रंग और गुलाल की छटा, लोक नृत्य, स्वांग, गीत गाने, सह भोज, मिष्ठान्न बांटने, विनोद पूर्ण गालियां निकालने तथा सामूहिक आनन्दोल्लास में सम्मिलित होकर लोग इसे परंपरा से मनाते चले आये हैं मस्ती की उमंग में दीवाने नाच उठते हैं।[189] यह त्यौहार भारतीय लोक जीवन से सम्बन्धित है। इस त्यौहार के मनाने का सांस्कृतिक महत्व इस बात में है कि इस से समाज में सहयोग और सामाजिकता की भावनाएं बल पकड़ती हैं। पंजाब में इस त्यौहार की मस्ती अन्य प्रदेशों की तरह न होकर कुछ अनोखी ही है। हमारे गुरुओं ने इसे श्रृंगारिक विलास के रूप में मनाने निषेध कर इस सांस्कृतिक धरातल प्रदान किया। इस त्यौहार के अवसर पर रंगों की रंगोली का सांस्कृतिक महत्व है। होली खेलने का आवेश ऐसा होता है कि खेलने वालों को तन बदन की सुध नहीं रहती। इस के खेलने के दृश्य 'गुरु प्रताप सूरज' में अंकित हैं। एक बार श्री हरिगोबिन्द जी होली खेलने को निकलते हैं तो कवि उनकी शोभा का निम्न पंक्तियों में बड़ा सुन्दर वर्णन करता है देखिए :-

1- मंद मंद मुसकावति आए। कमल बिलोचन ते बिकसाए। 22 ।।

2- अरुन बरन अरु पीत बसाले। केतिक पिचकारी जुति चाले।
अलता ब्रिंद गुलाल अंबार। लेकरि पहुंचति भे सिख तार ।। 26 ।।

3- उड़ति गुलाल घटा जनु होई। रंग बूंदे बरसति हैं सोई ।। 27 ।।

4- जनु संध्या स्लिमिलिबे कहु आई। हरिगोबिंद मुख चंद सुहाई।
मिली गुलाब गुलाल उड़ंता। खेलति होरि श्री जगकंता ।। 28 ।।[190]

189- (क) गु॰ प्र॰ सू॰ रा 8, अंसु 51, अंक 4-5, पृ॰ 3498
(ख) वही, रि 3, अंसु 2, पृ॰ 4923
(ग) वही, रि 3, अंसु 27, पृ॰ 5087-5089

190- वही, रा॰ 8, अंसु 52, पृ॰ 5504

इसी तरह आनन्दपुर में गुरु गोविन्द सिंह के होला खेलने के दृश्य भी 'गुरु प्रताप सूरज' में अंकित है :-

श्री गुरु गोविन्द सिंह कीर होरी को बिलंद,
        बाज हाथ पिचकारा लीनि हूं भरि पानिओं ।
चले चल सिक्ख आइ आरति नमति पाइ,
        प्रिथम गुरु के पाइ चंदना भी लाविओ ।
उड्यो एक बार ही गुलाल लाल घटा मानो,
        रंगनि का बुंद बरखंति इन पानिओं ।
रंगदार अंबर के रंगदार अंबर के,
        मूठा भरि मारें, रंग डारति मचानिओं ।। 8 ।।[191]

निष्कर्ष :

तत्कालीन सामाजिक अवस्था के दृष्टिकोण से विचार किया जाये तो सामाजिक जीवन में विश्रृंखलताओं के होते हुए भी हमारा समाज परंपरागत रूप से चिरकाल से चले आते हुए पर्वोत्सवों को मनाता आ रहा था। गुरु साहिबान ने इस सांस्कृतिक निधिको नवीन रूप में धर्माभिमुख करने का यत्न किया था। यह पर्वोत्सव और त्योहार आज भी हमारे समाज के अंग बने हुए हैं।

6- सामाजिक लोकाचार और लोक व्यवहार :

लोकाचार और लोक व्यवहार किसी भी समाज के सांस्कृतिक वैशिष्ट्य के द्योतक हुआ करते हैं। भारतीय समाज में पारस्परिक व्यवहार में आयु और पद के साथ साथ कभी कभी वर्ण का ध्यान रखना पड़ता है। उच्च तथा कुलीन वर्ग के प्रति निम्न वर्ग का सम्मान प्रदर्शित करना अपना शिष्टाचार समझता है। इसी तरह स्वामी-सेवक, आचार्य-

191- गु॰ प्र॰ सू॰ रि॰ 3, अंसु 27 पृ॰ 5087

शिष्य, के सम्बन्ध में तथा ब्राह्मण सम्मान आदि के लोकाचार के दृश्य देखने को समाज में प्रायः मिल जाते हैं । इस तरह शाही दरबार में पहुंच कर शाही-आचार-पध्दति के अनुकूल सम्मान आदि का प्रदर्शन भी मध्यकालीन समाज का अंग रहा है। एक दूसरे राजा परस्पर मैत्री की भावना प्रदर्शित करते हुए राजदूतों का सम्मान करते हैं । उनके सेवकों के लिए सभी प्रकार की सुविधाएं प्रदान करते हैं । मुगलराजा भी जब गुरु साहिबान को अपने दरबार में बुलाते हैं तो उन्हें बैठने के लिए चौकी आदि का आसन देकर उनका सम्मान प्रदर्शित करते हैं ।[192]

इसी तरह के सामाजिक व्यवहार के कई नियमों के संकेत 'गुरु प्रताप सूरज' में मिलते हैं ।

(क) 'गुरु प्रताप सूरज' में चित्रित सामाजिक आचार : गुरु साहिबान के समक्ष प्रत्येक व्यक्ति का मस्तक अपने आप झुक जाता है। साधारण व्यक्ति की तो बात ही क्या बड़े बड़े मुग़ल सम्राट भी उनके व्यक्तित्व के समक्ष नतमस्तक होकर उनके आशीर्वाद के लिए तरसते दिखाये गए है।

(1) अभिवादन के विविध रूप : गुरु जनों तथा वृध्दजनों के प्रति आदर प्रदर्शित करने के अनेक रूप समाज तथा परिवार में अपनी अपनी परंपरा, कुल, रीति के अनुसार प्रचलित होतेहैं । 'गुरु प्रताप सूरज' तो है ही 'गुरु काव्य' । इस में गुरु साहिबान के दरबार में आने वाले श्रध्दालु भक्तजनों के उनके प्रति सम्मान व्यक्त करने के लिए 'चरण,स्पर्श',[193] (पैरी पैणा), वन्दन,[194] चरणों पर मस्तक टेकना,[195] हाथ जोड़ना

192- गु॰ प्र॰ सू॰ रैन 1, अंशु 46, अंक 20, पृ॰ 6194

193(क) पैरी पैणा' कहि थिर गुरमुख।-वही, रा 3, अंशु 69, अंक 6, पृ॰ 2221

(ख) 'मृदुल वाक कहि 'पैरी पैणा'। वही, रा 8, अंशु 48, अंक 19, पृ॰3489

194 (क) ..., वही, रा 1, अंशु 33, अंक 11, पृ॰ 1455

(ख) वही , रैन 1, अंशु 2, अंक 35, पृ॰ 5999

195- वही , रा 1 , अंशु 34, अंक 29, पृ॰1462

तथा अष्टांग (दण्डवत प्रणाम)[196] आदि विभिन्न प्रकार अभिवादनों का उल्लेख हुआ है।

इन अभिवादन के विभिन्न रूपों के उत्तर में गुरु जन जिन्हें अभिवादन किया जाता है – वे आशीर्वाद[197] या असीस देते हैं। समान या कुछ बड़ी आयु के लोग उन्हें आलिंगन में (कंठ लगाना) लेते या प्रीति व्यक्त करने आदि के रूप में भी मौन उत्तर देते। उनको कल्याण कामना करते ।

सामान्य जनता में भी उक्त अभिवादन रूप प्रचलित थे । मुसलमानों और पठानों में 'सलामेलकम'[198] आदि करने के संकेत भी गुरु प्रतापसूरज में व्यक्त हैं ।

(2) उपहार : दूर दूर से गुरु साहिबान के दर्शनार्थ आने वाले सेवक उनके लिए बहुमूल्य उपहार लाते हैं । इनउपहारों के लिए 'गुरु प्रताप सूरज, में 'अकोर'[199] शब्द का प्रयोग हुआ है। इस 'अकोर' के अतिरिक्त उनके श्रध्दालु उन्हें भेंट में धन के अतिरिक्त 'हाथी,[200] तम्बू,[201] घोड़े, अस्त्रशस्त्र[202], बहुमूल्य आभूषण, वस्त्र, खेस, पगड़ी (दस्तार[203]) आदि वस्तुएं भेंट करते हैं । गुरु साहिबान भी अपने श्रध्दालुओं का भक्ति, विनम्रता आदि देख कर उन्हें 'सिरोपाउ'[204] तथा शुभ कामनाएं आदि भेंट करते हैं। उपदेश देते हैं जिन से उन के

196- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 1, अंशु 9, अंक 2, पृ॰ 1340

197- सुनहु पिता जी अइहु मम आसहिं । वही, रा 2, अंशु 14, अंक 50, पृ॰ 1537

198- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 5, अंशु 32, अंक 16, पृ॰ 2634 तथा अंशु 14, रा॰ 8, अंक 1, पृ॰ 3364

199- वही, रा 9, अंशु 7, अंक 3 पृ॰ 3569

200- वही रि 1, अंशु 21-22, पृ॰ 4576-79

201- वही, रि 1, अंशु 20, पृ॰ 4573

202- शस्त्र तुरंग दरब अरपावै ।-वही रा 5, अंशु 15, अंक 13, पृ॰ 2568

203- वही, ऐन, 1, अंशु 14, अंक 7, पृ॰ 6049

204- (क) वही रा 8, अंशु 10, अंक 8, पृ॰ 3347

(ख) 'बहु भोला दे सिरपाउ '

– वही रि॰ 1, अंशु 45, अंक 44, पृ॰ 4667

जीवन में सेवा, भक्ति आदि की भावनाएं उत्पन्न होती हैं । इनके लौकिक और पारलौकिक अभ्युदय की कामनाएं निहित होती हैं ।

(3) विनम्रता पूर्ण व्यवहार : गुरु साहिबान ने केवल मानवीय सम्बन्धमें समानता लाने के लिए विनम्रता पूर्ण व्यवहार का उपदेश देते हैं[205] अपितु समस्त सृष्टि के जीवों के प्रति विनम्रतापूर्ण व्यवहारकरने का सन्देश देते हैं । समान्यतया मनुष्य की वाणी और शारीरिक हाव भाव द्वारा व्यक्त शालीनता में उनके द्वारा अभिव्यक्त शिष्टता के भाव सन्निहित रहते हैं । प्राणी प्रायः अपनी तुच्छता दिखलाने और दूसरे की उदारता एवं महानता का बखान कर अपनी शालीनता प्रदर्शित करता है। शारीरिक क्रिया द्वारा प्रदर्शित ~~एवं~~ शिष्टता में हृदय की सम्मान भावना और विनम्रता का व्यावहारिक रूप प्रस्फुटित होता है। गुरुप्रताप सूरज' में इस के संकेत मिलते हैं[206] ।

( ) उपालम्भ तथा बोली मारना : सामाजिक जीवन में एक दूसरे की सम्पन्नता देख कर ईर्षा करना तथा जलना, अपनी विपन्नता के विषय में चिल्लाना, दूसरों को हानि पहुंचाना, उसके संरक्षकों से शिकायत करना उपालम्भ कहा जाता है तथा अपनी विपन्नता के कारण दूसरे की सम्पन्नता कानी आंख से जब नहीं सुहाती तो अपने परिवार के बड़ों की तथा अपनी जवान या कुटुम्ब को मिटाने के लिए सम्पन्न व्यक्तियों का नारियों एक दूसरे को बोलियां मारती हैं, कटाक्ष करती हैं । 'गुरु प्रताप सूरज' में पृथी चन्द की पत्नी कर्मो[207] की गुरु अर्जुन देव जी की पत्नी माता गंगा की सम्पन्नता और उसके पुत्र - वती हो जाने पर पति को उपालम्भ देने सम्बन्धियों के कटाक्ष सहन करने तथा हरिगोबिन्द को मारने की अनेक योजनाओं में ऐसे चित्र मिलते हैं[208] ।

205- गु० प्र० सू० रा० 1, अंशु 34, अंक 34-35, पृ० 1462

206- वही , रा 2, अंशु 14, अंक 77-79, पृ० 1701

207- वही , रा 3, अंशु 1, अंक 39, पृ० 1889 तथा
वही , अंक 42, - 44, पृ० 1889-90

208-(क) वही , रा 3, अंशु 6, अंक 8, पृ० 1914
(ख) वही , अंक 14-15, पृ० 1916

(5) <u>दुहाई देना :</u> जाति अभिमानी ब्राह्मण तथा अन्य वर्ग के लोग जब गुरु अमरदास के चलाये सिख धर्म की उन्नति देखते हैं तब अकबर के दरबार में जाकर फरियादी बनकर दुहाई देते हैं[209]। इसके अतिरिक्त पहाड़ी राजाओं के बारबार पराजित होने पर औरंगजेब के प्रतिनिधि के पास जाकर 'दुहाई देने' का उल्लेख भी गुरु प्रताप सूरज में मिलता है[210]।

(6) निछावर होना या बलिहारी जाना : गुरु हरिगोबिन्द जी की तथा गुरु गोबिन्द सिंह की बाललीलाओं को देख कर परिवार के सदस्य तथा अन्य दर्शनार्थ आने वाले व्यक्ति जहां सर्वं निछावर होने[211] और बलिहारी जाने की बात कहते है वहां वे अनेक प्रकार के दान आदि भी भाटों और अन्य याचकों को देते हैं[212]।

(ख) <u>विश्वास और मान्यताएं</u> : विश्वास और मान्यताएं युग-विशेष के सांस्कृतिक और सामाजिक जीवन के महत्वपूर्ण अंग हुआ करते हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि जातीय जीवन के संगठन और नियन्त्रण में इन विश्वासों और मान्यताओं का बड़ा हाथ रहता है। जिस जाति की संस्कृति का इतिहास जितना दीर्घकालीन होता है उसमें प्रचलित विश्वास और मान्यताएं भी उतनी ही विविध और बहुसंख्यक होती हैं। भारतीय हिन्दू-जाति का सांस्कृतिक इतिहास दीर्घ कालीन एवं व्यापक होने के कारण असंख्य विश्वासों और मान्यताओं का द्योतक है। इतिहास के किसी भी युग की कथा को लेकर काव्य रचना करने वाला भारतीय कवि यहां के समाज के विश्वासों और लोक मान्यताओं की ओर संकेत करने पर ही जातीय जीवन के यथार्थ को चित्रित करने में सफल होता है।

209- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 1, अंशु 43, अंक 31-37, पृ॰ 1504-5

210- (क) वही, रि॰ 4, अंशु 5, अंक 15-16 पृ॰ 5228

(ख) वही, रि॰ 6, अंशु 5, अंक 5-8, पृ॰ 5754

(ग) वही, अंशु 6, अंक 1-5, पृ॰ 5758

211- वही, रा 12, अंशु 14-20, पृ॰ 4275-4308

212- वही, रा॰ 12, अंशु 12, अंक 9-10, पृ॰ 4268

(1) 'गुरु प्रताप सूरज' में चित्रित विश्वास और मान्यताएं : 'गुरु प्रताप सूरज' में तत्कालीन भारतीय समाज में प्रचलित अनेक विश्वासों और मान्यताओं का उल्लेख हुआ है। अध्ययन की सुविधा के लिए इस ग्रंथ में उल्लिखित विश्वासों और मान्यताओं को निम्न तीन वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है :-

1- पौराणिक विश्वास, 2- लोक विश्वास और मान्यताएं, 3-जीव प्रतिक्रियाएं।

1- पौराणिक विश्वास : भारतीय संस्कृति में पौराणिक विश्वासों का बड़ा महत्व है। 'गुरु प्रताप सूरज' के रचयिता भाई सन्तोख सिंह की पौराणिक विश्वासों के प्रति आस्था रही है। उन्होंने गुरु साहिबान के पौराणिक 24 अवतारों की तरह अवतरित मान कर उन्हें भी परब्रह्म का अवतार बताया है।[213] अवतारवाद के प्रति उनकी आस्था से इस बात का समर्थन हो जाता है कि उनके हृदय में पौराणिक विश्वासों के प्रति कितनी आस्था थी। गुरु साहिबान के जन्म धारण करने पर देवता उनके दर्शनार्थ आते हैं।[214] उनके स्वर्ग प्रयाण पर देवता उन्हें विमानों पर बैठा कर ले जाते हैं।[215] अप्सराओं के नृत्य,[216] नारद आदि के पंच भेंट करने,[217] आकाशवाणी,[218] कल्पवृक्ष,[219] कामधेनु, ऐरावत, उच्चैश्रवा पक्षी गरुड़

213- (क) श्री नानक सूरज सम भारे। धरतो प्रकाशनि, अनिक उधारे।

इह भी तिन के अवतार। यों सभि भाखति है संसार।

— गु॰ प्र॰ सू॰ रा 12, अंशु 11, अंक 21, पृ॰ 4263-64

(ख) 'भए बिशनु अवतार पछाने'।—वही, रा 12, अंशु 8, अंक 17, पृ॰ 4252

214- (क) वही, रा 12, अंशु 12, अंक 14, पृ॰ 4268

(ख) वही, रा 3, अंशु 5, अंक 13, पृ॰ 1910

215- वही रा 6, अंशु 54, अंक 1, पृ॰ 3010

216- वही, (क) रा 3, अंशु 5, अंक 12, पृ॰ 1910

(ख) वही, रा 12, अंशु 12, अंक 11, पृ॰ 4268

217-वही, रि॰ 4, अंशु 50-51, पृ. 5409-5416

218- (क) वही, रा 3, अंशु 48, अंक 7, पृ॰ 2122

(ख) वही, रि 2, अंशु 7, अंक 3, पृ॰ 4722

219- (क) वही, रा 1, अंशु 1, अंक 36, पृ॰ 1302

(ख) वही, रा 1, अंशु 1, अंक 41, पृ॰ 1308

आदि वाहनों, और अनेक पौराणिक देवी देवताओं के साथ साथ त्रिदेव (ब्रह्मा, विष्णु और महेश) आदि सभी का उल्लेख इस महाकाव्य में मिल जाता है।[220] इनके अतिरिक्त अनेक पौराणिक आख्यानों के संदर्भ, संकेतों का तो मानो यह एक विशाल कोश ही है। परमशक्ति के रूप में दुर्गा भवानी आदि की आराधना और पूजा की पौराणिक कथाओं का भी उस में उल्लेख हुआ है।[221]

2- लोक विश्वास और मान्यताएं : इस वर्ग में आने वाली बातें मुख्यतः चार उपशीर्षकों में विभाजित की जा सकती हैं – (क) परंपरागत मान्यताएं (ख) उपचार सम्बन्धी विश्वास, (ग) शुभ और अशुभ शकुन (घ) अन्य विश्वास ।

(क) परंपरा गत मान्यताएं : समाज विशेष में प्रचलित वे बातें 'परंपरागत मान्यताएं' मानी जाती हैं जिन की सत्यता का अनुभव मानव जाति परंपरा से करती आई है। ऐसी मान्यताओं की पुष्टि पूर्व युगों के विविध ग्रंथों से तो होती ही है। परिवार या समाज के बड़े बूढ़े भी अनेक आख्यानों उपाख्यानों के द्वारा उनके प्रति विश्वास रखने की भी प्रेरणा दिया करते हैं । शताब्दियों तक प्रचलित रहने के कारण ऐसी मान्यताएं किसी देश या समाज की संस्कृति का अभिन्न अंग बन जाती हैं । भारतीय संस्कृति से संबन्धित जिन परंपरागत मान्यताओं का वर्णन 'गुरु प्रताप सूरज' में हुआ है उन में से भाग्यवाद, कर्मवाद, पुनर्जन्मवाद आदि का उल्लेख पंचम् अध्याय में किया गया है। शेष कुछ मान्यताओं का वर्णन यहां किया जा रहा है –

(1) ज्योतिष के प्रति आस्था, (2) भूत प्रेतादि अतिमानवीय शक्तियों पर विश्वास।

(1) ज्योतिष के प्रति आस्था : ज्योतिष के अनुसार प्रत्येक शुभ कार्य अथवा संस्कार आदि के लिए गुणी गणक, विप्र, अथवा ज्योतिषी को बुलाकर शुभ मुहूर्त आदि जानने का प्रयत्न

220- (क) गु० प्र० सू० रा 1, अंशु 1, अंक 26-27, पृ० 1293-94

(ख) वही, (ईश्वर के नामों की सूची) रि० 4, अंशु 51, अंक 32-38, पृ० 5415

(ग) वही, रि 3, अंशु 9, अंक 39, पृ० 4953

221- वही रि 3, अंशु 9, अंक 41-43, पृ० 4953 तथा

वही, अंशु 10, अंक 19-25, पृ० 4956

भारतीय समाज में सदा से होता आ रहा है। भारतीय जन जीवन में ज्योतिष पर गहरी आस्था रही है। गुरु काल में भी यह आस्था थी। जन्म[222] नक्षत्रादि द्वारा भविष्य कथन तथा शुभ कार्य के करते समय शुभ मुहूर्त आदि के विचार सम्बन्धी व निर्देश 'गुरु प्रताप सूरज' में पर्याप्त मिलते हैं। एक उदाहरण देखिए :-

परे लगन महिं गृह दे मंगल। उचिके सूरज शनि कवि मंगल।
लाभ स्थान आदि गृह आछे। पूरन दिशटि बिलोकति वांछे।।
जनम कुंडली जिम अवतारन। तिम लखीअति प्रताप वड कारन।।[223]

मुगल शासकों का भी ज्योतिष के प्रति विश्वास था। वह भी प्रायः संकट की अवस्था में नजूमी आदि को बुलाते थे। जहांगीर को जब बुरे स्वप्न आते हैं तो वह पजूमियों से उनके दूरकरण के विषय में पूछ ताछ[224] करता है। तथा साढ़सती को दूर करने के लिए किसी के महापुरुष से अपने निमित्त माला फिरवाने के प्रयास करता[225] है।

<u>(2) भूत प्रेत आदि अतिमानवीय शक्तियों पर विश्वास</u> : भूत प्रेत, पिशाच, दैत्य, बैताल, योगिनी आदि अतिमानवीय शक्तियों के विषय में भारतीय समाज का विश्वास चिरप्रतिष्ठित रहा है। इस लोक विश्वास के उदाहरण 'गुरु प्रताप सूरज में पर्याप्त मिलते है। विशेष उल्लेख युध्दों के वर्णन मिलता है। इन को बाधक और साधक दोनों ही माना जाता था, अतः मन्त्र तन्त्र द्वारा इनकी सिद्धि तथा सम्भूत बाधा के निराकरण की धारणा भी उस युग में वर्तमान थी। 'अन्त्येष्टि संस्कार' के न किए जाने पर व्यक्ति के भूत बन जाने की भी आस्था इसी प्रकारसे वर्तमान[226] थी।

222- पोख मास को पख्ख शुकल है। सपतमि थित को गमो शु कल है।
आदितवार जामनी जामूं। भयो जनम बालिक बल धामूं।।
— गु॰ प्र॰ सू॰ रा 12, अंशु 13, अंक 17, पृ 4272

223- वही, रा 12, अंशु 13, अंक 18-19 पृ॰ 4272, अन्यत्र भी देखे :-रा 1, अंशु 14, अंक 16-17, पृ॰1568, रा 1॰41॰23, पृ॰ 1795, वही, रा 5॰5॰33-34, पृ॰ 1913, रि 3॰5॰53 पृ॰ 4957

224-वही नाभ, अंशु 58, अंक16-28, पृ॰ 2470-71

225- विशेष विवरण के लिए देखिए : इसी अध्याय का 'सामान्य जीवन चित्रण' में विधान।

226- 'जिस भी प्रेत जूनि तन पावा'।।32।।-वही रा 12, अं पृ॰ 4405

इस प्रकार भूतों का मुख्य पुरुषों को बसने न देना आदि कई प्रकार से इन का उल्लेख गुरु प्रताप सूरज में मिलता है। युद्धों के समय योगिनियों का आना विशेष रूप में वर्णन किया गया है[227] ।

(ब) उपचार सम्बन्धी विश्वास : इस वर्ग के अन्तर्गत आने वाली बातों की सत्यता का परख तो कोई भी कराई नहीं जा सकती , परन्तु उनके प्रति समाज के बड़े भाग का विश्वास अवश्य रहता है। आधुनिक शिक्षित वर्ग इस वर्ग की इह अधिकांश बातों को अन्धविश्वास ही मानता है। ऐसी बातों में कुछेक का उल्लेख 'गुरु प्रताप सूरज' में भी मिलता है जैसेः- 1- नज़र लगना, 2- जन्त्र मन्त्र तन्त्र और टोना टोटका आदि पर विश्वास ।

1- नज़र या कुदृष्टि पर विश्वास : यो तो भारतीय समाज के विश्वास के अनुसार किसी भी अवस्था के व्यक्ति को दूसरों की 'नज़र' या कुदृष्टि लग सकती है, तथापि बच्चों को नजर लगने का डर बहुत जल्दी रहता है। पिता का ध्यान इस ओर कम जाता है परन्तु माता सदैव इस विषय में सतर्क रहती है क्योंकि उसका दृढ़ विश्वास रहता है कि स्वस्थ और सुन्दर बालकों को यदि कोई आंख भर कर देख ले तो उसे नजर लग जाती है । हंसता, खेलता, उठता, बैठता, खाता पीता बालक यदि बारबार रोने लगे या ढीला ढाला हो जाये तो माता तुरन्त समझ जाती है कि इसे किसी की नजर लग गई है। गुरु हरिगोविन्द के बाल्य जीवन में माता गंगा इस कुदृष्टि से विशेष सतर्क दिखाई देती है[228] । इनके पश्चात गुरु गोविन्द सिंह को भी आये गए दर्शनाभिलाषियों

227- केते लाख प्रेत को डेरे।फिरहिं जहां कहिं देश घनेरे।।
करहिं व्यथित ग्राम जब आइ।नर ढ्ढ कोऊ तहिं बसन न पाइ ।। 5 ।।
-गु॰ प्र॰ सू॰ रा 1, अंशु 18, अंक 5, पृ॰ 1389
अन्यत्र भी देखिए :-रा 6 · 32 · 12 पृ॰ 2946, रि 3 · 41 · 12 · 5158,
रि 4, · 18 · 39 पृ॰ 5282, रि 6, अंशु 36, अंक 34, पृ॰ 5884

228- नारिन व्रिंद मैं ना कवि त्यागति -देखति डीठ लगे न कदा ।
दानन को करि जाइ जहां रखवार रहो गुर रूपसदा ।। 21 ।।
तांति कदेजल मज्जन को मुख चारु पखारति, लालति हैं।
भूखन चार गहे, पटसुंदर फेर उछालति है।
बाल सखा मढि केचन ते मखतूल गरे महिं डालति है।। 22 ।।
— वही रा 3, अंशु 8, अंक 21-22, पृ॰ 1926

को तुरन्त दिखाने से माता गुजरी संकोच करती है कि कहीं इस नज़र न लग जाये।[229] पहाड़ियों की कुदृष्टि का भी इस ग्रंथ में उल्लेख मिलता हैं[230] । बच्चों को 'नज़र लगने' से बचाने के लिए प्रायः मातायें काजल की बिन्दियां लगा देती हैं ।

'बसन विभूखन पाइ नवाने ।डीठ न लगहि दिठौना दीने ।'[231]

2-जन्त्र-मन्त्र-तन्त्र, झाड़ फूंक और टोना टोटका आदि पर विश्वास : प्रायः अनिष्ट निवारणार्थ इन उपचारों पर विश्वास किए प्रचलित है। सर्प विष उतारने के लिए तथा किसी व्यक्ति या जीव को वंश में करने तथा हानि पहुंचाने के लिए भी मन्त्रोपचार पर विश्वास किया जाता था 'गुरु प्रताप सूरज' में सामान्य जनता के इन लोक विश्वासों के उल्लेख मिलते हैं[232] परन्तु गुरु साहिबान ने तत्कालीन युग में तपे, साधुओं, पीरों, फकीरों के मन्त्र तन्त्र के माया जाल में पड़ी जनता को उबारने का प्रयत्न किया[233] और इन की अवस्थिति को घृणा की दृष्टि से देखा । 'गुरु प्रताप सूरज' में इन उपचारों की असफलता को भी व्यक्त किया गया है। तपे के जन्त्र मन्त्र सब व्यर्थ होते दिखाये गये है।[234]

229- 'नर परदेशी को दिखरावनि।डीठ आदि अवगुन परहरावनि।

-गु॰ प्र॰ सू॰ रा।2, अंशु।5, अंक ।8, पृ॰ 4280

230-डीठ पहाराअनि का बुरा ।-वही,रि 3, अंशु 27, अंक 22, पृ॰ 5091

231- वही , रि 2, अंशु 45, अंक 2,पृ॰ 4890

232-(क) औखधि किधौं जन्त्र के मन्त्र।- वही , रा 9, अंशु 48, अंक 6,पृ॰ 3721

(ख)करि टामन को दया भराइ।-वही,रा ।2, अंशु 2, अंक 9,पृ॰ 4229

(ग) करि टामन को मटनि करावनि।-वही, रा ।2, अंशु 7,अंक 39,पृ॰ 4250

(घ) अधिक के इसका टामन डारो ।- वही, रा ।2, अंशु 8, अंक 4,पृ॰ 4251

(ङ) करति अनेक रीति जे टामन ।- वही, रा ।2,अंशु 8,अंक ।।,पृ॰ 4252

233-(क) मन्त्र जन्त्र प्रेतनि के करैं ।

× × ×

जन्त्र मन्त्र को नहिं बल चलै।-वही, रा ।2, अंशु 7, अंक 5-6,पृ॰ 4248

(ख) मंत्र तंत्र का बुरा संग,प्रेत सेवना आदि।-वही रि 5, अंशु 10,पृ 5467

234- मंत्र जंत्र करि जुगति बनावौं । -वही रा ।,अंशु25,पृ॰ ।4।।-।3

× × ×

नागा समाज में 'झाड़ फूंक 'तथा 'टोने टोटके' में विश्वास चिरकाल से प्रचलित है। अनिष्ट शंक से बचने के लिए 'तवाज'[235] आदि बान्धना किया किसी व्यक्ति या पीर फकीर और तपस्वी आदि से झाड़ा कराना आदि लोक विश्वास भी परम्परागत रूप में मध्यकाली समाज में भी प्रचलित थे ।

शाही दरबार में भी मन्त्र तन्त्र आदि के प्रति विश्वास पाया जाता था । मुगल सम्राट भी पीरों फकीरों से आशीर्वाद आदि की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहते[236] थे । औरंगजेब के समय में बंगाल तथा आसाम के मन्त्र तन्त्र का जादू विशेष रूप से प्रसिद्ध था । वहां के लोगों की चमत्कारी शक्ति में से पातशाह सदा भयभीत रहता था । एक बार जब राजा रामसिंह (विशन सिंह) को आसाम आदि के इलाके को विजय करने के लिए जाना पड़ता है तो वह गुरु तेगबहादुर की सहायता चाहता है ताकि वह वहां के लोगों के मन्त्र तन्त्र से अप्रभावित रह कर युद्ध कर सके[237] । इस तथ्य से यह प्रमाणित होता है कि तत्कालीन समाज में मन्त्र तन्त्र की अलौकिक शक्ति के प्रति लोकविश्वास प्रतिष्ठित था।

गुरु साहिबान की आलौकिक शक्ति से चमत्कारों तथा रामराय की सत्ता करामातों का उल्लेख पहले किया जा चुका है। वह अपनी अलौकिक शक्ति को छिपाये ही रखना चाहते थे । वे स्वयं शक्तिवान होने के कारण मन्त्र तन्त्र के मायाजाल में भटक रही जनता का उध्दार करना चाहते थे ।

(ग) शकुन(शुभ और अशुभ) : शकुन शास्त्र ज्योतिष फलित का एक विशेष अंग है। शकुन का विवेचन यत्र तत्र वाल्मीकि - रामायण महाभारत और अन्यान्य पुराणों में अत यन्त विस्तार के साथ मिलता है। शकुन शास्त्र के आदिम आचार्य तो भगवान

235-सुनि तवाव कुछ रोग न देवैं ।

× × ×

तन्यि तवात बनि जैसा गयो । - गु · प्र · सू · रा 4, अंशु 62, अंक 18-19, पृ · 2487

236- रा 1, अंशु 10, अंक 48-50, पृ · 1350-51

237- दई मुहिंम कामरु देश। महाबली इस पर दुरवेश ।

तिनके संग जंग नहिं बनै। अधिक विधीन के मन्त्रनि मनै। 22 ।।

× × × ×

तिस देश मृतु प्रापति होइ। मन्त्रनि की लखि त्रास महाना।

—वही, रा 12, अंशु3, अंक 22-4 पृ ·4234-36

शंकर है।[238] इस शास्त्र के अध्ययन से पता चलता है कि आचार्यों ने प्रारंभ में मानव, जाति के शुभ और अशुभ फल विचार के लिए 'शकुन(पक्षियों) के द्वारा फल विचार किया[239]। शकुन पक्षी का पर्यायवाची नाम है। पक्षियों के उठने बैठने, पंख फैलाने, चारा भक्षण करने आदि गतिविधियों के आधार पर शुभाशुभ -विचार की प्रणाली प्रचलित हुई। पक्षियों के काक, खंजन, चाष(नीलकंठ), चील आदि विशेष रूप से शकुन जानने के लिए उपयुक्त प्रमाणित हुए। शनैः शनैः पक्षियों के पश्चात् पशुओं के व्यवहारों से और बाद में मानव जाति के अंग स्फुरण आदि से शकुन विचार होने लगा।। शकुन-विचार की प्रणाली केवल भारत में ही नहीं अपितु समस्त एशिया, यूरोप में प्रचलित हुई। जैसे जैसे भारतीय संस्कृति का अन्यान्य देशों में फैलाव हुआ वैसे वैसे ही भारत की अन्यान्य प्रणालियां भी फैलती गई।

यहां यह स्पष्ट कर देना अप्रासंगिक न होगा कि जैसे संस्कृत में आदि महाकवि वाल्मीकि और महर्षि व्यास जी अपने ग्रंथों में शकुन वर्णन कर शकुन विचारधारा को प्रोत्साहित किया वैसे ही हिन्दी के महाकवि तुलसी, जायसी, तथा भाई सन्तोख सिंह ने भी इस मनोरंजन(शकुन विचार) प्रकरण को अछूता न छोड़ा। 'शुभ शकुन' और अशुभ शकुन' दो प्रकार के उत्तम और निकृष्ट फलदायक शकुनों का विभाजन साधारणतया माना है।

'गुरु प्रताप सूरज' में 'शकुन-विचार'

शरीर और प्रकृति के कुछ कार्यों और व्यापारों, तथा शरीर के विविध अंगों का फड़कना, स्वप्न, देखना, विशेष पशु-पक्षियों का दिखाई देना या उनकी बोली सुनाई पड़ना आदि से मनुष्य को आगामी सुख दुःख की पूर्व सूचना मिल जाती है।[240] काव्य में

238- वसन्तराज शाकुन, प्र· स· 1· 22 -13

239- महान कोश, पृ· 106

240- निमित्तं लक्षणं स्वप्नं शकुनिस्वरदर्शनम्। अवश्यं सुख दुःखेषु नराणां परि दृश्यते।

-3, 5· 2· 2(रामायण कालीन संस्कृति, पृ· 37

में ऐसी बातों का वर्णन भावी घटनाओं की पूर्व सूचना देने के लिए होता है। जिससे सामान्यतया पाठक उनके संबंध में उत्सुक हो जाता है। 'गुरु प्रताप सूरज' में भी सुख दुःख सूचक व्यापारों का वर्णन इसी उद्देश्य से हुआ है। जो कार्य और व्यापार मंगल के सूचक होते है उनको 'शकुन' कहते हैं भारतीय समाज की 'शकुन' के प्रति पूर्ण आस्था रही है। इसी जन-विश्वास के आधार पर भाई सन्तोख सिंह ने शकुन विविध रूपों का उल्लेख अपने काव्य मे किया है। यथा :-

1- नीके शकुन भए पुरि निकसे ।हेरि विचरति गजनति बिकसे ।[241]

2- जौन समै शुभ, बार निछत्रनिनो मैं ग्रेह आनि के कौन नमो ।[242]

3- थितो बार महूरत आछो ।तिस मे साथ पूछबो बांछो ।[243]

4- रुख्न कीर फुरकति भा तिस बेरा ।
जानि शकुन शुभ पुन करि नमो ।।[244]

5- दहन बिलोचन फरकनि लागा।भगहु अंकूर उपावनि लागा।[245]

6- आगे मिले शकुन शुभ होति।रिपु मारन गुर जिजै उदोति ।। 43 ।।
मिलो जोखता बालक गोद ।हुती सुहागन सहित प्रमोद ।
सुरभि बतस चुंघावति ठाढो।आटति रिदै प्रीत बहु बाढो ।। 44 ।।
सुन्दर गौन पौन तबि कान।ख्रिगन सु बाल रहिने लौनि ।
ख्रिदुल शब्द को करहि बिंग। जे शुभ होति भये सु ता अंग ।।[246]

241- गु॰प्र॰सू॰ रा 4, अंसु 48, अंक 46, पृ॰ 2432

242- वही , रा 3, अंसु 4, अंक 25, पृ॰ 1906

243- वही , रा 4, अंसु 4, अंक 20, पृ॰ 2243

244- वही , रा 7, अंसु 27, अंक 31, पृ॰ 3166

245- वही , रा 11, अंसु 7, अंक 19 , पृ॰ 4001

246- वही , रा 6, अंसु 26, पृ॰ 2901

<u>अशकुन</u> : भावी अनिष्ट, विपत्ति अथवा असफलता आदि की सूचना देने वाले कार्य और व्यापार 'अशुकन' माने जाते हैं। जीवन के दैनिक व्यवहार में भी सभी व्यक्ति अनेक रूपों में अशकुनों की चर्चा किया करते हैं । आने वाले कष्ट या अनिष्ट की हानि या पीड़ा यद्यपि अशुकुनों के द्वारा उनकी पूर्व सूचना से किसी प्रकार कम नहीं हो जाती तथापि इतना निश्चित है कि बार बार अशकुनों की चर्चा से दुःख या कष्ट का सामना करने को तैयार अवश्य हो जाता है और वैसी स्थिति में अनिष्ट की बात सर्वथा असंभावित नहीं जान पड़ता । काव्य में इनकी चर्चा से पाठक की सहज उत्सुकता बढ़ती है और पात्रों की गतिविधि को वह बहुत रुचि से लक्ष्य करता है। 'गुरु प्रताप सूरज' में इन की भी पर्याप्त चर्चा हुई है।

1- भये शगुन मंदे अविलोक ।स्याने दिल महिं धारति शेक ।
   सनुख बायु म्रिग धाल कुफेरा ।हय रोदति द्रिग अश्रु गेरो। 40।।
   सिर पर बायस गीध भ्रमावें ।सिवा असित्रा पुकारति आवैं ।
   गिरहिं अचानक चालति घोरे ।मन सूरन के भलि अथोरे ।। 41 ।।
   मिल्यो काठ को भार अगारो।ब्र बोल्यो म्रितु सूचति भारो ।
   दुदंभि बाजति अलप मलीना।जाति लोर सिरतक सभि चीना।। 42 ।।[247]
2- तबि मसंद लैकरि भट ब्रिंद।चलतो भए कुचौन बिलंद ।
   हांकि दाहिने दिशि नहिं होई। सनमुख पौन धूर मुखगोई।।
3- मुरदा दाह देनि ले चले ।इन केधटति आगारो मिले ।
   छूटे बार नारि रुदनावें ।[248]
4- भए कुशगन अगनि मिलि आगे ।ईंधन भार सनुख द्रिग लागे ।

× × ×

   उडी धूल रवि वायु अभाजे ।मग महिं पुरि ग्रामनि की छाजे ।[249]
5- फरकति बांग अंग तन मेरे ।नहीं शगुन कुछ आछे हेरे ।[250]

247- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 6, अंशु 30, अंक40-42, पृ॰ 2918

248 -वही , रा 11, अंशु 13, अंक 6, पृ॰ 4022

249- वही , रा 7, अंशु 42, अंक 9-10, पृ॰ 3223

250- वही , रा 4, अंशु8, अंक 7, पृ 2257

'गुरु प्रताप सूरज' मेंऐसे ही अशकुनों के पर्याप्त संकेत विभिन्न युध्दों के वर्णनों में मिलते हैं । मुग़ल सेना को हारने से पूर्व ही ऐसे अशकुन दिखाई देने लगते हैं ।

1- भए कुशकन हु मरन जनावैं ।दाम बिलोचन सभि फरकावैं ।
शिवा अशिवा समुख को धावैं।मुख ते अगनी बमति दिखावैं।। 32 ।।
उलका पात होति बहुतेरे ।बोलति हैं उलूक चहुं फेरे ।
गरुयो हुतो की नगर पझारा।रुदनि सुनावति है बहु नारो।। 33 ।।[251]

2- ... काक कंक कूके कराल।मिलि गिध्द भखहिं बिसाल ।

× × × ×

दारुन महान कूकर श्रृंगाल ।[252]

3- खर सनमुखे हुइ ... दाम बार।शबद कर्यो अपशगन दिखार।।[253]

4- शिवा बमति ... कूकारें।बोलि उठे चहुं दिशि खर घोर।।[254]

(घ) अन्य विश्वास : इस वर्ग के अन्तर्गत स्वप्न, शाप, आशीर्वाद सम्बन्धी विश्वास आते है ।

1 - स्वप्न सम्बन्धी विश्वास : मानव वर्ग सोते समय प्रायः स्वप्न देखता है जिन में से कुछ सत्य सिध्द होते हैं और कुछ असत्य ।कुछ का सम्बन्ध वह विगत या आगामी घटनाओं से जोड़ लेता है औरकुछ को निरर्थक समझता है। 'गुरु प्रताप सूरज' में अनेक स्थलों पर स्वप्नों का वर्णन की गई है। इन में से किसी स्वप्न में आगामी सुख का सूचना मिलता है तोकिसी में दुःख की । कुछ उदाहरण देखिए :-

1- सोयति जबि जुग जाम बितार ।अधभुत सुपनो तिह छिन आए ।[255]

251- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 8 ,अंसु 20,अंक 30-33, पृ॰ 3386-87

252- वही , रा 8, अंसु 21,अंक 35-36, पृ॰ 3393

253 वही , रा 3, अंसु 32, पृ॰ 2039

254 - वही रा 7,अंसु 42,अंक 10,पृ॰ 3223

255- वही , रा 2, अंसु 32,अंक 17,पृ॰ 1773 तथा रा 2,अंसु 32, पृ॰ 1772-75 में देखिए , राजे ने सुपने में गोपाल जन्म पाइआ ।

2- हम को सिमरयो तुमने नाहूं । बिना लघु कारन - -।[256]

3- हे कुल तुमन राति को आवहु, देहि अति अपने लाभ पावहु ।[257]

4- श्री गुजरी हुइ तुमन बुलाई। ...निस महिं मुझ मारे ।। 3 ।।

... तुमारे ... कर दे ।... ...जर धरे ।

... करते ... तुमको ... इक वारो ।। 4 ।।

पुन ... की घर ... ।... तुमने महिं मा ... मारो।[258]

5- तुमन ... करि ...माई।... आनीन को ... बताई ।।[259]

(2) शपथ पर विश्वास : यथा देवों के विषय में यह विश्वास करते हैं कि जो बात 'शपथ' खाकर कहा जायेगा अथवा जिस के करने के लिए 'शपथ' दिला दी जायेगी, सामान्यतया व्यक्ति उसका निर्वाह अवश्य करेगा ।'गुरु प्रताप सूरज' में शपथ संबंधी विश्वास के निर्देश पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं ।तथा अन्य धार्मिक देवी देवताओं और धार्मिक ग्रंथों का शपथ भी परंपरा से समाज में प्रचलित है। गाय का शपथ खाकर विश्वास उत्पन्न करने की परंपरा भी प्रचलित है। पहाड़ी राजे गाय और अपने इष्ट का शपथ खा कर गुरु साहिब को विश्वास दिला दिला कर विश्वासघात करते हुए 'गुरु प्रताप सूरज' में चित्रित हैं।[260] तो मुगल बादशाह और वजार आदि कुरान आदि की शपथें खाते हैं।[261]

256- गु० प्र० सू० रा 9, अंशु 49, अंक 12, पृ० 3725

257- वही, रा 5, अंशु 62, अंक 11, पृ० 2756

258- वही, रा 12, अंशु 64, अंक 3-5, पृ० 4466

259- वही, रि 3, अंशु 9, अंक 3, पृ० 4850

260- (क) ... ठाकुर का आनहि बान ।तुरकन करयो इमान पठाया।

(ख) - वही रि 6, अंशु 26, अंक 9, पृ० 5838

ठाकुर धेनु ... ले आवै ।करे शपथ ... पठावै ।

ह...रत दिश ते ... आवै।जिम तुम उचरहु तिम ले

आन समेत कुरान उठावै ।। - वही, रि 6, अंशु 29, अंक 49 पृ० 5848

261-शिव ठाकुर अर कसम कुराना।- वही, रि 6, अंशु 26 अंक 34, पृ० 5839

कसम कुरान महान ... बखानी।-वही ऐन 2, अंशु 20, अंक 11 पृ० 6320

(3) <u>शाप या कोसने में विश्वास</u> : मानवीय स्वभाव के अनुसार, जिस व्यक्ति से हमें कष्ट मिलता है, उसके प्रति शालीनता वश अपशब्द का प्रयोग हम भले ही न करें, फिर भी उसके लिए हृदय में 'शाप' देने जैसी भावना अवश्य जागृत होती है। जिसे प्रचलित भाषा में 'कोसना' कहते हैं। पृथी चन्द की पत्नी द्वारा दिए गए माता गंगा को कष्टों के संदर्भ में इस कोसने के विभिन्न रूपों को देखा जा सकता है। शाप देने की बात वस्तुतः तब अधिक सामने आती है जब पीड़ित जन असहाय या असमर्थ होता है। कारण यह है कि उसमें अत्याचारी का सामना करने की सामर्थ्य हो तब तो वह ईंट का जवाब पत्थर से देकर बदला सहज ही ले लेता है। 'गुरु प्रताम सूरज' में शाप संबंधी निर्देश भी मिलते हैं जैसे रामराय श्री गुरु हरिकृष्ण को शीतला निकल कर मृत्यु प्राप्त करने का शाप देते हैं[262]। फिर बाल गुरु श्री हरिकृष्ण रामराय को शाप देते हैं कि तुम्हें जीवित ही जला दिया जायेगा और निस्सन्तान जायेगा[263]। इसके अतिरिक्त औरों को दिए गए 10 शापों का भी इस में उल्लेख हुआ है[264]।

(4) <u>आर्शीवाद में विश्वास</u> : 'गुरु प्रताप सूरज' में गुरु जन न केवल अपने श्रद्धालु भक्तों सेवकों और आत्मीय जनों को ही आर्शीवाद देते हैं अपितु आर्शीवाद के फल स्वरुप में ही मुग़ल शासक बाबर को भारत का राज्य सिंहासन मिला था। गुरु नानक के आर्शीवद से ही उसकी कई पीढ़ियों ने भारत पर राज्य किया था। इस आर्शीवाद को

262- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 10, अंशु 41, अंक 27, पृ॰ 3919

263- क्यों मत्सर ज्वाला सो जल है।

यांते जीव लगि जीवति रहै। तन मन ते जलतों बहु लहै ।। 24 ।।

— वही रा 10, अंशु 42, पृ॰ 3923

264- वही रा 10, अंशु 11 अं पृ॰ 3809-10

चर्चा 'गुरु प्रतापसूरज' में कई स्थानों पर हुई है। इसी आशीर्वाद को समाप्त करने के लिए गुरु तेगबहादुर को बलिदान देना पड़ा और गुरु गोबिन्द सिंह ने इस राज्य की जड़ें उखाड़ने की प्रतिज्ञा की । इस विशेष आशीर्वाद के अतिरिक्त सामान्य महत्व के आशीर्वाद का तो कई स्थानों पर उल्लेख है। हुमांयू भी आशीर्वाद् प्राप्ति के लिए गुरु अंगद देव जी के पास आता है परन्तु उसका अहंकार ही उसे इस कार्य में असफल बनाता है। बहादुरशाह भी राज्य सिंहासन को प्राप्त करने के लिए महापुरुषों के आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए लालायित रूप में चित्रित है उसे ऐसी स्थिति में नन्द लाल गुरु गोबिन्द सिंह जी से आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए प्रेरित करते[265] है।

श्री गुरु अर्जुन देव माता गंगा जी को पुत्र प्राप्ति हेतु बाबा बुड्ढा के पास भेजते हैं तथा उनके प्रसन्न होने एवं आशीर्वाद देने से श्री हरिगोबिन्द जी का जन्म[266] होता है।

कवि प्रसिद्धियों का वर्णन :

कवि वर्ग में कुछ विश्वास परंपरा से प्रचलित रहे हैं । जिनकी सत्यता की परख करने की आवश्यकता लोग नहीं समझते और जिन का प्रयोग निस्संकोच किया करते हैं, यहां तक कि कुछ असंगत बातों का वर्णन भी कवि वर्ग में असमीचीन नहीं माना जाता। इसका कारण बताते हुए डा० गुलाबराय ने लिखा है :- 'इन विश्वासों और प्रसिद्धियों का आधार चाहे प्राकृतिक सत्य न हो, परन्तु उनके संबंध में सारा सहृदय समाज एक मत रहता है और उनका परंपरागत बना लिख पढ़ी का समझौता सा बन जाता है कि कम से कम कविता में इन सब बातों का इसी प्रकार से वर्णन किया जावे[267] ।' डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार भी ''कवि समय' के अन्तर्गत लोक और शास्त्र विरोधी वे ही बातें

265- गु० प्र० सू० रेन 1, अंशु 40, अंक 7-8, पृ० 6167

266- रा 3, अंशु 3, अंक 19-20 पृ० 1899

267- बाबू गुलाब राय : पोद्दार अभिनन्दन ग्रंथ में प्रकाशित लेख 'कवि समय'

आती हैं जिन्हें प्राचीन काल के पंडित सहस्र=शाख वेवदों का अवगाहन करके, शास्त्रों का अवबोध करके, देशान्तर और द्वीपान्तर का परिभ्रमण करके निश्चित कर गए हैं। देश काल वश उनका यदि व्यतिक्रम हो भी गया हो तो उन्हें अस्वीकार नहीं करना चाहिए।'[268] अस्तु।

'गुरु प्रताप सूरज' में वर्णित कवि प्रसिद्धियों को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता हैं।

(1) <u>पशुओं से सम्बन्धित कवि प्रसिद्धियां</u> : 'गुरु प्रतापसूरज' में कई स्थलों पर पशुओं से सम्बन्धित कवि प्रसिद्धियों का उल्लेख हुआ है। यथा :-

1- कुंभी डिंभु सुंड भुजदंडे। कंचन अंगद मंडन मंडे[269]।

2- चारु चकित मृग सिसि दृग सोहति। पलट मीन को जनु जबि जोहति[270]।।

3- गज गामिनि सुठ कंठ कपोता[271]।

4- केहरि सा कट सु लपेटो कुंभ्र घंटका सु,[272]

5- कट के हरि बर, गजगौना[273]।

(2) <u>पक्षियों से सम्बन्धित कवि प्रसिद्धियां</u> : 'गुरु प्रताप सूरज' में मीन, खंजन, चातक, चकोर, तोता, कोकिल, चकवा, कपोत इत्यादि पक्षियों से सम्बन्धित कवि प्रसिद्धियों का अनेक स्थलों पर उल्लेख हुआ है। चकवे का दिन में मिलन और रात्त में वियोग, चकोर और चकोरी का एक टक चन्द्रमा की ओर निहारने तथा अंगार चुगने, चातक या पपीहे का 'पिउ पिउ'

268- डा· हजारी प्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ· 225

269- गु· प्र· सू· रि 3, अंसु 17 अंक 22 पृ· 5048

270- वही, रा 2, अंसु 4, अंक 13, पृ· 1666।

271- वही, रा 1, अंसु 48, पृ· 1529

272- वही रा 1 अंसु 53, अंक 7, पृ· 1551

273- वही, रा 8, अंसु 6, अंक 48, पृ· 3330

को वर्ष भर रटने पर प्यास केवल स्वाती के नक्षत्र की बून्दों से ही बुझाने, हंस का मोती चुगने, हंस का ही नीर और विवेक होने, कोयल का अपने अंडे पर स्वयं न न बैठ कर कौए के घोंसले में रख आने और उसके बच्चों का बसंत ऋतु में अपने कुल में आकर मिल जाने आदि का वर्णन, तथा कोयल की आवाज आदि का वर्णन 'गुरु प्रताप सूरज' में जो किया गया है इसके अतिरिक्त कपोत की गरदन का भी वर्णन हुआ है।

1- गज गमनी, सुर कोकिला, कट केहरि जैसो।

× × ×

कंठ कपोती सुंदरी सम ओठ प्रवाला।[274]

2- मानस तीर मराल बिराजति त्यों सिख श्री गुर तेगबहादर।[275]

3- चंद चकोरहिं चितवति जैसे।[276]

4- स्वांति बूंद कवि मिलहिं गुसाईं।[277]

5- सुंदर चंद चकवा चित जैसे।[278]

(3) <u>कीट पतंग सम्बन्धी कवि प्रसिद्धियां</u> : कीट वर्ग के अन्तर्गत सांप के पास मणि होना और वह उसे अत्यन्त प्रिय भी होना, सांप के बच्चे जैसा दस्तार का होना, पतंग वर्ग के अन्तर्गत भ्रमर का चंपे के फूल के निकट न जाना आदि कवि वर्ग में प्रसिद्ध रहा है।

चिकने केस पास सरुसारे। मनु पन्नग छौना समुदारे।
पाग बंधी उतनोक सुहाई। ऊपर जिगा अधिक छबि छाई।[279]

274- गु० प्र० सू० रा 1, अंसु 31, अंक 21-22, पृ० 1445

275- वही, रा० 2, अंसु 1, अंक 9, पृ० 1639

276- वही, चंद चकोरहि चितवति जैसे। वही - रा 4, अंसु 41, अंक 26, पृ० 2399

277- वही, रा 6, अंसु 51, अंक 2, पृ० 2999

278- वही, रा 9, अंसु 22, अंक 22, पृ० 3626

279- वही, रि० 3, अंसु 17, अंक 27, पृ० 5048

(4) <u>पुष्प सम्बन्धी कवि-प्रसिद्धियां :</u> यों तो अशोक, कर्णिकार या कनेर, दूब, कुमुद, करवक, चन्दन, तिलक, नीलोत्पल, पद्म या कमल, प्रियंगु, अर्जुनपात्र, मंदार, मालती आदि कई वृक्षों और पुष्पों के संबंध में कवि प्रसिद्धियां[280] है। परन्तु 'गुरु प्रताप सूरज' में कमल के संबंध में ही निर्देश मिलते हैं।

1- जिउ अंबुज रवि कुमलावै।[281]

2- आंख कमल की पांखरी चलचाल घनेरी।[282]

3- बिन सूरज पंकज मकुदारे।[283]

4- हमरे रिदे कमल बिकसावै।[284]

5- पवन सुबास बिखेरति भारे।[285]

<u>निष्कर्ष :</u>

भारतीय समाज में प्रचलित जिन विश्वासों और लोक मान्यताओं की चर्चा ऊपर की गई है, उन में से प्रायः सभी के प्रति आज भी उसी तरह आस्था बनी हुई है, ग्रामीण वर्ग के तो सभी स्त्री-पुरुषों में यह विश्वास हैं, परन्तु नगर में बसने वाले पुरुषों में कम हो फिर भी उन विश्वासों और मान्यताओं के प्रति श्रद्धा भावना देखी जाती है। भाई सन्तोख सिंह ने धर्म परायण भारतीय जनता के हृदय को समझा और वे उनके मनोभावों को अपने काव्य में एक चित्रकार की भांति चित्रित कर सकने में पूर्ण सफल रहे हैं।

280- डा· हजारीप्रसाद द्विवेदी ; हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ· 235-52

281- गु·प्र·सू· रा 2, अंसु 14, अंक 3, पृ· 1695

282- वही , रा 1, अंसु 31, अंक 21, पृ· 1445

283- वही , रा 1, अंसु 35, अंक 15, पृ· 1464

284- वही , रा 5, अंसु 29, अंक 18, पृ· 2623

285- वही , रा 9, अंसु 41, अंक 20, पृ· 3699

7 - आर्थिक जीवन चित्रण

अर्थ सामाजिक जीवन की धुरी है। आज जिस रूप में आर्थिक प्रक्रियाओं और उसकी शक्तियों का विश्लेषण किया जाता है, मध्यकाल में वह अज्ञात था फिर भी अर्थ का महत्व तत्कालीन जीवन में सर्वोपरि था। भारत की अर्थ सम्पन्नता ही विदेशी आक्रमणकारियों के लिए मोह का कारण बनी हुई थी। महमूद गज़नवी कासिम तुर्कों, मुगल सम्राटों तथा नादर शाह यद्यपि भारतीय अर्थ व्यवस्था को नष्ट भ्रष्ट करने तथा भारत से अपार धन, हीरे, जवाहरात, सोना, चांदी आदि ले जाने के प्रयास किए फिर भी मध्यकालीन भारत सोने की चिड़िया कहलाता था। भारत की सम्पन्नता का मुख्य स्रोत कृषि ही था। परन्तु समाज में एक वाणिज्य व्यवसायी वर्ग भी था जो अपनी आजीविका को चलाने के लिए वाणिज्य तथा अन्य प्रकार के व्यवसायों में भाग लेते थे। मध्यकालीन समाज में उत्पादक लोग कृषक, औद्योगिक मजदूर और व्यापारी थे। जबकि अमीर वजीर, दीवान और फौजदारी विभागों के अधिकारी, नौकरी पेशा, सैनिक, मौलवी, मुल्ला काजी पंडित पुरोहित, साधु, संन्यासी, पीर फकीर आदि उपभोक्ता वर्ग के अन्तर्गत आते हैं। सामान्य जनता के पास आमोद-प्रमोद की उतनी सामग्री न होती थी जितनी कि शाही अधिकारियों और अमीरों वज़ीरों के पास होता था। अमीर वर्ग सुस्वादु भोजन, कीमती वस्त्रों, मूल्यवान रत्नाभूषणों, हाथियों और घोड़ों के शौकीन होते थे। उच्च वर्ग में शराब खोरी का दुर्व्यसन भी प्रचलित था परन्तु सामान्य जनता की स्थिति विशेष अच्छी न थी। जीवन की साधारण सुख सुविधाएं भी उन्हें सहज उपलब्ध न थी। किसानों, मजदूर-कारीगरों, साधारण घरेलू सेवकों और छोटे छोटे दुकानदारों की स्थिति अकबर से औरंगजेब के काल तक धीरे धीरे और गिरती हो गई और बाद के मुग़ल सम्राटों के समय में तो बहुत ही खराब हो गई थी।

'गुरु प्रताप सूरज' में आर्थिक जीवन चित्रण

'गुरु प्रताप सूरज' में गुरुकालीन एवं मुग़लकालीन पंजाब की आर्थिक स्थिति के चित्र देखने को मिलते हैं।[286] कृषि ही तत्कालीन पंजाब की आर्थिक व्यवस्था का प्रमुख साधन थी।

286- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 1, अंसु 21, अंक 11: पृ॰ 1403

(ख) वही, रि 4, अंसु 2, अंक 41, पृ॰ 5214-15

परन्तु इसके साथ साथ अन्य व्यवसायों और उद्योग-धन्धों से सम्बन्धित निर्देश भी इस में मिलते हैं। विभिन्न उद्योग-धन्धों के आधार पर विविध जातियों का विकास भी हो चुका था ।

'गुरु प्रताप सूरज' में वर्णित आर्थिक व्यवस्था, वाणिज्य, व्यवसाय और जीविका के विभिन्न साधनों के अनुशीलन के लिए उपर्युक्त साधनों पर पृथक पृथक विचार करना आवश्यक है। अतः इन्हें अध्ययन की सुविधा के लिए निम्न वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। 1- जीविका के विविध साधन एवं विभिन्न वर्ग तथा साधनों के विभिन्न रूप । 2- व्यापारिक स्थान, रीति और वस्तुएं, 3- विविध व्यवसाय और व्यवसायी , 4- बाह्य व्यापार, , व्यावसायिक वर्ग, व्यापार के मार्ग तथा आयात निर्यात की वस्तुएं, नाप तौल और मुद्रा, 6- विविध उद्योग-शिल्प और शिल्पी ।

1- <u>उपजीविका के</u> <u>विविध साधन, विभिन्न वर्ग, विभिन्न रूप</u> : 'गुरु प्रताप सूरज' में वर्णित गुरु साहिबान की उपजीविका[287] का प्रमुख साधन यद्यपि उनके श्रध्दालु भक्तों द्वारा भेंट ही था तथापि गुरु पद प्राप्त करने से पूर्व गुरु अंगद देव और गुरु अमरदास छोटे व्यापारी वर्ग[287 ए] का ही प्रतिनिधित्व करते थे । सामान्य जनता की उपजीविका का प्रमुख साधन कृषि तथा पशुपालन[288] ही था । कृषि करने वाले कृषकों को , तथा भूमि के स्वामियों को भा'कर(भामिला)[289] देना पड़ता था । कृषि वर्षा पर ही निर्भर करता था । वर्षा न होने पर कृषक और जिमींदार वर्ग व्याकुल रहता था और वर्षा कराने के लिए अलौकिक शक्ति सम्पन्न व्यक्तियों के आशीर्वाद की प्राप्ति के लिए व्याकुल[290] रहता था ।

287- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 5, अंसु 32, अंक 9-10, पृ॰ 2634

287 ए- वही , रा 1, अंसु 14, अंक 6, पृ॰ 1367

288- वही , रा 1, अंसु 21, अंक 12-13, पृ॰ 1403

289- वही , रा 2, अंसु 10, अंक 10, पृ॰ 1683

290 - वही , रा 1, अंसु 21, अंक 15, पृ॰ 1403

ऐसे कृषक वर्ग को भ्रमजाल में डालने वाले 'ठगे' आदि भी तत्कालीन समाज में मिलते थे।[291]

गुरु साहिबान (अंगद से गुरु गोबिन्द सिंह तक) ने यद्यपि स्वयं कृषि नहीं की थी तथापि उन्होंने अनेक स्थानों पर कृषि को विकसित करने के लिए कुएं आदि लगवाये थे। जिससे जनता का कल्याण हो सके।[292] पंजाब की उपजाऊ धरती से प्राप्त होने वाली व्यापारिक वस्तुएं कपास, गन्ना, गेहूं और धान आदि था। खाद्य पदार्थों में से गेहूं, चना बाजरा आदि थे।[293] कृषि के अतिरिक्त शिल्प भी पर्याप्त उन्नत था। जहां एक ओर ग्राम की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाले उद्योगों में से कुम्हार, बढ़ई, धोबी, जुलाहे, नाई आदि अपना योगदान देते थे तो दूसरी ओर उच्च कोटि कलात्मक रुचियों को उन्नत करने वाले व्यवसायों से स्वर्णकार आदि का परिचय मिलता है।

आर्थिक जीवन का तीसरा स्तंभ है — व्यापार। इस व्यापार को उन्नत करने में वणिक, बजाज, सराफ, अपना सहयोग देते थे। इस तरह से उक्त तीन प्रमुख वर्गों— कृषक वर्ग, शिल्पी वर्ग और व्यापारी वर्ग — से सम्बन्धित निर्देश गुरु प्रताप सूरज में मिलते हैं

2- <u>व्यापारिक स्थान, रीति और वस्तुएं</u> : व्यापार करने के लिए व्यापारी वर्ग नगरों और ग्रामों में, बजारों में दुकानें करते थे। गुरु साहिबान ने जिन नवीन नगरों को बसाया वहां पर व्यापारी वर्ग की सुख सुविधा के लिए दुकानें आदि भी बनवायीं।[294] गुरु साहिबान की निजी आय का एक साधन दुकानों का किराया भी था। गुरु अर्जुन देव जी की जब अपने भाई पृथी चन्द आदि से विरोध होता है तो अमृतसर की दुकानों के किराये की आय के बांटने के संकेत 'गुरु प्रताप सूरज' में मिलते हैं।[295]

291- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 1, अंसु 23, अंक 20, पृ॰ 1411

292- वही, द्रष्टव्य : द्वितीय अध्याय, गुरु साहिबान के वर्ग जनिक कार्य।

293- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 2, अंसु 49, अंक 2, पृ॰ 1839

294- वही, रा 2, अंसु 29, अंक 30, पृ॰ 1763

295- वही, वही

व्यापारी वर्ग अपनी दुकानों को माल से सजाते थे और सामान्य जनता अपनी आवश्यकता के अनुसार वस्तुएं खरीदती थी । लाहौर और अमृतसर के बजारों और व्यापार की उन्नति के भी निर्देश मिलते हैं । रामदास लाहौर से गुरु अमरदास के लिए चोगे या सुन्दर वस्त्र खरीदने का संकल्प करते हैं[296] । इसी तरह बजाज के अतिरिक्त , सराफ और वणिक आदि के भी निर्देश मिलते हैं । परन्तु खाद्य पदार्थों के अभाव या युद्ध के समय व्यापारी वर्ग भावों में वृद्धि कर देते थे जैसे युद्ध के समय एक रुपये[297] सेर भी अनाज नहीं मिलता था ।

कम पूंजी वाले व्यापारी दैनिक उपयोग की वस्तुओं को लाद कर 'फेरी' भी लगाते थे[298] । बड़े व्यापारी को 'शाह' कहा जाता था[299] । जैसे 'फक्कन शाह' । व्यापार की वस्तुओं में से दैनिक उपयोग में आने वाली वस्तुएं [300] नमक, मिर्च, फल, घी, सब्जी, दूध मक्खन आदि के अतिरिक्त वस्त्र आदि को भी सम्मिलित किया जा सकता है। बाजार वाले जौहरी और सराफ तो दुकानों पर ही सारे जवाहरात तथा आभूषण आदि बेचते थे । कई वस्तुओं को अभाव ग्रस्त स्थान पर ले जाकर भी बेचा जाता था ।

5- <u>विविध व्यवसाय और व्यवसायी</u> : ऊपर हम वस्तु विशेष का व्यापार करने वाले विविध व्यवसायियों के विषय में संकेत कर चुके हैं जैसे पंसारी, जौहरी, सर्राफ बजाज आदि । इन के अतिरिक्त भी आजीविका के अनेक साधन हैं जिन से सम्बन्धित निर्देश 'गुरु प्रताप सूरज' में मिलते हैं — इन्हें हम पांच वर्गों में वर्गीकृत कर सकते हैं जैसे 1- बुद्धि जीवी, 2- श्रमजीवी, 3- मनोरंजनकारी , 4- प्रशस्ति गायक , 5- शिल्पी ।

(1) <u>बुद्धि जीवी वर्ग</u> : इस वर्ग के अन्तर्गत पुरोहित[301], वैद्य[302] तथा ज्योतिषी[303] आदि आते हैं जिन की उपजीविका दान द्वारा प्राप्त धन से ही चलती थी ।

296- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 1, अंशु 44, अंक 40, पृ॰ 1509

297- वही , रि 6, अंशु 25, अंक 35 पृ॰ 5828

298- वही , रा 1, अंशु 14, अंक 6, पृ॰ 1367

299- वही , रा 11, अंशु 3-9, पृ॰ 3986

300- वही , रा 8, अंशु 6, अंक 29, पृ॰ 3531

301- वही , रि 1, अंशु 17, अंक 24, पृ॰ 4562

302- वही , रा 3, अंशु 57, अंक 45, पृ॰ 2171

303- वही , ऐन 1, अंशु 35, अंक 46, पृ॰ 6138

(2) <u>श्रमजीवी वर्ग</u> : इस वर्ग में ऐसे लोग आते हैं जो शारीरिक परिश्रम द्वारा अर्थार्जन करते हैं और अपनी जीविका का निर्वाह करते हैं। इस के अन्तर्गत चरवाहे[304], धाही[305], आंगरो[306], हलवाई[307], मजूर[308], केवट[309], नाई[310], कहार[311], माली[312], दाई[313], दस दासियां[314], नौकरी[315], बेलदार[316] आदि आते है।

(3) <u>मनोरंजन कारी वर्ग</u> : इस वर्ग के अन्तर्गत नट[317], बाजीगर[318], मदारी[319], वेश्या[320], सपेरा[321] आदि की गणना की जा सकती है।

304- गु॰ ग्रं॰ रा 8, अंशु 36, अंक 27, पृ॰ 3450

305- वही, रा 4, अंशु 57, पृ॰ 2465, वही, रा 11, अंशु 41, अंक 11 पृ॰ 4128

306- वही, रा 1, अंशु 10, अंक पृ॰ 1346

307- वही, रि 1, अंशु 10, अंक 32, पृ॰ 5434

308- वही, रा 2, अंशु 34, अंक 11, पृ॰ 1780, रा 2, अंशु 39, अंक 30 पृ॰ 1803

309- वही रा 10, अंशु 15, अंक 33, पृ॰ 3825

310- वही, रा 1, अंशु 11, अंक 33, पृ॰ 1355

311- वही, रा 4, अंशु 9, अंक 10, पृ॰ 2262

312- रा 12, अंशु 12, अंक 17, पृ॰ 4269

313- वही, रा 3, अंशु 4, अंक 23, पृ॰ 1966

314- वही, रा 10, अंशु 33, अंक 25, पृ॰ 3892

315- वही, रा 5, अंशु 32: अंक 9, पृ॰ 2633, वही, रि 2, अंशु 1, अंक 40 पृ 4701

316- वही, रा 10, अंशु 2, अंक 18, पृ॰ 3776

317- वही रि 1, अंशु 14, अंक 19, पृ॰ 4549

318- वही,

319, वही रि 1, अंशु 18, अंक 5-6 पृ॰ 4565

320- वही रित॰ 4, अंशु 36, अंक पृ॰ 5558

321 वही रा 3, अंशु 9, अंक 2, पृ॰ 1928

(4) प्रशस्ति गायक वर्ग : इस वर्ग के अन्तर्गत रबाबी[322], भट भाट, चारण[323], डोम[324] भाट तथा ढाढी[325] आदि आते हैं।

(5) शिल्पी कलाकार : इस वर्ग के अन्तर्गत बढ़ई (तिरखान)[326] स्वर्णकार[327], दरजी[328], जुलाहे[329], कारीगर (विश्वकर्मा)[330], रंग रेज (ललारी)[331] लुहार[332], कुम्हार (कुलाल)[333], चित्रकार[334] आदि आते है।

इन के अतिरिक्त गुरु कालीन समाज में निःशुल्क सेवा करने वाले सेवक भी थे जो केवल लंगर से भोजन ग्रहण करने के अतिरिक्त किसी प्रकार के धन की इच्छा न रखते थे।[335] ऐसे सेवकों का योगदान विभिन्न भवनों के निर्माण कार्य में तथा अमृतसर आदि के बनाने

322- गु॰ ग्र॰ सू॰ रा 8, अंशु 7, अंक 23, पृ॰ 3336

323-(क) वही, रा 7, अंशु 7, अंक 20, पृ॰ 3082

(ख) वही, रा 8, अंशु 53, अंक 15, पृ॰ 3596

(ग) वही, रा 10, अंशु 12, अंक 11, पृ॰ 3823

324- वही, रि 2, अंशु 32, अंक 13, पृ॰ 4824

325- वही, रि 1, अंशु 6, अंक 9, पृ॰ 4517,

326- वही, रा 5, अंशु 42, अंक 45, पृ॰ 2678, रा 11, अंशु 43, अंक 33, पृ॰ 4138

327- वही, रि 3, अंशु 42, पृ॰ 5161,

328- वही, रा 12, अंशु 44, अंक 25, पृ॰ 4396

329- वही, रा 1, अंशु 17, अंक 4-8, पृ॰ 1385

330- वही, रा 6, अंशु 45, अंक 3, पृ॰ 2975, रा 6, अंशु 47, अंक 15, पृ॰ 2984

331- वही, रा 11, अंशु 8, अंक 44, पृ॰ 4003

332- वही, रा 4, अंशु 66, अंक 39, पृ॰ 2585, रि 3, अंशु 2, अंक 23, पृ॰ 4922

333- वही, रा 2, अंशु 48, पृ॰ 1781, रा 2, अंशु 34, अंक 25, पृ॰ 1835

334- वही, रा 2, अंशु 56, पृ॰ 1866

335- वही, रा॰ 2, अंशु 56, अंक 43, पृ॰ 1842

में सराहनीय है। पुरुष स्त्री भी इस कार्य में सहयोग देते थे ।[336]

4- बाह्य व्यापार, व्यावसायिक कर्म, व्यापार के मार्ग और आयात निर्यात की वस्तुएं:

तत्कालीन समाज में थल मार्ग के अतिरिक्त जल मार्ग से भी व्यापार आदि होता[337] था । दूर देशों से जहाजों के द्वारा माल लाया जाता था । जैसे कान शाह के जहाज आदि का 'गुरु प्रतापसूरज' में उल्लेख[338] मिलता है। आयात की वस्तुओं में से मेवे, सूखे मेवे, मिर्च मसाले, घोड़े[339], कम्बल[340], रेशमी वस्त्र, अफीम (विला ना)[341] खनिज पदार्थ आदि। यहां से निर्यात होने वाली वस्तुओं में रेशमी वस्त्र, शालदुशाले दुशालों के अतिरिक्त अन्य वस्तुओं का उल्लेख 'गुरु प्रताप सूरज' में नहीं किया गया है। यद्यपि तत्कालीन युग में विदेशों से पर्याप्त व्यापार होता था तथापि सामान्य जनता इस व्यावसायिक कर्म में विशेष रूचि नहीं लेती थी ।

5- नाप तौल और मुद्रा : अधिकतर व्यापार 'वस्तु-विनिमय' के द्वारा ही होता था परन्तु जहां ऐसी सम्भावना न होती थी वहां बिक्री की वस्तु का मूल्य तत्कालीन प्रचलित सिक्कों के द्वारा चुकाया जाता था । मुद्रा के अन्तर्गत, रजतपुंग[342], दीनारे[343], मोहरे आदि गिनी जा सकती हैं तो नाप तौल में तोला सेर, मन आदि[344] के उल्लेख भी 'गुरु प्रताप सूरज' में मिलते हैं ।

336- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 1, अंशु 55, अंक 8, पृ॰ 1559

337- वही, रा 1, अंशु 10, अंक 7-9, पृ॰ 1352-53,

वही, 'देश विदेशनि वनज महाना।'-रा 2, अंशु 54, अंक 10, पृ॰ 1860

338- वही, रा 11, अंशु 3, पृ॰ 3986

339- वही, 7, अंशु 25, -26, पृ॰ 3154-59 तथा भाई बारीसिंह का फुटनोट, पृ 3159

340- 'जरी बाफता मखमल भारी - - - -अमि देशनि ते ल्याइ हजारों, रि5, 22॰4-5, पृ॰5536

341- वही, (क) हुतो अफाम विदेश का जिस असल महाना।रि 2॰44॰17॰4885

(ख) वही, दूर बलाइत ते जो आवति अति मादक चहिआई।रि4॰25॰25-26, पृ॰5307

342- ... से रजतपन - । वही, रा3, अंशु 17, अंक 18, पृ॰1969

343- वही, रा1, अंशु54, अंक20, पृ॰1557, ऐन 1, अंशु34, अंक27, पृ॰ 6143

344-(क) मन अंक हो अंधकावै। वही, रा2, अंशु45, अंक5 पृ॰1823, रा2॰49॰20, पृ॰1842

(ख) बावन तोलै रत्ती पाउ। वही, रा3, अंशु66, अंक49, पृ॰2ıı

(ग) वही रा 10, अंशु 3, अंक 378।

6- विविध उद्योग - शिल्प और शिक्षा : मुग़ल काल में अनेक शिल्पों की उन्नति भी हुई। मुग़ल सम्राट वैभवशाली जीवन बिताते थे और भवनों को सुन्दर वस्तुओं से सजाते थे [345]। इस लिए उनके प्रोत्साहन के कारण भारत में अनेक शिल्पों का उत्कर्ष हुआ।

(1) कपड़ा : प्राचीन काल से ही भारत में कपड़े का शिल्प बहुत उन्नत अवस्था में था। मुग़लकाल में इसी शिल्प की विशेष उन्नति हुई। मुग़ल शासक अन्य राजाओं और गुरु साहिबान विशेष प्रकार का बड़ा बारीक मलमल [346] आदि के वस्त्र पहना करते थे। रेशम के कपड़े भी भारी मात्रा में तैयार किए जाते थे। काढ़ने और कसीदा का काम भी बहुत किया जाता था। शालें, खेस, दरियां आदि कहीं न कहीं बनता था। पहले लाहौर इस शिल्प में उन्नत था तत्पश्चात् अमृतसर के बस जाने पर यहां भी कपड़ा उद्योग काफी उन्नति की ओर बढ़ चला था।

(2) जौहरियों और सुनारों का काम: मुग़ल सम्राट तथा गुरु साहिबान सुन्दर आभूषण किया करते थे। उनकी बेगमों और स्त्रियां भी उन्हें प्रयोग में लाती थी [347]। [illegible] सोने और चांदी के आभूषण बनाये जाते थे और उनमें हीरों और मोतियों की जड़ाई भी की जाती थी।

(3) बर्तन और धातु शिल्प: मुग़ल काल में मिट्टी और सोने के बर्तनों पर सुन्दर चित्रकारी होती थी। सोने और चांदी [348] के भी बर्तन बनते थे। सामान्य लोग अधिकतर पीतल के बर्तनों का प्रयोग करते थे। कई बर्तन तो केवल सजावट के लिए ही प्रयोग में आते थे।

345- क्रम "बेगम के समीप सुन दै रे। खिद्मत करे लगे घनेरे। 26 ॥
मखमल करो सलिरनि लरको। बैच सु चांदी चामीकर की।
हीरे कुक्कर सु मुकता लागे। जग मग दुति जागे॥ 27 ॥
- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 5 अंसु 6, पृ॰ 2536

346- वही, रा 12, अंसु 5, अंक 15-16 पृ॰ 4241

347- (क) कंचन के भूखन बहु पावहि। - वही रा 1, अंसु 64, अंक 8, पृ॰ 1606

(ख) कंचन होइ नहीं छवि धारा। - वही, रा 2, अंसु 15, अंक 9, पृ॰ 1792

348- सो जि प्रतछिन कंचन बासन। - वही रा 3, अंसु 64, अंक 47, पृ॰ 1764

परन्तु कटोरे, थाल आदि अनेक बर्तनों का उल्लेख कई स्थानों पर 'गुरु प्रताप सूरज' में मिलता है।[349]

(4) नक्काशी और पच्चीकारी : भवन निर्माण कला में नक्काशी और पच्चीकारी का कार्य विशेष उन्नति पर था । हरि मन्दिर के निर्माण में इस कला के उल्लेख मिलते है।

(5) बाग : उस समय अनेक नगरों में बाग भी बने हुए थे जैसे श्री नगर, देहली, आगरा, पटना में बागों के संकेत मिलते है ।[350]

निष्कर्ष : उपभोग की वस्तुएं यद्यपि उस समय सस्ती थी तथापि सामान्य जनता का स्तर बहु ऊंचा नहीं था । वह थोड़े परिश्रम से आजीविका कमा लेती था और स्वभावतः सन्तोषी अधिक थी । मजदूरों को मजदूरी बहुत कम मिलती थी ।परन्तु मुग़ल सम्राटों के दरबार के ठाट बाट, उनके भोगविलास की सामग्री , तड़क भड़क को देख कर अनुमान लगाया जा सकता है कि तत्कालीन अर्थ व्यवस्था विशेष बुरी नहीं थी । मुगल सिंहासन के लिए जैसे संघर्ष हुआ करते थे उसी तरह गुरु गद्दी की प्राप्ति के लिए भी गुरु घर में संघर्ष चलता ही रहता था ।दातू, मोहन, पृथीचन्द, धीरमल, रामराय आदि ~~के कारण~~ इस की आर्थिक सम्पन्नता के कारण ही संघर्ष करते थे ।

4 - राजनैतिक जीवन चित्रण :

देश की स्थूल राजनैतिक, धार्मिक परिस्थितियों और संघर्षों पर सांस्कृतिक जीवन के मूल्यों की स्थिति निर्भर रहती है। सांस्कृतिक क्षेत्र में परंपरा और युगधर्म दोनों ही अपना सूक्ष्म क्रिया प्रतिक्रियाओं के साथ उपस्थित रहते हैं । सांस्कृतिक चित्र को उभारने के लिए इस राजनैतिक व्यवस्था का विश्लेषण भी आवश्यक हो जाता है। 'गुरु प्रताप सूरज' में मुग़ल कालीन राजनैतिक व्यवस्था के अनेक चित्र देखने को मिलते हैं ।उस समय सारी राजनैतिक व्यवस्था की बागडोर मुग़ल सम्राटों के हाथों

349- द्रष्टव्य : 'सामान्य जीवन' के अन्तर्गत शीर्षक 'कला'

350- ' रचना उपबन की छबि हेरति।'

गु॰ प्र॰ सू॰ रा ।।अंशु 56, अंक 32पृ॰ 4196

में थी ।बाबर के पश्चात् हुमांयू से लेकर औरंगजेब के काल तक ही राजनैतिक व्यवस्था इस महाकाव्य में अंकित है। उनकी राजनैतिक और धार्मिक नीति निरंकुश शासन व्यवस्था राजस्व, सेना और युध्द आदि से सम्बन्धित निर्देश इस ग्रंथ में मिलते हैं

'गुरु प्रताप सूरज' के राजनैतिक विश्लेषण में एक ओर मुगल सम्राटों की परंपरा के अन्तर्गत केन्द्रीय शासन व्यवस्था आदि पर विचार किया जा सकता है तो दूसरी ओर उनकी धार्मिक नीति पर चलने वाली इस शासन व्यवस्था के विरूध्द, उनके अत्याचारों से पीड़ित जन जीवन की झांकी भी प्रस्तुत की जा सकतीहै ।गुरु नानक देव जी ने इस कलि-काल की राजनैतिक परिस्थितियों पर प्रकाश डाला थाजिसका हम द्वितीय अध्याय में संकेत कर आये हैं । हुमांयू अकबर आदि मुग़ल शासक तो गुरु अंगद, गुरु अमरदास और गुरु रामदास को सम्मान देते रहे हैं ।किन्तु गुरु अर्जुन देव को यदि जहांगीर की द्वेषपूर्ण राजनीति एवं धर्मान्धिता ने शहीद[351] किया।और गुरु तेगबहादुर को औरंगजेब की धर्मान्ध राजनीति के कारण ही बलिवेदी पर चढ़ना पड़ा[352] । इसी औरंगजेब के काल में सरहिन्द के गवर्नर वजीरखां ने गुरु गोबिन्द सिंह के दो पुत्रों को दीवारों में चिनवाने या कतल करने का निन्दनीय कर्म किया[253] । गुरु गोबिन्द सिंह द्वारा युगधर्म के अनुकूल स्थापित 'खालसा पंथ'को औरंगजेब और पहाड़ी राजाओं के विरूध्द अनेक युध्द करने पड़े ।यह सब कुछ युगीन राजनीति के कारण ही हुआ । इस ग्रंथ में ही मुगल साम्राज्य के उदय और मध्यान्ह और जीवन संध्या के चित्र भी अंकितह हैं।

गुरु साहिबान ने मुग़ल साम्राज्य के लहराते चमन को भी देखा और उसके सम्राटों को आशीर्वाद भी[354] दिए , उनके आततायी रूप को समाप्त करने के लिए तलवार[355] भी उठाई और उसके परिवर्तित रूखे सूखे रूपको न केवल देखा ही अपितु उसको जड़े उखाड़ने में अभूतपूर्व

351- द्रष्टव्य : द्वितीय अध्याय, गुरु अर्जुन जी का बलिदान ।

352- द्रष्टव्य : वही , गुरु तेगबहादुर जी का बलिदान ।

353- गु॰प्र॰सू॰रि 6, अंशु 52, अंक 10-11, पृ॰ 5943 तथा भाई वीरसिंह का फुटनोट।

354- (क) वही रा 1, अंशु 10, अंक 48-49, पृ॰ 1350

(ख) वही, रा4, अंशु 24, अंक 27, पृ॰ 2325

(ग) वही, रा 12, अंशु 61, अंक 30, पृ॰ 4457

355- वही , रा 4, अंशु 40, अंक 20, पृ॰ 2395

योगदान भी दिया[356]। इस सारे संघर्ष की कहानी 'गुरु प्रताप सूरज' में अंकित है। इन चित्रों के साथ साथ हमें तत्कालीन राजवर्ग के संगठन और स्वरूप, शासन व्यवस्था, राजस्व प्रणाली, सेना, युध्द आदि से सम्बन्धित निर्देश भी यहां मिलते हैं। इस अध्ययन के अनुशीलन के लिए उसको निम्न वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

1- राजनीतिक संस्थान का संगठन और स्वरूप, 2-शासन व्यवस्था, 3- राजस्व, 4-सेना और युध्द चित्रण। 5-राजनीति सम्बन्धी अन्य बाते, 6-निष्कर्ष।

1- <u>राजनैतिक संस्थान का संगठन और स्वरूप :</u> तत्कालीन राजनैतिक व्यवस्था निरंकुश राजतन्त्रीय थी। समस्त अधिकार एक ही मनुष्य के हाथ में केन्द्रित थे। शासक ही राष्ट्र का भाग्य विधाता और एक सीमा तक युग चेतना का नियामक होता था। वह आक्रमणों का संचालन करता था। ये आक्रमण विभिन्न प्रान्तों पर मुगलशासन एक की विस्तारवादी नीति के कारण होते ही रहते थे। इस के अतिरिक्त बादशाह धर्म और राज्य दोनों का प्रधान था। उनकी राजनीति धर्म व जाति के रंग में रंगी हुई थी। वह राजनीति को तलवार से धर्म का प्रचार और प्रसार करना भी अपनी बादशाही का उद्देश्य मानता था[357]। उसके शासन संस्थान में भारतीय अभारतीय दोनों प्रकार के तत्वों का सम्मिश्रण था। जिस में एक ओर अमीरों (राज्यपाल), वज़ीरों (प्रान्तीय शासक) दीवानों (प्रान्त का भूमि कर अध्यक्ष) आदि का जमघट था तो दूसरी और काजी, मुल्ला, मौलवी आदि राजनैतिक संस्थान को चलाने में, न न्याय आदि के कार्यों में कुरान की दुहाई देने में, विभिन्न प्रकार के करों के आरोपण में अपना सक्रिय योगदान दे रहे थे। भारतीय तत्वों के अन्तर्गत इन शासकों ने हिन्दू भूमि कर व्यवस्था को ज्यों का त्यों अपनाया हुआ था। मुगलशासक स्वयं फरियादियों की फरियादे[358] सुनते थे और खुले दरबार

356- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 1, अंशु 1, अंक 38, पृ॰ 1303,
वही, रा 1, अंशु 8, अंक 34, पृ॰ 1339

357- 'इस बिन शरा चलहि जग नाहिं'।
- वही, रा 12, अंशु 60, अंक 43, पृ॰ 4454

358- वही रा 8, अंशु 13, पृ॰ 3361

में मुकदमों का फैसला किया करते थे ।

प्रान्तीय शासन का संगठन यहां के सूबेदारों के आधीन था । 'गुरु प्रताप सूरज' में दिल्ली, सरहिन्दी, लाहौर आदि के सूबेदारों का विशेष उल्लेख हुआ है। इन प्रान्तों को राजधानियों के कार्य शाही दरबार के कार्यों के प्रतिरूप ही थे । स्थानीय सूबेदार, दीवन, और काजी उन्हीं पध्दतियों के अनुसार अनुसरण करते थे । प्रत्येक सूबेदार अपने प्रान्त में 'बादशाह' की भान्ति कार्य करने का यत्न करता था । यह राज तन्त्र सामन्तीय समाज व्यवस्था का भी पोषक था ।

2- <u>शासन व्यवस्था</u> : मुगल शासकों की शासन व्यवस्था उनकी धार्मिक नीति को ही अभिव्यक्त करती थी । उनके कर्मचारी जनता का शोषण करते थे । अतः शासक और शासित में शोषक और शोषित का ही सम्बन्ध रह गया था । इस ग्रंथ में शासक वर्ग में से अकबर, जहांगीर आदि की अपेक्षा शाहजहां और औरंगजेब के व्यक्तित्व पर अधिक प्रकाश डाला गया है। औरंगजेब के निन्दित कर्मों का वर्णन इस में विस्तार से मिलता है।

शासक वर्ग अधिकतर अपनी विस्तारवादी नीति के कारण युध्दों में ही लीन रहता था । सामान्य जनता की सुख सुविधाओं की ओर उसका विशेष ध्यान नहीं था । या वह विलासता में डूबा रहता था (जैसे शाहजहां आदि) या फिर औरंगजेब की तरह विस्तारवादी नीति के कारण युध्दों में लीन रहता था । सेना के अधिकारी और सैनिक जनता पर अत्याचार करते थे[359]। सैनिक अभियान के समय मार्ग के ग्राम उजड़ या नष्ट भ्रष्ट कर दिए जाते थे[360] । राजकीय कर की वसूली पर विशेष जोर दिया जाता था[361]। राजकीय कर्मचारी भी किसानों का शोषण करते थे । रिश्वत भी प्रचलित थी[362] । बड़े बड़े

359- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 1, अंशु 41, छंद 54-55, पृ॰ 1496

360- वही, अंक 59-60, पृ॰ 1496

361- वही, अंक 65, पृ॰ 1497

362- वही, रा 2 3, अंशु 20, अंक 31, पृ॰ 1982, रा 3, अंशु 27, अंक 14, पृ॰ 2017, रा 4, अंशु 48, अंक 19, पृ॰ 2430

राजकीय कर्मचारी रिश्वत[363] लिया करते थे ।अनेक प्रदेशों के शासक स्वतन्त्र भी हो रहे थे ।पहाड़ी राजा भी ऐसी स्थिति का लाभ उठा कर स्वतन्त्र होने की चेष्टा करते थे ।परन्तु उनके विरुध्द या उनसे बहुत मात्रा में धन ग्रहण कर उनकी सहायतार्थ अनेक युध्दों में भी मुग़ल सैनिक सहायक बने थे ।शासक का प्रजा के साथ सहानुभूति पूर्ण सम्बन्ध कहीं भी दिखाई न देता था ।यदि कोई सम्बन्ध था तो आतंक, भय और शोषण का ही था ।राजनैतिक व्यवस्था के स्थान पर दुर्व्यवस्था का 'गुरु प्रताप सूरज' में अधिक चित्रण हुआ है। इसमें अनेक स्थानों पर चोरों[364] के उल्लेख से पता चलता है कि शासन व्यवस्था विशेष सुगठित न थी । ये चोर सन[365] भी लगाते थे ।इस युग में राजनैतिक दुर्व्यवस्था के कारण क्षुब्धता के ही अधिक चित्र देखने को मिलते हैं । राजकीय कर्मचारियों में से ~~जसूस~~ जासूस,[366] दरोगा,[367] काजी और कोतवान[368] का विशेष उल्लेख 'गुरु प्रतापसूरज' में हुआ है। उनके रिश्वतखोर रूप भी सामने आये हैं ।

<u>3- राजस्व</u> : प्रत्येक राज्य व्यवस्था के सम्यक् संचालन के लिए धन की आवश्यकता होती है जिसकी पूर्ति प्रजा पर लगाए गए 'कर' से हुआ करती है।राजपरिवार, राजकीय कर्मचारी ,सेना के पदाधिकारी आदि के वेतन तथा प्रशासकीय व्यवस्था आदि के लिए जो धन चाहिए, वह विविध करों' के रूप में प्रजा से लिया जाता था। इसे राजस्व कहते हैं । वैसे तो राज्य की प्राय विभिन्न विभागों की आय से होती

363- (क) रिशवत दे सभि को अपनावति ।-गु॰ प्र॰ सू॰रा5, अंशु4, अंक10, पृ॰2527

(ख) मुहर तीन शत रिशवति दीनसि, दीन बदन हुइ बिनती गाइ।

- वही , रा 3, अंशु 27, अंक 14, पृ॰ 2017

364-(क) वही , रा 3, अंशु 38, अंक 14, पृ॰ 2070

(ख)'खषट चोर खट घोरनि हेतु।'-वही, रा12, अंशु 35, अंक 7, पृ॰ 4362

365- वही, रा 8, अंशु 4, अंक 14, पृ॰ 3324

366- वही , ऐन 1, अंशु 47, अंक 11, पृ॰ 6204

367- वही, रा 7, अंशु 26, अंक 37, पृ॰ 3162

368- वही, रा12, अंशु 36, अंक 34, पृ॰ 4368

है।तथापि 'भूमिकर' या 'लगान' ही राज्य की व्यवस्था का मुख्य स्रोत होता था । इसके इलावा चुंगीकर, लावारिस माल, युद्धों की लूट, उपहारों और जुमानों आदि से भी आय होती थी ।जुमाने बहुत अधिक लगाए जाते थे कि देने वाले उन्हें न दे सकने में प्रायः असमर्थ ही होते थे ।एक बार गोइंदवाल में अकबर का मन्त्री बीरबल क एक रुपया प्रति घर घर के हिसाब से 'कर' उगाहने के लिए[369] आता है और बड़ी कठोरता से वसूल करने का प्रयास करता है। इस तथ्य से सम्बन्धित चित्र गुरु प्रताप सूरज' में अंकित है।

इसके अतिरिक्त जहांगीर के गुरु अर्जुन देव पर लगाये जुर्माने का उल्लेख गुरु प्रताप सूरज' में मिलता[370] है। ऐसी शासन व्यवस्था में हिन्दू लोगों का जीवन संत्रस्त हो था। अकबर के काल में यदि धार्मिक उदारता के कारण जज़िआ कर समाप्त कर दिया गया था तो शाहजहां, औरंगजेब के युग में पुनः जजिया और यात्रा कर लगा दिए गए थे । औरंगजेब की धर्मान्धता के फलस्वरूप हिन्दुओं को अपने धर्म तथा जीवन की सुरक्षा के लिए अनेक प्रकार के कर देने पड़ते थे । औरंगजेब के शासन काल का एक चित्र देखिए:-

"हुकम दीओ 'मंदर दिहु गेरि।मूरति भगनहु अंग बखेरि।। ।5 ।।
होइ निकटि बोलहि जे कोई।कैद करहु गहि मारहु सोई।
दंड देहु करि के जबराई।बाजहि संख न फिरहि दुहाइ।। ।6 ।।
बहुत मिहनती देहु लगाइ।मुझ ढिग होते देहु ढहाइ।
जहिं जहिं मंदिर खरे बडेरे । तहिं मसीत चिनवहु बिन देरे ।। ।7 ।।
जहिं जहिं हिंदुनि के असथाना।इनहि जेजवा लगहि महाना।
सगल ठौर बहु दंभ कमावा।चलनि शरहा को इनहि न भावा
दिहु सजाइ सभि भांतनि इने।तबहि पठनि कलमा मन मने।
जिस को झगरो देहु जिताइ।तिसहि शरहा महिं लेहु चलाइ ।। ।9 ।।

369- इक घर एक रजतपण दे के ।मिलिहि तोहि नंम्रो सिर कैके ,।।
— गु. प्र. सू. रा।, अंशु 41, अंक 31, पृ. 1494

370-वही , रा 4, अंशु 29, अंक 33-34, पृ. 2345

हिंदू ह्वै करि रहैं निताणे ।होन जोवका हुइं तबि जाणे'।
जबि इम हुकम दुशट ने दोना।महां मूढ हंकार मलोना ।। 20 ।।
धाए जहिं करिं दुशट घनेरे ।करति बिदोरनि मंदिर मेरे ।
'हाइ हाइ' हिंदुनि महिं होवा।को क्योंहूं नहिं समुख खरोवा।। 21 ।।
वुरे सदन महिं मंडित रोए।ब्रिथा अटल महिं रिदा पुरोए।।
'राम ब राम' कहि भए लचार।नहिं मन आवहि को उपचार ।। 22 ।।
× × × ×
तिम कलिजुग महिं नौरंग होवा।महा मलेछ चहति भ्रम खोवा ।
हिंदुनि ऊपर अनिक उपाधि।देति भेया दुख साध असधि ।। 26 ।।[371]

'सरहा महिं आवहु ।कलमा पढहु तुरक बनि जावहु।
बडो मसोत देहिं बनवाइ।तिन महिं बैठहु धन बहु पाई ।। 37 ।।[372]

4- सेना और युध्द चित्रण : देश को सुरक्षा के लिए सेना की आवश्यकता होती है जिसका प्रमुख कार्य आक्रमणकारो शत्रुओं से उसको रक्षा करना होता है। राज्य-विस्तार के उद्देश्य से दूसरे देशों को जीतने के लिए भी 'सेना' चाहिए।दूसरों पर आक्रमण किया जाये ,अथवा दूसरों के आक्रमण से रक्षा को जाये, दोनों हो सिस्थितियों में सेना युध्द करती है। मुगल कालोन शासन तो थाही सैनिक शासन । जिस के सम्बन्ध में उपर संकेत किया जा चुका है। तत्कालोन मुगल शासकों के पास पैदल, घुड़सवार, तोपखाना, हाथी और नौ सेना थी । जिस से वे अपनो विस्तार वादो नोति का अनुसरण करने के लिए अनेक युध्द करते रहे ।शाहजहां के पुत्रों के उत्तराधिकार के लिये किये गए युध्दों का भो इस में वर्णन मिलता है।[373] 'गुरु प्रतापसूरज 'में औरंगजेब को पूर्वोक्त रीति

371- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 9, अंशु 26, पृ॰ 3640-42
372- वही , रा 9, अंशु 27, अंक 37, पृ॰ 3648-49
373- रा 9, अंशु 9, पृ॰ 3577-98

सम्बन्धित दक्षिण की ओर युध्दों का उल्लेख हुआ है जिन में वह स्वयं अत्यन्त व्यस्त था । इस के अतिरिक्त उससे पूर्व शाहजहां के गुरु हरिगोबिन्द जी के साथ हुए सैनिक युध्दों का भी 'गुरु प्रताप सूरज' में विस्तृत उल्लेख मिलता है। सर्वाधिक सेना के नाश के दृश्य गुरु गोबिन्द सिंह जी के साथ हुए विभिन्न युध्दों में देखे जा सकते हैं। बार बार पहाड़ी राजा पराजित होते थे और बारबार सम्मिलित होकर युध्द के लिए तैयार हो जाते थे । उनके सहायकों में सरहिन्द और लाहौर के अतिरिक्त दिल्ली के सूबेदार की सेनाएं भी सम्मिलित होती थी ।

'गुरु प्रताप सूरज' में पूर्वोक्त युध्दों का भी बड़ा मार्मिक चित्रण हुआ है। इस ग्रंथ के अन्तिम भाग में युध्दों की कथाओं का ही विशेष रुप से वर्णन हुआ है। गुरु साहिबान हरि गोबिन्द जी के शाहजहां कोसेना से साथ युध्दों की अपेक्षा गुरु गोबिन्द सिंह के पहाड़ी राजाओं और मुगल सैनिक के साथ हुए युध्दों का इस में अधिकविस्तार से उल्लेख हुआ है। भाई सन्तोख सिंह ने गुरु गोबिन्द सिंह के उन सभी युध्दो का इस ग्रंथ में चित्रण किया हैजिन के उल्लेख 'वचित्र नाटक' 'गुरु शोभ' तथा 'गुरु विलास (सुखा सिंह) आदि में मिलते हैं । इस ग्रंथ में उनके भंगाणी युध्द,[374] नादौन युध्द,[375] हुसैनी युध्द[376], आनन्दपुर युध्द,[377] चमकौर युध्द[378] एवं खिदराना के युध्द[379]का बड़ी विशदता एवं पूर्णता के साथ वर्णन हुआ है । इन युध्दों में

374-गु॰ प्र॰ सू॰ रि॰ 2, अंशु 25-31, पृ॰ 4792-4819

375- वही , रि 2, अंशु 40, पृ॰ 4864

376- वही , रि 2, अंशु 49, पृ॰ 4906-8

377-वही , रि॰ 6, अंशु 31, पृ॰ 5857

378- वही , रि 6, अंशु 34-40, पृ॰ 5871-5903

379- वही , ऐन 1, अंशु 10, पृ॰ 6033

योध्दाओं की ओजस्वी गेम्बा गर्वोक्तियों[380], सेनाओं के युध्द के प्रस्थान[381], युध्द के साज के समय उनकी वेशभूषा एवं रणसज्जा[382], अस्त्र शास्त्रों का प्रयोग[383], रण वाद्यों की ध्वनि, (शंखनाद)[384] विकरालता, आदि का सजीव चित्रण मिलता है। इसके अतिरिक्त इस ग्रंथ में युध्द नीति, युध्द विधि एवं युध्द स्थितियों का भी चित्रण किया गया है। उक्त युध्दों के विवरणों से इन इन तथ्यों चित्र देखे जा सकते हैं।

380- 'गरजे सभी बीच बल भारी। 'हम इक की जड़ देई उखारी।
राज प्रताप दूर सभि जै है। नहीं नगारबंद की ह्वै है।। ।। ।।
धन गन छीनहिं रंक बनावहीं। निज दासन की राज वधवहिं।
जे गुलाम लेदल समुदाई। आइ करै हम संग लराई ।। ।2 ।।
इम रण करहिं उपावहिं त्रासा। हथ्यारन ते होइ बिनाशा।
खड.ग क केतु की कौतक पिखो। कहां करति है सुख सों लखो ।। ।3 ।।
-गु॰ प्र॰ सू॰ रि 2, अंशु 48, पृ॰ 4903

381- किसू कमान बान धनि लीनि। तोमर बरछी सांग नवीन।
निकसे आनंदपुरि की छोरि। गमने सिंघ पंच से घोर ।। ।9 ।।
- वही, रा॰ 4, अंशु 18, पृ॰ 5280

382- (क) गुरु त्यार होए। रिपू जानि ढोए। कराचोल पायो।
निखंगे सुहायो । ।2 ।।
कुदंडं संभारा। कठोरं उदारा। मंगाये सु नीला। संगार्यो छबीला ।। ।3 ।।
चढेयो ततकाला। रिपू पुंज काला। जिगा सो कलंगी। सुहवै ~~श्री~~ उतंगी ।। ।4 ।।
- वही रि 4, अंशु 8, पृ॰ 5240

(ख) इस बिधि गुरु अनंदपुरि सिंघनि कीनि सुचेत।
शसत्र निकासे कोश ते बखशे संघर हेतु।। । ।।
× × ×
भेर बान भाथा अनेके प्रकारे। धर बाण पैने ज लगे बीध पारे । 5 ।।
- वही, रि 4, अंशु 13, ~~अंक~~ पृ॰ 5259-60

383- खड्ग, सिपर गहि, नेजे, भाले। शकती, सांग, कटार कराले।। 30
-वही, रि 4, अंशु 9, पृ॰ 5285

384- भरि भरि फूकन संख बजाए। दुहुदिशि आपन बिखे सुनाए।। ।3।।
वड शहिनाइ बजे करनाई। डंक धरावल पर ठणकाई। -वही, रि 4 अं ।9, पृ 5284

इन युद्धों के चित्रण से गुरु हरिगोबिन्द और गुरु गोबिन्द कसिंह के व्यक्तित्व , उनकी शूरवीरता, उनके सैनिकों की[385] शौर्य आदि भी अभिव्यक्त होता है । एक चित्र देखिए:-

समूह सिंघ अग्र ह्वै तुफंग संग भेगि के। रखे टिकाइ थाई हो बधे न शत्रु जंग के।
निशान मान सिंघ ले दयो सुचोन छोरि के। त्रताइके तुरंग को चढ़ति हेलदौरिके।।31 ।।
पुकार मार मार को परे सु एकबारहो। बजाइ जंग च जात को निनाद कैउचारहो।
करंति रेलपेल को प्रवेश होइसूरमें। तुफंग तोर मारिके मिलाइ बीर धूर में।। 32 ।।
क्रिानपखेंचि म्यान ते कड़ाकड़ी मचाइके। बिहंड रुंड मुंड पुंड ते पलाइके।
प्रचंड हो घमंड पाइ दंडदूत धाइके। कटंति कंठ कंध बाहुदंड को निसाइके। 33[386] ।।

इन वर्णनों को पढ़ कर पाठक को तत्कालीन युद्ध-विधियों से पर्याप्त जानकारी प्राप्त होती है। 'गुरु प्रताप सूरज' में इन के सुविस्तृत वर्णन का लक्ष्य युग की राजनैतिक स्थिति को उजागर करना ही नहीं था अपितु इन के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना को जागृत करना भी था । इसी राष्ट्रीय चेतना ने सिक्ख सैनिक के दुर्दम्य साहस को युगानकूल अभिव्यक्ति प्रदान की है । जन जीवन में वीरता की भावनाओं का संचार किया ।

6- <u>राजनीति सम्बन्धी अन्य बाते</u> : 'गुरु प्रताप सूरज ' में उक्त युद्ध वर्णनों में विविध शस्त्रों और युद्ध उपकरणों का उल्लेख भी किया गया है। गुरु गोबिन्द सिंह तो राजनैतिक जीवन की सफलता के लिए शस्त्रों की पूजा[387] भी करते है। इसी उद्देश्य के लिए नगर निर्माण

385- गु॰ प्र॰ सू॰ रि 4, अंशु 18-19, पृ॰ 5278-86

386- वही , री 4, अंशु 18, पृ॰ 5281

387-'हुकम कीनि श्री सतिगुर पूरे' शसत्र निकासे सारे।
मेल निविरतहिं मारवारिये पूजहिं बहुर सुधारे'।। 2 ।।

× × ×

इसी प्रकार नौरते प्रपूजते सु आयुधान चंदनादि फूलमान धूप को जगावते।
उतंग संख पूरते सू मंगलं अरंभते, बिशाल सौजहोमते, सो धूप को उठावते।
नमो नमो भनंत हैं, सु ब्रहम कौच पाठको पठंत है सुनंत कोई, जे बिजेसु गावते।
-वही रि 4, अंशु32, पृ॰ 5336-40

के साथ साथ 'दुर्ग' निर्माण का भी कार्य किया था। जिन के द्वारा वह अपने को ही नहीं प्रत्युत सामान्य जनता को भी सुरक्षा प्रदान कर सके थे। इसके अतिरिक्त राजनीति के चार प्रधान अंगों – साम, दाम, दण्ड भेद आदि का भी 'गुरु प्रताप सूरज' में उल्लेख हुआ है।[388] गुरु गोबिन्द सिंह ने जन मत के सम्मान को भी राजनीति में महत्वपूर्ण मानते हुए अपने संस्थापित 'खालसा पंथ' के 'पांच ~~ल~~ प्यारों' की विचारधारा का भी उचित सम्मान ही नहीं किया था[389] अपितु उनके कथन को शिरोधार्य भी माना था।

निष्कर्ष :

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि 'गुरु प्रताप सूरज' में तत्कालीन राजनैतिक व्यवस्था का दर्पण है। इस में प्रतिबिम्बत इस अवस्था के चित्र हमारे हृदय में जहां हिन्दू धर्म के विध्वंस को के प्रति घृणा की भावना उत्पन्न करते हैं वहां राष्ट्रीय भावनाओं को भी जागृत करते हैं। भाई सन्तोख सिंह ने पराधीनता और परतन्त्रता के ऐसे ~~कंक~~ कंटकाकीर्ण और कष्ट प्रद चित्र दिखा कर आततायियों से युद्ध में लड़ने, शौर्य का प्रदर्शन करने और अन्ततः विजय प्राप्त करने का या जूझते हुए शहीद हो जाने का पाठ पढ़ा कर राष्ट्रीयता के विकास में अपना अद्वितीय योगदान दिया है। सचमुच वे हारे राष्ट्र-कवि के पदाधिकारी कवि थे।

388- 'करने बने दंड पुन आछो।'

' राजनीति जानहिं जे स्याने। जतन करनि सभि विधिनि बखाने। क्योंहूं बांछा पुरवहि नांही। शाम रु दाम, भेद के मांही।। 19।।

-गु॰ प्र॰ सू॰ रि 1, अंशु 30, पृ॰ 4611

(ख) प्रथम ~~खा~~ जाचना कीनसि हाथी। दियो नहीं, रस रख्यो न साथी।

याते संधि नहीं बनि आवहि। जे बिगरे, नहिं बसिबे पावहि।। 17।।

× × ×

बनहु बिरोधी गुर केजबै। हासल कहा होइ तुम तबै।

नाहक पावहु ~~लल~~ गरे लराई। को जाने कैसिहुं बनिजाई।। 27।।

-वही, रि 1, अंशु 33, पृ॰ 4623

389- 'मम सरुप तुम अबि भए, हौं भा तुमहिं सरुप।- वही रि 3, अंशु 19अंक36पृ॰5053

9- पारिवारिक जीवन चित्रण

परिवार समाज का एक घटक है। उस की दृढ़ता , गठन, व्यवस्था और सुचारुता पर ही समाज सुख निर्भर है। विराग-निवृति मूलक जीवन पध्दतियों के प्रसार- प्रचार में विशेष प्रवृत रहने वाले वेदान्तियों, योगियों, व दुःख-वदी एवं शून्यवादी बौध्दों के करण भारतीय गृह-परिवार व्यवस्था ~~शताब्दियों~~ शताब्दियों तक विश्रृंखल रही ।परन्तु गुरु साहिबान ने अपने प्रवृत मूलक सन्देश द्वारा गृहस्थ और पारिवारिक सम्बन्धों में मधुरता स्थापित कर गृहस्थ धर्म का स्वयं अनुसरण करते हुए अपने अनुयायियों को भी इस धर्म के पालन के लिए प्रेरित किया ।घर-परिवार के पूरे सामाजिक महत्व, गौरव और सौंदर्य को भली भान्ति समझ कर गुरु साहिबान ने अपनी वाणी में गृहस्थ जीवन का महत्व बतलाया ।

भाई सन्तोख सिंह जी ने इस ग्रंथ में गुरु साहिबान के पारिवारिक जीवन की झांकी बड़े मार्मिक ढंग से प्रस्तुत की है। जो सेवा, स्नेह और सहानुभूति जैसे उच्च गुणों आदर्शों पर आधारित है।

'गुरु प्रताप सूरज' में पारिवारिक जीवन चित्रण :

'गुरु प्रताप सूरज' में परिवार से सम्बन्धित जो निर्देश आए हैं , उन के आधार पर उनके पारिवारिक जीवन का अनुशीलन निम्न लिखित शीर्षकों के माध्यम से किया जा सकता है।

1- परिवार का स्वरूप और संगठन ।~~2- पवि~~ 2- वारिवारिक जीवन चर्या ।
3- अनुष्ठान और संस्कार । 4- विभिन्न परिवारों का सामाजिक संरचना में महत्व ।

(1) परिवार का स्वरूप, संगठ न और विभिन्न सम्बन्धी और सदस्य : प्राणी का जन्म परिवार में ही होता है जिसके अनेक सदस्यों से, उसके जन्म लेते ही आयु और पद के आधार पर अनेक प्रकार के सम्बन्ध स्थापित हो जाते हैं ।अन्य प्राणियों में इन सम्बन्धों को मर्यादा के निर्वाह की वैसी बुध्दि नहीं होती जैसी मानव में होती है। फलतः जहां अन्य प्राणी एक ही पीढ़ी के रक्त सम्बन्ध का भी ध्यान नहीं रख पाते,

वहां मानव तीन चार पीढ़ियों के सम्बन्धों का सरलता से निर्वाह कर लेता है। मनुष्य की यह मनोवृति या बुद्धि ही आरंभ से संयुक्त परिवार[390] के संगठन का मूल रही है। विभिन्न कारणों से रक्त का सम्बन्ध रखने वाले व्यक्ति चाहे साथ न भी रह सकें तथापि आयु और पद की मार्यादा का ध्यान परस्पर सब को रहता है।

मध्यकालीन भारत में सम्मिलत परिवार प्रथा ही प्रचलित थी । पंजाब में भी यही प्रथा अधिक प्रचलित थी जिसके अनुसार परिवार का वड़ा सदस्य ही जीवन की सामान्य और विशेष आवश्यकता को पूरा किया करता था । परिवार के अन्य सदस्य उसका ही आदर किया करते थे तथा उसका प्रत्येक वाक्य या शब्द कानून की तरह समझा जाता था ।

'गुरु प्रताप सूरज' में गुरु-परिवारों के चित्र अंकित हैं। इन परिवारों में भी पिता पुत्र के सम्बन्धों एवं गुरु गद्दी की प्राप्ति के लिए संघर्षों की मार्मिक कहानी विशेष रुप से विश्लेषण का विषय रही हैं। गुरु नानक ने जब अपने पुत्रों को गुरु गद्दी के लिए अयोग्य समझ कर अपने शिष्य बाबा लहिणा को गुरु गद्दी प्रदान की और गुरु अंगद ने अपने पुत्र दातू और दासू को गुरु गद्दी के अयोग्य समझ कर अपने सेवक श्री अमरदास को गुरु अमरदास बनाया तथा गुरु अमरदास ने अपने पुत्रों (बाबा मोहन और बाबा मोहरी) को गुरु गद्दी न सौंप कर अपने जमाता रामदास को गुरु गद्दी प्रदान की। इस तरह गुरु गद्दी के न मिलने से पुत्रों और पिता के सम्बन्धों का 'गुरु प्रताप सूरज' में जितना विवेचन है उतना अन्य सम्बन्धों का विश्लेषण[391] नहीं है। गुरु अमरदास तक पति-पत्नी के सम्बन्धों का उल्लेख[392] बहुत कम हुआ है। गुरु रामदास के पश्चात् पति-पत्नी, नाना, माता पिता के सम्बन्धों का उल्लेख हुआ है।

390- ऋग्वेद – 10 · 191 -192

391- द्रष्टव्य : द्वितीय अध्याय – गुरु गद्दी की प्राप्ति शीर्षक

392- गु · प्र · सू · रा 1, अंशु 41, अंक 12, पृ · 1492

गुरु गद्दी जब पैतृक अधिकार के रूप में चलने लगी तो संघर्ष की सीमा पिता-पुत्र के साथ साथ भाक भाई भाई सम्बन्धों को भी अपने अन्तर्गत लेने लगी[393] । भाई भाई के सम्बन्धों की कटुता के चित्र गुरु अर्जुन और पृथीचन्द के रूप में चित्रित हैं। यही से ''देवरानी -जेठानी' के सम्बन्धों और ईर्ष्या आदि के चित्र भी 'गुरु प्रताप सूरज' में अंकित हैं[394] ।

गुरु अर्जुन के समय में परिवार में सांस और बहु के मधुर सम्बन्धों के रूप में माता भानी और माता गंगा के परस्पर सम्बन्धों का उल्लेख भी इस ग्रंथ में हुआ है। गुरु हरि गोबिन्द के समय में परिवार में बहु विवाह और सपत्नी आदि के यद्यपि वर्णन मिलते हैं तथापि उनके सम्बन्धों मे कहीं कटुता का कोई संकेत नहीं मिलता है। तत्पश्चात् गुरु तेगबहादुर के समय में पति-पत्नी और सास-बहू के सम्बन्धों के अतिरिक्त माता और पुत्र के सम्बन्धों का भी उल्लेख हुआ है। गुरु गोबिन्द सिंह के समय में भी बहु विवाह होने के कारण सपत्नी, दादी-प्रपोत्र, माता-पुत्र के सम्बन्धों पर 'गुरु प्रताप सूरज में प्रकाश डाला गया है। परिवार में दास-दासियों के होने के भी संकेत[395] मिलते हैं । जो बाल-गुरुओं को सम्भालने, उनकी सेवा तथा सन्देश आदि लाने ले जाने का कार्य करती हैं ।

(क) दादा और दादी : दादा के रूप में गुरु अमरदास (बाबा मोहन और मोहरी की सन्तान पोत्र के रूप में)[396] और गुरु हरिगोबिन्द (दो पोत्र धीरमल और हरिराय)[397]

393- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 2, अंशु 25 , अंक 47-56, पृ॰ 1748-49

394(क)वही , रा 3, अंशु 6, 7, 9, 15-17, पृ॰ 1915-28 (ख) रा3, अंशु1, अंक38, पृ॰1888-89

395- वही , रा 3, अंशु1, अंक38, पृ॰1888, रा3, अंशु2, अंक10, पृ॰ 1891

396- वही, रा 2, अंशु 59, अंक पृ॰ 1576578

397- वही , रा 6, अंशु 57, अंक 12-13, पृ॰ 3024

के सम्बन्ध में संकेत मिलते हैं जो अपने पोत्रों के जन्मोत्सव पर नाना प्रकार की खुशियां मनाते हुए दिखाए गए हैं। दोदो के रूप में माता भानी, माता गुजरी के वात्सल्य के चित्र 'गुरु प्रताप सूरज' में अंकित हैं। माता गुजरी जी तो एक पल के लिए भो गुरु गोबिन्द सिंह के छोटे दोनों साहिबजादों को पृथक करने के लिए तैयार नहीं हैं[398]। उन दोनों को शहीदी की सूचना मिलते ही वह अपने प्राण त्याग देती है।

(ख) नाना, नानी : मातृ पक्ष में नाना नानी का पद 'दादा-दादी' के समकक्ष होता है। 'गुरु प्रताप सूरज' में श्री गुरु अर्जुन देव जी को 'जीवन चर्चा' में श्री गुरु अमरदास के 'नाना' रूप की अभिव्यक्ति हुई है। जो उन्हें 'त्राणो के बोहिता' का आशीर्वाद देते हैं[399]। उनके प्रति सहज वात्सल्यपूर्ण व्यवहार के संकेत मिलते हैं।

(ग) माता-पिता : माता जन्म देती है, अतः उसका परिवार में पिता की तरह ही तथा विशेष बातों में कुछ अधिक सम्मान होता है[400]। गुरु अंगद और गुरु अमरदास के पिता रूप की तो 'गुरु प्रताप सूरज' में चर्चा है परन्तु उनकी सन्तति (पुत्रों के साथ साथ माता का उल्लेख नहीं हुआ है। बाद के गुरु साहिबान के पिता रूप और उनकी सन्तति के साथ माता के सम्बन्धों की चर्चा हुई है[401]। पुत्र प्राप्ति की एषणा को इस जीवन में प्रबलता भी अंकित हैं[402]। जो अपनी सन्तति के प्रति कितने वात्सल्यपूर्ण व्यवहार को प्रदर्शित करते हैं। उनकी शिक्षा, दीक्षा, खेल कूद-मनोरंजन आदि सभी बातों का ध्यान रखते हैं[403]।

398- गु॰प्र॰सू॰रि 6, अंशु 51, अंक 89, पृ॰ 5949

399- वही, रा 1, अंशु 66, अंक 53, पृ॰ 1614

400- वही, रा 1, अंशु 59, पृ॰ 1576

401- वही, रा 1, अंशु 41, अंक 21-24, पृ॰ 1493

402- वही, रा 3, अंशु 3, अंक 14, पृ॰ 1898

403- वही, रा 12, अंशु 24, अंक 28, पृ॰ 4322

(घ) पिता -पुत्र : पिता पुत्र के सम्बन्धों के विषय में ऊपर संकेत किया जा चुका है। कि आरम्भिक 'गुरु साहिबान के पुत्रों को गुरु गद्दी के न मिलने से उन के परस्पर सम्बन्धों में कैसे कटुता आई ?अमरदास और मोहन आदि के सम्बन्धों तक तो यह कटुता कुछ कम ही रही परन्तु पृथी चन्द और गुरु रामदास के सम्बन्धों में इस कटुता ने विकराल रूप धारण किया[404]।गुरु अर्जुन देव ,हरिगोबिन्द और गुरु गोबिन्द सिंह के पिता -पुत्र सम्बन्धों में मधुरता देखी जा सकती है। हरिराय और रामराय में पुनः विरोध की भावना प्रदर्शित है। रामराय तो अपने अधिकारों के लिए औरंगजेब से भी जाकर न्याय मांगता है। गुरु अर्जुन देव अपने पिता के प्रति अपार सेवाभक्ति रखते है ।

(ङ) माता -पुत्र : माता पुत्र के सम्बन्धों की चर्चा माता भानी और गुरु अर्जुन[405] देव, माता[406] गंगा और गुरु हरिगोबिन्द , माता गुजरी और गुरु[407] गोबिन्द सिंह , माता जीतों और सुन्दरी तथा उनके चार वीर पुत्रों के प्रति प्रेम आदि के चित्र तथा उनके लालन पालन के उल्लास, जन्मोत्सवों पर विशेष प्रकार के यज्ञों तथा खुशियों के मनाने का उल्लेख मिलता[408] है।

(च) भाई -भाई : भाई भाई के सम्बन्धों में परस्पर कटुता के चित्र गुरु अर्जुन देव और पृथीचंद के सम्बन्धों में अंकित[409] हैं।धीरमल और हरिराय के सम्बन्धोंक का भी इसी कटुता की पुनरावृति होती[410] है।महादेव और पृथीचन्द को उसके निंदित कार्यों के कारण समझाते भी दिखाये गए है ।दातू दासू और मोहन मोहरी आदि के परस्पर सम्बन्धों के विषय में इस

404- (क)गु॰ प्र॰ सू॰ रा 2,अंशु 22,अंक 38-39,पृ॰ 1733 तथा श्रीमुखवाक ।

(ख)वही , अंशु 23,अंक 11,पृ॰ 1737

405-वही, रा 2,अंशु 15-16अंक 14-21पृ॰ 1707

406- वही,रा 4 अंशु 51,अंक6-13, 22-23, 25-28,पृ॰ 2441-43

407- वही, रि 4,अंशु 33,पृ॰ 5340

408-वही, (क)रि 2,अंशु38,पृ॰ 4855 (ख)अंशु 44,पृ॰ 4888

(ग) वही, अंशु 49,पृ॰ 4909 (घ)वही,अंशु 50,पृ॰ 4913

409- वही, रा 3,अंशु 4, अंक 7, पृ॰ 1902

410- वही , रा 8, अंशु 51,पृ॰ 3498-3501

(छ) जेठानी और देवरानी : श्री गुरु अर्जुन की पत्नी गंगा देवरानी और पृथीचन्द की पत्नी कर्मकौर (जेठानी) के परस्पर सम्बन्धों में कटुता, ईर्ष्या और एक दूसरे के दुःख में व्यवहार की कृत्रिमता आदि के चित्र अंकित हैं[411]।

(ज) पति-पत्नी : पति पत्नी के सम्बन्धों की मधुरता के चित्र 'गुरु प्रताप सूरज' में विशेष रूप से वर्णित हैं। परन्तु उनमें मर्यादा का पालन अधिक हुआ है। उन के हास-विलास के निरूपण के लिए कवि ने अधिक प्रयास नहीं किया हैं क्योंकि वे उसी की श्रध्दा के पात्र हैं। फिर भी गुरु अर्जुन देव और माता[412] गंगा, पृथी चन्द और उसकी[413] पत्नी, गुरु गोबिन्द सिंह और माता सुन्दरी और जीतो आदि के पति-पत्नी के सम्बन्धों, सन्तान उत्पत्ति के प्रयासों तथा कान्ता सम्मित उपदेश के लिए पत्नी के रूप ने विशेष रुचि प्रदर्शित की[414] गई है।

(झ) पुत्री-जमाता : 'गुरु प्रतापसूरज' में श्री गुरु अमरदास के जीवन चित्र में 'पुत्री और जामाता' के परिवार में स्थान और सम्बन्ध की चर्चा मिलती है। उन्होंने दोनों पुत्रियों के पतियों श्री रामा और श्री रामदास को अपने घर में ही रखा[415] हुआ था। परन्तु जब वे दोनों ही सेवा में लीन रहते हैं तो उनके सम्बन्धों में कुछ परिवर्तन नहीं दिखाई देता। श्री रामदास के मिट्टी की टोकरी ढोने पर जब लाहौर से उनके सम्बन्धी आकर गुरु अमरदास को उसके सम्मान की क्षति के विषय में संकेत करते है तो वे उन्हें त्रैलोकी[416] के छत्र को उठाने की बात कह कर चुप करा देते हैं। इनके हृदय में गुरु अमरदास के प्रति श्रध्दा थी[417] तो श्री रामा उनकी वृध्दावस्था और उनके व्यवहार की अव्यावहारिकता के सम्बन्ध में खुल कर उन के समक्ष विरोध[418] करता है। सामाजिक दृष्टि से 'दामाद'

411- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 3, अंशु 6, अंक 7, 9, 15-17, पृ॰ 1915-28, 1957-71

412- वही, रा 3, अंशु 2, 3, पृ॰ 1890-1900

413- वही रा 3, अंशु 1, अंक 42-45, पृ॰ 1889-90

414- वही, द्रष्टव्य : फुटनोट 408

415- वही, रा 1, अंशु 56, अंक 20-24, पृ॰ 1565

416- वही, रा 1, अंशु 51, पृ॰ 40, पृ॰ 1544

417- वही, रा 1, अंशु 56, अंक 29, पृ॰ 1566

418- वही, रा 1 अंशु 57, अंक 39-43, पृ॰ 1574

का ससुराल में रहना निन्दनीय माना जाता है।[419]

(ट) <u>सपत्नी</u> : 'गुरु प्रताप सूरज' में श्री हरिगोबिन्द जी और श्री गुरु गोबिन्द सिंह के बहु विवाह होने के कारण परिवार में सपत्नी के रूप को देखा जा सकता है। माता दमोदरी[420], माता नानकी[421], माता महादेवी[422] (मरवाही) के सपत्नी जीवन और मता सुन्दरी, माता जीती, साहिब[423] देवा आदि के जीवन में सपत्नी जीवन के सम्बन्धों को देखा जा सकता है। एक के घर सन्तान होने पर दूसरी पत्नी अपने को निस्सन्तान[424] नहीं देख सकती। परन्तु ऐसे विरोधों और ईर्ष्या के नारी स्वभाव में चित्रित होने की चर्चा स्वाभाविक रूप में वर्णित है। उन के पति के साथ सम्बन्धों में कही कटुता के चित्र नहीं दिखाई देते। परिवार में उनकी सौहार्दता का ही वर्णन है।

(ठ) <u>अन्य सम्बन्धी</u> : 'गुरु प्रताप सूरज' में सेवा भाव की महिमा का सर्वाधिक उल्लेख होने के कारण गुरु अंगद देव, गुरु अमरदास, गुरु रामदास के 'सेवक' रूप की चर्चा के साथ साथ अन्य सेवकों (गुरु अमरदास के सेवक बलू) की भी चर्चा मिलती है। परिवार में दास दासियों के होने और दाई, धाय आदि का भी उल्लेख मिलता[225] है। मामा के रूप में कृपाल का चरित्र विशेष रूप में उल्लेखनीय[226] है कि उन्होंने किस तरह से गुरु गोबिन्द सिंह जी के लालन पालन, शिक्षा आदि में अपना योगदान दिया है। अन्य सम्बन्धियों में से

419- गु·प्र·सू·रा 1, अंशु 51, अंक 43, पृ· 1544

420- वही, रा 5, अंशु 26, अंक 27, पृ· 2611

421- वही, रा 5, अंशु 37, अंक 2, पृ· 2652,
वही, रा 5, अंशु 54, अंक '36-40', पृ· 2772

422- वही, रा 5, अंशु 54, अंक पृ· 2724-26

423- द्रष्टव्य : फुटनोट 408

424- गु·प्र·सू·रा 5, अंशु 54, अंक 36-40, पृ· 2772

425- द्रष्टव्य : इसी अध्याय का फुटनोट

426- गु·प्र·सू·रा 12, अंशु 18, अंक 6, पृ· 4295 तथा
वही, अंक 19, पृ· 4298

ताये और चाचा के विषय में प्रकाश नहीं डाला गया है न ही भाई भावज, बहन-बहनोई, देवर, देवरानी आदि के सम्बन्ध में 'गुरु प्रताप ' विशेष चर्चा नहीं मिलती है।

पारिवारिक जीवनको उपर्युक्त झांकी से विदित होता है कि गुरु परिवारों में नारी जीवन की स्थिति पुरुषों की अनुवर्तिनी थी । पारिवारिक और सामाजिक दृष्टि से पतिव्रत धर्म का आदर्श उस समय प्रतिष्ठित था ।[427] गुरु परिवारों का संगठन 'सम्मिलित परिवार प्रणाली, पर ही आधारित था किन्तु उनके सदस्यों में कटुता और परस्पर प्रेम विरोध और सौहार्द-भावना दोनों की प्रतिष्ठा थी । गुरु -परिवारों में कही भी अनैतिकता के चित्र नहीं मिलते है ।

2- पारिवारिक जीवन -चर्या

'गुरु प्रतापसूरज ' में गुरु -परिवारों के जीवन की ~~निचर्या~~ दिनचर्या के साथ साथ जीवन के क्रम का भी निरूपण हुआ है। सभी गुरु साहिबान ~~तक~~ जहां गृहस्थ धर्म के पालन में उसकी आवश्यकता की पूर्ति में लगे रहते थे, वहां सार्वजनिक विकास के कार्य में भी लगे रहते थे । उन की पारिवारिक जीवन चर्या में जहां उपदेश प्रदान करने की प्रवृति की झलक मिलती है वहां सामाजिक उत्थान के लिए उसकी विकृतियों एवं विश्रृंखलता के दूरीकरण के लिए प्रयासों की झलक मिलती है ।

गुरु साहिबान का मुख्य कार्य धार्मिक उपदेश देना था । उन के दरबार में उनके दर्शनार्थ ,अपनी समस्याओं के समाधानार्थ अनेक श्रध्दालु भक्त आते थे ।और नाना प्रकार की भेंट समर्पित कर अपने जीवन को कृतकार्य अनुभव करते थे । गुरु अंगद ने 'लंगर' (प्रीति-भोज) की व्यवस्था कर जहां बाहर से आये भक्तों, अतिथियो के भोजन की व्यवस्था की वहां स्थानीय भक्तजनों के भोजन की सार्वजनिक व्यवस्था भी की थी ।[428] उनके आशीर्वाद को प्राप्तकर अनेक भक्तजन भी अपने अपने प्रान्तों में जाकर देग चलाया करते थे । 'लंगर' की व्यवस्था के भोज्य पदार्थों की व्यवस्था ,जंगल से लकड़ी लाना, पानी भरना, आदि अनेक कार्यो में

427- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 1, अंशु 55, अंक 29-30, पृ॰ 1562

428- वही , रा 1, अंशु 10, अंक 9-13, पृ॰ 1346

उनके भक्त गण सहयोग दिया करते थे । स्वयं गुरु साहिबान अपने गुरु धामों में प्रातः अमृत वेला में शौच स्नान आदि से निवृत होकर भक्त जनों को उपदेश देने के लिए अपने सिहांसन पर विराजमानहो जाते थे[429] । मध्यान्ह में 'रसोइया' जब 'लंगर के तैयार होने को सूचना देता तो सभी ऊंच नीच के भेदभाव को त्याग कर एक ही पंक्ति मे बैठकर भोजन ग्रहण करते[430] ।

कुछ गुरुओं के आरम्भिक जीवन में उन के व्यवसायों, व्यापारों और ग्रामों में घूम कर सौदा बेचने[431] के संकेत भी इस ग्रंथ में दिए गए हैं । जैसे – गुरु अंगद देव, अमरदास, रामदास आदि । गुरु अर्जुन देव के जीवन में उक्त उपदेशों के अतिरिक्त अन्य सार्वजनिक कार्यों का भी उल्लेख मिलता है। गुरु हरिगोबिन्द और गुरु गोबिन्द सिंह के काल में उपदेश के साथ साथ सैनिक साजसामान के संग्रह और उसके उपयोग के लिए अभ्यास आदि के संकेत भी मिलते हैं[432] । गुरु गोबिन्द सिंह जी ने तो 'खालसा पंथ' को संस्थापना और युध्द वीरों के उत्पन्न करने के लिए अपनी जीवन चर्या मे काफी परिवर्तन कर दिया ।

<u>(क) पुरुषों के कार्य</u> : 'गुरु प्रताप सूरज' के पुरुष प्रधान महाकाव्य होने के कारण उसमें चित्रित नौ गुरु साहिबान के कार्यों का उसमें विस्तृत विवरण मिलता है। यहां पर उनके प्रमुख कार्यों के विषय में संकेत किया जा सकता है। उपदेश के साथ साथ गुरु साहिबान वाणी के सृजन,[433] संग्रह[434] एवं सम्पादन के कार्य में भी लीन रहते[435] थे । गुरु अर्जुन

429- गु प्र · सू · रा 1, अंशु 30, पृ · 1439-42

430- वही, रा 1, अंशु 30, अंक 26-28, पृ · 1442

431- वही, रा 1, अंशु 14, अंक 6, पृ · 1367

432- (क) वही रा 4, अंशु 41, अंक 30-32, पृ · 2400 तथा अंक 49, पृ · 2401

(ख) वही, रि 1, अंशु 19, अंक 4-16, पृ · 4568-69

433- (क) वही, रा 1, अंशु 9, अंक 22, पृ · 1343 तथा श्री मुख वाक ।

(ख) वही, रा 1, अंशु 59, अंक 13, पृ · 1577

(ग) वही, रा 3, अंशु 43, अंक 1-4, पृ 2095

434- वही, रा 3, अंशु 41, पृ · 2083

435- वही, द्रष्टव्य ; आदि ग्रंथ में संकलित गुरु साहिबान की वाणी '

देव जो जब गुरु वाणो को पोथियां लेने जाते हैं तो स्वयं भो तम्बूरे पर गाउड़ो राग का गायन करते हैं[436]। कोर्तन करने और सुनने का उन्हें बहुत शौक था । उनके दरबार में रबाबी[437] लोग प्रातः और साय कार्तन किया करते थे[438]। गुरु प्रताप सूरज 'में 'आसा को वार के गायन और कार्तन का इनेक स्थानो पर उल्लेख[439] हुआ है। गुरु अंगद, अमरदास रामदास गुरु अर्जुन आदि सभो कवि थे और वाणी के सृजन कर्ता थे । गुरु अर्जुन देव ने वाणो के सृजन के साथ साथ उसका संग्रह और सम्पादन का कार्य भो किया था । सार्वजनिक निमार्ण कार्यो - बावलो निर्माण, सरोवर का निर्माणआदि में भो अपनो रुचि दिखाई है।

गुरु हरिगोबिन्द के समय मे पोरो के साथ साथ मोरो का भो समन्वय किया गया। तत्पश्चात् आयुधविद्या, शस्त्र संचालन, घोड़सवारो, मृगया, आदि भो इन पुरुषों के कार्य बन गए । गुरु गोबिन्द सिंह जो ने 'खालसा ' को संस्थापना केपश्चात् किलों के निर्माण कार्य के साथ युध्द को तैयारियों और अस्त्र शस्त्रों के संचालन को भो उपदेश के साथ साथ अपनो जोवन चर्या का अंग बनाया ।

गुरु साहिबान में से श्री गुरु तेगबहादुर जो ने धर्म प्रचार के लिए यात्राएं भी को। गुरु साहिबान के कार्यो के अतिरिक्त जनसाधारण के कार्यो का भी इस ग्रंथ में विशदता से निरुपण किया गया है।[440]

(ख) स्त्रियों के कार्य : गुरु पिरिवारों में स्त्रियों भो अमृतवेला में उठकर गुरुवाणो के पाठ आदि से निवृत होकर अपनो जोवन चर्या में तल्लोन हो जातो थो । बोबो अमरों प्रातःकाल

436- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 3, अंशु 34, अंक 15-17, पृ॰ 2051

437- (क) वहो , रा॰ 3, अंशु 43, अंक 20-21, पृ॰ 2097

(ख) वहो, रा 8, अंशु 33, अंक 12, पृ॰ 3437

438- वहो ,

439- 'आसावार रबाबो गावै। राग रागनो तान बसावै।

— वहो रि 4, अंशु 19, अंक 14, पृ॰ 5284

440- द्रष्टव्य : इसा अध्याय में शोषर्क 'श्रमजोवो'फुटनोट

उठकर गुरु वाणी का पाठ किया करती थी । तत्पश्चात् दही विलोने मक्खन निकालने[441] तथा घर के अनेक कार्य में लीन हो जाती थी गुरु पत्नी गुरु साहिबान के साथ'लंगर' की व्यवस्था में सहयोग देती थी ।

बाल बच्चों की देख भाल के अतिरिक्त नदी या कुएं आदि से पानी लेले लाने का कार्य भी करती थी[442] । जनसाधारण की स्त्रियों में घर के काम काज के अतिरिक्त सूत कातना खेस आदि बनाना, बुनाई कढ़ाइ आदि के कार्यों में भी रुचि[443] दिखाई देती है।

(ग) परिवार के मुखिआ और अन्य सदस्यों का परस्पर सम्बन्ध : गुरु परिवार में 'गुरु' ही मुखिआ हुआ करता था । जिस की आज्ञा का पालन उसके परिवार के सभी सदस्यों को करना पड़ता था । उसके निर्णय सभी पारिवारिक सदस्यों को शिरोधार्य होते थे । सम्बन्धों में प्रायः मधुरता रहता थी, परन्तु गुरु गद्दी के प्रदान करने की नीति के विरुध्द कई बार पिता-पुत्र, भाई-भाई सम्बन्धों में कटुता आ जाती थी ।

4- अनुष्ठान और संस्कार

पारिवारिक जीवन के विभिन्न अनुष्ठानों तथा संस्कारों के माध्यम से व्यक्ति सुसंस्कृत बनता है। भारतीय संस्कृति की दृष्टि से व्यक्ति के जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त

441- 'दधी बिलोवति सहज सों , मुख बोलति बानी।
हुइ प्रसंन कर प्रेम सों निज बृती बि टिकानी ।। 4 ।।
— गु॰ प्र॰ सू॰ रा ।, अंशु 15, पृ॰ 1372

442-'भरहिं कूप ते घट ले आवैं।खान पान बिवहार चलावैं ।
— वही , रा 10, अंशु 6, अंक 7, पृ॰ 3790

443-इक सम कस्कै करिकै बटी चढ़ावहि ।चरखा फेरति सूत बनावहि ।
सहत प्रीत को करहि अटेरनि ।बिम्रा दिनप्रति अभिलखति गुरु हेरनि।। ।।
- वही , रा 5, अंशु 47, पृ॰ 2698

जिन संस्कारों को योजना जोवन के अन्तर्गत होतो है उन में से पर्याप्त की चर्चा 'गुरु प्रताप सूरज में हुई है।

वैसे 'संस्कार' काआशय शास्त्र विहित उन मांगलिक कृत्यों से है जो मानव के सर्वांगोण विकास के लिए किए जाते हैं । यह 'संस्कार' द्वि जातियों के लिए 'मनु' के अनुसार बारह बताये[444] जाते हैं ।कुछ धर्म शास्त्रकारों के अनुसार इनको संख्या[445] 16 बताई जातो है। इन सोलह संस्कारों के नाम इस प्रकार से हैं :— 1-गर्भाधान, 2-पुंसवन, 3-सामान्तोन्नयन, 4- जातकर्म, 5- नामकरण, 6- कर्णवेध, 10- उपनयप, 11- वेदारंभ, 12, समावर्तन, 13- विवाह, 14- वानप्रस्थ, 15- संन्यास , 16- अंत्येष्टि ।

इन सभो संस्कारों के संकेत यद्य पि 'गुरु प्रताप सूरज' में नहीं मिलते तथापि प्रमुख संस्कारों का उस में उल्लेख हुआ है। इसका एक प्रमुख कारण यह भी है कि गुरु साहिबान का दृष्टिकोण मानवता को रूढ़िग्रसतता से निकालना रहा है। उन्होंने इन्हें बिल्कुल त्यागने का तो आदेश नहीं दिया है परन्तु इन के रूप में कुछ परिवर्तन कर इन्हें सरलता अवयश अवश्य प्रदान की है।

(1) जन्मोत्सव : गुरु अमरदास जो ने अपने पौत्र के जन्मावसर पर 'अनंदु'[446] वाणो को र चना कर इसे पुत्र जन्मोत्सव मांगलिक अवसरों पर गोने के लिए संकेत किया है। तत्पश्चात् सिक्ख धर्म में इसका खुशो के सभो अवसरों पर गाने का प्रचलन हो गया है। इसके पश्चात् गुरु पहिर परिवारों में परवर्ती गुरु साहिबान(श्री हरिगोबिन्द तथा श्री गुरु गोबिन्द सिंहके अवतार धारण)के जन्मोत्सवों के अवसरों पर मनाई जानेवालो खुशियों का 'गुरु प्रताप सूरज'

444- द्रष्टव्य : हिन्दो शब्द सागर, भाग 4, तथा मनुस्मृति द्वितोय अध्याय, श्लोक, 26-38

445- (क) बृहत हिन्दो शब्द कोश, पृ॰ 1344

(ख) श्री शिवदत ज्ञानो, भारतोय संस्कृति, पृ॰ 95-96

446- (क) आदि ग्रंथ 'अनंदु' रामकलो ।

(ख) गु॰ प्र॰ सू॰ रा1, अंशु 59 , अंक 13, पृ॰ 1577

में विस्तार से वर्णन किया गयाहै ।श्री हरिगोबिन्द सिंह के जन्मोत्सव का एक चित्र देखिए :-

चारु प्रकाश अवास भयो पिखि धाइन बे -बसि ह्वै बलिहारु।
हारु उद्यो मन को जनु चंद बिलंद सरूप शुभै सम मारु।
रिपून को सेवकतारक, मोहनी मुरति बुध्दि उदारु ।
दारु सुदोश हुतासन भा बल प्राक्रम जा बिथरै दिस चारु ।। 26 ।।

× × ×

बंदनवार हरित दलफूलन अनिक बरन को रचि करी सोइ ।
श्री गुर घर दर पर बहु बंधो लघुदुंदभि मधुरी धुनि होइ।

× × ×

जाचिक जाचति जो चित बांछति गुर अरजन मन महद उदार।
ढाढो , ढोम, भांट बहु आए गाइं कलावत मंगलचार।
ब दरब दीनि ले आशिख उचरति 'जीवहु जुग जुग पुत्र तुमार ।
बसत्र अंन भूखन ते अदिक बखशहिं गुरु न लावेंबार ।। 17 ।।[447]

इसी तरह का एक चित्र गुरु गोबिन्द सिंह के जन्मोत्सव का भी देखा जा सकता है।

भाट कलावत ढाडी आवहि। भानहिं बधाई बांछति पावहिं ।। 10।।
बेख कलोवन देव बधूटो, धरि आवहिं जनु जग दुति लूटो।
ढोलक , टलका, घुंघरु, तालो। गाइं बिलावल लेति भवालो।। ।। ।।

× × ×

रंग रंग के फूल बिसाला। गूंदि गूंदि कर दीरघ माला।

× × ×

तबहि जोतशी लीनि बुलाइ। जनम महूरत खूबर बताइ ।। 19 ।।[448]

447- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 3, अंशु 4, पृ॰ 1907-1911

448- वही , रा 12, अंशु 12, पृ॰ 4268- 69

इसो तरह ऐसे मांगलिक उत्सवों पर बधाई देने, ज्योतिषी को बुलाने, दान देने आदि की प्रथा आज भी परंपरा गत रूप से प्रचलित है।

(2) मुंडन संस्कार : 'गुरु प्रताप सूरज' में जन्मोत्सव के पश्चात् मुंडन संस्कार की पर्याप्त चर्चा मिलती है। गुरुपरिवारों में इस संस्कार से सम्बन्धित उल्लेख नहीं है परन्तु सामान्य जनता में इस संस्कार को विशेष महत्व प्राप्त था। गुरु अंगद देव जी एक बार जब गोइंदवाल जा रहे थे तो उन्हें मार्ग में एक सेवक सीहं उप्पल जो अपने पुत्र के मुंडन संस्कार हेतु एक सौ बकरे ले जा रहा था। उसने गुरु जी को बताया :-

"'हे श्री सतिगुरु जी भगवंत। मोहि पुत्र को मुंडन अहै। बड उतसाह कर्‌यो हम चहै।। 4 ।। हमरो कुल सभि इकठो होई बडे हमारनि की विधि सोई।
इस विधि करन अहै बिवहार। अवहिं आमिख करहिं अहार।। 5 ।।
सदा जठेरन रीति हमारे। ओदन आमिख देहिं अहारे।
खुशी अनेक प्रकारन होई। होहिं मेल कुल के सभि कोइ'।। 6 ।।

तब गुरु जी ने उसे हिंसा के पापकर्म करने से रोका और कहा :-

हमरे द्वारे मुंडन करो। उर को भरम सरब परहरो।
बिघन जठेरनि को नहिं होइ। सिमरहु सतिनाम दुख खोइ ।[449]।5।।

इस तरह से गुरु जी ने इस संस्कार के अवसर पर होने वाली जीव हत्या को रोका और इसे सरलता प्रदान की।

(3) यज्ञोपवीत संस्कार : हिन्दु परिवारों मे यज्ञोपवीत डालना भी तत्कालीन जीवन में आवश्यक संस्कार माना जाता था। गुरु नानक[450] के प्रकाश में गुरु नानक देव जी के यज्ञोपवीत डालने और उनके इस संस्कार के वास्तविक स्वरूप पर प्रकाश डालने का उल्लेख मिलता है। तदानुरूप इस ग्रंथ में भी इस संस्कार की पाखंडपूर्णता का विरोध हुआ है।

449- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 1, अंशु 26, पृ॰ 1422-23

450- गुरु नानक प्रकाश, पू॰ अध्य 9, अंक 21 के पश्चात् श्री मुखवाक।

इस का वास्तविक भाव तो यह है कि हम अपनी इन्द्रियों पर संयम रखें। यदि हमारी इन्द्रियां विषय क विकारों में लिप्त हैं तो यह यज्ञोपवीत व्यर्थ है। इस ग्रंथ में भी गुरु नानक देव जी कीवाणी के उध्दाहरणद्वारा इसके वास्तविक स्वरुप पर प्रकाश डाला गया है:-

''दइआ कपाह संतोखु सूतु जतु गंढी सतु वटु ।
एहु जनेऊ जीअ का हई ता पाडे घतु ।।
ना एहु तुटै न मलु लगै न एहु जलै न जाइ।
धंनु सु माणस नानका जो गलि चले पाइ ।।[451]

इस विचारधारा के अनुसार ही भाई दयासिंह अपने यज्ञोपवीत(जंजू) को न पहन कर सिक्खों के 'रहत' का अनुसरण करता है।[452] ब्राह्मण वर्ग के लोभी जीवन के चित्रों को देखते हुए भी गुरु गोबिन्द सिंह ने उनके यज्ञोपवीत उतरवाने का संकेत किया था ।[453] इसी कारण सिक्ख लोग यज्ञोपवीत को धारण नहीं करते और शुध्द आचरण पर अधिक बल देते है ।परन्तु हिन्दू धर्म के अनुयायियों का तो यह धार्मिक चिन्ह आज भी उनके हिन्दुत्व का प्रतीक है। औरंगजेब के राज्यकाल में हिन्दुओं के इस यज्ञोपवीत का विशेष निरादर हुआ । वह तो जब तक सवा मन यज्ञोपवीत न उतरा देता था तब तक उसे चैन कहा आता था ।उसके ऐसे अत्याचारों के चित्र भी इस ग्रंथ में अंकित हैं[454] ।

(4) <u>विवाह संस्कार</u> : हिन्दू समाज में विवाह एक ऐसा संस्कार है जिसे लोक और वेद दोनों की मान्यता प्राप्त है। अतः इसमें शास्त्रीय कृत्य और लोक रीति दोनों का समावेश रहता है। मनुष्य की उच्छृंखल प्रवृतियों को संयत करने और समाज

451- गु॰ प्र॰ सू॰ रि॰ 3, अंशु 28, श्री मुखवाक ,पृ॰ 5085

452- वही , अंशु 41-43,पृ॰ 5096

453- वही , रि 5, अंशु 9,अंक 9, पृ॰ 5455

454- (क) वही , रा 12, अंशु 27, अंक 18-19,पृ॰ 4333

(ख) वही , अंशु 28, अंक 36-37,पृ॰ 4338

के सुव्यवस्थित विकास के लिए विवाह एक परमोपयोगी संस्था है।[455] विवाह हिन्दू जीवन का अनिवार्य अंग है इसके बिना मनुष्य को सामाजिक प्रतिष्ठा नहीं मिलती ।[456]

'गुरु प्रताप सूरज' में तत्कालीन विवाह पध्दति तथा तत्सम्बन्धी लोक रीतियों की पर्याप्त जानकारी मिलतीहै ।इसमें गुरु हरिगोबिन्द तथा गुरु गोबिन्दसिंह के विवाह का अनुपम वर्णन हुआ है।इसके अतिरिक्त गुरु हरिगोबिन्द जी की कन्या बीबी वीरों के विवाह सम्बन्ध निर्देश भी 'गुरु प्रताप सूरज' में मिलते है।[457] पहाड़ी राजा भीमचन्द के लड़के और फते शाह की कन्या के विवाह का भी उल्लेख इस ग्रंथ में मिलता है। गुरु गोबिन्द सिंह भी जगत की रीति के अनुसार सवा लाख का तंबोल भेजते है ।[458] इन विवाहो के वर्णनों में कवि ने पारिवारिक, सामाजिक विधि विधानों का सविस्तार वर्णन कर तत्कालीन पारिवारिक अवस्था का सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है।श्री हरिगोबिन्द जी के विवाह का एक चित्र देखिए :-

लौकिक वैदिक रीति अनेक।सकल करी को कहै बिबेक ।। ।7।।
कीनिस बटना मरदनि तन को ।सपम सुहागनि मिली शगुन को ।
केचन भाने भूखन अंगा ।सूखम बसत्र धरे बहु गंगा ।। ।8 ।।जुति दमोदरी
अपर सहेली ।गोतन की चरचा बहु मेली ।
साक शरीकनि त्रिय गन मेलि । गावति, गारि निकारति गेल।। ।9 ।।
× × ×
बिप्र रीति शुभ पूजन केरी।लई दछना जाचि घनेरी ।
कर्‌यो प्रकाश हुतासन तहां।डार सरीर ते घ्रित महां।।35 ।।
हरीचंदु निज तनुजा साथि।अगनि प्रदछन फेरे नाथ ।
अपर रीति सभि जेतिक होइ।जथा जोग कहि कीनी सोइ।। 36 ।।[459]

455- तु · एषोदिता लोकयात्रा नित्यं स्त्री पुंसयोः शुभा। - मनुस्मृति, 9 · 25

456- द्रष्टव्य : इसी अध्याय का फुटनोट,

457- गु · प्र · सू · रा 5, अंशु 64, अंक 8, पृ · 2764

458- वही, रि 2, अंशु 10 अंक 28-32, पृ · 4735

459- वही, रा 5, अंशु 27, पृ · 2614-15

इस चित्र से स्पष्ट होता है कि तत्कालीन परिवारों मे विवाहोत्सव को बड़े उल्लास का अवसर माना जाता था ।

(5) मृत्यु संस्कार : यह व्यक्ति के जीवन का अन्तिम संस्कार है। जोकि बहुत कुछ पूर्ववर्ती परंपरा की ही भन्ति आज भी प्रचलित है। जन साधारण के बीच इस 'क्रिया' 'कपाल क्रिया,' 'अन्त्येष्टि क्रिया'[460], 'मृतक कर्म या संस्कार आदि भी कहा जाता है। 'गुरु प्रताप सूरज' में गुरु साहिबान के देहावसान(सचखंड प्रयाण) के अवसरों पर इस संस्कार की चर्चा मिलती है। गुरु साहिबान के संस्कार के लिए भक्त जन, घृत, चन्दन अगर और अनेक सुगन्धित वस्तुओं के योग से उनकी[461] चिता आदि बनाते है। गुरु अंगद देव तो जग और कुल के आचारों के करने के स्थान पर नाम स्मरण और आनन्द मंगलाचार का[462] आदेश देते हैं । इस संस्कार अंत से पूर्व गुरु गोबिन्द सिंह यज्ञ आदि भी करते हैं जिस में चर्तुवर्ण को भोजन आदि खिलाने का उल्लेख 'गुरु प्रताप सूरज में किया गया है।

साधरणतया समाज में इस संस्कार के लिए मृतक शरीर को स्नान आदि कराने के पश्चात् विमान[463] बना कर उस पर लिटाया जाता है जिस पर बहुमूल्य वस्त्र आदि डाले जाते हैं तत्पश्चात् शव-यात्रा आदि निकाली जाती[464] है। प्रायः उस समय नगर या ग्राम के बाहर किसी निश्चित भूमि पर चिता को जलाने का या अग्नि देने का कार्य किया जाता था या नदी आदि के किनारे पर विमान के ले जाने का भी उल्लेख मिलता

460- कल्याण : हिन्दू संस्कृति अंक , पृ · 59।

462- गु · प्र · सू · रा 1, अंक 12-13, अंशु 28, पृ · 143।

461- वही , रा 1, अंशु 68, अंक 50, पृ · 1627

463- (क) वही , रा 1, अंशु 68, अंक 25, पृ · 1625

(ख) वही , रा 2, अंशु 24, अंक 22, पृ · 1742

464- वही , रा 1, अंशु 28, अंक 33, पृ · 1433

है। शव को चिता पर रख कर आग दे देने क्त के पश्चात् कपाल क्रिया की जाती है।[465] तदनंतर पारिवारिक जन स्नान आदि करने के पश्चात् वापिस आ जाते है और तत्पश्चात् फूल चुनने के लिए जोते हैं और उन फूलों को गंगा अदिया किसी अन्य पवित्र नदी में[466] प्रवाहित कर क्मिज दिया जाता है।इसके पश्चात् तेरहवा किया जाता था औरसगड़ी बान्धने (दसतार बन्धी) की प्रथा का भी प्रचलन[466] था ।

हिन्दुत्व एवं सिक्ख संस्कृति के उन्नायक भाई सन्तोख सिंह ने वैदिक और लौकिक रीतियों का 'गुरु प्रताप सूरज' में बिना किसो भेदभाव केउल्लेख[468] किया है जो उनके सांस्कृतिक समन्वयात्मक दृष्टिकोण को व्यक्त करता है । वे गुरु वाणी एवं पाठएवं कोर्तन के साथ यज्ञ[469] आदि के विधान का भो निर्देश करते है ।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि इस ग्रंथ में इस संस्कार से सम्बन्धित समस्त रीति नीतियों का उल्लेख हुआ है।

5- विभिन्न परिवारों का सामाजिक संरचना में महत्व

'गुरु प्रताप सूरज' मे गुरु परिवारों के चित्रण के साथ साथ विभिन्न राजाओं बादशाहों, साधारण जनता के भो परिवारिक चित्र अंकित हैं । जिन का सामाजिक संरचना में अपना अपना पृथक स्वरूप हो प्रतिपादित नही है अपितु उनके सांस्कृतिक महत्व का भो 'गुरु प्रताप सूरज' में निरूपण हुआ है। हिन्दू -ब्राह्मण परिवार के जीवन, सिक्ख

465- (क) रा 1, अंशु 68, अंक 22, पृ॰ 1628

(ख) वही , रा 2, अंशु 24, अंक 39, पृ॰ 1743

(ग) वही, रि 5, अंशु 19, अंक 24, पृ॰ 5526

466- वही , रा 1, अंशु 68, अंक 28, पृ . 1626

467- वही , रा 1, अंशु 34, अंक 17-18, पृ॰ 1461

468- वही , रा 1, अंशु68, अंक52, पृ॰ 1628 ,

वही, रा 2, अंशु 25, अंक 41, पृ॰ 1744

469- वही , रेन 2, अंशु 20, अंक 40-41, पृ॰ 6322

गुरुओं और उनके सेवकों के पारिवारिक चित्र, काजी मुल्ला आदि के पारिवारिक चित्र, बादशाहों की पारिवारिक झांकी, उनके राजसिंहासन के लिए किए गए युद्धों एवं संघर्षों आदि सभी परिवारों का सामाजिक संरचना में महत्व है। इसका मूल कारण यही कहा जा सकता है कि व्यक्ति और उसका परिवार समाज के ही अंग होते हैं। उन सब की पारिवारिक उन्नति का सामाजिक उत्थान में योगदान सांस्कृतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण होता है।

निष्कर्ष

'गुरु प्रताप सूरज' में चित्रित पारिवारिक जीवन से सम्बध्द सामग्री हमें तत्कालीन जीवन की झांकी दिखाने में समर्थ है। इस के द्वारा कवि ने अपने विशाल अध्ययन का अद्भुत परिचय दिया है।

10- 'गुरु प्रताप सूरज' में सामान्य जीवन चित्रण

'गुरु प्रताप सूरज' के विशाल रंगमंच पर न केवल नौ गुरु साहिबान की जीवन-लीलाओं को ही अभिन्य प्रदर्शित है प्रत्युत असंख्य साधारण मनुष्यों के हास्य-रुदन, आवेश और उल्लास, शोक ग्रस्तता और आह्लादिता का भी अभिन्य प्रस्तुत किया गया है। इस गुरु कालीन और मुगल शासकों के समय की साधारण जीवन की अभिव्यक्ति बड़े सुन्दर रूप से हुई है। तत्कालीन पंचनद प्रदेश के सामान्यजन का चित्र उसमें अंकित है। उस का रहन सहन, खानपान, वेषभूषा आदि सभी का चित्रात्मक वर्णन इस में मिलता है। सामान्य जनता तर्कों और मुग़लों के आक्रमणो के कारण किस तरह से पददलित थी ? उसके जीवन में अनेक विकृतियों और विश्रृंखलताओं ने कैसे घर किया हुआ थ ? ये सब 'गुरु प्रताप सूरज' में चित्रित है। गुरु साहिबान ने उसके उध्दार के लिए जो जो प्रयत्न किये, उन सब की झांकी इस के चित्र पट पर देखी जा सकती है।

'गुरु प्रताप सूरज' में चित्रित सामान्य जीवन का अध्ययन मुख्यतः निम्न सात उपशीर्षकों के अन्तर्गत करना ही उपयुक्त होगा।

1- मानव जीवनकी प्रमुख आवश्यकताएं :-

(क) निवास(ख) भोजन(ग) वेश -विन्यास(परिधान)

2- श्रृंगार प्रसाधन तथा आभूषण ।

3- धातु और खनिज पदार्थ ।

4- वाहन

5- सामान्य व्यवहार की वस्तुएं ।

6- कला, शिल्प और विज्ञान ।

7- शिक्षा ।

ये सभी शीर्षक तत्कालीन जीवन पध्दतियों, एवं रीतियों को प्रस्तुत करते हैं । अतः इन्ही के माध्यम से 'गुरु प्रताप सूरज' में चित्रित सामान्य जीवन का विश्लेषण करना अधिक उपयुक्त होगा । ये सभी शीर्षक भारतीय संस्कृति के लौकिक तत्वों को अभिव्यक्त करते हैं ।

(1) मानव जीवन की प्रमुख आवश्यकताएं : मनुष्य को जीवन निर्वाह के लिए सामान्यतः तीन प्रमुख वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती है -(क)निवास स्थान(ख) भोजन तथा (ग) वस्त्र । इनकी प्राप्ति के पश्चात् उसका ध्यान श्रृंगार के विविध प्रसाधनों की ओर जाता है।

(क) निवास एवं अन्य विचरण स्थान :

'गुरु प्रताप सूरज' में वर्णित पात्रों के जीवन पर दृष्टिपात करने से विदित होगा कि उन्होंने आवास की समस्या के समाधान हेतु विभिन्न ग्रामों और नगरों का निर्माण किया। गोइंदवाल,[470] अमृतसर आनन्दपुर आदि अनेक नगरों का निर्माण का कार्य गुरु साहिबान ने किया ।[472] इस में गुरु जी की प्रेरणा से चारो वर्णों के लोग रहते थे ।अपनी शक्ति के

470- गु॰प्र॰सू॰रा 1, अंशु 18, अंक 33-34, पृ॰ 1391-92

471- द्रष्टव्य : द्वितीय अध्याय : गुरु साहिबान केसविजनिक कार्य ।

अनुसार उंचे मकान बना[472] कर । उदाहरण के लिए एक नगर गोइंदवाल को ही लीजिए इस नगर के निर्माण मे गुरु अमरदास जी ने जो जो प्रयास किए वे सब इस ग्रंथ में अंकित है।[473] गुरु साहिबान के अपने रहने के मकान काफी खुले होते थे और उनमें लकड़ी का कार्य भी होता[474] था ।खिड़कियों और रोशनदानों के संकेत भी मिलते[475] है । निवास स्थान के समीप कुए होते थे या नदी के किनारे से जल लाया जाता था । पानी की सुविधाके लिए गुरु अमरदास ने गोइंदवाल में बावली का निर्माण भी कराया

472- (क) गु॰ प्र॰ सू॰ रा 1, अंशु 19, अंक 27-28, पृ॰ 1395

(ख) 'रावरि की आग्या जिमि होइ।सुधरयो काज भयो पुरि सोई।। 29 ।।
लगे मजूर करति है कारे।केतिक करे निकेत सु त्यारे ।।
— वही, रा 1, अंशु 19, अंक 29-30पृ॰ 1396

(ग)पुरि सुन्दर घर होइ उतंग।—वही, अंक 35, पृ॰ 1396

(घ)चार वरण के लोकगन बिसबे हित आये।नीके बने निकेत नहिं याते अकुलाये।
— वही, अंशु 31, अंक 2, पृ॰ 1443

(ङ)वाई जात जु खत्री कुल को गोइंदवाल बासतिन लोन।
- वही, अंशु 32, अंक 8, पृ॰ 1449

473-(क) करहु बसावनि ग्राम विसाला।'-वही - रा 1, अंशु 18, अंक 8, पृ॰ 1389

(ख) निज निवास हित रचहु आवासु'।-वही, अंक 33, पृ॰ 1391

(ग)तात काल पुरि बस्यो रुचिर सो प्रो सतिगुर जहिं आप बसाइ।
'- वही , रा 1, अंशु 32, अंक 12, पृ॰ 1449

474- वही , रा 1, अंशु 31, अंक 4, पृ॰ 1443

475- वही , रा 1, अंशु 42, अंक 13, पृ॰ 1492

था ।जिस की तीर्थ रूप में प्रसिध्दि एवं महिमा का भी इस में वर्णन किया गया है।[476] क्स नके ल इस में लकड़ी और लोहे से सीढ़िया भी बनवायी[477] गई थी । कई नगर तो नदियों के समीप ही बसाये गए थे । निर्धन जनता झोपड़ियों में ही रहती[478] थी । ये आवास स्थान उनकी आर्थिक स्थिति के अनुसार होते थे ।मकानों में बैठकें और अटारियां बनी होती थी । 'खसखस की[479] टटी आदि का संकेत भी मिलता है । मुसलमान शासक और दरबारी अमीर वजीर शाही भवानों में रहते थे । जो पत्थरों के या पक्की ईटों के बने होते थे ।दीवारों पर सुन्दर चिकारी होती थी ।उनकी खिड़ियों पर पर्दे लगे होते[480] थे ।

विचरण के लिए बड़े बड़े बाग बनाये जाते थे । जिन में भान्ति भक्ति के पौधे लगे होते थे । गुरु साहिबान स्वयं भी म्न बागों में सैर के लिए जाया[481] करते थे ।शाही भवनों के समप भी बाग आदि होते थे ।शिकार आदि खेलने के लिए प्रायः लोग जंगलों की सैर को जाया करते थे[482] । जहां कहीं बाहर जाकर रहना होता था वहां[483] तम्बू आदि

476- गु॰प्र॰सू॰रा 1, अंशु 58, अंक 1-190, पृ॰ 1571-72

477- वही , अंक 11-12, पृ॰ 1572

478- इक झुंको करि बरयो सि बिसूर ।।-वही, रा 5, अंशु34, अंक18, पृ 2642 तथा
'भवनि छापरी पर त्रिण छारे।'-वही रा 7 , अंशु 14अंक 22, पृ॰ 3110

479-'खस टाटी पर जल बहु-रि सींच ।'-वही , रा 8, अंशु13, अंक 16, पृ॰3362

480- बेगम के समीप सुभ डेर।चिखन झरोखे लगे घनेरे ।
मखमल ज़री झालरनि लरकी।चोग सु चांदी चामीकर की।
हीरे मुकर सु मुकता लागे। जगमग चमतकार दुति जागे ।। 27 ।।
-वही-रा 5, अंशु 6, अंक 27, पृ॰ 2536

481- वही, रा 8, अंशु 45, अंक पृ॰ 3478

482-(क)वही, रा4अंशु55, अंक 31-32, पृ॰ 2460
(ख)वही, रि॰ 1, अंशु 51, अंक 24-26, पृ॰ 4694
(ग) ऐन 1, अंशु 50, पृ॰ 6219

483- 'तंबू गन कनात शमिआने।लादे उशटर भार सु त्याने।। 35 ।।
– वही रा 10, अंशु 36, अंक 35, पृ॰ 3902

लगोये जाते थे । उन तम्बूओं मे बहुमूल्य वस्त्रों का प्रयोग होता था । गुरु साहिबान को उनके श्रध्दालु तम्बू आदि भी भेंट किया करते[484] थे । जो बहुत कोमती होते थे । आसाम और काबल आदि को ओर से भी सेवक भेंट में इन्हें बहुमूल्य वस्तुएं भेजा करते थे ।गुरु साहिबान अपनी यात्राओं में प्रायः बाहर खुली जगहों पर याबागों में उपयुक्त स्थान पर अपने शिविर डाला करते[485] थे । साधरण यात्री मार्ग में ~~फड़~~पड़ाव डाललिया करते थे[486] या सराय आदि में रहा करते थे ।नगर के अन्दर हाट[487] बाजार हुआ करते थे । इन हाट-बजारों में बहुविध वस्तुओं का क्रय-विक्रय[488] होता था ।

(ख) भोजन तथा खान पान : 'गुरु प्रतापसूरज' में खान पान के विभिन्न पदार्थों का पर्याप्त चर्चा हुई है।गुरुओं के दर्शनार्थ आने वाली जनता गुरुओं के चलाए हुए 'ले' 'लंगर' में से अपने मध्याह आदि के भोजन को ग्रहण करती थी । वह भोजन कई प्रकार का बनता था । विभिन्न व्यंजनों और पकवानों के साथसाथ इससमय के भोजन में तरह

484- गु॰ प्र॰ सू॰ रि॰ 1, अंशु 20, अंक 8-10,पृ॰ 4573

485- वही, रा॰ 12, अंशु 35, अंक 36-40,पृ॰ 4395

486- वही, रा 1,अंशु 14, अंक 14,पृ॰ ~~ब~~ 1368

487- 'केतिक भई देकान तहिं बहु बनज समेता।-

— वही , रा 1 अंशु 31, अंक 32,पृ॰ 1442

488- 'जबि बजार महिं पहुंचे जाई । बहुत मोल के वसत्र विकाई ।

— रा 1, अंशु 44, अंक 33,पृ॰ 1509

तरह की तरकारियों और फलों की चर्चा मिलती है।

विभिन्न अवसरों पर भोजन मे बने हुए पदार्थों की कई स्थानों पर लम्बी -लम्बी सूचियों भी इस में मिलती हैं। गुरु साहिबानके भोज्य पदार्थों के अतिरिक्त सामान्य हिन्दू वर्ग, मुसलमान वर्ग, शासक वर्ग के भोजन का भी इस ग्रंथ में कई स्थानों पर उल्लेख मिलता है। 'गुरु प्रताप सूरज ' में वर्णित खाद्य पदार्थों को निम्न वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

(1) निरामिष भोज्य पदार्थ :- अनाज, आटा(गेहू, चने, बाजरा)[489,490] चावल, दालें[491], खीर[492,493], घी[494], खिचड़ी,[495] (ओदन) घास तथा वृक्षों की छाल का भोजन[496] इत्यादि ।

489- लादि अन्न बहु बाजरा आइ बनज को काम।

— गु॰ प्र॰ सू॰ रा 2, अंशु 49, अंक 1, पृ॰ 1839

490(क)सुंदर अन्न चून गोधू ।-वही , रा 4, अंशु 32, अंक 9-12, पृ॰ 3254

(ख)तिन कहु भोजन चार प्रकारा।स्वाद सनिगध, मधुर , रसवारा।

-वही, रा 3, अंशु52, अंक 27, पृ॰ 2151

(ग)चणिक रोट का भोजन खायो -वही, रा 2, अंशु27, अंक23, पृ॰ 1755

491- (क)सूखम चावर सूप जि नाना।- वही, रा 5, अंशु 40, अंक 19-20, पृ॰ 2666

(ख) चावर चून, दार विधि नाना-वही, रा 5, अंशु 51, अंक14, पृ॰ 2714

492- चावर चून, दार घृत घने ।- वही, रा 12, अंशु 43, अंक 2, पृ॰ 4391

493- घृत, मिशटान, चून गोधूम को, सूखम चावर सूप लिआइ ।।

- वही, रा 4, अंशु 21, अंक 23, पृ॰ 2311

494-(क) घृत्ति अनाज आनते पाही - वही , रा 2, अंशु 42, अंक 3, पृ॰ 1812

(ख)सूखम चावर मूंग की दार।फुलका बहुत घृत्त के सने ।

-वही , रा 11, अंशु 47, अंक 24, पृ॰ 4153

495-दधि सो खिचरी करि के त्यारि - वही रा 1, अंशु 11, अंक 2, पृ॰ 1352

496- ब्रिच्छन की ले छील उतारी।कूट करै खेबे हि त्यारी ।

- वही रि 6, अंशु 23, अंक 42-43, पृ॰ 5825

(2) फल :- आम[497], अनार[498], [499] अखरोट[500], नारियल[501], केला[502], बेर[503], अमरूद[504], सेव[505],
नास्पति[506], अंगूर[507], जरदालू[508], निबू[509], नारंगी[510], जामुन[511], खिरनी[512] खिरनो, संतरे[513] आदि।

(3) मिष्टान्न[514] :- लड्डू, शकरपारे, घीवर, बर्फी, बून्दी, खोवा, जलेबी, मिश्री आदि।

497- गु॰प्र॰सू॰रा॰ 12, अंशु 60, अंक पृ॰ 4450-51

498- बिन रुति ते तहि आंब बिकाइ।-वही, रा 1, अंशु 44, अंक 42, पृ॰ 1509

499- दारम दीरघ दाने जोइ। - वही रा 12, अंशु 31, अंक 8-9, पृ॰ 4348

500- खरे खरोट स दल गन हरे।-वही, रा 5, अंशु 48, अंक 27, पृ॰ 2703

501- झोरी बिखे नारीअर पाइव।-वही रा 1, अंशु 67, अंक 24, पृ॰ 1621

502- कदली बदरीफल झर परे।-वही, रा 5, अंशु 48, अंक 27, पृ॰ 2703

503- कदली बदरी तरु समुदाए।- वही, वही, रा 11, अंशु 46, अंक 15, पृ॰ 4149

504- अरु दारम ब्रिंद रसाल।आमरुद, कदली गुललाल।

-वही, रि 2, अंशु 10, अंक 10, पृ॰ 4733

505- सेव संघूरी अरु जरदालु।-वही, रा 12, अंशु 46, अंक 23-24, पृ॰ 4404

506- सेउ, बटंत, बेल अंगूर।वही, रा 5, अंशु 48, अंक 30, पृ॰ 2703

507- गुच्छ अंगूरन केर बिसाल।-वही, रा, 5, अंशु 49, अंक 34, पृ॰ 2707

508- दारम जरदालू तहिं खरे।वही, वही

509- निंबू नारंगी रस भरे।-वही, रा 5, अंशु 25, अंक 9-10 पृ॰ 2895

510- वही

511-जामन फल अरु खिरनो।-वही, रा12, अंशु 31, अंक 8-9, पृ॰ 4348

512-वही

513- संगतरे, दारम सुभ दाने।-वही, रा 12, अंशु 46, अंक 23-24, पृ॰ 4404

514- (क)मोदक खुरमै अरु बरे दधि लवनि रलाए।बड़े अजेब जुति इत्यादि बनाए

- वही, रा 4, अंशु 39, अंक 32, पृ॰ 2264

(ख) मोदक खुरमे, नुगदी घनी।ल.घेवर घृत्त सिता गन सनी।

- वही, रि 1, अंशु 13, अंक 41, पृ॰ 4547

(ग)खोवा पे तपताइ बनावहिं - वही, रा 5, अंशु 54, अंक 22, पृ॰ 2726

(4) पकवान[515] :- पूड़े , पूरिया, बड़ें, पकोड़े , कचौरी इत्यादि ।

(5) पेय पदार्थ[516] :- दूध दही, छाछ (लस्सी), मधु ।

(6) मेवे[517] :- मेवे, पिस्ता, बदाम, गरी, छुवारे इत्यादि।

(7) सामिष भोज्य पदार्थ[518] :- कबाब, बकरे का मांस, (झटका) पक्षी का मांस, मछली का मांस इत्यादि ।

(8) मसाले[519] :- धनिया, जीरा, मिर्च, नमक, इइलाची, लौंक, काली मिर्च इत्यादि ।

---

515 -(क) पूरी करि कचौरि समुदाए।बरे पकौरे दधि महिं डाले ।

- वही, रा 4, अंशु 15, अंक 7-8 पृ॰ 2286

(ख) पूप पूरिका चढहि कराहे।

× × ×

बने कचौरी बरे पकौरे । - वही , रैन 2, अंशु 20, अंक 31, पृ॰ 6321

516- (क) दुगध, दधी, घृत अरु मिशटान।- वही , रैन 1, अंशु 38, अंक 10 पृ॰ 6159

(ख) कोऊ कहै रोटका छाछो ।-वही , रैन 1, अंशु 3, अंक 50, पृ॰ 6005

(ग) सुनि करि कह्यो मधू शुभ जाति।-वही, रा 5, अंशु 50, अंक 7, पृ॰ 2709

517- (क) मधुर सलवण सु मेवा डाले। गरी बदामनि छील बिसाले।

- वही, रा 4, अंशु 15, अंक 7, पृ॰ 2286

(ख) मेवे ब्रिंद अमंज़ करे हैं ।-वही, रा5, अंशु 60, अंक 22, पृ॰ 2749

(ग) मुख पंकज महिं दीन छुवारा।-वही रा 7, अंशु 8, अंक 44, पृ॰ 3084

518 -(क) मिलि सभिनि बीच भाखहु कबाब।-वही , रा6, अंशु 39, अंक पृ॰ 2955

(ख) हेरि छाग तिस पुशट महाना। करि झटका रिंधवाइ सु खाया।

- वही, रैन 2, अंशु 5, अंक 9, पृ॰ 6240

(ग) गन स्वान, बाज़ शिकरे बिसाल। मृग खोजि खोजि करयति काल।

-वही, रि 1, अंशु 37, अंक 30, पृ॰ 4639

(घ) इह सफरी करि त्यार मगावो।-वही, रा 1, अंशु 20, अंक 17, पृ॰ 1400

518-जीरक मिरच , पइ धनीआ लवन सो परोसो है मिलाई करि ।

- वही रा 3, अंशु 11, अंक 23, पृ॰ 1941

(9) मादक पदार्थ[520] :- शराब, (मदिरा) अफीम, भंग, सुक्खा , पान, तम्बाकू ।

(ग) वेश-विन्यास (परिधान) : आवास एवं भोजन को आरम्भिक आवश्यकताओं की पूर्ति के पश्चात् मनुष्य जीवन को अनिवार्य आवश्यकता वस्त्र' परिधानों को है। शरी रक्षा हेतु ऋतु अनुकूल वस्त्रों से मनुष्य अपने तन को ढांप कर उसे अलंकृत कर सुखानुभव करता है। साधरण दैनिक वस्त्रों के अतिरिक्त विशेष अवसरों पर नवीन वस्त्र पहने की प्रथा शताब्दियों से भारत में चली आ रही है। 'गुरु प्रताप सूरज' में जन साधारण के वस्त्रों के अतिरिक्त गुरु साहिबान के साधारण और बहुमूल्य वस्त्रों का उल्लेख मिलता है। गुरु हरिगोबिन्द और गुरु गोबिन्द सिंह के वस्त्र बहुत ही मूल्यवान होते थे । जो रेशमी होते थे । सिध्द साधु गोदड़ी कंथा, खिंथा पहनते थे । तपे और योगी आदि वस्त्र रहित भी जीवन व्यतीत करते थे । पीरो , फकीरो का भी विभिन्न प्रकार का लिबास होता था ।

'गुरु प्रताप सूरज' प्रधानतया पुरुष प्रधान काव्य होने केकारण पुरुषों के वस्त्रों का ही अधिक विवरण देता है। परन्तु गौण रूप में नारी के सज्जीले वस्त्र का भी उस में कहीं कहीं उल्लेख[521] मिलता है। गुरु अजुर्न देव की पत्नी गंगा देवी के

520-(क)पीवति शराब मतवारे ।-गु॰ प्र॰ सू॰ रा 8, अंशु 18, अं पृ॰ 3386

(ख)निज कर ते हफीम सो दीनी बिजोआ करके पाना।-वही, 4 • 25 • 55 पृ•5309

(ग) भंग अफीमां खान करे हैं ।-वही, रि 5, अंशु8, अंक 12, पृ॰ 5450

(घ) सुक्खा छकि अफीम सुखधामू ।-वही, रि 3, अंशु8, अंक 5, पृ॰ 4946

(ङ) सुक्खा छके सुचेत पुन होवै ।-वही रा 4, अंशु 44, अंक 11, पृ॰ 2411

(च) ऊपर तरे पान द्वै दैके ।वही, रा 3, अंशु 67, अंशु 53, अं पृ॰ 2212

(छ)वही, रि 5, अंशु 27, पृ॰ 5585-88

521- वही रा 3, अंशु 1, अंक 36, पृ॰ 1888

सजधज कर बाबा बुड्ढा के पास पुत्र प्राप्ति के वर प्राप्त करने के लिए जाने का उल्लेख मिलता है।[522] पृथ्वी चन्द की पत्नी भी कोमती वस्त्रों के पहने की शौकीन दिखाई गई है।[523] स्त्री अपने शरीर के कोमलता के अनुकूल के रेशमी आदि वस्त्रों का प्रयोग करती थी। तथा रुचि अनुकूल रंगबिरंगे वस्त्र धारण करती थी। तो पुरुष अपनी रुचि के अनुकूल वस्त्र धारण करता था। वस्त्रों का प्रयोग आयु के अनुसार भी विभिन्न प्रकार का हुआ करता था। बालक के वेशभूषा पृथक होती थी तो वृध्दजनों की पृथक। अतः रुचि और आयु के अनुकूल विभिन्न प्रकार के वस्त्रों का समाज में प्रयोग होता था। अतः इसे अध्ययन की सुविधा के लिए निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत रखा जा सकता है।

(क) बालकों के वस्त्र[524] :- झगलो चीर, (वसन-दुति)

(ख) पुरुषों के वस्त्र[525] :- रेशमी जामा, चोगा, पगड़ी, कमीज़, दस्तार, टोपी, दुपट्टा, धोती, कच्छा, रुमाल, लंगोटी, इत्यादि।

522- गु॰ प्र॰ सू॰ रा 3, अंशु 2 अंक 22, पृ॰ 1893

523- वही, रा 3, अंशु 2, अंक 45, पृ॰ 1890

524-(क) सूक्षम सु चीन गर पोत रंग। गोटा सु लाग सभि कोर संग।

- वही, रा 3, अंशु 12, अंक 24, पृ॰ 1944

(ख) सूखम झीन बसत्र पहिरावै। झगलो महिं सरीर दिपतावै।

वही, रा 5, अंशु 38, अंक 8, पृ॰ 2657

(ग) गोटा दमकति दुति चित भावति। -वही, रि 2 अंशु 50, अंक 38, पृ॰ 4909

525- (क) जामा गर अभिराम झीन बहु सूखम, सूत दिपहि तन चारु

सिर उशनीक नीक विधि बंधन हीरे स्वेत जिगा दुतिकारु।

-वही, रा 8, अंशु 16, अंक 14, पृ॰ 3373

(ख) पोशश अपर पहिर नृप जैसे। -वही, रा 1 अंशु 7 अंक 5, पृ॰ 1332

(ग) बहुरो बंधनको दसतार। -वही, रा 4, अंशु 41, अंक 23, पृ॰ 2399

(घ) सेलो मैलो कट लंगोटी। -वही, रा 5, अंशु 34, अंक 37, पृ॰ 2644

(ङ) सिर पर ऊंची टोपी धरें। -वही, रा 11, अंशु 47, अंक 3 पृ॰ 4151

(च) जरी बाफता मलमल खासे। तास बादला चमकति घने।

— वही, रि 5, अंशु 12, अंक 4, पृ॰ 5535

(ग) वृध्द जनों के वस्त्र:-[526] गोदड़ी चोंगा, श्वेत कपड़े इत्यादि

(घ) नारी के वस्त्र :-[527] चुनी, (दुपट्टा) सलवार, चूनरी इत्यादि ।

(ङ) इतर वस्त्र :-[528] कमली, निहाली (तुलाई) शाल, दुशाले, गलीचे, मखमल के पर्दे, लेफ, रजाई इत्यादि ।

इस तरह के वस्त्रों का प्रयोग भीजनता की आर्थिक स्थिति के अनुसार होता था। अमीर और गरीब वर्ग में यह विभिन्नता आदि आरंभ से ही चली आ रही है। निर्धन लोगों के वस्त्र खुरदरे खद्दर आदि के ही होते थे ।

526- (क) तन पर की खिंथा सु उतारी।-गु॰ प्र॰ सू॰ रा 1, अंशु 6, अंक 26, पृ॰ 1330

(ख) सेत बसत्र तन पर धरैं -वही, रा 1, अंशु 30, अंक 20: पृ॰ 1441

527- बहु बरन चूनरी छोरदार। की जरीदार की कोरदार।

-वही, रि 1, अंशु 12, अंक 17, पृ॰ ~~प्रश~~ 4541

(ख) बसत्र जि इसत्रिनि पहिरनि गात। रेशम, पशम, बरन बहु भांति।। 26 22

-वही, रा 5, अंशु 9, अंक 26, पृ॰ 2547

528-(क) फटी कामरी ऊपर लीनि ।-वही रा 7, अंशु ~~15~~ 14, अंक 23, पृ॰ 3110

(ख) लेफ निहाल लये बनाइ।-वही रि 4, अंशु 7, अंक 47, पृ॰ 5235

(ग) तुल तुलाई के अगनि सीतहि निरवारे ।-वही, रा 1, अंशु 17, अंक 2, पृ॰ 1385

(घ) गिलमि गलीचे फरश बिसाला ।- वही रा 4, अंशु 8, अंक 3, पृ॰ 2257

(ङ) मखमल ज़री झालरनि लरकी । वही, रा 5, अंशु 6, अंक 27, पृ॰ 2536

(च) खीन खाफ की तूल रजाई ।-वही, रि 6, अंशु 54, अंक 5, पृ॰ 5963

(छ) रेशम ज़री समेत दुशाले ।- वही रा 4, अंशु 41, अंक 19, पृ॰ 2399

(2) श्रृंगार प्रसाधन तथा आभूषण : श्रृंगारिक प्रसाधन मनुष्य के जीवन की अनिवार्य आवश्यकता नहींहैं परन्तु ये अभिरुचि तथा रीति -नीति के परिचायक हैं जिन्हें सुसंस्कृत मानव चिरकाल से ही अपनाता आया है। भौतिक उन्नति और आर्थिक व्यवस्था के विकास के साथ साथ मनुष्य अपनी अभिरुचियों को भी सुसंस्कृत बनाता आया है। नारी जीवन के श्रृंगार प्रसाधन के रूप में सोलह सिंगारों'[529] का वर्णन इस युग में परंपरागत रूप से चले आये थे । रीतिकालीन कवियों का मुख्य आकर्षण 'नारी' होने के कारण उन्होंने इनका पर्याप्त निरूपण किया है। परन्तु 'गुरु प्रताप सूरज' में सन्तों एवं पौराणिकता से युक्त अवतारी महापुरुषों के जीवन चरित का वर्णन होने के कारण इन 'नारीसौंदर्य' 'के श्रृंगारिक प्रसाधनों का कहीं भी खुल करनिरूपण नहीं किया गया। परन्तु गौण कथाओं के अन्तर्गत तथा अन्य प्रसंगों में इनका मर्यादित[530] उल्लेख हुआ हैइसमें श्रृंगार का चित्रण सीमित और मर्यादित होने के कारण श्रृंगार प्रसाधनों

529- (क) रामचन्द्र वर्मा : प्रामाणिक हिन्दी कोश, पृ॰ 1228

(ख) बल्लभ देव : सुभाषितावली ।

(ग) रूप गोस्वामी, : उज्ज्वलनीलमणि, पृ॰ 307

530-(क)केसर घोर बिलासहिं बेगम अतर गलाब उडाइ अमीर।

-गु॰ प्र॰ सू॰ रा 4, अंशु 24, अंक 13, पृ॰ 2332

(ख)सद्रिश दामनी दमकहिं बीच ।रंग महिल महिं गंधनि सीच।। 13 ।।

वही-रा 10, अंशु 44, अंक 13, पृ॰ 3929

(ग)द्रिग भ्रिग से, सिं श्रिंगगर महिं सोहति।अतर अल्यो बलति मन मोहति।

वही, रि 4, अंशु 36, अंक 23

(घ)कजरारे म्रिगनैन सावरे।हाथ कमल महिंदी अरु अरुनारे।

वही, ऐ2, अंशु 11, अंक 15, पृ॰ 6273

(ङ)मलि मलि नाई कामणी खोड्स करे शिंगार।

वही, रि 6, अंशु 21, अंक 27, पृ॰ 5820

का भी कम उल्लेख हुआ है। परन्तु फिर भी जो संकेत मिलते है उनसे तत्कालीन परिष्कृत रुचि का साक्ष्य आवश्य मिल जाता है इसका प्रमुख कारण इस ग्रंथ का पुरुष पात्र प्रधान होना है। वैसे सांकेतिक रूप में 16 श्रृंगार की चर्चा भी एक स्थान पर की गई है।[531] आभूषण वैभव और विलास के प्रतीक हैं इनका प्रयोग नारी और पुरुष दोनोंही के पहनने की अलंकार प्रियता का द्योतक है। इनके प्रयोग से तत्कालीन सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति का भी अनुमान लगाया जा सकता है। 'गुरु प्रताप सूरज' में नारी के आभूषणों का उल्लेख पुरुष के आभूषणों सेअपेक्षा कृत कम हुआ है। ये आभूषण लौकिक वैभव के भी परिचायक हैं। इनके उल्लेख के साथ साथ स्वर्ण, हीरे मोती, मणियां आदि उपकरणों का भी परिचय मिलता है। इन से बने हार तथा रत्नों से जड़े अनेक आभूषणों का भी 'गुरु प्रताप सूरज' मे उल्लेख हुआ है। आभूषणों के संदर्भ में सोने के प्रयोग का अथवा मणि, माणिक, जवाहरों आदि का ही अधिक वर्णन मिलता है।[532] समग्रतया यह कहा जा सकता है कि आभूषणों आदि के अलंकारण से तत्कालीन सांस्कृतिक अभिरुचि का वैभवशाली प्रदर्शन इस काव्य में हुआ है। नारी की आभूषण प्रियता का संकेत यद्यपि माता भानी, माता गंगा आदि के जीवन में मिलता[533] है तथापि आभूषणों के नामों का उल्लखे बहुत कम हुआ है । गुरु हरिगोबिन्द के बाल जीवन के चित्रों में उन्हें आभूषणों से अंकृत अलंकृत दिखाया गया है। एक चित्र देखिए :-

'श्री चरणांबुज ते चलिबे पग नूपर भू पर दौर बजावैं ।
केचन को बर किंकनि है कटि हीरे जराउ जरेदमकावैं।
पोगरे झगुली बहु झीन महा दुति ते तन चारु दिपावै ।
हाथ में कंकन छाप छलायनि सीस बिभूखन शोभ बढावें ।। 25 ।।[534]

531- गु॰ प्र॰ सू॰ रि 6, अंशु 2।अंक 27, पृ॰ 5820

532- (क) जबर जवाहर कंचन जरे।-वही रा 5, अंशु 5, अंक 13, पृ॰ 2531

(ख) मुकता हीरे लगे जवाहर। - वही, रि 3, अंशु 3, अंक 36, पृ॰ 4924

533-वही, रा 1, अंशु 64, अंक 9-10, पृ॰ 1606

534- वही, रा 3, अंशु 9, अंक 25, पृ॰ 1931-32

गुरु साहिबान स्वयं भी कलगी ,अगूठी , गले में हार आदि पहनते थे । जिन में मूल्य वान हीरों के जड़े होने के वर्णन मिलतहैं[535] ।

इसी प्रकार शाहीदरबारों में भी आभूषण प्रियता और आलंकारिकता के 'गुरु प्रताप सूरज में उल्लेखमिलते है ।सम्राट बेगमे सोने, रत्नों और कीमती पत्थरों, तथा हीरों से जड़ें हुए आभूषण पहते थे[536] । जैसिंघ की पटरानी के आभूषणों[537] के संकेत भी है।

535-(क) दमकहिं हीरे अदि जनाऊ।पहिरि बिभूखन को समुदाऊ।
जिगासु कलग़ी सिर पर धारें।गर महिं श्री क्रिपाण को डारहिं।। 10 ।।
तरकश जरे जवाहर जाल।बनो चुगिरदे मुकता माल।।
- गु॰ प्र॰ सू॰ रि 5, अुशु 21, अंक 10-11, पृ॰ 5532
(ख)'लाखहुं कीमति जरे जवाहर।जगमग जेंब जिसू को ज़ाहर।।
अस कलग़ी ले आव ख़ज़ाने ।संग दुशाले बसत्र महाने ।
इक धुकधुकी मल बहु केरी।आनहुं अबहि न कीजहि देरी।। 37 ।।
वही, ऐन 1, अुशु 46, अंक 36-37, पृ॰ 6194

536-(क)ज़ेवर जबर जवाहर जरे।मुकता गोल,आब बड खरे।
हीरनि की चामीकर चारु।चमकति चौसरहार उदारु ।। 3 ।।
-वही , रा 5, अंशु 7, पृ॰ 2538
(ख)जे अवरंग ते कंकल लए। कर निकासि बेनव की दए।।
बहु मोल गन लाइसि हीरा।चमतकार कीरन करि चीरा।
-वहीरा 9, अंशु 56, अंक 22-23, पृ॰ 3749

537- ज़ेवर जबर जवाहर जरे । जग मग ज़ेब जिनहु की करे ।
मुकता लरी लरकती लार ।अलंकार सभि पहिरहिं नारि ।। 12 ।।
— वही, रा 10, अंशु 44, पृ॰ 3929

(3) धातु और खनिज पदार्थ :-

धातुओं में सर्वाधिक 'सोने' का उल्लेख 'गुरु प्रताप सूरज' में मिलता है। इस म गालने और आभूषणों तथा बर्तनों आदि के प्रयोग के लिए उपयोग में लाने का भी उल्लेख हुआ है।[538] सोने के अतिरिक्त 'चांदी का प्रयोग रजतपण[539] के सिक्कों के रूप मे कई स्थानों पर वर्णित है। रजतपण के अतिरिक्त मोहरों, दीनारों आदि का उल्लेख भी मिलता है। यह रजतपण तथा मोहरे आदि ~~त्स्काल~~ तत्कालीन व्यापारिक आदान प्रदान में भी उपयोग में लायी जाती थी। विक्रय में भी इसका उपयोग होता था। अन्य धातुओं - शोरा, सिक्का, लोहा, फौलाद, पीतल (बर्तनों में प्रयुक्त) तांबा आदि इस[540] ग्रंथ में वर्णित हैं। इन के अतिरिक्त खनिज पदार्थों में हीरे, जवाहर, लाल, मोती, मरकत, मणि, मुक्त-मणिमय, पारस, न पत्थर, पारा आदि का भी उल्लेख मिलता है।[541]

538- (क) कंचन के भूखन बहु पावहिं।-गु॰ प्र॰ सू॰ रा 1, अंशु 64, अंक 8, पृ॰ 1606

(ख) सो जि प्रतीखहि कंचन बासन।-वही, रा 3, अंशु 64, अंक 47, पृ॰ 2202

(ग) मरवाही अरु नानक ले कंचन थारा।-वही, रा 7, अंशु 61, अंक 30 'पृ॰ 3306

(घ) इक तोल कंचन - - -।-वही, रि 6, अंशु 34, अंक 25, पृ॰ 5873

539 (क)-पंच से रजपन देवौं एकबार गिन।-वही, रा 3, अंशु 17, अंक 18, पृ॰ 1969

(ख) लीनो दरब ब्रिंद दिनारा।, वही, ऐन। अंशु 34, अंक 27, पृ॰ 6143

(ग) बहु दीनार जवाहर ल्याई।-वही, रा 5, अंशु 7, अंक 12, पृ॰ 2539

540-(क) हिम अरु शोरे महि धरि राखा।-वही, रा 7, अंशु 19, अंक 52, पृ॰ 3133

(ख) मण हजार सिक्का मंगवायों।-वही, रा 7, अंशु 39, अंक 43, पृ॰ 3210

(ग) सरब लोक को शकती लए। वही, रा 7, अंशु 38, अंक 45, पृ॰ 3210

(घ) बहु कोभति लोह पुलाद।-वही रा 7, अंशु 50, अंक 25, पृ॰ 3257

541-(क) बहु मोले गन लाइसि हीरा।-वही, रा 9, अंशु 56, अंक 23, पृ॰ 3749

(ख) दोइ लाल उगले धरि ~~धो~~ दीने।-वही, रा 2, अंशु 3, अंक 55, पृ॰ 1657

(ग) सुनि अनबिध मुकता सो ल्याइव।- वही, रा 2, अंशु 3, अंक 54, पृ॰ 1657

(घ) पारस पास छुपाइ रखंता।- वही, रि 6, अंशु 24, अंक 5, पृ॰ 5830

(ङ) ~~लन~~ झाल ते लहि रतन सुखाला- वही, रा 1, अंशु 30, पृ॰ 1439

(चा) दयो सिख ने पारद मारे।-वही, रा 3, अंशु 66, अंक 49, पृ॰ 2211

(4) वाहन :- घोड़े, ऊंट, खच्चर, पालकी इत्यादि ।

भोजन, वस्त्र और निवास स्थान आदि की सुविधाओं के पश्चात् मानव भौतिक जीवनको सुकर बनाने के लिए आवागमन के साधनों को अपनाता है ।आवागमन के सार्वजनिक अनेक साधनों का 'गुरु प्रताप सूरज' मेंउल्लेख मिलता है।इस मे तीन स्थानों वाहनों की चर्चा मिलती है।

(1) थल के वाहन[542]:- रथ, हाथी, घोड़े, ऊंट ~~कक~~, खच्चर, गाड़ी बैल, पालकी आदि ।

(2) जल के वाहन[543] :-'नाव' या नौका'जहाज आदि ।

(3) आकाश के वाहन[544]:- विमान

542-(क)स्यंदन तुरंग जोरि।-गु॰ प्र॰ सू॰ रा 3, अंशु 2, पृ॰ 20, पृ॰ 1893

(ख) जनु ऐरावत बतस, चपल अति।-वही, रा 8, अंशु 16, अंक 16, पृ॰3374

(ग)सतिगुरु लाइ तुरंग तबेले ।-वही, रा 5, अंशु 17, अंक 48, पृ॰ 2575

(घ)उशटर एक लियो संग फिरहि ।वही, रा 1, अंशु 62, अंक 6, पृ॰ 1594

(ङ)खच्चर पर खुरजी तकी दीनारनि केरी।वही, रि6, अंशु50, अंक16पृ॰5946

(च)गाड़ी बहु संग लेके ।-वही, रा 3, अंशु 3, अंक 30, पृ 1895

(छ)वाहन हैं, गज, पालकी, सुंदर मंदर- -।-वही, रा। 1, अंशु59, अंक24, पृ 4205

543-(क)दोनहुं संग सु नौका चढे ।-वही, रा 6, अंशु 22, अंक 18, पृ॰ 2876

(ख)इक बिर तिह जहाज फटि गयो।-वही, रा 1, अंशु 37, अंक 29, पृ॰ 1474

(ग)फट्यो जहाज इकत्र करहिंगे ।-वही, ऐन, 1, अंशु 32, अंक 49, पृ॰ 6133

(घ) देहि अंत ~~म~~ सुर जानि कै आइ बिमाननि भोर।

-वही, रा 6, अंशु 54, अंक 1पृ 3010

(5) व्यवहार को सामान्य वस्तुएं :

'गुरु प्रताप सूरज' में उल्लिखित इस वर्ग के अन्तर्गत इस कर्म के आने वाली प्रमुख वस्तुओं को मुख्य रूप में पाच वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है।1-दैनिक उपयोग में आने वालो गृह तथा गृह सम्बन्धी वस्तुएं, 2- पात्र, 3, बैठने और सोने के उपकरण, 4- लिखने के उपकरण, 5- रंग ।

(1)ञ दैनिक उपयोग मे आने वाली गृह तथा गृह संबंधी वस्तुएं[545] । साबुन, तेल, बटणा, कंघा, ताला, खसखसकी टाटी, माला या तसबी, दर्पण, पंखा, चंवर इत्यादि ।

(2) पात्र[546] :-थाल, देग, कड़ाहे, वरटोह, कटोरा, गागर, कलश, तूम्बे का कमंडल, मिटटी के वर्तन तथा सोनें के बर्तन इत्यादि।

545-(क)साबूणहि ते जिम तार पारि।-गु • प्र • सू •, रा 6, अंशु 16, अंक32, पृ • 2853

(ख)तिल घृत अधिक आनि ति सोंच।-वही, रा 1, अंशु 28, अंक35, पृ •1433

(ग)उदबरतन मलिबे हेता।-वही, रा 8, अंशु 5, अंक 44, पृ • 3329

(घ)किह सिख ने कंघा नहिं कर्यो।-वही, रैन, 1, अंशु21, अंक 13: पृ • 6080

(ङ)मिल्यो सखा सम जिस तारा।-वही, रा 7, अंशु 28, अंक 43, पृ • 3170

(च)खस टाटो पर जल बहु सोच।-वही, रा 8, अंशु13, अंक 16, पृ • 3362

(छ)तिस निस तसबो नौरंग केरो।-वही, रा 9, अंशु 50, अंक 15, पृ • 3729

(ज)चारु मुकर इक रुक धर्यो आगारे।-वही, रा 7, अंशु 35, अंक 6, पृ • 3195

(झ)कर बोजना ले पौन झुलावै।-वही, रा 2, अंशु3, अंक 49, पृ • 1657

(ट)बृध पोता तबि चंवर ढुरावै।वही- रा 6, अंशु 54, अंक 6, पृ • 3011

546-(क)देग, कराहे, बड बररोहे ।-वही, रा 1, अंशु 4, अंक 3, अंशु पृ 1319

(ख)तहिं लोटा निज पर्यो निहारा।-वहोरा 1, अंशु 58, अंक 36, पृ • 1575

(ग)'गागर में जल ल्याउ हुलासे'।-वहो, रा 1, अंशु 38, अंक 30, पृ • 1478

(घ)कलस भरे सुंदर जल आने।-वही, रा 6, अंशु 18, अंक41, पृ •2859

(ड)कर तूंबे जल पीवनहारे।-वहो-रा 11, अंशु 47, अंक3, पृ • 4151

(च)माटो के बासन हुइ सारे।-वहो, रा 1, अशुं 10, अंक 11, पृ 1346

(छ)कंचन थारा ।— वही, रा 7, अंशु 62, अंक 30, पृ • 3306

(3) बैठने औरसोने के उपकरण[547] :- चौकी, थड़ा, पर्यंक, आसन, पोढ़ा, खाट, तकिया, चटाई।

(4) लिखने के उपकरण[548] :- कलम (लेखनी), कागज, मसि, पत्र पत्रया पाती।

(5) रंग[549] :- पीले , श्वेत, इत्यादि ।

6- कला, शिल्प और विज्ञान

कला : कला से तात्पर्य यहां ललित कला से हैं। ललित कलाए भावाभिव्यक्ति के प्रभावशाली माध्यम होने के साथ हीकिसी देश की उच्चस्तरीय अभिरुचि भावना तथा सांस्कृतिक परंपरा कोपरिचयक हुआ करती है।ललित कलाओं के दृष्टिकोण से 'गुरु प्रताप सूरज' में कलात्मक पुर्नजागरण उसके चरम विकास और उसके माध्यम से सांस्कृतिक समन्वय की अभिव्यक्त का निरूपणहुआ है। इस ग्रंथ में वर्णित सिक्ख संस्कृति के उन्नायकों ने जहां सार्वजनिक निर्माण कार्यो के माध्यम से अपनी कलात्मक अभिरुचि को व्यक्त किया वहां मुगल बादशाहों ने भी भवन-निर्माण की कला में अन्य कलाओं की अपेक्षा अधिक रुचि दिखाई । भारतीय कला विलास की परंपरा सिन्धु सभ्यता से विकसित होकर मुग़ल काल में अपने विकास पर पहुंची । मुगल काल में कला मस्जिदों, महलो, मकबरों, स्मारकों आदि

547- चंदन चौकी सुजनि डसाई।-गु॰ प्र॰ सू॰ रेन।, अंशु 46, अंक 29, पृ॰ 6194
(ख)थडो बनावहु रुचिर प्रकारे।-वही, रा ।अंशु 57, अंक 8-10, पृ॰ 1568
(ग)पुन प्रयंक पर करहिं आराम।वही, रा 1, अंशु 19, अंक 19, पृ॰ 1347
(घ)धर्यो मृदुल सुंदर उपधानु।-वही रा 4: अंशु 52, अंक 39, पृ॰ 2444
(ड)सफ शतरंजी त्यार सु ठाना।-वही, रा 3, अंशु 59, अंक 5, पृ॰ 2179
548-(क)कागद करि के खाम को दीनहु सिख्य पठाइ।-वही, रा2, अंशु4 7अंक।पृ॰।830
(ख) सुनति लिखारी कागद लिखे।-वही रा4, अंशु 42, अंक 19, पृ॰2404
549- (क)पंतगी सु रंगा।-वही, रा 6, अंशु 41, अंक3, पृ॰ ~~26~~ 2961
(ख)पोशिश पीत ज़री जुत छाजे ।-वही, रा 4, अंशु 42अंक 26, पृ॰ 2405
(ग)सेत बसत्र तन पर धरैं ।-वही, रा 1, अंशु 30 , अंक 20, पृ॰ 1441

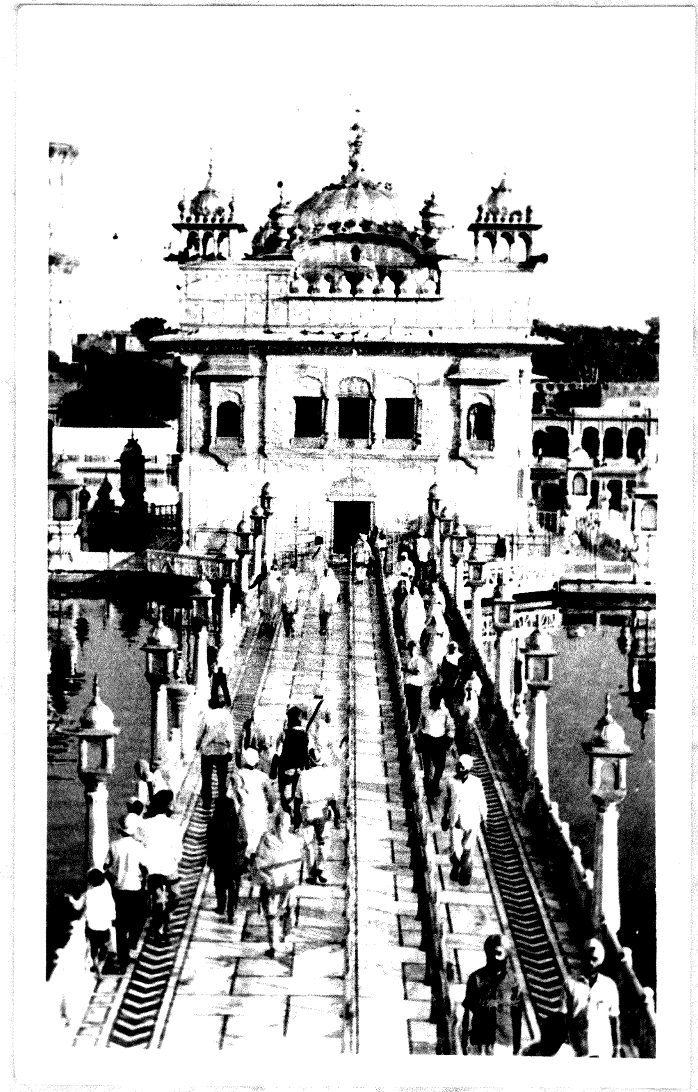

हरिमन्दिर अमृतसर

के बनाने में विकसित हुई। उधर गुरु साहिबान ने भी इस ओर अपनी रुचि को हरिमन्दर आदि के निर्माण द्वारा व्यक्त किया । इस तरह स्थापत्य कला के विकास के साथ अन्य ललित कलाएं भी विकसित हुई जैसे संगीत, मूर्तिकला, चित्र कला, नृत्य और नाट्य कला, काव्यकला। इन सभी कलाओं के विषय में 'गुरु प्रताप सूरज' में पर्याप्त संकेत मिलते हैं ।

(1) वस्तु कला : 'गुरु प्रताप सूरज' में वास्तु-निर्माण निर्माण के विविध रूपों के दृष्टिकोण से मन्दिर , महल, और बावली आदि के निर्माण सम्बन्धी उल्लेख मिलते हैं। गुरु अमरदास ने गोइंदवाल में बावली का निर्माण[550] किया तो गुरु रामदास ने 'गुरु के चक्क'[551] के निर्माण के साथ अमृत-सरोवर[552] की नींव रखी और गुरु अर्जुन देव ने हरि-मन्दिर के निर्माण[553] कार्य को पूरा किया। इन कार्यो के अतिरिक्त भवनों के निर्माण कार्य में 'छज्जों'झरोखों(गवाक्ष)[554] और खिडकियों के होने की बात भी इस ग्रंथ मे निरुपित[555] हैं। वास्तु कला की दृष्टि से गुरु साहिबान द्वारा निर्मित भवनों को देखकर सुरमुनि भी मोहित होते थे[556] । कलश निर्माण कार्य यदि सिक्ख संस्कृति का अभिव्यक्त करता है तो मुगलों द्वारा बनाई गई मस्जिदों आदि के गोल गुम्बर्ज मुस्लिम संस्कृति के प्रतीक हैं ।

550- 'तीर्थ रच्यो गुरु भगवन्तु '।

- गु॰ प्र॰ सू॰ रा1, अंशु 51, अंक 10, पृ॰ 1541

551- वही रा 2, अंशु 12, अंक 19, पृ॰ 1689

552- वही , रा 2, अंशु 13, अंक 4, पृ॰ 1691 तथा अंशु 14, पृ॰ 1695

553- 'हरि मंदर इस रीति बनावहु। चार द्वारचहुं दिशन रखावहु।। 4 ।।

× × ×

तिस पर रुचिर बंगला थपहि। कंचन ते चहुदिश महिं दिपहि'

× × ×

सुंदर सर की बनी सुपान। बाही चारहुं कोन समान।

-वही, रा 2, अंशु 53, अंक 4-47, पृ॰ 1855-1859

554- वही, रा 5, अंशु 6 अंक 26, पृ॰ 2536

555- वही , रा 1, अशुं 41, प 13, पृ॰ 1492

556- वही, रि 2, अंशु 43, अंक 4 पृ॰ 4878

(2) मूर्तिकला : इस काल में यद्यपि हिन्दुओं को मन्दिरों को गिरा कर मुसलमान शासकों ने मस्जिदें बनाने[557] का कार्य आरंभ किया हुआ था ।भक्ति आन्दोलन और मुस्लिम आक्रमणों को मूर्तिकला विरोधी दृष्टि ने इस कला को इतना विकसित न होने दिया जितना वास्तुकला का विकास हुआ है।

(3) चित्र कला : मुग़ल काल में चित्रकला को विभिन्न शैलियों को उन्नति हुई। धार्मिक दृष्टि से मन्दिरों में पौराणिक भिति चित्रों की रचना विविध कलाकारों द्वार होती रही थी। राजभवनभी चित्र कला की वैभवता को प्रदर्शित करते हैं ।मुगल चित्र अधिकतर साधारण दरबारी जीवन, शिकार, जन्तुओं के मनोरंजन युध्द, ऐतिहासिक घटनाओं , पशु, पक्षियों आदि से सम्बन्धित थे ।इधर गुरु साहिबान द्वाराबनवाये गए हरिमन्दिर आदि को दीवारों पर धार्मिक चित्रों का अंकन उनकी चित्र कला सम्बन्धी अभिरुचि का द्योतक[558] है। इसके अतिरिक्त नदौड के भवन को बैठकों में भी चित्रकला को झलक देखी जा सकती[559] है।

(4) संगीत कला : आरम्भिक मुस्लिम दरबार जब शास्त्रीय धर्मान्धता से अभिभूत नहीं थे ,तो इसकला को आश्रय मिलता रहा और यह विकसित होती गई । परन्तु औरंगजेब के राज्य को शास्त्रीय धर्म का आधार दिया गया।फलतः उसने इस कला को ऐहिक जीवन से सम्बध्द मानकर अपने दरबार से उसका बहिष्कार कर दिया । जब संगीतकारों ने संगीत का 'जनाज़ा' निकाला तो उसने संगीत का दफ्नाने को आज्ञा दे दी।संगीत कला दफ्नाई तो क्या जाती ?फलतः उसे अन्य मार्ग का आश्रय लेना पड़ा ।परन्तु गुरु साहिबान के काल में संगीत कला की पर्याप्त उन्नति[560] हुई।गुरु अर्जुन देव जी द्वारा सम्पादित आदि ग्रंथ की सम्पूर्ण सम्पादकीय योजना राग-रागिनियों पर आधारित है। उन के दरबार में प्रतिदिन कीर्तन

557- याते इहां मसीम बनावहु।सुंदर दर तिम हो रखवावहु।। ।3 ।।
-गु · प्र · सू · रा 6, अंशु 45, पृ · 2976

558- चित्रति चांमो करते चारु।चारओर महि चमक निहार।
-वही, रा 2अंक 15 पृ · 1866

559- वही, रि · 2अंशु 43 अंक 4, पृ · 4878

560- बजति म्रिदंग रबाब उदारो ।चारु सितार, दुतार, सिरंदा ।
बजहि ताल मिलि देति अनंदा।।-वही, रि 3, अंशु 2अंक 9-10, पृ ·4921

होता था । रबाबी आकर आसा की वार आदि काकीर्तन किया करते थे[561] । गुरुसाहिबान स्वयं संगीत के निष्णात पंडित थे । उनके लिए संगीत मनोरंजन का साधन न होकर आध्यात्मिक उद्देश्य से अनुप्राणित था जोकि पूर्णताया भारतीय संस्कृति के दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करता है। जो बहुत उचे स्तर का था । उन काकाव्य भारतीय संगीत शास्त्र को एक महत्वपूर्ण देन है।

(5) नृत्य और नाट्य कला : संगीत कला के तीन अंगों में --गायन, वदन, नर्तन (नृत्य) में प्रथम दो अंगों का विवरण तो गुरु दरबारों में होने वाले संगीत सम्बन्धी कार्य क्रमो रबाबियों के द्वारा कीर्तन में मिल जाता है परन्तु नृत्य कला का तो शाही दरबारों और अमीरो वजीरो के मनोरंजन के लिए उपयोग होने के कारण इस के अल्प संकेत मिलते हैं । औरंगजेब से पूर्व के बादशाहों के दरबार में तो वेश्यों के नृत्य आदि के संकेत मिलते हैं परन्तु औरंगजेब ने सिंहासन सम्भालते ही सभी वेश्याओं को जमना में डिबो देने का प्रयन्त किया क्योंकि वह नृत्य और गायन आदि का शौकीन नहीं था तथा इन्हें अपने धर्म के अंनुकूल नहीं[562] मानता था ।

ग्रामों में लोक नृत्य के विकास की झलक हीजड़ों[563] के मांगलिक अवसरों पर आकर नाचने आदि के उल्लेखों से मिलती है। विवाह आदि के अवसर पर स्त्रियों के नृत्यों आदि का भी 'गुरु प्रताप सूरज' में संकेत मिलता है[564]।

561- गु॰ प्र॰ सू॰ रा ।, अंशु 10, अंक 7, 17, पृ॰ 1345-47

564- वही रि 2, अंशु 49, पृ॰ 4909

563- नाचहि हीज गाइसुख रचहिं, जाचहिं धन, माचहिं निजखेल।
ढोलक टलकाघुंघरु तो तालो ताल मिलाई/ भवाली मेलि ।
हाथनि भावउ सारति शारति बारति वधु, डारति बहु बेल।
बैठति कबहुं अमैठ ति अंगन, मौह अमैठति, पैठति पेल।। 2 ।।
— वही रा 3, अंशु 6, पृ. 1914

562- बाज हि संख न फिरहि दुहाइ ।। 16 ।।
वही- रा 9, अंशु 2पृ॰ 3641

नाट्य कला को किसो विशेष झांको का यद्यपि 'गुरु प्रताप सूरज' में उल्लेख नहों है तथापि 'नट' का प्रयोग अनेक स्थानो पर[565] हुआ है। स्वांग[566] भरने और उनके जलूस निकालने को बात भो इस में वर्णित है। आसाम के राजा रत्नराय केउपहारों मेंकटपुतली का[567] भो उल्लेखहुआ है। जो गुरु गोबिन्द के मनोरंजनार्थ भेजी गई थो । नाट्य कला के विकसितविकसित न हो सकने का प्रमुख कारण तत्कालीन औरंगजेब जैसे शरा के कट्टर अनुयायियों को धार्मिक नीति थी ।

लोक गीत तथा लोक जीवन के चित्र : लोक गोतों के अन्तर्गत 'सद' के गायन का उल्लेख 'गुरु प्रताप सूरज में हुआ है। विवाह आदि – मांगलिक अवसरों पर लोक गोतो के गाने, जन्मोत्सवों तथा अन्य खुशी के अवसरों पर 'सोहले' और[568] अनंदु' नामक वाणो के गाने की प्रथा के निर्देश 'गुरु प्रताप सूरज' में मिलते हैं ।

लोक गोतों के अतिरिक्त तत्कालीन लोक जीवन के प्रकाशक अन्य दृश्यों में से पनघट से सम्बन्धित उल्लेख भो इस ग्रंथ में मिलता है। पानो भरकर मटको को सिर पर लाद कर ले जाने के चित्र इस[569] में अकित हैं।

कहना न होगा कि ये उल्लेख अल्प होते हुए भो जन जोवन को सुसंस्कृत अभिरुचि तथा लोक जोवन और उसको संस्कृति का स्पष्ट चित्र उपस्थित करने में समर्थ हैं ।

(6) काव्य कला : गुरु कालीन काव्य कला का सम्बन्ध संगोत से बहुत घनिष्ठ था । गुरु साहिबान ने भक्ति पूर्ण गोतों और काव्य की विविध रूप विधाओं के अनुसार काव्य का सृजन उनके काल की महती उपलब्धि है। गुरु साहिबान के अतिरिक्त अन्य अनेक भक्त कवियों ने भी काव्य का सृजन किया ।'आदि ग्रंथ 'में गुरु अर्जुन देव ने

565-गु॰ प्र॰ सू॰ रा 1, अंशु 9, अंक 24, पृ॰ 1344 तथा
रा 6, अंशु 40, अंक 8, पृ॰ 5900

566- वही, रि 3, अंशु 29, अंक 26, पृ॰ 5098

567- वहो रि 1, अंशु 23, अंक 2, पृ॰ 4583

568- वहो रा 1, अंशु 59, अंक 19, पृ॰ 1577

569-वहो , रा 10, अंशु 6, अंक 6-7, पृ॰ 3790

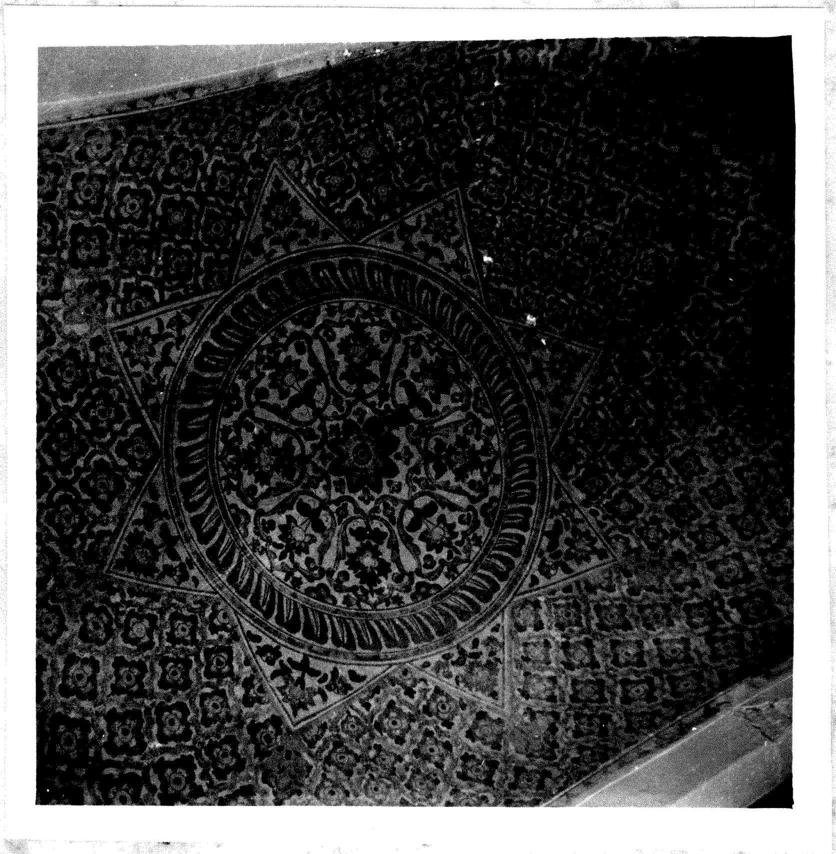

भाई सन्तोख सिंह युगीन चित्रकला

अपनी वाणीके अतिरिक्त अन्य भक्त कवियों की वाणी भी संकलित है। इस में गुरु नानक, गुरु अंगद, गुरु अमरदास, गुरु रामदास आदि के अतिरिक्त गुरु गोबिन्द केसमय में गुरु तेगबहादुर आदि की वैराग्यपूर्ण वाणी क भी सकलित संकलित की गई क है। गुरु गोबिंद सिंह की काव्य कला उनकी कृति — दशमग्रंथ में संकलित वाणी के अवलोकन से देखी जा सकती है। उनके दरबार के 52 कवियों[570] के अतिरिक्त भाई नन्दलाल की फारसी कविता भी तत्कालीन काव्यकला की[571] प्रतीक है।भाई गुरदास का वार-काव्य आदि ग्रंथ की कुंजी होने के कारण गौरव से मंडित सांस्कृतिक और पौराणिक काव्य है। इन काव्य ग्रंथों में काव्यकला की विविध रूप विधाओं के दर्शन किए जा सकते हैं ।काव्यकला के अपने शिखर पर पहुंचने की साक्षी 'गुरु प्रताप सूरज' की काव्य कला से मिलती है।

कला के प्रति दृष्टिकोण : 'गुरु प्रताप सूरज' में वर्णित एवं संकेतिक उक्त कला-विलास पर्यवेक्षण से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सांस्कृतिक दृष्टि से सभी कलाओं में देशी और विदेशी तत्वों का सामंजस्य हुआ है। समस्त ललित कलाओं में वस्तु परकता और अलंकरण की बाहुलता सामान्य समन्वय सूत्र की भान्ति व्याप्त है। तत्कालीन अलंकारिकता की प्रवृति काव्य कला तक ही सीमित न रह कर अन्य कलाओं को भी प्रभावित करती है।

भाई सन्तोख सिंह के अपने युग में विकसित हुई कलाओं का दर्शन कैथल में बने महलों , राज दरबारों की दीवारों पर अंकित हुई चित्रकारी औरमन्दिरों आदि से किया जा सकता है।राजमहल के एक धड़े की छत का चित्र संलग्न है। जहां बैठ कर महाकवि सन्तोख सिंह गुरु कथा किया करते[572] थे । काव्यकला की उत्तमता सम्पन्नता और सांस्कृतिक दृष्टि से महानता के दर्शन उनकी इस उत्कृष्ट कृति 'गुरु प्रताप सूरज' में से किए जा सकते हैं।उसकी अलंकारिकता अपने युग का प्रतिनिधत्व करती है। विभिन्न कलाओं के वर्णन सेकवि के असाधारण ज्ञान का परिचय मिलता है जो उनकी बहुज्ञता पर प्रकाश डलता है।

570-गु प्र॰ सू॰ रि 5, अंशु 52, अंक 1,पृ॰ 5725

571- वही , रि 3,अंशु 27, अंक पृ॰ 5090

573- यह चित्र लेखक को कैथल निवासी महन्त सन्त सिंह (गुरुद्वारा अन्दरूनी तेग-बहादुर सेठां वाला मुहल्ला,कैथल) के सौजन्य से उपलब्ध हुआ ।

शिल्प :

'गुरु प्रताप सूरज' में तत्कालीन शिल्प कला की उन्नति के चित्र भी मिलते हैं । हिन्दू शिल्पकार तो विभिन्न प्रकार कीधातुओं में से पीतल आदि के बर्तन बनाते थे। और हिन्दू समाज मेंउनकी उपयोगिता के अनुकूल अपनी कला प्रदर्शित करते थे परन्तु मुस्लिम संस्कृति के सम्पर्क से तत्कालीन युग में विभिन्न नगरो में मिटटी आदि के बर्तन भी बनाये जाने लगे थे ।वस्त्र उद्योग में जुलाहों के शिल्प कला के संकेत भी 'गुरु प्रताप सूरज' मेमिलते है।मुसलमानशासकों के वस्त्रों के शैकीन होने के कारण रंगीन , रेशमी और सोने चान्दी जैसी धातुओं के जरी केधागों क से कटाई बुनाई केकार्य से वस्त्र उद्योग की उन्नति उस समय विशेष रूप में हुई । लाहौर मे ऐस बहुमूल्य वस्त्रों के विक्रय की दुकाने थी । ग म ग्रामों में भी कुछ जुलाहे वस्त्र बुनते थे । औरते बारीक सूत के वस्त्र बनाती थी । खेस की बुनाई विशेष रूप में होती थी[5 74] ।

इसके अतिरिक्त चित्रकला एवं भवन निर्माण कला के चित्र ह हरिमन्दिर के वर्णन मे देखे जा सकते हैं ।

विज्ञान

साधारणतया गणित, ज्योतिष, आयुर्वेद आदि के अतिरिक्त भौतिक, रसायन, वनस्पति, प्राणि, भूगर्भ आदि शास्त्रों की गणना 'कविज्ञान ' के अन्तर्गत की जाती है। 'गुरु प्रतापसूरज' में ज्योतिष शास्त्र ,आयुर्वेद आदि का कई स्थानों पर उल्लेख हुआ है। भाई सन्तोख सिंह जी ज्योतिष शास्त्र के प्रकांड पंडित थे ।उन्होंने अपने इस ग्रंथ का नामकरण भी सूर्य की राशियों, वर्ष की विभिन्न ऋतुओं, दक्षिणायन, उत्तरयण आदि के अनुसार किया है। 'ज्योतिष का मुख्य कार्य जन्म पत्र आदि बनाना, लग्नफल बताना, विभन्न कार्य संस्कारों और मंगल कार्यो के अवसरों पर उनके लिए 'शुभ मुहूर्त शोधना आदि कहा जाता है। संवत्, तिथि, वार, पक्ष(शुक्ल - कृष्ण) घड़ी पहर आदि की गणना

-

5 74- द्रष्टव्य : इसी अध्याया का श्रमजीवी श्र श्रमजीवी 'शीर्षक'

का उन्होंने कई स्थानों पर उल्लेख किया है।[575] शिशु गुरुओं के जन्म अवसरों पर उनके भविष्य कथन में नक्षत्र, लग्न, उच्च और नीच ग्रहों आदि का उल्लेख भी भाई सन्तोख सिंह ने किया है। जन्म कुंडली के बनाने के संकेतों के अतिरिक्त इस ग्रंथ में सामुद्रिक ज्योतिष के भी संकेत मिलते हैं। जैसे श्री अमरदास के पैरों में 'पद्म रेखा' देखकर दुर्गा पंडित उनकी ऐश्वर्य सम्पन्नता राजा या चक्रवर्ती सम्राट होने का संकेत करता है। बीबी भानी की सगाई के लिए विप्र (ज्योतिषी) को बुलाने और शुभ मुहूर्त के उल्लेख का भी प्रसंग इस ग्रंथ में वर्णित है।

ज्योतिष शास्त्र के अनेक पारिभाषिक शब्दों का उल्लेख भी गुरु प्रताप सूरज' में हुआ है।[576] वस्तुतः भारतीय ज्योतिष शास्त्रीय ज्ञान में बहुत अधिक उन्नति की थी जिस से उनके विदेशित फलों का सत्यता सभी को प्रभावित करती थी।

ज्योतिष के अतिरिक्त आयुर्वेद[577] के संकेत भी 'गुरु प्रताप सूरज' में मिलते हैं। जड़ी बूटी, रसायन चन्दन आदि सम्बन्धि निर्देश यद्यपि अल्प मात्रा में मिलते हैं तथापि इन से जन साधरण की आस्था का पता चलता है।

575-(क) गु॰ प्र॰ सू॰ रा 1, अंशु 14, अंक 16-17, पृ॰ 1368

(ख) वही, रा 1, अंशु 41, अंक 23, पृ॰ 1493

(ग) वही, रा 5, अंशु 64, अंक 12, पृ॰ 2764

(घ) वही, रा 7, अंशु 32, अंक 30, पृ॰ 3186

(ङ) वही, रि 1, अंशु 11, अंक 16, पृ॰ 4536

(च) माघ मास, पख पाछलो, चौथ तिथी, भ्रिगुवार।

भले लगन गृह उचिक तबि जन्मयों पुत्र उदार।। 24 ।।

-वही रि 2, अंशु 38, पृ॰ 4855

576-(क) वही, रा 3, अंशु 5, अंक 33-34, पृ॰ 1913

(ख) वही, रि 3, अंशु 5, अंक 33, पृ॰ 4937

577-(क) वही, रा 9, अंशु 2, अंक 28, पृ॰ 3550

(ख) वही, रा 9, अंशु 47, पृ॰ 3718-19

(ग) वही, रि 1, अंशु 38, अंक 8, पृ॰ 4641

7- शिक्षा(शिक्षा केन्द्र, आदर्श शिक्षक, शिक्षक वर्ग, अध्ययन के विषय एवं साधन।

'गुरु प्रतापसूरज' में शिक्षा सम्बन्धी निर्देश पुष्कल मात्रा में नहीं मिलते हैं, फिर भी उनके आधार पर उसकी तत्कालीन दशा का सम्यक् रूपेण अनुशीलन किया जासकता है। उस समय मुगल शासन था और उन बादशाहों ने अपनी प्रजा की शिक्षा के सम्बन्धा कोई विशेष रुचि नहीं दिखाई थी । हिन्दुओं के मन्दिरों को गिराने के साथ साथ उनके शिक्षा केन्द्रों को भी उन्होंने नष्ट कर दिया था ।इसलिए राज्यकी ओर से शिक्षा की कोई व्यवस्थित और कानूनी ढंग मौजूद न था । आरम्भिक शिक्षा धर्मशालाओं में ग्रंथी [578], मन्दिरों में पंडित या मस्जिदों में मुल्ला मौलवी आदि उनसे सम्बन्धित छोटी छोटी गुरु शालाओं, पाठशालाओं और मदरसों में देते थे ।गुरुमुखी लिपि का उस समय प्रचलन हो चुका था परन्तु लोग शाही दरबारों में नौकरी की प्राप्ति केलिए उर्दू, फारसी और अरबी सीखने का प्रयास करते थे । गुरु अक्षर ज्ञान से लेकर समकालीन स्तर के अनुरुप शिक्षा देते थे । उच्चशिक्षा के अन्तर्गत अध्ययन कराये जाने वाले विषय व्याकरण वेद्यक, वेदशास्त्र और विविध दर्शनशास्त्रों की चर्चा विद्वत मंडलियों में होती थी [579]। ब्राह्मण वर्ग में उच्चशिक्षा की अवस्थिति परंपरागत रूप में किसी न किसी तरह से चली आती थी ।प्रारंभ मे बच्चे को पट्टी (तख्ती)तथा लेखनी द्वारा अक्षर ज्ञान कराया जाता था ।उस समय मकतब आदि भी उर्दू -फारसी के शिक्षा के लिए खुल हुए थे ।जहां काजी, मुल्ला आदि शिक्षा दिया करते थे ।पंडित वर्ग की विद्वता और शास्त्र ज्ञान को अहंकार प्रदर्शन के लिए अनुचित माना जाता था । गुरु साहिबान को शिक्षा व्यवस्था के लिए बाल गुरुओं को बाबा बुड्ढा तथा भाई गुरदास आदि आदर्श शिक्षक मिले हुए थे जो सर्व शास्त्रों के ज्ञाता थे [580] वे शास्त्र शिक्षा

578- ना• प्र• पू• अध्य• 8, अंक 5, वही अध्य• 6, अंक 8

579-वही, रा 1, अंशु 49, पृ• 1536

580- वही रा 3, अंशु 31, पृ• 2036

धनुर्विद्या[581], आयुधर्विद्या[582], तलवार चलाना, घोड़ सवारी करना[583] आदि भी सिखाते थे। यद्यपि गुरु साहिबान दैवी ज्ञानसे सम्पन्न थे तथापि शिक्षा के महत्व को भलि भान्ति जानते थे। गुरु तेगबहादुर ने बाल गुरु गोबिन्द सिंह की शिक्षा के लिए शिक्षक नियुक्त किए थे। गुरु गोबिन्द सिंह पंजाबी, हिन्दी संस्कृति, उर्दू, फारसी आदि भाषाओं के सफल साहित्यकार थे। उनके पास नन्दलाल जैसे फारसी अरबी के पंडित भी रहते थे और संस्कृत के पंडित तथा कवि तो उनके दरबार की शोभ थे। उन्होंने संस्कृत और विभिन्न शास्त्रों के ज्ञान के लिए अपने सेवकों को काशी भी भेजा था। शास्त्र ज्ञान के लिए उनके दरबार में अनेक शिक्षक थे।

निष्कर्ष

पूर्ववर्ती पृष्ठों में 'गुरु प्रतापसूरज' में प्रतिबिम्बित सामान्य जन जीवन के सांस्कृतिक उपकरणों को जो विवेचन किया गया है उससे प्रकट होता है कि उनका सर्वांगीण चित्र तो इस में प्रतिबिम्बित नही हो सकता है तथापि जन साधारण में सर्व प्रचलित उसके रूपों का सजीव चित्रण उस में वर्तमान है।

581- गु॰प्र॰सू॰रि 4, अंशु 40, पृ॰ 5373

582-(क) आयुध विद्या को अभ्यासू। नित कराइ गन जोधनि पासू।।

-वही, रा 5 अंशु 26, अंक 2, पृ॰ 2609

(ख) आयुध विद्या सिख्या हेतु।-वही, रा 5, अंशु 40, अंक 39, पृ॰ 2668

(ग) वही, रा 5, अंशु 63, अंक 22 पृ॰ 2761

(घ) वही, रा 7, अंशु 15, अंक 20, पृ॰ 3114

583- वही रा 3, अंशु 31, अंक 44-46, पृ॰ 2037-38

प्रस्तुत अध्ययन के दृष्टिकोण से 'गुरु प्रताप सूरज' का मूल्यांकन

प्रस्तुत अध्ययन के अन्तर्गत 'गुरु प्रताप सूरज' के समाज का जो निरूपण किया गयाहै। उस पर दृष्टिपात करने से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते है कि भले हो एतद्विषयक अभिव्यक्ति कुछेक शीर्षकों के अन्तर्गत कम हुई हो , तथापि जन जीवन को संस्कृति एवं समाज के अनेक महत्वपूर्ण उपकरणों का जितना सजीव और सूक्ष्म चित्रण उस में हुआ है उसका ऐतिहास एवं सांस्कृतिक महत्व है। 'गुरु प्रताप सूरज' में मध्यकालीन भारतीय जनता के सजीव चित्रण के साथ ही सामाजिक आर्थिक , राजनैतिक , पारिवारिक, आदि सभी परिस्थितियां प्रतिबिम्बित हैं । तत्कालीन भारतीय जनता को मर्मव्यथा तथा उसके प्रति भाई सन्तोख सिंह की हार्दिक सम्वेदना दोनों के स्वर 'गुरु प्रताप सूरज' में अधिक स्पष्टरूप से ध्वनित हैं । अतः इस में सन्देह नहीं कि मध्यकालीन भारतीय संस्कृति एवं समाज के अध्ययन के दृष्टि - कोण से इसका योगदान महत्वपूर्ण है । अतः यह स्वयं सिध्द है कि यह काव्य ग्रंथ मध्यकालीन संस्कृति एवं समाज का प्रतिबिम्ब मात्र हो नहीं प्रस्तुत करता, प्रत्युत गुरु साहिबान द्वारा उसके उन्नयन के महत्प्रयास का भी द्योतक हैं जो वस्तुतः कहीं अधिक महत्वपूर्ण है ।

अष्टम् अध्याय

उपसंहार

'गुरु प्रताप सूरज' - इतिहास और भारतीय संस्कृति का दर्पण - मूल्यांकन

अष्टम् अध्याय

उपसंहार - 'गुरु प्रताप सूरज' - इतिहास और भारतीय संस्कृति का दर्पण-मूल्यांकन

प्रवेश

'गुरु प्रताप सूरज' मध्यकालीन सिख गुरु इतिहास और भारतीय संस्कृतिक का दर्पण एवं आकार ग्रंथ है। भाई सन्तोख सिंह भारतीय इतिहास के हृदय के ही प्रकाशक कवि नहीं अपितु भारतीय संस्कृतिक के संस्कारक मनीषी भी है । इन दोनों के संतुलित सामंजस्य एवं मणिकांचन संयोग ने इस के प्रणेता को जन-हृदय के राजसिंहासन पर अनन्तकाल के लिए आसीन कर दिया ।उनके कमनीय काव्यकला जहां 'गुरु प्रताप सूरज' के पद्यों में नाचती है वहां भारत की तत्कालीन भव्य संस्कृति उनके पात्रों के द्वारा अपनी मनोरम झांकी दिखाती है। कविता-कल्पद्रुम के कमनीय कोकिल रुप भाई संतोख सिंह का कूजन आज भी वरिष्ट गुरुद्वारों एवं गुरु धामों में अपने कथा-रस से आनन्द विभोर कर रहा है और करता रहेगा । इस में काव्य-रस से के साथ साथ भक्ति रस की सरस मधुर, स्निग्ध एवं पेय मन्दाकिनी प्रवाहित है। इस में तत्कालीन काव्य प्रवृतियों, युगीन चेतना, धार्मिक सहिष्णुता, राजनैतिक अराजकता आदि के अनेक मार्मिक चित्र अंकित है।

'गुरु प्रताप सूरज' हमारा जातीय इतिहास ही नहीं अपितु मानवता का धर्म-ग्रंथ भी है जिसका पठन-पाठन, श्रवण, मनन, सब प्रकार से हमारे लिए कल्याणप्रद है। इसका सांस्कृतिक मूल्य आज के महंगाई के युग में और अधिक बढ़ गया है। यह भारतीय तत्वज्ञान , धर्म, दर्शन और इतिहास सभी का विश्वकोश कहा जावे तो अत्युक्ति न होगी । इस प्रकार ऐतिहासिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक आदि अनेक दृष्टियों से गुरु प्रताप सूरज एक गौरव पूर्ण ग्रंथ है। जिसका पूर्ववर्ती अध्यायों में विश्लेषण किया गया है। भारत के सांस्कृतिक इतिहास में इस ग्रंथ का स्थान विलक्षण है। इस महाकाव्य के आकार की विराटता, विषयवस्तु की विशालता, सामाजिक चेतना की जागृति, गुरुओं का प्रवृतिमूलक व्यावहारिक जीवन-दर्शन, मानवीय एकता का सन्देश आदिअनेक विशेषताएं इसकी महत्ता

महिमा से अवगत करा रहा हैं। इसकी चिन्तन धारा के अनेक कवि प्रभावित हुए तथा इसके आलोक में अपनी कृतियों का सृजन किया । यह गुरु-इतिहास का उपजीव्य ग्रंथ है।

। - प्राचीन भारतीय वाङ्मय का 'गुरु प्रताप सूरज' में उल्लेख-प्रतिबिम्ब और उसका प्रभाव

'गुरु प्रताप सूरज' न केवल सिक्ख गुरुकालीन इतिहास और संस्कृति का दर्पण ही है अपितु इसे उनका कीर्ति स्तंभ कहा जाये तो कोई अत्युक्ति न होगी । इस काव्य-मुकर में से प्राचीन भारतीय वाङ्मय की झलक भी देखा जा सकती है। ग्रंथारंभ में ही उन्होंने 'गुरु-इतिहास' की आधारभूत सामग्री की छान बीन के संकेत के साथ साथ विविध ग्रंथों के अध्ययन का भी संकेत किया है।[1] उससे उनके अध्ययन की विशालता एवं गम्भीरता सूचित होती है। वे संस्कृत भाषा और साहित्य के ही प्रकांड पंडित नहीं थे अपितु उन्होंने अपने पूर्ववर्ती तथा युगीन हिन्दी साहित्य का भी पूर्णतया अध्ययन और अनुशीलन किया हुआ था । उनके 'गुरु प्रताप सूरज' में उन से पूर्व के भारतीय साहित्य के सुन्दर भाव सर्वथा परिष्कृत होकर प्रचुर परिणाम में गुम्फित हैं । उन्होंने भारतीय संस्कृति की एक वृहत् भूमिका के रूप में 'गुरु प्रताप सूरज' को हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है । यह एक ऐसी आधारशिला है जिस पर भाई सन्तोख सिंह ने भारतीय संस्कृति के भव्य भवन का नव-निर्माण किया है। वस्तुतः उन्होंने अपने पूर्ववर्ती भारतीय साहित्य की समस्त सुन्दरतम उपलब्धियों एवं बौदिक प्रक्रियों को इस में सम्पुटित कर दिया है। इस से उनके अध्ययन की विशालता तो सूचित होती है, साथ ही उनकी सार-ग्रहिणी प्रतिभा एवं अलौकिक परिष्कारिणी शक्ति का भी उद्घाटन होता है। वैदिक वाङ्मय , उपनिषद्-साहित्य, आदि काव्य 'रामायण तथा 'महाभारत' आदि की अनेक सूक्तियों एवं अनेक प्रसंगों का इसमें उल्लेख मिलता है। भारतीयता के प्रतीक एवं भारतीय संस्कृति के परिचायक हमारे पुराण-साहित्य की अनेक कथाएं इसमें सुनियोजित हैं। श्रीमद् भागवद्गीता तथा भागवत पुराण के अनेक विचारों की छाप इस में अंकित है। उपनिषद् साहित्य की व्याख्या इसके आध्यात्मिक दर्शन की निधि है। भारतीय दर्शन

1- गु॰ प्र॰ सू॰ रा॰ । अंशु 5, पृ॰ 1324

शास्त्रीय ग्रंथों का इस पर प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। दर्शन की आधारशिला पर प्रतिष्ठित धर्म-इसे व्यापक आध्यात्मिकता से अनुप्राणित करता है। इसमें गंगा और यमुना के सम्मिलन के समान दोनों का मधुर मिलन इस के परम सामंजस्य का सूचक है। यही सामंजस्यात्मक प्रवृत्ति भारतीय संस्कृति की इसकी अनुपम देन कही जा सकती है। तुलसी के 'रामचरित'मानस' को तो कवि का आदर्श ग्रंथ कहा जा सकताहै। उसकी समन्वयात्मकता की छाप इस में अंकित है। 'सूरसागर' के ब्रजभाषा लालित्य की व्यंजना इस की प्रत्येक पंक्ति में होती है। आदि ग्रंथ और दशम ग्रंथ में निरूपित 'गुरुमत दर्शन' के सिध्दांतों का प्रतिबिम्ब इस के प्रत्येक पृष्ठ पर देखा जा सकता है। सौ साखी, महिमा प्रकाश, गुर-बिलास आदि अनेक पूर्ववर्ती कृतियों का जहां इस रचना में प्रभाव परिलक्षित होताहै वहां यह ग्रंथ भी गुरु नानक सूर्योदय,(बाबा गणेशा सिंह); तवारीख गुरु खालसा (ज्ञानसिंह), सूरज प्रकाश चूरणिका(भाई हजारा सिंह), गुर पुर प्रकाश(प्रेम सिंह), गुरु नानक चमत्कार, कलगीधर चमत्कार, और अष्टगुरु चमत्कार(भाई वीरसिंह) ; सिक्ख रिलीजन(मैकालिफ) आदि अनेक सिक्ख इतिहास से सम्बन्धि ग्रंथों का उपजीव्य ग्रंथ रहा है। कनिंघम, मैकालिफ, श्री नारंग, इन्द्र भूषण बैनर्जी , श्री खजान सिंह, श्री सुर खुशवन्त सिंह, श्री गंडा सिंह आदि के इतिहास ग्रंथों में इस की सामग्री का उपयोग हुआ है। इस के अतिरिक्त इस ग्रंथ में एक साथ युध्द वर्णनों में सूदन, भयानक तथा रौद्र में भूषण, लालित्य में देव, अनुप्रास की छटा में पद्माकर एवं अभिव्यंजना में घनानंद कीसी भाषा का सा आनन्द प्राप्त होता है। इस में उक्त विख्यात कवियों की कृतियों का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है।

इस तरह से इस में प्राचीन वाङ्मय, रीति युगीन साहित्य और सिक्ख इतिहास से सम्बन्धित ग्रंथों की सामग्री का प्रतिबिम्ब मिलता है। सिख साहित्य के सर्वोत्तम ग्रंथ श्री गुरु ग्रंथ साहिब की वाणी की अनुपम व्याख्या , ज्ञान वैराग्य, कर्म और भक्ति का एक ही स्थान पर जैसा सुन्दर विवेचन इस ग्रंथ में मिलता है वैसा अन्यत्र शायद ही कहीं मिलेगा। वेद वेदांग, पुराण एवं धर्म शास्त्र के अध्ययन से जो ज्ञान प्राप्त होता है वह अकेले 'गुरु प्रताप सूरज' के अध्ययन से सहज ही प्राप्त हो सकता है। जिस प्रकार समुद्र और हिमालय वा पर्वत दोनों को ही रत्नों का आकर कहा गया है, उसी प्रकार यह ग्रंथ भी

उपदेश-रत्नों का खान कहा जाता है। यह एक ऐसा महाकाव्य है जिस में ज्ञान की हर बात को अपने में समेटने की कोशिश की गई है। समस्त भारतीय ज्ञान विज्ञान का यह विश्वकोश कहा जा सकता है।

२ - 'गुरु प्रताप सूरज' की भारतीय काव्य परंपरा को देन

'गुरु प्रताप सूरज' में भाई सन्तोख सिंह के व्यक्तित्व के जहां इतिहासकार और भारतीय संस्कृति के उपासक के रूप की झलक हल मिलतीहै वहां उनके भक्त और कवि रूप भी सहयोगी और पूरक रूप में आये हैं। यही कारण है कि जनसाधारण की आध्यात्मिक तृप्ति एवं साहित्यिक अभिरुचि के लिए जितनी सामग्री 'गुरु प्रताप सूरज' में विद्यमान है, उतनी अन्य किसी गुरु काव्य में उपलब्ध नहीं है। कविता उन्हें अपने इष्ट देव की भक्ति के प्रसाद के रूप में मिली है। वे प्रसाद का सदुपयोग लोकोपकार के लिए गुरु साहिबान की भक्ति साधना के रूप में ही करते हैं। उन्होंने अपनी सरस्वती का उपयोग अपने आराध्य देव गुरु साहिबान के प्रताप के गायन में ही किया है। यों तो इस देश में समय समय पर एक एक सुन्दर एवं प्रभावशाली गुर काव्यों का प्रणयन होता रहा है पर उन में से किसी एक ग्रंथ ने पंजाब की जनता को कदाचित ही उतना अधिक प्रभावित एवं आन्दोलित कि किया हो जितना कि 'गुरु प्रताप सूरज' ने।

भारतीय काव्य परंपरा का आरंभ वैदिक युग से होता है। वैदिक काव्य का धार्मिक दृष्टिकोण आगे आने वाली काव्य परंपरा में और अधिक स्पष्टता को प्राप्त होता है। इस दृष्टिकोण की व्यापक झलक हमें सर्वप्रथम भारतीय महाकाव्य बाल्मीकि रचित रामायण तथा व्यासदेव रचित महाभारत में मिलती है। इनमें आदर्श और यथार्थ का अनुपम निरूपण हुआ है। ये दोनों अ ग्रंथ भारतीय काव्य परंपरा को अपनी आख्यानक गहनता से परिचित कराते हैं। भाई सन्तोख सिंह के 'गुरु प्रताप सूरज' के तो ये दोनों उपजीव्य ग्रंथ रहे हैं। एक ओर बाल्मीकि रामायण के काव्यानुवाद को प्रस्तुत करते हुए भाई सनोति संतोख सिंह ने उससे अत्यन्त विस्तृत क्षेत्र को अपने काव्य में सन्निहित करने की प्रेरणा ली तो दूसरी ओर महाभारत की लोकप्रिय इतिवृत्तात्मक एवं वर्णनात्मक प्रणाली को ग्रहण किया।

यदि महाभारत में एक महान देश की विराट् संस्कृति की अभिव्यक्ति हुई है तो 'गुरु प्रताप सूरज' में उसका सम्पूर्ण वैभव प्रतिफलित हुआ है। भावना के क्षेत्र में भाई सन्तोख सिंह मानव अन्तरात्मा के अधिक निकट जाने में सफल हुए है, उन्होंने सूक्ष्मतम अंकन को प्रस्तुत किया । कालिदास के काव्यों की सार्वभौमिकता की तरह ही 'गुरु प्रताप सूरज' के काव्य की ख्याति भी विश्व के कोने कोने में पहुंच सकती यदि हिन्दी साहित्य के सहृदय आलोचक और शोधकर्ता इसके काव्य को गुरुमुखी लिपि से हिन्दी तथा अन्य भारतीय और विदेशी भाषाओं में रूपान्तरित करते । परन्तु अभी तक तो इसे देवनागरी के अक्षरों में भी रूपान्तरित नहीं किया गया है।[2] हिन्दी साहित्य के नये इतिहासों में भी अभी तक इसका उल्लेख बहुत कम हुआ है। इसकी उपमाएं कालिदास को भी भूला देने की समर्थता रखती हैं । इसके शब्द चयन की प्रौढ़ता भाषा की शिष्टता, अनुभूति की सत्यता और मार्मिकता एवं आलंकारिक शैली आगे आने वाले कवियों के लिए प्रेरणा की वस्तु बनी । भारवि (किरातार्जनीय) के अर्थगौरव की छटा किसी ने रीतिकालीन कवि के काव्य में देखनी हो तो वह इस के मंगलाचरणों का अध्ययन करें।[3] माघ के 'शिशुपाल वध' में यदि काव्य और दर्शन का समन्वय हुआ है, तो इस में काव्य, इतिहास और संस्कृति की त्रिवेणी प्रवाहित है। भवभूति की करुणा गुरु साहिबान के बलिदानों को पढ़ कर चीत्कार करती दिखाई देती है।

हिन्दी के पृथ्वी राज रासो के वीर रस की झलक, जायसी रचित पद्मावत की प्रबन्धात्मकता तथा सूर का पद लालित्य, तुलसी की समन्वयात्मकता, बिहारी का पांडित्य और उक्ति चमत्कार, घनानंद की भाषा-वक्रता, रवीन्द्रनाथ ठाकुर की आध्यात्मिकता एवं दार्शनिकता आदि सभ को यदि कोई एक स्थान पर देखना चाहे तो वह भाई सन्तोख सिंह के ऐतिहासिक और सांस्कृतिक चेतना से समन्वित इस ग्रंथ में देख कर, उनके राष्ट्र गौरव के अधिकारी बहुमुखी व्यक्तित्व की प्रशंसा किए बिना न रह सकेगा। उनका प्रवृत्तिमूलक जीवन दर्शन उनके काव्य की आत्मा बन कर आया है। उनका दृष्टिकोण

2- हाल ही में भाषा विभाग, पटियाला की ओर से इस ग्रंथ के हिन्दी रूपान्तर की प्रथम जिल्द डा• गोयल की भूमिका सहित प्रकाशित हुई ।

3- गु• प्र• सू• रा• 1, अंशु 1, अंक 8, पृ• 1273

उक्त कवियों से कहीं अधिक सांस्कृतिक है किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि उनका यह ग्रंथ उन्हें भारतीय काव्य परंपरा के ऊंचे कवियों में स्थान देता है। वे जहां रीतिकाल के तुलसी दास है वहां सांस्कृतिक विराटता के कारण संस्कृत के महाकवि व्यास हैं । उन्होंने देश की स्वाभाविक काव्य परंपरा को नवजीवन दिया है। उनका कवि व्यक्ति-स्वातन्त्र्य राष्ट्रीयता तथा मानवीयता को लेकर चलता है । वे सांस्कृतिक जीवन के प्रतीक है और उनका काव्यात्मक सन्देश किसी भी संकुचित सीमा से परे है ।

3 - ऐतिहासिक देन – तत्कालीन इतिहास का विश्वकोश

'गुरु प्रताप सूरज' भारतीय इतिहास पुराण शैली में लिखा गया एक काव्यमय इतिहास ग्रंथ है। इस में पंजाब के गुरुकालीन इतिहास के वैज्ञानिक विवरणों के अतिरिक्त मुग़ल इतिहास के उत्थान पतन की कहानी भी अंकित है। मुग़ल शासकों और गुरु साहिबान के परस्पर सम्बन्धों एवं उनके जन साधारण पर किए गए अत्याचारों की मार्मिक कहानी भी इस में अंकित है। जो हमें जागृति का सन्देश देती है। यह ग्रंथ गुरु इतिहास संबंधी अनेक शंकाओं का निराकरण करता है। जैसे कौलां का प्रसंग, दशमेश जी के सपुत्रों का नाम-क्रम, माता साहिब देवा का विवाह आदि। यह मुग़ल शासकों विशेषकर औरंगजेब के अत्याचारों की विस्तृत जानकारी देने वाला ग्रंथ है। मुग़ल शासकों की कूटनीति , औरंगजेब की नृशंसता एवं क्रूरता आदि के चित्र इस में सब से अधिक प्रामाणिक स्पष्टता को लिए हुए है। यद्यपि भाई सन्तोख सिंह के पास आधुनिक वैज्ञानिक छान - बीन के समस्त साधन नहीं थे तथापि उन्होंने सिक्ख इतिहास के विकीर्ण रूप को देखकर जितनी शक्ति से इसे एकत्रित कर काव्यमय रूप दिया है वह सदैव उनकी लगन का प्रतीक बना रहेगा । पंजाब के इतिहास के लेखक कनिंघम से लेकर आज तक सभी इतिहासकारों ने इसकी प्रामाणिकता एवं स्पष्टता के कारण इस की सामग्री ग्रहण की है। यह उनके लिए जहां सामग्री चयन का स्रोत रहा है वहां गुरु कालीन पंजाब के इतिहास और संस्कृति का विश्वकोश भी माना जाता है। मुगल शासन के विकास और उसकी अधोगति के अतिरिक्त अंग्रेजी शासन के आरंभ और उनकी विस्तारवादी नीति का भी इसमें

मार्मिक चित्रण मिलता है। किस प्रकार अंग्रेज अपने शासन की नींव सुदृढ़ कर रहे थे? किस प्रकार रियासतों को अपने राज्य में मिला रहे थे ?किस तरह अत्याचार कर रहे थे ?यदि यह सब कुछ जानने के लिए 'गुरु प्रताप सूरज' के अन्तिम पृष्ठों का अध्ययन कीजिए । कैथल के लूट की कहानी भी इसमें अंकित है। कैथल की रियासत की तरह ही उन्होंने अन्य रियासतों को भी अधीन बनाने का प्रयास किया ।

4 - सांस्कृतिक देन

'गुरु प्रताप सूरज' में धार्मिक भावना के प्राधान्य के कारण उसकी आध्यात्मिकता एवं दार्शनिकता की छाप प्रत्येक पृष्ठ पर देखा जा सकतीहै ।श्री अरविन्द ने अपने एक लेख में कहा है कि भारतीय संस्कृति का बौध्दिक पक्ष (Intellectual Mood) या उसका बौध्दिक उत्कर्ष महाभारत में प्रकट हुआ , नैतिक पक्ष(Moral Attitude) बाल्मीकि रामायण में अपने पूर्ण उत्कर्ष पर दिखलाई देता हैऔर भोगात्मक या पार्थिक पक्ष(Material aspect)कालिदास के काव्य में उल्लसित होता हुआ दिखाई देता है। चौथा पक्ष आध्यात्मिक पक्ष (Spiritual aspect)केविषय में उनका कथन है कि वह उक्त तीनों पक्षों का समन्वय कर सकता है परन्तु वह किसी युग विशेष की कृति के द्वारा प्रकट नहीं हुआ है, यद्यपि उसके आभास परवर्ती युगों के सांस्कृतिक और साहित्यिक प्रयत्नों में मिलते है।[4] 'गुरु प्रताप सूरज' में भारतीय जीवन के उक्त तीनों पक्षों के अतिरिक्त उस चतुर्थ अर्थात् आध्यात्मिक पक्ष की भी पूर्ण अभिव्यंजना हुई है। उसमें उक्त कवियों की रचनाओं से कहीं अधिक उल्लास ,स्वस्थता और निर्भीकता है जो उसे पूर्वोक्त भारतीय काव्य परंपरा से विच्छिन्न नहीं होने देती । उसकी भक्ति-भावना इतिहास-पुराण की कथा शैली, गुरुमत दर्शन की समन्वयात्मक प्रवृत्ति , गुरु साहिबान की अकाल पुरुष के अवतार होने की स्थापना ,विविध मतों की विचार धाराओं का सम्मिश्रण, उदात्त भावनाओं का संयोजित रूप, सत् और असत्, मंगल और अमंगल, शुभ

4- इण्डियन इन्हेरिटेंस भाग पहला, साहित्य, दर्शन और धर्म, भारतीय विद्या भवन, बम्बई, 1955, पृ• 110

और अशुभ, अनुकरणीय और त्याज्य, धर्म और अधर्म, पाप और पुण्य का विवेक, जन कल्याण के लिए उपदेशात्मकता, लोक संग्रह की भावना आदि उसका महत्ता को प्रतिपादित करते हैं ।

(1) भावात्मक एकता में योगदान

'गुरु प्रताप सूरज' के प्रणेता महाभाग भाई सन्तोख सिंह जी गुरु नानक तथा अन्य नौ गुरु साहिबान के अनन्य भक्त थे । उन्होंने अपनी भक्ति साधना के क्रम में ही अपनी इस अमर एवं अद्वितीय कृति का प्रणयन किया था । यही कारण है कि इस में गुरु भक्ति तत्व का ही प्राधान्य है। ~~उनके~~ भाई जी की सब से बड़ी विशिष्टता यह है कि वह अपने आराध्य के प्रति पूर्ण निष्ठा रखते हुए भी अन्य साम्प्रदायिक उपासकों की तरह संकुचित विचारधारा को निकट नहीं आने देते। यथार्थतः इस में प्रतिपादित विचारधारा साम्प्रदायिक संकीर्णताओं से मुक्त सार्वभौमिकता एवं सार्वकालिकता से अलंकृत है। उसका हृदय से लेशमात्र भी द्वेष नहीं है । वह परम उदार है। जीवन के सभी पक्षों का सन्तुलित चिन्तन उसकी एक अन्य विशिष्टता कही जा सकती है । जो जीवन की सफल यात्रा के लिए आवश्यक पाथेय भी है। वह जितनी व्यक्तिगत साधना एवं व्यक्तिमात्र के कल्याण के लिए है, उतनी ही लोककल्याण के लिए भी है । उसमें सर्वत्र लोक संग्रह और लोक मर्यादा का अत्यन्त व्यापक भाव विद्यमान है। इसका सांस्कृतिक एवं भावात्मक एकता मे योगदान सराहनीय है। यह मानवता में एकात्मकता स्थापित करती है। सभी धर्मावलम्बियों में एकता लाने का अद्भुत प्रयास करती है। नानक सम्प्रदायों की लोक विरोध-भावना पर बड़ी निर्भयता के साथ कठोर प्रहार कर परंपरागत भारतीयता के अनुकूल प्रेमपूर्ण भक्ति के यथार्थ स्वरुप को समाज के समक्ष ~~प्रस~~ प्रस्तुत करती है । गुरु साहिबान की शक्ति और शील का अत्यन्त ~~मनोहर~~ मनोहर एवं प्रभावोत्पादक रुप भारतीय जनमानस के समक्ष रख कर कवि ने एक अद्भुत और अलौकिक कार्य किया है। 'गुरु प्रताप सूरज' में प्रतिपादित भावनाओं के प्रचार-प्रसार से सब प्रकार की धार्मिक संकीर्णताओं और ~~भेद~~ भेद भावों की जड़ें उखाड़ दी जायेंगी ~~जाएंगे~~। भारतीय जनता में एक नवजीवन का संचार होगा और उस में नये साहस, नये बल, नयी आशा, नयी उमंग और नई स्फूर्ति का

का प्रवाह फूट पड़ेगा। प्रत्येक हिन्दू , सिक्ख और मुसलमान में भ्रातृभाव जाग उठेगा।

(2) भारतीय भाषाई एकता में योगदान

सिक्ख जगत में कवि-कुल-चक्र-चूड़ामणि भाई सन्तोख सिंह जी वैसी ही खा ख्याति ख्याति है जैसी हिन्दू जगत में भक्त कुल श्रेष्ठ गोस्वामी तुलसीदास जी की । उत्तरी भारत में गोस्वामी जी के 'रामचरित मानस' की तरह ही 'गुरु प्रताप सूरज' की लोकप्रियता है। तुलसीदास जी की तरह ही भाई सन्तोख सिंह जी भी भाषा-सम्राट कहे जा सकते है। भारतीय दर्शन, काव्यशास्त्र आदि विभिन्न विषयों म की तरह ही भाषा पर भी उनका अद्भुत अधिकार था । उस समय पंजाब के साहित्यिक क्षेत्र में पंजाबी के अतिरिक्त ब्रजभाषा अपनी सहज मधुरिमा एवं संगीतक्षमता के बल पर अपना अखंड साम्राज्य स्थापित कर चुकी थी । अतः उन्होंने इसी लोकप्रिय भाषा में साहित्य सृजन किया। उन्होंने जहां 'नानक प्रकाश' तथा गुरु प्रताप सूरज' आदि मौलिक काव्य ग्रंथों का ब्रजभाषा में प्रणयन किया वहां इसी भाषामें संस्कृत के आदि काव्य'बाल्मीकि रामायण' अमरकोश, तथा आत्म पुराण 'जैसे लोक प्रिय ग्रंथों का ब्रजभाषा में सफल अनुवाद भी प्रस्तुत किया । उन्होंने अन्य तत्कालीन भाषाओं से भी आत्मीयता स्थापित की थी और तत्कालीन राजभाषा फारसी के शब्द भंडार को भी अपने काव्य क्षेत्र में प्रविष्ट किया । वे भाषा के चुनाव में निराग्रही थे । वे संस्कृत के महत्व को भली भान्ति जानते थे परन्तु उसे ब्रज भाषा का स्थान नहीं देना चाहते थे । उस युग में संस्कृत लोक प्रचलित भाषा का स्थान ग्रहण भी कैसे कर सकती थी ? एक ओर मुग़ल शासकों का आतंक था तो दूसरी ओर जनता की अरुचि । अतः उन्होंने ब्रजभाषा के मनोहर जल प्रवाह में ही अपनी कविता-गंगा प्रवाहित की । इसके साथ ही साथ विविध प्रादेशिक बोक बोलियों के स्वाभाविक रूपों का भी अपने ग्रंथों में समावेश कर उन्होंने अपने लोकनायकत्व रुप के अतिरिक्त भाषाई एकता के पोषकत्व रुप को भी व्यक्त किया । उनकी लोक प्रियता का रहस्य इस ग्रंथ की समन्वित भाषा में निहित है ।

(3) राष्ट्र-निर्माण और सांस्कृतिक उत्थान में योगदान

'गुरु प्रताप सूरज' एक ऐसा महान् क्रान्तिकारी ग्रंथ है जो राष्ट्र को अपने स्वयं साहस और सदाचार के बल पर अत्याचारियों को विध्वंस कर जाग्रत होने की प्रबल प्रेरणा प्रदान करता है। भारतीय सांस्कृतिक परंपरा के आलोक में गुरु साहिबान के अलौकिक त्याग के आदर्शों पर चल कर लोक नेतृत्व की दिशा में प्रयत्नशील व्यक्तियों के लिए यह ग्रंथ सदैव अक्षय प्रेरणा का स्रोत बना रहेगा। भारत वर्ष एक विभिन्न धर्मों की सामेकित संस्कृति का देश है। अतः उसके सांस्कृतिक उत्थान में इस ग्रंथ का अद्वितीय योगदान रहा है।

इसके अतिरिक्त इस राष्ट्रीय महाकाव्य की एक विशेषता 'कौटुम्बिक महाकाव्य' होने में है। भाई जी ने पारिवारिक अर्थात् छोटी इकाइयों को क्रान्ति का माध्यम बना कर राष्ट्रीय चेतना का संचार किया है। 'गुरु प्रताप सूरज' में गुरु साहिबान के प्रति श्रध्दा का जो प्रबल आवेग है वह जन क्रान्ति या राष्ट्रीय संगठन का मुख्य आधार सिध्द हो सकता है। सामान्य जनता भावोपजीवी होती है और इस ग्रंथ में भाव-योग श्रध्दा के रूप में प्रचुर मात्रा में विद्यमान है। अतः राष्ट्र-निर्माण में इसका योग-दान अभूतपूर्व सिध्द हो सकता है।

(क) हिन्दू-सिक्ख एकता : भाई सन्तोख सिंह हिन्दू-सिक्ख एकता के सब प्रबल पोषक थे। उन्होंने इस एकता की स्थापना के लिए जहां हिन्दू-धर्म के द्युतिमान ग्रंथ वाल्मीकि रचित रामायण और अमरकोश का ब्रजभाषा (गुरुमुखी लिपि) में काव्या-नुवाद प्रस्तुत किया, वहां 'जपुजी टीका गरब गंजनी', 'गुरु नानक प्रकाश' और 'गुरु प्रताप सूरज' में समस्त भारतीय वैदिक, औपनिषदिक एवं पौराणिक वाङ्मय का सदुपयोग किया। इस तरह से दोनों धर्मों के साहित्य को निकट लाकर दोनों में एकता एवं अभिन्नता स्थापित की। "सिक्ख गुरुओं के जीवन चरित्र को हिन्दी के माध्यम से वर्णित करके उन्होंने एक ओर हिन्दुओं को उनके सन्देश एवं हिन्दुओं पर किए गए उपकारों से परिचित करवाया, तो दूसरी ओर इसे गुरुमुखी लिपि में लिख कर तथा उसमें रामायण, महाभारत एवं पुराणों के अनेक प्रसंगों का समावेश करके सिक्खों का

ध्यान उनकी और आकर्षित किया। इस प्रकार से हिन्दुओं एवं सिक्खों में कुछ समय से पृथकता एवं संघर्ष के जो अंकुर उभरने लगे थे, उनको उखाड़ निकालने का प्रयास किया।"[5] इस कार्य के द्वारा उन्होंने जहां गुरु भक्ति का प्रचार एवं प्रसारकिया वहां सिक्ख जनता के हृदय में भी अपनी पुरानी सांस्कृतिक सम्पत्ति के प्रति आदर की भावना को जन्म दिया। बाल्मीकि रामायण और नामकोश के काव्यानुवादों के आरंभ में भी वह गुरु वन्दना के पद्य लिखते हैं जिन्हें हिन्दू जनता पढ़ कर उनके उपकारों को याद करे और उनके प्रति कृतज्ञता की भावना प्रकट करें। क्योंकि उन्होंने हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए महान त्याग और बलिदान दिए हैं। जैसे :-

हिन्दु जनम हुइ जौन, गुर उपकार न लखि भजै।
अधम कृतघनी कौन, तिस ते धरे बिचारार ?[6]

इसी तरह नानक प्रकाश और गुरु प्रताप सूरज के मंगलाचरणों में हिन्दू देवी देवताओं की वन्दना के पद्यो द्वारा सिक्खों के हृदय में उनके लिए आदर की भावना जागृत की। गुरु साहिबान को विष्णु के अवतार रूप में चित्रित कर दोनों धर्मों में एकता स्थापित की।

(ग) <u>भाईचारे और एकता के सिद्धांतों का समर्थन</u> : 'गुरु प्रताप सूरज' में भाई संतोख सिंह ने नम्रता, सेवा, दया, सन्तोष, मैत्री भावना, मधुर भाषण, धर्म की किरत (कमाई) करना, बांट कर खाना (वंड छकणा) आदि अनेक भाईचारे के सिद्धांतों का (जिनका कि गुरु वाणी में भी बार बार उल्लेख आता है) एक सच्चे सिक्ख के लिए प्रतिपादन कर जहां समाज में सार्वभौम भ्रातृत्व की भावना को जागृत करने का भरसक प्रयास किया है वहां धर्म और अधर्म, अमीर और गरीब, राजा और प्रजा के बीच भेदभाव की दिवारों को भी गिराने का प्रयत्न किया है। इस सिक्ख धर्म के समाज में सब को रोटी, कपड़े और मकान की स्वतन्त्रता प्राप्त है। सब सिक्ख समान है। कोई एक दूसरे से श्रेष्ठ नहीं। इस धर्म का मुख्य उद्देश्य मानवता की सेवा है। इस में गृहस्थ जीवन की महानता प्रतिपादित

5- डा॰ जयभगवान गोयल : 'गुरु प्रताप सूरज' के काव्यपक्ष का अध्ययन, पृ॰ 294

6- गु॰ प्र॰ सू॰ ग्रं॰ प्र॰ पृ॰ 13।

है। नारी के प्रति आदर की भावना व्यक्त है।

गुरु साहिबान ने समाज में समानता और भ्रातृत्व के लिए 'लंगर' की प्रथा जारी की तथा सच्चे सिक्ख (गुरुमुख) के लिए पूर्वोक्त सेवा आदि गुणों के पालन के लिए सन्देश दिया। गुरु सेवा अथवा दीनदुःखी की सेवा को मोक्षप्राप्ति का साधन बताया । इस तरह के भाईचारे और एकता के सिध्दांतों का 'गुरु प्रताप सूरज' में गुरु साहिबान के उपदेशों में बड़ी सुन्दर शैली में निरूपण हुआ है। यदि समाजइन्हें मान कर चले तो समस्त भेद भाव शीघ्र समाप्त होकर आदर्श समाज की स्थापना हो सकती है।

(ग)आदर्श और यथार्थ का चित्रण : यह ग्रंथ लौकिक और पारलौकिक जीवन के सर्वोच्च आदर्शों का कोश होने के कारण आज भी हमें नैतिकता और सदाचार का पाठपढ़ा रहा है। इस में गुरमत दर्शन के अनुकूल प्रत्येक व्यक्ति के लिए ऐसे व्यावहारिक मानदंड निर्धारित किए गए है जिनके अनुसार वह अपना दैनंदिन व्यवहार संचालित कर सकता है। प्रभु नाम (सत्य नाम) को उठते बैठते , सोते जागते, दुःख और सुख में बसा कर मोक्ष प्राप्त कर सकता है। गुरु उपदेश के द्वार जीवन्मुक्ति को प्राप्त कर सकता है।इस में एक आदर्श गुरु ,आदर्श सिक्ख, आदर्श भ्राता(गुरु अर्जुन जैसा), आदर्शसेवक(श्री अमरदास)आदर्श गुरमुख(बाबा बुढा),आदर्श सन्त(रामकुंवर), परोपकारी भाई घनैया का भव्य चित्रण करके भाई सन्तोख सिं ने भारतीय जन मानस को मन्त्र मुग्ध कर दिया है।

इन आदर्श चरित्रों के अतिरिक्त दासू, दातू, पृथिआ, चन्दू, आदि अनेक रागद्वेष से परिपूर्ण मनमुखों के यथार्थ चित्र भी इस में अंकित हैं । इनके प्रति जहां उन्होंने हमारे मन में घृणा की भावना जागृत की है वहां उक्त आदर्श पात्रों के प्रति श्रध्दा की भावना जागृत कर आदर्श और यथार्थ का सुन्दर समन्वय किया है ।

(4) गुरु प्रताप सूरज का सांस्कृतिक सन्देश

भारतीय संस्कृति की अनेक विशेषताओं अमरता, उदारता, आस्तिकता, धार्मिक सहिष्णुता, समन्वय भावना, सर्वभूतहिताकांक्षा आदि के निरूपण द्वारा इसके सांस्कृतिक

सन्देश की सरलता से स्पष्ट किया जा सकता है ।

(क) अमरता : 'गुरु प्रताप सूरज' की मोक्षशास्त्र के रूप में भी महिमा किसी तरह भी कम नहीं दिखाई देता । मोक्षप्राप्ति के लिए गुरुमत प्रतिपादित 'नाम स्मरण' के सहज मार्ग का इस में प्रतिपादन हुआ है। नाम स्मरण के द्वारा साधक 'सचिआर' बन कर 'श्रवण, मनन, निदिध्यासन' की प्राप्ति के पश्चात् साक्षात्कार को सहज ही गुरु के उपेदश द्वारा प्राप्त कर सकता है। भाई सन्तोख सिंह ने समस्त भारतीय मतों से सार रूप में अच्छी बातों का संकलन गुरमत में करते हुए सब से उस की पृथकता को भी सिध्द करते हैं । इस तरह से यह ग्रंथ धर्म, दर्शन और भक्ति का पावन तीर्थराज भी सिध्द होता है। इस में स्वान्तः सुख के साथ लोक हित का अद्भुत समन्वय हुआ है । यह जनसाधारण को अमरता की प्राप्ति का सरल मार्ग दिखाने वाला महनीय धर्म ग्रंथ भी है और गुरु भक्तों को भवसागर से पार उतारने वाला जहाज़ भी । इस में प्रतिपादित विचारधारा ने ही हमें विदेशी आक्रान्ताओं के घातक प्रहारों के समय एवं विपरीत परिस्थितियों में रण में जूझ मरने और हंसते हंसते बलिवेदी पर चढ़ जाने का सन्देश दिया है।

(ख) उदारता : 'गुरु प्रताप सूरज' में हिन्दू - सिक्ख संस्कृति के अतिरिक्त मुस्लिम संस्कृति के विभिन्न सम्प्रदायों, उनके विचारों का भी उल्लेख हुआ है। भाई जी भारतीय धर्म और भारतीय संस्कृति के दृढ़निष्ठ अनुयायी थे परन्तु उनकी दृष्टि संकुचित नहीं थी उन्होंने उदारता के साथ काव्य धर्म का निर्वाह किया है। मुगल सम्राट औरंगजेब के पास गये गुरु गोबिन्द सिंह द्वारा भेजे गए 'जफरनामे' में यद्यपि उनके वचनों से फिर जाने की बात का ~~उल्लेख~~ उल्लेख है तथापि उस में भी कहीं साम्प्रदायिक संकुचितता की छाया नहीं ।भाई सन्तोख सिंह के इष्ट गुरु साहिबान ने सर्व धर्मों के प्रति उदारता का दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है तो उन्होंने भी अपनी विशालहृदयता को दिखाने में ~~क~~ कहीं भी संकोच नहीं किया है।मुस्लिम धर्मानुयायी अनेक पीर फकीर उनके गुरुपदेश को ग्रहण करते दिखाए गए हैं। इस से हिन्दू-मुस्लिम एकता की स्थापना के साथ पारस्परिक द्वेष की भावना को भी दूर करने की समर्थता इस ग्रंथ की महनीय विशिष्टता है। भाई सन्तोख सिंह सभी प्राणियों में व्याप्त अकालपुरुष को जानने का सन्देश देते हैं ।

(ग) आस्तिकता : भारतीय संस्कृति की आध्यात्मिकता एवं दार्शनिकता ने हमारे हृदयों में जगत नियन्ता परमेश्वर के प्रति दृढ़ विश्वास स्थापित किया हुआ है। 'गुरु प्रताप सूरज' में गुरु साहिबान को अकाल पुरुष अवतार रूप में कल्पित कर उनके उपदेश से जीवन सुधारने काअनुपम सन्देश सन्निहित है। उस में प्रतिपादित अकाल पुरुष का स्वरूप निर्गुण भी है और सगुण भी । और उसमें दोनों के समन्वित रूप का भी प्रतिपादन है। वे गीता के सन्देश की तरह ही साधु-जनों के हित के लिए अवतार ग्रहण करते हैं । गुरु गोबिन्द सिंह मुगल शासकों के अत्याचारों से पीड़ित जनता के त्राता के रूप में अवतरित होकर हिन्दुत्व की रक्षा करते हैं। उनके दो लाल धर्म रक्षा के लिए दीवारों में चुने जाते हैं तो दो रण में जूझ कर मरते हैं । इस समर्थता का रहस्य हमारी आस्तिकता में सन्निहित ।

(घ) धार्मिक सहिष्णुता : 'गुरु प्रताप सूरज' में वर्णित सत्यानुसन्धान की प्रवृत्ति जहां हमें धार्मिक ऐक्य की ओर अग्रसर करता है वहां हमें सभी जातियों के विभिन्न धर्मावलम्बियों को भी एकता के सूत्र में बांध कर मानवता के शाश्वत सिध्दांतों को मानने के लिए भी प्रेरित करती है। धर्म तो सभी मनुष्यों का एक है। इसे या सम्प्रदाय विशेष के अनुसार खंडशः नहीं किया जा सकता और जो खंडशः किया जा सकता है वह धर्म नहीं तथा-कथित धर्म के नाम पर लड़ने का बहाना मात्र है। यद्यपि मुगल शासकों ने धर्म परिवर्तन हेतु अनेक अत्याचार किए, प्रलोभन दिए परन्तु गुरु साहिबान ने अपने धर्म में दृढ़ रहते हुए उन्हें भी अपने बलिदानों से यही सन्देश दिया कि धर्म हमें एक दूसरे पर अत्याचार न करना नहीं सिखाता है अपितु हमारे हृदयों को आपस में मिलाने का एक साधन है। वास्तव में अलाह और राम में भेद नहीं है। गुरु साहिबान ने अपनी वाणी में जहां धर्मों के प्रति श्रध्दा व्यक्त की है वहां भाई सन्तोख सिंह ने उनके सन्देश को सामान्य जनता तक पहुंचाने का 'गुरु प्रताप सूरज' द्वारा सफल प्रयास किया है ।

(ङ) समन्वय भावना : 'गुरु प्रताप सूरज' की लोकप्रियता का रहस्य उसकी समन्वय भावना में ही सन्निहित है। इसमें सभी को अपने ही जीवन का प्रतिबिम्ब दृष्टिगोचर

होता है और अपने अपने काम एवं रुचि की पर्याप्त सामग्री उपलब्ध हो जाती है। इस में ज्ञान, योग और भक्ति आदि अनेक साधना पद्धतियों में भी समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया गया है। इस समस्त समन्वयात्मकता का निदर्शन उनके प्रतिपादित गुरुमत दर्शन में हुआ है। जिस में सभी मतों के तत्वों का सार संकलित किया गया है। नाम स्मरण के सहज भक्ति मार्ग में सभी का सैध्दांतिक समाहार दिखाई देता है ।

(च) सर्वभूतहिताकांक्षा : 'तेरे भाणे सरबत का भला' की अरदास करने गुरुमत के प्रकाशक इस ग्रंथ में भारतीय संस्कृति की सर्वभूतहिताकांक्षा (सर्वे सुखिनः सन्तु) का वर्णन हुआ है। इस में बुरा करने वाले का भी भला करने के लिए सन्देश दिया गया है । 'गुरु प्रताप सूरज' में इसी भावना के आधार पर विश्व बन्धुत्व (वसुधैव कौटुम्बकम्) की भावना को जागृत करने का प्रयास किया गया है। दीन दुखियों के प्रति करुणा, लौकिक अभ्युदय और पारलौकिक निःश्रेयस के लिए 'सेवा' के सिध्दांत का प्रतिपादन जाति-पांति की निरर्थकता , दया, क्षमा, मैत्री भावना, सन्तोष, परोपकार आदि मानवीय आदर्शों के प्रतिपादन द्वारा अमृतत्व की प्राप्ति का सन्देश इस ग्रंथ की एक अन्य विशिष्टता है ।

5 - निष्कर्ष :

इस तरह से 'गुरु प्रताप सूरज' के ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक मूल्यांकन का प्रयत्न किया गया है। अभी तक इसका समग्र रूप में न तो अंकन था और न ही मूल्यांकन । इन दोनों दिशाओं में प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में प्रयास किया गया है ।अतः इस दिशा में यह नवीन प्रयास कहा जायेगा ।'गुरु प्रताप सूरज' की महिमा की मूलभूत विशेषताओं के उद्घाटन से हमें उसकी महानता की झलक मिल सकती है। उसमें एक व्यापक अन्तर्निहित दार्शनिक निरूपण अपने लिए स्थान बना चुका है । यह निरूपण कवि की समन्वयशील विचारणा का परिणाम है।इस काव्यमय इतिहास के भीतर कवि ने नवीन सांस्कृतिक निर्माण का कार्य प्रचुर परिमाण में किया है ।

यह एक ऐसा रत्नाकर है जिससे चाहे जितने रत्न लिए जाएं पर वह कभी रिक्त नहीं हो सकता क्योंकि लिए गए रत्नों की जगह पर शीघ्र ही दूसरे रत्न नई चमक दमक के साथ प्रकट होकर पाठकों को विस्मय-विमुग्ध कर देते हैं। जो इस में जितना डूबा, जितना मग्न हुआ, वह इससे उतना ही श्रेष्ठ रत्न निकाल कर सुखी एवं सम्पन्न हुआ है।

(1) सांस्कृतिक पर्वों की चिरंतनता :

किसी भी महती साहित्यिक कृति के शाश्वत महत्व एवं चिरंतनता के मूल्यांकन का वास्तविक मानदंड यही है कि वह अपने परवर्ती काव्य औरजीवन को कहां तक अनुप्राणित एवं प्रभावित करती है। भाई जी का यह ग्रंथ भारतीय जन जीवन की भावनाओं एवं आकांक्षाओं को अपने में आत्मसात् किए हुए है। इस ने लोक जीवन में दृष्टिकोण की ऐसी समता एवं एकात्मकता स्थापित की है, जिसके समक्ष समस्त वैभिन्न्य एवं विरोधाभास तिरोहित हो गए हैं। इसकी महत्ता एवं सर्वप्रियता का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि इसके सदुपदेश की उपादेयता युवा-वृद्ध, स्त्री-पुरुष, गृहस्थ-संन्यासी, आसक्त-विरक्त सभी प्राणियों के लिए समान भाव से विद्यमान है। यथार्थतः भाई सन्तोख सिंह ने इस में भारतीय संस्कृति के सभी अंगों को स्पर्श किया है और उसके व वाङ्मय की समस्त सुन्दरतम उपलब्धियों को सम्पुटित कर दिया है।

(2) सत्यं, शिवं, सुन्दरम् का पावन तीर्थराज :

'गुरु प्रताप सूरज' इतिहास, संस्कृति और काव्य का ही पावन तीर्थराज नहीं है अपितु सत्यं, शिवं और सुन्दरम् का भी पावन तीर्थराज है। इस में वर्णित इतिहास में सत्यं, संस्कृति में शिवं और काव्य में सुन्दरम् का अद्भुत सम्मिश्रण इस ग्रंथ की महती विशेषता कही जा सकती है। ऐतिहासिक शोध के द्वारा भाई सन्तोख सिंह ने सत्यं की साधना में अपना तपोमय जीवन अर्पित किया। सत्यं के आधार पर शिवं और सुन्दरम् में जीवन की संस्कृति की परिणति दिखाने में ही भाई साहिब जी की काव्य साधना कृतार्थ होती है।

6 - हिन्दी साहित्य में इसका स्थान

यद्यपि हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रंथों में अभी तक भाई सन्तोख सिंह विरचित 'गुरु प्रताप सूरज' को गुरुमुखी लिपि में होने के कारण गौरवपूर्ण स्थान नहीं दिया गया है तथापि इसे हिन्दी में रुपान्तरित होते ही गौरवपूर्ण स्थान मिलने लगे गा । अनेक शोधकर्ता इस में संकलित सामग्री को अपने अध्ययन का विषय बना कर इसके गौरव को प्रकाशित करने के लिए प्रयत्नशील हो उठेंगे क्योंकि उन्होंने वाल्मीकि अ और व्यास आदि का तरह ऐतिहासिक महत्व का कार्य सम्पन्न किया है। आज तक समस्त संसार के विद्वानों एवं साहित्यकारों ने, ऋषियों एवं मुनियों ने, साधुओं एवं सन्तों ने, कवियों एवं आचार्यों ने, जीवन और अध्यात्म से सम्बन्धित जितनी रचनाएं प्रस्तुत की है उनमें 'गुरु प्रताप सूरज' का एक अपना विशिष्ट स्थान है। वस्तुतः इसमें भारतीय साहित्य की समस्त आध्यात्मिक चेतनाओं का अद्भुत सम्मिश्रण एवं सुसंबंध का प्रस्फुटन हुआ है। भाई सन्तोख सिंह जी ने इस में भारतीय जीवन की समस्त सांस्कृतिक चेतनाओं के सार तत्वों को सन्निविष्ट कर दिया है। प्राचीन भारतीय श्रुति-स्मृति, पुराण, इतिहास में जो जीवन सौंदर्य और चिन्तन का गाम्भीर्य बिकीर्ण था, उसे 'गुरु प्रताप सूरज' में समाहित एवं केन्द्रित कर दिया है। यही कारण है कि यह समस्त भारतीय जीवन को प्रभावित एवं आन्दोलित करने में सर्वथा सफल हुआ है। इसकी लोकप्रियता उत्तरी भारत में अमर हो उठी है। इस में हरी सरूप दास भल्ला, सुक्खासिंह आदि पूर्ववर्ती गुरु काव्यकारों की कृतियों का परिमार्जित एवं विकसित रुप उपलब्ध होता है। इसी एक रचना द्वारा भारत में गुरु भक्ति की धारा अप्रतिहत गति से प्रवाहित होती चली आ रही है। वस्तुतः गुरुकथा एवं भक्ति से सम्बन्धित काव्यों के विकास में 'गुरु प्रताप सूरज' का स्थान निर्विवाद रुप से सर्वोपरि है। 'गुरु प्रताप सूरज' में प्रतिपादित गुरुभक्ति के प्रचार-प्रसार ने मध्ययुगीन भारतीय हिन्दू जनता को उन प्रतिकूल परिस्थितियों में ऐसे विनम्र और निर्भीक व्यक्तित्व प्रदान किए जिन के बल पर वह अपने प्राचीन व्यक्तित्व, धर्म और संस्कृति को सुरक्षित रख सकी है ।

यह ग्रंथ हमारे सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन को प्रभावित करता चला आ रहा है। यह सार्वभौमिक दार्शनिक सिद्धांतों को प्रस्तुत करता है जिनका महत्व और उपयोग असाधारण है। जीवनरस से परिपुष्ट यह काव्य जहां ऐतिहासिक दृष्टि से मौलिकता का प्रतीक है वहां सांस्कृतिक दृष्टि से इसकी जीवन्तता केवल भारतीय काव्य को ही नहीं अपितु किसी भी देश का काव्य-कला को प्राणवान बना सकती है। भारतीय जन-जीवन के जागरण की इस मंगल वेला में हमारे विवेच्य कवि की देन अपनी उपादेयता, शकतीय तत्व-मुक्ताओं से भारतीय काव्य के प्रगति - पथ को और अधिक ज्योतिर्मय कर सकती है। इसके उपदेशात्मक विचार मानव हृदय के तारों को झनझाना देने का शक्ति रखते हैं।

'गुरु प्रताप सूरज' जीवन के मंथन का अमृत है। इस में कवि की साधना का पूरा विकास हुआ है। यह कवि की जीवन साधना की परिपूर्णता का प्रतीक है। इस विराट-काव्य ग्रंथ में भाई सन्तोख सिंह की संतुलित प्रतिभा का बहुमुखी चरमोत्कर्ष देखा जा सकता है। जो उन्हें उत्तरी भारत का महान सांस्कृतिक कवि और इतिहासकार सिद्ध करती है। यह अनगिनत कवियों और इतिहासकारों का प्रेरणा का अनन्त स्रोत और चिरंतन आदर्श है। इसका प्रभाव इतना व्यापक है कि उसका पूर्ण अध्ययन एक स्वतन्त्र शोध प्रबन्ध में ही संभव है। इस के सार्वदेशिक और सर्वकालिक महत्व का उद्घाटन तभी हो सकेगा जबइसका स्वदेशी और विदेशी भाषाओं में रूपान्तर और मूल्यांकन का प्रयास होगा। वैसे इस मंगलमय सूर्य के प्रकाश को और अधिक देर तक काले मेघ आच्छादित नहीं कर सकेंगे। ऐसा मेरा विश्वास है। अब शीघ्र ही हिन्दी साहित्य के प्रेमी इसके अपार माधुर्य, सीमातीत सौहार्द की भावना से इसकी ओर आकर्षित होंगें और राष्ट्रीय गौरव के अधिकारी कवि भाई सन्तोख सिंह की इस अनुपम देन की सराहना करेंगे।

परिशिष्ट

1- 'गुरु प्रताप सूरज' की ऐतिहासिक काल क्रमणिका

2- प्रमुख सहायक ग्रंथ (हिंदी, पंजाबी, संस्कृत, अंग्रेजी तथा उर्दू)

परिशिष्ट - 1

'गुरु प्रताप सूरज' की ऐतिहासिक कालक्रमणिका

संवत्	विषय	संदर्भ संकेत
1526	श्री गुरु नानक देव जी का जन्म	(ना॰ प्र॰ पू॰ अध्या॰ 3, अंक 71)
1561	श्री गुरु अंगद देव जी का जन्म	(गु॰ प्र॰ सू॰, फुटनोट, पृ॰ 1332)
1567	" " "	(गु॰ प्र॰ सू॰ रा॰ 1, अंशु 7, अं॰ 8पृ॰ 1332)
1591	श्री गुरु रामदास जी का जन्म	(महान कोश पृ॰ 775)
		(गु॰ प्र॰ सू॰ रा॰ 1, अंशु 41, अंक 2, पृ॰ 1491 में शुद्ध संवत् 1581)
1596	श्री गुरु अंगद देव जी को गुरु-गद्दी प्राप्ति	(गु॰ प्र॰ सू॰ रा॰ 1, अं॰ 7, अं॰ 3, पृ॰ 1332)
1605	श्री पृथिआ का जन्म	(वही, रा॰ 1॰ 41॰ 20, पृ॰ 1493)
		(वही, रा 4, अंशु 27, अं 1, पृ॰ 2335)
1607	श्री महादेव जन्म	(वही, रा॰4, अंशु 22, अं॰28, पृ॰2317)
1608	" " "	(वही, रा॰1, अंशु41, अं॰ 22, पृ॰1493)
1609	श्री गुरु अंगददेव जी का देहावसान	(वही, रा॰ 1, अंशु 7, अं॰13, पृ॰ 1333),
		(वही, रा॰ 1, अंशु28, अं॰ 50, पृ॰1434)
1609	श्री गुरुअमरदासजी को गुरु-गद्दी प्राप्ति	(वही, रा॰ 1, अंशु 7, अंक13, पृ॰ 1333)
1610	श्री गुरुअर्जुनदेव जी का जन्म	(वही, रा॰1, अंशु41, अं॰22, पृ॰ 1493)
1631	श्री गुरु अमरदास जी का देहावसान	(वही, रा॰1अंशु 7, अंक29पृ॰ 1334)
1631	श्री गुरु रामदास जी कोगुरु-गद्दी प्राप्ति	(वही, रा॰1, अंशु7अंक30, पृ॰ 1334)
1638	श्री गुरु रामदास जी का देहावसान	(वही, रा॰1, अंशु 7, अंक36, पृ॰1335)
		(वही, रा॰2, अंशु25, अंक1, पृ॰ 1744)
1638	श्री गुरु अर्जुन देवजी को गुरु-गद्दी-प्राप्ति	(वही, रा॰1, अंशु 7, अंक36, पृ॰1335)
1651	माता गंगा जी को पुत्रवती होने का वरदान	(वही, रा॰3अंशु3, अंक20, पृ॰1899)

1652	श्री हरिगोबिन्द जी का जन्म	(वही, रा·3, अंशु4, अंक24, पृ·1906)
1652	छिहरटा साहिब बसाया	(गु·प्र·सू·रा· 3, अंशु4, अंक24, पृ·1906)
1661	आदि ग्रंथ का सम्पादन	(वही, रा·3अंशु48, पृ·2131 का फुटनोट)
1662	श्रमहादेव परलोकगमन	(गु·प्र· सू· रा·4, अंशु22, अंक29, पृ·2317)
1663	पृथिआ का देहावसान	(वही, रा·4, अंशु 27, अंक2, पृ·2335)
1663	श्री गुरु अर्जुनदेव जी का देहावसान	(वही, रा· 1, अंशु7, अंक42, पृ·1336)
1663	श्री गुरु हरिगोबिन्द जी को गुरु-गद्दी-प्राप्ति	(वही, रा·1· 7· 42·पृ·1336तथा पृ·2395दे)
1678	श्री गुरु तेगबहादुर जी का जन्म	(वही, रा· 12, अंशु 13, अंक29, पृ·4273) (रा·5अंशु63, अंक35, पृ · 2762में संवत् 1669हैजो अशुध्द है।तथा फुटनोट, 2762पृ)
1683	धीरमल का जन्म	(वही, रा·6, अंशु57, अंक10, पृ·3024)
1685	अटलराय परलोक गमन	(वही, रा·6, अंशु58, अंक49, पृ·3032)
1689	श्री गुरु तेगबहादुर का विवाह	(वही, रा·8, अंशु6, अंक 13, पृ·3331) (खालसा तवारीख में संवत् 1686दिया है।)
1692	बाबा गुरदित्ता परलोक गमन	(गु·प्र·सू·रा·8, अंशु38, अंक35, पृ·3457) (भाई वीरसिंह के अनुसार1695, फु·पृ3457)
1695	श्री गुरु हरिराय जी को गुरु-गद्दी-प्राप्ति	(वही, रा·1, अंशु8, अंक6, पृ·1336)
1701	श्री गुरु हरिगोबिन्द का देहावसान	(वही, फुटनोट, पृ · 3528) (गु ·प्र· सू·रा· 1, अंशु8, अंक6, पृ· 1336 में 1695तथा रा· 8, अंशु59, अंक 35, पृ · 3528में 1600 दिया है, दोनों अशुध्द है।)
1713	श्री गुरु हरिकृष्ण जी का जन्म	(वही, रा·10, अंशु54, अंक30, पृ·3967)
1718	श्री गुरु हरिराय जी का देहावसान	(वही, रा·1, अंशु8, अंक13, पृ·1337)
1718	श्री गुरु हरिकृष्ण जी को गुरु-गद्दी-प्राप्ति	(वही, रा·1, अंशु8, अंक13, पृ·1337)
1721	श्री गुरु हरिकृष्ण जी का देहावसान	(वही, रा·1, अंशु8, अंक15, पृ·1337), वही, रा·10, अंशु55, अंक1, पृ· 3968)

1723	श्री गुरु गोबिंद सिंह जी का जन्म	(गु॰ प्र॰ सू॰ रा॰12, अंशु13, अंक30, पृ॰4273-74)
1732	श्री गुरु तेगबहादुर जी का देहावसान	(वही, रा॰1, अंशु22, अंक22, पृ॰1338),
		(वही, रा॰12, अंशु65, अंक36, पृ॰4472)
1732	श्री गोबिंदसिंह जी को गुरु-गद्दीप्राप्ति	(वही, रा॰1, अंशु8, अंक12, पृ॰1338)
1743	श्री अजीत सिंह का जन्म	('जन्म क्रम के लिए द्रष्टव्यपृ॰4888-90)
1747	श्री जोरावर सिंह काजन्म	(रि॰2, अंशु44, अंक33, पृ॰4887)
1753	श्री जुझार सिंह का जन्म	(द्रष्टव्य, पृ॰4888 का फुटनोट)
1755	श्री फतेह सिंह का जन्म	(रि॰2, अंशु50, अंक37, पृ॰ 4913)
1755	देवी का प्रकट करना	(रि॰3, अंशु29, अंक1, पृ॰5056
1765	श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी का देहावसान	(वही, रा॰1, अंशु8, अंक35, पृ॰1339)
1900	गुरु प्रताप सूरज ग्रंथ की समाप्ति	(वही, ऐन2, अंशु36, अंक35-41पृ॰6411-14)

परिशिष्ट- ।।

प्रमुख सहायक ग्रन्थ

हिन्दी ग्रन्थ सूची

1- अरस्तु का काव्य शास्त्र — सं॰ डा॰नगेन्द्र, दिल्ली, 2014 वि॰ हिन्दी अनुसन्धार परिषद्।

2- अशोक के फूल — डा॰ हजारी प्रसाद द्विवेदी, इलाहाबाद, 2017वि लीडर प्रेस

3- अष्टछाप काव्य का सांस्कृतिक मूल्यांकन — डा॰ माया रानी टण्डन, लखनऊ।

4- आधुनिक हिंदी महाकाव्यों का शिल्प विधान — किशोर श्याम नंदन, आगरा, 1963, सरस्वती पुस्तक सदन

5- आधुनिक हिंदी काव्य में नारी भावना — शैल कुमारी इलाहाबाद, 1957, हिन्दुस्तान एकेडमी।

6- उतर भारत की संत परंपरा — श्री परशुराम चतुर्वेदी, प्रयाग, 2009 वि लीडर प्रेस।

7- उतर वैदिक समाज और संस्कृति — राव विजय बहादुर, वाराणसी, 1959, सरस्वती मन्दिर

8- कबीर — डा॰हजारी प्रसाद दिवेदी, बम्बई, 1942 ई॰ हिंदी रत्नाकर कार्यलय

9- कबीर : एक विवचन — सरनाम सिंह शर्मा, दिल्ली, 1960, हिंदी साहित्य संसार।

10- कबीर का रहस्यवाद — रामकुमार वर्मा, इलाहाबाद, 1941, साहित्य भवन लिमि॰

11- कबीर की विचारधारा — गोबिन्द त्रिगुणायत, कानपुर, द्वितीय संस्करण, 2014, वि॰सा॰ नि॰

12- कबीर साहित्य का परख — परशुराम चतुर्वेदी, प्रयाग, रतन प्रकाशन मन्दिर, 2011वि॰ भा॰भं॰

13- काव्य दर्पण — रामदहिन मिश्र, पटना, 1951, ग्रंथ माला कार्यालय।

14- कुरुक्षेत्र एक सांस्कृति परिचय बाल कृष्ण, दिल्ली, 1965, दिल्ली विश्वविद्यालय

15- कामायनी में काव्य संस्कृति और दर्शन — द्वारिका प्रसाद, आगरा, 1963, विनोद पुस्तक मन्दिर।

16- कवि कालिदास के ग्रंथों पर आधारित तत्कालीन भारतीय संस्कृति — डा॰ गायत्री वर्मा, वाराणसी, 1963, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय

17-कादम्बरी : एक सांस्कृतिक अध्ययन । — डा॰ वासुदेव शरण अग्रवाल, वाराणसी, 1958, चौखम्बा विद्याभवन

18- गुरुमुखी लिपि में हिंदी काव्य । — डा॰ हरिभजन सिंह, दिल्ली, भारतीय साहित्य मन्दिर ।

19- गुरु नानकप्रकाश (सन्तोख सिंह) — सम्पादक डा॰ जयभगवान गोयल, भाषा विभाग पटियाला।

20- गुरु -विलास(सुक्खसिंह) — " " "

21- गुरु ग्रंथ दर्शन — डा॰ जयराम मिश्र, इलाहाबाद, 1960, साहित्य भवन, प्राई॰ लिमि॰

22- गुरु-प्रताप-सूरज के काव्य पक्ष का अध्ययन । — डा जय भगवान गोयल, कुरुक्षेत्र, 1966, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय।

23-गोस्वामी तुलसीदास — रामचन्द्र शुक्ल, बाराणसी, 2015वि॰ नागरी प्रचारिणी सभा

24- तुलसीदास : चिंतन और कला — डा॰ इन्द्रनाथ मदान, दिल्ली, राजपाल एण्ड सन्ज़

25- तुसली दर्शन — बलदेव प्रसाद मिश्र, प्रयाग, पंचम् सं॰2005, हिंदी साहित्य सम्मेलन

26- तुलसीदास — डा॰ माताप्रसाद गुप्त, प्रयाग, दि॰ सं॰ 1946, प्रयाग विश्वविद्यालय

27- तुलसी और उनका युग — डा॰ राजपति दीक्षित, बनारस, 2001, वि॰ ज्ञान मंडल ।

28- तुलसी दर्शन मीमांसा — डा॰ उदय भानुसिंह, लखनऊ, विश्वविद्यालय, सं॰ 2018, वि॰

29- दशम ग्रंथ पौराणिक पृष्टभूमि — डा॰ रत्नसिंह जग्गी, दि दिल्ली, भारतीय साहित्य मन्दिर

30- धर्म शास्त्र का इतिहास — काणे महामहोपाध्याय, लखनऊ, हिन्दी समिति ।

31- निर्मल संतों की हिंदी साहित्य को देन — डा॰ हरिभजन सिंह, पटियाला, 1961, भाषाविभाग द्वारा प्रकाशित

32- निगुर्ण साहित्यः सांस्कृतिक पृष्टभूमि — डा॰ मोतीसिंह, काशी, 2019 वि॰ नागरी प्रचारिणी सभा ।

33- पुराण विमर्श — आचार्य बलदेव उपाध्याय, वाराणसी, 2021, वि॰ चौखम्बा, विद्याभवन

34- पौराणिक साहित्य और
संस्कृति आचार्य भास्करानंद, लोहनोशास्त्री, लखनऊ, 1963, रामा प्रकाशन

35- प्राचीन भारतीय साहित्य
को सास्कृतिक भूमिका डा• रामजी उपाध्याय, इलाहाबाद, 1965, लोकभारती प्रकाशन

36-बौध्द दर्शन तथा अन्य
भारतीय दर्शन(दो भाग) भरत सिंह लखनऊ, 1965, रामा प्रकाशन

37- भारतीय संस्कृति डा• बलदेव प्रसाद मिश्र, प्रयाग, 1952, रामनारायण लाल

38- भारतीय संस्कृति प्रो• बलदेव कृष्ण , दिल्ली , ओरियण्टल बुक डिपो

39- भारत का मुग़लइतिहास कृपालसिंह नारंग, दिल्ली, धनपत राय एण्ड सन्स

40, भारतवर्ष का सामाजिक
इतिहास डा विमल चन्द्र पांडेय, इलाहाआद, हिन्दुस्तानी एकेडेमी।

41- भारतीय साहित्य और
संस्कृति हरिदत्त, दिले, 1959, मुंशीराम मनोहरलाल 1

42 भारतीय संस्कृति का विकास वैदिक और औपनिषदिक धारा-मंगल देव शास्त्री, बनारस ।

43- भारतीय संस्कृति विशदत ज्ञानी, दिल्ली, 1944, राजकमल प्रकाशन

44- भारतीय शिष्टाचार मिश्र, रामनारायण, काशी, 2017, वि• नागरी प्रचारिणी सभा।

45- भरतीय चित्र कला गेरोला, वाचस्पति इलाहाबाद, 1963, मित्र प्रकाशन

46- भारतीय कला और
संस्कृति को भूमिका भगवत शरण उपाध्याय, दिल्ली, रणजीत प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स

47- भारतीय ज्योतिष श्री नेमीचन्द्र जैन, काशी, दि• सं 1960, भारतीय ज्ञानपीठ

48- भारतीय दर्शन बलदेव उपाध्याय, वारसणसी, सप्तम् सं• 1966, शारदा मन्दिर

49- भारतीय सभ्यता तथा
संस्कृति का विकास बी• एन• लूनिया, आगरा, सम्सत् सं• 1968, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल

50, भारतीय संस्कृति काइतिहास स्कन्द कुमार, दिल्ली, 1955, मोतीलाल बनारसी दास

51- भारतीय संस्कृति और
उसका इतिहास डा• सत्यकेतु विद्यालंकार, मसूरी, चतुर्थ सं• 1968, सरस्वती सदन

52- मध्यकालीन धर्मसाधना डा• हजारी प्रसाद दिवेदी, इलाहाबाद, 1962, साहित्य भवना

53- मध्यकालीन प्रेम साधना परशुराम चतुर्वेदी, इलाहाबाद, 1961, साहित्य भवन, प्राई• लिमि ।

54- मध्यकालीन भारत का संक्षिप्त इतिहास — ईश्वरी प्रसाद, 1957, इंडियन प्रेस, (पब्लिकेशन) प्राई॰ लिमि॰

55- मध्यकालीन हिन्दी काव्य में भारतीय संस्कृति — मदनगोपाल गुप्त, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।

56- रीतिकाल की भूमिका — डा॰ नगेन्द्र, दिल्ली, तृतीय सं॰ नेशनल, पब्लिशिंग हाउस।

57- रामायण कालीन संस्कृति — डा॰ शान्ति कुमार, दिल्ली, 1958, सत्य साहित्य प्रकाशन

58- रामायण कालीन समाज — नानूनाम व्यास, दिल्ली, 1958, सत्साहित्य प्रकाशन

59- वैदिक साहित्य और संस्कृति पं॰ बलदेव उपाध्याय, वाराणसी, 1958, दि॰ सं॰ शारदा मन्दिर

60- सिक्ख इतिहास — ठाकुर देशराज, सर्गारिया, 2011, वि॰ ग्रामोत्थान विद्यापीठ

61- संस्कृति के चार अध्याय — रामधारी सिंह दिनकर, दिल्ली, 1956, राजपाल एण्ड संज़

62- संस्कृति संगम — क्षिति मोहन सेन, इलाहाबाद, दि॰ सं॰ 1952, साहित्य भवन लिमि।

63- सगुण साहित्य सांस्कृति भूमिका — रामनरेश वर्मा, काशी, 2020, नागरी प्रचारिणी सभा।

64-साकेत में कावय संस्कृति और दर्शन — डा॰ द्वारिकाप्रसाद सक्सेना, आगरा, 1966, विनोद पुस्तक मन्दिर

65- साहित्य और संस्कृति — देवराज, वाराणसी, 1958, नंदकिशोर।

66- हिंदी साहित्य की भूमिका — डा॰ हजारी प्रसाद दिवेदी, बम्बई, 1963, हिन्द ग्रंथ रत्नाकर

67- हिंदी की निर्गुण काव्यधारा और उनकी दार्शनिक पृष्ठभूमि डा॰ गोबिन्द त्रिगुणायत, कानपुर, 1961, साहित्य निकेतन

68- हिंदी साहित्य का वृहत इतिहास (भाग 1-6) — काशी, नागरी प्रचारिणी सभा।

69-क हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय — डा॰ पीताम्बरदत बड़थ्वाल, लखनऊ, 2007, अवध पब्लिशिंग, आउस

70- हिन्दुत्व — रामदास गौड़, काशी, 1995, वि॰ शिवप्रसाद, गुप्त सेवा उपवन

71- हिन्दी साहित्य का इतिहास रामचन्द्र शुक्ल, काश, 1997 वि॰ नागरी प्रचारिणी सभा

72- हिन्दी साहित्य — डा॰ हजारी प्रसाद द्विवेदी, दिल्ली, 1956, अत्तरचंद कपूर एण्ड संज़

73- हिन्दी साहित्य कोश — सं॰ डा॰ धीरेन्द्र वर्मा, बनारस, 2015, वि॰ ज्ञान, मंडल लिमिटेड

74- हिन्दु सभ्यता — डा॰ राधाकुमुद मुकर्जी (अनु॰) श्री वासेदवे शरण अग्रवाल, दिल्ली, 1958, राजकमल प्रकाशन, प्राई॰ लिमि ।

पत्र पत्रिकाओं की पुरानी फाइलें

1- आलोचना : हिंदी राजकमल प्रकाशन

2- नागरी प्रचारिणी पत्रिका नागरी प्रचारिणी सभा काशी ।

3- भाषा : केंद्रीय हिन्दी निदेशालय, दिल्ली ।

4- साहित्य सन्देश , आगरा ।

5- सम्मेलन पत्रिका : हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग ।

6- कल्याण : गीता प्रेस , गोरखपुर । (विभिन्न विशेषांक)

7- परिशोध : (हिन्दी) पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़ ।

8- माध्यम : हिन्दी साहित्य सम्मेलन , प्रयाग ।

9- हिन्दुस्तानी : हिन्दुस्तानी एकेडेमी , इलाहाबाद ।

संस्कृत ग्रन्थ सूची

1- अर्थ शास्त्र — कौटिल्य , पंडित पुस्तकालय, काशी, 1909

2- अग्निपुराण — 1957, आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रंथावली

3- अमरकोश (अमरसिंह) — खेमराज श्री कृष्णदास, बम्बई, 1929, वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस ।

4- अथर्व वेद — श्री रामशर्मा, मथुरा , 1960, गायत्री तपोभूमि

5- उपनिषद् साहित्य — (शंकराभाष्य) गोरख पूर, गीता प्रेस

6- ऋग्वेद (हिंदी अनुवाद) — श्री राम शर्मा , मथुरा 1960 , गायत्री तपोभूमि

7- काव्यादर्श — 1928, भांडारकर प्राच्य विद्या मन्दिर

8- काव्यालंकार सूत्र वृति — (वामन) (हिन्दी) सं॰ डा॰ नगेन्द्र , दिल्ली, 1954, आत्माराम

9- काव्यप्रकाश (मम्मट) — (हिन्दी) डा॰ सत्यव्रतसिंह बनारस -1, 1955, चौखम्बा विद्याभवन

10- काव्य मीमांसा (राजशेखर) — (हिंदी) व्याख्याकार डा॰ गंगा सागर राय, ~~बना~~ वाराणसी, ।

11- किरातार्जुनीय(भारवि) बनारस, 1952, चौखम्बा, संस्कृत सीरीज़ ।

12- ध्वन्यालोक(आनंदवर्धन) (हिंदी) सं॰ डा॰ नगेन्द्र, वाराणसी, 2019, वि॰ ज्ञान मंडल लिमिटेड

13- नाट्य शास्त्र(भरत) बटुकनाथ उपाध्याय, 1929

14- नैषधचरित(श्रीहर्ष) टीकाकार पं॰ केदारनाथ शर्मा, बनारस, वि 2007, चौखम्बा

15- पुराण साहित्य वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई ।

16- भारतस्य सांस्कृतिक निधिः उपाध्याय, रामजी, 1958, गांधी विश्व परिषद्

17- भक्ति सूत्र(नारद) ग्यारह वा संस्करण 2020, गीता प्रेस गोरखपुर

18- श्रीमद्भगवद् गीता गोरखपुर अष्टम् संस्करण गीता प्रेस ।

19- मनुस्मृति(मनुमहाराज) टीकाकार श्री हरगोबिंद शास्त्री, वाराणसी, दि सं॰ 2021, वि चौखम्बा संस्कृत सीरीज़ आफिस

20- महाभारत गीता प्रेस गोरखपुर

21- यजुर्वेद सं॰ श्रीराम शर्मा, 1960, मथुरा गायत्री तपोभूमि

22- योग दर्शन(पतंजलि) व्याख्याकार श्री हरिकृष्ण दास गोयन्दका, गोरखपुर, 2023, गीता प्रेस

23- रामायण(बाल्मीकि) गीता प्रेस गोरखपुर ।

24- राजतरंगिणी(कल्हण) सं॰ पं॰ रामतेज शास्त्री काशी, 1960 पुस्तकालय

25- वक्रोक्तिजीवितम् सं॰ डा॰ नगेन्द्र दिल्ली, 1955, आत्माराम एण्ड संज़

26- वेदान्त दर्शन गोरखपुर प्रथम संस्करण, 2020, वि गीता प्रेस गोरखपुर

27- संस्कृत साहित्य विमर्श पं॰ द्विजेन्द्र नाथ शास्त्री, मेरठ, 2013, वि॰ भारती प्रतिष्ठान

28- साहित्य-दर्पण(विश्वनाथ) टीकाकार पं॰ शालग्राम शास्त्री, बनारस, 1956, मोतीलाल बनारसीदास

29- हर्षचरित(बाणभट्ट) (हिंदी) टीकाकार जगन्नाथ, बनारस, प्रथम संस्करण 1958, चौ॰ वि॰

पंजाबी ग्रंथ सूची

1- आदि ग्रंथ(शब्दार्थ) अमृतसर, शिरोमणि गुरुदंवारा प्रबन्धक कमेटी ।

2- कवित सवैये भाई गुरुदास, अमृतसर, शिरोमणि " "

3- गरब गंजनी ज्ञानी खजान सिंह, प्रकाशक, नई दिल्ली, 1530/15

4- गुरु शब्द रत्नाकर, महानकोश श्री कानसिंह, भाषा विभागव पटियाला।

5- गुरु मत प्रभाकर " " "

6- गुरमत सुधाकर " " "

7- गुरु प्रताप सूरज ग्रंथावली (संतोख सिंह) सं• भाई वीरसिंह, अमृतसर, 1954, दि• स खालसा,

8- गुरमत निर्णय भाई जोध सिंह, लुध्याना, दसवां सं • लाहौर, बुक शाप

9- गुरु ग्रंथ शब्दार्थ अमृतसर, 1959, तृतीय सं • शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी।

10- श्रीगुरु ग्रंथ दर्पण टीकाकार साहिबसिं, जालन्धर, राजपब्लिशरज़

11_ श्रीगुरु ग्रंथ कोश सोढी तेजसिंह, अमृतसर, 1950, खालसा टैस्ट सोसाइटी

12- गुरु ग्रंथ दी साहित्यिक विशेषता डा • गोपाल सिंह दर्दी, दिल्ली, 1958, पंजाबी अकादमी

13- गुरुमत निर्णय सागर प तारासिंह नरोतम, अमृतसर, गुरमत प्रेस

14- गुरमत दर्शन डा • शेरसिंह, अमृतसर, 1962, शिरोमणि गुरुर्दवारा प्रबंधक कमेटी ।

15- गुरमत मार्तंड ज्ञानी लालसिंह संगरुर, 1949, जनक पुस्तक भंडार

16- गुरुमुखी लिपि का जन्म ते विकास स जी • बी • सिंह, चण्डीगढ़, 1959, पंजाब यूनिवर्सिटी

17- गुरुमत प्रकाश साहिब सिंह, लाहौर, 1947, लाहौर बुक शाप

18- गुरु नानक चमत्कार वीरसिंह, अमृतसर, पंचम् सं • 1950, खालसा समाचार

19- गुरु शब्द रतनप्रकाश अकाली कौर सिंह, पटियाला, 1963, भाषा विभाग पंजाब

20- गुरु नानक दी विचारधारा डा रत्नसिंह जग्गी, दिल्ली, नवयुग पब्लिशरज़

21- दशम ग्रंथ प्रकाशक जवाहर सिंह कृपाल सिंह, अमृतसर, 2013 वि

22- पंजाब संपादकमहिन्द्रसिं रंधावा, पटियाला, 1960, भाषा विभाग

23- पंजाबी साहित्य का इतिहास, पटियाला 1963, भाषा विभाग

24- पंजाबी भाषाविगिआन अते गुरुमत गिआन डा • मोहन सिंह, अमृतसर, 1952, कस्तूरी लाल एण्ड संज़

25- प्राचीन जंगनामे शमशेर सिंह अशोक, अमृतसर, 1950, शिरोमणि प्रबंधक कमेटी

26- प्राचीन पंथ प्रकाश रत्न सिंह भंगू, अमृतसर 1952

27- पंथ प्रकाश ज्ञानी ज्ञानसिंह, अमृतसर, चतुर्थ संस्करण ।

28- महिमा प्रकाश सरूप सि दास भल्ला, भाषा विभाग पटियाला ।

29- सिख इतिहासबारे डा • गंडा सिंह, अमृतसर, 1942

30- सिक्ख धर्म बारे प्रो करतार सिंह, लाहौर, 1946, लाहौर बुक शाप ।

English Books

S.No.	Name of author Place, year & publisher
1. Abercrombie	The Epic, London, 1922
2. Archar	The Sikhs, London, 1940, Princeton University Press.
3. Ashta, D.P.	Poetry of the Dasam Granth, Arun Prakashan, Delhi, 1959
4. Bahadur Mal	A study of Indian culture, Hoshiarpur, 1956, V.V.R. Institute.
5. Bhattacharya, Hari Dass	The cultural Heritage of India Vol.II, Vol.IV, 1953, 1956, The Ramakrishan Institute.
6. Bouquet A.C.	Hinduism, London, 1948, Hutchison's University.
7. Bouquet A.C.	Comparative Religion, 1945, Pelican Books
8. Carr.E.H.	What is History, Macmillan, London, 1961
9. Collingwood, R.G.	The Idea of History, Oxfor University Press, London, 1961
10. Cunningham, J.D.	History of the Sikhs, S.Chand & Co., Delhi-1955
11. Croce.B	History and the Theory of Historigraphy
12. Dasgupta, S.N.	A History of Sanskrit literature, Calcutta, 1962, University ofCalcutta Second Edition.
13. David Daiches	Critical Approaches to literature, London, 1963 Longmans, green and Co.Ltd.
14. Dardi, Dr. Gopal Singh.	Translation of the Adi Granth, 4 Vol. Gur Das Kapur, Delhi, 1960
15. Encyclopedia America	1960, American Corporation.
16. Encyclopedia Britanica,	London, 1953, E.B.Ltd. Chicago
17. Encyclopedia of Islam	

18. Encyclopedia of Religion & Ethics, Edinburg, 1961

19. Encyclopeida of Social Sciences, New York, 1957, Edwin R.A. Seligman and Alvin Johnson(Twelfth Printing).

20. G.S. Chhabra — The Advanced Study in the History of the Panjab, 2 Vols. Published by Sharanjit, Jullundur, 1960.

21. Ganda Singh — The Sikhs and Sikhism, Sikh History Society Patiala, 1959

22. Gobind Singh Mansukhani — The Quintessence of Sikhism, SGPC, Amritwar, 1965

23. Gokhle B.G. — Ancient Indian History & Culture, Bombay 1962 Asia Publishing House.

24. Gupta Hari Ram — History of the sikhs, Simla, 1952, Minerva Book Shop
History of the Sikh Guru, U.C. Kapur & Sons, 1973, New Delhi

25. Har Dayal — Hints for Self-culture, Delhi, 1948 Raj Kamal Pub. Ltd.

26. Hegal — Philosophy of History (Dover Publications INC, New York)
Philosophy ofFine Art. Vol. (IV)

27. Hopkins E. Washburn — Ethics of India, 1924, Yale University Press.

28. Hudson, W.H. — An Introduction to the study of Literature, London, 1954, Geogge G. Harrap and Co. Ltd.

29. Ishwari Prashad — A short History of Muslim Rule in India Allahabad, 1931, Indian Press Private Ltd., 2nd Ed.

30. Keith, A.B. — A History of Sanskrit Literature, London 1948, Oxford University Press.

31. Khazan Singh — History and Philosphy of Sikhism, Lahore, 1914.

32. Khuswant Singh — The Sikhs, London, 1955, George Allen & Unwin Ltd.

33. -do- — The Sikhs today, Bombay, 1959, Orient Longman's Pvt. Ltd.

34. -do- — A History of Sikhs, London, 1963, Princeton University Press.

35. Kohli, Surinder Singh. — A Critical Study of the Adigranth, New Delhi, 1961, The Punjabi Writers Coop. Industrial Society Ltd.
(ii) Outline of Sikh thought, New Delhi 1966

36.Latif Syed Mohd. History of the Panjab Eurasia Publishing House (P) Ltd.,New Delhi 1964

37.Lajwanti Rama Krishna Panajabi Sufi Poets Calcutta, 1938

38.Luniya,B.N. Evolution of Indian Culture,Agra, 1967,Lakshmi Naraian Aggarwal.4th Edi.

39.Macdonell A.A. A History of Sanskrit Literature,Delhi 1961,Munshi Ram Manohar Lal.

Lectures on Comparative Religion, Calcutta, 1925,Calcutta University.

40.Majumdar R.C. & other An Advanced History of India,Macmillon India, 1974

41.Malcolm.Lt.Col Skech of the Sikh ,John Murray,London, 1812.

42.Max Muller Six System of Indian Philosophy,London 1928,Longmans Green & Co.

43.Macauliffe,M.A. The Sikh Religion,Oxford,1909, Clarendon Press.

44.Mohan Singh(Dr.) A History of Punjabi Literature,Amritsar, 1956,Kasturi Lal & Sons

45.Mukerjee Radha Kamal A History of Indian Civilization,Bombay 1958,Hind Kitab Ltd.

46.Narang,Gokal Chand Transformation of Sikhism,New Delhi, 1956,Gujrat Art Press.

47.Narang,Kirpal Singh. History of Punjab,Delhi,1953,Uttar Chand Kapoor & Sons Ist Edi.

48.Narang,Gokal Chand (Sir) Real Hinduism,Lahore,1947,New Books Society.
(ii)Glorious History of Sikhism New Books Society of India,N.Delhi(1972)

49.Niharranjan Ray The Sikh Gurus & The Sikh Society, Patiala 1970

50.Pran Nath Chopra Some Aspects of Society & Culture during Mughal Age (1526-1707) Agra 1955

51.Radha Krishanan History of Philosophy Indian &WEstern Govt.of India Pub. 1952.

52.Rose Glossary of Panjab Tribe & Caste.

53. Sarkar, J.N. — The History of Auranzeb(4 Volumes) The Fall of Mughal Empire (4 Volumes) Calcutta, N.C. Sarkar & Sons.

54. Sachav(Dr.) Edward. C. — Alberuni's India, Delhi, 1964, S. Chand & Co.

55. Shiplay, Josph. T. — Encyclepaedia of Literature.

56. Tara Chand (Dr) — The influence of Islam on Indian Culture, Allahabad 1936, Indian Press Pvt. Ltd.

57. Teja Singh — Sikhism its ideals and institutions, Lahore, 1938, Lahore Book Shop

58. Teja Singh & Ganda Singh. — Short History of the Sikhs, Orient Long-mans, India, 1950.

59. Tripathi(Dr.) Rama Shankar — History of Ancient India, Delhi, 1960, Moti Lal Banarsi Dass.

60. Trilochan Singh — Guru Tegh Bhahdur, Gurdwara Parbandhak Committee Delhi, 1967

61. Trumpp, Ernest — The Adi Granth, London, 1877

62. Tagore, Rabindera nath. — A vision of India's History, Visva Bharti Calcutta, 1962.

63. Winternitz M — A History of Indian Literature Vol. III Part I & II Delhi, 1963, 1967, Motilal Banarsi Dass.

64. Walsh W.H. — An Introduction to Philosophy of History Hutchinson University Press, 1961

65. Widgrey, A.G. — Interpretation of History, George Allen and Unwin Ltd., London, 1961

उर्दू तथा फारसी ग्रन्थ सूची

1- आईने अकबरी (उर्दू) — अबुलफज़ल, प्रकाशक, दस्त तबा जामिआ उसमानिया, हैदराबाद, 1938 ई.

2- तुज़के जहांगीरी — नवल किशोर प्रेस, लखनऊ ।

25402S